प्रकाशक—

साहित्य-संस्थान

राजस्थान विश्व विद्यापीठ

उदयपुर

प्रथम सस्करण, सवत

मूल्य १०)

विषय-सूची

विषय

प्रकाशकीय

राजस्थान मे प्राचीन-साहित्य, लोक साहित्य, इतिहास, पुरातत्व एवम् कला-विषयक प्रचुर सामग्री यत्र तत्र बिखरी हुई है। आवश्यकता है उसे खोज कर संग्रह और संपादित करने की। राजस्थान विश्व विद्यापीठ (तत्कालीन हिन्दी विद्यापीठ) उदयपुर ने इस आवश्यकता को अनिवार्य समझकर वि० सं० १९९८ मे "साहित्य संस्थान" (उस समय प्राचीन साहित्य शोध-संस्थान) की ओर से एक योजना बना कर राजस्थान की साहित्यिक, सांस्कृतिक और सामाजिक निधि को एकत्रित करने का काम हाथ मे लिया। योजना के अनुसार "साहित्य-संस्थान" के अन्तर्गत विभिन्न प्रवृत्तियाँ निम्न छः विभागों में विकसित हो रही हैं (१) प्राचीन साहित्य विभाग, (२) लोक साहित्य विभाग, (३) पुरातत्व एवं इतिहास विभाग, (४) नव साहित्य-सृजन विभाग, (५) अध्ययन गृह एवं सामान्य-विभाग।

१. साहित्य-संस्थान द्वारा सर्व प्रथम राजस्थान मे यत्र तत्र बिखरे हुए हिन्दी और संस्कृत के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज और संग्रह का काम प्रारम्भ किया गया। राजकीय पुस्तकालय, जागीरदारों के ऐसे संग्रहलाय एव जहाँ भी ऐसी पुस्तकें थीं और देखने नहीं दी जाती थीं धीरे २ इसके लिए वातावरण बनाकर काम कराया जाने लगा। सब से पहले साहित्य-संस्थान द्वारा 'राजस्थान मे हिन्दी के हस्त लिखित 'ग्रन्थों की खोज' (बिबलियोग्राफी) का काम हाथ मे लिया, जिसके अब तक चार भाग 'राजस्थान मे हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज' नाम से प्रकाशित किये जा चुके हैं और पाँचवाँ भाग शीघ्र ही प्रेस में दिया जाने वाला है।

प्राचीन साहित्य विभाग मे 'हस्त लिखित ग्रन्थों की खोज' के अतिरिक्त ६००० चारण गीत विभिन्न विषयों के एकत्रित किये जा चुके हैं।

२ लोक साहित्य-विभाग द्वारा हजारों कहावते, लोक-गीत, मुहावरे, लोक कहानियाँ, बात-ख्यात ख्याल, पहेलियाँ बैठकों के गीत आदि संग्रह किये जा चुके हैं। लोक साहित्य में कहावतों के तीन भाग (१) मेवाड़ की कहावतें, (२) मालवी कहावतें तथा (३) राजस्थानी भीलों की कहावतें नाम से छप चुके हैं। लोक गीतों मे

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५६६	३	निर्त्ति	कीर्ति
५६६	१६	समस्त	समस्त
५६७	१८	रानी के	×
५६८	१८	वीर	वोर
५६९	२८	कीडा	कीड़ा
५७१	२२	कर	कर
५७१	२४	तन	तन
५७२	१३	विरही	विरहि
५७२	१६	वल	वल
५७३	४	हुआ "	हुआ कामदेव
५७३	४	प्रयतम	प्रियतम
५७५	१५	आ लिंगित	आलिंगित
५७५	१७	रूपी	रूपी दुर्ग
५७५	२४	मोह	मोर
५५४	४	(फिरने)	(चीरने)
५७७	१५	सधन	सघन
५७७	२०	हा	हो
५७७	२६	जपै	जंपै
५७७	२७	वित्तभ्भै	कितत्रभ्भै
५७८	१५	वुम	गुम
५७८	२२	का निमल	को निर्मल
५७८	२६	चत	चित
५७९	१२	कैर	करै
५७९	२०	कज	कज
५८०	६	अंगद	अंगज
५८१	२७	शरीर "	शरीर निर्मल
५८३	३	नीद	नींद
५८३	३	कै छगन	कैछगन
५८३	१६	रोमावली	रोमावलि
५९०	५	दिब्य "	दिब्य दिढ
५९०	११	पुरुपढ	पुरुपह
५००	२४	सग्रहे	ग्रहे
५९१	२७	हरु अलि	हरुअति
५९३	८	हथ्थ	हथ्थ=
५९५	१३	अरि	अपि
५९५	१८	धूसरी	दूसरी
५९५	१९	अ छपिजीह	अपिजीह
५९६	१२	गति	सति
५९९	२९	गजवगन	गजवदन
६००	१२	कोई मूर्य, ...	कोई सूर्य, कोई गणे
६०१	२६	सप	सर्प
६०३	१०	समंता	सामतां
६०३	१७	सत्रोधे	सँबोधे
६०४	४	समु	समुह
६०४	२८	जसूल	जासूल
६०५	२६	होह	होहि
६०६	१६	राजनन्	राजन्

"राजस्थानी-भीलों के लोकगीत भाग १" प्रकाशित हो चुकी है तथा इसीसे सम्बन्धित 'आदि निवासी-भील' नामक पुस्तक का प्रकाशन हो चुका है। लोक-साहित्य की तीन चार और भी महत्व-पूर्ण पुस्तकें प्रकाशनार्थ तैयार है। आर्थिक सुविधा के प्राप्त होते ही पुस्तके प्रेस मे दे दी जॉयगी।

३ पुरातत्व और इतिहास-विभाग के अन्तर्गत पट्टे, परवाने, ताम्रपत्र एव ऐतिहासिक महत्व के अन्य कागज-पत्रों का संग्रह किया जाता है। प्राचीन मूर्तियॉ, सिक्के, शिलालेख, चित्र तथा अन्य कला कृतियॉ एकत्रित की जाती है। इसमे अच्छी सामग्री एकत्रित करली गई है।

साहित्य-सस्थान के काम और उसकी उपयोगिता देख कर प्रसिद्ध पुरातत्व वेत्ता स्व० डॉ० गौरीशकर हीराचन्द ओझा ने अपने समस्त प्रकाशित और अप्रकाशित ऐतिहासिक एव पुरातत्व सबन्धी निबन्ध सस्थान को प्रदान कर दिये थे। उन सब का प्रकाशन चार भागों मे 'ओझा-निबन्ध-संग्रह' के नाम से किया जा चुका है। पुरातत्वज्ञों और ऐतिहासकों के लिए ये निबन्ध अत्यन्त महत्वपूर्ण और उपयोगी है।

इसी विभाग के अन्तर्गत स्व० डॉ० गौरीशकर हीराचन्द ओझा की स्मृति मे राजस्थान के इतिहास कार्य के लिए "ओझा आसन" स्थापित है जिससे प्रतिवर्ष राजस्थान के इतिहास से सबन्धित तीन भाषण लिखित रूप से अधिकारी विद्वान द्वारा कराये जाते है इस आसन से "पूर्व आधुनिक राजस्थान" नामक पुस्तक का प्रकाशन हो चुका है, जिसके लिए यू० पी० सरकार ने पुस्तक के लेखक को ७५०) रु० का पुरस्कार भी प्रदान किया है।

४ प्राचीन साहित्य की शोध-खोज के अलावा नवीन प्रगति शील साहित्य की ओर भी विद्यापीठ का ध्यान गया और इसके अन्तर्गत साहित्य सृजन का काय प्रारम्भ किया गया। अब तक इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत एक 'आचार्य-चाणक्य" नाटक दूसरी बृज भाषा का खड काव्य "तुलसी दास" एव तीसरी 'नयाचीन" नामकी पुस्तक प्रकाशित की जा चुकी है।

पुस्तकों के सृजन के साथ साथ नवीन प्रगतिशील लेखकों को प्रोत्साहित करने और साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिये "राजस्थान-साहित्य" नामक मासिक पत्र का प्रकाशन किया जाता है।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७१०	२८	देव-गण	देवतागण	७४७	१३	वद्द	वह
७१२	५	व्रह्माएड	ब्रह्माण्ड	७४७	२५	हाइ	होइ
७१२	२	छीनो	छोनी	७४८	२	आर्धा	आधी
७१३	१२	लगा	लगी	७४८	३	तासम	तास
७१५	६	सजोगिनि	सञ्जोगिनि	७४८	७	मान	मानी
७१६	७	उप्पार	उप्पर	७४८	१०	कोध	क्रोध
७१८	८	कं	कंप	७५०	१६	निब्वरिय	निव्वरिय
७१८	११	सुम्दरी	सुन्दरी	७५०	२१	वाधनय	वाघराय
७१६	८	सकेत	सकेत	७५०	२६	प्राप्र	प्राप्त
७१६	२८	अंजलि	अंजुलि	७५१	२८	उल्हासित	उल्लसित
७२२	११	यहीं	यहीं	७५३	२१	कातरा नं	कातरा न
७२६	८	द्राप्पनु	द्रं प्पनु	७५०	१५	घुख्यो	घुं ख्यौ
७२६	१५	व्रह्मणी	ब्राह्मणी	७५३	२७	जुम्हर	जुम्हार
७२६	१७	गुरुपत्नी	गुरु	७५८	१४	अवघट्ट	अवघट्ट
७२७	१८	की	को	७५८	२५	का	को
७२७	२०	रत्यौति···	रत्यौति प्रान	७५६	६	ध्रुन	ध्रुव
७३०	२४	मूमि	भूमि	७६१	२८	किसी···	किसी को
७३३	१२	का	को	७६३	२६	जिती	जिति
७३४	२३	ढका	ढका	७६४	४	विहिन	विहीन
७३५	२४	सन्या	संन्या	७६५	८	दिल्पी हुच जाय	दिल्ली पहुँच जाय
७३६	२७	को	के				
७४१	१६	चा	चार	७६७	१०	ल्यनै	ल्यंनै
७४१	१४	व्यतीत	व्यतीत	७६८	२०	भयकर	भयंकर
७४२	२५	जंप	जंपै	७६६	८	मरने	करने
७४४	१३	टंघ	तघे	७६०	१६	भया	भयो
७४६	१८	पर्यतं	पर्यंत	७७१	३	हुन्दरी	सुन्दरी
७५६	१८	वह्माए	ब्रह्माण्ड	७७१	११	छोड़	छेड़

५ अध्ययन गृह और संग्रहालय मे अब तक १००० महत्व पूर्ण हस्त लिखित ग्रन्थ एवं २५०० मुद्रित ग्रन्थ एकत्रित किये जा चुके हैं। इसके अन्तर्गत प्राचीन चित्र, शिल्प कला के नमूने तथा ऐसी ही कलात्मक सामग्री इकट्ठी की जा रही है।

६ सामान्य विभाग मे राजस्थानी के प्रसिद्ध महाकवि सूर्यमल की स्मृति मे "सूर्यमल आसन" स्थापित है। इस आसन से प्रतिवर्ष "राजस्थानी भाषा और साहित्य" विषय पर किसी अधिकारी विद्वान् के तीन मौलिक भाषण आयोजित किये जाते हैं और उन्हें पुस्तकाकार प्रकाशित किया जाता है। इस आसन से "राजस्थानी भाषा" नामक पुस्तक प्रसिद्ध भाषा तत्वज्ञ डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या की प्रकाशित हो चुकी है।

इसी के अन्तर्गत शोध-खोज सम्बन्धी साहित्य को प्रकाश मे लाने के लिए "शोध-पत्रिका" नामक त्रैमासिक का प्रकाशन किया जाता है। इसके सम्पादक मंडल मे साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् हैं। देश के सभी विद्वानों का सहयोग इस पत्रिका को प्राप्त है।

इस प्रकार साहित्य-सस्थान अपनी बहुमुखी कार्य-योजना द्वारा राजस्थान के बिखरे हुए साहित्य को एकत्रित कर प्रकाश मे लाने का नम्र किन्तु अपनी दृष्टि से महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। हमारे देश की प्राचीन साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक परम्पराओं तथा चिंतन-स्रोतों को सदैव गतिशील एवं अमर बनाये रखना है तो इस काम को और अधिक व्यापक बनाना होगा। राजस्थान और भारत के विद्वानों, विचारकों और साहित्यकारों का इस प्रकार के शोध-पूर्ण कार्यों की ओर अधिकाधिक प्रवृत्त होना आवश्यक है।

साहित्य-सस्थान राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर पिछले दस वर्ष से हिन्दी के आदि महाकाव्य "पृथ्वीराज रासो" का प्रामाणिक सस्करण हिन्दी अनुवाद सहित करवा रहा था, अब वह सम्पूर्ण रूप से तैयार हो चुका है और 'प्रथम खण्ड' का प्रकाशन गत वर्ष किया जा चुका है। प्रथम खण्ड के प्रकाशन के लिये राजस्थान सरकार को अपनी ओर से कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

इस वर्ष साहित्य-सस्थान, राजस्थान विश्व विद्यापीठ की ओर से राजस्थान सरकार के द्वारा भारत सरकार के शिक्षा-सचिवालय से सहायता के लिये निवेदन

शुद्ध

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८०७	१५	और	ओर
८०८	१६	र्थअ:–	अर्थ:—
८०९	२१	गगे	गये
८१०	१२	ल है	लहै
८१३	१४	दुलंभ	दुर्लभ
८१३	१५	शोमा	शोभा
८१५	१७	वार	वीर
८१५	२३	सामाना	सामना
८१६	१०	पक	पंक
८१६	२४	छडि	छंढि
८१७	६	गुराज	पगुराज
८१७	९	द्दी	ही
८२०	९	पगुराज	पगुर ज
८२१	१२	कट्टय	कट्टत
८२३	२९	भरनु	मरनु
८२४	१९	मृत्युलो	मृत्युलोक
८२५	२७	दो	दी
८२६	८	पहले	पहले से ही
८३१	४	पाटन	पाटने
८३१	२७	पगुराज	पगुराज के
८३१	२७	दलन	दलन करके
८३२	२३	तलवरें	तलवारें
८३३	७	विटी	विंटि
८३३	२८	घो ड़ों	घोड़ों
८३४	१६	खग्ग	खग
८३५	२५	वध्घेल	वघ्घेल
८३६	९	माई	भाई
८३६	१६	नपनी	अपनी
८३७	८	वचेला	वघेला
८३७	११	अतक	अतक
८३७	१२	तद्गामी	द्रुतगामी
८३७	१६	दानां	दोनों
८३८	२६	उद्धर	उद्धार
८३९	१३	वधि	वंधि
८३९	२२	अशाक	असोक
८३९	२६	मलवारें	तलवारें
८४०	१७	वई	वांई
८४१	१४	चार	चार
८४१	२३	नरं	नर
८४३	१८	वावराय	वाघराय
८४३	२२	निडडुराय	निड्डुरराय
८४४	७	संग्रहें	सग्रहों
८४५	२८	रठोर	रट्ठौर
८४६	५	पति-भल्यौ	पति भल्यौ
८४६	७	धर दवाया	धर–दवाया
८४८	८	दड	दड
८४८	११	लिये,	लिये)
८४८	१४	भाम	भीम
८४८	२०	प्राड़	आड़
८५०	२	धर्यौ	धरयौ
८५०	७	मारु	भारु
८५१	२३	अवरण	अव रण
८५२	६	इप	इद
८५२	१६	तत्तपश्चात्	तत्पश्चात्

किया गया था। राजस्थान सरकार के शिक्षा-सचिवालय द्वारा भेजे गये साहित्य-संस्थान के प्रार्थना-पत्र पर भारत सरकार के शिक्षा-सचिवालय ने ४८५००) अड़तालीस हजार पाँच सौ रुपये की सहायता निम्न कार्यों के लिये स्वीकार की—

"पृथ्वीराज रासो" के तीन खण्डों के प्रकाशन के लिये, पुस्तकालय के विकास के लिये एव ध्वनि सुरक्षा यंत्र (साउण्ड रेकार्डिंग मंत्री मशीन) खरीदने के लिये।

उक्त चारों मदों के लिए भारत सरकार के शिक्षा विकास-सचिवालय की ओर से उपर्युक्त सहायता स्वीकार की गई। इस स्वीकृत सहायता की रकम में संस्था की अपनी ओर से एक तिहाई रकम मिलाकर मार्च १९५६ के पूर्व उक्त कार्यों को समाप्त करने की शर्त रखी गई थी। उसके अनुकूल ही हमने प्रस्तुत 'रासो' के प्रकाशन का कार्य किया है। भारत सरकार के शिक्षा-विकास-सचिवालय की ओर से प्रदान की गई इस अनिवार्य सहायता के लिये साहित्य-संस्थान की ओर से उक्त सचिवालय के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। साथ ही राजस्थान सरकार के शिक्षा सचिवालय और शिक्षा विभाग का अत्यन्त आभारी हूँ कि जिन्होंने संस्थान के कार्य को ध्यान में रखकर उक्त सहायता प्रदान करवाने में पूरा सहयोग दिया। विशेष कर राजस्थान के मुख्य मंत्री (जो शिक्षा मंत्री भी हैं) माननीय श्री मोहनलालजी सुखाड़िया का अत्यन्त अनुगृहीत हूँ जिन्होंने साहित्य-संस्थान के काम को और उसके द्वारा किये जाने वाले परिश्रम को महत्वपूर्ण और अनिवार्य उपयोगी मानकर सहायता प्रदान करने के लिये भारत सरकार के शिक्षा-विकास सचिवालय को सिफारिश की। सच तो यह है कि उक्त सहायता श्री सुखाड़िया, भारत सरकार के डिप्टी शिक्षा सलाहकार डॉ० पी० डी० शुक्ला, डॉ० भान तथा असिस्टेंट शिक्षा सलाहकार श्री सोहनसिंह एम० ए० (लंदन) और उपशिक्षा मंत्री डॉ० श्रीमाली की प्रेरणा से ही मिल सकी है। इसलिए इन सब का मैं अत्यन्त आभारी हूँ और आशा करता हूँ कि आगे भी संस्थान के कार्य-विकास में आप सबका सक्रिय योग मिलता रहेगा।

राजस्थान विश्व विद्यापीठ के पीठमंत्री और मेरे सहयोगी भाई भगवती लाल भट्ट ने इस सहायता को प्राप्त करने में काफी कष्ट उठाया, उसके लिए मैं इनका [illegible] हूँ।

उन सब महानुभावों का भी मैं आभारी हूँ, जिन्होंने रासो के सम्पादन में ज्ञान* और प्राचीन प्रतियों द्वारा संस्थान और सम्पादक को सहायता दी है। आशा है भविष्य में भी संस्थान को उन सब की सहायता मिलती रहेगी, क्यों कि संस्था उन्हीं की है।

गिरिधरलाल शर्मा
अध्यक्ष
साहित्य-संस्थान
राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर

वसन्त पंचमी
वि०स०२०१२

* महा पंडित राहुल सांकृत्यायनजी ने सम्पादन की प्रणाली के बारे में सुझाव दिये और श्री लक्ष्मीलालजी जोशी (प्रचेता, राजस्थान विश्व विद्यापीठ) से हमें इस कार्य में समय २ पर उत्साह एवं प्रेरणा मिलती रही है, अतः मैं उक्त दोनों महानुभावों का आभार प्रदर्शित करता हूँ।

—सम्पादक

संस्था की ओर से

राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर के अन्तर्गत आज से एक युग पूर्व प्राचीन साहित्य की शोध-खोज, संग्रह, सम्पादन और प्रकाशन कार्य के लिये "प्राचीन साहित्य खोज विभाग" की स्थापना की गई थी। तब से आज तक इसके नाम में कार्य और प्रवृत्तियों के विकास एवं विस्तार के साथ अनेक परिवर्तन और परिवर्धन होते रहे हैं। इस समय यह 'साहित्य-संस्थान' के नाम से प्रख्यात है। प्राचीन-साहित्य की शोध-खोज, सग्रह, सम्पादन और प्रकाशन के अतिरिक्त आज इसमें लोक-साहित्य, इतिहास, पुरातत्व और कला-विषयक सामग्री की शोध-खोज कर, उसका सम्पादन एव प्रकाशन का काम होता है। साथ ही नवीन-साहित्य के सृजन और विकास के लिये भी क्षेत्र तथा वातावरण तय्यार किया जाता है। नवीन उदीयमान प्रतिभाशाली लेखकों की रचनाओं के प्रकाशन की समुचित-व्यवस्था करने के लिये साधन-सुविधाएँ एकत्रित की जाती हैं और उनके लिये अवसर उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जाता है। साहित्य-सस्थान विगत एक युग से भारतीय साहित्य, उसकी सस्कृति और विविध कलात्मक सामग्री के पुनर्शोधन के लिये निरन्तर प्रयत्नशील है। सस्थान की ओर से अब तक कई महत्वपूर्ण प्रकाशन किये जा चुके हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ भी उसी का परिणाम है।

दस वर्षों के अथक परिश्रम और अध्यवसाय के कारण ही आज यह हिन्दी साहित्य का आदि महाकाव्य हिन्दी अनुवाद सहित हिन्दी जगत के सामने प्रस्तुत किया जा सका है। इसके सम्पादन का आधार विभिन्न काल की विभिन्न हस्तलिखित 'पृथ्वीराज-रासो' की प्रतिया ही रही हैं। इसके सम्पादन और प्रकाशन मे विपुलश्रम, शक्ति और धन का व्यय साहित्य-संस्थान की ओर से किया गया है।

[illegible] मोहनसिंह पिछले चालीस वर्षों से इस पर परिश्रम [illegible] और इन्हें 'पृथ्वीराज-रासो' का प्रामाणिक हिन्दी अनुवाद करने में अनेक कठिनाइयां झेलनी पड़ी हैं लेकिन साहस और हिम्मत के साथ संस्थान के इस काम को इन्होंने आखिर समाप्त किया है। हिन्दी जगत में 'पृथ्वीराज-रासो' जैसे महान आदि काव्य ग्रन्थ के अब तक हिन्दी अनुवाद नहीं होना खटकने वाली बात थी और साहित्य की एक बहुत बड़ी कमी अनुभव की जाती थी। साहित्य-संस्थान ने केवल इसी कमी की पूर्ति के लिये इस महान ग्रन्थ के सम्पादन का काम हाथ में लिया था। सम्पादन के प्रारंभ से ही हमने इस बात को लक्ष्य में रखा था कि हम इसकी ऐतिहासिक प्रामाणिकता के विवाद में नहीं उतरेंगे और यही कारण है कि हमने केवल इसका हिन्दी अनुवाद मात्र ही प्रकाशित किया है। संस्थान ने केवल जमीन तय्यार की है। इस पर इमारत बनाकर मंजिल तक पहुँचाना हिन्दी साहित्य के विद्वानों का काम है।

गत वर्ष राजस्थान-सरकार के शिक्षा-विभाग ने 'पृथ्वीराज रासो' के प्रथम भाग के प्रकाशन के लिये सहायता प्रदान की थी, जिसके कारण प्रथम भाग का प्रकाशन किया जा सका था, उसके लिये मैं सरकार का कृतज्ञ हूँ।

इस वर्ष 'पृथ्वीराज रासो' के शेष तीन भागों के प्रकाशन के लिये राजस्थान-सरकार के द्वारा भारत-सरकार के शिक्षा-सचिवालय के पास साहित्य-संस्थान ने आवेदन किया था। जिस पर शिक्षा-सचिवालय ने सहानुभूति से विचार किया और (इन तीनों भागों के) प्रकाशन के लिये सहायता स्वीकार की। साहित्य संस्थान के काम को देखते हुए अवश्य ही यह सहायता अत्यल्प थी लेकिन हमारा तो केवल यही सन्तोष है कि १० वर्षों के निरन्तर प्रयत्न के बाद आखिर राजस्थान सरकार और उसके द्वारा भारत-सरकार का ध्यान इस ओर गया तो सही। शोध-खोज का काम अन्य कामों की अपेक्षा अत्यन्त कठिन और व्यय साध्य है। सार्वजनिक संस्थाओं के लिये ऐसे कामों को करना और उसके लिये साधन सुविधायें जुटाना अत्यन्त दुष्कर कार्य है।

हमारे निवेदन को राजस्थान-सरकार के द्वारा भारत-सरकार के शिक्षा-विकास-सचिवालय ने स्वीकार किया, उसके लिये मैं भारत-सरकार और राजस्थान

सरकार के शिक्षाधिकारियों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। सच तो यह है कि यदि भारत-सरकार की ओर से इस वर्ष हमें उक्त प्रकाशन-सहायता नहीं मिलती तो प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रकाशित होना अत्यन्त कठिन था। इस सामयिक सहायता के स्वीकार करवाने में भारत-सरकार के शिक्षा विकास सचिवालय के उप-सलाहकार डॉ० पी० डी० शुक्ला, डॉ० भान तथा असिस्टेन्ट शिक्षा सलाहकार श्री सोहनसिंह एम० ए० (लंदन) और उप शिक्षा मन्त्री डॉ० श्रीमाली की ओर से जो सहयोग दिया गया, उसके लिये संस्था की ओर से इन्हें धन्यवाद देना अपना फर्ज समझता हूँ। राजस्थान के प्रगतिशील मुख्य मंत्री (जो शिक्षा मंत्री भी हैं) श्री मोहनलाल सुखाड़िया का भी मैं अत्यन्त आभारी हूँ, जिन्होंने संस्थान के काम को उपयोगी समझा और भारत सरकार से सहायता दिलवाने मे पूरा योग दिया। उपर्युक्त सभी महानुभावों के प्रति मैं कृतज्ञता प्रकट करता हू और आशा रखता हूँ कि भविष्य में भी राजस्थान विश्व विद्यापीठ के कार्य-विकास में आप सब का सम्पूर्ण सहयोग मिलता रहेगा।

मैं उन सभी को धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने 'पृथ्वीराज रासो' के सम्पादन में अपनी सलाह और सहायता दी। आशा है आगे भी वे सब सलाह और सहायता देते रहने की कृपा करेंगे।

विनीत

जनार्दनराय नागर

प्रोपकुलपति

राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर

अक्षय-तृतीया
वि० स० २०१३

काव्य-सौष्ठव

संयोगिता-हरण प्रसंग पृथ्वीराज रासो का सुमेरु है । यह वह स्थल है जहाँ रासो का कथा-प्रवाह चरम सीमा पर पहुँच कर तीव्र गति से कथावसान की ओर अग्रसर हुआ है, यह वह अवस्था है जहाँ परम पराक्रमी पृथ्वीराज का प्रताप-दीप निर्वाण से पूर्व अन्तिम वार प्रखर रूप से चमक उठा है और यह वह विषय है जिसमे महाकवि की वाणी शत-सहस्र भाव धाराओं में फूटकर द्विगुणित रूप से प्रवाहित हुई है यहाँ सुख-विलास की वह मनोरम झाँकी देखने को मिलती है जो एक ओर सयोग-शृंगार की मादकता को प्रकट करती है तो दूसरी ओर आगे चलकर करुण रस की व्यञ्जना को अधिक तीव्र एवं घनीभूत भी कर देती है । यहाँ जिस अविस्मरणीय युद्ध-कौशल का प्रदर्शन हुआ है, वह जहाँ एक ओर राजपूती आन, वान और शान का द्योतक है वहाँ दूसरी ओर तत्कालीन सामन्ती-व्यवस्था के ह्रास की ओर भी सकेत करता है।

इस प्रकार विविध भाव-सरणियों और विचार-धाराओं का उद्गम-विन्दु यह प्रसग 'कनवज्ज' समय का मूलाधार है, जो इस चतुर्थ भाग का प्रारम्भिक समय एव मुख्य अश है ।

'कनवज्ज' समय का प्रारम्भ पृथ्वीराज की श्रोतानुराग से उत्पन्न विरह-दशा द्वारा किया गया है। गधर्व द्वारा कन्नौज की अनिन्द्य सुन्दरी सयोगिता के गुण श्रवण कर पृथ्वीराज उसे प्राप्त करने को लालायित हो गया—

सुक वरनन संजोगि गुन, उर लग्गे छुटि वान ।
खिन खिन सल्लै वार पर, न लहे वेद विनान ॥

और इसीलिए उसने चन्द के समक्ष कन्नौज की ओर प्रस्थान करने का मतव्य प्रकट किया । पृथ्वीराज के वचनों को सुन कर कवि की दशा सूर्योदय और सूर्यास्त समय के कमल तुल्य होगई—

सुनिय सुकवि इह चन्द वच. ना वुल्यौ सम राज ।
अवुज को दोऊ कठिन, उदय अस्त रवि राज ॥

कवि ने इन दोनों प्रारम्भिक छन्दों मे ही सम्पूर्ण समय मे होने वाली घटनाओं की ओर संकेत कर दिया है। प्रथम मे—सयोगिता के गुणों को सुन कर उसे प्राप्त करने की इच्छा, किन्तु जयचन्द के समस्त वेद-विधि से वरण नहीं कर सकने के कारण उसका हरण और जयचन्द से युद्ध की अनिवार्यता की ओर इंगित किया गया है। द्वितीय छन्द मे कविवर चन्द की तुलना क्रमश सूर्योदय और सूर्यास्त समय के अर्ध-विकसित और अर्ध-म्लान कमल से करना इस बात का द्योतक है कि युद्ध मे राजा की विजय और कीर्ति वृद्धि से आल्हाद एवं विशिष्ट सामन्तों की मृत्यु से खिन्नता होगी।

इस सयोगिता विवाह प्रसग को कवि ने अत्यन्त मर्मस्पर्शी प्राकृतिक पृष्ठभूमि पर नियोजित कर उसे एक विशिष्ट अपूर्वता प्रदान की है। यह पृष्ठ भूमि है, पट्ऋतु वर्णन की—चन्द की सम्मति प्राप्त करके पृथ्वीराज ने अपनी पटरानी से कन्नौज प्रस्थान करने की अनुमति मागी। यह सुनकर रानी के प्राण और प्रत्युत्तर दोनो उसके कठ मे आकर रुक गये। प्राण चाहता था कि वह पहले निकले और प्रत्युत्तर चाहता था कि वह पहले। प्राण और प्रत्युत्तर की इस प्रतिस्पर्द्धा मे उस रानी का कठ गद्गद् हो गया। रानी के भाग्य से उस समय वसन्त अपने पूर्ण यौवन पर था। अत वह यह कह कर कि 'आम्र मजरित हैं, कदम्ब पुष्प की श्यामलता दीर्घ यामिनी से भी अधिक घनी है, मकरद के वशीभूत होकर भ्रमर भ्रमित होकर भ्रमण कर रहे है, पवन द्वारा सचालित मजरियाँ झूमती हुई विरह प्रज्ज्वलित कर रही हैं, कोकिलाएँ पञ्चम स्वर मे गारही हैं, राकापति भी दाम्पत्य प्रेम मे वृद्धि कर रहा है। अत' हे प्राणनाथ! आप मेरे स्नेह को अपने चित्त मे स्थान दीजिये, क्योंकि यौवन की अवधि प्रतिदिन क्षीण होती जा रही है,' पृथ्वीराज को वसन्त मे विदेश-गमन करने से रोक देती है—

मवरि अंब फुल्लिग कदब, रयनिय दिघ दीस।
भँवर भाव भुल्लै भ्रमत, मकरदव सीस॥
वहत वाउ उभझलति मौर, अति विरह अगनि किय।
कुहु कुहुत कलकठ, पत्त राखस रति अग्गिय॥
पय लग्गि प्रान पति वीनवौं, नाह नेह मुझ चित धरहु।
दिन दिन अवद्धि जुव्वन घटय, कत वसत न गम करहु॥

'पटरानी' और 'ऋतुराज' दोनों का सगम देख कर राजा ने उस ऋतु मे इच्छनी के महल में ही निवास किया। ग्रीष्म के आगमन पर जब उसने रानी पुण्डीरनी के पास जाकर उससे अनुमति माँगी, तब उसने यह कह कर निपेध किया कि अब तो दिन बड़ा और रात्रि छोटी होने लग गई है, पृथ्वी पर आग बरस रही है, पवन भी अग्नि के समान होगया है, सरोवर का जल सूख जाने से मछलियाँ तड़फडा रही हैं, तरु-लताओं के पत्ते झड़ गये हैं, जिससे ऐसा प्रतीत होता है मानों तरु-लता दिगम्बर होकर सुरति-सुख भोग रहे हैं। अत. हे प्रियतम ! आप ऐसे समय में गमन मत कीजिये—

दीरघ दिन निस हीन, छीन जल धर वैसन्नर ।
चक्रवाक चित मुदित, उदित रवि थकित पंथ नर ॥
चलत पवन पावक समान, परसत सु ताप मन ।
सुकत सरोवर मचत कीच, तरफत मीन तन ॥
दीसत दिगम्बर सम सुरत, तरु लतान गय पत्त झरि ।
अकुलंत दीह सपति विपति, कत गमन ग्रीखम न करि ॥

रूपगर्विता और मानिनी रानी पुण्डीरनी के अत्यधिक अनुरोध से राजा ने वह ग्रीष्म-ऋतु उसके यहाँ बिताई, पर वर्षा के आगमन पर वह इन्द्रावती के महल में पहुँचा। पति के मुख को देख कर ही रानी ने पृथ्वीराज के मनोभावों को समझ लिया, जिससे उसके मुख से शब्द नहीं निकल सके, किन्तु उसने अश्रु-वर्षा करके ही विदाई के लिए निपेध कर दिया—

पीय वदन सो प्रिय परखि, हरख न भय सुनि गौन ।
आँसू मिसि अंसु उपटे, उत्तर देय सलोन ॥

वह कहती है कि जल भर जाने से मार्ग अवरुद्ध हो गये हैं, घने बादलों के छाये रहने से दिशाएँ भी धुँधली हो रही हैं, पृथ्वी बादलों से रति-क्रीड़ा करती हो, ऐसी दिखाई दे रही है, लताएँ पुष्पित हो वृक्षों से आलिंगन कर रही हैं, यह देख कर मानिनी स्त्रियाँ भी मान त्याग देती हैं। अत. हे स्वामी ! ऐसी ऋतु मे रमणी अपने रमण का साथ चाहती है। ऐसे समय में पति-विहीन स्त्री ईश्वर-विहीन हो जाती है—

मग सज्जल सुभझॅन, दिसा धुधरी सघन करि।
रति पहुँवी किय चरित, लता तरु वींटि सुमन भरि॥
आलिंगत धर अम्भ, मान माननि ललचावत।
वर भद्दव कद्दव मचत, कद्दव विरुझावत॥
चतुरग सैन वै गढ ढहन, घन सज्जिय नृप चढन तिन॥
भरतार सग वछै त्रिया, बिन भतार भ्रतार विन॥

इन वचनों को सुन कर राजा ने वर्षा-ऋतु इन्द्रावती के साथ सुख-भवन मे बिताई। शरद् के प्रारम्भ मे जब राजा ने हसावती से गमन करने को कहा तब उसने उत्तर देने के पूर्व कमलिनी की ओर देखा और फिर बोली—शरद् की रात्रियों मे रमणीक चन्द्रमा को देख कर कौन बच सकता है और यमराज से बच कर कौन जीवन बनाये रख सकता है?—

दिख्खि वदन प्रिय पोमिनी, फुनि जपै फिरि वाल।
सरद् रवन्नों चद निसि, जिव लम्भे छुटि काल॥

यहाँ रानी का कमलिनी की ओर देखना अत्यन्त सारगर्भित है। यह इस बात को प्रकट करता है कि जिस प्रकार शरद्-चन्द्र कमल त्रासक है, उसी प्रकार तुम्हारे गमन करने पर मेरी भी ऐसी ही स्थिति हो जायेगी।

वह पुन कहती है– रात्रि मे विरहिणी स्त्रियों के प्राण और शरीर दोनों तडफते रहते हैं। शरद्-प्रभा को देखने से उनके मुख पीले पड जाते हैं, इसलिए आप एक क्षण के लिए भी भवन मत छोडिये। हे प्रिय! यह असह्य है—

तलफत प्रान निसि भवन तन, देखत दुति गिति मुख जरद।
नन करहु गवन नन भवन तन, कन तुमह दारुन सरद॥

रानी कूरम्भी हेमन्त के आगमन को देख कर कहती है—हेमन्त मे दिन छोटे और रात्रियाँ लम्बी होगई है। पाला अधिक पडने से नितम्बिनियाँ सिकुड कर पतली हो रही है। जिनके पति पास में हैं, वे युवति-प्रमदाएँ सुन्दर शैया सजाकर अनग के वशीभूत होती हुई अपने प्रियतम का आलिंगन करती है। वियोगिनी बालाएँ तो हेमन्त मे पाले से जली हुई नलिनी के समान हो जाती है। अत हे स्वामी! प्रवास

की बात उठा कर हमें इस हेमन्त में मत त्यागिये, क्योंकि पति-विहीन प्रमदाएँ निराधार कही जाती हैं—

> छीने वासर सीत दिग्ध निसया, सीतज नेतवने ।
> सेज सज्जर यान-या वनितया, आनंग आलिंगने ॥
> यों बाला तरुनी वियोग पतन, नलिनी दहते हिम ।
> मा मुक्के हिमवत मंत गमने, प्रमदा निरालवन ॥

हेमन्त बीतने पर कामांध राजा हम्मीरनी के रनिवास मे गया, तब उसने आश्चर्य प्रकट किया कि शिशिर में आप घर कैसे छोड़ सकते हैं, क्योंकि शिशिर में तो स्त्री-पुरुष दिन रात कामांध होकर फिरते रहते हैं। उन्हें रच मात्र भी संकोच नहीं होता और वे मन माने वचन बोलते रहते हैं अत. हे कन्त ! यदि आप अपनी और हमारी कुशलता चाहते हैं तो इस ऋतु मे गमन मत कीजिये। भला आप ही बताइये कि पति-विहीन स्त्रियाँ इस शिशिर ऋतु मे कैसे जीवित रह सकती हैं ?—

> नर नारी दिन रैनि, मैंन मदमाते डुल्लैं ।
> सकुच नहिय छिन एक, वचन मन मानै बुल्लैं ॥
> सुनौ कत सुभ चित करि, रयनि गवन किम किज्जियै ।
> कहि नारि पीय बिन कामिनी, रिति सिसरह किम जिज्जये ॥

कथा के इस प्रसग का बहाना लेकर कवि ने परम्परागत सस्कृत-काव्य शैली के आधार पर षट्ऋतु वर्णन में अपनी काव्य कला का चरम सौन्दर्य प्रस्तुत किया है। यद्यपि यह वर्णन स्पष्ट. उद्दीपन को आधार बनाकर चला है, फिर भी कवि ने प्राकृतिक सुषमा के साथ ही अपनी वर्णन कुशलता,सूक्ष्म प्रकृति निरीक्षण और ऋतुओं का मानवीय क्रिया-कलापों पर प्रभाव भी अंकित किया है। राजा केवल रानियों के अनुरोध और प्रणय-निवेदन से ही वर्ष भर अपना कार्यक्रम स्थगित नहीं करता, अपितु वह अपने रति-मुग्ध हृदय के आग्रह से ही ठहरता है। कवि ने ऋतुओं का तो नाम मात्र लिया है, उसका प्रमुख लक्ष्य तो कामोद्दीपन की भावना को जागृत करना और उसके ताप और विरह को मूर्त्त स्वरूप देना है। कहना नहीं होगा कि कवि अपने इस उद्देश्य में सफल हुआ है। कनवज्ज-समय का यह ऋतु-वर्णन

परिस्थिति के अनुरोध और अनुभूति की तीव्रता की दृष्टि से रासो के मार्मिक प्रसंगों मे ही नहीं अपितु हिन्दी के श्रेष्ठ षट्ऋतु वर्णनों मे अपना स्थान रखता है। रासो के इस ऋतु-वर्णन की यह विशेषता रही है कि वह कृत्रिम और आरोपित नहीं दिखाई देता, किन्तु आगे चल कर कथा-प्रवाह मे एक रोचक मोड भी उपस्थित कर देता है।

पुन बसन्त आ गया। राजा के सामने एक कठिन समस्या उपस्थित हो गई-क्या वह पुन वर्ष भर रनिवास में ही बिताए ? यदि नहीं तो वह अपने प्रणय-लुब्ध मन को कैसे समझावे और रानियो के विलास-निमत्रण को कैसे अस्वीकार करे ? कवि की नव नवोन्मेष शालिनी प्रतिभा की ऐसे ही प्रसगों पर परीक्षा होती है। कविचन्द इस परीक्षा मे सफल होता है और कथा-प्रवाह को उचित एव निर्दिष्ट मार्ग की ओर मोड़ने के लिए युक्ति सगत सरस प्रसग की उद्भावना करता है। कविचन्द अकस्मात राजा के पास पहुँचता है तब राजा उसके सम्मुख अपनी कठिनाई को प्रकारान्तर मे रखते हुए पूछता है कि हे कवीश्वर ! ऐसी ऋतु कौनसी है जिसमें स्त्री को पति की इच्छा नही होती—

'सो रिति चन्द बताउ मुहि, तिया न भावे कत'

चन्द परिस्थित समझ कर 'ऋतु' शब्द पर श्लेष करते हुए कहता है कि कामिनी को मान या ऋतुमति (पुष्पवति) की अवस्था मे पति की इच्छा नहीं होती—

रोम भरे उर कामिनी, होइ मलिन सिर आग।
उहि रिति त्रिया न भावई, सुनि चुहान चतुरग।

बस ! राजा की समस्या का समाधान हो गया उसकी चित्तवृत्ति रति-विलास से हट कर कन्नौज गमन की ओर लग गई एव कवि का भी इतर प्रसग की उद्भावना करने का अभीष्ट सिद्ध हो गया।

पृथ्वीराज ने अपने विशिष्ट सौ सामन्तों सहित कवीश्वर के सुराहीदार के वेश में कन्नौज की ओर प्रस्थान किया। मार्ग म नाना भाँति के अपशकुन हुए। रात्रि मे उलूक पक्षी बोला जिसे राजा ने सर-सधान करके मार दिया। आगे चलते हुए उन्हें एक बहुरूपिया अर्द्धनारीश्वर शिव के रूप मे, दुर्गाभक्त योगिनी, इन्द्र-जालिक, सद्य विवाहित नव दम्पति, आदि २ अनेकानेक शुभ-अशुभ शकुन होते रहे।

कवि ने इस प्रसंग मे अपने ज्योतिष-ज्ञान और शकुन-शास्त्र के गहन पाण्डित्य का परिचय दिया है। इन शुभ अशुभ शकुनों और ग्रह-प्रभावों का कथन हर-सिद्धि देवी के निम्न कथन की ओर सकेत करता है—

मम करहि चन्द अदेश मन, लेय राज सजोगि ग्रहि।
चौमह्हि सुभर भेदे सुहरि, जय जय करि अच्छर वरहि ॥

आगे चल कर कवि ने गगा मे जल भरने आने वाली जयचन्द की दासियों के रूप-सौन्दर्य का अलकृत वर्णन करने के साथ ही अपनी रसिकता और विनोद-पूर्णता का भी परिचय दिया है। कान्यकुब्ज की सुन्दरियाँ गगा-तट पर रत्नजटित कुभ लिए हुए जल भरने आई। उनके रंग विरगे पट उनके अंकुरित कुच-तटों की सेवा कर रहे थे। उन्हें देखकर कवि ने राजा को आश्चर्य में डालते हुए कहा कि देखिये-राहु और चन्द्रमा, धनुष और मृग, शुक और विम्वाफल, शिव और कामदेव, सिंह और गज—क्रमशः एक दूसरे के विरोधी होते हुए भी एक साथ सुशोभित हो रहे हैं। राजा को आश्चर्य होने पर कवि ने दासियों की ओर इंगित किया और उसे जयचन्द का प्रताप बताया—

राह चन्द इकलास, पास कोवंड कुरंगा।
कीर विंवफल जुगल, उभय भूतेस अनगा ॥
मगराज गजराज, राज पिक्खिय एकंतं।
पुच्छि ताम कविराज, कहा इह अचिरज ग्रतं ॥
वरदाइ ज्वाब दीनों बहुरि, त्रिखि तट गग दासी सुतन।
थानॅक प्रताप जयचन्द के, वैर भाव छंडिय सु इन ॥

यहाँ कवि ने रूपकातिशयोक्ति और विरोधाभास आदि अलकारों का सहारा लेकर नागरी-बालाओं के नख-शिख एव सौन्दर्य का वर्णन किया है। यही नहीं, कवि ने उनके क्रिया-कलापों को जिस अनूठे ढग से शब्द-चित्रों में अकित किया है, वह भी दर्शनीय है—

द्रिग चचल चचल तरुनि, चितवन चित्त हरति।
कचन कलस झकोरि के, सु दरि नीर भरति ॥

इन सौन्दर्य-चित्रणों के साथ ही विनोद और शिष्ट-हास्य की भी व्यञ्जना की गई है। बात यह हुई कि इन वर्णनों को सुनकर पृथ्वीराज ने कविचन्द की भूल पकडते हुए विनोदपूर्ण वाक्य कहे-हे कवि! मुझे आश्चर्य और शका है कि तुम सुन्दरियों के अग-वर्णन में कैसे चूक गये? क्या पगुराज की दासियाँ गजी है जो तुमने अपने वर्णन मे उनके केश-पाश को स्थान नहीं दिया—

हसि प्रथिराज नरिंद कहि, कवि चुक्को अदेश।
पग दासि आचिज्ज इह, वाल बरनि बिन केस॥

इस पर कवि चन्द उन बालाओं के केश-सौन्दर्य का वर्णन करते हुए उनका मुख की सरिता से रूपक बॉध देता है—

कुमुद कुच्च प्रगासी, हार बीच तन तय अव।
अभिवर तरग ओप रोम राजीव सेवाल॥

इस प्रकार कवि ने इस लम्बे प्रसग को उठा कर अपनी उत्कृष्ट कवित्व शक्ति, भावमयी रसिकता और शिष्ट विनोद प्रियता का परिचय दिया है।

सेना का पडाव डालकर राजा कविचन्द के साथ नगर देखने निकला। मार्ग में अपशकुन हुए, फिर भी भावी को अमिट जानकर पृथ्वीराज आगे बढा तब उसे नगर कोट दिखाई दिया—

रमि सगुन्न चल्यौ नृपति नेत्र दरसि सो नथ्थ।
वर दोसी हट नेर को, मिलन पसारत हथ्थ॥

यहाँ 'वर' और 'दोषी' शब्द श्लिष्ट रूप मे है जो अत्यत अर्थ-गर्भित और सार्थक बन पडे है। 'वर' और 'दोपी' शब्द पृथ्वीराज और नगर-कोट दोनो के लिए समान रूप से प्रयुक्त हुए है। कोट नगर और हाट बाटों को शोभा के लिए आड़ स्वरूपी होने के कारण दोपी' किन्तु उसी नगर की रक्षा करने मे समर्थ होने के कारण 'वर' कहा गया है। वह फैला हुआ ऐसा दिखाई देरहा था, मानों स्वय 'वर-दोषी' होने के कारण उस नगर के 'वर-दोपी' राजा पृथ्वीराज (सयोगिता से वरण करने वाला होने के कारण 'वर' किन्तु उसका हरण कर नगर को नष्ट करने वाला होने के कारण दोपी') को आया हुआ जानकर उसके मिलने के लिए

हाथ पसार रहा हो (अर्थात् यहां 'जैसे को तैसा मिला', 'एक ही थैली के चट्टे-बट्टे', 'चोर चोर मोसेरे भाई' आदि लोकोक्तियां चरितार्थ होरही हैं-)

इसके बाद कवि वस्तु-वर्णन के आधार पर कनवज्ज नगर और राजप्रासाद के ऐश्वर्य' का वर्णन करते हुए जयचन्द और चन्द के वार्तालाप वाले प्रसंग पर आता है यहां कविवर् की निर्भीकता इस बात में दिखाई देती है कि वह शत्रु के राजप्रासाद मे आकर जयचन्द का अदृश्य वर्णन और उसका प्रताप-कथन करते हुए भी अपने स्वामी की प्रशसा करता है—

'कमधज्ज राइ विजपाल सुअ, तो वर भूपति हय किसौ'

यहा 'हय' का श्लेषार्थ 'हो सकता' और 'नाशकर्ता' दोनों करके कवि ने जहाँ प्रत्यक्ष में यह कहा कि हे पगुराज ! तेरो श्रेष्ठता की तुलना पृथ्वीराज के अतिरिक्त कौन कर सकता है ?, वहाँ अप्रत्यक्ष रूप से यह भी कह दिया है कि तेरे जैसे श्रेष्ठ राजा का नाशकर्ता पृथ्वीराज ही हो सकता है। पृथ्वीराज की इस प्रकार स्तुति सुन जयचन्द अत्यन्त क्रोधित होगया, किन्तु उसने प्रगट में श्लेषयुक्त वाक्य कहे जो इस प्रकार हैं—हे बरदाई ! तुम मितभाषी, नम्रतायुक्त, जगलेश्वर पृथ्वीराज के पास रहने वाले, तुच्छ बुद्धि से रहित और छन्दों का विस्तार करने वाले होते हुए भी कभी मेरी और कभी पृथ्वीराज क प्रीशंसा क्यों करते हो ?—

मुख दरिद्र अरु तुच्छ तन, जंगलराव सु हद्द।
बन उजार पसु-तन-चरन, क्यों दुब्बरौ बरद्द ॥

इस कथन में जयचन्द का गूढार्थ चन्द को बैल कहना था। उसके कथन का भाव यह है कि जंगलेश्वर की जनकलरव-रहित उजाड़ भूमि में, जहाँ पशुओं के चरने की सुविधा होते हुए भी और तुच्छ काय होते हुए भी बैल का मुँह क्यों नहीं चलता और वह दुबला (कृषकाय) क्यों है ?

कवि चन्द इस श्लेषार्थ को समझ लेता है और इसीलिए यह श्लेषयुक्त वाक्यों में ही उसका प्रत्युत्तर देता है। वह कहता है—हे पंगुराज ! पृथ्वीराज ने अश्वारूढ़ होकर अन्य नरेश्वरों की सीमा मे अपनी दुहाई फेर दी और जिसे सबल और श्रेष्ठ समझा उसी से युद्ध किया। उसके पराक्रम से आतंकित होकर शत्रुओं

ने मुँह मे पत्ते, डालियाँ और जड़ें लेलीं। अनेकों ने दाँतों में तृण ग्रहण कर लिये और वे उससे भयभीत होकर दशों दिशाओं मे भाग गये इस प्रकार उस पृथ्वी-राज ने सभी वीरों का मान-मर्दन कर दिया है, जिसे देखकर सारा समार चकित हो रहा है। हे राजा! पृथ्वीराज के शत्रुओं ने पशुओं के खाद्य को समाप्त कर दिया है, इसीलिए उसके राज्य मे रहने वाला बैल दुर्बल है—

चढि तुरग चहुआन, आन फेरीत परद्धर।
तास जुद्ध मडयौ, जास जानयौ सबर वर॥
कोइक तकि गहि पात, कोइ गहि डार मूर तर।
केइत दत तुछ त्रिन्न गए दस दिसनि भाजि डर।
भुअ लोक तदिन अचिरज भयौ, मान सबर बर मरद्दिया।
प्रथिराज खलन खद्धौ जुखर, यौं दुब्बरौं बरद्दिया॥

यहाँ कवि ने छन्द के अतिम चरण मे, प्रत्यक्ष मे तो यह कहा है कि ऐसा शत्रु-नाशक पृथ्वीराज भी तुझे अपने ही समान वीर समझता है, अत मैं भी तेरी प्रशसा करता हूँ, किन्तु उसका वास्तविक श्लेष गर्भित व्यग्य-वचन यह है कि तुम जैसे राजाओं ने अपने मुँह मे घास ले लिया है, अत बैल दुबला हो रहा।

जयचन्द-चन्द-वार्त्तालाप के इस प्रसग से हास्य-रस की भी अच्छी व्यजना होती है। जयचन्द के व्यग्य वाक्य—'जगलराव' और बरद्दिया' आलबन है, 'मुह दरिद्र', 'तुच्छ तन', 'वन उजार', 'पसु-तन-चरन' आदि उद्दीपन है और 'क्यौ दुब्बरो बरद' प्रश्न सचारी है। लोक-साहित्य मे राजा और कवियों के कलात्मक विनोद की अनेक कथाएँ प्रचलित है। जयचन्द-चन्द-वार्त्तालाप प्रसग भी उसी की पूर्ति करता है।

इस प्रसग से चन्द के नामकरण पर भी प्रकाश पडता है। "कुछ लोगो ने उसके चन्द्रक और पृथ्वीभट्ट नामा की भी कल्पना की है। किन्तु जिन्होंने चन्द वलद्दिय नाम को स्वीकार कर लिया है उन्होंने भी बलद्दिय का शुद्ध करके 'वरदायी' कर दिया है जिसका अर्थ उनके अनुसार 'वर देने वाला' अर्थात् 'जिसे दुर्गा ने वर दिया हो' होता है। वस्तुत वह 'वलीवर्द' का ही तद्भव रूप है जो 'नर-वृषभ' की तरह आदरार्थे विरुद् की तरह जोड़ा जाता है।"[१]

---

(१) हजारीप्रसाद, नामवरसिंह— स० पृथ्वीराज रासो (पृ० १६२-६३)

इस प्रसंग को देखने से ज्ञात होता है कि चन्द निर्भीक प्रकृति वाले, अत्यन्त वाक् पटु, तार्किक, प्रत्युत्पन्न मति और सिद्ध हस्त कवि थे। राजनीति कुशल, समय-कुसमय पहचानने वाले और अदृश्य वर्णन करने वाले कवि की सत्यता और चतुरता भी दर्शनीय है। जयचन्द के पूछने पर कि 'कोन वरन उनहार किहि, कहि चहुआन सु अत्त', उसने सेवक के रूप में पृथ्वीराज की ओर कविता के भाव को प्रकट करने के बहाने हाथ उठाकर सकेत करते हुए कहा—'प्रथीराज उनहारि इहि'।

कविचन्द के इन वचनों को सुनकर जयचन्द की दशा का वर्णन करते हुए रौद्र रस की अच्छी व्यजना हुई है—

दिखिव नयन कमधज नरेस, अंदेस वृद्धि वर।
दंग दहन जीरन जरत, पर-चंत अंत-पर॥
श्रुति अरु न मुख अरुन, नेन आरत्त पत्त सम।
पानि मींडि दवि अधर, दत दव्वत तेज तम॥
कविचन्द वहुत वुल्लहु वयन, छिति अछिति खत्री कवन।
चल दल ममान रसना चपल, विफल वाद मंडौ मवन॥

यहाँ जयचन्द आश्रय, चन्द द्वारा पृथ्वीराज की प्रशसा सुनना आलवन-विभाव, कवि-सकेत से पृथ्वीराज का भ्रम होना उद्दीपन विभाव; सशंकित हो जाना, क्रोध के कारण कान नैत्र एव मुख का लाल हो जाना, हाथ मलना, ओष्ठों को दाँतों से दवाना और आवेश मे चन्द को चपल, मदान्ध और व्यर्थ की वकवाद करने वाला कहने लगना अनुभाव और आवेग उग्रता, पृथ्वीराज से शत्रुता की स्मृति और चपलता आदि सचारी भाव है।

इसके वाद कवि पुन एक नवीन और अत्यन्त रोचक प्रसंग उपस्थित करता है। जयचन्द की अनेकों दासियाँ थीं, जिनके नैत्र मृगो के समान और काम-तरगों से तरगित थे। वे नाखूनों से वाल सँवारती तथा अंचल उघाडता और ढाँकती रहती थीं। कुच और कच भार से उनकी कटि लचक-लचक जाती थी—

नयन कुरग तरग तिन, नखनि सवारति वार।
इक अंचल उघरि ढकांत, लचकति कुच कच भार॥

कवि चन्द को आया हुआ जानकर कर्णाटी दासी ऐसी सखियों से आवृत होकर पान समर्पित करने आई, किन्तु अपर वेशधारी पृथ्वीराज को देखकर वह कंपित हो गई, उसके अंग शिथिल हो गये तथा मति कुण्ठित हो गई। तब उसने संकुचित होकर अपने मुख पर घूँघट खींच लिया—

जंगलपति दिख्खत नजरि, दासी थरहरि कंपि।
गलित अंग मति भंग ह्वै, संकुचि सीस पट ढंकि॥

कर्णाटी जयचन्द से कहा करती थी कि "विनु प्रथिराज न पुरख बिय, जिहि ढंकौ सिरु लाज" इसलिए कर्णाटी को घूँघट निकालते देख जयचन्द ने उससे पूछा कि यहाँ पृथ्वीराज तो है नहीं, फिर तू किसकी लज्जा करती है ? तब उसने स्वामि-धर्म और नमक का विचार कर बड़ी चतुरता से उत्तर दिया कि जिस पृथ्वीराज को मैं अपना स्वामी मानती हूँ वह पृथ्वीराज भी कविचन्द को अपना गुरु समझता है, अतः गुरु की लज्जा करना मेरा धर्म है।

वैसे तो युद्ध की पृष्ठभूमि के रूप में कन्नौज आगमन पर जयचन्द का प्रताप देखकर सामन्तों का उत्तेजित हो उठना, पृथ्वीराज को संयोगिता के श्रोतानुराग की स्मृति होना, छद्म वेष धारण किये पृथ्वीराज के लिए शंका हो उठना ही यथेष्ट है, किन्तु एक घटना ऐसी हो गई जिसमें जयचन्द का संदेह पुष्ट होने से युद्ध अवश्यंभावी हो गया। बात यह हुई कि कविचन्द ने विदा लेते समय जब छद्मवेश धारी पृथ्वीराज से जयचन्द को पान समर्पित करने के लिए कहा तब पृथ्वीराज ने समर्पित करने के ढंग से नहीं अपितु दान देने के ढंग से अर्पित करना चाहा, किन्तु जयचन्द ने भी हाथ पसार कर पान लेना स्वीकार नहीं किया। कवि के समझाने पर पृथ्वीराज ने जब ताम्बूल लेते समय पंगुराज की भृकुटी चढ़ी हुई देखी तो उसे भी क्रोध आगया और उसने ताम्बूल देते समय जयचन्द के हाथ पर हाथ इस प्रकार डाला, मानों वज्रायुध ने अपनी पूरी शक्ति से वज्र-प्रहार किया हो—

भुअ वंकी किय पंग नृप, अप्पि हथ्थ तमोर।
मनहु वज्रपति वज्रधर, मध्य अप्पो तिहि जोर॥

फिर क्या था-दोनों ओर युद्ध-वाद्य बजने लगे और पृथ्वीराज के सामंत वीर लघरीराय ने प्रातःकाल ही शत्रु सेना से भिड़कर उसे नष्ट कर दिया। इधर जयचन्द की विशाल वाहिनी के गज और अश्वों के प्रयाण से कुचलाता हुआ शेष-नाग हिलता-डुलता इधर से उधर खिसकने लगा। पल मात्र में उड़ी हुई रजराशि पलकों मे पड जाने से इन्द्र के सहस्र नैत्रों से अश्रु प्रवाहित होने लग गया—

हय हय दल धरमसहि, सेस सलसलहि सलक्कहि।
सहस नयन झलझलहि, रेन पल पूरि पलक्कहि॥

सेना के चलने से पृथ्वी पर से उड़ी हुई धूल की उत्प्रेक्षा करता हुआ कवि कहता है कि वह ऐसी दिखाई दी, मानों सूर्य की पूजा के लिए पृथ्वी ऊपर उठी हो।

उधर कवि सामंतों को सम्बोधित कर कहने लगा—हे वीरों! तुम्हारा भय पाकर दुर्ग कंपित हो जावेंगे, पहाड़ ढह जावेंगे, अश्व-पदों से दलित होकर पृथ्वी खिसक जावेगी, सरोवरों और समुद्रों में अशान्ति फैल जावेगी, बाराह-दंत दृढ़ होते हुए भी तड़क कर फट जावेगा, कच्छप की पीठ अति भार से पीडित हो सिकुड़ने लगेगी, पृथ्वी पर प्रलय छा जावेगा और ब्रह्माण्ड स्थान च्युत हो जावेगा। जयचन्द का प्रयाण सुन कर तुम मचल मचल कर मत चलो, क्योंकि यदि ऐसा करोगे तो तुम्हारे भय से भयभीत होकर स्वयं प्रलय भी लौट जावेगा या युग परिवर्तन हो जावेगा—

डर द्रुग्गम खर हरहि, अढर हरि परहि गरुअ गिरि।
त्रिन वन घन टूटत, धरनि धसमसहि हयनि भरि॥
सर समुद्र खर भरहि, डिढह डिढ डाह करक्कहि।
कमठ पिठ्ठ कलमलहि, पहुमि महि प्रलय पलट्टहि॥

जयचन्द पयानौ सभरत, फुनि ब्रह्मण्ड विछुट्टि हय।
मम चलहि मचलि मम चलि मचलि, चलहित प्रलय पलट्टिहय॥

इस छन्द का शब्द-चयन और उसकी यथोचित् स्थान-नियोजना वीर रस का उद्रेक करने में अत्यन्त सफल सिद्ध हुई है, साथ ही इस कवित्त में चन्द का वह वीर-घोष सुनाई पड़ता है, जो कायरों मे भी रणोत्साह का शंख फूँक उन्हें मर मिटने के लिए

सन्नद्ध कर देता है। अंतिम पंक्ति में नकारात्मक कथन भी वीरों में उत्तेजना की वृद्धि करने मे सहायक हुआ है।

इधर भीषण युद्ध हो रहा है, उधर पृथ्वीराज नगर-भ्रमण की इच्छा से गंगा किनारे आया और शीतल जल और निर्मल तरगों को देखकर मछलियों को मोती चुगाने मे तन्मय हो गया। उसी समय संयोगिता अपने महल के गवाक्ष में आकर खडी रही। ज्योंही पृथ्वीराज ने उसकी ओर निहारा, उसे एक अद्भुत अपूर्व दृश्य दिखाई दिया। यहाँ कवि ने रूपकातिशयोक्ति और भ्रम अलंकार की सहायता ली और कह उठा—

कुंजर उप्पर सिंघ, सिंघ उप्पर दुय पब्बय।
पब्बय उप्पर भ्रंग, भ्रंग उप्पर ससि सुभ्भय॥
ससि उप्पर इक कर कीर उप्पर मृग दिट्ठौ।
मृग उप्पर कोदंड, संध कंद्रप्प बयट्ठौ॥
अहि मयूर महि उप्परह, हीर सरस हेमन जर्यौ।
सुर भुअन छंडि कवि चन्द कही, तिहिं धोखै राजन पर्यौ॥

वह लुटा सा उसकी रूप-राशि को निरखने लगा। संयोगिता के नेत्र और उसका प्रेम, दोनों भी उसी मार्ग पर चल पडे। कितना स्वर्गीय दृश्य है। पृथ्वीराज अपनी सुध-बुध खो बैठा और उसे अपलक नैत्रों से निहारता रहा। सुन्दरी संयोगिता भी उसे देखकर स्तंभित हो गई और उसे रोमांच, स्वेद, कंप और स्वरभंग हो गया। कवि ने यहाँ शृंगार रस के आधार पर संयोगिता के अनुभावों मे सात्विक भावों का मिश्रण कर दिया है। शृंगार के चरमोत्कृष्ट रूप के साथ ही कवि यहाँ एक नाटकीय-दृश्य विधान भी प्रस्तुत कर देता है। मछलियों को चुगाते चुगाते जब माला के मोती समाप्त हो गये, तब उस दिवस का मुक्तादान पूर्ण समझ कर संकल्प करने को जल के लिये पृथ्वीराज ने हाथ बढाया। (उसे यह भ्रम था कि मेरे पास सेवक खडे हैं)। संयोगिता के पास से आई हुई सहेली के द्वारा उसे जल प्राप्त हुआ। जल प्राप्त होने के साथ ही 'इस नक्षत्र स्वरूपा बाला को स्वीकार कर क्षमा करते रहिएगा' वाक्य सुनाई पडने पर उसका अपना भ्रम दूर हो पाया और उसे चतुर सहेली से संयोगिता के संकल्प (कन्यादान के समान) का ज्ञान हुआ—

अंजुलि जल मंडिग नृपति, जब दित्तो गल मुत्ति ।
जलह लभै अं मनु कियौ, खमी ति वाल निखत्ति ॥

गंधर्व विवाह के पश्चात् तत्काल ही विजयोत्सुक पृथ्वीराज को प्रणाम करते देख पंगुकुमारी ने सब युक्तियों की उपेक्षा कर आदर पूर्वक केवल ताम्बूल भेंट किया—

प्रयाने पंग पुत्री च, जैतिक जोगिनीपुरं ।
विधि सर्व निषेधाय, तांबूलं ददत नृप ॥

यहाँ तांबूल भेट करना विशिष्ट अर्थ का द्योतक हुआ है। संयोगिता ने तांबूल ही भेंट क्यों किया ? इसका आशय यह है कि ताम्बूल लता को 'नागर-वल्लि' भी कहते हैं; अतः इसका संकेताशय 'मुझ चतुर (नागर) लता को भूल मत जाना' हो सकता है अथवा 'मेरे हाथों द्वारा पान समर्पित कर जो रंग रचा रही हूँ, वह आपके हृदय मे रचा रहे'; अथवा जैसा कि पाणिग्रहण के अवसर पर वर-वधू के बीच मे पान रखा जाता है, उसके आधार पर आपके और मेरे पाणिग्रहण की साक्षी स्वरूप यह ताम्बूल है. जो आपको मेरी स्मृति दिलाता रहेगा' आदि आशय भी हो सकता है।

पृथ्वीराज के चले जाने पर काम द्वारा प्रज्ज्वलित दीप-शिखा के समान वह सुकुमारी संयोगिता प्रिय-वियोग के कारण दीर्घ निश्वास छोड़ने लगी और उसका तन कंपित होगया—'हंजेह आह नंखि, कम्पी तनयाइ काम सजोई'। यहाँ जिस 'हजेह' शब्द का प्रयोग किया गया है वह आज भी राजस्थान के लोक-साहित्य में सुन्दरी स्त्री के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। पति के विदेश गमन के अवसर पर स्त्रियाँ पृथ्वीराज और संयोगिता की स्मृति-स्वरूप 'हजा मारू याँही रोनी' गाकर इसी विरह-जनित वेदना को प्रकट करती हैं।

संयोगिता-हरण होने पर दोनों ओर की सेनाएँ बढ़ीं और भयानक युद्ध आरम्भ हुआ। कवि ने ऐसी स्थिति में सद्य-विवाहित पृथ्वीराज के अंतर्द्वन्द्व का अत्यन्त मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। पृथ्वीराज क्षण में युद्धस्थल मे जाने को उत्साहित हो उठता तो दूसरे ही क्षण उसे संयोगिता की स्मृति विकल कर रोक देती। कवि इसकी तुलना करता हुआ कहता है कि पृथ्वीराज की मनस्थिति उस समय

ऐसे कमल के समान हो रही थी, जो पवन-वेग से इधर-उधर सचरित हो रहा हो। किन्तु अन्त मे आयु पर लज्जा की विजय हुई और उसने जयचन्द से दहेज मे युद्ध रूपी आभूषण माँगे—

परनेवा पग पुत्री, जुद्ध माँगत भूपन।

पृथ्वीराज को उसकी इच्छित वस्तु मिल गई। घोर युद्ध होने लगा। वीर एक दूसरे पर 'मार-मार' उच्चारण करते हुए टूट-टूट कर गिरने लगे, शस्त्र से शस्त्र बज उठे, ससार की असारता और स्वामि-धर्म की दुहाई देते हुए सामन्त झूम-झूम कर एक के बाद एक आते और शिव को अपना मस्तक समर्पित करते गये, अप्सराएँ आ आकर उनको वरण करने के लिए झगडने लगीं, ऐसी अवस्था मे जयचन्द के द्वारा चारों ओर घेरा डाले रहने पर भी पृथ्वीराज उस 'सुरत-समुद्र तरंगिनी' कामकन्दला नव-वधू से उलझा रहा। कवि ने भी नव दम्पति की उस मधु-यामिनी को अत्यधिक रमणीक और अकथनीय माना, क्योंकि उस समय पल, रुधिर और प्राण-मुक्ता शृगालादि जीवधारियों द्वारा ही सयोग सुख का मगल गान गाया जा रहा था। जो पगु सेना के भी वश मे नही हुआ, वह पृथ्वीराज ऐसी सयोगिता के, जिसके नैत्र, चरण हाथ, मुख तथा कुच की शोभा विकसित कमल के समान थी और जिसकी कनकलता के समान देह कच-भार से लचकती हुई सुशोभित होती थी, वश मे हो गया—

नयन चरन कर मुख उरज, विकसि कमल अकार।
कनक बेलि जनु कामिनी, लचकति वारणि भार॥

यहाँ यद्यपि नयन, चरन, कर, मुख, उरज मे क्रमभग और कठोर कुचो को विकसित कमल की उपमा देने मे दोष है, फिर भी कवि की यह विशेषता रही है कि वह वीर रस के वर्णनों मे जहाँ तहाँ शृगार के पुट दे देता है जिससे ऐसा प्रतीत होता है मानों वीर रस के सागर में शृगार के कमल सुशोभित हो रहे हो।

जयचन्द अपनी सेना सहित जलती मशालें लेकर रात्रि भर पृथ्वीराज की सेना के चारों ओर घूमता रहा जिससे ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वह सावधानी के वहाने अपने जामाता का सन्मान कर रहा हो या वह उसकी आरती उतार रहा हो—

'इमि फेरि राज निज भ्रत पति, प्रथु सनमानित सव्व रथ'

× × ×

करति अरिति पहुपग फिरित, सब सेन आप प्रति ।
जगि तेज हुल्लाल, भाल दुति भई दीह भति ॥

यहाँ जयचन्द का जलती मशालें लेकर पृथ्वीराज की सेना के चारों ओर फिरने की आरती करने से जो उत्प्रेक्षा की गई है, वह अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी है और नैत्रों के समक्ष एक सुन्दर दृश्य उपस्थित कर देती है।

कवि ने कहीं २ एक ही छन्द में सम्पूर्ण युद्ध का दृश्य उपस्थित करने में भी अपनी वर्णन-कुशलता का परिचय दिया है। जैसे—

दिनियर-सुत्र दिन जुद्ध जूह चपिय सामतनि ।
भर उप्पर भर परैं, परैं उप्पर धांवतनि ॥
दल दंतिनि चिच्छुरहि,हय जु हय-हय किन नकहि ।
अच्छरि वर हर हार, धार धारनि भननकहि ॥
जय जया सद्द जुग्गिनि करहि, कलि कनवज ढ़िल्ली वयर ।
सामंत पच खित्तह खपिग, भिरत पच भय विप्पहर ॥

कविचन्द केवल सरस्वती का उपासक ही नहीं था, वह युद्ध क्षेत्र में अपना हस्तलाघव दिखाकर रणचण्डी की प्यास बुझाने में भी समर्थ था। अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा क्षत्रिय वीरों मे उत्साह का संचरण करके उन्हें मरने-मारने को तत्पर कर देना और मृत्योपरान्त उन्हें कीर्ति रूप मे अमर करना उसके लिए जिस प्रकार सहज था, उसी प्रकार स्वामि-धर्म की रक्षा के लिए स्वय हाथ मे खड्ग ग्रहण कर अपूर्व युद्ध-कौशल प्रदर्शित करना भी उसको एक चारित्रिक विशेषता थी। 'कथनी और करनी' का यह मणि-काचन संयाग वीरश्रेष्ठ कविवर् के महान् चरित्र मे चार चाँद लगा देता है। निम्न छन्द चन्द की इस चारित्रिक-महानता के साक्षी स्वरूप दिया जा सकता है—

लरत चद वरदाइ, करत अच्छरि विरदावलि ।
भरत कुसुम गयनग, धरत गर ईस मुँडावलि ॥
करत घाव कविराव, पिसुन परिवत्थ पछारत ।
भरत पत्र कालिका, भूत वैताल डकारत ॥

ऐसे कमल के समान हो रही थी, जो पवन-वेग से इधर-उधर सचरित हो रहा हो । किन्तु अन्त में आयु पर लज्जा की विजय हुई और उसने जयचन्द से दहेज मे युद्ध रूपी आभूषण माँगे—

परनेवा पग पुत्री, जुद्ध माँगत भूषन ।

पृथ्वीराज को उसकी इच्छित वस्तु मिल गई । घोर युद्ध होने लगा । वीर एक दूसरे पर 'मार-मार' उच्चारण करते हुए टूट-टूट कर गिरने लगे, शस्त्र से शस्त्र बज उठे, ससार की असारता और स्वामि-धर्म की दुहाई देते हुए सामन्त झूम-झूम कर एक के बाद एक आते और शिव को अपना मस्तक समर्पित करते गये, अप्सराएँ आ आकर उनको वरण करने के लिए झगडने लगी, ऐसी अवस्था मे जयचन्द के द्वारा चारों ओर घेरा डाले रहने पर भी पृथ्वीराज उस 'सुरत-समुद्र तरगिनी' कामकन्दला नव-वधू से उलझा रहा । कवि ने भी नव दम्पति की उस मधु-यामिनी को अत्यधिक रमणीक और अकथनीय माना, क्योंकि उस समय पल, रुधिर और प्राण-मुक्त शृगालादि जीवधारियों द्वारा ही सयोग सुख का मगल गान गाया जा रहा था । जो पगु सेना के भी वश मे नही हुआ, वह पृथ्वीराज ऐसी सयोगिता के, जिसके नेत्र, चरण हाथ मुख तथा कुच की शोभा विकसित कमल के समान थी और जिसकी कनकलता के समान देह कच-भार से लचकती हुई सुशोभित होती थी, वश मे हो गया—

नयन चरन कर मुख उरज, विकसा कमल अकार ।
कनक वेलि जनु कामिनी, लचकति वारणि भार ॥

यहाँ यद्यपि नयन, चरन, कर, मुख, उरज मे क्रमभग और कठोर कुचों को विकसित कमल की उपमा देने मे दोष है, फिर भी कवि की यह विशेषता रही है कि वह वीर रस के वर्णनों मे जहाँ तहाँ शृ गार के पुट दे देता है जिससे ऐसा प्रतीत होता है मानों वीर रस के सागर में शृ गार के कमल सुशोभित हो रहे हों ।

जयचन्द अपनी सेना सहित जलती मशालें लेकर रात्रि भर पृथ्वीराज की सेना के चारों ओर घूमता रहा जिससे ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वह सावधानी के बहाने अपने जामाता का सन्मान कर रहा हो या वह उसकी आरती उतार रहा हो—

'इमि फेरि राज निज भ्रत पति, प्रथु सनमानित सब्ब रय'

× × ×

करति अरिति पहुपग फिरित, सब सेन आप प्रति ।
जग्गि तेज हुल्लास, भाल दुति भई दीह भति ॥

यहाँ जयचन्द का जलती मशालें लेकर पृथ्वीराज की सेना के चारों ओर फिरने की आरती करने से जो उत्प्रेक्षा की गई है, वह अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी है और नैत्रों के समक्ष एक सुन्दर दृश्य उपस्थित कर देती है।

कवि ने कहीं २ एक ही छन्द मे सम्पूर्ण युद्ध का दृश्य उपस्थित करने में भी अपनी वर्णन-कुशलता का परिचय दिया है। जैसे—

दिनियर-हुअ दिन जुद्ध, जूह चंपिय सामतनि ।
भर उप्पर भर परैं, परैं उप्पर धांवतनि ॥
दल दतिनि विच्छुरहि,हय जु हय-हय किन नकहि ।
अच्छरि वर हर हार, धार धारनि झननकहि ॥
जय जया सद्द जुग्गिनि करहि, कलि कनवज ढिल्ली वयर ।
सामंत पच खित्तह खपिग, भिरत पच भय विप्पहर ॥

कविचन्द केवल सरस्वती का उपासक ही नहीं था, वह युद्ध क्षेत्र मे अपना हस्तलाघव दिखाकर रणचण्डी की प्यास बुझाने मे भी समर्थ था। अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा क्षत्रिय वीरों में उत्साह का संचरण करके उन्हें मरने-मारने को तत्पर कर देना और मृत्योपरान्त उन्हें कीर्ति रूप में अमर करना उसके लिए जिस प्रकार सहज था, उसी प्रकार स्वामि-धर्म की रक्षा के लिए स्वय हाथ में खड्ग ग्रहण कर अपूर्व युद्ध-कौशल प्रदर्शित करना भी उसकी एक चारित्रिक विशेषता थी। 'कथनी और करनी' का यह मणि-कांचन संयोग वीरश्रेष्ठ कविवर् के महान् चरित्र मे चार चॉद लगा देता है। निम्न छन्द चन्द की इस चारित्रिक-महानता के साक्षी स्वरूप दिया जा सकता है—

लरत चद वरदाइ, करत अच्छरि विरझावलि ।
झरत कुसुम गयनग, धरत गर ईस मुँडावलि ॥
करत घाव कविराव, पिसुन परिवत्थ पछारत ।
भरत पत्र कालिका, भूत बैताल डकारत ॥

जहाँ तहाँ गज बाज नर, लोह लपटि पावक लहर।
गुरु वाह वाह पृथ्वीराज कहि, कटक भट्ट किन्नौ कहर॥

'दाम्पत्य-प्रणय का प्रस्फुटन कर्म-क्षेत्र में ही होता है, जहाँ युगल हृदय एक दूसरे को सहयोग देते हुए परस्पर श्रमसिक्त मुख देखते चलते हैं' ।[१] ऐसा प्रसंग उस समय उपस्थित हुआ जब युद्ध रत पृथ्वीराज के गले में केहरी कंठी ने कमान डाल दी। पृथ्वीराज के पीछे घोडे पर चढी हुई संयोगिता ने पति के गले में डाली हुई प्रत्यंचा को अपनी कटि में कसी हुई तलवार से काट दी। बंधन रहित होने पर पृथ्वीराज ने भी केहरी कंठ्ठी पर खड्ग-प्रहार कर उसका मस्तक काट दिया—

गुन कट्टित रमनिय सु वर, डसनह पग कु आरि।
आसबर भर प्रथिराज हनि, सूर हथ्थ नर वारि॥

कविचन्द को युद्ध का सजीव चित्रण करने में बडी सफलता मिली है। युद्ध का मूर्त स्वरूप खडा कर देने और वीर रस की सरस व्यञ्जना के लिए उन्होंने अलंकारों तदनुरूप काव्य-रीतियों और गुणों की भी सहायता ली है। जैसे—

हय कट्ट भू भयौ, भये भू पय न पलट्यौ।
पय कट्टत कर चल्यौ, करहि सब सेन समिट्यौ॥
कर कट्टत सिर भिरयौ, सिरह सनमुख हुइ फुट्यौ।
सिर फुट्टत धर धर्‍यौ, धरह तिल तिल हुइ तुट्यौ॥

यहाँ कवि ने सार अलंकार की सहायता लेकर युद्ध वीरता के उस अतीव उत्कर्ष की व्यञ्जना की है, जिसमें वीर स्वामि-धर्म रूपी यज्ञ में एक सहज किन्तु किसी अदृश्य शक्ति के वशीभूत होकर हँसता २ अपने शरीर का तिल तिल होम देता है। इसी प्रकार युद्ध करते हुए नरनाह कन्ह का मस्तक कट गया, फिर भी उसके कबंध ने तीन घडी तक भयानक युद्ध करके तीस हजार विपक्षी-सैनिकों को धराशायी कर दिया। उस समय—

१ हजारीप्रसाद द्विवेदी—संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो

जिम जिम तन जरजरयौ, विहसि वर धायौ तिम तिम।
जिम जिम अंत रुलन्त, लख्ख दल तिन गनि तिम तिम॥
जिम जिम करिवर परत, उठत जिम सीस सहित वर।
जिम जिम रुधिर झरत, सघन घन बरखत सद्धर॥
जिम जिम सु खग्ग बज्यौ उरह, तिम तिम सुरनर मुनि मन्यौ।
जिम जिम सु धाय धरनी परयौ, तिम तिम शकर सिर धुन्यौ॥

और भी–

गह गह गह उच्चार, देव देवासुर भज्जिय।
रह रह रह उच्चार, नाग नागिनि मन लज्जिय॥
वह वह वह उच्चार, सुरह असुरन धुनि सज्जिय।
त्रह त्रह त्रह त्रासत, तुट्टि पायन परि तज्जिय॥

यहाँ कवि ने क्रमश' उपनागरिका या वैदर्भी और परुषा या गौड़ी काव्य-रीतियों की नियोजना की है।

युद्धोत्साह और युद्ध–वर्णन के इन प्रसगों में वीर रस की ही प्रमुखता है। भयानक, वीभत्स और रौद्र रस तो अधिकतर वीर के सहायक होकर ही आये हैं। कहीं-२ अद्भुत रस की नियोजना करने से युद्ध का वातावरण अधिक आकर्षक और मार्मिक भी होगया है। यही नहीं, कवि ने इन प्रसगों में कहीं-२ एक ही छन्द मे एक से अधिक रसों की भी व्यञ्जना की है। जैसे—

जीति समर लक्खन बघेल, अरि हनिग खग्ग झर।
ति धर तुट्टि धरणी धुकत, निवरत अद्ध धर॥
तहँ गिद्धारव रुरिग, अत गहि अतह लग्गिग।
तरणि तेज रस बसह पमुक्कि पवन घन वज्जिग॥
तिहि सद्द ईस मच्यौ धुन्यौ, अमिय बुन्द ससि उल्लरयौ।
त्रिझर्‌यौ धवलु संकिय गवरि, टरिग गग सकर हस्यौ॥

यहाँ लख्खन बघेला के शस्त्र–प्रहार करने मे वीर, गिद्धों के आँते खींचने में वीभत्स, शिव के मुग्ध होकर सिर हिलाने पर चन्द्रमा से अमृत की बूँदे टपकने मे अद्भुत् नदीगण के व्याघम्बर के पुन व्याघ्र होजाने पर डरने और पार्वती की आशका मे भयानक एवं शकर के हँसने में हास्य रस की व्यञ्जना होती है।

शुद्ध हास्य रस की व्यञ्जना कहीं नहीं मिलती है। युद्धभूमि में भूत-प्रेतों, वेतालों, योगिनियों आदि की किलकारियाँ हास्य रस की व्यञ्जना नहीं करती हैं, अपितु वे वीभत्स और भयानक रस के सचारी भावों के अनुरूप होकर आई है।

कवि ने इन युद्ध वर्णनों मे अनेकों स्थानों पर अलकारों की नियोजना करके भी उसके उत्कर्ष मे वृद्धि की है। जैसे—

मच्छति हैवर तिरहि, कच्छगज कुभ बिराजहि।
उधर हस उडि चलहि, हस मुख कमल ति राजहि॥

यहाँ युद्ध भूमि को रक्त से पूरित कह कर उसका महानद से सागरूपक बाधा गया है, जो युद्ध भूमि का सजीव दृश्य उपस्थित कर देता है।

कवि ने इन वर्णनों मे युद्ध-विषयक नीति-वाक्य भी कहे हैं। जैसे—

जज्ञ कालेपु धर्मेषु, काम कालेपु शोभिता।
सर्वत्र वल्लभा बाला, सग्रामे नन गेहनी॥ और भी-

गुरुजन मनो नास्ति, तात आज्ञा विवर्जित।
तस्य कार्य विनष्यन्ति, यावत चन्द्र दिवा करौ॥

कनवज्ज का यह युद्ध अत्यन्त विनाशकारी सिद्ध हुआ। इसमे दोनों दलों के अनेकों प्रसिद्ध-२ सामत युद्ध चेत्र में खेत रहे। यह युद्ध उस कलह-कान्ता सयोगिता के कारण ही हुआ, जिसका पृथ्वीराज ने हरण किया था—

पच्छ सत्थ सजोगि, कलह कंतिय कौतूहल।
महनरभ मोहनिय, सुरा अमृत तदूलह॥

यहाँ कवि सयोगिता की युद्ध-वारिधि के मथन से प्राप्त रभा, मोहिनी, सुरा, अमृत और हलाहल विप से तुलना करना अत्यन्त काव्योपयोगी हुआ है, क्योंकि पृथ्वीराज के लिए तो वह रभा, मोहिनी और सुधा स्वरूप सिद्ध हुई, किन्तु वीरों के लिए वह विप तुल्य हो गई।

यहाँ कवि की यह विशेपता रही है कि जहाँ उसने इस भीपण युद्ध के प्रारम्भ होने का कारण सयोगिता को बताया है, वहाँ अपने अभीष्ट की प्राप्ति हो जाने के बाद कथा में नवीन मोड़ लाने हेतु युद्ध बन्द होने का कारण भी सयोगिता को ही रखा है। बात यह हुई कि जब लगातार तीन दिन के भयानक युद्ध के बाद भी किसी

एक दल की जीत नहीं हुई और असंख्य नर-संहार हो गया। तब इस दुःखद घटना के कारण पृथ्वीराज के पूर्व ही संसार से विदा हो जाने के भाव दिखाते हुए संयोगिता के करुणाश्रु-दृग एक क्षण के लिए टपक पड़े—

नैननि नक्खति कनक कन, पेम समुद्दह बाल।
प्रथम सुपिय उक्कुन उरह, भुलवंति मुद्ध मराल॥

जिसको देखकर पंगुराज का क्रोध शान्त हो गया और वह युद्ध स्थगित करवा कर कन्नौज लौट गया—'तिरि-गत्त राज तामस बुझ्यौ, दिखिय पंग संजोगि मुख'

यहाँ कवि ने अनावश्यक रक्त-संहार से दुःखित संयोगिता का आँसू बहाना और उसे देख कर वात्सल्य रस से पूर्ण पिता का तत्काल युद्ध बन्द कर देने का कथन कर मानव-जीवन की दो परम उत्कृष्ट भावनाओं का मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है, जो स्तुत्य है।

इस समय में कवि ने प्रथम तो शृंगार के सुकोमल पृष्ठ-फलक पर युद्ध की घनी काली रेखाएँ अत्यन्त उभार के साथ अंकित की हैं, किन्तु पुनः उसी पर संयोग-शृंगार की रोमानी कूचिका से जिन विविध रंगों का मेल बिठाया है, वह अत्यन्त आकर्षक और कवि की सहज प्रफुल्ल काव्यमयी सरसता का सूचक है।

पृथ्वीराज ने स्वर्गलोक के दीपक तुल्य संयोगिता को लाकर अपने राज-प्रासाद को प्रकाशित कर दिया, किन्तु वह संयोगिता को कृशाङ्गी समझ कर उससे सुरति-सुख प्राप्त करने में हिचकने लगा। राजा की इस शंका का समाधान करने हेतु कवि ने अत्यन्त मनोहारी और प्रसंगानुकूल विषय की अवतारणा की है। राज महल की वाटिका में एक पल्लवित एवं मंजरित आम्र-वृक्ष था। उससे उठने वाली सुवास का इच्छुक एक भ्रमर उसकी मंजरी पर आकर बैठा, किन्तु अपने भार से उसे टूटती हुई जानकर उसने उड़ने के लिए पंख फड़फड़ाये। इस दृश्य को देख कर संयोगिता की सखी भ्रमर को इंगित करती हुई कहने लगी—हे रस लोभी एवं कामग्रस्त रसिक भ्रमर! तू इस मंजरी की ओर से (इसके टूटने की शंका से) दृष्टि मत फेर। भला! तेने कहीं भ्रमर-भार से मंजरी को टूटते हुए सुना है?—

रस घुट्टत लुट्टत मयन, नन झुलि नंजरियाह।
भार भगत कथ्थह सुणी, अलियल मंजरियाह॥

यद्यपि सिंह क्षीण-कटि कहा गया है, फिर भी वह मदधारी गज-समूह का दलन करने मे समर्थ होता है। अत हे राजन! (तू डर मत, क्योंकि) नव यौवना रमणी के साथ एक पल भर रमण करना भी जन्म भर के सुख तुल्य है—

ज केहरि तन खीन, त गज मत्त जूथ यं दलण।
नव रमनी रमि राज, इक्कं पल जम्म सुख्खाई॥

यहाँ कवि ने पृथ्वीराज की शका द्वारा सयोगिता की अतीव सुन्दरता व्यञ्जित की है। साथ ही मजरी और भ्रमर के प्रसग से अन्योक्ति द्वारा दाम्पत्य-प्रणय के अत्यन्त सूक्ष्म और गुप्त प्रसग को भी प्रकट किया है।

इस प्रकार सर्वांगीण दृष्टि से देखने पर ज्ञात होता है कि 'कनवज्ज' पृथ्वीराज रासो का सबसे विशालकाय, समस्त घटनाओं का केन्द्रबिन्दु और कथा-विकास को अपने चरमोत्कर्ष स्थल पर पहुँचाने वाला समय है। इस समय मे कवि की सरस्वती पूर्ण रूप से मुखरित हुई है, जो उसे हिन्दी साहित्य ही नहीं अपितु किसी भी भाषा के श्रेष्ठ कवियों की श्रेणी मे स्थान देने मे समर्थ हो सकती है। यहाँ हम कवि को शृगार और वीर का अनुपम चितेरा, लाक्षणिक शैलीकार, वस्तु-वर्णन कुशल, नाटकीय दृश्य-विधान का अकन करने वाला, मानव और मानवेतर प्रकृति का अनुपम पारखी, मनोवैज्ञानिक चित्रकार, रूपक-उत्प्रेक्षा आदि अलकारों का सम्राट, पौराणिक कथाकार विनोदप्रिय, निर्भीक एव सत्य वक्ता और शकुन एव ज्योतिष-शास्त्री आदि सभी रूपों मे देख सकते है।

'सुख-विलास' समय के प्रारम्भ मे पृथ्वीराज के विलासी-जीवन की झाँकी दिखाई गई है, जो आगे चल कर उसके प्रतापी साम्राज्य के ह्रास का कारण बनती है। राजा उस समय अभिमानी हो गया था, वह राज्य कार्य से दूर रह कर केवल सुख भोग को ही जीवन का सच्चा उद्देश्य मानने लग गया—

इक जोवन धन मद, मद राजन मद वारुनि।
अरु मद देह अरोज, सग नव वनिता तारुनि॥
अरु बधन पतिसाह, पैज कनवज्ज सँपूरिय।
एते मद राजान, दुक्ख ददह करि दूरिय॥
आनन्द कद उमगे तनह सजोगी सर हस सरि।
जानै न राज प्रस्तम उदय, महि जीवन मानै सुपरि॥

यही नहीं– उसके संयोगिता मे अधिक अनुरक्त रहने के कारण अन्य रानियों में सौतिया–डाह भी स्वाभाविक रूप से प्रज्ज्वलित हो गया था। कवि ने इस 'सपत्नी-द्वेष' को अत्यन्त ही स्वाभाविक मनोभूमि पर आधारित दिखाया है। इच्छनी शुक से पृथ्वीराज के बारे में पूछती है, तब वह निम्न वचन कह कर उसके हृदय में द्वेष को अधिक प्रज्ज्वलित कर देता है—

विलसै न विसरि रस प्रिय प्रियनि, विरह विसरजन भ्रम न करि।
हा रम्य संयोइय निसि निगम, महल मोह मडप न धरि॥

यद्यपि प्रेम नारी-हृदय का सहज सात्विक भाव है, फिर भी वह उसके अन्तर मे उसी समय तक निश्चल गति से प्रवाहित होता रहता है, जब तक उसमें किसी प्रकार का व्याघात उत्पन्न न हो,अन्यथा प्रणय-वञ्चिता स्त्रियाँ तो पहाड़ी नालों से भी अधिक वेगवती और भयानक हो जाती है। 'सवति-द्वेष' भी इसी का एक रूप है। स्त्री सब कुछ सहन कर सकती है, यदि नहीं तो केवल यह कि कोई अन्य स्त्री उसके पति मे अनुरक्त रहे और उसे सान्निध्य-सुख प्राप्त नहीं हो। ठीक यही स्थिति इच्छनी आदि पृथ्वीराज की अन्य रानियों की हो जाती है। इसीलिए पृथ्वीराज और सयोगिता का सुख-विलास देख कर इच्छनी और अन्य रानियों के नैत्र अंगारों से जलने लगे और सयोगिता की प्रत्येक चेष्टाएँ उनके हृदय पर करवतों के समान चलने लगीं—

सौति सुहागिनि सुख दिखि, लगै नैन अंगार।
ज्यों–२ वह छन्दा करै, त्यों–२ करवत धार॥

आगे कवि ने सौत की मनः स्थिति का निर्देश निम्न दोहों मे नीति-कथन करके अत्यन्त सफलता से किया है—

पित्र घात सों मन मिलै, और वैर मिट जाय।
सौति वैर अतर जलनि, दिन प्रति ग्रीषम लाय॥

× × ×

मुख मिठ्ठी वत्तां करे, मन में देत सराप।
घटै प्रेम सु पीय को, अतर दभके आप॥

'धीर पुण्डीर' समय प्रासगिक कथा पर आधारित है। इसमे धीर पुण्डीर द्वारा परीक्षा हेतु बनवाये गये अष्ट धातु के स्तम्भ को उखाड़ देना, प्रतिज्ञा करके

शहाबुद्दीन को युद्ध मे बाँध कर पृथ्वीराज के समक्ष उपस्थित करना एव धीर पुण्डीर की विश्वासघात द्वारा मृत्यु की कथा वर्णित है।

शाह के दरबार मे गोरी और धीर पुण्डीर का संवाद रावण-अंगद सवाद की याद दिलाता है। इसमें कवि ने धीर पुण्डीर की चारित्रिक विशेपताओं को उभार कर उसके निर्भीक एवं ओजस्वी स्वरूप को प्रस्तुत किया है। शाह के पूछने पर कि तू मुझसे क्या माँगना चाहता है ?, उसका कथन—

असपत्ति सेनु बल गंजिहौं, धीरु नाम तद्दिन लहौ।
वासव पसाव तद्दिन लहौ, जब सु साहि जीवत गहौं॥ — इसके

उदाहरण स्वरूप दिया जा सकता है।

कहीं—२ कवि ने बहुत ही सुन्दर लोकोक्तियों का भी प्रयोग किया है। जैसे—

हास अम्र किय राज, वक्र मुख भौह नचि चख
असपत्ति सेन भजिय नृपति, गहन ग्रव्व धीरह वहै।
चलि सकट छाँह नीचे भुखन, वहन भार गरुअत वहै॥

यहाँ धीर की वीरता पर द्वेपी व्यक्तियों का मुँह बनाना, भौहे और आँखों को नचाते हुए हँस कर ताना देना कुटिल व्यक्तियों के स्वाभाविक मनोभावों को व्यक्त करता है। इस कथन में कि 'शाह को पकड़ने का गर्व धीर इस प्रकार करता है, जैसे गाडी की छाया में चलने वाला श्वान भौंक कर बताता है कि गाडी का गुरु-भार मैं ही वहन करता हूँ'—लोकोक्ति का अच्छा प्रयोग किया गया है।

पृथ्वीराज रासो को हम शास्त्रीय-भाषा में पौराणिक (Classic) आख्यान-काव्य कह सकते हैं। क्या विपय निर्वाचन, क्या चरित्रोद्घाटन और क्या शैली—सभी दृष्टियों से महाकाव्य की शास्त्रीय सीमा-रेखाओं के बंधन का अक्षरश पालन कर के रासोकार ने पौराणिक-शैली की मर्यादा निभाई है। अन्य समयों के समान ही कवि ने 'अन्तिम युद्ध' की कथा को भी संवादात्मक रूप दिया है, जो पौराणिक शैली है। यह कथा (१) कविचन्द-कवि-पत्नी उमा, (२) शिव-यक्ष और (३) सयोगिता-गिद्धनि-डाकिनि के सवादों के रूप मे कही गई है। यह परम्परा पौराणिक युग से लेकर आज तक किसी न किसी रूप में चली ही आरही है।

इसके अतिरिक्त रासो में जितनी भी स्तुतियाँ हैं, वे सभी हमें पौराणिक देव-स्तुतियों की याद दिलाती हैं।

कवि ने जिस प्रकार रासो के अन्य समयों में अतिलौकिक-प्रसगों की अवतारणा अत्यन्त बहुलता से की है उसी प्रकार 'अन्तिम युद्ध' समय का प्रारम्भ भी चित्तौड़ेश्वर रावल समर और पृथ्वीराज के स्वप्न में भूदेवी-दर्शन से किया गया है। रावल समर को स्वप्न मे पृथ्वीराज की धरा-वधू शुक्ल-धौत वसना, खिन्न वदना, संतप्ता एवं अश्रु विगलिता दिखाई दी। पृथ्वीराज ने भी जब यही स्वप्न देखा तो उन दोनों के प्रश्नोत्तर इस प्रकार हुए—

का तूं सुन्दरि हुं धरा किम हिता, इच्छा परा वांछ्ता।
कीं वांछा वर राज को वर रुची, दातव्य रूपा नवा॥
न नं नं त्रप जान दान रुचय, रुपान विद्रत्तया।
खड्ग धार सु मार दुत्तर अरि, सो मैं वर सुन्दर॥

यहाँ कवि ने जहाँ एक ही छन्द में पृथ्वीराज और पृथ्वी के प्रश्नोत्तरों को सीमित कर देने का लाघव दिखाया है, वहाँ 'वीर भोग्या वसुन्धरा' की उक्ति को चरितार्थ करने के साथ ही साथ पृथ्वीराज की विलासिता और शक्तिहीनता की ओर भी संकेत कर दिया है। रावल समर के सामने "पहुं अच्छ वधू वीरह तनी, सो तन गोरी संग्रहैं" से 'दीनता' एव पृथ्वीराज के सामने "इच्छा परा वांछिता" और "खड्गं धार सु मार दुत्तर अरि, सो मैं वर सुन्दर" से 'अवज्ञा' का भाव प्रकट करके कवि ने रावल समर विक्रम और पृथ्वीराज की चरित्रगत विशेपताओं को स्पष्ट किया है।

पृथ्वीराज के अपकर्ष का कारण संयोगिता थी, इस तथ्य को सिद्ध करने के लिए महाकवि चन्द ने निम्न कथन का सहारा लिया है-

का कलहतरि नारि, धारि अन्नी घर मम्मे।
रवि समान प्रथिराज, गिल्यौ गोरी जिमि सम्मे॥

यहाँ सूर्य स्वरूपी पृथ्वीराज को संध्यारूपी सुन्दरी संयोगिता द्वारा निस्तेज कर देने का कथन करके कवि ने प्रभाव-साम्य दिखाकर अत्यन्त उपयुक्त उपमा की नियोजना की है।

इसी प्रकार कविचन्द और गुरुराम के एक ही रथ पर आरूढ़ होने की कल्पना विरोधाभास का सहारा लेकर अत्यन्त विलक्षण बन पड़ी है—

एक रथ्थ आरूढ़िय सरद दिन इंद मनोहर।

शरद्-प्रभा और प्रखर सूर्य मे विरोध होता है, किन्तु शरद्वत् कवि चन्द की अमृतवाणी और सूर्यवत गुरुराम के प्रखर तेज का अर्थ लेने पर विरोध का शमन हो जाता है।

इसी प्रकार 'गौरी रत्तौ तुअ धरणि, तू गौरी रस रत्त' मे यमक अलकार का सहारा लिया गया है, जो शाह के दिल्ली पर चढ़ाई कर देने पर भी पृथ्वीराज के कामानुरक्त रहने का स्पष्ट करता है।

विषयानुरक्त व्यक्ति अपने गुरुजनों के उद्‌बोधन वाक्य नहीं सुनता उलटा वह उन्हीं पर निष्क्रियता का दोषारोपण करता है—यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है। इस सत्यता का अनुभव उस समय होता है जब कविचन्द और गुरुराम द्वारा भेजे गये पत्र को पृथ्वीराज ने फाड़ दिया और क्रोधावेश मे कहा कि वदीजन और ब्राह्मण पृथ्वी की रक्षा क्या कर सकते है ?—'सुनि कग्गर फट्यौ सु कर, वर रक्खें गुर भट्ट।'

कवि की यह विशेषता रही है कि वह 'भावी' को कभी अस्पष्ट नहीं रखता, वरन् स्वप्न, तत्कालीन ग्रहादि-प्रभाव और शकुन-शास्त्र का कथन करके किसी न किसी प्रकार उसे स्पष्ट कर ही देता है। पृथ्वीराज के स्वप्न कथन से भी यही बात लक्षित होती है—

सपनंतर सुंदरिय, रंभ लग्गिय परिरंभह।
तहँ तुअ त्रीय सुकीय तेज अच्छरि रवि गिम्मह॥
तहँ तुम निलि मग्गरौ गहकि करिवर करि जपहि।
तहँ अदिष्ट आरिष्ठ, दुष्ट दानव तन चपहि॥
रहँ तू न हूं न नन अच्छरिय, हर हर हर सुर उप्पज्यौ।
जानौ न देव दैवान मतु, कहन्निम्मानु कह निप्पज्यौ॥

इस छन्द मे स्वप्न के परिणाम स्वरूप रंभा रूपी संयोगिता द्वारा पृथ्वीराज का निस्तेज होना, काल रूपी गयंद का चिंघाड़ना, दानव रूपी शाह द्वारा राजा के

शरीर को दबाया जाना और अन्त में पृथ्वीराज का देव-स्वरूप प्राप्त कर स्वर्गारोहण करना इंगित किया गया है।

गौरीशाह ने दिल्ली पर चढ़ाई करदी, उस समय पृथ्वीराज सयोगिता के साथ सयोग-सुख मे लीन था, किन्तु इसकी सूचना पाकर उसने भी युद्धार्थ उत्साहित होकर रस परिवर्तन कर लिया—

निसि अद्धअ नेहिय पीय तिय, पिय पिय पिय पप्पीह लिय।
पपनिय फरकि अखिय अनखि, उदय अनद सु वीर किय॥

सयोग का मुरली वजाने के बाद वियोग की वीणा के तार झंकृत करना कवियों की विशेपता रही है। सभवत वियोग की इस तप्तवायु में ही विरहिणियों को प्रेम और आनन्द के परमाणु अदृश्य रूप मे ध्वनित होते दिखाई देते हैं। इसीलिए तो कवि चन्द ने भी पहले पृथ्वीराज और सयोगिता के सुख का अतिरेक वर्णित कर, तदनन्तर संयोगिता के विरह का दिग्दर्शन कराया है—

घर घरियार वज्जिग विपम, हलिग हिंदु दल हाल।
दुतिय चन्द पूनिम जिमे, बर वियोग वढ़ि वाल॥

यहाँ 'विषम' शब्द का प्रयोग अत्यन्त भाव-गर्भित है। 'घडियाल को समता विपमता से क्या तात्पर्य हो सकता था, परन्तु नहीं—प्रियतम के प्रवास-हेतुक-वियोग की निर्दिष्टि के कारण लक्षणा-शक्ति का आरोप करके कवि ने सयोगिता की मानसिक अवस्था मे विपमता घटित करके उसे वियोगावस्था का प्रारम्भिक चरण वना दिया है।'[1]

स्वामि-धर्म का पालन करना उस युग का महान् सदेश था। यह वह सत्य था, जिसका पालन करने के लिए क्षत्रिय-वीर हँसते २ अपने प्राणों को समर्पित कर देते थे। चामडराय के वारे में कहा गया कवि का निम्न कथन उस समय का सबसे बडा स्वेच्छा-पालित अधिनियम था—

हथ्थ हतकरी प्रेम की, पाइन वेरी लौन।
गले तोख नृप आन की, छुट्यौ कहत है कौन॥

(१) डॉ० विपिन विहारी त्रिवेदी चन्द वरदाई और उनका काव्य

उनके लिए स्वामि-धर्म की रक्षा हेतु अपना बलिदान कर ख्याति प्राप्त करना मोक्ष से भी बढ़कर था, क्योंकि कवि भी तो यही उपदेश देता रहता है—

हम गल्हवान गल्हा करें, तुम गल्हा लग्गो बुरी।
म्रत लोक जीव जम पंजरैं, तुम जानो छुट्टै दुरी॥

क्षत्रिय-धर्म, राज धर्म और सेवा धर्म का पालन करने वाला ही सुपथ गामी कहा जाता था। मोक्ष-मार्ग की ओर अग्रसर होने के लिए इन्हीं तीनों महामंत्रों से दीक्षित होना आवश्यक था। इन तीनों धर्मों की महत्ता बताते हुए 'राजध्रम्म भ्रत-ध्रम्म ध्रम्म छत्री सा लोकिय' के ज्ञाता रावल समर केशरी ने भी कहा है—

भ्रित जु स्वामि सू रत्त, नीय न्यदा न प्रगासिय।
अहि निसि बच्छहि मरण, सुपहु सकुरै निवासिय॥
हा हंस हंस मंडल सरैं, मन अनंत अंतहि रुरत।
सा मत स्यघ रावलु चवैं, सुग त मुगति लभ्भै तुरत॥

वैसे तो मोक्ष-प्राप्ति हेतु अन्य वेदादि साधन-मार्ग भी है, किन्तु इन वीरों के लिए वह किस काम का, क्योंकि—

वेद मग्ग उथ्थापि, मग्ग थप्पे वर धार।
जोग मग्ग ... न, क्रम्म नक्खै भरतार॥

वेद-कथित योग-मार्ग द्वारा न तो ईश्वर से शीघ्र ही साक्षात्कार हो सकता है और न अपने कर्मों का नाश ही। खड्ग-मार्ग पर चलने वाला प्राणी तो शीघ्र ही अपने कर्मों से छुटकारा पाकर ईश्वर के सान्निध्य में निवास प्राप्त कर लेता है।

अन्तिम युद्ध बड़ा विनाशकारी हुआ। दोनों सेनाओं के अनेकों मीरों और सामन्तों ने युद्धस्थल में अपनी आहुति देकर स्वर्ग-लोक में हूरों और अप्सराओं को वरण किया। यही नहीं, परम पराक्रमी रावल समर विक्रम भी विकट युद्ध करते हुए खेत रहे। सूर्य स्वरूपी चित्तौडेश्वर और सूर्य के एक साथ ही अस्त हो जाने से दर्शक चकित होगये। उन्हें यह ज्ञान भी नहीं हो सका कि सूर्य अस्त हुआ है या सूर्य स्वरूपी रावलजी-

असवार सनाहति अस्सु वर, धार पार होइ उत्तरिय।
चित्रग राइ रावर समर, बिहुन अस्त समझि न परिय ॥

सामन्तों और रावल समर के मारे जाने पर पृथ्वीराज ने प्रचण्ड युद्ध किया। युद्धस्थल में विरहिणी संयोगिता का संदेश सुनकर उसका मन तनिक भी विचलित नहीं हुआ। उसने संदेश-वाहक की भर्त्सना करते करते हुए कहा—

निवर पिम सकरिय, सबर सकर गल लज्जिय।
छल वल कल छुट्टै न, जानि जिम वाल सु लज्जिय ॥
तुग काम नाम केहरि कमल, सार धार चढ्ढौ विमल।
पल चरिय जाइ जोगिणी पुरह, कहै कथ्थ गिद्धिनि सकल ॥

इन पंक्तियों को पढ़कर सहसा विश्वास नहीं होता कि प्रेम की शृङ्खला से बढ़कर लज्जा रूपी शृङ्खला को स्थान देने वाला पृथ्वीराज एक समय 'जर जोवन तन मद, तुग तेजी रन रत्तौ' होगया था। किन्तु सत्य यह है कि महाकवि चंद ने पृथ्वीराज के चरित्र को शृंगार और वीर की चरम सीमा का अतिक्रमण कराके उसके 'कामी और कलही' नाम को सार्थक किया है। 'इस पत्र का उत्तर और युद्ध का समस्त वृत्तांत तो दिल्ली को आमिष-भक्षी गिद्धनियां जाकर सुनाही देंगी'—इस कथन में एक ओर जहां ओज व्यञ्जित होता है, वहां दूसरी ओर यह कथन आगामी दृश्य की कारुणिक पृष्ठभूमि को भी तैयार कर देता है। सचमुच ऐसे ही वाक्यों में महाकवि की अर्थ-गांभीर्य शक्ति अपने प्रभावोत्पादक रूप में दिखाई पड़ती है।

'विधि-विधान अमिट होता है'–नियति-विश्वासी कवि इसको खूब जानता था, इसीलिए तो उसने कहा है—

दिन्न पलटे पलट्यौ न मनु, भुज वाहे सब सस्त्र।
अरि मिट्टैं मिट्टै कवन, लिख्यौ विधाता पत्र ॥

'दिन पलट गये', इसलिए तो पृथ्वीराज—'सावन वदि पंचमी पंच कर, साईं मिच्छा-इन हन्यौ' के अनुसार श्रावण कृष्णा पंचमी को मुसलमानों द्वारा छल पूर्वक मारा गया। कवि कहता है—

जिहि कारवर अरि भरिय, भरिय करिवर अरि वट्टत।
जिहि सकति मुव सकति, सकति त्रिद्धिय सक कट्टत ॥

जिहि बानावलि बान, प्रान कपहि मद सिंधुर।
तिन मत स्यधुर सुंडि, छड सिर छत्र नृपनि पर॥
जिहि मुख सहाव समुह सहिन, तिहि मुह जपइ गह गहन।
प्रथिराज देव दुग्रननि ग्रह्यौ, रे छत्री गुर ग्रव्व रह॥

पृथ्वीराज और रावल समर की मृत्यु के पश्चात करुण रस का वह मार्मिक प्रसग उपस्थित हुआ है, जहाँ सयोगिता, पृथाकुमारी और अन्य रानियाँ अपने पतियों के शवों को लेकर सती होती है। उस समय उनके वचनों से पुष्पों की सी सौरभ फैल रही थी। वे भूपणों से सज्जित होकर, सोलह शृगार किये, हरि-हरि शब्दोच्चारण करती हुई, पतियों से मिलने का निश्चय कर अग्नि-रोहण करके उस लोक मे चली गई, जिनमें उनके पति गये थे। पृथ्वी पर इस अद्भुत कौतुक को देख कर आकाश से (देवताओं का) धन्य-धन्य शब्दोच्चारण होने लगा—

प्रथा मध्य सह गवनि, रजनि सज्जिय सु राज दह।
सघन कुसुम सुर वास, सिलिय मुख गु ज मुंज तह॥

× × ×

भूखन सयन बिराजि सज्जि स्यगार सकल तन।
मन अनत उद्धरिय, करिय हरि हरि जु दान दिन॥
जह जह सु थान सुनि प्रिय गवन, न करि विरम मन धरिय ध्रुव।
धनि धन्य सह आयास हुअ, लखि कौतग अनभूत भुव॥

यह सती प्रसग करुण रस का अत्यन्त मार्मिक स्थल है। 'वीर हिन्दू नारी का आत्मोल्लास से जलती हुई अग्नि-चिताओं मे प्रवेश परम प्रशान्त पर अति मर्म-भेदी है। यह आत्मोसर्ग की पूर्णाहुति स्वतन्त्र भारत की हिन्दू ललनाओं का चरित्र विशेष था। स्वतन्त्रता की महान देन सामन्त युग मे स्त्रिया के इस आदर्श बलिदान के रूप में सुरक्षित था।''

अन्तिम छन्द मे कवि ने कहा है कि उस समय दिल्ली के विषम शिला की युद्ध-ख्याति का विस्तार हुआ। उस ख्याति को एकत्रित कर सरस्वती भी अपने स्थान को चली गई और साथ ही सूर्य के रथ ने भी विश्राम प्राप्त किया—

विध्थरिय वत्त जुद्धह सयल, जुग्गिनिपुर वासर विखम।
संपत्त थान सुरसतिय जुरि, रह सु रव्वि क्यन्नौ विरम॥

यहाँ 'सरस्वती ने विश्राम किया' कह कर कवि ने लाक्षणिक-शैली में अपनी लेखनी के विश्राम करने और ग्रन्थ समाप्ति को सूचना दी है।

इस समय में कहीं-कहीं मुहावरों और लोकोक्तियों के भी वड़े सफल प्रयोग हुए हैं जो कवि की लोक-जीवन में गहरी पेठ सूचित करते हैं। जैसे—'केहूनाँ घर जरै, हाथ सेकैं को आइय'। यही नहीं, कहीं-कहीं तो पूरा दोहा ही मुहावरों की पिटारी वन गया है। जैसे—

औलौ रक्खि न अङ्ग करि, वड्डे वोल न वोल।
तौ सिर रक्खै दाहिमा, ढिल्ली हद्दे ढोल॥

रासो में दार्शनिकता—

काव्य और दर्शन मे घनिष्ट सम्बन्ध रहा है, इसीलिए तो मनीषि कवि तत्व-चिंतक भी होता है। वह जीवन और जगत्, माया और ब्रह्म आदि के वारे में जो कुछ भी सोचता है, उसे काव्य के उपादान द्वारा प्रकट करता है। किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि उसका काव्य केवल वौद्धिक विचार-धारा और रूखी-सूखी तार्किक-शैली में दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने वाला ही वन जाय। सच तो यह है कि महाकवि अपनी गहन भावाभिव्यञ्जना में प्रसगवश वौद्धिकता का समावेश कर उस काव्य को अधिक उपयोगी और प्रभावोत्पादक भी वना देता है।

महाकवि चन्द ने भी रासो में अपने दर्शन सम्बन्धी विचारों की अवतारणा की है, किन्तु चन्द का लक्ष्य दार्शनिक सिद्धान्तों की व्याख्या करना नहीं था। अत इस ग्रन्थ मे अधिकतर वे ही विचार प्रस्तुत हुए हैं, जो तत्कालीन समाज के अनुकूल मान्य हो सकते थे। यथा—

कवि सुख-दुःख का जीव से, जीव का मन से, मन का स्वामि-धर्म से और स्वामि-धर्म का मोक्ष से सम्वन्ध वताता है—

सुख अन्तर दुःख होइ, दुखह अन्तर सुख पाइय।
सुख दुख वंध्यौ जीउ, जीव वध्यौ मनु गाइय॥
मनु स्वामि ध्रम्म वंध्यौ रहै, स्वामि धरम वंधिय सुगति।

काल की व्याल से उपमा सभी तत्व-चिंतकों ने दी है। मृत्यु अवश्यभावी है, जो ससार मे सभी को ग्रस लेती है और सारा वैभव यहीं पडा रह जाता है—

काल व्याल ससार, ग्रसै मत्र रिद्धि लोक रह

कवि इसी बात को एक दृष्टान्त देकर भी समझा देता है कि मृत्यु निश्चित है और जहाँ लिखा होता है, वहीं शरीर का पतन होता है—

सुनि हमीर इक उलुक, गरुर गाढी मित्राई।
ता उलूक हा देखी, गरुर जोरा मुसकाई॥
तब उलूक भै भयौ, गरुर अग्गे कर जोरै।
मोहि तहाँ लै जाहु, जहाँ कोइ जीउन तोरै॥
धरि पख ढकि साइर गुहा, तह बिलाउ भख्खह भरण।
सनमथ देह जथ्थह परण, मिटै न सो राजन मरण॥

दर्शनाचार्यो ने जीव की चार अवस्थाएँ बताई है—जागृत, सुषुप्त, स्वप्न और तुरिय। वे मोक्ष को ही जीव का चरम लक्ष्य समझते है। यह मोक्ष या मुक्ति भी तीन प्रकार की होती है—सामीप्य मुक्ति, सारूप्य मुक्ति और सायुज्य मुक्ति। महाकवि चन्द ने भी योगीन्द्र उपाधिधारी रावल समर विक्रम के मुख से मुक्ति के इन सभी रूपों की व्याख्या कराई है। उनके विचार मे सामीप्य मुक्ति प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित मार्ग का अनुसरण करना आवश्यक होता है—

वेद नीति पर चलै, स्वामि ध्रम्मह नन चुक्कै।
जोग विद्ध जोगवै, आप हरि ध्यान न मुक्कै॥
सबद जोति रहै लीन, ध्रम्म ब्रत बासर क्रम्मै।
जुद्ध काल सपत्त, आय अरि खुत्तह ध्रम्मै॥
सकलाप सीस मार्ई सरिस, मनह निरजन जोति द्रग।
मधि रचै मूर विग्रह सुमन, एह मुगत्ति सामीप मग॥

सारूप्य मुक्ति का मार्ग अति कठिन है, इस पथ पर तो विरले ही चल सकते है, क्योंकि इसमे तो प्राणी को अपने शरीर का खण्ड २ कर देना, मस्तक को शिव की मुण्ड माला के लिए समर्पित कर देना और अन्तिम समय निराकार मे ध्यान लगाना पडता है—

नाओं में चौदहवीं से सौलहवीं शताब्दी का सास्कृतिक पुनर्जागरण प्रतिबिम्वित हुआ है और सामान्य जन समूह की आशाओं–आकाक्षाओं का उभार लक्षित होता है, इस तरह पृथ्वीराज रासो मे नहीं मिलता। वस्तुत' वह पृथ्वीराज तथा उससे सम्बन्धित राजाओं और सामतों के प्रणय तथा युद्ध विषयक सम्बन्धों के माध्यम से उस युग के ह्रासोन्मुख उपरले समुदाय की वास्तविकता प्रकट करता है।"[1] अप्रत्यक्ष रूप से—वीर गाथा काल में लोक-जीवन का स्पन्दन केवल सामाजिक जीवन को आन्दोलित और अस्तव्यस्त कर देने वाले युद्धों की प्रतिध्वनि में देखा जा सकता है, क्योंकि मुस्लिम आक्रमण तत्कालीन हिन्दू भारत के सांस्कृतिक जीवन को आमूल चूल हिला डालने वाले थे, अत' उनसे लोहा लेने वाले राजाओं के प्रति प्रशस्तियाँ लिखना देश–रक्षक के प्रति प्रशस्ति लिखना था। यह बडे आश्चर्य की बात है कि जो समुदाय भारतीय सस्कृति की रक्षा हेतु प्राण–पण से जुटा हुआ था कवि की लेखनी द्वारा रासो मे अनजाने ही उसकी ह्रास युगीन संस्कृति अत्यन्त उभर आई है। "इस प्रकार पृथ्वीराज रासो संत–भक्ति काव्य की भाँति सामान्य जन–जागरण की उत्थान शील भावना का प्रतिविम्व न होते हुए भी ह्रासोन्मुखी सामती शक्तियों के अन्तर्विरोध का चित्रण करने वाला महाकाव्य है।"[2]

जिस युग में रासो लिखा गया, "वह लड़ाई–भिड़ाई का समय था, वीरता के गौरव का समय था। और सब बातें पीछे पड़ गई थीं।"[3] वीरता का गौरव स्वामि-धर्म का पालन करने हेतु युद्ध करते हुए वीर गति पाकर कीर्ति प्राप्त करने में था, क्योंकि मृत्यु उस समय भय की वस्तु नहीं समझी जाती थी। युद्ध मे विजय प्राप्त करने पर राज्योपभोग, किन्तु मृत्यु प्राप्त करने पर भी स्वर्ग में सुरांगणाओं से आलिंगन करने की आशा उनके लिए विशेष आकर्षण की वस्तु थी। रासो का प्रत्येक पृष्ठ ही नहीं, अपितु उसकी प्रत्येक पक्ति इन्हीं भावनाओं से ओतप्रोत है। इतना होते हुए भी 'कनवज्ज' समय में एक स्थल पर कन्ह के वचनों में कवि द्वारा

---

(१) हजारीप्रसाद, नामवरसिंह— स० पृथ्वीराज रासो

(२) वही " " "

(३) रामचन्द्र शुक्ल— हिन्दी साहित्य का इतिहास

अनजाने ही 'निरर्थक रक्त-महार' की भावना दबी हुई वाणी मे व्यक्त हो ही गई है, जो तत्कालीन राजाओं के विलासी और युद्ध-प्रिय चरित्र को स्पष्ट कर देती है —

तुमहि कहो तिनि राज प्रेम कारण काम कस।
हम काज आज सिर उप्परे, खग्ग धार भारौ सु खल।

यहाँ तुम ही इस राजा से पूछो कि इस प्रेम के हेतु कौनसी काय सिद्धि हुई है ?' और 'हमारा कार्य तो हमे करना ही है' आदि वाक्य हमारे उपर्युक्त कथन की पुष्टि हेतु पर्याप्त है।

ह्रास युगीन सामती व्यवस्था के स्पष्ट चित्र तो हमे सयोगिता-हरण के बाद बराबर मिलते रहते है राजाओं के विलासी जीवन का चित्रण निम्न उद्धरणों मे कितना यथार्थ बन पडा है —

कहु कामिनि सुख रति समर, त्रिपनिय नींद निवार।
× × ×
सुरख सुखब मृदग तल्ल जघन, राग कला काकन।
कठी कठ सुभासने सम जित, काम कला पोपन॥
उरभी रभकि ता गुन हरि हरो, सुरभीय पवन-पता।
एव मुक्खह काम कुभ गहिता, जय राज रात्र गता॥

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि राजागण विलासी होने के कारण वैश्याओं के नृत्य-गानों में उलझे रहते थे अत ऐसी कोई बिरली ही भाग्यशालिनी रानी होती थी, जो रात्रियों मे रति-रण का सुख प्राप्त करती हो, अन्यथा राज्य-पत्नियाँ तो बहुधा वियोग का अनुभव कर जागते हुए ही रात्रियाँ बिता देती थीं।

सयोगिता को प्राप्त करने पर पृथ्वीराज को अभिमान होगया। विलास और अभिमान-इन्हीं दोनों दुर्गुणों से पृथ्वीराज का पराभव हुआ। पृथ्वीराज के पतन का द्योतक निम्न छद कितना उपयुक्त बन पडा है—

इक जोवन धन मद, मद राजन मद वारुनि।
अरु मद देह अरोज, सग नव बनिता तारुनि॥
अरु बधन पतिसाह, पैज कनवज्ज सँप्रिया।
एते मद राजान, दुमय दद्दह करि दूरिय।

पियै सकति धर श्रोन, ग्यंड पावक आहारैं।
साइ समप्पै प्रान, सीस हर · सकर धारै॥
अत टुट्टि पय चॅपहि ग्यड लुट्टहि पल गद्धिय।
जय वंछै निज स्वामि लगै तातो मन वच धिय॥
मडलह हस हसह जुरै, जीय जोग गति उद्धरै।
निरकार ध्यान राखै सुणिज, इमि भव सारूपह तिरै॥

सायुज्य मुक्ति के लिए इससे भी कड़ा विधान है। इसको प्राप्त करने वाला प्राणी काम, कोध, मदादि से रहित होता है। उसे घर और शरीर के हिताहित की चिन्ता नहीं होती है। वह निन्दा और स्तुति को समान समझता, स्वामि धर्म का स्मरण करते हुए युद्धस्थल मे विचरण करता, शत्रुओं को तृण तुल्य समझता और अनहद नाद मे मतवाला होकर मृत्यु को चाहता है—

त्रवर भूत भव सकल, अकल आनन्द रल न मन।
काम कोध मद रहित, अहित हित चित्त ग्रेह तन॥
निन्दा अस्तुति समति, रमति स्वामित्त समर रत।
लज्जा धर कर वत्र, अंक वत्र ग अरि न गत॥
जप्पौ सु एम जामानि जद, अनहद सद मत्ता मगन।

इन वर्णनों को पढने से ज्ञात होता है कि कवि ने मुक्ति सम्बन्धी दार्शनिक-प्रसगों की क्षत्रियोचित् परिभाषा की है, जो अत्यन्त मौलिक वन पड़ी है। वीरता के उस युग में मुक्ति-मार्ग की ऐसी व्याख्या सचमुच ही क्षत्रियों के हृदय मे असीम साहस और स्वामि-धर्म के लिए मर-मिटने की अमर प्रेरणा देने वाली सिद्ध हुई है।

रासो और उसका युग—

'पृथ्वीराज रासो' अपने युग का पूर्ण इतिहास है। इसीलिए वार्ड ने 'हिस्ट्री ऑफ लिटरेचर एण्ड माइथोलोजी ऑफ हिन्दूज' मे लिखा है— 'इस काव्य में भारत के मुस्लिम आक्रमणकारियों से लोहा लेने वाले हिन्दू सम्राट का वर्णन है। पृथ्वीराज के समकालीन उत्तर भारत के कई राजाओं के विस्तृत वर्णन जो और

कहीं नहीं मिलते, इस काव्य मे पाये जाते है। संक्षेप मे कहा जा सकता है कि बारहवीं शताब्दी के भारत का यह पूर्ण चित्र है।" हिन्दी के इस महाभारत में हमे तत्कालीन सांस्कृतिक जीवन का पूर्ण प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। जहाँ एक ओर गुप्त साम्राज्य के ध्वस्त होने पर समस्त उत्तरापथ विभिन्न राज्यों में खण्ड-२ होकर परस्पर द्वेष से जर्जरित होरहा था, वहाँ दूसरी ओर मुसलमान भारत की उत्तर-पश्चिमोत्तर सीमा से अनवरत रूप से आक्रमण करते हुए देश का विनाश करने में और भी सहायक हो रहे थे। रासो में राष्ट्र की इसी दयनीय राजनीति-जीवन की स्पष्ट झाँकी मिलती है। इसमे अजमेर और दिल्ली के अन्तिम परम पराक्रमी हिन्दू नरेश पृथ्वीराज, उनके सहयोगी बहनोई योगीन्द्र उपाधि-धारी रावल समर विक्रम तथा महान् प्रतिद्वन्द्वी मुस्लिम आक्रमणकारी शहाबुद्दीन गौरी, कान्य-कुब्जेश्वर जयचन्द और गुर्जरेश्वर भीमदेव चालुक्य में परस्पर होने वाली युद्ध की घटनाओं के विस्तृत वर्णन किये गये हैं। शुक्लजी का निम्न कथन "लडाई किसी आवश्यकता वश नहीं होती थी, कभी-कभी तो शौर्य-प्रदर्शन मात्र के लिए यों ही मोल ली जाती थी", उस युग के राजनीतिक जीवन का सच्चा निदर्शक है। हाँ! इस शौर्य-प्रदर्शन के साथ 'शृंगार' का भी पुट अवश्य रहता था। हिन्दी-साहित्य का प्रारम्भ इन्हीं 'युद्ध और प्रेम' मिश्रित वीर-गाथाओं से हुआ है। वीर-गाथा का यह युग, जिसका दायित्व मुख्यत विदेशी आक्रमणों पर रखा जा सकता है, अनायास घटित घटना नहीं माना जायगा। इसका सम्बन्ध पूर्ववर्त्ती जीवन और तत्फलित समाज से भी है। पूर्वागत राज-यश वर्णन और राज-स्तुति ही इसके मूल मे है। युद्धों के प्राचुर्य से जीवन की अन्य वृत्तियों पर आवरण चढ गया और वे सो गई। इस युग से पूर्व के सामाजिक जीवन में रमी हुई शृंगार भावना और धार्मिक अनुभूतियाँ तत्कालीन समाज की आवश्यकता के कारण वीरता के निनाद मे प्रच्छन्न होकर अन्दर ही अन्दर गुप्त रूप से अग्रसर होती रहीं और इस वीरता के युग की समाप्ति पर पुन अंकुरित और प्रस्फुटित होकर हो रहीं, अन्यथा इस युग में तो वीरता का जय-घोष जीवन की ऊपरी सतह पर छा गया था और शताब्दियों तक छाया रहा। प्रत्यक्ष रूप से—सामती-संस्कृति की हुंकार मे लोक-जीवन का स्पन्दन अस्पष्ट हो गया। डॉ० द्विवेदी का निम्न कथन इस बात की पुष्टि करता है—"जिस प्रकार कबीर, जायसी, सूर, तुलसी आदि की रच-

आनन्द कंद उमगे तनह, सजोगी सर हस सरि।
जानै न राज अस्तम उदय, महि जीवन मानै सुपरि॥

पृथ्वीराज के कामांध होजाने पर समुद्र स्वरूपी गभीर सामन्त भी मर्यादा को लोपने लग गये— यह बात 'धीर पुण्डीर' समय में स्पष्ट की गई है—

राज मद्धि मरजाद, समुद हद लोपन लग्यो।

सामंतों में इसी मर्यादा के नष्ट हो जाने से उनमे न तो पहले जितना शौर्य ही रहा और न राज्य-रक्षा की वह श्रेष्ठ मन्त्रणा ही रही जो उन्हें हमेशा विजय-श्री दिलाने में सहायक होती थी। यही नहीं, उनमे सत्य का भी ह्रास होगया— 'मत्ता न घत्त सत्ता रहौ।' उस समय यही स्थिति सारे उत्तर भारत की थी। चारों ओर ह्रास के लक्षण दृष्टिगोचर होने लग गये थे। ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो सारा सामन्ती-जीवन जर्जरित होकर अपनी अन्तिम साँसे गिन रहा हो, क्योंकि—

मद राज मालदे, दोप त्रिय तन असखि भौ।
लौहानौ आजानबाह, अजमेरि द्रुग्ग गौ॥
पा वस रा-पट्टनी, मही महि सार निरत्तौ।
जर जोवन तन मंद, तुंग तेजी रन रत्तौ॥
दाहिम्म दोह वंछे विषम, चरन त्रीर वेरी वहन।
घरु घालि भट्ट सूतौ थरह, सुबर विप्र तोही कहन॥

जयचन्द का स्त्री-दोष (उप-पत्नी) के कारण निर्लज्ज हो जाना, लोहाने का राज्य की बुरी दशा देखकर अजमेर जाकर रहने लगना, भोलाभीम का आपस मे लोहा लेने में लीन रहना, पृथ्वीराज का काम-ज्वर से शिथिल हो जाना, चामुंड-राय का द्रोही हो उठना और राज-गृह मे कुल-नाशक आपत्ति बसाकर कवि चन्द का भी विमुख हो जाना आदि बातें ऐसी हैं, जो उस युग का स्पष्ट चित्र अंकित कर देती हैं।

इस ह्रास युगीन सामंती व्यवस्था का अन्तिम स्तभ भी पृथ्वीराज की मृत्यु के साथ टूट पड़ता है। इसीलिए उत्तर-भारत के पराक्रमी हिन्दू-सम्राट के पतन के साथ ही कवि अपनी लेखनी को भी विश्राम दे देता है।

इस प्रकार साराश मे यह कहा जा सकता है कि रासोकार ने अपने युग की वास्तविकता का अकन करने के लिए "जितने व्यापक क्षेत्र को समेटा है, वह सत-भक्ति काव्य को छोड कर अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। रासो मानव जीवन की विविध परिस्थितियों और भाव-दशाओं का महा सागर है। यही वह विशेपता है जिसने ह्रास युग के सभी काव्यों मे रासो को सर्वोपरि स्थान दिया है। निश्चय ही यह इस युग की सांस्कृतिक परिस्थितियों तथा पूर्व परम्पराओ का वृहद् कोप है और है मध्ययुगीन भारतीय समाज का एक काव्यात्मक इतिहास।"

नरेन्द्र व्यास, एम० ए०

१ हजारीप्रसाद, नामवरसिंह-संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो

॥ श्रीहरिः ॥

सम्पादकीय

महाकवि की देन—

कवित्त

वीरन ने वीरता का रूप लखि पाया तो सौं,
धीरन ने धैर्य तेरी कृति पढ़ि के गहा ॥
प्रेमी प्रेमिकाओं ने पवित्र प्रेम पाठ पढ़ा,
धर्म नीति रस का प्रवाह तुझसे वहा ॥
कवियों ने कविता के भाव भरि पाये तोसौं,
भाषा भाषियों ने भाषाज्ञान तुझ से लहा ॥
तेरा यश चन्द कवि चन्द है विमल सदा,
तेरी लेखनी का सब भारत ऋणी रहा ॥ १ ॥

सहृदय विद्वान जिन्होंने रासो का गहन अध्ययन किया है वे मेरे उपर्युक्त पद्य को कवि कल्पना नहीं मानेंगे। वास्तव मे वीर, धीर, प्रेमी, प्रेमिकायें, धर्मज्ञ, नीतिज्ञ, रसिक, कवि और भाषा-ज्ञान-वेत्ताओं को रासो द्वारा महाकवि चन्दवरदाई की एक मात्र देन है। साहित्य-जगत उसके लिये ऋणी है। व्रज, पिङ्गल, हिन्दी और राजस्थानी-साहित्य उसी की छत्र छाया मे पला है।

रासो का प्रचार यद्यपि भारत वर्ष के कोने कोने मे था, इसीलिये "रासो ग्रन्थ" आज भारत के प्रत्येक स्थान से उपलब्ध होता है। फिर भी कहना पड़ेगा कि "रासो" का अधिक प्रचार राजस्थान में रहा। कारण कि हिन्दुस्तान मे राजस्थान ही एक ऐसा प्रदेश है जहाँ की भूमि वीर प्रस्विनी मानी जाती रही है। यहाँ पर आज से अर्ध शताब्दी पूर्व तक तलवारों की खनखनाहट, भालों की चमचमाहट, तीरों की सनसनाहट, एवं तोपों की गड़गड़ाहट और वीरों की हुँकार होती रही है।

१—राजस्थान में बहुत समय से पूर्व ही वीर काल समाप्त हो गया था, किंतु मेवाड़ में महाराणा फतहसिंह तक वही पुरानी आन, बान और शान के साथ ही क्षत्रिय गौरव भी बना रहा है। उनका आखेट दृश्य वीर कौतुक की पूर्ति करने वाला था। उनकी धर्म कर्म में प्रवृत्ति प्राचीन राजर्षियों की स्मृति दिलाने वाली थी। उसी का कुछ स्वरुप स्व० महाराणा भूपालसिंहजी में भी था।

इस प्रकार सारांश में यह कहा जा सकता है कि रासोकार ने अपने युग की वास्तविकता का अंकन करने के लिए "जितने व्यापक क्षेत्र को समेटा है, वह संत-भक्ति काव्य को छोड़ कर अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। रासो मानव जीवन की विविध परिस्थितियों और भाव-दशाओं का महासागर है। यही वह विशेषता है जिसने ह्रास युग के सभी काव्यों में रासो को सर्वोपरि स्थान दिया है। निश्चय ही यह उस युग की सांस्कृतिक परिस्थितियों तथा पूर्व परम्पराओं का बृहद् कोष है और है मध्ययुगीन भारतीय समाज का एक काव्यात्मक इतिहास।"

नरेन्द्र व्यास, एम० ए०

---

१ [illegible]

॥ श्रीहरिः ॥

सम्पादकीय

महाकवि की देन—

कवित्त

वीरन ने वीरता का रूप लखि पाया तो सौं,
 धीरन ने धैर्य तेरी कृति पढ़ि के गहा ॥
प्रेमी प्रेमिकाओं ने पवित्र प्रेम पाठ पढ़ा,
 धर्म नीति रस का प्रवाह तुमसे बहा ॥
कवियों ने कविता के भाव भरि पाये तोसौं,
 भाषा भाषियों ने भाषाज्ञान तुम से लहा ॥
तेरा यश चन्द कवि चन्द है विमल सदा,
 तेरी लेखनी का सब भारत ऋणी रहा ॥ १ ॥

सहृदय विद्वान जिन्होंने रासो का गहन अध्ययन किया है वे मेरे उपर्युक्त पद्य को कवि कल्पना नहीं मानेंगे। वास्तव में वीर, धीर, प्रेमी, प्रेमिकायें, धर्मज्ञ, नीतिज्ञ, रसिक, कवि और भाषा-ज्ञान-वेत्ताओं को रासो द्वारा महाकवि चन्दबरदाई की एक मात्र देन है। साहित्य-जगत उसके लिये ऋणी है। व्रज, पिङ्गल, हिन्दी और राजस्थानी-साहित्य उसी की छत्र छाया से पला है।

रासो का प्रचार यद्यपि भारत वर्ष के कोने कोने में था, इसीलिये "रासो ग्रन्थ" आज भारत के प्रत्येक स्थान से उपलब्ध होता है। फिर भी कहना पडेगा कि "रासो" का अधिक प्रचार राजस्थान में रहा। कारण कि हिन्दुस्तान में राजस्थान ही एक ऐसा प्रदेश है जहाँ की भूमि वीर प्रस्विनी मानी जाती रही है। यहाँ पर आज से अर्ध शताब्दी पूर्व तक तलवारों की खनखनाहट, भालों की चमचमाहट, तीरों की सनसनाहट, एवं तोपों की गड़गड़ाहट और वीरों की हुँकार होती रही है।

१—राजस्थान में बहुत समय से पूर्व ही वीर काल समाप्त हो गया था, किन्तु मेवाड़ में महाराणा फतहसिंह तक वही पुरानी आन, बान और शान के साथ ही क्षत्रिय गौरव भी बना रहा है।
1 उनका आखेट दृश्य वीर कौतुक की पूर्ति करने वाला था। उनकी धर्म कर्म में प्रवृत्ति प्राचीन राजर्षियों की स्मृति दिलाने वाली थी। उसी का कुछ स्वरूप स्व० महाराणा भूपालसिंहजी में भी था।

"रासो" ग्रन्थ यहाँ के बालकों के लिये वीर पाठ की पूर्ति करने वाला रहा है। वे इसी को पढ-सुन कर वीरता को अपने हृदय मे स्थान देते थे। कवियों के लिये भी यह ग्रन्थ पाठ्य पुस्तक के रूप मे था। इसका अध्ययन कर वे अपने आप मे वीर भाव जागृत करते थे।

यों तो महाकवि चन्द वरदाई से पूर्व भी कवि हुए होंगे, किन्तु वे इतने सिद्ध हस्त नहीं हुए और न उनकी रचनाये ही उपलब्ध होती है। अत हमे कवियों एव हिन्दी भाषा को परिमार्जित रूप देने वालों का अगुआ कविचन्द को ही मानना पडता है और उसी की काव्य-शैली तथा भाषा-सम्बन्धी देन स्वीकृत करनी पडती है। यह हम ही नहीं स्वीकार करते बल्कि हमारे से पूर्व उसी का समकालीन "पृथ्वीराज विजय महाकाव्य" का लेखक भी उसे व्यासावतार, "राणा रासो" का रचयिता कवि दयालदास उसे सरस्वती-वरद, "हरि पिंगल प्रबध" का रचयिता योगीदास उसे कालीदास आदि महान विद्वानों की तुलना मे मानता है। "रासो-ग्रन्थ" हिन्दी-साहित्य में विविध भावों और रसों का महान सिन्धु है।

इस चतुर्थ भाग के समयों में निम्न घटनाये वर्णित हैं:—

"कन्नौज समय" की घटना का कारण सयोगिता का प्रेम और जयचद का द्वेष था।

"सुख विलास" की रचना सवत भाव को प्रदर्शित करने के लिये की गई।

"धीर पुण्डीर समय" चन्द पुण्डीर के पुत्र "धीर" की वीरता और सामतों की फूट को प्रकाश में लाता है।

"अतिम युद्ध" से स्पष्ट है कि पृथ्वीराज के विलासी होने से राज्य व्यवस्था डॉवॉडोल हो गई। चामुण्डराय ही खाडेराय था, कैमास मत्री के पुत्र का नाम प्रताप-सिंह था। उपपत्नी के कारण कन्नौजेश्वर मल्लदेव उपाधिधारी जयचन्द की बुद्धि भी मद हो चुकी थी। सामन्तों की युद्ध मत्रणा ऐक्य नहीं थी। शाह ने सन्धि का सन्देश भेजा, उसे पृथ्वीराजने ठुकरा दिया जम्मूपति हाहुली हमीर पृथ्वीराजसे विरुद्ध होगया, पृथ्वीराज ने अपने वडे पुत्र को राज्य पर स्थापित किया, उसका सरक्षक अपने भाई (हरिराज) को बना कर स्वय ने शाह पर चढाई करदी। युद्ध मे चामुन्ड राय (खॉडेराय), आचार्य ऋषिकेश धन्वन्तरि, गुरुराम पुरोहित आदि प्रसिद्ध व्यक्ति एव

मेवाडेश्वर रावल समर-विक्रम अपने तेरह सहस्र वीरों सहित तथा पृथ्वीराज के बहुत से योद्धा युद्ध करते हुए मारे गये। पृथ्वीराज ने भी घमासान युद्ध किया, किन्तु उसके गले मे यवनों द्वारा पाश-रूप में प्रत्यञ्चा डाली गई, जिसे उसके पक्ष वाले वीर पुञ्जराज ने काट दी। पृथ्वीराज ने फिर हमला कर इकत्तीस यवन योद्धाओं को मार दिया पृथ्वीराज के भी दो गहरे घाव लगे। उस अवस्था में भी उसने गौरी शाह को पछाड़ कर घायल कर दिया। अत मे (पृथ्वीराज) मूर्छित अवस्था में पकडा जाकर मारा गया। घायल होने के कारण शाह भी गजनी लौट गया। रावल समर-विक्रम के साथ उसकी रानी पृथा कुमारी एव पृथ्वीराज के साथ उसकी दसों रानियाँ तथा पाँच सौ क्षत्रिय-वीरों के साथ उनकी क्षत्राणियाँ सती हुई। कवि ने इस ग्रन्थ को अ० स० ११६२ (वि० सं० १२५३) में समाप्त किया।

हमने रासा के प्रथम, द्वितीय और तृतीय भाग के सम्पादकीय लेखों मे यथा-स्थान घटनाये आदि का स्पष्टीकरण कर दिया है। यहाँ इतना कहना जरूरी है कि न्यूनाधिक अशों में प्राचीन पुस्तकें, तवारीखें एव लेखादि भी रासो मे वर्णित विषयों को साम्यता रखते हैं[१]।

"पृथ्वीराज विजय महाकाव्य" में लिखी तेजल की पुत्री कर्पूर देवी पृथ्वीराज की विमाता थी चाहुवान वश का मूल पुरुष ब्रह्म यज्ञ समय सूर्य मंडल से अवतरित दिव्य पुरुष था। सोमेश्वर की उपस्थिति मे ही पृथ्वीराज, राज्य कार्य करने लग गया था। उसे बालक लिखा जाना लौकिक रूप में था (वह बिल्कुल बालक नहीं था) पिता की मृत्यु के बाद उसका शासन राम राज्य क रूप में था। उसका छोटा भाई हरराज (रासो के अनुसार हरिसिंह या हरसिंह) भी कवच धारण करने योग्य (युद्ध मे जाने योग्य युवक) हो गया था। पृथ्वीराज ने बहुत सी राजकुमारियों से शादी की थी (बहुत सी राजकुमारियों से प्रेम कर चुका था)। उसके बाद शहाबुद्दीन गौरी (वि० सं० १२३२ के आसपास) चन्द्र मडल-रूपी भारत को राहु रूप बन कर ग्रसने लगा, किन्तु गुर्जर सेना से (वि० स० १२३२ या १२३५ के आसपास)

१—विशेष जानकारी के लिये हमारा 'रासो पर की गई शकाओं का समाधान" नामक लेख पढिये। शोध-पत्रिका भाग २, अक ३, ४।

उसका पराभव (पराजय) हुआ। फिर पृथ्वीराज ने चित्र-भवन मे एक सुन्दरी का चित्र देखा और उस पर वह मुग्ध हो गया। उसे ज्ञात हुआ कि उसी के लिये तिलोत्तमा अप्सरा (सम्भव है "रासो" वाली रभा रूप मे सयोगिता) ने अवतार लिया है। वह प्रेम विह्वल हो गया। अन्त मे जयानक ने पृथ्वीराज के जिस बदीराज को बहुत से इतिहासों का ज्ञाता और व्यास तुल्य कहा है-उसकी रचना व्यास-रचित पुराण-शैली के अनुसार रासो ग्रन्थ और उसका रचयिता कवि पृथ्वीभट्ट (रासो मे उल्लिखित "पहुमि वद्दीजन" पृथ्वी कवि एव "पृथ्वीराय") चन्द ही था[१]।

हम्मीर-काव्य से भी तेजल की पुत्री को पृथ्वीराज की विमाता ही मानना चाहिये। पृथ्वीराज पिता की उपस्थिति मे ही सर्व शस्त्र-शास्त्र का ज्ञाता हो गया था। सोमेश्वर ने उसे अपनी उपस्थिति में ही राज्य पर स्थापित कर दिया था। स्वय सोमेश्वर उस समय वानप्रस्थ अवस्था मे पहुँच चुका था। राज्य पर स्थापित हो पृथ्वीराज न्याय-पूर्वक शासन करता और शत्रु गौरी को दबाने की शक्ति रखता था। उसी समय शहाबुद्दीन ने मुलतान पर (वि० स० १२३२ मे) अधिकार किया और अन्य राजाओ को त्रस्त किया। राजा गण पृथ्वीराज की शरण मे आये एव उसके प्रसिद्ध सामन्त चन्द्र (चन्द्र पुण्डीर या चन्द्र सेन) के द्वारा अपना दुःख निवेदन किया, जिस पर पृथ्वीराज ने चढाई कर शहाबुद्दीन को अनेक बार बदी बना २ कर छोड दिया तथा अतिम युद्ध मे पृथ्वीराज मारा गया[२]।

सुर्जन-चरित्र के लेखक के सामने रासो ग्रन्थ उपस्थित था। यद्यपि प्रारभ में वह सस्कृत भाषा के लेखको की छाया मे चलता है, किन्तु "सयोगिता अपहरण"

१—देखिये-पृथ्वीराज विजय महाकाव्य, सर्ग ९ से १२।

"पृथ्वीराज रासो" में भी अनगपाल के अतिरिक्त तेजल को भी पृथ्वीराज के नाना के रूप में लिखा गया—

"आनद तेज राजा अनग"।

(नाहरराय समय)

२—देखिये —पृथ्वीराज चरित्र की भूमिका, पृष्ठ ६९ से ७२, ले० रामनारायण दुगड।

आदि विषय वर्णन करते समय "रासो" का ही अनुसरण करता है। "रासोकार" ने सयोगिता की माता का नाम "जुन्हाई" लिखा। उसी का पर्याय-रूप "कांतिमति" सुर्जन चरित्र में लिखा मिलता है। कविकंद का भी उसमें स्पष्ट उल्लेख है, इस ग्रन्थ की रचना विं. सं १६३० के आस-पास हुई है[१]।

"प्रबन्ध चिन्तामणि" मे इक्कीस वार गौरी शाह का पृथ्वीराज से युद्ध होना लिखा है वह रासो के अनुसार है। रासो में पृथ्वीराज और गौरी तथा उनके योद्धाओं के युद्धों की संख्या सम्पूर्णत २१ ही है[२]।

"पुरातन प्रवन्ध सग्रह" (रचना काल १२६० लिपि सवत् १५२८, विद्वान मानते हैं। देखो-"महाकवि चद वरदाई अने पृथ्वीराज रासो" लेखक श्री गोवर्धन शर्मा, पृ० १६-१७) में सात वार शाह का वंदी वनाना लिखा है। रासो मे शाह को सोलह बार वदी बनाने का उल्लेख है, जिसमें से सामन्तों की शक्ति द्वारा नव वार और पृथ्वीराज की शक्ति द्वारा छः सात वार शाह पकड़ा गया था। इस तरह पुरातन-प्रवन्ध सग्रह में शाह को पृथ्वीराज द्वारा सात वार पकडे जाने का उल्लेख है जो रासो के अनुकूल ही है[३]। उक्त प्रबन्ध सग्रह में कैमास को पृथ्वीराज ने मारा, उस विषयक तथा रासो के वर्णन सम्बन्धी रासो की ही षट्पदियाँ विद्यमान हैं। जिनसे रासो की रचना इस (पुरातन प्रवन्ध सग्रह) के पूर्व की

१—देखिये—नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष, ४६, अंक ३ [नवीन सस्करण] कार्तिक १६९८ 'सुर्जन चरित्र", ले० डॉ दशरथ शर्मा पृष्ठ २०५ से २२२।

२—देखिये—रासो में पृथ्वीराज और गौरी शाह तथा उनके योद्धाओं द्वारा कुल-युद्ध [हुस्सेन कथा १, आखेट चूक २, सलख युद्ध ३, माधोभट्ट कथा ४, पद्मावती समय ५, धन कथा ६, रेवातट ७, अनग पाल ८ घघर की लडाई ९, पापा प्रतिहार १० जैत्रराय ११, पहाड़राय १२, कैमास युद्ध १३, हाँसी प्रथम युद्ध १४, हाँसी द्वितीय युद्ध और दिल्ली पर आक्रमण करते हुए शहाबुद्दीन को रोकना १५ १६, पज्जून महोवा १७, पज्जून पातशाह १८, दुर्गा केदार १९, धीर पुण्डिर २०, अतिम युद्ध २१]।

३—देखिये-पृथ्वीराज रासो अतिम युद्ध "गहि अड्यो खट्टवार" "वैर सो अप्पु अप्पु कर"। "एक वार दुअ वार, वार रस एक स पविय"।

सिद्ध होती हैं[१]। संयोगिता हरण और जयचन्द के यज्ञ-कथा का उल्लेख पुरातन-प्रबन्ध सग्रह (छपे हुए) मे से जयचद प्रबंध मे स्पष्ट हुआ है। जो रासो के कन्नोज समय के अनुकूल है। पुरातन प्रबन्ध संग्रह मे पृथ्वीराज का एक पुराना मत्री प्रतापसिंह नाम का बताया गया है। जिसके कहने से राजा ने सुलतान की एक लोह-मूर्ति बनवाई थी, रासो मे वह प्रतापसिंह प्रसिद्ध मत्री कैमास का पुत्र लिखा गया है।[२]

नागोर के निकट होने वाले युद्धों की पुष्टि चरलू नामक बीकानेर रियासत के एक ग्राम के शिला लेखों मे से आहड और अम्बराक नामक दो चौहान सरदारों के मारे जाने का लेख स० १२४१ वि० वाला करता है[३]।

"खरतर-गच्छ-पट्टावलि" मे भी पृथ्वीराज और भीम-चालुक्य के युद्ध का उल्लेख रासो की साम्यता रखता है और इसमे वि० स० १२२३ के आस पास दिल्ली का शासक अनगपाल को पर्याय रूप मे मदनपाल लिखाजाना "रासो" की पुष्टि करता है[४]।

"पार्थ पराक्रम व्यायोग" से सिद्ध है कि कुमारपाल (चालुक्य नरेश) ने आबू के राजा विक्रमसिंह के पुत्र (सभव है उसका नाम सलख हो) को वि० स० १२०२ के आसपास आबू की गद्दी से उतार दिया। पृथ्वीराज के समय आबू पर

१—देखिये–मुनिजिन विजयजी द्वारा सपादित 'पुरातन प्रबन्ध सग्रह" पृ० ८६, ८८, ८९ पद्य स० २७५ से २७८।

२—देखिये–राजस्थानी भाग ३, अक ३ जनवरी १९४० "पृथ्वीराज रासो की कथाओं का ऐतिहासिक आधार"। ले० श्री दशरथ शर्मा

इसी के प्रमाण मे देखिये अतिम युद्ध, 'राजा नाम पुँडीरकुल, तनो पुत्र प्रताप" [पुडीर कुल में उत्पन्न "राजा" राजकुमारी, कयमास की स्त्री से उत्पन्न प्रतापसिंह]।

३—देखिये—वही डा० दशरथ शर्मा का लेख।

४—देखिये—मणिधारी जिन चद्र सूरि (ले० अगरचद नाहटा, भँवरलाल नाहटा), पृ० १५ तथा उसी की डा० दशरथ शर्मा लिखित प्रवेशिका, पृ० ४–५ वीणा मध्य भारत हिन्दी साहित्य समिति, इन्दोर), जुलाई सन् १९४३ ई० वर्ष १६, अक ६, पृ० ६२४।

धारावर्ष नामक राजा था। पृथ्वीराज ने भीम चालुक्य के मातहत राजा पर आक्रमण किया था। सभव है विक्रम वंशज सलख जैत्र के पक्ष मे पृथ्वीराज और धारा वर्ष के पक्ष में चालुक्य हो, यह घटना रासो के "भोला राय" समय से सम्बन्ध रखती है[१]।

मदनपुर के मदिर के स्तम्भ वाला वि० स० १२३९ का लेख रासो मे लिखे महोवे के युद्ध की पुष्टि करता है[२]।

रासो के कन्नौज युद्ध मे जो पॉच सामन्त मारे गये थे, उनमे एक निर्वाण वीर भी था, संभव है चाहुवानों में निर्वाण-शाखा का प्रादुर्भाव उसी निर्वाण के नाम पर हुआ हो अथवा वह स्वय निर्वाण शाखा का हो। उस निर्वाण शाखा की पुष्टि खडेले से प्राप्त सं० १५७५ फा० शु० त्रयोदशी का लेख जो कालिआय नामक बावडी की दीवार मे निर्वाण वशी रावत नाथू देव का लगा हुआ है, उससे होती है[3]।

रासो मे पृथ्वीराज के सामतों मे चन्देले क्षत्रियों की अधिक प्रतिष्ठा रही है। चन्देले वंशों के वर्णन के साथ मोंहा चँदेला वीरसिंह-चन्देला आदि का अधिक उत्कृष्ट वर्णन है। अत पृथ्वीराज के सामन्तों और सैनिकों में चन्देले क्षत्रियों के होने की पुष्टि रेवासा के सं० १२४३ मार्गशीर्ष शु० ११ खलु-वाणा ग्राम के चन्द्र-वशी सिंहराज के पुत्र नानक चँदेला के स्मृति-लेखों से होती है[४]।

१—देखिये—राजस्थानी भाग ३, अक ३ "पृथ्वीराज रासो की कथाओं का ऐतिहासिक आधार"-ले० डॉ० दशरथ शर्मा पृ० ५। (हमारे मत से चाहुवान विग्रह चतुर्थ के १२२० वाले लेख के अत में जो "अत्र समये महामत्री राजपूत श्री सलक्षणपाल" लिखा वही रासो वाला "सलख" हो अथवा उसी के वशज जैत्र आदि को वश सूचक शैली के रूप में सलख या सलखानी रासो में लिखा गया हो)।

२—देखिये-पृथ्वीराज चरित्र पृ० ९०, ९१, टि० न० १, ले० श्री रामनारायण दुगड़।

३—देखिये-"वरदा" क्रम स० १ श्रावण २००२ पृ० १३ (रासो के कन्नोज समय को देखिये) "निर्वाण वीर धावर धनी"।

४—देखिये "वरदा" क्रम सख्या १ श्रावण २००२ पृ० १४, १६।

रासो के अनुसार ही कन्नौज के स्वामी जयचन्द के पिता विजयपाल (विजयचन्द) को शक्ति सम्पन्न नरेश हरिशचन्द्र के दान पत्र मे लिखा है।[१] जयचंद के समय के वि० स० १०२६ से १२४३ तक के अनेक ताम्र पत्र उपलब्ध हैं। जिनसे विदित होता है कि दूर दूर के राजा गण जयचन्द की सेवा मे रहते थे। ताम्रपत्रों का यह वर्णन रासो मे लिखे गये जयचद के आश्रत अनेकों राजाओं के होने की साम्यता रखता है[२]।

रासो मे चाहुवान-वश के प्रसिद्ध पुरुप माणिक्यराज का उल्लेख है। उसकी पुष्टि नाडोल के चाहुवान राजा लुण्ढदेव की प्रशस्ति वि० स० १२७७ की आबू पर अचलेश्वर के मदिर पर लगी हुई है, उससे होती है[३]।

रासो मे वर्णित वीर-केशरी–समर–विक्रम को उसके ८ वें वशधर समरसिंह (जो आहड नागदा की शाखा मे से था) के वि० स० १३४२ के आबू वाले लेख मे विक्रमसिंह लिखकर स्थानाभाव से उसका अधिक उल्लेख नहीं किया गया, किन्तु फिर भी उसके शौर्य को इन वाक्यों "तस्य सूनुरथ विक्रमसिंहो वैरि विक्रम कथा निरमाथीत्" (अर्थात् उस चौडसिंह का पुत्र विक मसिंह "विक्रम-केशरी" हुआ जिसने शत्रुओं के विक्रम की कथाओं का लोप कर दिया) मे लिख-कर रासो के अनुसार उसे परम शक्तिशाली बतलाता है[४]।

कुम्भलगढ की (मामादेव वाली) वि० स० १५१७ की प्रशस्ति मे रासो मे वर्णित वीर-केशरी-समर विक्रम की "विक्रम" और "केशरी" उपाधि को मिलाकर उसे "विक्रम केशरी" लिखा है तथा उसके पुत्र का "रणसिंह" नाम कथन करके रासो का अनुकरण किया है[५]।

१—"अजनि विजय चन्द्रो नाम तस्मान्नरेन्द्र।
सुरपति इवभूभृत पक्ष विच्छेद दक्ष"॥—देखिये–जयमल वश प्रकाश, पृ० ४१, टि०, १, ले० ठा० गोपालसिंह, वदनोर।

२—देखिये, वहा, पृ० ४१ से ४३,

३—देखिये–"पृथ्वीराज चरित्र" की भूमिका पृ० २६ टि० न० १, ले० रामनारायण दूगड़।

४—देखिये–उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० १४१, टि० न० १, ले० डा० गौरीशकर हीराचद ओझा

५—देखिये–वही पृ० १४२ टि० न० २—३,

पंडित रामनारायण दुगड़ अपने "राज रत्नाकर" ग्रन्थ पृ० ६०, ६२ में लिखते हैं—एक प्राचीन ख्याति में लिखा है कि रणसिंह पृथ्वीराज का भानजा था। अत उसके अनुसार रणसिंह के पिता विक्रमसिंह (समर-विक्रम, विक्रम-केशरी) प्रसिद्ध चाहुवान पृथ्वीराज की बहिन पृथा कुमारी के पति होते हैं। उक्त ख्याति इस विषय में रासो के अनुकूल है।

कवियों में सूर्य-स्वरूप भक्त शिरोमणि सूरदास का जन्म कितने ही विद्वान वि० सं० १५१५ और कितने ही १५३५ के बाद मानते हैं। वही सूरदास अपने को चंद-वशज लिखकर रासो के अनुसार चन्द को पृथ्वीराज का राज कवि लिखता है[1]।

१—देखिये-"पृथ्वीराज रासो की प्रथम सरसा पृ० ३१, ३२, ले० मोहनलाल विष्णु-लाल पंड्या"।

"प्रथमहि प्रभु जगात (याज्ञिक) मे प्रगट अद्भुत रूप।
ब्रह्मराव विचारि ब्रह्मा राख नाम अनूप॥
पान पय देवी दियो शिव आदि सुर सुख पाय।
कह्यो दुर्गा-पुत्र तेरो भयो अति अधिकाय॥
पारि पायन सुरन के सुर सहित अस्तुति कीन्ह।
तासु वश प्रसिद्ध में भौ चन्द चारु नवीन॥
भूप पृथ्वीराज दीन्हों उन्हें ज्वाला देस।"

आगे चन्द के पुत्र गुणचंद के वंश मे सूरदास अपना होना लिखते हैं और कूप मे गिरने पर ईश्वर का साक्षात्कार होने पर वे वर मांगते हैं—

"हौं कही प्रभु भक्ति चाहत, शत्रु नाश सुभाइ"।

हे प्रभु! आपकी भक्ति और स्वभाविक शत्रुओं (काम-क्रोध-मोहादि) का नाश चाहता हूँ। "कितने ही सज्जनों ने इस पक्ति का अर्थ "मेरे भाइयों को मारने वालों का नाश चाहता हूँ" किया है वह ठीक नहीं। ईश्वर-साक्षात्कार करने वाले महात्मा ऐसी साधारण माग नहीं करते। भगवान ने "सूर को चक्षु दिये, किन्तु वह कहते हैं मुझे अब इनकी आवश्यकता नहीं", 'दूसरों ना रूप देखों, देखि राधा श्याम"। क्या ऐसे महात्मा प्रभु के मिलने पर ऐसी तुच्छ माग कर मागी भूल कर सकते हैं?

अकबर की सभा के प्रसिद्ध कवि गग रचित "चन्द छन्द वर्णन की महिमा" से रासो ग्रन्थ अकबर के समय प्रसिद्ध था, इस बात की पुष्टि होती है[१]।

राणा रासो की हस्त लिखित प्रति स० १६७५ प्रतिलिपि १६४४ मे उसका रचयिता दयालदास लिखता है। 'चन्द द्वारा पृथ्वीराज के यश में जो पद्य रचना हुई, उसमे स्वयं देवी ने साथ दिया था, किन्तु राणा रासो पर मैं अधिक कलम चलाता हुआ भी उस रूप मे इसे कैसे लिख सकता हूँ, क्योकि देवी मेरे साथ नहीं है। इससे राणा रासो का रचयिता पृथ्वीराज का यश गान करके कविचद और उसकी कृति के होने का समर्थन करता है[२]।

उदयपुर राजकीय पुस्तकालय के रासो की हस्त लिखित वि० सं० १७६० वाली प्रति की पुष्पिका के अन्त की दो पट्पदियॉ जो किसी कक्का नामक ("कक्का" शब्द नाम के लिये नहीं लिखकर हमारे मत से काका, चाचा, के लिये प्रयोग किया गया हो ये "राणा अमर प्रथम" के चाचा महाराजा "अगर" हो सकते है जिनका कविता प्रेमी होना, उनके लिये रासो की नकल को जाना है या अन्य किसी के चाचा हों अथवा कक्का नामक कवि भी हो सकता है) कवि ने लिखी है, उसकी पहली पटपदी श्लेष मे है। जिसके तीन अर्थ होते है। प्रथम-रासो के निर्माण काल के पक्ष में लिखी है, द्वितीय-रासो के समझने की कठिनाइ के पक्ष मे, तृतीय रासो की प्रशसा मे। रासो के निर्माण काल के विषय में रासो वाला वही अ० स० ११७३ लिखता है, जिसमे विक्रमी स० से कमी के ६१ वर्ष जोडने से वि० स० १२६४ होता है। अत कक्का कवि का लिखना है कि रासो ग्रन्थ की रचना चन्द कवि द्वारा ११५३ और उसके पुत्रों द्वारा वि० स० १२६४ तक हुई। दूसरी पटपदी मे लिखता है कि चन्द द्वारा की गई रचना के पद्य बिखर गये थे, उन्हें

(१) देखिये—'खड़ी बोली हिन्दी साहित्य का इतिहास" पृ० १७३,
ले० ब्रजरत्नदास, बी ए, एल एल बी।

(२) देखिये—"राजस्थान में हिन्दी के हस्त लिखित ग्रन्थों की खोज भाग, १ पृष्ठ ११६।
ले० डॉ० मोतीलाल मेनारिया।

"चद छद चहुआन के, बोला उमा बिसाल।
गन राम अतिहास को, दोरे न पलत दयाल"॥

राणा अमर (हमारे मत से महाराणा अमरसिंह प्रथम) ने एकत्रित कर पुन. सुन्दर रूप दिया। ये षट्पदियाँ केवल चन्द और रासो ग्रन्थ की पुष्टि ही नहीं करती बल्कि रासो ग्रन्थ के निर्माण काल की भी पुष्टि करती है[1]।

१—देखिये—राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज भाग १, पृ० ६२, ले० प० मोतीलाल मेनारिया।

हमारे द्वारा उपर्युक्त षट्पदी का अर्थ —

क—रासो का निर्माण काल और इसे समझने की कठिनाई के पक्ष में पद्य का रूप और अर्थ—

'मिलि-पंकज-गन उदधि, करद-कागद-कातरनी।
कोटि-कवि-काज-लह-कमल कीटिक-ते-करनी॥
इहि तिथि संख्या गुनित, कहे कक्का कवियां ने।
इह श्रम लेखन हार, भेद भेदे सोई जाने॥
इन कष्ट ग्रन्थ पूरन करय, जन बड्या (बड़या) दुखना लहय।
पालिये जतन पुस्तक पवित, लिखि लेखक विनती करय॥"

शब्दार्थ—मिलि-पकज-गण=पंकज श्रेणी [श्वेत, अरुण, नील][3]। उदधि=समुद्र[7]। करद-कागद-कातरनी=कागज को काटने वाली छुरिका की धार [अक्षरश. एक धारी होती है][1]। कोटि-कवि काज-लह-कमल-कीटिक ते करनी=कमल रस मुग्ध भ्रमर सी कवियों की रसिक-क्रिया[1]। उपर्युक्त सख्या का लोम क्रम ३, ७, १, १। काव्य नियम से सवत् के लिये उन्हीं का विलोम क्रम अ स० ११७३ (रासा पर लिखा जाने से रासो वाला अ. स० ही मानना चाहिये) उसमें ६१ वर्ष जोडने से वि. स० १२६४ होता है।

अर्थ—अ. स० ११७३ [वि. स० १२६४] तक रासो-ग्रथ की रचना (१२५३ तक कवि चद द्वारा और १२६४ तक उसकी सतान द्वारा) हुई। इसकी रचना तिथि गणित शास्त्र में ही पाई जाती है ('पत्रा हि तिथि पाड्यत" के अनुसार वह तिथि तथा वही वार प्रति वर्ष आता रहता है, किन्तु वैसा कवि और वैसी ही ग्रन्थ रचना उसके बाद नहीं हुई) कक्का कवि कहता है, ऐसे ग्रन्थ की रचना के श्रम को या तो रचयिता अथवा इस में प्रवेश कर्ता ही जान सकता है कि कितने कष्ट से समाप्त हुआ है, किन्तु बडे आदमी (ऊँचे कवि) ऐसे कष्ट को कष्ट नहीं समझते (या बड़े आदमी कवि के परिश्रम को नहीं समझ पाते)। ऐसी पवित्र पुस्तक को यत्न पूर्वक सुरक्षित रखनी चाहिये। पाठकों से लिपिकार की यही प्रार्थना है।

राज-प्रशस्ति महाकाव्य जिसकी रचना वि० स० १७२३-२९ मे हुई, उसमे रासो के समान ही मेवाडेश्वर समरसिंह (समर-केशरी, समर विक्रम, विक्रम केशरी) का पृथ्वीराज की बहिन पृथा कुमारी के साथ विवाह होना तथा पृथ्वीराज और गौरीशाह में होने वाले अन्तिम युद्ध मे पृथ्वीराज के पक्ष मे रह कर मारे जाने का उल्लेख हुआ है[1]।

तारीख फिरिस्त में दिल्ली के हाकिम खाडेराय से मेल करके पृथ्वीराज का सुलतान पर चढाई करना, शाह की सेना मे अफगानी, खलूज, खुरासानी और गोर

ख—रासो को समझने की कठिनाई के पक्ष में—

अर्थ—सरोवर मे स्थान प्राप्त करने के लिये कमल को जैसे (एक पैर पर खडा) रहना और कागज को (ग्रन्थ रूप पाने को) जैसे छुरी की धार मे कटना पडता है, उसी प्रकार इस (रासो) में प्रवेश करने के लिये कवियों को कमल रस मुग्ध भ्रमर के समान गति करनी पडती है (शेष अर्थ पूर्ववत्)।

ग—रासो की प्रशंसा में पद्य का रूप—

"मिलि पकज गन उदधि, करद कागद कातरनी।
कोटि कवि का कलह, कमल कोटिक ते करनी॥ (शेष पद्य पूर्ववत्)

अर्थ—रासो-ग्रन्थ कमलों से सुशोभित सरोवर, काट करने वाली कागज की खड्ग (रासो काव्य कागज पर लिखा हुआ भी वीरों के लिये तलवार-तुल्य शक्ति वर्धक है) तथा जिन कवियों को कमल रस-मुग्ध भ्रमर के समान गति है उसके लिये कवच तुल्य है। (शेष अर्थ पूर्ववत्)।

(१) देखिये—पृथ्वीराज रासो की प्रथम सरक्षा —ले० प० श्री मोहनलाल विष्णुलाल पड्या पृष्ठ स० २७।

"तत समरसिंहाख्य पृथ्वीराजस्य भूपते।
पृथाख्याया भगिन्या स्तु पति रित्यतिहार्दत॥ २४॥
गोरी साहिबदीनेन न गज्जनीशेन सगर।
कुर्वतोऽखर्वगर्वस्य, महा सामन्त शोभिन॥ २५॥
दिल्लीश्वरस्य चौहान, नाथस्यास्य सहायकृत।
सद्वादश सहस्र स्वर्योगणा सहितो रण॥ २६॥

सरदारों का होना, दिल्ली के हाकिम खाडेराय और कितने ही दूसरे राजाओं का अन्तिम युद्ध मे मारा जाना पृथ्वीराज को पकड़ कर कत्ल किया जाना, रासो के वर्णन के अनुसार ही है। रासो में चामुण्डराय को उपाधि-रूप मे खाडेराव लिखा है, पृथ्वीराज ने उसके पैर मे बेड़ी डलवा दी थी, अत अन्तिम युद्ध के समय उसकी बेड़ी काट उसका सम्मान कर उसे प्रसन्न किया। शाही दल मे खुरासानी, तत्तारी, अरबी, गोरी आदि मुसलमान योद्धा थे, जिनके साथ युद्ध हुआ चामुण्डराय (खांडेराय) और कई सामन्त अन्तिम युद्ध मे काम आये। पृथ्वीराज भी विशेष रूप से घायल हो गया था। फिर भी उस घायल वीर पर मुसलमानों ने शस्त्राघात किया तथा घायल अवस्था में ही पकड़ा गया और कुछ समय बाद वह मर गया[१]।

"जामेउल हिकायत" मे पृथ्वीराज को "कोला" लिखना भी रासो से साम्यता रखता है। रासो मे पृथ्वीराज को कहीं २ वाराह वीर भी लिखा है "वाराह" का दूसरा शब्द "कवल" भी है, जिसका विकृत रूप 'कौल' से ही मुसलमानी भाषा मे "कोला" किया है, अत पृथ्वीराज का उपाधि सूचक नाम वाराह राय (कोला) भी था[२]।

"ताजुल मआसिर" में पृथ्वीराज को कोलाराय लिखा जाना भी, रासो मे पृथ्वीराज को उपाधि रूप मे वाराह राय लिखा गया है, उसी का विकृत रूप है। इसमें हिन्दुओं को "जागरु" लिखा है। अत. रासो मे पृथ्वीराज को जगल नरेश लिखा है। इसीलिये उसके सैनिकों को इस मे विकृत रूप से जागरू (जागली वीर) लिखा गया हो। जंगल प्रदेश बीकानेर आदि पृथ्वीराज के अधीन होने से ही रासो-कार भी उसे कहीं २ जगलेश्वर लिखता है। तदुपरान्त इसमे लिखा है कि पृथ्वीराज के अतिम युद्ध के १ वर्ष पश्चात् शाह की आज्ञा से कुतुबुद्दीन कन्नौज की ओर आगे

१—देखिये—पृथ्वीराज चरित्र भूमिका—पृष्ठ ७० से ७२। ले० रामनारायण दूगड़।

देखिये—पृथ्वीराज रासो अतिम युद्ध चामडराय को बन्धन से मुक्त करने समय उसे खडेराय लिखा गया है —

"तें बंधो सुरतान पर, खंडे खडी पाग"।

२—देखिये-पृथ्वीराज चरित्र भूमिका पृष्ठ ७६, ले० रामनारायण दूगड़, देखिये—पृथ्वीराज रासो, अतिम युद्ध—

"रे वधिक्रम हय दूत्र देव वाराह करण मक"।
'वान एक वाराह, खान दाँह धर उप्पर'॥

बढा, उधर से सामना करने के लिये जयचन्द चढ आया, उसके साथ "रेती के दाने की तरह गिनी नहीं जा सके "ऐसी बडी सेना थी" यह कथन "कन्नौज पति जय चन्द को विशाल वाहिनी वाला" रासो मे लिखा गया, उसीका द्योतक है[१]।

तबकाते नासिरी-मे भी पृथ्वीराज को "रायकोला" लिखना वही रासो का "वाराहराय" का रूप है। उसमे दिल्ली के राजा गोविन्दराज का उल्लेख है, वह हम्मीर महाकाव्य के अनुसार पृथ्वीराज (प्रथम) के प्रपौत्र गोविन्दराज के लिये लिखा जाना सम्भव है, क्योंकि वास्तव मे तो दिल्लीपति पृथ्वीराज ही था, किन्तु राजवश का होने से उसे भी दिल्ली का राजा (दिल्ली के राजवश का) लिखा है। रासो मे पृथ्वीराज के सामतों मे गोविन्दराय नाम के दो सामंत थे जिनमे से एक तो "गुहिलोत क्षत्रिय" और दूसरा पृथ्वीराज के भाइयों मे से था। उसके लिये रासो मे जहॉ कही उल्लेख हुआ है, वहॉ "बडा गोविन्दराय" या "बाबा का पुत्र" [भाइयो मे 'चाचा, बाबा, ज्येष्ठ होते हैं उनके लिये लिखा जाता है] लिखा है[२]। इसीलिये गोविन्दराज के विषय मे दोनों का वर्णन साम्य है। "तबकाते नासिरी मे जम्मू के राजा शहाबुद्दीन का साथ देना"—यह वर्णन रासो के राजद्रोही वीर "हाहुलीराय" की कथा मे मेल खाता है। हाहुलीराय उसका उपाधि-सूचक नाम था, यह नाम पृथ्वीराज ने ही उस समय रक्खा था। जब एक युद्ध में पृथ्वीराज ने उसे विपक्षी पर आक्रमण करने का संकेत "हॉ" किया तथा उक्त वीर ने 'हल्ल" (हमला) कर दिया। अत राजा ने उसका नाम "हाहुलि" (हा हल्लि) रख दिया[३]। उसका मूल नाम अन्य विद्वान "निजयदेव" होना अनुमान करते है, यह हो सकता

१—देखिये-पृथ्वीराज चरित्र, भूमिका पृष्ठ ७७, ले० रामनारायण दूगड़।

२—देखिये-रासो म स्थान २ पर।

"गोविंद गरुग्र (बडा," और 'बाबा गो गोविन्द" लिखा है)

गोविन्दराय गुहिलोत इससे भिन्न था, जिसका शिला लेख कुछ समय पूर्व हांसी हिसार की तरफ प्राप्त होना बतलाते हैं।

३—देखिये—रासो मे—

"हाँ कहते देर न करी, हल्ल करी अरि मध्य,।

ताते उप पृथिराज दिय, हाहुलि नाम समथ्य"॥

है[1]। इस पुस्तक मे रासो के लिखने के अनुसार कितने ही मुसलमान योद्धाओं के नाम होना, तथा हुस्सेन का कामी होना, पृथ्वीराज का अन्तिम युद्ध मे पकडा जाना रासो की रचना के अधिक समीप है[2]।

कन्नोज-पति जयचद का राजसूय यज्ञ करना, सयोगिता का पृथ्वीराज द्वारा अपहरण किया जाना, अनग पाल की पुत्री कमला से पृथ्वीराज और सुन्दरी से जय-चन्द का जन्म होना, अनग पाल द्वारा दिल्ली का शासन पृथ्वीराज को मिलना, कन्नौज युद्ध में पृथ्वीराज के ८४ सामतों का मारा जाना जाना, तथा उस युद्ध में कछवाहे पज्जून का समिलित होना, सयोगिता द्वारा पृथ्वीराज की मूर्ति को वरमाला पहिनाना, जिससे जयचद का उसे कैद करना, कन्नौज युद्धमे पज्जून का मारा जाना, सयोगिता का स्वयवर होना और पृथ्वीराज का जयचद को हराकर सयोगिता को ले आना, इत्यादि वर्णन रासो के अनुसार क्रमश "तारीख हिन्दुस्तान" (मुंशी शम्शुल्ला मुहम्मदीन जकाउल्ला कृ० भा० पृष्ठ ३६७३), "तारीख हिन्द फारसी (भा० १, पृ० २७३, ३७३), "मुसल मानी राज्य का इतिहास (भा० १, पृ० २०–२६), "तारीख हदो कतुल मकालीन" हस्त लिखित (भा० १, पृ० ७ १४, १५), दूसरी "तारीख उसमानो फा सी" व "हकात्तीम" (पृ० १८–२०) और "तारीख निजामी" में उपलब्ध है[3]।

आइने अकवरी में पृथ्वीराज का अपनो सुन्दर स्त्री (संयोगिता) के वश मे होना, शाह का एक वडी सेना लेकर आक्रमण करना, इसकी सूचना राजमहलों मे

१—देखिये–राजस्थानी भाग ३, अक तीन, जनवरी १६४० ई० ।

"पृथ्वीराज रासो की कथाओं का ऐतिहासिक आधार, पृ० १४, ले० श्री दशरथ शर्मा

२—देखिये–पृथ्वीराज रासो की प्रथम सरक्षा पृष्ठ ४०, ४१, ले० प० मोहनलाल विष्णु-लाल पड्या ।

नोट —काशी नागरी, प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित रासो के नवम समय के अत में दी हुई उपसहारिणी टिप्पणी में तबकाते नासिरी मे रासो के अनुसार ही नासुरुद्दीन हुस्सैन को कामी लिखा है ।

३—देखिये–कछवाहों का सक्षिप्त इतिहास पृ० १२ से १४ की टिप्पणी। ले० ठा० वीरसिंह तँवर। (ये महाशय कन्नोज युद्ध मे पज्जून के सम्मिलित होने के प्रमाण में जयपुर मे "तोनू' के दीवान के यहाँ रुक्का मिलने का भी उल्लेख करते हैं।

जाकर पृथ्वीराज को कविचद द्वारा देना और पृथ्वीराज का अंतिम युद्ध शाह से करना इत्यादि वर्णन रासो से मेल खाता है[1]।

महाराणा अमर (प्रथम) ने जो दोहे रहीम [खान खाना] को लिखे है उनसे स्पष्ट होता है कि दिल्ली से तॅवर और कन्नौज से राष्ट्रवर राज्य की समाप्ति रासो मे लिखने के अनुसार एक ही समय मे हुई है[2]

प्रात स्मरणीय महाराणा प्रताप के भाई शक्तिसिह के साथ उनके पडित विष्णुदास ने अजमेर मे पटोला वाय के स्थान पर कवि गग से वि० स० १६२६ मे चन्द के पिता वैण की एक छप्पय (कवित्त) एव नागा पवकरणा का एक दोहा उद्धृत किया था, उस दोहे से कन्नौज समय मे जयचद की सभा मे सेवक रूप मे कविचद के साथ पृथ्वीराज के जाने की पुष्टि होती है[3]।

इस प्रकार प्राचीन अर्वाचीन शिलालेख, पुस्तकें और तवारीखे आदि रासो के अनुकूल हैं और वे उसे पृथ्वीराज के समय की रचना होने की ही पुष्टि करती है।

उपर्युक्त पुस्तकें, तवारीखें लेखादि रासो से साम्यता रखते हुए भी जहाँ २ पर विरुद्ध चले हैं, सोचने पर उनमे कल्पना का समावेश स्पष्टत पाया जाता जैसे—

"पृथ्वीराज विजय महाकाव्य" का लेखक कर्पूर देवी के गर्भाधान-विषयक जो लौकिक रूप मे गोपनीय है, उस पर तो ग्रह लग्नादि का उल्लेख करता है। लेकिन पृथ्वीराज के जन्म पर ग्रह लग्न सवतादि के विषय मे प्राय मौन है, जिससे उसके ऐसे वर्णन पर शका हुए बिना नहीं रहती।

१—देखिये-पृथ्वीराज रासो की यथार्थों का ऐतिहासिक आधार पृ० १२—१३। राजस्थानी भाग ३, अक ३ जनवरी १६४० ई० ले० डॉ० दशरथ शर्मा।

२ "तवॅरां सू दिल्ली गई, राठोडा कनवज्ज।
कहज्यो खाना खान ने,उ दन दाखे अज्ज"।।

३ "लै कूआ नृप पीथुला, सामत चमू समद।
बैन नैंदन कनवज गमन,चद करन कइ दद"।।

देखिये—काशी नागरी प्रचारणी सभा द्वारा प्रकाशित पृथ्वीराज रासो" पहिला समय पृ० १२४, १२५ की टिप्पणी।

"हम्मीर महाकाव्य" के लेखक ने अन्तिम युद्ध के विषय में लिखा है कि मुसलमानों ने पृथ्वीराज के अश्वशाला के अधिकारी को अपनी ओर मिला लिया। उसने युद्ध-समय राजा की सवारी के लिये नर्तक घोड़े को तय्यार कराया। युद्ध छिड़ने पर रण वाद्य बजते ही वह घोड़ा नृत्य करने लग गया, जिससे राजा पृथ्वीराज शत्रुओं पर आक्रमण न कर सका और पकड़ा जाकर मारा गया। उसका यह वर्णन काल्पनिक ही है। उस समय के राजा गण अपने घोड़े और शस्त्र को ही अपना बड़ा भारी साथी मानते थे। वे उनका निरीक्षण एवं हिफाजत अपनी देख-रेख में करते थे। अपनी सवारी के घोड़ों की गति विधि को वे स्वयं अच्छी तरह जानते थे। युद्ध-समय में उनकी सवारी के कितने ही घोड़े उनके साथ रहते थे, जिन पर चाबुक सवार चढ़े रहते थे। यदि घोड़ा काम नहीं देता तो उसी समय दूसरे घोड़े पर चढ़कर युद्ध छेड़ देते थे। पृथ्वीराज जैसे वीर से ऐसी भूल होना कदापि सम्भव नहीं। अत. हम्मीर-महाकाव्य का लेखक इस विषय में जानकारी नहीं रखता हो यही मानना पड़ता है[१]।

"जामेउल् हिकायत" का यह उल्लेख काल्पनिक सिद्ध होता है। उसमें लिखा है कि पृथ्वीराज के हाथियों से शाही सेना के घोडे चमकते थे। इसीलिये रात्रि को खेमे पर कुछ पुरुषों को छोड़ अग्नि प्रज्ज्वलित करने की आज्ञा देकर शेष सेना साथ में ले पृथ्वीराज के पड़ाव की ओर बादशाह रवाना हुआ। रात्रिभर सफर कर प्रात काल होने पर पृथ्वीराज के पड़ाव केपीछे जा पहुँचा तथा आक्रमण कर पृथ्वीराज

---

(१) उदयपुर में महाराणा की अश्वशाला राज महलों से दूर है, किन्तु महाराणा की खासा सवारी के प्रमुख १० घोडे उनके महल के झरोखे (गवाक्ष) के ठीक नीचे बँधते थे, उस स्थान का नाम दसों की पायगा (प्रमुख १० दस घोडे बांधने का स्थान) नाम से आज भी प्रसिद्ध है। महाराणा हर समय उन घोड़ों का निरीक्षण किया करते थे। महाराणा फतहसिंहजी के त्यौहारों एवं शिकारी जुलूस को देखने वाले आज भी मौजूद हैं और मैंने देखा है कि उनके जुलूस में उनकी सवारी के ८, १० घोड़े उनके आगे रहते और उन पर चाबुक सवार चढे रहते थे। यदि घोडा बेकाबू हो जाता तो महाराणा स्वय वृद्धावस्था में भी उसे काबू में कर लेते थे। नहीं तो उसी समय दूसरे घोड़े पर सवार हो जाते थे। उन्हें यह भी ज्ञात था कि कौन घोडा किस जुलूस के उपयुक्त है। ऐसे विषयों को समझने के लिये जानकारी की आवश्यकता है।

बन्दी बना लिया—इत्यादि विषय इसीलिये काल्पनिक है कि युद्ध के लिये तैयार किये हुए घोड़े हाथियों से तो क्या तोपों से भी नहीं डरने योग्य ट्रेन्ड (प्रवीण) किये जाते थे। खेमे मे आग जलती हुई रखने और साथ ही रात्रिभर सफर कर पृथ्वीराज के पड़ाव तक पहुँचने की लिखने में भी बनावटी पन व्यक्त होता है। अग्नि जलाई रखने का उद्देश्य पृथ्वीराज के पड़ाव वालों को शाही पड़ाव होने का धोखा देना है। अतः आग जलती हुई दृष्टिगत होती रहे। उतनी ही दूरी पर पड़ाव होना चाहिये, लेकिन रात्रिभर ससैन्य बादशाह सफर कर पृथ्वीराज के पड़ाव तक पहुँचा हो तो कम से कम पन्द्रह या बीस कोस की दूरी पर दोनों पड़ाव होने चाहिये, इतनी दूरी पर अग्नि जलती हुई दिखाई देना और उस जमाने में प्राय गुप्तचर रखे जाते थे उनसे यह धोखे की बात छिपी रहना असम्भव है। जिससे यही कहना पड़ता है कि इसमे उल्लिखित वर्णन ठीक नहीं है।

"ताजुल मुआसिर" का लेखक अंतिम युद्ध में पृथ्वीराज को वंदी बनाकर उसे प्राण दान देना लिखता है और बाद में विद्रोही मानकर उसका मस्तक कटवा देने का उल्लेख करता है। उसका ऐसा लिखने का उद्देश्य यवनों के अत्याचारों को छिपाने के लिये ही है, क्योंकि पृथ्वीराज के युद्ध मे मारे जाने के अनेक प्रमाण हैं।

"तबकाते नासिरी" का लेखक पृथ्वीराज का हाथी से उतर घोडे पर चढ भागते हुए को पकड़कर कत्ल करना लिखता है। उसके द्वारा ऐसा लिखे जाने मे भी यवन पक्ष की तरफदारी करना है—पृथ्वीराज जैसे वीर के लिये ऐसा लिखना असंगत ही है। उसी की छाया में लिखने वाला "तारीख फरिश्ता" का रचयिता पहली लड़ाई हिजरी सन ५८२ विक्रमी सवत् १२४३ मे शाह की बुरी तरह हार होना स्वीकृत करता है। उसके पकड़े जाने के विषय को छिपा पृथ्वीराज के सामन्त खाण्डेराय द्वारा विशेष घायल हो एक खिलजी प्यादे द्वारा घोडे पर उठा कर ले भागना लिखता है। वह यह भी स्वीकार करता है कि पृथ्वीराज की सेना मे १५० राजा थे और सेना भी काफी सख्या में थी। गोरी-शाह के द्वारा धोखा भी दिया गया था कि मेरे भाई से आज्ञा प्राप्त कर समझौता कर सकता हूँ। इसी कारण राजपूत सेना असावधान रही और प्रात काल होते २

शाही सेना ने आगे पीछे दोनों ओर से हमला किया; जिससे दिल्ली का हाकिम खाँ डेराय और कितने ही राजा मारे गये तथा राय पिथोरा सरस्वती की सीमा में पकड़ा जाकर सुलतान की आज्ञा से कत्ल किया गया।

इस प्रकार मुसलमानी तवारीखों से ही स्पष्ट होता है कि इन सब मे युद्ध-विषय एक दूसरे से विपरीत है। दबी जुबान से उन्होंने एक दो बार शाह का पराजित होना अवश्य स्वीकार किया है और घायलावस्था मे पृथ्वीराज के पकड़े जाने पर भी अत्याचार करना किसी प्रकार उन्होंने स्वीकृत किया है। पृथ्वीराज को विशेष पराक्रमी और उसकी सैन्य-शक्ति को भी उन्होंने माना है, लेकिन यवन शक्ति की विशेषता बतलाने के लिये ही उन्होंने पृथ्वीराज के अन्तिम अवस्था में पकड़े जाने और मारे जाने में उसके शौर्य को एक दम गिरा दिया है, यही कारण एक पक्षीय है। जिससे यही कहना पड़ता है कि मुस्लिम लेखकों ने बादशाह एवं यवन योद्धाओं की प्रशंसा में बहुत कुछ अतिशयोक्ति की है, किन्तु पृथ्वीराज और उसके सामतों के विषय में प्रायः चुप ही रहे हैं।

रासो-ग्रन्थ के द्वारा ही यह स्पष्ट हो सकता है कि पृथ्वीराज के अमुक २ प्रबल योद्धा थे तथा स्वयं पृथ्वीराज भी बड़ा पराक्रमी था। जिसने बहुत समय तक कन्नौज एव गुर्जर नरेश जैसे देश-द्रोहियों का सामना किया और बाहरी शत्रुओं से भी लोहा लेते हुए देश की रक्षा की। हम उस पर बहु विवाह का भी दोषारोपण इसलिये नहीं कर सकते कि उस समय की वीर राज-कुमारियाँ वीर पुरुष को ही चाहती थीं। अतः वीराङ्गना की प्रतिज्ञा को पूर्ण करना भी वीर पुरुष का कर्तव्य होता था। विजातियों का सहारा लेकर जो देशद्रोही अपनी शक्ति को बढ़ाना चाहते थे; उनसे भी लोहा लेना वीर का कर्तव्य था, वही एक वीर था जिसने १७ वर्ष तक अपनी तलवार उठाकर विजातीय शत्रुओं से भारत की रक्षा की। उसके नाश के साथ ही २ वर्षों में ही सं० १२५१ मे कन्नौज राज्य की समाप्ति हो गयी और १२ वर्ष बाद वि० सं० १२६२ में गुर्जर राज्य का भी पतन हो गया जो होना ही चाहिये था, क्योंकि पृथ्वीराज जैसे वीर का पतन भी इन्हीं दो हिन्दू-शक्तियों के द्वारा विजातीय शक्ति से हुआ था इस रासो ग्रन्थ से हिन्दुओं की ईर्ष्या का ताण्डव नृत्य का दिग्दर्शन एवं वीरों की वीरता तथा वीराङ्गनाओं के उच्च विचार और साहित्यिक सामग्री

के साथ २ उस समय के सच्चे इतिहास पता हमे इससे मिल सकता है।

रासो में एक पक्ष को लेकर रचना नहीं हुई है, उसमे जैसा हिन्दू वीरों की वीरता पर प्रकाश डाला है, वैसा ही विपक्षी वीरों के लोहास्त्र का भी सम्मान हुआ है।

अब हम कविचद की जाति एवं जीवन पर संक्षिप्त प्रकाश डालते है। चद वरदाई ब्रह्म राव (ब्रह्मभट्ट) की संतान मे से वदी--जनवश का था। वदीजन (राव) जाति का उल्लेख स्कद पुराणान्तर्गत ब्रह्मखंड में भट्टाख्यान नाम से ६६ श्लोकों में निम्न प्रकार किया गया है, जिसमे युधिष्ठिर को नारद ने इस जाति के इतिहास के सम्वन्ध मे कहा है नारद ने उन्हें "वेद-मूर्ति भट्ट" कहा और इनकी उत्पत्तिकथा सर्व प्रथम ब्रह्मा के मुख से वर्णित नारद द्वारा सुनी गई, ऐसा उल्लेख किया है[1]। यही कथा पहले राजा प्रथु ने भी भृगु ऋषि से सुनी थी, यह भी उन्होंने स्पष्ट कर दिया है[2]। वे लिखते है कि पृथु के यज्ञ में देवता, ऋषि आदि एकत्रित हुए, वहाॅ पर सूत, मागध और वदीजन (राव-ब्रह्म भट्ट) भी आये जो शुभाक्षरों मे क्रमश गद्य, पद्य युक्त राजा पृथु का यश-गान करने लगे[3]। राजा पृथु उन स्तुति कर्ताओं [वदीजनादि] से कहने लगा, आप द्वारा उच्चारित वाणी मेरे लिये निर्मल हो[4]।

फिर भी पृथु ने उनकी वाणी को अतिशयोक्ति पूर्ण समझा और सशय किया,उस समय धर्मज्ञ भृगु ऋषि ने कहा[5]। ये सरस्वती के पुत्र हैं। इनकी वाणी में सदेह नहीं करना चाहिये। ब्रह्मा के वरदान से इनके कठ में सरस्वती निवास करती है[6]।

१– "भट्टाना वेद मूर्तिना पुरा ब्रह्ममुखाच्युतम्" ॥ श्लोक ॥ ३ ॥

२– "इदमेव पुर वृत्त' पृथवे प्रोक्तवान् भृगु" ॥ ४ ॥

३– "सूतोथ मागधो वदी, स्तोतु समुपचक्रमे ।
ध्यानागत यशो गाथा गद्यै पद्यै शुभाक्षरै ॥ ६ ॥

४– "प्राह मय्यपिता मत्वा भवे पूत्रि फला गिरा"॥ १० ॥

५– "इत्येव सशयापन्न भृगु' प्रोवाच सर्ववित् ॥ ११ ॥

६– "सरस्वती एतश्चैव न कार्य कोपि सशय ।
वरदानाद्विधेरेग, कठे वसति भारती" ॥ १२ ॥

ये सूत, मागध एवं वंदीजन भविष्यवक्ता हैं। जो यह कहते हैं-वह अवश्य होता है[1]।

अत इनकी उत्पत्ति, वर्ण और आचार-विचार का निर्णय पुरातन इतिहास में इस प्रकार है[2]। ब्रह्मा के यज्ञ करने पर अन्त में प्रज्ज्वलित अग्नि से अग्नि के समान ही तेजस्वी पुरुष प्रगट हुआ[3]। जिसकी मुख और वाणी श्रेष्ठ है; ऐसा वह स्वर्णिम यज्ञोपवीत धारण किया हुआ साक्षात वेदावतार (प्रगट होकर) ब्रह्मा की स्तुति करने के लिये उद्यत हुआ[4]। प्रगट होते ही वह ब्रह्मा की स्तुति करता हुआ उनकी उत्पत्ति कही जिससे वह ब्रह्मराव कहलाया[5]। जिसमें भूत, भविष्य और वर्तमान-कथा गुणों सहित है और अपनी उत्पत्ति है। ऐसे स्तवन को सुनकर वेद का विचार करने वाले ब्रह्मा, ब्रह्मराव के प्रति प्रसन्न होकर बोले[6]। हे वेद स्वरुप ब्रह्म राव! सृष्टि की स्तुति करने से मेरी भी स्तुति हुई है अतः मैं तुम पर प्रसन्न हूं। जो तुम्हारे मन में अभिलाषा हो वह वरदान मांगो[7]? हे महर्षि (ब्रह्मराव)! तुमने सत्य स्तुति की है, इसलिये तुम सत्यात्मा हो। तुम्हारे वाक्य सदा सत्य हों, इसमें

१– "भविष्य यद्वदन्त्येते, सूत मागध वंदिन ।
अवश्य तत्तथा भाव्य, ना भाव्य यन्मुखोद्गतम् ॥ १३ ॥

२–' अत्र ते कथयिष्यामि इतिहास पुरातन ।
यथा जन्म तथा चारो, यथैषा वर्ण निर्णय." ॥ १४ ॥

३–"विधे यज्ञा वसानेहि, प्रज्ज्वलद्वान्ह वेदित. ।
प्रादुरासीत् नर. कश्चित् ज्वलदग्नि समप्रभ ॥ १५ ॥

४–"सस्वरा समुखो वाग्मी, स्वर्णयज्ञोपवीतवान ।
साक्षात् वेदावतारोऽसौ, ब्रह्माण स्तोतुर्तिजगौ" ॥ १६ ॥

५–' ब्रह्माणोत्पत्तितख्यातो, ब्रह्मराव सविश्रुत " ॥ १७ ॥

६–' इति स्तव भूत भव भविष्य, गुणात्मक तत्कृतमात्म योनि ।
श्रुत्वावतीर्य चव चिंत्यवेद, सब्रह्मराव मुदितोऽस्त्वाच" ॥ २३ ॥

७–"वेद रूप ब्रह्मराव सृष्टि स्तुस्यास्तुतोऽस्म्यह ।
प्रसादित. प्रसन्नात्मा वर वृणु यथेप्सित" ॥ २४ ॥

किसी भी प्रकार का संदेह नहीं[१]। तुम छन्द रचना करोगे, वर्तमान का कथन करोगे (वर्तमान को पूर्व ही कह दोगे) वे सब सत्य होंगे[२]। तुम्हारे वंश का मूक भी वाचाल हो, उद्‌भट् (ऊर्ध्व स्वर से) वाणी उच्चारण करने वाला तुम्हारा "भट्ट" नाम हो[३]।

तुम्हारे कंठ मे निश्चय ही सरस्वती का वास हो, वाणी की सदा सिद्धि हो, इस प्रकार ब्रह्मा ने वरदान दिया[४]। ब्रह्मा द्वारा वरदान प्राप्त किया देखकर सरस्वती ने प्रेम पूर्वक उस शिशु (ब्रह्मराव) को गोद मे लेकर पुत्र भाव स्थापित किया[५]। प्रेम पूर्वक उस पुत्र (ब्रह्मराव) को देवीअपने स्तनों का पय पान कराने लगी, इसी से वह त्रैलोक्य मे देवी-पुत्र कहलाया[६]। उस बालक (ब्रह्मराव) का मुनि गणों ने वेद रूप, ब्रह्मराव, भट्ट, स्तुति पाठक और देवी-पुत्र ये पॉच नाम रक्खे[७]। वेद शिरा ऋषि ने अपनी दुहिता नामक स्त्री से उत्पन्न विद्या नामक पुत्री ब्रह्मराव को दी (अर्थात् विवाह

१– "महर्षि रसि सत्यात्मा कृता सत्य स्तुति स्त्वत. ।
सत्य सत्य भवेद्वाक्य भविष्यति न सशय" ॥ २५ ॥

२– वृत वर्तिष्य मान यद्वर्तमान त्वयोदित ।
तत् सत्यमेव भवतु ना सत्य त्वन्मुखोद्‌गतम् ॥ २६ ॥

३– "मुनि सप्त दिनो मूक जातो विद्यासु चोद्भट ।
वाग्भुट त्वान् मौखर्याद्भट्ट इत्यभिधास्तुते ॥ २७ ॥

४– ' तव कंठे सरस्वत्या वासो भवतु निश्चल ।
वाक् सिद्धि सर्वथैवास्तु वदान्नत्र विधिर्ददौ" ॥ २८ ॥

५– "ब्रह्माण वरद वीक्ष्य, प्रीता देवी सरस्वती ।
स्वांके निधाय पुत्रत्वे स्थापयामास त शिशु" ॥ २९ ॥

६– "पाययामास स प्रीति सुत स्तन पयोमृतम् ।
देवी पुत्र इति ख्याति स्ततो जाता जगत्त्रये" ॥ ३० ॥

७– वेद रूपो ब्रह्मरावो भट्टोथ स्तुति पाठक ।
देवी पुत्रस्य पचास्य नामानि मुनयो जगु ॥ ३१ ॥

कराया)[1]। उस विद्या नामक ऋषिकुमारी से (ब्रह्मराव) सूत, मागध और वंदी ये तीन पुत्र हुए। ब्रह्मा ने उन तीनों को अलग २ वृत्ति (जीविका दी[2])।

सूत, सोम यज्ञ से प्रगट हुआ और उसे पुराण पढ़ने की विद्या दी तथा उसे सूत-नाम से विख्यात किया। मागध को सूर्य, चन्द्र, मनु आदि वंशों के वर्णन करने की बुद्धि दी और उसे ब्रह्मा ने कहा—वंशों की प्रशंसा से तुम मागध स्वयं विख्यात हो— (तदुपरांत उसके पिता ब्रह्मराव को साहित्यिक प्रतिभा युक्त देखकर) वंदी को देव-ऋषि तथा राजाओं की कविता करने का बोध दिया। ब्रह्मादि की स्तुति करने से उसे "वंदी" नाम से विख्यात किया[3]। कंठ मे सरस्वती का वास हो, प्रतिभा शक्ति उत्तम हो, मुख से निकली हुई वाणी सिद्ध हो, आदि वरदान ब्रह्मा ने रावों (वंदीजनों) के लिये दिये[4]। सब रावों (वदीजनों) को राव, भट्ट और देवी पुत्र नाम से विख्यात किया तथा प्रेम पूर्वक ब्रह्मा ने उन्हें सरस्वती मंत्र दिया[5]। सरस्वती की कृपा से मनुष्य विद्यावान होता है, उसके मंत्र-जप से सरस्वती सदा जिह्वा पर निवास करती है, यही वह मत्र था[6]। जिसके प्रभाव से कविता शक्ति, बुद्धि में धारणा शक्ति और गद्य-पद्यात्मक रचना शक्ति प्राप्त होती है[7]।

१— ऋषिस्तु वेदशिरस स्तुपितो नामनन्यभृत ।
स मुनिं ब्रह्म रावाय ददौ विद्यामिधान सतां ॥ ३२ ॥

२— तस्यां जाता त्रय पुत्रा सूत मागध वंदिन ।
तेषां पृथक चक्रेण भगवान कमलासन. ॥ ३३ ॥

३— देवर्षि पितृ भूपानां कवित्वं वदिने ददौ ।
वहिस्तुत्यात्मिको धातु स्तवनाद् वदिन स्मृता ॥ ३७ ॥

४— कठेवासं सरस्वत्यां प्रतिमा शक्तिमुत्तमां ।
मुखमि सृत वाक्सिद्धि रावेभ्य प्रददौ विधि ॥ ३९ ॥

५— सर्वे रावाश्च भट्टाश्च देवी पुत्राश्च विश्रुता ।
प्रीता तेभ्योददौ ब्रह्मा स्वय सारस्वतं मनु ॥ ४० ॥

६— यस्य प्रसाद्वागीशा भवति मनुजा भुवि ।
जिह्वाग्रे भारती नृत्य यज्ञयाज्जायते नृणां ॥ ४१ ॥

७— कवित्व कारिणी शक्ति प्रतिमा धारणायत ।
गद्य पद्यात्मिका वाणी मुख निश्चयते यत. ॥ ४२ ॥

पार्वती ने भी 'वाणी को प्रगट करने वाला' दो पद का वाक्य कहा· जिसके आदि में "वा" और अन्त मे "नी" है ऐसा सरस्वती मंत्र (वंदी के प्रति) कहा (दिया)[१]। सरस्वती देवी ने उसे (राव को) गायत्री मंत्र दिया और सावित्री ने भी उत्तम मंत्र के साथ ब्रह्म तेज की वृद्धि के लिये ब्रह्मकर्म दिया। स्तुति से प्रसन्न होकर महादेव सदा शिव ने उसे (राव को) उत्तम तारक मंत्र दिया[३]। गौरी ने उस पुत्र (राव) को तंत्र मंत्र का उपदेश एवं शोडष कला युक्त पंचदशी विद्या दी[४]। उसने वैदिकी और तान्त्रिकी दीक्षा को भी प्राप्त किया[५]। ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण और ब्रह्मा की अग्नि से भट्ट (राव) हुए। अग्नि और ब्रह्मा का मुख एक है, इससे ब्राह्मण और वंदी (राव) का एक वर्ण है[६]। ब्रह्मा की अग्नि और मुख से उत्पन्न हुए दोनों बुद्धिमान हैं। ब्राह्मण और रावों (वंदीजनों) की उत्पत्ति मे अणुमात्र ही भेद है[७]। ब्राह्मण और वंदी (राव) दोनों आशीर्वाद देने वाले है और दोनो शेष त्रवर्णो (क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) मे पूज्य और राजाओं से वंदनीय हैं[८]। दक्षिण-

---

१— वाग्भव शंभु वनिता वदद्वय पदंच वाक्।
वादिनी चगुनी जायात् प्रोक्त सारस्वतो मनु ॥ ४३ ॥

२— ददौ देवी च गायत्री सावित्री मंत्र मुत्तमम।
समस्त ब्रह्म कर्माढ्य ब्रह्मतेजो विवर्धनम् ॥ ४६ ॥

३— सदाशिवो ददौ तेभ्यो तारक मंत्र मुत्तमम्। ॥ ४७ ॥

४— गौरी देवी स्तुता प्रीता तत्रान मंत्रान् उपादिशत्।
ददौ पंचदशी विद्या शोडषी सु कलाम मान् ॥ ४८ ॥

५—वैदिकी तान्त्रिकी दीक्षा प्राप्तास्ते ॥ ४९ ॥

६— विप्रा ब्रह्म मुखाद्भूता, भट्टास्तु ब्रह्म वन्हिजा।
वन्हे ब्रह्म मुखस्यैका, वर्णैक्य विप्र वंदिनाम् ॥ ५० ॥

७— अधि देवोग्नि दृदिष्टोधिभूत ब्रह्मणे मुखम्।
भिन्नोत्पत्ति तया स्हा वेदेना विप्र रावयो ॥ ५१ ॥

८— आशीर्वाद प्रयोक्तव्या विप्रै रथच वंदिभि।
त्रिषु वर्णेपुतैरेते पूज्य वधावुभुत्तुभि ॥ ५२ ॥

निवासी औदिच्य ब्राह्मणों की बारह शाखायें हैं। उसमें प्रथम (प्रमुख) सारस्वत भट्ट (वंदी) हैं और पीछे गुर्ज भट्टर हैं[१]।

भट्ट (वदीजन) और ब्रह्मणों का परस्पर कार्य-दान और विवाह मे नमस्कार करने का ही नियम है[२]।

यज्ञ करना, पढना, दान लेना आदि द्विजन्मों का कार्य है। अत प्रति ग्रहण करना, पढ़ाना, याजन (यज्ञ) कराना आदि कार्य विप्र और वदियों (रावों) का है[३]।

प्रति ग्रहण करना (दान लेना) दो प्रकार का है—एक संकल्प युक्त, दूसरा विना संकल्प के। वंदियों का आप्त में (सकल्प युक्त) ग्रहण करना मना है, क्योंकि ऐसा दान, तप और तेज को हरने वाला है[४]।

भृगु ऋषि द्वारा रावों का ऐसा स्तोत्र सुन कर राजा पृथु याचना नहीं करने पर भी सूत, मागध और वदियों को दान देने के लिये उद्यत हुआ तथा सूत, को आनर्त, मागध को मगध और वदिजनों को कौशल देश वदना करके दिये[५]।

१—औदिच्या दक्षिणापाश्च, ब्राह्मणा दशधा द्वयो।
पूर्वे सारस्वता भट्टा परे भट्टास्तु गौर्जरा॥ ५३॥

२—विप्रै भट्टेषु विप्रेषु भट्टे राशि क्रियामत.।
परस्पर नमस्कार कार्येदान विवाहयो॥ ५४॥

३—इज्याध्ययन दानानि सर्वेषातु द्विजन्मनाम्।
प्रतिग्राह्याध्यापनच याजन विप्र वदिनो॥ ५५॥

४—अमकल्प. ससंकल्पो द्विधा प्रोक्त प्रतिग्रह।
आद्यो ग्रह्य परित्याज्यस्तप तेज हरोयत॥ ५६॥

५—पृथुरेव भृगु प्रोक्त श्रुत्वा रावै कृत स्तवं।
अनाचद्दान गर्भाम्यां, सूत मागध वदिन॥ ५८॥
सूतयानत देशतु मागध मागधायच।
कौशल कुशल कृत्वा वदन वदिने ददौ॥ ५९॥

नोट—टि० न० १, श्लोक ५३ से स्पष्ट है कि वंदीजन (राव) सारस्वत भट्ट हैं अत. चद वशज महात्मा सूरदास को अष्ट छाप आदि में सारस्वत लिखना "सारस्वत भट्ट, राव" जाति में सूर का होना मानना चाहिये।

उसी समय (आदि) से ही यशार्थी राजाओं से भट्ट (वंदी) पूजे जाते हैं और वे भट्ट उनका अविनाशी यश स्थापित करते हैं[1]।

भट्टाख्यान के अतिरिक्त ऐसा ही वर्णन हरिवंश पुराण के पांचवें अध्याय में भी लिखा मिलता है।

महाभारत के अनुशासन पर्व ८५ वें अध्याय (वरुण यज्ञ परशुराम संवाद) में भी लिखा है। हे प्रभु! इसी हेतु उस अग्नि में वीर्य हवन होने से तीन पुरुष प्रकट हुए।

१—"प्रभृति पूज्यते भट्टा भूपैर्यशोर्थिभि ।
अविनाशी यशो देहं स्थापयति यतो ह्यमी" ॥ ६० ॥

नोट—श्लोक ६० के पश्चात् आगे लिखा है कि ब्रह्म यज्ञ-सम्भूत ब्रह्म भट्ट की संतान के अतिरिक्त क्षत्रिय और ब्राह्मणी के संतान हुई, वह भी सूत कहलाया तथा वैश्य और क्षत्राणी के जो संतान हुई वह मागध कहलाया, किन्तु वह ब्रह्म भट्ट की संतान से पृथक् है। शब्द एक होते हुए भी अर्थोपार्जन की दृष्टि से भिन्न हैं। उस सूत की संतान का कार्य रथ हांकना था तथा उसी से सम्बन्धित अम्बष्ट का वैद्यगिरी (चिकित्सा) करना और उसी से वैदेह का अंत पुर से सम्बन्ध है। वैश्य और क्षत्राणी से उत्पन्न मागध का वणिक-पथ अनुसरण करना लिखा है। जिससे यही स्पष्ट होता है कि यह भिन्न रूप में अवतरित सूत मागध की संतान वैश्यों से सम्बन्धित उनके उपदेशक या यश गान कर्ता हो सकती है। अन्त पुर से सम्बन्ध रखने वाले की संतान राणी-याचक (राणियों से याचना करने वाले) कहे जा सकते हैं। लेखक की दृष्टि से भिन्न वर्ण के स्त्री पुरुष होने से उन्हें दूषित ठहराया हो, किन्तु यदि शास्त्रोक्त रीति से विवाह न कर भिन्न वर्ण के स्त्री पुरुष से संतान हुई हो तो ऐसा माना जा सकता है, अन्यथा एक वर्ण से दूसरे वर्ण में ब्राह्मण, क्षत्रियादि उच्च वर्णों में भी विवाह हुए हैं। रथ हांकने का कार्य सामान्य पुरुष का नहीं माना गया है। प्राचीन समय में सारथी कुलीन एवं वीर होता था जो योद्धा को युद्धार्थ उत्साहित करता और समय आने पर युद्ध भी करता था। अस्तु- किसी भी रूप में (चाहे ब्रह्म भट्ट या अन्य की संतान) सूत मागध हो, किन्तु उनसे वंदीजनों (रावों) का प्रारम से ही कर्मानुसार कोई सम्बन्ध नहीं रहा है।

साक्षात् ज्वाला से प्रथम भृगु ऋषि और अगारा से अंगिरा-ऋषि उत्पन्न हुए। तत्पश्चात् अगारों मे स्थित थोड़ी ज्वाला से कवि-ऋषि प्रगट हुआ[1]।

वर्ण, धर्म-विवेक (धर्मशास्त्र , मे भी ऐसा वर्णन है उसमें कवि ऋषि की सन्तान का ब्रह्म भट्ट (वदी) होना स्पष्ट किया है:—सृष्टि के आदि में ब्रह्मा, रुद्र की वारुण नाम जो अग्नि हुई, उस ज्वलित शिखा मे ब्रह्म रेत हवन किया गया। उस अग्नि से सवज्ञ तीन पुरुष, वेद के जानने वाले पैदा हुए—प्रथम भृगु और बाद में अंगिरा, तीसरा ब्रह्म भटट नाम से प्रसिद्ध है वह षट् शास्त्रों से तीनों लोकों में विख्यात है[2]।

हनुमन्त भूषण के आधार पर वन्दीजनों की भार्गव, भास्कर, भट्ट भट्टारक, राव तथा पाण्डु (उज्ज्वल कर्म करने वाले) यह छः पद्धति (परम्परा से छ नाम) हैं[3]।

वाल्मिकीय रामायण वालकाण्ड के १८ वें सर्ग मे लिखा है कि राजा ने सूत मागध, वन्दीजन एव ब्राह्मणों को क्रमश अपार वित्त और सहस्र गौएँ दीं[4]।

याज्ञवल्क्य स्मृति के दूसरे अध्याय राजधर्म में लिखा है कि सभी को वन्दीजनों के वचन मानने चाहियें, जो उसके विपरीत जायगा, उसे राजा प्रथम दण्ड देगा[5]।

---

(१) "अगार सश्रया चैत्र कवि रित्य परोभवत्"।

(२) "अपर कवि सभूता ब्रह्म भट्टेति विश्रुत ॥
त्रयस्ते लोक विख्याता सच्छास्त्रेण प्रकीर्तिता" ॥

(३) "भार्गवो भास्करश्चैव भट्टो भट्टारक स्तथा ।
रावो पाडुश्च इत्येत्र षड्मि पद्धति धारयेत् ॥

(४) "प्रदेयाश्च ददौ राजा सूत मागध वदीनाम् ।
ब्राह्मणेभ्यो ददौ वित्त गौ धनानि सहस्रश ॥

(५) कर्तव्य वचनै सर्वे समूह हित वदिनाम् ।
यस्तत्र विपरीत स्यात् सदाप्य प्रथम दमम् ॥

अगर किसी सार्वजनिक कार्य के लिये वन्दीजन आवे तो राजा को चाहिये कि कार्य हो जाने पर उसका दान, मान सत्कार के साथ पूजन करे[1]।

वन्दीजन धर्म और पवित्र कार्य का चिन्तन करने वाले हैं अत उनके वचनों का सभी को पालन करना चाहिये[2]।

माघ काव्य के २२ वें सर्ग के ३५ वें श्लोक में लिखा है–वदीजन (राव) तेजस्वी वर्ण, क्षत्रिय जाति सम्बन्धो विजय रूप उज्ज्वल व्यापार (कर्म) वाले हैं वे अनुग्रह शील यादव वशोत्पन्न हरि के गुणों का पद्यात्मक स्तुति के साथ पठन करने लगे[3]।

नैषध, किरात, रघुवश, कुमार सम्भव में भी रावों (वदीजनों) का वर्णन हुआ है, किन्तु स्थानाभाव से उसे छोड़ दिया गया है। कुछ प्रमाण जैन, बौद्ध भ पा ग्रन्थों और शिला लेखादि से भी इस प्रकार उपलब्ध हैं।

स्वयभू कवि (समय ७६० ई०) वसन्त वर्णन मे भ्रमरों के मधुर गु जार की तुलना, वद जनो के सरस पाठ (साहित्य-स्तवन) से करता है[4]।

मन्दोदरी के वर्णन मे उसके चरण-भूषण (नूपुर) की ध्वनि की तुलना वदीजनों के मृदुस्वर (सरस साहित्योच्चारण) से की है[5]।

---

(१) "समूहे कार्य आयातान् कृत कार्यान्त्रिसर्जयेत् ।
सदान मान सत्कारै पूजयित्वा महीपति" ॥

(२) "धर्मज्ञ शुचयोऽलु-वो भवेयु कार्य ।
तं य वचन तेषा समूह न्ति वन्दी ॥

(३) "ओजस्वीवर्णोज्ज्वल वृत्त शालिन प्रमादिनऽनु गत गोत्र सविद ।
श्लोकानुपेन्द्रस्यपुर स्मभूयसो गुणान्समुद्दिश्य पठन्ति वदिन" ॥

(४) "अलि मिहुणेहि वदिणेहि पढते हि ।
(हिन्दी काव्य धारा ले० राहुल जी, पृ० ३)

(५) दीवत चलण–णेउररसत, ण महुर-राव वदिण पठत"।
वहीं ("स्वयभू" हिन्दी काव्य धारा) पृ० ५०

महाकवि पुष्पदंत, राष्ट्रकूट राजा कृष्ण तृतीय (सन् ६६६) के लिये लिखता है कि इसने विजय मे प्राप्त द्रव्य अपने सामन्तों और आगुन्तकों को बॉट दिया, जिसमे वदीजनों का भी उल्लेख है[१]।

सोमदेव-सूरि लिखता है कि चालुक्य वंशी राजा नरसिंह के युद्ध मल्ल नामक पुत्र हुआ और उसके वदीजनों के लिये चिन्तामणि के तुल्य वद्दिग हुआ "वदि चिन्तामणिस्तस्य वद्दिगोऽजनि नदन."। जिसमे यह उल्लेख है वह दान पत्र श. स० ८८८ (वि० सं० १०२३) का है[२]।

स्वयभू समय स० ७६० ई० से वि० स० ८४७ ने बन्दीजन नाग का उल्लेख किया है[3]।

मेवाड के स्वामी अल्लट के समय की वि. सं १०१० की प्रशस्ति में उसके वदीराज (मुख्य कविराव) नाग का उल्लेख है[४]।

विश्वामित्र ने यज्ञ किया। भगवान राम लक्ष्मण ने उस यज्ञ की रक्षा की और राम ने कुश के दो पुतले वनाये। उस समय ब्रह्मा ने सजीवन-मंत्र पढा तथा इन्द्र ने अमृत सिंचन किया। जिससे वे दिव्य-देव-स्वरूप पुरुष रूप में प्रगट हुए। जिनके नाम सुमत एव विमंत रक्खे गये। महर्षि गौतम ने उन्हें भट्ट (वंदीजन) नाम से सम्बोधित किया। उनमें से सुमत की सतान अयोध्या से मेवाड़-राजवंश और विमत की सतान जयपुर राजवश के साथ रही। सुमत की सतान में प्रमुख राव चीकलग्राम (मेवाड़, गिरवा तहसील) एव अन्य ग्रामों मे आज भी विद्यमान है।

(१) "वदीण दिण्ण धण-कणय पयरु, महिपर समत मेलावि णयरु"।

['जैन साहित्य और इतिहास" ले० नाथूराम प्रेमी पृ० ३२२ टि० २]

(२) वही पृ० ८६-६०

(३) "वदणइ-णाग-सिरि पाल पहुइ-मव्वयण समूम"।

वही पृ० ३६० ।

(४) देखिये—उदयपुर राज्य का इतिहास, पहली जिल्द पृ० १२२,

ले० डॉ० गौरीशङ्कर हीराचद ओझा

[प्रारम में यह लेख अल्लट के समय में बने हुए किसी वाराह मदिर में लगा था, पश्चात् आहड़ के निकट सारणेश्वर नामक नवीन शिवालय के छबने में लगाया गया]।

विमंत की संतान जयपुर-राज्य मे टांक गौत्र से विख्यात है[१]। टाक गौत्र के विषय मे उदयपुर के कविराव वख्तावरसिंहजी रचित "केहर प्रकाश" मे लिखा है कि आमेर नरेश मलयसिंह के एक पुत्र का नाम "पातल" था। उसे मलयसिंह ने अपना मुख्य बंदिराज (कविराव) बना ब्रह्म यज्ञ सभूत वंदीजन जाति मे मिलाया[२]।

१—देखिये—शिवनाथ प्रकाश, पृ० ३७, ३८,

"विश्वा सु मित्र जग रचिय मान, पछ रामचन्द्र रक्षा सुजान।"
द्वय फास फूतले रचे देख, निज हस्त हुतें श्री राम देख" ॥
"ब्रह्मा सँजीवन पठिय मन्त्र, तहँ इन्द्र श्रमी छिटक्यो सु तन्त्र।
वह जीव उठे जय २ करत, मल भट्ट नाम गोतम भनत ॥
जिन सुमत विमत द्वय नाम जान, श्रमर के तुल्य निज श्रग श्रान।
"पहली सुमत लव पोल पात, सुम विमत हुश्रो कुस पोल पात ॥
विमत रा टाकराव श्रज्जेह, कानव्या वास जैपुर कनेह।

ले० राव गिरवरजी (श्रामेट, मेवाड़)

२—"श्रामेर नृप मलै सिंह ने किय तनय पातल पात।
विधि मख्ख उद्भव वंदि सों, जुरि दिद्ध टाक सु जात ॥
देखो—केहर प्रकाश के श्रत में [कविवंश वर्णन] ले० कविराव वख्तावरसिंहजी, उदयपुर (मेवाड़)

उत्पत्ति का विषय कुछ भी हो, किंतु यह सत्य है कि टांक गोत्रीय रावों का जयपुर वंश से एवं चीथलवास के रावों का मेवाड़ राजवंश से बहुत प्राचीन सम्बन्ध चला आ रहा है। रासो "सम्पादक" स्वयं टांक गोत्रीय है।

राजस्थान में "लाखणोत" "सगेलिया" 'करोदिया" "अमोलिया" आदि राव जाति के बहुत से गोत्र ऐसे हैं जो अपने २ राजा के राजवंश से ही अपने को सम्बंधित बतलाते हैं संभव है यह वहीवंचो (नामावलि लिखने वालों) की गड़बड़ हो या आवश्यकता समझ राजाओं ने अपने वंदीजनों की पूर्ति की हो, किंतु उपर्युक्त गोत्रों का सम्बन्ध यज्ञ सुभूत ब्रह्मभट्ट (वंदीजनराव) जाति से प्राचीन समय से चला आ रहा है।

इससे स्पष्ट है कि यह वन्दीजन (राव) जाति बहुत प्राचीन है और इसका साहित्य-सृजन करना आदि कर्तव्य है। इसके पूर्व-पुरुष पर सरस्वती का पुत्र-भाव स्थापित करना "ब्रह्म" और देवी का पयपान कराना "क्षात्र" तेज का कारण है। यह जाति ब्रह्म क्षात्र के तेज को लिये हुए रही है। हिन्दी कविता का प्रादुर्भाव इसी के द्वारा हुआ है।

कविचन्द भी इसी जाति का एक रत्न था, उसने अपने विषय मे "रासो" के अन्तर्गत इस प्रकार सूक्ष्म रूप में प्रकाश डाला है —

रासो के लेखानुसार वह "सार गोत्रीय वदीजन" था, "वंदे परिकर सार करि सु प्रसन्न जगत आधारं"। ' उत्पंम चद सारह कहिय" वह पृथ्वीराज का समकालीन था "इक्क दीह ऊपनन, इक्क दी हे समाय क्रम" जो एक ही समय मे पृथ्वीराज और उसके सामतों के साथ साथ जन्म लिया और उन्हीं की मृत्यु के साथ २ एक ही समय में मृत्यु को प्राप्त हुआ।

लोक प्रसिद्ध है कि पृथ्वीराज "कविचन्द" को बावा कहकर सम्बोधित करता था। "काका" और "बावा" अक्सर अपने पिता के समवयस्क को ही कहते आये हैं। अतः इससे स्पष्ट है कि वह (कविचन्द) पृथ्वीराज के पिता (सोमेश्वर) के समवयस्क था। पृथ्वीराज के जन्म होने पर दिल्ली से रानी और पुत्र (पृथ्वीराज) को लिवा लाने की सम्मति के लिए सोमेश्वर ने लोहाना और चन्द को बुलाया—"तव बुलाय सोमे सवर लोहानो अरु चन्द" चन्द और भी हो सकता है लेकिन अन्त पुर विषयक मत्रणा मे राजागण अपने ही खास व्यक्ति से सम्मति लेते रहे हैं। अतः चन्द उसी का वंश परपरागत कवि और विश्वास पात्र था। उसी को बुलना निश्चित है पृथ्वीराज की बहिन पृथाकुमारी की शादी मेवाड़ेश्वर "रावल समर विक्रम" के साथ वि० स० १२३२ के आस पास हुई। तब तीन प्रसिद्ध व्यक्तियों के साथ २ कविचन्द के पुत्र जल्ह को भी साथ में दिया जो उस समय कविता मे दक्ष था। इससे भी चन्दपुत्र जल्ह पृथ्वीराज का और कविचन्द सोमेश्वर का समवयस्क ठहरता है।

चन्द के पिता का नाम "वैण" था। जिसका रासो के अन्य पद्यों मे ' वैणे विरह वं घेअनंत" उल्लेख हुआ है। तदुपरान्त मेवाडेश्वर प्रातः स्मरणीय

महाराणा प्रताप के छोटे भाई शक्तिसिंह के पुरोहित विष्णुदास ने अकबर के दरबारी कवि गग से वि० स० १६२४ मे एक पट्‌टदी और एक दोहे की नकल की। उस दोहे मे कविचद को "वेणनदन" लिखा है—तदुपरान्त अपनी भाषा के विषय पर कवि चन्द ने जहा" वयन वानी वर ब्रन्नन' लिखकर प्रकाश डाला है उसमे श्रेष्ठ बोल-चाल की भाषा होने के साथ २ श्लेष मे "अपने पिता वैण की लोक सुलभ भाषा का भी सकेत किया है। स्पष्ट है कि कविचद के पिता वैण थे। चन्द का पूरा नाम पृथ्वीचंद या पृथ्वीभट्ट था जैसा कि रासो में वह अपने लिये "थान पृथ्वी आरूढह" और "पहुमि बदीजन जपहि" आदि लिख गया है। "पृथ्वीराज विजय" का लेखक जयानक भी उसकी इतिहासज्ञता पर प्रकाश डालता हुआ उसकी व्यास से तुलनाकर उसे पृथ्वीभट्ट लिखता है।

उसके कविता गुरु कोई महात्मा थे जिनके लिये वह स्वय लिखता है "सकल आदि मुनि दिख्य" अर्थात् मेरे छन्दों मे मात्रादि का नियम मुनि द्वारा दीक्षित करने (दिये हुए ज्ञान) के (या छद शास्त्र के आदि आचार्य पिंगल के) अनुसार है। रासो के छन्दों में गुरुप्रसाद लिखा गया है। जिससे उसके गुरु का नाम "गुरु प्रसाद" भी हो सकता है (या गुरु कृपा लिखा गया हो)। ये पृथ्वीराज के मत्री, गुरु, पूज्य और योद्धा थे। इन्हें पृथ्वीराज के पूर्व पुरुषों से दी गई जागीर के अतिरिक्त बीस गाव स्वय पृथ्वीराज ने वीर मत्र की प्राप्ति के उपलक्ष मे दिये थे।

इनकी कविता से सिद्ध होता है कि यह कवि, कविता के सर्वाङ्ग सस्कृत पट्‌भाषा, यावनी भाषा के विद्वान एव अनुभवी पुरुष थे सत्य २ कहने मे किसी से तनिक भी नहीं हिचकिचाते थे। इनकी रचना तत्कालीन है। घटना और व्यक्तियो के नामादि मे काल्पनिकता मालूम नही होती और न इनकी कविता मे पक्षपात ही पाया जाता है। इन्होंने राजा तक को कामी, कलही और रानी सयोगिता को "कलहतरि नारि" तक लिखने में सकोच नहीं किया। इसी से इनके काव्य की सत्यता पर प्रकाश पड जाता है। ये बुरी बात का बुरी ही मानते थे। शिकार वर्णन मे "भूले साथ श्रीनाथ कहँ" लिखकर स्पष्ट कर दिया है कि राजा और उनके साथी ऐसे घृणित कार्य मे प्रवृत्त होकर ईश्वर को भी भूल गये एक समय युद्ध छिडने से पूर्व प्रात काल के अरुण वर्ण सूर्योदय को देखकर कहा है कि हे भगवान

भास्कर! आप इस रूप में उदय होकर रक्तपात का होना सूचित करते हैं; किन्तु आप दोनों दीन की रक्षा करें—यही मेरी प्रार्थना है। इससे स्पष्ट होता है कि वह दोनों पक्ष का मंगल चाहने वाला था, उसके मन में भेदभाव नहीं था।

उनके मे दो स्त्रियाँ होना बताया जाता है। रासो मे जिसका उल्लेख है, उसका नाम गौरी (पर्याय रूप में उमा) लिखा है, वह विदुषी थी, उसी को सम्बोधित करते हुए महाकवि ने "रासौ" की रचना की है। इनके १० पुत्र, सुन्दरचंद, सुजानचद, जल्हचद वल्हचद, वलिभद्रचन्द्र, केशरीचन्द, वीर चन्द, अवधूत (उद्धरण) चद और गुणराज चंद थे। जिनमे से कविता मे दक्ष स्वयम् महाकवि ने गुणचद और उद्धरण चद को तथा अपने राजसी आडम्बर को बनाये रखने वाला जल्ह को "काव्य करन गुण उद्धरण, जल्प पच्छ घर लज्ज" माना है। महाकवि की "वरदाई" उपाधि युक्त इनके वशज आज भी नीमराणा में हैं। जिन्हे "विरदैया" कहते हैं। चन्द के पुत्रों में वल्ह की सतान विरदैया है। मेवाड़ स्थित सुरजन्यास राज्यास के निवासी राव वन्धु अपने को जल्ह की संतान मानते हैं। जल्ह के वंशज फतहपुर, वीराऊ (शेखावाटी), ईसरोत (अलवर), तथा ज्यानपुर (भरतपुर) इलाके और काशी में भी हैं। वे अपने को जल्हसार बताते हैं। अवधूत (उद्धरण) जिसे वही मे उदयदत्त भट्ट लिखा है उसकी संतान धवल सार है ये धौलपुर मे रहे जिससे धवलसार कहलाये। जिनकी सतान शेखावाटी में हैं। अकबर का दरबारी कवि गग भी महाकवि के "सार" वंश में था। अतः उसकी सतान राजस्थान एवं पूर्ण प्रदेश में है वे अपने को गग-"सार" कहते हैं। गुणचद की सतान मे प्रसिद्ध महात्मा सूर हो गये हैं। मारवाड़ निवासी स्व० नानूराम भट्ट ने भी अपना वशक्रम गुणचन्द से मिलाया है, किन्तु राजस्थान की राव जाति में संपर्क एव प्रसिद्धी नहीं होने से सदिग्धता है। मेरे अहमदाबाद के प्रवास से ज्ञात हुआ कि गोमती पुर (अहमदाबाद) के निवासी ब्रह्मभट्ट (राव) वंधु अपने को चद वशज मानते हैं और अपनी उपशाखा वोरलिया (ग्राम विशेष के कारण) बतलाते हैं। सार गोत्रीय राव (ब्रह्मभट्ट) वंधु, बीजापुर मेहसाणा, (गुजरात) मे अब भी विशेष सख्या में बसे हुए है। डूँगरपुर (राजस्थान) में फांकरी गांव के निवासी भी अपने को सार गौत्रीय कहते हैं। वृहद सतति को देखते हुए ज्ञात होता है कि महाकवि चद वयोवृद्ध होकर मृत्यु को प्राप्त हुए होंगे। वाण वेध समय हमारी दृष्टि

से बाद में लिखा गया था। अत वे पृथ्वीराज की मृत्यु (वि०स० १२४६ में हुई उस) के बाद अधिक जीवित नहीं रहे। रासो मे दिये गये ग्रंथ समाप्ति के अ० सं० ११६२ (वि०स०१२५३) तक वे जीवित रहे[1] और उसके बाद उनकी मृत्यु हुई, किन्तु वे ऐसी कृति छोड गये हैं जिससे संसार मे आज भी अमर हैं।

महाकवि के उपर्युक्त रासो ग्रन्थ के सम्पादन मे हमने "रासो" की निम्न प्रतियों को सामने रक्खा है—

(१) पूना लाइब्रेरी की दो प्रतियां कुछ दिनों तक देखने मे आई।

(२) कानोड (मेवाड) ठिकाने की प्रति वि०स०१७४६ वाली।

(३) भींडर (मेवाड) ठिकाने की दो प्रतियाँ (एक १७२८ की, दूसरी १६ वीं शताब्दी की।

(४) पारसोली (मेवाड) ठिकाने की प्रति (यह प्रति १६ वीं शताब्दी की है किन्तु इसकी प्रतिलिपि प्राचीन प्रति से की गई है।)

(५) राघवगढ (मालवा) की प्रति।

(६) नीमराणा की प्रति–

(७) भींडर निवासी श्री पन्यासजी की प्रति जो पडी मात्रा की है (यह प्रतिलिपि एव भाषा की दृष्टि से १४ वीं शताब्दी की है, ऐसा विद्वान बतलाते हैं। इस प्रति मे कन्नौज एव सुख विलास ये दो ही समय है शेष अपूर्ण है)।

(८) सम्पादन के अन्त मे हमें एक और प्रति स०१७०२ की लिखी हुई प्रताप सभा के मन्त्री श्री शिवनारायणजी के पास देखी गई।

१– देखिये— अनद सवत के विषय में रासोकार चद को सर्वथा अनभिज्ञ मानना ठीक नहीं होगा रासो के क्षेपक भागों को दूर कर हम घटना सगति को बैठाना आरम्भ करें तो रासो की बहुत सी गुत्थियां सुलझ जायेंगी। अनद सवत् को सामान्य विक्रमी सवत् मे १०० वर्ष बाद का मानना भी सर्वथा नवीन कल्पना नहीं है। औरङ्गजेब के पुत्र शाहजादे मुअज्जम के दरबारी कवि महापात्र जैत्रसिंह ने इन शब्दों में शाहजहाँ की मृत्यु का वर्णन किया है 'सोरह सय बाईस हते सवत अनद तव"। दे०ओझा निबन्ध सग्रह, भाग २, पृ०७०।

(आर्यभाषा पुस्तकालय, ना०प्र०स०काशी, मगनित हस्त लेख म०६२)।

(९) मध्यम और लघुरूप की दो प्रतियाँ श्री अगरचन्दजी नाहटा द्वारा प्राप्त हुई जो १७ वीं शताब्दी की हैं।

(१०) गलूण्ड (मेवाड़) वाली प्रति, वही-वंचा (नामा वली लिखने वाले स्व० दयाराम के वशज) द्वारा प्राप्त हुई, सं, १६३० की लिखी हुई, महाराज अगरजी के पठनार्थ।

(११) झाड़ोलराज श्री कुबेरसिंहजी के द्वारा भी काशी नागरी प्रचारिणीसभा द्वारा मुद्रित प्रति सम्पादन एवं पाठ मिलान के लिये प्राप्त हुई। इनके अतिरिक्त मेरी स्वयं की प्रति जो १७७० की है और एक प्रति देवलिया वाली (इसमें संवत् नहीं है लेकिन भाषा की दृष्टि से प्राचीन है) रावजी बहादुरसिंहजी देवलिया (अजमेर) द्वारा प्राप्त हुई है उसे भी पाठ मिलान में रक्खी गई थी। अत. हम उपर्युक्त प्रतियाँ देने वाले महानुभावों के आभारी हैं।

मैं अपने विशेष स्नेही रावतजी साहब प्रतापसिंहजी विजयपुर तथा रावजी सा० मनोहरसिंहजी बेदला को नहीं भूल सकता- इनमें से प्रथम ने मेरा "रासो पर की गई शंकाओं के समाधान" सम्बन्धी लेख को अपने निजी व्यय से छपवाया और द्वितीय ने महाकवि चदवरदाई के चित्र स्थापना समारोह का समस्त व्यय अपनी ओर से किया तथा "रासो प्रथम भाग" के प्रकाशन में स्वर्गीय महाराणा साहब से सहायता दिलवाई।

अन्त में मैं उन सभी महानुभावों के प्रति अपना हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ, जिनकी प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से इस ग्रन्थ के सम्पादन में मुझे सहायता प्राप्त हुई है।

कवि यदुनाथ द्वारा रचित वृत रत्नाकर एव देवलिया तथा श्री अगरचदजी नाहटा द्वारा प्राप्त रासो की प्रतियों के आधार पर हमने रासो के पद्यों का परिमाण ५००० पांच सहस्र माना है। हमारे सम्पादन मे छन्दों की कुल सख्या भाग १,६४३। भाग २,१०८६। भाग ३,११७४. भाग ४,१२२३ इस प्रकार ४३६६ है। शेष ६०१ छन्द कम पडते हैं जिसका कारण प्रकाशन कार्य थोडे ही समय मे करना पड़ा है। कन्नौज समय एव अन्तिम युद्ध-समय का तो सम्पादन और प्रकाशन साथ २ही चला

है। इस अर्से में मुझे दो तीन बार बीमारी ने भी घेर लिया था ऐसी स्थिति मे कुछ छन्द छूट गये हैं या रासो की प्रत्येक प्रति के साथ महोबा समय लगा हुआ है जिसे हम चदपुत्र गुण चंद का लिखा मानते है। यह घटना मदनपुर के मन्दिर के स्तम्भ पर लगे हुए १२३६ के लेखानुसार ऐतिहासिक सिद्ध होती है। जो रासो के बाहर की होते हुए भी अन्दर की घटना है। कविचद ने इस घटना पर सत्तेप मे पद्मावती-समय लिखकर प्रकाश डाला है। विस्तार से उसने इस विषय को इसलिये नहीं लिखा कि उसी का समकालीन "परमर्दी" (परिमाल चदेले) का वन्दीजन (राव) जगनीक भी इसी विषय पर महोबा खण्ड (परिमाल रासो) अलग लिख रहा था। अत एक ही विषय को उसने (कविचद ने) ग्रहण करना ठीक नहीं समझा, उसकी इस कमी को उसके पुत्र गुण चन्द ने पूर्ण करने के लिये महोबा समय ८४८ पद्यों मे लिखा है। इस सहित रासो की पद्य संख्या ५२२७ होती है। मगला चरण, भूमिकादि विषय के पद्य मूल सख्या मे नहीं गिने जा सकते। अत उन्हे नही जोडने पर करीबर मूलछन्द ५००० रह जाते हैं। महोबा समय के सम्पादन का भी हमने निश्चय किया है। उसके प्रकाशन होने पर इस पद्य परिमाण वाली कमी की पूर्ति हो सकेगी।

भाग २, ३ के प्रारम्भिक अश मे कुछ त्रुटियाँ प्रकाशन सम्बन्धी रह गई है इसका कारण एक तो मैं स्वय अस्वस्थ था तथा दूसरा कारण चतुर्थभाग का सम्पादन एव प्रकाशन कार्य साथ २ ही चल रहा था। अत भाग दो तीन का शुद्धिपत्र अलग से छपेगा, पाठकगण उससे शुद्ध कर पढने का कष्ट करे।

कविराव मोहनसिंह
सम्पादक
पृथ्वीराज रासो
साहित्य-सस्थान, रा वि विद्यापीठ
उदयपुर (मेवाड)

विजयादशमी
स०२०१३

गगा तट के समीप ही विश्राम करना, प्रात' काल होने पर कन्नौज मे प्रवेश करने के विचार से कुछ साथी साम तों को साथ मे ले सेना को वहीं छोडकर प्रस्थान करना, नगर मे प्रवेश करते समय अशुभ शकुन होना और उन्हें निवारण कर नगर मे प्रवेश करना,नगर की शोभा तथा राज्य वैभव का वर्णन ६३० से ६५७

—सेवक रूपधारी पृथ्वीराज सहित कवि चन्द का राजद्वार पर जाना, द्वारपाल के अधिकारी द्वारा उनका सम्मान किया जाना, द्वारपाल का राजा जयचन्द को कवि के आने की सूचना देना, कविचन्द की परीक्षा के लिये जयचन्द का अपने वॅदीराज को भेजना, कविचन्द का जयचन्द की अदृश्य कविता कर दिखाना, जयचन्द के वॅदीराज द्वारा कविचन्द की प्रशसा सुनकर उसे सभा मे बुलाया जाना, जयचन्द को कविचन्द का आशीर्वाद देना और प्रश्नोत्तर जयचन्द का पृथ्वीराज के बारे मे पूछना, पृथ्वीराज की तरफ सकेत करते हुए कविचन्द द्वारा अपने राजा का शौर्य वर्णन, सेवक रूप मे खडे हुए पृथ्वीराज की ओर देख जयचन्द को पृथ्वीराज की शका होना, कविचन्द को ताम्बुल देने के लिये दासियों के साथ कर्नाटी का आना और पृथ्वीराज को देखकर घू घट निकालना, किन्तु चतुराई से पृथ्वीराज की उपस्थिति प्रगट नहीं होने देना ६५८ से ६८५

—कविचन्द को नगर के बाहर पश्चिम दिशा मे बने हुए महलों मे ठहराना, पृथ्वीराज के अन्य साथियों का भी वहाँ आकर ठहराना, जयचन्द का अपने मत्री और पुरोहित आदि को स्वागत सामग्री लेकर कविचन्द के पास भेजना जयचन्द की रानी जुन्हाई का भी अपनी दासियों द्वारा कविचन्द के स्वागतार्थ सामग्री लेकर भेजना, रात्रि होने पर नाट्य देखने के लिये जयचन्द का कविचन्द को बुलाना ६८६ से ६९८

नाट्य वर्णन

— कविचन्द का पुन लौटना और प्रात काल होने पर जयचन्द का कविचन्द को उपहार भेंट करने के लिये जाने का

पृथ्वीराज का नहीं मानना, उसी रात्रि को ही युद्ध भूमि में पृथ्वी-राज और संयोगिता की सुहाग रात्रि मनाया जाना ७५५ से ७७४

—प्रात काल होने पर द्वितीय दिवस का युद्ध प्रारम्भ होना और इस युद्ध मे सांखला उद्दिग पगार, योगिन्द उपाधिधारी जघारावीर, मालदेव चदेला, भान भट्टी, सामला सूर, कोई प्रमार-वीर, निर्वान वीर, रामरेणरावत, वारडराय मोहिल, नारेणराय देवडा आदि का धराशायी होना और कविचन्द का भी इस युद्ध मे भाग लेना, सामन्तों का पुन पृथ्वीराज को दिल्ली चले जाने का आग्रह करना ७७५ से ७८८

—तीसरे दिन का युद्ध—तृतीय दिवस के युद्ध मे गु डन नरेश, सिंहराय, मुकुन्द मोरी, कन्ह, निड्डुरराय, वीर चंदेला, अत्ताताई, हमीर गभीर हाडा, रणवीर राय प्रतिहार आदि का भाग लेना, हरिसिंह हरराज पृथ्वीराज के छोटे भाई ने भी इस युद्ध में भाग लिया ७८६—८०१

—चतुर्थ दिवस का युद्ध—चतुर्थ दिवस के युद्ध के प्रारभ मे कन्ह का कवि चन्द से पृथ्वीराज को दिल्ली रवाना होने के लिये कहना, राजा का कविचद की बात मानना और कवि चंद का पृथ्वीराज के घोडे की रास हाथ में पकड़ कर दिल्ली की ओर प्रस्थान करना, पृथ्वीराज को दिल्ली की ओर जाते हुए देख पगुराज के साथियों का पीछा करना, उन्हें रोकने के लिये पृथ्वी राज की ओर से नृसिंह चाहुवान, बडगुज्जर कनकराय, निड्डुरराय, कन्ह का अङ्ग रक्षक छगन, कन्ह, वीर अलहन, अचलेश खीची, वींझराज चालुक्य, सलख या सलखानी नारेन प्रमार, लक्खन बघेला आदि का मारा जाना और पहाडराय तोमर का युद्ध करते हुए धराशायी होना, तब तक सोरों तटपर पृथ्वीराज का पहुँच जाना, फिर जयचद और उसके साथियों का वहाँ आ पहुँचना और पुन युद्ध छिडना, जिसमें पृथ्वीराज की ओर से देवराज प्रमार और उसका भानजा झचाराय (कन्हराय) जघारा भीम,

—धीर का अपने सगोत्रीय बधुओं से शाह को पकडने की प्रतिज्ञा कहना, सब पुंडीर वीरों का युद्धार्थ तत्पर होना, धीर का बादशाह से युद्ध करने को सजना, सामन्तों में फूट, पृथ्वीराज की सेना का भी धीर के पक्ष मे आना, धीर का युद्ध करके शाह को बधन में लेकर अपने स्थान को चला जाना, सामन्तों का धीर के विरुद्ध पृथ्वीराज को भडकाना, बधन में आये हुए शाह को धीर के अग रक्षक वेजल का मारने को उद्यत होना, किन्तु धीर का उसे ऐसा करने से मना करना, धीर का बधन में लिये हुए बादशाह को लेकर पृथ्वीराज के पास आना, पृथ्वीराज का शाह को दडित कर छोड़ देना ६१२ से ६३२

—सामन्तों के भडकाने पर पृथ्वीराज का धीर पर रुष्ट होना, धीर के पुत्र पावस को दिल्ली से निकाल देना, यह सुनकर धीर का सिंध की ओर जाना, बादशाह का उसे रहने के लिये टिल्ला पहाड और ठट्टा स्थान देना, पावस और उसके साथी पुण्डीरों का लाहौर मे आ बसना, पश्चात् लाहौर को लूट कर पावस पुण्डीर का भी अपने साथियों सहित अपने पिता धीर के पास पहुँचना, लाहौर लूटने से धीर का अपने पुत्र पावस पर रुष्ट होना ६३३ से ६३४

—सौदागरों का धीर के पास आना, धीर का उनसे घोडे खरीदना, सौदागरों का शहाबुद्दीन के पास जाना, शाह के यौद्धाओं का कहना कि इन्होंने अच्छे २ घोडे धीर को दे दिये जिससे शाह का रुष्ट होकर सौदागरों को पकडने की आज्ञा देना और उनके घोडे छीन लेना, सौदागरों का भागकर धीर की शरण आना धीर के लिखने पर शहाबुद्दीन द्वारा छीने गये घोडों की कीमत सौदागरों को देना, शाही यौद्धाओं के प्रपच में आकर सौदागरों का धीर को छल पूर्वक मार देना धीर के मरने की सुनकर अपने साथियों सहित पावस पुण्डीर का सौदागरों पर आक्रमण करना, सौदागरों की मदद पर शाही सेना के पठानों का आना, पुण्डीरों द्वारा सौदागरों और पठानों का मारा जाना ६३५ से ६४३

अंतिम युद्ध

—चित्तौड़ेश्वर रावल समर विक्रम को पृथ्वीराज की भूदेवी का स्वप्न देना और कहना कि मुझे शहाबुद्दीन गौरी स्पर्श करने वाला है, यह देखकर रावलजी का दिल्ली आना, स्त्री रूप में भूदेवी का पृथ्वीराज को भी दर्शन देना, दूतों को भेज कर शाह का दिल्ली के हालातों से जानकारी करना, शाह का चढाई करना, यह सुनकर दिल्ली की प्रजा का गुरुराम पुरोहित के पास जाना, गुरुराम का प्रजा के मुखियाओं को साथमें लेकर कविचन्द के पास आना, कविचंद और गुरुराम का प्रजा के मुखियाओं को साथ में लेकर राजद्वार पर आना, संयोगिता की प्रतिहारिनियों द्वारा जनता की भीड़ को राज द्वार से हटा देना, कविचन्द और गुरुराम का पटरानी इच्छनी की ड्योढी पर पहुँचना, और दासी द्वारा राजा के पास शाह की चढ़ाई एवं सहायता पर आये हुए रावल समर विक्रम की सूचना देना. पत्र को पढ आवे में आकर पृथ्वीराज का माथा कसना, संयोगिता का स्वप्न की चर्चा करते हुए राजा का उत्साह वढ़ाना, राजा को भी अशुभ स्वप्न होना, तथा उसके परिणाम को पूछने के लिये गुरुराम को महल में बुलाना और अशुभ शकुन के निवारण के लिये पशुवलि आदि देकर प्रयत्न करना, सायंकाल सामन्तों सहित पृथ्वीराज का सभा करना पुन. पृथ्वीराज और सयोगिता में वार्तालाप तथा सभी रानियों से मिलकर राजा का निगम वोध स्थान पर जहॉ कि रावलजी ठहरे हुए थे वहॉ पहुँचना, और रावलजी को महलों मे ले आना, पृथ्वीराज का रावलजी को अपनी राजधानी को लौट जाने के लिये कहना, परन्तु रावलजी का क्षत्रियोचित धर्म

बतलाते हुए अपनी राजधानी को नहीं लौटना रावलजी के कहने पर चावडराय को बधन से मुक्त करने के लिये स्वय पृथ्वीराज का उसके यहाँ जाना कविचन्द का चामण्डराय को उत्साह दिलाना और चामण्डराय की बेडी काटना ९५५—९६

—चावडराय के बन्धन मुक्त करने की खुशी में नक्कारे बजवाये जाना जिससे एक शिलातल से वीर भद्र नामक गण का प्रगट होना, युद्ध विषयक सब सामन्तों का मत्रणा करना, तथा युद्ध करना ही तय होना, राजकुमार रयनसिंह को राज्य पर स्थापित कर अपने भाई हरराज को राज्य का प्रबन्धक नियुक्त करना, सभा विसर्जित कर रावलजी को उनके डेरे पर पहुँचा प्रात काल होने पर शीघ्र ही चढाई करने के लिये सबको सूचित कर अपने महल को आना, प्रात काल होने पर पृथ्वीराज का चढाई करना, रानियों का का व्रत ग्रहण करना पावस पुण्डीर का भी युद्ध मे आकर सम्मिलित होना, हाहुलीराय हम्मीर को समझाने के लिये कविचन्द को उसके पास भेजना और हम्मीर तथा कविचन्द मे प्रश्नोत्तर, ध्यानावस्थित कविचद को हम्मीर द्वारा जालपा देवी के मदिर मे बन्द कर देना गौरीशाह का सतलज स्थान से सधि विषयक पत्र लिखकर पृथ्वीराज के पास भेजना किन्तु इस प्रस्ताव को पृथ्वीराज द्वारा ठुकरा देना, यह जानकर गौरीशाह का युद्धार्थ आगे बढना ९९७–१०६०

—रावलजी और पृथ्वीराज का कवच धारण कर युद्धार्थ तैयार होना, युद्धारम्भ से पूर्व रावलजी का हिन्दूवीरों को वीरोचित

को तोड देना - चद्रसेन, ठठरीराय, टाक चॉटा का भी पृथ्वीराज की रक्षा करना, बधन मुक्त होकर पृथ्वीराज का फिर से युद्ध करना, राजा की रक्षा हेतु जाजराय यादव, पीपा और सिंहा प्रतिहार, देवराय दाहिया आदि सतरह सामन्तों का मारा जाना, अन्त में इकत्तीस योद्धाओं को मार कर घायल अवस्था में पृथ्वीराज का पुन पकड़ा जाना, उस अवस्था मे ही गोरीशाह को पृथ्वीराज द्वारा पछाड देना, अन्त मे दस और सामन्तों सहित पृथ्वीराज का मारा जाना, शहाबुद्दीन गोरी का भी विशेष घायल हो जाने से गजनी को लौट जाना, रावल समर विक्रम के साथ पृथाकुमारी का और पृथ्वीराज के साथ उसकी दसों रानियों तथा पॉच सौ क्षत्राणियों का अपने २ पतियों के साथ सती होना, एव अन्तग्रन्थ समाप्ति का सवन । ११३६ से ११६०

पृथ्वीराज रासो

चतुर्थ भाग

(समय ५८)

दोहा

सुक बरनन संजोगि गुन, उर लग्गो छुटि बान ।
खिन खिन सल्लै वार पर, न लहै वेद विनान ॥ १ ॥

शब्दार्थः—सल्लै=चुभना, खटकना, तीव्र होना । विनान=ज्ञान, बुद्धि ।

अर्थः—कल्पना किये हुए शुक (सयोगिता की अध्यापिका के पति जिसे कल्पना शैली में गंधर्व भी मानते हैं उसके) द्वारा कहे गये संयोगिता के गुण पृथ्वीराज के हृदय में बाण की तरह प्रवेश कर गये, उसे प्राप्त करने की चिन्ता उसके हृदय में तीव्र हो गई, क्योंकि जयचन्द के समक्ष वह उसे (संयोगिता को)वेद विधि या बुद्धि-बल से प्राप्त नहीं कर सकता था ।

भय श्रोतान नरिंद मन, पुच्छै फिरि कविरज्ज ।
दिक्खावै दल पंगुरौ, धर ग्रीखम कनवज्ज ॥ २ ॥

शब्दार्थः—श्रोतान=श्रोतानुराग । पुच्छै=पूछने लगा । फिरि=फिर, पुन. । कविरज्ज=कविराज । दल पगुरौ=जयचन्द ।

अर्थः—मन में श्रोतानुराग होने पर राजा ने पुन. कविचन्द से कहा-हे कवि ! दल-पंगुर (जयचन्द) नरेश और कन्नौज को क्या तुम ग्रीष्म ऋतु में बतला सकते हो ?

कवित्त

दीसै बहु विध चरिय, सु अन नर दुअ न भनिज्जै ।
वल कलियै अप्पान, किति अप्पनी सुनिज्जै ॥
हिंडिज्जै तिहि काज दुक्ख सुक्खह भोगिज्जै ।
तुच्छ आव ससार, मनोरथ चित पोखिज्जै ॥
दिक्खि यै देस कनवज्ज वर, कही राज कवि चंद पहि[1] ।
मुक्कही-सूर छल संग्रहै, पग दुरस्सन तत्त लहि ॥ ३ ॥

[1] प्रा० पा० १ सं० ।

शब्दार्थः—दीसे=दिखाई देंगे। सु-अन=वैसे अन्य। दुअ न=दूसरे नहीं। भनिज्जै=कहे गये। कलियै=करिये, करें। अप्पान=अपना। कित्ति=कीर्ति। सुनिज्जे=सुनी जाय। हिंडिज्जै=चले। आव=आयु। पोखिज्जै=पोखें, पूर्ति करें। पहि=पास, से। मुक्कही सूर=वीर वेश छोड़कर। सग्रहै=करें। तत्त=तत्व युक्त। लहि=पा सकें।

अर्थः—कन्नौज जाने पर वहाँ के विशेष चरित्र दिखाई देंगे, उनके समान अन्य देशवासी मनुष्य नहीं कहे जाते। वहाँ अपना भी बल प्रयोग कर सकेंगे, जिमसे ससार मे अपनी कीर्ति सुनाई देगी। जिस कार्य के हेतु जाना है, उसके लिये दु ख-सुख सहन करना पडेगा। ससार में आयु ता तुच्छ है, इसलिये मनोरथ की पूर्ति करनी चाहिये। अत कन्नौज की श्रेष्ठता देखनी चाहिये। यह बात पृथ्वीराज ने कविचन्द से कही और आगे कहा कि पगुराज के दर्शन करने में आपत्ति हो तो वीर वेश त्याग कर छद्म वेश तक सजने को भी मैं तत्पर हूँ।

दोहा

सुनिय सुकवि इह चद वच, ना बुल्ल्यौ सम-राज।
अबुज को दोऊ कठिन, उदय अस्त रवि-राज ॥ ४ ॥

शब्दार्थः—वच=वचन। सम-राज=राजा के समक्ष। रवि-राज=सूर्य और राजा।

अर्थः—राजा के इन वचनों को सुनकर कवि चन्द उसके समक्ष कुछ नहीं बोला, किन्तु उसकी दशा सूर्योदय और सूर्यास्त के समय होने वाले कमल के समान दिखाई दी (अर्थात् कुछ खिलता हुआ और कुछ मुरझाया हुआ दिखाई दिया। युद्ध से राजा की कीर्ति होने की प्रसन्नता और विशेष वीरों के मारे जाने की उदासी ने उसे दुविधा-ग्रस्त कर दिया)।

श्लोक

गमन न क्रियते राजन्, सूर सामन्तमेवच।
प्रस्थान च प्रयाण च, राज मध्ये गत तदा ॥ ५ ॥

प्रा० पा० १ का० पा०।

शब्दार्थः—गमन=जाना। क्रियते=करना चाहिये।

अर्थ—कवि चन्द ने राजा से कहा-कन्नौज जाना ही हो तो समस्त वीर सामता के साथ नहीं चलना चाहिये। मुहूर्त साध कर प्रयाण करना हो तो सामान्य रूप से तय्यारी कीजिये, तभी हम कन्नौज राज्य में प्रवेश कर सकेंगे।

दोहा

पुच्छि गयौ कवि चंद कौं, इछिनि महल नरिंद।
सुन्दरि दिसि कनवज्ज कौं, चलै कहै धर-इंद ॥ ६ ॥

शब्दार्थः—पुच्छि=पूछकर, संमति लेकर। धर-इंद=पृथ्वी का राजा, पृथ्वीराज।

अर्थः—इस प्रकार कवि चंद से सम्मति लेकर राजा, पृथ्वीराज ने रानी इच्छनी के महल में प्रवेश किया और कहा—हे सुन्दरी! इस पृथ्वी का राजा (पृथ्वीराज) तुमसे कन्नोज जाने की सम्मति चाहता है।

इन रिति सुन चाहुआन वर, चलन कहै जिन जीउ।
हौं जानू पहिलैं चलै, प्रान प्रयान की पीउ ॥ ७ ॥

शब्दार्थः—इन=इस। रिति=ऋतु। जीउ=जीव, आत्मा। पीउ=पिय, पति।

अर्थः—रानी बोली—हे श्रेष्ठ चौहान! इस वसंत-ऋतु में आपको विदाई देने के लिए जी नहीं चाहता है। मैं समझती हूँ कि आपके कन्नोज प्रस्थान करने के पूर्व ही मेरे प्राण चले जायँगे।

प्रान ज्वाब दूनौं चलै, आन अटक्कै घट।
निकसन कौं झगरो पर्यो, रुक्यौ गद्गगद कंठ ॥ ८ ॥

शब्दार्थः—ज्वाब=जवाब, उत्तर। दूनौं=दोनों। घंट=घट, कंठ।

अर्थः—यह कहते ही उसके शरीर से प्राण और प्रत्युत्तर दोनों रानी के कंठ में आकर रुक गये। प्राण चाहता था मैं पहले निकलूँ और प्रत्युत्तर चाहता था मैं पहले। इस झगडे में उस सुन्दरी का कंठ गद्गद् हो गया।

माटक

स्यामंग कलधूत नूत सिखरं, मधूरे मधू वेष्टिता।
वातं सीत सुगंध मंद सरसा, आलोल सचेष्टिता ॥
कंठी कंठ कुलाहले मुकलया, कामस्य उद्दीपने।
रत्ते रत्त वसंत मत्त भरसा, संजोग भोगायते ॥ ९ ॥

शब्दार्थः—स्यामग=श्यामवर्ण । कलधूत=कलधौत, सुवर्ण । वाते=वात, पवन । आलोर रहित, मद २ । स चेष्टिता=अनुभव कराता हुआ । कठी=अच्छे कठवाली कोकिला । कोलाहल । मुकलया=खिली हुई कलियां । रत्ते=रगीली । वसत=वसत ऋतु ।

अर्थः—गिरि-शिखर नूतन पल्लवों के कारण श्याम और स्वर्णिम वर्ण (युक्त हो रहे हैं और मधुर मधु से वन और उपवन आवेष्टित हैं । शीतल, सुगधित समीर सरसता का अनुभव कराता हुआ मद २ बहता है । कोकिलों स्वरों का कोलाहल और मुकुलित कलिया कामोद्दीपन कराती हैं । इस रगी ऋतु में हे मतवाले ! रसिक-दपति अनुरक्त होकर सयोग-सुख प्राप्त करते हैं

करता हुआ
त्रि सपत्ति
ली हो या
। जाते हैं ।
मालाओं के

कवित्त

मवरि अब फुल्लिग कदब, रयनिय[1] दिघ दीसं ।
भवर भाव — भुल्लै भ्रमत, मकरदव सीस ॥
वहत बाउ उभझलति मौर, अति विरह अगनि किय ।
कुहकुहत कलकठ, पत्त[2]-राखस रति अत्तिय[3] ॥
पय-लग्गि प्रान पति वीनवौं, नाह नेह मुझ चित धरहु ।
दिन दिन अवद्धि जुब्बन घटय, कत वसत न गम करहु ॥ १० ॥

॥

न, पश्चात
पु डीरनो

प्रा० पा० १, ४ पा० । २ पा० का० । ३ स० ।

शब्दार्थः—मवरि=मोर बौर (मजरी) । अब=आम्र । भवर=भ्रमर । भाव-भुल्लै=विचार शून्य, वेसुध । उभझलति=झलती, हिलती । मौर=मजरी । पत्त-राखस=राकापति, चन्द्रमा । पय लग्गि=पांव छूकर । नाह=नाथ स्वामी, पति । जुब्बन=यौवन । गम=गमन ।

अर्थः—आम्र वृक्षों पर बौर (आम्र मजरी) फूले हुए हैं, कदम्बों की श्यामलता इतनी बढ गई है मानों दीर्घ (काली) यामिनी हो, मकरद के वशीभूत होकर भ्रमर भाव भूल कर (वेसुध होकर) भ्रमण कर रहे हैं (उसे किसी कुसुम का ध्यान नहीं है, इससे उस पर भ्रमण करता है), पवन के बहने से मजरियाँ इधर-उधर डोल रही हैं जिससे विरह प्रज्ज्वलित होता है, कोकिलायें कुहुक रही हैं और राकापति (चन्द्रमा) भी दाम्पत्य प्रेम की वृद्धि दे रहा है। इसीलिये हे प्राण नाथ ! मैं आपसे चरण छूकर विनय करती हूं कि मेरे विशेष स्नेह को चित्त मे स्थान दीजिये, क्योंकि यौवन की अवधि दिनों दिन कम होती जारही है । हे स्वामिन ! वसन्त मे गमन मत कीजिये ।

म्र-मवरि=मंजरियाँ। भय=हुई। विर हीना=विरहिनी। भाग=दौड़ कर। भोगीजन=कामी

शब्दार्थः वर लगि=लिपट जाता है। समूह=भ्रमर-समूह। सीत=शीत, कँपकँपी, काँप उठना।

के समान तुर (नवोढा)। लत परी=आदत होती है। पवित=पवित्र। हरुग्र=इच्छा करते हुए।

अर्थः— ंजरियों पर होता हुआ श्रेष्ठ पवन आगे बढ़कर मकरंद युक्त कमल कलियों

पृथ्वी पर है, जिससे सौरभ फैलने पर अलि गण गुंजार करते हुए उस ओर ऐसे

और रात्रि मानों डगमगाती हुई विरहिणी के समीप उसका कामी पुरुष दौड़ कर आ

की प्रखर कि ह भ्रमर-समूह लता से लिपट जाता है जिससे लतिका इस प्रकार कंपित

न्च रहा-है नों भयातुर बाला (नवोढा) पति-स्पर्श से काप उठी हो। अलि-पंक्ति

में प्राय. समस्त पुष्पों से (दक्षिण नायिक सा) प्रेम करने को आदत होती है।

अतः वे उस स्नेह रूपी जल (पुष्परस) से शरीर को पवित्र कर कमल पुष्प की

इच्छा से क्षण भर में सपुष्प लता-कुंज से बाहर निकल आते हैं और संचरित

शीतल, मंद और सुरभित पवन की बहार लेने लगते हैं।

साटक

लै वध सुर थट्ट डकित मधू, उन्मत्त भ्रंगी घुनं[1]।
कदर्पं[2] सुमनो-वसत रमन, प्राप्तो धन पावन॥
काम तेग मन धनुख्ख सजन, भीत वियोगी मुनी।
विरहिन्या तन ताप पत्त सरसा, सजोगिनी सोभन॥ १२॥

प्रा० पा० १ पा० का०। २ पा०।

शब्दार्थः—लै वध सुर=स्वर लहरी बाँधकर। थट्ट=समूह। डकित मधू=मधुपान करता हुआ। कदर्प=कामदेव। सुमनो-वसत=पुष्पित वसत। रमन=क्रीड़ा करना। धन=संपत्ति। पावन=पवित्र। मनं=मानों। पत्त=पहुचता, प्राप्त होता। सरसा=सरसता।

त, पवन । आलोल=च
मवाली कोकिला । कुला
ऋतु ।
विषम वर्ण (ताम्र
। शीतल, मद
वर्ष। कोकिलों के
ते। इस रगीली
करते है ।

अर्थः—उन्मत्त भ्रमर समूह स्वर लहरी (समा) बांधकर ध्वनि कर रहा है। ऐसी सुपुष्पित वसत ऋतु मे काम-क्रीडा करने प्राप करना है। यह ऋतु क्या है मानों कामदेव ने अपनी तलवा धनुष चढाया हो, जिसके भय से वियोगी और योगी दोनों ही भय हे प्यारे। इस ऋतु में विरहिणी बालाओं के तन सतप्त और सयो तन सरस होते है।

दोहा

इहि रितु[1] रष्षिय इछिनिय, भय ग्रीखम रितु चारु।
काम रूप करि गय नृपति, पुडीरनी दुआरु[2] ॥ १३ ॥

प्रा० पा० १ का० । २ स० ।

शब्दार्थः—गय=गया । दुआरु=द्वार ।

अर्थः—इस प्रकार राजा उस वसत ऋतु में रानी इच्छनी के महल मे रह ग्रीष्म ऋतु के आगमन पर साक्षात काम-स्वरूप होकर राजा पृथ्वीराज रा के महल में पहुँचा ।

॥ १० ॥

सुनि सुन्दरि पहु पग की, दिसि चालन कौ सज्ज ।
वर उत्तम धर दिष्षियै, पिख्खन भर कनवज्ज ॥ १४ ॥

शब्दार्थः—सज्ज=साज, सजा । पिख्खन=देखना, परखना ।

अर्थः—हे सुन्दरी चद पुडीर की दुलारी । मैंने पगुराज (जयचद) पर चढाई की है, क्योंकि मैं कन्नौज देखना और वहा के सामन्तो को परखना चाहता हूँ ।

नृप ग्रीखम ग्रिह सुख्ख नर, ग्रेहनि मुक्कि न राज[1] ।
गोमगाम छादिय अमर, पथ न सुभ्भै आज ॥ १५ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—ग्रेहनि=गृहिणी । मुक्कि न=मतछोडो । गोमगाम=धूलि और धूप । छादिय=आच्छादित छाया हुआ । अमर=अबर आकाश ।

अर्थः—पुडीरनी कहने लगी—हे राजन ! मनुष्यों का ग्रीष्म मे घर में ही सुख मिलता है। अत आप घर और गृहिणी को न छोडें, क्योंकि धूलि और भयकर धूप आकाश मार्ग मे फैली हुई है जिससे इस समय रास्ता भी नहीं सूझ सकता है ।

कवित्त

दीरघ दिन निस हीन, छीन जल धर वैसन्नर ।
चक्रवाक चित मुदित, उदित रवि थकित पंथ नर ॥
चलत पवन पावक समान, परसत सु ताप मन ।
सुकत सरोवर मचत कीच, तलफंत मीन तन ॥
दीसत दिगंबर सम-सुरत, तरु लतान गय पत्त झरि ।
अकुलंत[१] दीह सपति विपति, कत गमन ग्रीखम न करी ॥ १६ ॥
ग्रा० पा० १ पा०

शब्दार्थ:—वैसन्नर=वैश्वानर, अग्नि । थकित=श्रमित । सुकत=सूखते । सम-सुरत=सुरति सुख के समान ।

अर्थ:—दिन बड़ा और रात्रि छोटी होने लग गई तथा जल भी सूख रहा है। पृथ्वी पर आग (की सी ज्वाला) बरस रही है। चकवा चकवी के चित्त (दिन बड़ा और रात्रि छोटी होने, अधिक समय तक मिलने की इच्छा से) प्रसन्न हैं। सूर्योदय की प्रखर किरणों के कारण पथिक अधिक श्रमित हो जाते हैं अग्नि के समान पवन चल रहा है। जिसके स्पर्श से शरीर को ही नहीं अपितु मन को भी संताप होता है। सरोवर के सूखने से कीचड़ होगया और मछलिया तड़फड़ा रही हैं। तरु और लताओं के पत्ते झड़ गये हैं, जिससे ऐसा दिखाई पड रहा है, मानो तरुलता दिगम्बर होकर सुरति का सुख भोग रहे हैं। सम्पत्तिवान और विपत्तिवान दोनों ही दिन भर तप्त से व्याकुल हैं ऐसी ग्रीष्म मे हे प्यारे ! गमन मत करो ।

साटक

दीहा दिग्घ सदग कोप अनिला, आवर्त मित्ता कर ।
रेन सेन दिसान थान मलिन[१], गोमग्ग आडम्बर ॥
नीरे नीरभ्र पीन छीन छप्पया, तपया तरुण्या तन ।
मलया चन्दन चन्द मन्द किरन, ग्रीष्म च आखे वन ॥ १७ ॥
ग्रा० पा० १ पा० का० ।

शब्दार्थ:—दीहा = दिन । सदग = चिनगारी युक्त, अग्नि युक्त । अनिला = पवन । आवर्त=घिर । मित्ता = मित्र, सूर्य । कर = किरणें । रेन-सेन = रात्रि में ही सो सकते हैं । गोमग्ग = आकाश मार्ग ।

आडम्बर=धूलाच्छादित, धूल से आच्छादित । नीरे=समीप । नीरस=नीरज, कमल । पीन=पति पास में नहीं । छपया=छपा, रात्रि । आखेवन=वे कहे जाते, वे कही जाती ।

अर्थः—दिन बड़े हो चुके हैं, पवन ऐसा मालूम होरहा है मानों वह अग्नि कण युक्त संचार कर रहा हो। सूर्य की प्रखर किरणों से सारा संसार घिरा हुआ है, रात्रि मे ही कुछ नींद ली जा सकती है, दिशायें धूल से मलिन हो रही हैं। आकाश मार्ग में भी रज राशि छाई हुई है। तप्त (गर्मी) को मिटाने के लिये कमल पुष्प सदा नजदीक ही रखने पडते हैं जिस बाला का पति पास नहीं है वह विरह वेदना से क्षीण होती जाती है। ऐसी तरुणियों के शरीर संतप्त (दुःखी) रहते हैं। मलय चन्दन और चन्द्र की किरणें भी उनके ताप को दूर नहीं कर सकती, क्योंकि ग्रीष्म की तप्त किरणों के सामने वे भी अपने गुणों से हीन कही जाती हैं।

कवित्त

पवन त्रिविध गति मुक्कि, सेन भुअ पत्ति जूथ चलि ।
बिरही जामबर कदन, मदन मैमत पील ह्लि ॥
पथिक बधू सभरैं[1], आस आवन चदाउन ।
जो चालै चहुआन (तौ), मरैं उर फट्टि वरननि[2] ॥
मन भुअन आन दैतो फिरै, प्रिय आगम गज्जे मयन ।
कता न मुक्कि वर कित्ति गर, कहूं सुनौ सोनिय बयन ॥ १८ ॥

प्रा० पा० १, पा० का० । २ पा० ।

शब्दार्थः—जाम=यामिनी, रात्रि । बर=बल । कदन=नाश । मैमत=मतवाला । पील=हाथी । हलि=चला । बरननि=वराननी, सुमुखी । मन भुअन=मन भवन, मन मंदिर । आन=दुहाई । गज्जे=गर्जना, उर्ध्व घोष । कता=पति, स्वामी, प्यारा । वर कित्ति=श्रेष्ठ कीर्तिवान । गर=गले में । सोनिय=श्रवन, कान ।

अर्थः—मन्द, सामान्य और तीव्र गति के अतिरिक्त भी विशेष गति प्राप्त कर पवन चलता हुआ ऐसा दिखाई देता है मानों किसी बलवान राजा की सेना का यूथ चल रहा हो। विरही जनों के लिये ये रात्रियाँ इस प्रकार दिखाई पड़ती हैं मानों कामदेव का मदमस्त हाथी उनके बल नाश के लिये बढ़ा हो राहगीरों द्वारा चन्द्र-वदनी नव-वधुएँ उनके पति के आने की चर्चा सुनकर उनके घर आने की आशा

में लगी हुई हैं। ऐसे समय हे प्यारे चाहुवान ! यदि आप विदा होंगे तो आपकी इन सुमुखी (वराननी) प्रियाओं के हृदय फटकर मृत्यु को प्राप्त होंगी। इस समय विरहिनी बालाओं के मन-मंदिर में ऊर्ध्व स्वर से दुहाई देता हुआ प्रियतम के आगमन की आशा बँधाता है। हे श्रेष्ठ कीर्तिवान प्यारे ! इस विषम काल में आप अपनी प्यारी से दूर न होइये, मैं आपके कानों तक यही पुकार पहुँचाना चाहती हूँ।

खिन तरुनी तन तपै, वहै नित वाव रयन दिन।
दिसि च्यारों परजलै, नहीं कहुँ[1] सीत अरध खिन॥
जल जलंत पीवंत, रुहिर निसि वासनि घट्टै।
कठिन पंथ काया कलेस, दिन रयनि सु[2] घट्टै॥
त्रिय लहै तत्त अक्खर कहै, गुनियन ग्रव्व न मढियै।
सुनि कंत सुमति संपति विपति, ग्रीखम ग्रेह न छंडियै॥ १६॥

प्रा० पा० १ पा० का०। २ पा०।

शब्दार्थः—खिन = खिन्न। वाव = वायु। परजलै = प्रज्वलित, जलती। जलत = उबलता हुआ। रुहिर = रुधिर। वासनि = वासर, दिन। घट्टै = घटता, सूखता।

अर्थः—जिन तरुणियों के पति विदेश में हैं, वे शरीर से सतप्त होकर खिन्न हो जाती हैं, पवन रात दिन चल रहा है। चारों दिशायें जलती हुई सी दिखाई देरही हैं। क्षण मात्र के लिए भी कहीं शीतलता नहीं दिखाई देती। उबलता हुआ जल पीने को मिलता है, गर्मी के कारण खून भी सूख रहा है और रास्ते चलने में शरीर धारियों को रात दिन भयंकर कष्ट का सामना करना पड़ता है। यही सोच समझ कर मैं आपको तत्व युक्त बात कहती हूँ कि आप गुणी जनों के गर्व में मुझे मत भूलिये। (चन्द आदि के कहने पर आप इस ऋतु में प्रयाण मत कीजिये)। हे प्यारे ! सुमति के साथ ही सपत्ति है, अन्यथा विपत्ति से सामना करना पड़ता है। अतः आप ग्रीष्म काल में घर न छोड़ें यही मेरी प्रार्थना है।

दोहा

मानि रूप-मानिनि वचन, रहि ग्रीखम वर नेह।
पावस आगम घर अगम, गय इंद्रावति गेह[1]॥ २०॥

प्रा० पा० १, पा०।

शब्दार्थः—रूप-मानिनि=रूप गर्विता। धर अगम=अगम्य पृथ्वी (जल प्रवाह के कारण स्थल का ज्ञान नहीं हो पाता)।

अर्थः—रानी पुण्डिरनी जो रूप गर्विता थी, उसके वचनों को मान कर राजा बड़े स्नेह के साथ ग्रीष्म ऋतु में उसके यहाँ रहा और वर्षा के आगमन पर जब जल प्रवाह के कारण स्थल का ज्ञान नहीं होता था, उस समय राजा पृथ्वीराज रानी इन्द्रावती के महल मे आया।

पीय वदन सो प्रिय परखि, हरख न भय सुनि गौंन।
आसू मिसि असु-उप्पटै, उत्तर देय सलोन ॥ २१ ॥

शब्दार्थः—वदन=आनन मुख। प्रिय=प्रिया। परखि=परख लिया, समझ लिया। गौंन=गमन। आसू=अश्रु। असु-उप्पटै=शरीर से प्रगट हो गया। सलोन=सलोनी।

अर्थः—पति के मुख को देखकर ही रानी समझ गई कि ये विदाई चाहते हैं– इस प्रकार संकेत मात्र से गमन सुनकर उसे हर्ष नहीं हुआ। उस सलोनी बाला ने भी जबान से उत्तर न देकर आंसुओं की झड़ी के द्वारा ही विदाई के लिये निषेध किया।

साटक

अब्दे वद्दल मत्त मत्त विसया, दामिन्य दामायते।
दादूर दर मोर सोर सरिसा, पप्पीह चीहायते ॥
शृंगारीय वसुन्धरा मलि लता, लीला समुद्रायते।
जामिन्या मम वासुरो विसरता, पावस्स पथायते ॥ २२ ॥

शब्दार्थ—अब्दे=आकाश में। मत्त=मतवाला हाथी। बिसया=विलासी। दामायते=दमक रही है। दर=दल, समूह सरिसा=सारस। पप्पीह=पपीहे। चीहायते=बोल रहे। मलि लता=मिलकर। लीला=क्रीड़ा। विसरता=भूल जाते है। पथायते=राहगीर।

अर्थः—रानी इन्द्रावती कहने लगी, हे प्रियतम! आकाश मे विहार करने वाले बादल जो मतवाले हाथी तुल्य है उन्हे देखकर विलासी मतवाले हो रहे हैं। दामिनी दमक रही है, दादुर, मोर, सारस और पपीहों के दल शोर कर रहे हैं, लतिकाओं ने मिलकर वसुन्धरा का शृंगार कर दिया। सरिता, समुद्र-संयोग से क्रीडा-युक्त दिखाई देती हैं और पथिकों को दिन रात्रि के समान दिखाई पड़ता है जिससे वे रास्ता भूल जाते हैं।

कवित

मग सज्जल सुसमैन, दिसा धुंधरी सघन करि।
रति पहुँवी किय[1] चरित, लता तरु वींटि सुमन भरि॥
आलिंगत धर अम्भ, मान माननि[2] ललचावत।
वर भद्दव[3] कद्दव[4] मचंत, कद्दव[5] विरुझावत॥
चतुरग सैन वै गढ ढहन, घन सज्जिय नृप चढन[6] तिन।
भरतार सग वंछै त्रिया, विन कतार भ्रत्तार विन॥२३॥

प्रा० पा० १ का०। २ से ६ ना०।

शब्दार्थः—चरित=चरित्र, लीला, क्रीडा। भद्दव=भाद्रपद। कद्दव=कादव, कीचड़। विरुझावत=फँस जाते। वै गढ=तरुणाई रूपी दुर्ग। ढहन=ढहाने के लिए। भरतार=भर्ता, पति। कतार=ईश्वर।

अर्थः—सजल होने से मार्ग नहीं दिखाई देता और गहरे बादलों से दिशायें धुंधली दीख पडती हैं। पृथ्वी ऐसी दिखाई देती है मानों बादलों से रति क्रीडा की हो। लतायें वृक्षों से पुष्पित हों (मन भरकर) चिपट रही हैं। पृथ्वी आकाश द्वारा आलिंगित है। यह देखकर मानिनी स्त्रियां ललचा कर मान परित्याग करती हैं। श्रेष्ठ भाद्रपद में कीच फैल जाता है, पथिक उसमे फँस जाते हैं। राजाओं के समान ही बादलों ने चतुरगिनी सेना तरुण पन रूपी ढहाने के लिये सजाई हो, ऐसा भास होता है। हे प्यारे! ऐसी ऋतु मे स्त्री पति का साथ चाहती है और ऐसे समय में विना पति वाली स्त्री विना ईश्वर के है।

घन गरजै घरहरै, पलक निस रेनि न घट्टै।
सजल सरोवर पिक्खि, हियौ ततछन घन[1] फट्टै॥
जल वद्दल वरखत, पेम पल्हरै निरतर।
कोकिल सुर उच्चरै, अग पसरत[2] पचसर॥
दादुरह मोह दामिनि दसय, अरि चमथ्थ चातक रटय।
पावस प्रवास[3] वालम न चलि, विरह अतनि तनतर थटय[4]॥२४॥

प्रा० पा० १ पा० का०। २, ४ पा०। ३ म०।

शब्दार्थः—पलक=पलकों के सामने। निस=निशि, रात्रि। रेनि न=रात्रि नहीं होते हुए भी, दिन में ही। घट्टै=घट जाती है, छा जाती है। पल्हरै=आर्द्र होता, भीजना। पसरत=फैल जाता। पचसर=कामदेव। दसय=डसती, काटती। अरि=अड़कर। चमथ्थ=चारों ओर।

अर्थः—उमड़ घुमड़ कर बादल गरजते हैं, जिससे (विरहिनी) रमणियों की पलकों के सामने रात्रि छाजाती है और रात्रि व्यतीत करना मुश्किल होजाता है। सजल तालाबों को देखकर हृदय विशेष रूप से फटने (फिरने) लग जाता है। बादलों से जल बरसता देखकर दम्पति निरन्तर प्रेम में लिप्त हो जाते हैं, कोकिला की स्वर-धुनि से शरीर में कामदेव प्रसार पाता है। दादुर, मोर और दामिनि कलेजे को काटती हैं। चारों ओर अड़ कर पपीहे पी २ रटते हैं। हे प्यारे! ऐसी पावस ऋतु में प्रवास न कीजिये, क्योंकि विरहाग्नि शरीर को संतप्त कर उसका नाश कर देती है।

घुमड़ि घोर घन उमड़ि,[१] करत आडम्बर अमर।
पूरत जलधर धसत-धार, पथ थकित दिगंबर॥
झझकित द्रिग सिसु म्रग समान, दमकत दामिनि द्रसि।
विहरत चात्रग चवत पीय, दुखत सम-निसि॥
ग्रीखम विरह द्रुम लत्त तन, परिरभन क्रत सेन हरि।
सज्जत काम निसि पच सर, पावस प्रिय न प्रवास करि॥ २५॥

प्रा०पा०१, पा०का०।

शब्दार्थः—पथ थकित=रास्ते से स्थगित, प्रवास से मुक्त। द्रसि=देखकर। चात्रग=चात्रिग। चवत=बोलते हैं। दुखत=दुःखी करते। सम-निसि=सारी रात्रि। लत्त=लता। क्रत=करते। सेन=सयन।

अर्थः—बादल उमड़ धुमड़ कर गर्जते हुए आकाश-मण्डल में आडम्बर कर रहे हैं, उनकी जल-धारा पृथ्वी में प्रवेश कर जाती है। दिगम्बर (नग्न साधु) प्रवास से मुक्त हैं। वियोगिनी बालाओं के द्दग दमकती हुई दामिनी को देखकर मृग शावक के समान झिझकते हैं, और वे विचरते हुए चातकों के पिउ २ उच्चारण से रात्रिभर अन्तःकरण से दुःखी रहती हैं। ग्रीष्म मे वृक्ष और लतिकायें विरह से दुःखी थीं, वे और स्वयं विष्णु अपनी प्रेयसी से परिरभन (आलिंगन) करते हैं। रात्रि में काम देव अपने पांचों स्वर सजाता है— ऐसे समय में हे प्यारे! प्रवास न करें।

साटक

जे विज्जुभझल फुट्टि तुट्टि तिमिर, पुन धन[१] दुरसह।
वुर्ध घोर तर सहत असह, बरखा रस स भर॥

विरहीनं दिन दुष्ट दारुन भरं, भोगीसरं सोभन ।
मा मुक्के प्रिय गोरियं च अबलं, प्रीत तया तुच्छया ॥ २६ ॥
प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—विज्झुभभ्भल=विजली । पुन=वार २ । धनं=स्त्री को । रस=रस, जल और प्रेम । सं=वह । भोगीसर=भोगी पुरुष । मा मुक्के=मत छोड़ो । तया=त्वया, तेरी ।

अर्थः—जो विजली वार २ चमक कर अँधेरे को तोड़ फोड़ कर नष्ट कर देती है । उसे देखना स्त्री के लिये दु:सह्य है । आकाश से बादल घोरतर बूँदें बरसाता है उसे भी सहना असह्य है । वह वृष्टि तालावों को ही नहीं अपितु सब को रस से परिपूर्ण कर देती है । विरही जनों को दिन दारुण (कठिन) दीख पड़ते हैं (बहुत दु:ख दाई हैं) । ये दिन सयोगी पुरुषों के लिये शोभा युक्त प्रतीत होते हैं । ऐसे समय में मुझ अबला गौरी को, हे प्यारे ! मत छोड़ो, यदि ऐसा किया तो मैं समझूंगी कि आपकी मेरे से प्रीति तुच्छ है ।

दोहा

सुनि श्रावन वरिखा सघन, सुख निवास त्रिप कीय ।
वर पूरन पावस भयौ[1], राज पयान सु दीय ॥ २७ ॥
प्रा० पा० १ पा० का० ।

शब्दार्थः—पूरन=पूर्ण, समाप्त ।

अर्थः- इस प्रकार घनघोर वर्षा की चर्चा सुन राजाने सुख भवन में निवास किया । जब पावस ऋतु पूर्ण हो चुकी तब इन्द्रावती के महल से प्रयाण किया ।

हसावति सुन्दरि सुग्रह, गयौ प्रीय प्रथिराज ।
धर उत्तिम कनवज्ज दिसि, चलन कहत नृप आज ॥ २८ ॥

शब्दार्थः—उतिम=उत्तम, पवित्र ।

अर्थः—बाद में राजा पृथ्वीराज ने सुन्दरी हसावती के महल में प्रवेश किया और बोला, यह राजा पवित्र कनवज्ज धरा की ओर चलने के लिये तुम से कहता है ।

निखि वदन प्रिय पोमिनी, फुनि जंपै फिरि वाल ।
सरद रवन्नो चद निसि, कित लम्भै छुटि काज[1] ॥ २९ ॥

शब्दार्थः—पोमिनी=पद्मिनी, कमलिनी। रवन्नो=रमणीक।

अर्थः—रानी हँसावती ने उत्तर देने से पूर्व कमलिनी की ओर देखा और फिर वह बोली, शरद की रात्रियों में रमणीक चन्द्रमाँ के सामने कौन बच सकता है और यमराज से मुक्त होकर कौन जीवन प्राप्त कर सकता है (इस पद्य में प्रत्युत्तर के पूर्व रानी हंसावती का कमलिनी की ओर देखने से यह तात्पर्य है कि—हे प्यारे! आपके बिना इस कमलिनी की दशा मेरी हो जायगी, अर्थात् शरद का चन्द्र कमल त्रासक है उसी प्रकार यह शरद चन्द्र मुझे भी त्रसित करेगा)।

साटक

पित्तो पुत्त सनेह गेह गुपता, जुगतान दिव्यानने[1]।
राजा-छत्र निसाज-राज छितिया, निंदायि नैवामने॥
कुसुमेय[2] तन चंद निम्मल कला, दीपाय वरदायने।
मा मुक्कै प्रिय बाल-नालि[3] समया, सरदाय दरदायने॥ ३०॥

मा० पा० १, २ का०। ३ पा०।

शब्दार्थः—पित्तो=पिता। पुत्त=पुत्र। गुपता=लुप्त, गुप्त। जुगता=युक्ति। राजा-छत्र=छत्र से सुशोभित। निसाज-राज=निशापति, चन्द्रमा। निंदायि=निंदा करता है। नैवामने=निर्वामित, घर छोड़कर जाने वाला। कुसुमेय=कामदेव। दीपाय=दीप्तिमान, उत्तेजित करने वाला। वरदायने=वरदान, वरदाई वर देने वाला। मा=मत, नहीं। बाल-नालि=बाला स्त्री। दरदायने=पीड़ा पहुँचाने वाला।

अर्थः—पिता पुत्र और गृह-स्नेह क्षणिक है (पति का स्नेह ही अखंड है) ऐसे समय में सुमुखी बालाओं की व्यथा दूर करने वाला एक मात्र पति ही है। निशिराज ने इस समय पृथ्वी पर राज-छत्र धारण कर लिया है। ऐसे समय में घर छोड़कर जाने वाले की वह निन्दा करता है। शरीर स्थित कामदेव को, चन्द्रमा की निर्मल कला उद्दीपन करने में वरदायी है। ऐसे समय में बाला स्त्री को हे प्यारे! मत छोड़िये, क्योंकि शरद ऋतु अधिक दर्द पैदा करने वाली है।

दोहा

आयौ सरद सु इद्दु[1] रिति, चित पिय-प्रिया सँजोग।
दिन दिन मन केली चढ़ै रस जु लाज अति भोग॥ ३१॥

मा० पा० १ का०।

शब्दार्थः—रिति=ऋतु। चित=चिन्तन। पियं-प्रिया=दम्पति।

अर्थः—शरद-ऋतु में चन्द्रोदय होने से दम्पति संयोग का चिन्तन करते हैं और दिनोंदिन मन में विलास-क्रीड़ा बढ़ती जाती है, उनमें रस, लज्जा और भोग की अधिकता दिखाई देती है।

कवित्त

पिक्खि रयनि निम्मलिय, फूल फूलंत अमर धर।
श्रवन सबद नहिं सुनै, हंस कुरलंत मान सर॥
कवल कद्रव विगसंत, तिनह हिमकर परजारै।
तुमहि चलत परदेस, नहीं कोइ सरन उबारै॥
निग्रहन रत्त भर पचसर, अरि अनंग अगै वहै।
जौ कंत गवन सरदह[1] करै[2], तौ विरहिनी सिखि ह्वै दहै॥ ३२॥

ग्रा० पा० १, २ पा०।

शब्दार्थः—अमर=अंवर, आकाश। कुरलंत=शोरगुल, आवाज। कवल=कमल। कद्रव=कीच। परजारै=प्रजारे, जलादेता है। निग्रहन=पकड़ने में। रत्त=अनुरक्त। भर=भट, योद्धा, वीर। वहै=वहन कर देते पराजित होजाते। सिखि=शिखि, मयूर।

अर्थः—निर्मल रात्रि देखकर आकाश और पृथ्वी पर सुमन पंक्ति विकसित होती है (आकाश में पुष्पवत् तारागण या आकाश कुसुम और पृथ्वी पर विविध पुष्प विकसित होते हैं) मान-सरोवर पर मराल-समूह की आवाज से अन्य कोई शब्द कान नहीं सुन पाते, पंक में कंज विकसित होते हैं, लेकिन उनको चन्द्रमा जला देता है। हे प्यारे! इस समय आप विदेश गमन करेंगे तो हमारी रक्षा के लिये कोई सहारा नहीं रहेगा। बड़े २ वीरों को पकड़ने में जो अनुरक्त हैं ऐसे वीर भी इस समय पुष्प के पांच शर रखने वाले अनंग के सामने पराजित होते देखे गये हैं। ऐसी शरद ऋतु में यदि जिस स्त्री का पति प्रवास करता है तो वह विरहिणी मयूर के समान अपने शरीर को जलाती रहती है (मयूर-नर-मादा के लिये प्रसिद्ध है कि उनका समागम नहीं होता—इसीलिये मयूरों का नाम पंडितों ने विरही-रक्खा है)।

द्रप्पन सम आकाश, श्रवत जल अमृत हिमकर ।
उज्जल जल सलिता सु, सिद्धि सुंदर सरोज सर ॥
प्रफुलित ललित लतानि, करत गुंजारव भमर ।
उदति सित्त निसि नूर, अगि अति उमगि अग बर ॥
तलफंत प्रान निसि भवन तन, देखत दुति रिति मुख जरद ।
नन करहु गवन नन भवन तजि, कत दुसह दारुन सरद ॥ ३३ ॥

शब्दार्थः—द्रप्पन=दर्पण । हिमकर=चन्द्रमा । सलिता=सरिता, नदी । भंमर=भ्रमर । सित्त=श्वेत, उज्ज्वल । अगि=अगद, अग से उत्पन्न होने वाला कामदेव । दुति=द्युति, प्रभा । रिति=शरद ऋतु की । जरद=पीला । नन=नहीं । गवन=गमन । दुसह=दुसह्य, असह्य ।

अर्थः—दर्पण के तुल्य आकाश स्वच्छ दिखाई देता है और चन्द्रमा अमृत-वारि बरसाता है । सरिताओं का जल स्वच्छ हो गया है, सुन्दर समृद्धि तुल्य तालाबों मे कमल और लतायें प्रफुल्लित हैं । उन पर भ्रमर वृन्द गुंजार कर रहे हैं—रात्रि का नूर (कांति) स्वरूप चन्द्रमा उज्ज्वलता लिये हुए उदीयमान है । उसे देखकर अग मे पैदा होने वाला कामदेव विशेष उमग फैलाता है, रात्रि में विरहिणी बालाओं के प्राण और शरीर भवन में तड़फड़ाते हैं- और शरद् प्रभा देखकर उनके मुख पीले पड़ जाते हैं- इसलिये क्षण भर के लिये भी आप भवन मत छोडिये । हे प्यारे ! यह शरद् ऋतु असह्य है ।

नव नलिनी अलि मिलहि, अलिन अलि मिलि वृत मडैं ।
तनु त्रम्मल खह चद, चरुख चक्कोर नि छडैं ॥
दुजअ लसित वर निगम, कुसुम अच्छित मुद्रावलि ।
पित्रि[२] नेह ग्रिह रचैं[३], बाल छुट्टै अलकावलि ॥
करि स्नान धोत[४] वसतर रचैं, कज बदन चित्रग धरि ।
आनूप जूप अंजन रचे, त्रिना कन तिय गुन सु गरि ॥ ३४ ॥

मा० पा० १ से ४ पा० ।

शब्दार्थः—अलिन अलि=सखियों से सखी । खह=आकाश । नि=नहीं । छडैं=टालते । दुजअ=द्विज । लसित=सुशोभित । निगम=शास्त्र । अच्छित=अक्षत । पित्रि=पितृदेव ।

रचे = सँवारती । धात = धौत, धोये हुए । चित्रग=चित्रित, सजाती । चरि = चलती, विहरती । जूप=दोनों नैत्रों में । गरि=गलजाते, वृथा हो जाते, नष्ट हो जाते ।

अर्थः—नव-कमलिनी से जाकर भ्रमर मिल रहे हैं और सखियाँ आपस में मिल कर कार्तिकेय-व्रत करती हैं । आकाश में चन्द्रमाँ की काया अति निर्मल है, उसकी ओर से चकोर अपने नैत्र नहीं हटाते । कुसुम, अक्षत और मुद्रा भेंट में प्राप्त कर श्रेष्ठ द्विज गण शास्त्रोच्चारण करते हुए सुशोभित हैं । बालायें छूटी हुई अलकावलियों से सुशोभित पितृदेव गृह की सुन्दर रचना करती हैं । फिर स्नान कर श्वेत-वस्त्र पहिन वे कमल मुखियाँ अपने अंग को चित्रित कर विचरती हैं । दोनों नैत्रों में एक ही समान अनुपम अञ्जन आँजती हैं, लेकिन जिनके पति घर पर नहीं हैं उन स्त्रियों के सभी गुण नष्ट हो जाते हैं (स्त्रियोचित श्रृंगारादि चातुरी उनकी निरर्थक हो जाती है) ।

चंद रयनि त्रिम्मली, सरिस आकासअ भासित[1] ।
पिया वदन सो चंद, दोइ कुच चिकुर प्रगासित ॥
खंजन नयनअ लोल, कीर नासा त्रम्मल मुति ।
उज्जल वस्त्र अनूप, पुहप भाजन-रजता भति ॥
नर गात त्रिमल सुन्दरि सरल, नवज्ज नेह नित नित भलौ ।
चित चतुर रीति बुझ्झै नृपति सरद दरद करि मति चलो ॥ ३५ ॥
ग्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—आकासअ=आकाश स्थित । चिकुर=केशपाश । नयनअ=नैत्र । लोल=चपल, चंचल । त्रमल = निर्मल । मुति=मोती । उज्जल=उज्ज्वल । पुहप=पुष्प । भाजन-रजता=रौप्य भाजन, चांदी के बर्तन बुझ्झै=समझिये, सोचकर स्थान दीजिये । मति=मत ।

अर्थः—जिस प्रकार निरन्तर आकाश-स्थित शरद पूर्णिमा का चन्द्र सरसता और निर्मलता युक्त उदयाचल पर भासित है, उसी प्रकार आपकी इस प्यारी का मुख-चन्द्र दोनों कुचाद्रि पर केश पाश के अन्तर्गत सुशाभित है । खंजनों के स्थान पर चचल नैत्र शोभायमान हैं । उज्ज्वलता के स्थान पर शुक-नासिका में झूमता हुआ मोती, वस्त्र, पुष्प, रौप्य भाजन औ शरीर कहा जाता है ऐसी आपकी सरल सुन्दरी का नवीन स्नेह सदा श्रेष्ठ माना गया है, अत हे राजन् ! चित्त में चतुरपने को स्थान दीजिये और शरद ऋतु में अपनी प्यारी को छोड़कर मत जाइये ।

दोहा

हिम आगम बित्तें सरद, गवन चित्त न्रप इंद ।
पुछ्न कुरभी महल गय, सरद मेह वर चंद ॥ ३६ ॥

शब्दार्थः—पुछ्न=पूछने, विदा लेने के लिये। कुरभी=कछवाही रानी।

अर्थः—शरद-ऋतु के बीत जाने और हेमन्त के आगमन पर राजाओं का राजा पृथ्वीराज, कन्नौज की ओर जाने का विचार कर रानी कुरम्भी के महल में उससे बिदा मागने को शरद के चन्द्रमा के समान होकर गया।

साटक

छीने[१] वासर[२] सीत दिद्ध निसया, सीतंज नेतवने ।
सेज सज्जर वान-या बनितया, आनग आलिंगने ॥
यों वाला तरुनी वियोग पतन, नलिनी दहते हिम ।
मा मुक्के हिमवंत मत गमने, प्रमदा निरालम्बन ॥ ३७ ॥

प्रा० पा० १, २ पा०।

शब्दार्थः—सीत=शीत, पाला। सोतज=शीतग, पागलपन। नेतबने=नितम्बिनी। सज्जर=सजकर। वान-या=इस तरह से। आनग=अनग, कामदेव। मत=मंत्रणा, विचार।

अर्थः—तब रानी कहने लगी-हेमन्त-ऋतु में दिन छोटे और रात्री लम्बी हो गई है। पाला अधिक पड़ने लगा है जिससे नितम्बिनियां पगली सी हो रही हैं, जिनके पति पास मे हैं, ऐसी युवा प्रमदायें अच्छे ढग से शैया सजाकर अनग (कामदेव) के वश मे होती हुई प्यारे का आलिंगन करती हैं। वियोगिनी बाला-तरुणियों का पतन इस प्रकार हो जाता है। जिस प्रकार हेमन्त मे पाले के कारण कमलिनीया जल जाती हैं-इस लिये हे प्यारे! प्रवास करने की सोचकर इस हेमन्त मे हमे मत छोड़ो, क्योंकि पति-विहीन प्रमदा ऐसे समय मे निराधार कही गई है।

कवित्त

देह धरें दो गत्ति, भोग जोगह तिन सेवा ।
कै बन कै वनिता सुरग[१], अगनि तप कै कुच लेवा ॥

गिरि कदर जल पान[2], पियन अधरा रस भारी ।
जोगि नीद मद उमद, कैछ्गन वसन सवारी ।।
अनुराग बीत कै राग मन, बचन तीय गिर भरन रति ।
ससार विकट इन विधि तिरय, इही विधी सुर अरु[3] असुर अति ।। ३८ ।।

ग्रा० पा० १ से ३ पा० ।

शब्दार्थः—दो गति=दो प्रकार मे गति । लेवा=गृहण करें । कैछ्गन=कृशाङ्गी । अनुराग बीत=वीतराग, सन्यास । तिरय=पार करना ।

अर्थः——देह धारी मनुष्यों को दो प्रकार की गति है एक तो भोग की और दूसरे योग की उपासना करे । बन में बसे या वनिता के पास रहे, अग्नि तापें या कुच गृहण करे, गिरि कन्दरा में बहते हुए गिरिजल का या अधर रस का पान करे, योग निद्रा के वश में या श्रृंगार युक्त कृष शरीर (पतली) वनिताओं के मद में मतवाला रहे । वीतरागी बने या रागी मन का होकर रहे । वनिता के शातिप्रद वचनों से रति करे या गिरि श्रोताओं से प्रेम करे । इस विकट ससार को क्या मनुष्य, देवता और दानव सब कोई इस प्रकार पार कर सकते हैं ।

रोमावली वन जुथ्थ, बीच कुच कूट मार गज ।
हिरदै उज्जल[1]जल[2] विसाल,चित्त आराम मडियज्ज ।।
विरह करन क्रीलई, सिद्ध कामिनी भरक्कै ।
तौ चलत चहुआन, दीन छडै पै रुक्कै[1] ।।
हिमवत कत मुक्कै न त्रिय, पियापन्न पोमिनि परख ।
ग्रहि कठ कठ ऊठन अवनि, चलत तोहि लगि वाड रुख ।। ३६ ।।

ग्रा० पा० १ से ३ पा० ।

शब्दार्थः—कूट=पर्वत । मार=कामदेव । आराम=बगीचा । मडियज=लगा हुआ । करन कीलई=विरह क्रीडा करना । भरक्कै=भयभीत होती । रुक्कै=ठहरेंगे । हिमवत=हेमत । पियापन्न=पतिपन । पोमिनी=पद्मिनी । परख=देखिये । ग्रहि कठ कठ ऊठन=गले में भुजपाश डालकर उठते बैठते । रुख=तरह ।

अर्थः——स्त्रियों के शरीर पर रोमावली ही सघन जगल, कुच ही पर्वत, कामदेव ही हाथी, उज्ज्वल हृदय ही विशाल जलाशय और चित्त ही जहा सुन्दर आराम (बाग)

है। वहाँ जब विरह क्रीड़ा करता है तब साधरण वनितायें ही क्या तपस्विनी बालायें भी भयभीत हो जाती हैं। अतः हे प्यारे चौहान! अपनी विदाई पर ये निर्बल प्राण निकल जायेंगे या रहेंगे इसकी मुझे आशका है। हेमन्त-ऋतु मे पति स्त्री को नहीं छोड़ता, इमी लिये आपको भर्तृत्व का ध्यान रखते हुए इस ऋतु मे कमलिनियों की जो दशा हो रही है उसको ओर देखना चाहिये। आप हम जो एक दूसरे के गले में करपाश डालकर शैया से उठते बैठते हैं। ऐसी यह आपकी प्यारी जिसे आपकी विदाई पर यह शीतल पवन छूकर कमलिनो की तरह नष्ट कर देगा।

न चलि कत सुभ चित, धनी बहुवत्त[1] प्रगासौ।
गह गहि ऐसो प्रेम, सौज आनद उल्हासौ॥
दीरघ निसि दिन तुच्छ, सीत सतावै अगा[2]।
अधर दसन थर हरै[3], प्रान परजरै अनगा॥
जाऐनि रैनि हर हर जपत, चक्क सद्द चक्की कियौ।
हिमवत कत ग्रेह[4] गहति, हह करत फट्टै हियौ॥४०॥

प्रा० पा० १ से ३ पा० का०। ४ का०।

शब्दार्थः—सुभ चित =कुशल सोचकर। धनी =स्वामी, पति। बहुवत्त =विशेष बात, बड़प्पन। गह गहि =फैलादो। सौज =सुगध। जाऐनि =नहीं जाती है। चक्क =चकवा। चक्की =चकवी। सद्द =आवाज। ग्रेह गहति =घर को ग्रहण करते, घर पर हो रहते। हहकरत =हाय २ करते हुए। फट्टै =फट जाता है, विदार्ण हो जाता है।

अर्थः—हमारी कुशलता का चिन्तन कर हे पति! गमन न कीजिये। हे स्वामी! बड़प्पन को प्रकाश में लाइये और ऐसी प्रेम सौरभ को फैलाइये, जिससे आनन्द और उल्लास हो। आज-कल रात्रियाँ बड़ी हैं और दिन छोटे हैं। पाला (सर्दी) शरीर को सताती है, ओष्ठ और रद पंक्ति कडकडाती (कापती) है, कामदेव प्राणों को जलाता है। हर हर जपते हुए भो रात्रि नहीं बीतती, रात्रि बड़ी होने के कारण वियोग मे दुःखी होकर चकवी-चकवे को पुकारती रहती है। हेमन्त-ऋतु मे पति का घर पर रहना ही ठीक है, अन्यथा हाय २ करते हुए हृदय फट जायेगा।

दोहा

सगम सुख सुत्तौ नृपति, ग्रिह त्रिन इक्कन होइ[1]।
सुनि चहुआन नरिंद वर, सीत न मुक्कै तोइ ॥ ४१ ॥

प्रा० पा० १ का०।

शब्दार्थः—सुत्तौ=सोया। ग्रिह त्रिन=उसके महल में। इक्कन होई=एक होकर।

अर्थः— इस प्रकार रानी कूरम्भी के महल में संयोग सुख में लीन हो दोनों एक होकर शयन करने लगे। राजाने कहा—हे प्यारी! यह श्रेष्ठ चौहान राजा इस शीत-काल मे तुम्हें नही छोड़ेगा।

अरिय सघन जीतन दिसा, चलन कहत चहुआन।
रति-पति-चल होइ पिथ्थ गय, ग्रह हमीरनी जानि ॥ ४२ ॥

शब्दार्थः—सघन = बहुत, विकट। रति-पति-चल=कामदेव से विचलित, कामांध।

अर्थः—हेमन्त-ऋतु के बीतने पर कामान्ध राजा पृथ्वीराज ने हम्मीरनी के महल की सुधी ली (प्रवेश किया) और बोला, हे प्यारी, विकट शत्रुओं पर विजय पाने की इच्छा से तुम्हारा प्यारा चौहान कनवज्ज जाने के लिए उत्सुक है।

हिम वित्यौ आगम शिशिर, चलन चाइ चहुआन।
सुनि पिय आगम शिशिर कौ, को मुक्कै ग्रिह थान ॥ ४३ ॥

शब्दार्थः—हिम=हेमन्त। ग्रिह थान=घर और राजधानी।

अर्थः—हेमन्त ऋतु के बीतने और शिशिर के आगमन पर चाहुआन राजा ने कनवज्ज जाने की इच्छा प्रगट की, तब रानी हम्मीरनी कहने लगी, हे प्यारे! शिशिर ऋतु के आगमन पर आप अपनी राजधानी और घर कैसे छोडते हैं?

साटक

रोमावलि[1] वन नीर निद्ध रचयो[2], गिरिद्दग नीरायने[3]।
पव्वय पीन कुचानि जानि मलया, फुंकार भुंकारए ॥
सिसिरे सर्वरि वारुनी च विरहा, माहद्द मुत्थारए।
मा कंते त्रिगवद्ध मध्य गमने, किं दैव उच्चारए ॥ ४४ ॥

प्रा० पा० १, २, का०। २, पा०।

शब्दार्थ:- नीर निद्ध=निरधि, समुद्र । गिरि दग = गिरद, समूह, फगुआ खेलने वालों की टोली । पव्वय=पर्वत । फुकार=फुत्कार [हाथी का सूंड द्वारा फुत्कार करना] । झुंकारए=झंकार (वाद्य झंकार) । सर्वरि=शर्वरि, रात्रि । वारुनी=वारन, हाथी । माहद्द=मद, मस्ती । मुच्चारए=मार-देता । मा कते=मेरे प्यारे । म्रिग बद्ध=मृग नाशक, सिंह । किं=किस । दैव=देवता को । उच्चारए=पुकारेंगी ।

अर्थ:—फगुआ के खिलाड़ियों के लिये रोमावली ही वन, नीर वर्षा (पिचकारी द्वारा छोड़ा हुआ जल) ही समुद्र, पैने कुच ही मलयाद्रि और वाद्यों की झंकार ही पोगर की फुत्कार है ऐसे शिशिर की रात्रि रूपी हाथी विरह रूपी मस्ती से विरही जनों को मार देता है । अत हे मेरे सिंह स्वरूपी प्यारे ! इस ऋतु में आप हम से विदा होते हैं-तब हम फिर अपनी रक्षा के लिये किस देवता को पुकारेंगी ?

कवित्त

आगम फाग अवत, कत सुनि मित्त सनेही ।
सीत अत तप तुच्छ, होइ आनँद मन[1] प्रेही ॥
नर नारी दिन रैनि, मैंन मदमाते झुल्लैं ।
सकुच नहिय छिन एक, वचन मन मानै बुल्लैं ॥
सुनौ कत सुभ चित करि, रयनि गवन किम किज्जिये[2] ।
कहि नारि पीय त्रिन कामिनी, रिति सिसरह[3] किम जिज्जये[4] ॥ ४५ ॥

मा० पा० १ से ४ पा० का० ।

शब्दार्थ:—अवत=आते है । मित्त=मित, थोड़ा, तुच्छ । तप=गर्मी । सिसरह=शिशिर ऋतु ।

अर्थ:—हे प्यारे, सुनो ! फगुन के आगमन पर जिन पति-पत्नियों मे तुच्छ स्नेह होता है उनके पति भी घर आते हैं । पाल (जाड़े) का अन्त हो जाता है और गर्मी भी सामान्य होती है । ऐसे समय मे गृह पत्नियो के मन मे आनन्द प्राप्त होता है । स्त्री पुरुष इस शिशिर ऋतु मे दिन रात कामान्ध होकर फिरते रहते है । एक क्षण के लिये भी उन्हे सकोच नहीं होता, वे मन माने वचन बोलते है । हे प्यारे, सुनो ! आप अपनी और हमारी कुशलता का चिन्तन करिये और ऐसी रात्रियों मे गमन मत कीजिये । आपही कहिये, पति-विहीन स्त्रियाँ इस शिशिर ऋतु मे कैसे जी सकती हैं ?

कुंज कुंज प्रति मधुप, पुंज गुंजत वैरनि धुनि ।
ललित कंठ कोकिल कलाप, कोलाहल सुनि सुनि ॥
राजत वन मंडित पराग, सौरभ सुगंधिनि[1] ।
विकसित[2] किंसुक विहि कदंब, आनंद विविध धुनि ॥
परिरंभ लता तरवरह सम, भए समह वर अनॅग[3] थिति ।
विच्छुरन छिनक सपति[4] विपति[5], कंत असत वसंत रिति ॥ ४६ ॥
ग्रा०पा० १, ३ से ५ का०पा० । २ का० ।

शब्दार्थ:—वैरनि=वैरी, शत्रु । किंसुक=पलाश । विहि=वीथि, छोटी पगडंडी । अनॅग थिति= अनॅग से, कामदेव के प्रभाव से । असत=असाधु, असज्जन ।

अर्थ:—वसन्त ऋतु के आगमन पर भी रानी हम्मीरनी ने राजा को रोकने के लिये आग्रह किया और बोली— दई मारे ! मधुप पुञ्ज, कुञ्ज २ प्रति गुञ्जार करते हैं, सुन्दर कण्ठों से कोकिलाओं के कलरव कलाप का शब्द सुनाई देता है। पराग की सौरभ-सुगन्धि से युक्त वन सुशोभित है किंसुक और वीथियों में कदम्ब विकसित हो रहे हैं, और विविध पक्षियों की ध्वनि से प्रसन्नता होती है। लता और द्रुमों का परिरम्भन इस प्रकार दिखाई देता है मानों कामदेव के प्रभाव से दम्पति लिपट कर एक हो गये हों। हे प्यारे ! क्षण भर के लिये बिछुड़ जाना संपति में विपत्ति का रूप है वसंत-ऋतु में ऐसा होने से यह निश्चय कराता है कि बिछुड़ने वाला पति असाधु (असज्जन) है।

दोहा

खट रिति बारह मास गय, फिरि आयौ रु वसंत ।
सो रिति चंद बताउ मुहि, तिया न भावै कंत ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ:—न भावै=इच्छा नहीं होती । कंत=पति ।

अर्थ:—राजा बाहर आया और कविचन्द से कहने लगा, छः ऋतु और बारह मास बीत गये, पुनः वसन्त ऋतु का आगमन हो गया, लेकिन अभी तक किसी रानी से छुटकारा नहीं हुआ है। अब हे कवीश्वर ! ऐसी ऋतु बतलाइये, जिसमें स्त्री को पति की इच्छा न हो।

जौ नलिनी नीरहि तजै, सेस तजै सुर-तंत ।
जौ सुवास मधुकर तजै, तौ तिय तजै सुकंत ॥ ४८ ॥

शब्दार्थः—नलिनी=कमलिनी। नीरहि=जल। सुर-तत=तन्त्रीनाद। सुवास=सौरभ सुगंध।

अर्थः—कवि चंद हँस कर बोला; हे राजन्! यदि कमलिनी नीर का साथ छोड़ दे, शेषनाग तन्त्री नाद पर रीझना छोड़दे और सौरभ पर भ्रमर जाना छोड़दे, तभी स्त्री पति से प्रेम करना छोड़ सकती है।

रोस भरै उर कामिनी, होइ मलिन सिर अंग।
उहि रिति त्रिया न भावई, सुनि चुहान चतुरंग ॥ ४६ ॥

शब्दार्थः—रोस भरै=मानकर बैठे। मलिन सिर अंग=स्नान न किया हो, रजो धर्म में हो। रिति=समय। चतुरंग=चतुर।

अर्थः—हे चतुर नरेश! यह संभव है कि या तो स्त्री मान कर बैठी हो, अथवा पुष्पवती (ऋतुमति) हो, उसी समय स्त्री को पति को इच्छा नहीं होती है।

बर बसत अगों नृपति[1], सेन सजी बहु भार।
दिसि कनवज वर चढ़न कों, चितवन[2] सभरि वार ॥ ५० ॥

प्रा० पा० १, २ पा० का०।

शब्दार्थः—बहुभार=विशेष भारी। सभरिवार=संभरी नरेश।

अर्थः—वसन्त के प्रारम्भ में कन्नोज की ओर चढ़ाई करने का विचार कर सँभरी नरेश ने अपनी भारी सेना सजाई।

कै जाने कवि चदई, कै प्रयान प्रथीराज।
सित सामत सु समुहे, पगराय गृह काज ॥ ५१ ॥

शब्दार्थः—सित=सौ। समुहै=समुहाये, सजाये।

अर्थः—इस चढ़ाई का कारण या तो कविचन्द ही जान सकता था या पृथ्वीराज ही। पृथ्वीराज के सौ सामन्त पगुर (जयचन्द) नरेश पर विजय प्राप्त करने के लिये सजाये गये।

मतौ मडि सभरि नृपति, चलन चित पहु अज्ज।
दिन अप्पौ गुरराज मिलि, चित चलन कनवज्ज ॥ ५२ ॥

शब्दार्थः—मतौ=मन्त्रणा। पहु अज्ज=आज के दिन। अप्पौ=बतलाइये।

अर्थः—निश्चय मन्त्रणा करके उसी दिन चलने का चित्त में विचार कर सभरी नरेश ने गुरुराम पुरोहित से कहा—कि कन्नोज की ओर चढाई करने के लिए मुझे आप अच्छा दिन सोचकर बतलाइये।

कवित्त

चैत तीज रविवार, सुद्ध संपज्यो सूर जब।
एकादस ससि होइ, छडि दस थान मान तब॥
वर मगल नृप राशि, पंच अक्रूर मेछ वर।
दुष्ट भाव चहुआन, राशि अष्टम ढिल्ली धर॥
भर रासि राह खोटौ नृपति, देखि पुच्छि चहुआन चलि।
भावी विगत्ति मिति उरह उर, जु कछु कह्यौ कवि चंद खुलि॥ ५३॥

शब्दार्थः—सुद्ध=शुद्ध, पवित्र। संपत्यौ=पहुंचा। सूर=सूर्य। मेछ=म्लेच्छ। दुष्ट भाव=छट्टे स्थान पर। राह=राहू। खोटौ=बुरा, हानिकारक। खुलि=स्पष्ट।

अर्थः—पृथ्वीराज के लिये रविवार के चढ़ाई करने के समय सूर्य पवित्र स्थान पर था। चन्द्रमा दसवें स्थान को छोड़कर ग्यारहवें स्थान पर आ गया था। राजा की राशि पर मंगल भी श्रेष्ठ था। पाचवें स्थान पर जो ग्रह था वह मुसलमानों के लिये उत्तम था। चहुवान राजा और दिल्ली के लिये छठे और आठवें स्थान पर अशुभ ग्रह थे, राहू सामंतों के लिये हानिकारक था। यह सब पूछने और जान लेने पर भी चाहुवान कन्नौज की ओर चल पड़ा। भविष्य में बीतने वाली बात के अनुसार राजा की वुद्धि हो गई थी। जिसे कविचन्द ने स्पष्ट कह दिया था, फिर भी राजा ने मन में ही रक्खा।

दोहा

नन मानी चहुआन नृप, भावी चिंति प्रमान।
सलख वोलि मतह नृपति, मत कैमासह थान॥ ५४॥

शब्दार्थः—मंतह=मंत्री।

अर्थः—चन्द के स्पष्ट कहने पर भी राजा ने भविष्य वश बात नहीं मानी और कनवज्ज जाने का निश्चय कर कयमास के स्थान पर मुख्य मत्री सलखानी (जैत्र) को नियुक्त किया।

कवित्त

मत्रिय थपि पम्मार, मति कैमास थान वर ।
ता मत्री पन अप्पि, सूर सामंत मझ भर ॥
मत्र दिड्ढ वाच, काछ दिड्ढौ[1] दिढ लोभै ।
लोह दिड्ढ[2] जुध काल, साम ध्रम्मह दिढ सोभै ॥
पुरुखह सु दिट्ठ काया प्रचंड, दिढ दुरग्ग भजन सुहर ।
गुर राज राम इम उच्चरै, सो मत्री नृप करन धर ॥ ५५ ॥

प्रा० पा० १, २, पा० का० ।

शब्दार्थः—पम्मार=प्रमार । मंझ भर=सामन्तों के बीच, सामन्तों और योद्धाओं के समक्ष । डिड्ढ=दृढ । जुध काल=युद्ध समय । पुरुखह=पुरुषार्थ । दुरग्ग=दुर्ग । सुहर=सुभट, सामत वीर ।

अर्थः—पुरोहित गुरुराम ने भी कहा—हे राजन ! बहादुर सामन्त और योद्धाओं मे से आपने कयमास के स्थान पर सलखानी (जैत्र) को मुख्य मन्त्री बनाया है सो यह अच्छा किया, क्योंकि जिसकी मत्रणा दृढ़ हो, वचन पक्के हों, सयमी हो, स्वार्थ पर भी जो विचलित नहीं होता हो, युद्ध समय जिसका लोहा कठोर हो, स्वामी धर्म में जा अटल हो, गुरुपार्थ भी जिसका दृढ हो, प्रचण्ड-काय हो, सुदृढ दुर्गों का नाश करने वाला हो ऐसा मन्त्री चाहिये । ऐसे सभी गुण इस प्रमार वीर में विद्यमान हैं ।

सो मन्त्री नृप करिय, पुब्व बसह सुवीय सुध[1] ।
दूत भेद अनुसार, मोह रस बसिन ईछ मुध[2] ॥
न्याय ध्रम अनुसार, न्याय नद न परगासै ।
रोग जीत तन[3] होइ, तान त्रिय लच्छिअ भासै ॥
परधान ध्यान जानै सकल, अध्रम द्रव्य नन सग्रहै ।
पम्मार सलख मन्त्री नृपति, बल गौरी समुख[4] सग्रहै ॥ ५६ ॥

प्रा० पा० १ से ३ घ० का० । ४ पा० घ० का० ।

शब्दार्थः—बीय=दोना । सुध=शुद्ध, शुद्ध, पवित्र । बसिन=वश म नहीं । ईछ=इच्छा । मुध=मुग्ध । नदन= यदन, निंदा रहित । तान=त्राण, रक्षा । त्रियलच्छिय=तीनों प्रकार की लक्ष्मी (द्रव्य ज्ञान और विजय) । भासै=भासित होना, कहा जाता । परधान=प्रधान । ध्यान=विचार ।

अर्थः—हे राजन्। ऐसा ही मत्री बनाना चाहिये, जिसका आदि से मातृ और पितृ पक्ष शुद्ध हो। दूतों के समान भेद नीति जानने वाला हो, ममता-रस के वश मे न हो, अपनी इच्छाओं पर मुग्ध न हो, न्याय और धर्म के अनुसार निन्दा रहित और नीति वाक्य काम में लाने वाला हो, जिसका शरीर रोगों पर विजयी हो, (निरोगी हो) और तीन प्रकार की लक्ष्मी (लक्ष्मी कीर्ति और जय) का कवच स्वरूपी हो, जिसे सभी बातों का विचार हो, वही मन्त्री ठीक होता है। ये सभी गुण सलखानी (जैत्र) प्रमार मे हैं। अत. वही मत्री होने के योग्य हैं। जो कि गोरी शाह की शक्ति का सामना कर सकता है।

दोहा

सो मत्री पुच्छौ नृपति, चलन चाइ चहुआन।
दिसि कनवज घर दिखियै, पग जाग परमान ॥ ५७ ॥

शब्दार्थः—जाग=याग, यज्ञ।

अर्थः—पृथ्वीराज ने रवाना होने की इच्छा कर प्रमार मन्त्री से पूछा, हे मन्त्रीवर! जयचन्द के यज्ञ सम्बन्ध में मैं कन्नौज जाना चाहता हू अत' तुम्हारी क्या राय है?

छग्गल पान नरिंद बर, अदभुत चरित विराज।
चद भेख चहुआन को, थेट सु पत्तौ आज ॥ ५८ ॥

शब्दार्थः—छग्गल=सुराही, जलपात्र। चहुआन को=चाहुवान राजा का वेश। थेट=सम्पूर्ण। सुपत्तौ=किया।

अर्थः—उसी समय राजा विचित्र वेश धारण कर कविचद का सुराही दार बना और कविचंद को सम्पूर्ण राज चिन्हों से सुशोभित किया।

कवित्त

जो आडवर तजिय, (सो) राज सोभै न राज गति।
आडवर विन भट्ट कव्वि, पुनगार मेट श्रुति[1] ॥
आडवर विन नट्ट-गोरि, गावै नह रुक्कहि।
आडवर विन वेस, रूप रत्तो न सोय कहि ॥
जन एक सुभर वदन विमुख, हरु अलि[2] आडवरह विन।
पर धर नरिंद वदन मतौ, (तो) करि आडवर वीर तन ॥ ५९ ॥

प्रा० पा० १, पा० का० घ०। २, का०।

शब्दार्थः—भट्ट कब्वि=बंदीजन कवि, रावकवि। पुनगार=पुंगार, पुंगल, पिंगल, पवित्र। श्रुति=स्थिर। नट्टगोरि=नटनी, गौरी (गौरी राग)। वेस=वैश्या। हरुग्रति=हलकापन, हीनता।

अर्थः—यह देख मंत्री जैत्र प्रमार कहने लगा, हे राजन्। राजसी आडम्बर (ठाट-बाट) के रहित राजा शोभा नहीं पाता। बिना आडम्बर के भट्ट कवि की पिंगल रचना का स्थाइत्व नहीं रहता, आडम्बर रहित नटनी के गाने पर श्रोतागण नहीं ठहरते। आडम्बर रहित वैश्या का सौन्दर्य एक रत्ती भर भी नहीं कहा जाता। एक ही यौद्धा और एक ही विदुषक वन्दनीय होता है, लेकिन वह भी आडम्बर के बिना हीन दीखता है। यदि आपको पराई भूमि में वन्दनीय होना है तो आडम्बर युक्त वीरोचित वेष धारण करिये।

दोहा

मत पुच्छै चहुआन मुहि, सज्जि सवै चतुरंग।
अजै विजै जानै नहीं, जग्य विनट्ठै पंग ॥ ६० ॥

शब्दार्थः—मत=मन्त्रणा। विनट्ठै=नष्ट कर देंगे।

अर्थः—जैत्र प्रमार ने कहा, हे राजन्! अगर आप मुझ से राय पूछते है तो मेरी सम्मति यही है कि सारी सेना सजाकर चढ़ाई करिये। जय पराजय के विषय में मैं निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कह सकता, किन्तु इस प्रकार चढाई करने से पंगुराज का यज्ञ अवश्य नष्ट कर दिया जायगा।

तुच्छह सथ्थ नरिंद सुनि, जो जानै पहुपंग।
वधि देए कर तार अरि, चोर लग्गनिय संग ॥ ६१ ॥

शब्दार्थः—कर तार=ताड़ना देकर। चोर लग्गनिय=चोट्टेधाड़े पीछा करने वाले, ललकार कर पीछा करने वाले।

अर्थः— हे राजन्! यदि पंगुराज (जयचन्द) को मालूम हो जाय कि पृथ्वीराज के साथ कुछ ही साथी हैं तो वह ताड़ना देकर विपक्षी को बंधन मे लेने की शक्ति रखता है- क्योंकि उसका सैन्य समूह ललकार कर पीछा करने वाला है।

अरि भजे भजौ सु पुंनि, सम वरि समर सु पंग।
जौ पुच्छै चहुआन वर, तौ सज्जौ चतुरंग ॥ ६२ ॥

शब्दार्थः—भंजै=मार कर। समवरि=समानता।

अर्थः—हे नर पुंगव चाहुवान! यदि शत्रु को मारकर मरना है और युद्ध में कन्नोजेश्वर से समानता करना है तो चतुरगिनी सेना सजानी चाहिये।

मतौ गरुअ गोयंद कहि, वर ढिल्लीसुर पान।
हथ्थ वीर विरुझाइ चलि, धर लग्गौ सुर तान॥ ६३॥

शब्दार्थः—मतौ=मंत्रणा। गरुअ गोयंद=बड़ा गोयदराज चाहुवान। ढिल्लीसुर=दिल्लीश्वर। हथ्थ अपने ही हाथों। विरुझाइ=उलझना। धर लग्गौ=अपने भू भाग पर दाव लगाये हुए हैं।

अर्थः—बड़ा गोविन्दराय (चाहुआन) ने सम्मति दी कि हे दिल्लीश्वर! यद्यपि आपकी शक्ति श्रेष्ठ है, किन्तु सोचिये, अपने भू भाग पर सुलतान (शहाबुद्दीन) दाव लगाये हुए हैं। ऐसी परिस्थिति में आप कन्नोज प्रस्थान करने का विचार कर स्वयं अपने हाथों आप उलझना चाहते हैं।

जिम लग्गौ आखेट अगि, ढिल्लीवै सुरतान।
विन वुझाय वुझि अग्गिया, जिम हक्के जम पान॥ ६४॥

प्रा० पा० १ टि०।

शब्दार्थः—अगि=आगे, पहले। ढिल्लीवै=दिल्लीश्वर। अग्गिया=अग्नि। हक्के=हाक, आवाज दी, बुलाया। जम=यमराज। पान=हाथ से इशारा कर।

अर्थः—जिस प्रकार पहले आखेट में दिल्लीश्वर और सुलतान के बीच में लड़ाई छिड़ गई और वह विना बुझाये ही बुझ गई थी। उसी प्रकार जो होना होगा वह होकर ही रहेगा। आपने अपने आप यम को निमन्त्रित कर लिया है।

चित्त चलन चहुआन कौ, जिन अप्पी मति नन्ह।
सघ भत मझझन टारि लख, नृप ढुंढिय धन लिन्ह॥ ६५॥

शब्दार्थः—नन्ह=तुच्छ। मझझन=माँझी, प्रमुख। ढुंढिय=खोज लीजिये, चुन लीजिये।

अर्थः—हे चाहुवान नरेश! स्वयं आपको कनवज्ज जाने की इच्छा है, उसमे सम्मति देने वालों की मति तुच्छ है। अतः हे राजन! ऐसा ही करना है तो आप अपनी श्रेष्ठ सम्पत्ति स्वरूप, प्रमुख सामतों को चुनकर साथ मे लीजिये।

सौ समत छह सूर भय, ते इक एकह देह ।
जोगिनिपुर रघुवंश सौ, सो रक्खो तल लेह ॥ ६६ ॥

शब्दार्थः—तल लेह=तलारक्षक (नगर रक्षक) बनाकर ।

अर्थः—राजा ने अपने सौ सामन्त और छः शूरमाओं (वीरों) को जो एक काय थे, उन्हें साथ मे लिया और रघुवश राय को तलारक्षक (नगर रक्षक) बनाकर दिल्ली में ही रक्खा ।

तत्त मत्त चालन कियौ, महल विसरजन कीन ।
सत्त घरी घरियार वजि, वर प्रस्थान सु दीन ॥ ६७ ॥

शब्दार्थः—तत मत्त=तत्व युक्त मंत्रणा । महल=सभा । विसरजन=विसर्जन, समाप्त ।

अर्थः—फिर तत्व युक्त मत्रणा कर सभा से उठ राजा चल पड़ा, और सात वजने पर कन्नौज की ओर प्रस्थान किया ।

एक वरख प्रस्थान ते, विय प्रस्थान सुपत्त ।
ग्यारह से कनवज्ज कौं, चैत तीज रविरत्त ॥ ६८ ॥

शब्दार्थः—वरख=वर्ष । त्रिय=दूसरी बार । ग्यारह से=ग्यारह सौ अश्वारोही । रत्त=उत्सुक ।

अर्थः—प्रस्थान करने का सोचा था उसके ठीक एक वर्ष बीत जाने पर मुख्य र ग्यारह सौ सवारों सहित कन्नौज जाने के लिये उत्सुक हो चैत्रमास की तृतीया रविवार को पृथ्वीराज ने प्रस्थान किया ।

कवित्त

विपन महल चहुआन, राज प्रस्थान सपत्तौ[1] ।
निसा नदि[2] उत्तरिय, सयन[3] उन्नयौ सु रत्तौ ॥
वीज तेज सूझत, तमत उठ्यौ व्रत भारी ।
निसापत्ति सुर आय, बोल वर वर उच्चारी ॥
वर चित्त[4] चित्त चहुआन करि, वान विषम गुन विद्धयो ।
वल श्रवन दिष्ट समरि वनी, सुर चित्तह[5] लखि सधयौ ॥ ६६ ॥
प्रा०पा०१, ५ का०पा०, २ से ४ पा० ।

शब्दार्थः—नदि=नदी । उत्तरिय=पार करके । सयन उन्नयो=शयन किया । वीज तेज=द्वितीया के चद्रमा का प्रकाश । सूझत=सूझने पर, दिखाई देने पर । तमत=तमतमा कर । व्रतभारी=दृढ प्रतिज्ञ ।

निसा-पत्ति=रात्रि का राजा, उल्लू। सुर=स्वर, आवाज। बरर=बार २। चर=चल, विचलित। गुन विद्धयो=चाप से लगाया, साधा। बल श्रवन=श्रवण शक्ति। चितह=चिन्तन कर, लक्ष्यकर। सधयो=साधा।

अर्थः—प्रस्थान कर पृथ्वीराज नदी पारकर वन के महल में पहुँचा और अनुरक्त हुआ पृथ्वीराज गहरी नींद में सो गया। जब अंधेरे में द्वितीया का चन्द्र दिखाई दिया। उस समय वह दृढ प्रतिज्ञ तम-तमा उठा। उसी समय उल्लू (पक्षी) बार २ बोलने लगा, यह देखकर वीर चाहुवान मन ही मन उसका चिंतन कर विचलित हो गया। फिर संभरेश्वर ने अपनी श्रवण शक्ति से जिस स्थान पर वह पक्षी बोल रहा था। उस स्थान को लक्ष्य कर बाण साधा।

प्रथमं स्वर चहुआन, बान संध्यौ गुन मग्गह[1] ।
बिय अलुक्क सुर बोलि, चित्त मुक्यौ तिन सग्गह ॥
तीय वचन अरि जीह, लीव सथ्थह लुक छुट्टिय ।
कर चारहु मन राज, कह्यो छंदे अँग जुट्टिय ॥
निस पतन भई जोगय विपन, हकार्‌यौ दुजराज वर ।
घरियार प्रात बज्जै सु घर, रत्त मार वर उग्गि धर ॥ ७० ॥

[1] मा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—गुन मग्गह=चाप पर। बिय=दूसरी आवाज। अलुक्क=उलूक, उल्लूपक्षी। चित्त मुक्यौ=चित्त को लगाया। तीय=तीसरी बार। वचन=आवाज पर। छपि जीह=चाप से छोड़ा। लुक=उल्लू। कर चारहु-मन=मन को स्थिर कर। छदे अँग=उल्लू पक्षी के अंग को छेद दिया। जुट्टिय=जुट गये, एकत्रित हो गये। जोगय=जोग। विपन=विप्र। हकार्‌यौ=बुलाया। रत्त मार=रक्तवर, अरुण वर्ण। उग्गि=उदय हुआ।

अर्थः—उल्लू पक्षी की पहली आवाज पर पृथ्वीराज ने बाण को चाप पर चढाया। दूसरी आवाज पर उसकी ओर अपने चित्त को लगाया। तीसरी आवाज पर चाप से बाण को छोडा जिससे वह उलूक बाण के साथ ही प्राण छोडकर जमीन पर आ पड़ा। राजा ने अपने को ठीक (स्थिर) कर आवाज दी कि उल्लूपक्षी के अंग को छेद दिया है। यह सुन कर सब आ एकत्रित हुए। इतने में रात्रि बीत गई। तब योग विद्या मे निपुण श्रेष्ठ द्विजवर राजगुरु को राजा ने बुलाया। उसी समय राज महलों मे प्रात काल की घडी बजी और श्रेष्ठ अरुण रंग (सूर्योदय की प्रारंभिक प्रभा) फैल गया।

सौ समत छह सूर भय, ते इक्क एकह देह ।
जोगिनिपुर रघुवंश सौ, सो रक्खो तल लेह ॥ ६६ ॥

शब्दार्थः—तल लेह=तलारक्षक (नगर रक्षक) बनाकर ।

अर्थः—राजा ने अपने सौ सामन्त और छ शूरमाओं (वीरों) को जो एक काय थे, उन्हें साथ मे लिया और रघुवश राय को तलारक्षक (नगर रक्षक) बनाकर दिल्ली में ही रक्खा ।

तत्त मत्त चालन कियौ, महल विसरजन कीन ।
सत्त घरी घरियार वजि, वर प्रस्थान सु दीन ॥ ६७ ॥

शब्दार्थः—तत्त मत्त=तत्व युक्त मंत्रणा । महल=सभा । विसरजन=विसर्जन, समाप्त ।

अर्थः—फिर तत्व युक्त मंत्रणा कर सभा से उठ राजा चल पड़ा, और सात बजने पर कन्नौज की ओर प्रस्थान किया ।

एक वरख प्रस्थान ते, बिय प्रस्थान सुपत्त ।
ग्यारह से कनवज्ज कौ, चैत तीज रविरत्त ॥ ६८ ॥

शब्दार्थः—वरख=वर्ष । त्रिय=दूसरी बार । ग्यारह से=ग्यारह सौ अश्वारोही । रत=उत्सुक ।

अर्थः—प्रस्थान करने का सोचा था उसके ठीक एक वर्ष बीत जाने पर मुख्य २ ग्यारह सौ सवारों सहित कन्नौज जाने के लिये उत्सुक हो चैत्रमास की तृतीया रविवार को पृथ्वीराज ने प्रस्थान किया ।

कवित्त

विपन महल चहुआन, राज प्रस्थान सपत्तौ[१] ।
निसा नद्दि[२] उत्तरिय, सयन[३] उन्नयौ सु रत्तौ ॥
वीज तेज सूझत, तमत उठ्यौ व्रत भारी ।
निसापत्ति सुर आय, बोल वर वर उच्चारी ॥
चर चित्त[४] चित्त चहुआन करि, बान विषम गुन विद्धयौ ।
बल श्रवन दिष्ट सभरि धनी, सुर चित्तह[५] लखि सधयौ ॥ ६६ ॥
मा०पा०१, ५ का०पा० २ से ४ पा० ।

शब्दार्थः—नद्दि=नदी । उत्तरिय=पार करके । सयन उन्नयो=शयन किया । बीज तेज=द्वितीया के चन्द्रमा का प्रकाश । सूझत=सूझने पर, दिखाई देने पर । तमत=तमतमा कर । व्रतभारी=दृढ़ प्रतिज्ञ ।

निसा-पति=रात्रि का राजा, उल्लू। सुर=स्वर, आवाज। बर२=बार २। चर=चल, विचलित। गुन विद्धयो=चांप से लगाया, साधा। बल श्रवन=श्रवण शक्ति। चित्तह=चिन्तन कर, लक्ष्यकर। सधयो=साधा।

अर्थः—प्रस्थान कर पृथ्वीराज नदी पारकर वन के महल में पहुँचा और अनुरक्त हुआ पृथ्वीराज गहरी नींद में सो गया। जब अंधेरे में द्वितीया का चन्द्र दिखाई दिया। उस समय वह दृढ प्रतिज्ञ तम-तमा उठा। उसी समय उल्लू (पक्षी) बार २ बोलने लगा, यह देखकर वीर चाहुवान मन ही मन उसका चिंतन कर विचलित हो गया। फिर संभरेश्वर ने अपनी श्रवण शक्ति से जिस स्थान पर वह पक्षी बोल रहा था। उस स्थान को लक्ष्य कर बाण साधा।

प्रथमं स्वर चहुआन, बान संध्यौ गुन मग्गह[1]।
बिय अलुक्क सुर बोलि, चित्त मुक्यौ तिन सगह॥
तीय वचन अरि जीह, जीव सथ्थह लुक छुट्टिय।
कर चारहु मन राज, कह्यो छंदे अँग जुट्टिय॥
निस पतन भई जोगय विपन, हकार्‌यौ दुजराज बर।
घरियार प्रात बज्जै सु घर, रत्त मार बर उग्गि धर॥७०॥
प्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थः—गुन मग्गह=चांप पर। बिय=दूसरी आवाज। अलुक्क=उलूक, उल्लूपक्षी। चित्त मुक्यौं=चित्त को लगाया। तीय=तीसरी बार। वचन=आवाज पर। अरि जीह=चाप से छोड़ा। लुक=उल्लू। कर चारहु-मन=मन को स्थिर कर। छंदे अँग=उल्लू पक्षी के अंग को छेद दिया। जुट्टिय=जुट गये, एकत्रित हो गये। जोगय=जोग। विपन=विप्र। हकार्‌यौं=बुलाया। रत्त मार=रक्तवर, अरुण वर्ण। उग्गि=उदय हुआ।

अर्थः—उल्लू पक्षी की पहली आवाज पर पृथ्वीराज ने बाण को चाप पर चढाया। दूसरी आवाज पर उसकी ओर अपने चित्त को लगाया। तीसरी आवाज पर चाप से बाण को छोड़ा जिससे वह उलूक बाण के साथ ही प्राण छोड़कर जमीन पर आ पड़ा। राजा ने अपने को ठीक (स्थिर) कर आवाज दी कि उल्लूपक्षी के अंग को छेद दिया है। यह सुन कर सब आ एकत्रित हुए। इतने में रात्रि बीत गई। तब योग विद्या में निपुण श्रेष्ठ द्विजवर राजगुरु को राजा ने बुलाया। उसी समय राज महलों मे प्रात काल की घड़ी बजी और श्रेष्ठ अरुण रंग (सूर्योदय की प्रारंभिक प्रभा) फैल गया।

सगुन विद्ध कवि चंद, अग्र भय छंद विचारिय।
सामि हथ्थ जस चढन, सु भ्रत आतुर रिन[१] पारिय॥
कलह केलि आगम, सामि परिगह आहुट्टिय।
बल सगपन किय दान, हीन हीनह अप छुट्टिय॥
कहुई चंद कवि मुख्ख तन, आ-रुख राज न मानइय।
सो भ्रत गत्ति त्रिमान सति, नन मिट्टै जुग जानइय॥७१॥
प्रा० पा० १ का०।

शब्दार्थः—सगुन=शकुन। विद्ध=विधा या विधि। अग्रभय=आगे होने वाले। छद=ढग, घटना। बल=बल पर, बलात। सगपन-किय-दान=कन्यादान होगा। हीन हीनह=तुच्छ विचार वाले की तुच्छता। अप=स्वय। आ-रुख=यही रुख, यही रहस्य। सो=यह। भ्रत=सामन्त। गति=सत्य। नन मिट्टै=नहीं मिटने की।

अर्थः—शकुन विद्या जानने वाले कवि चद ने आगे होने वाली भयप्रद घटना पर विचार किया और कहा हे स्वामी! आपके हाथों यश प्राप्ति होगी और रणातुर सामन्त धराशायी होंगे। युद्ध-क्रीड़ा छिड़ने पर आपके साथी विपक्षियों से अड़ेगे। शक्ति के बल पर कन्या दान होगा और तुच्छ विचार वाले (जयचद) की तुच्छता स्वय छूट जायगी (अकारण ही पंगुराज आपसे द्वेष करता है किन्तु बलात् विवाह होने से अत मे द्वेष का अन्त हो जायगा)। मेरे (कवि चद के) मुख से यह तत्व युक्त बात निकली है। हे राजन् इस शकुन की यही रुख (रहस्य) निश्चय मानना चाहिये। सामतों की इस प्रकार गति होने का निर्माण सत्य है यह मिटने का नहीं, ससार मे युगों तक यह बात प्रचलित रहेगी।

दोहा

नहिव रज्यौ कविचद त्रप, कहि सुनाय सब सथ्थ।
ज्यौ विधिना वर त्रिमयौ, जम कग्गद चढि हथ्थ॥७२॥

शब्दार्थः—नहिव=नहीं। रज्यौ=प्रसन्न हुआ। जम=यमराज। कग्गद=कागज, परवाना। चढि हथ्थ=हाथ में आगया।

अर्थः—कविचद ने साथियों के समक्ष राजा को इस शकुन का परिणाम कह सुनाया, किन्तु राजा को यह पसन्द नहीं आया (कन्नौज रवाना होने की ठान

ही ली) विधाता ने जैसा निर्माण कर दिया है और यमराज का परवाना जैसा हाथ में आगया है वैसा ही होता है।

ग्यारह से एकावने[1], चैत तीज रविवार।
कनवज पिक्खन[2] कारने, चल्यौ सु सम्भरिवार ॥ ७३ ॥

प्रा० पा० १, का० । २, घ० ।

शब्दार्थः—पिक्खन कारने=देखने के लिये । सम्भरिवार=सम्भरेश्वर, पृथ्वीराज ।

अर्थः— अनन्द सं० ११५१ (वि० स० १२४२) के चैत्र मास की तृतीया रविवार को कन्नौज देखने के लिये संभरिपति (पृथ्वीराज) ने प्रस्थान किया ।

कवित्त

ग्यारह से असवार, लख्ख लीने मधि लेखैं ।
इसे सूर सामंत, एक अरि दल बल भक्खैं ॥
तनु तुरंग वर वज्र, वज्र ठेले वज्रानन ।
वर भारथ समसूर, देव दानव मानव नन ।
नर जीव नाम भंजन अरिय, रुद्र भेस द्रसन न्रपति ॥
भेट यो सु पहु[1] भर सुभ्भई, दिपति दीप दिवलोक पति ॥ ७४ ॥

प्रा० पा० १ का० पा० घ० ।

शब्दार्थः—लख्ख लीने=चुन २ कर लिए । मधि लेखैं=युद्धार्थ । तनु=शरीर । वज्रानन=वज्रमुख, वज्रपात के समान घोषणा करने वाले । भेट यो=आसपास हो गये । दिवलोकपति=इन्द्र ।

अर्थः—राजा ने युद्धार्थ साथ में चुनिन्दा ११०० अश्वारोही लिये, उसके बहादुर सामत ऐसे थे कि उनमें से एक एक वीर, शत्रु के दल और उसकी शक्ति को नष्ट कर देने वाला था। जिनके अग और तुरग विषम वज्रवत् थे और वे वज्रघोष करने वाले वज्र तुल्य वीरों को धकेल देने वाले थे। उनके समान देवता दानव और मानव भी नहीं कहे जा सकते थे। वे श्रेष्ठ वीर महाभारत के वीरों के समान थे। प्राणी (मनुष्य) मात्र जो शत्रु के नाम से कहलाता था, उनको नष्ट कर देने वाले वे राजा को रुद्रभाव से दिखाई देते थे। ऐसे उन सामतों से घिरा हुआ राजा सुशोभित था जिसकी कांति इन्द्र के समान देदीप्यमान थी।

चल्यौ सु सेभरिवार, मथ्थ सामन्त सूर भर।
हनिग राज कयमास, अवनि आकपि वीर वर[1] ॥
सर वर[2] संभरि वार, साहि बन्ध्यौ गज्जनवै।
हय गय नर भर वीय, सद्धि[3] छड्यौ पुनि है वे ॥
सामन्त सूर सथ्थह नृपति, दैव वत्त कारन सुगति।
कनवज्ज राज जग्गह कलन, चल्यौ राज सभरि सुभति ॥ ७५ ॥

ग्रा० पा० १, २ दे० । ३ पा० का० ।

शब्दार्थ— सेंभरिवार=संभरि पति, पृथ्वीराज। सरवर=पांच बार, (या अपने बाण के बल पर)। वीय=दो बार। देववत्त=देवेच्छा। जग्गह=यज्ञ। कलन=नष्ट करने को।

अर्थः—वीर सामन्तों सहित सभरिपति विदा हुआ। पृथ्वीराज ने कैमास को मार दिया, तब से उसके भय से पृथ्वी और वडे २ वीर काँपते थे। जिसने अपनी शक्ति से उस समय से पहले स्वय ने पाच बार और अपने हाथी घोडे एव सामन्तो के बल पर दो बार, (कुल ७ बार) गजनी पति को बाधकर छोड दिया था, किन्तु देवेच्छा के कारण वही राजा अपने वीर सामन्तों सहित कन्नौज पति के यज्ञ को कुचल देने के लिये (बिना सोचे समझे) भली प्रकार से सुसज्जित होकर रवाना हुआ।

कनवज्जह जयचद, चल्यौ दिल्ली पति पिक्खन।
चद बरद्दिय सथ्थ, सथ्थ सामन सूर घन ॥
चाहुआन कूरभ, गौर गाजी बड़ गुज्जर।
जद्दव रा रघुवस, पार पुडीरति पक्वर ॥
इत्तने सहित भूपति चल्यौ, उड़ी रेन छीनौ नभौ।
इक लक्ख लक्ख वर लेखिए, चलै सथ्थ रजपूत सौ ॥ ७६ ॥

शब्दार्थः—बरद्दिय=बरदाई। पार=सीमा। छीनौ=स्पर्श कर लिया या ओझल (लुप्त) कर दिया। लेखिए=दिखाई देना।

अर्थः—पगुराज और उसकी राजधानी देखने के लिये दिल्लीपति चला। उसके साथ चन्द बरदाई और बहुत से सामन्त थे। उन सामन्तों मे मुख्य २ चाहुवान, कूरम्भ, गोड, बड गुज्जर, जादव, रघुवशी और पवरेतों की सीमा तुल्य पुण्डीर जाति के क्षत्रिय थे। इतने क्षत्रियो सहित राजा के प्रयाण के कारण जो धूलि पृथ्वी

से उड़ी थी, उसने आकाश को स्पर्श कर लिया। मुख्य क्षत्रिय-सामन्त एक सौ थे। वे भी साथ में हो गये। वे एक २ वीरलाखों बलवानों के समान दिखाई देते था।

दोहा

करि-सु नद सभरि सु पहु, चढि क्रम्यौ लय-मग्ग।
हर हर सुर उच्चार मुख, उर आराधन लग्ग ॥७७॥

शब्दार्थः–करि–सु नंद=प्रसन्नता प्रगट करता हुआ। लय-मग्ग=जिसके लिये उत्सुक था उसी मार्ग को।

अर्थः—प्रसन्नता प्रगट करता हुआ सम्भरी नरेश उत्सुक हो घोडे पर चढ़ कर (कनवज के) मार्ग की ओर चला और मुख से हर २ शब्दोच्चारण और हृदय मे शम्भू की आराधना करने लगा।

कवित्त

एक सत्त बल सूर, एक व्रल सहस पानि बर।
एक अयुत माधत, दुरद रद दहन तत्त कर ॥
एक लक्ख आरुद्ध, जुद्ध जम जेम भयकर।
एक कोटि अंगवन, धरत हर उर सु ध्यान बर ॥
रवि तन समान तन उज्जलै, सत खट अग्ग सु बीर तन।
तिन सथ्थ सज्जि सभरि स पहु, तिथ्थ क्रमन बिच्चार अन ॥ ७८ ॥

शब्दार्थः—सत्त=सौ। बल=बल। अयुत=दस हजार। दुरद=हाथी। दहन=डहन, दाँत तोड देने वाला। तत्त=उनके। आरुद्ध=उलझ पड़ने वाला। जेम=जैसा। अगवन=युद्ध को स्वीकार करने वाला। सत खट=एकसौ छ। तिथ्थ=तीर्थ (युद्धतीर्थ)। क्रमन=करना। बिच्चार अन=विचारा।

अर्थः—राजा के उन सामंतों मे कोई वीर सौ-सामन्तों के समान, कोई सहस्रभुजा सा, कोई दस सहस्र वीरों से भिड़ पडने जैसा, कोई अपने हाथों से हाथियों के दांत तोड देने जैसा, कोई लक्ष वीरों से उलझ पड़ने जैसा, कोई युद्ध समय भयकर यमराज के समान और कोई करोड़ों वीरों से युद्ध छेड़ने जैसा बलवान था। वे एक सौ छ वीर शिव के उपासक और सूर्य के समान उज्ज्वल कांति वाले थे, ऐसे वीरों सहित सभरी नरेश ने सज कर रण-तीर्थ करने का दृढ विचार किया।

एक ईस आराधि, एक उमया आरोहन।
एक दीनमनि जपत, एक गजवगन प्रमोहन ॥

एक सट्ठि-चव रचित, एक पंचास उभय रत।
एक हनू हिय ध्यान, एक भैरव घोरत मत॥
इक जपत अत अतक मनह, एक पुरंदर रत्त उर।
इक वर विहार[2] विद्दर-मिरग, धरत ध्यान लकाल मुर॥ ७६॥
प्रा० पा० १, २ पा० घ०।

शब्दार्थः—आराधि=आराधना। आरोहन=हृदय में स्थान देने वाला। दीनमनि=दिनमणि, सूर्य। गज वदन=गजानन, गणेश। प्रमोहन=मोहने वाला। सट्ठिचव=चौंसठ ही योगिनियें। रचित=रचा-हुआ, लीन, अनुरक्त। पचाप उभय=बावन ही वीर। हनू=हनुमान, महावीर। हिय=हृदय। घोर-मत=अवधूत पथी। पुरन्दर=इन्द्र। विद्दर-मिरग=बद्री मार्ग। लंकाल मुर=लङ्कापति को पराजित करने वाला, भगवान राम।

अर्थः—उन सामन्तों मे से कोई शकर, कोई दुर्गा, कोई सूर्य, कोई चौंसठ ही योगनिये, कोई बावन ही वीरों, कोई हनुमान, कोई भैरव, कोई अवधूत, कोई मृत्यु और यमराज की, कोई इन्द्र, कोई बद्रीश की और कोई रामचन्द्र की आराधना करने वाला था। एव दत्तचित्त होकर उन्हें उत्तेजित और प्रमोदित कर देता था।

तट कालिंदी तीर, कियौ मुक्काम दिलेसुर।
अवर सूर सामन्त, सव्व उत्तरे आय तुर॥
समै निसा निज सिवरि, बोल सामत सूर सव।
मधूसाह परधान, राज उच्चरै सूर तव॥
तीरथ्थ वत्त[1] अतर धरिय, अतर वेध सु गग धर।
आवस्सि[2] मत कारन सुनहु, चलौ सुभट्ट समग्ग भर॥ ८०॥
प्रा० पा० १ पा० घ० का०। २ का०।

शब्दार्थः—तुर=आतुर, शीघ्र। सिवरि=शिविर, वितान। आवस्सि=अवश्य। मत=मन्त्रणा। कारन=कारण। समग=उसी रास्ते पर, या समग्र।

अर्थः—दिल्ली पति ने कालिन्दी के तट पर डेरा दिया और शीघ्रतापूर्वक अन्य धीर सामन्त भी वहां आकर उतर पडे (मुकाम किया)। रात्रि के समय अपने शिविर मे सब वीर सामन्तों को बुलाया। मधुशाह (राजा के मन्त्रियों मे से एक यह भी था) मन्त्री भी उस समय वहा था, तब पृथ्वीराज ने अपने वीरों से

तीर्थ की इस बात को ध्यान में रखना चाहिये कि गंगा का भू भाग अतरवेध के अन्तर्गत पवित्र है। यही हमारी (कनवज्ज) चढ़ाई का मुख्य कारण है। हे सामन्तों! ऐसे तीर्थ के रास्ते पर आप सब चलिये।

दोहा

तट कालिंद्री तहँ विमल, करि मुकाम नृपराज।
सथ्थ सयन सामंत भर, सूर जु आये साज॥ ८१॥

शब्दार्थः—कालिंद्री=कालिन्दी, यमुना। विमल=पवित्र। सूर=शूर, बहादुर।

अर्थः—इस प्रकार पवित्र कालिन्दी के तट पर राजा ने मुकाम किया और सब सामंत ससैन्य सुसज्जित होकर वहा एकत्रित होगये।

कवित्त

अप्प जाति विनसव्व, चले सामन्त सथ्थ तब।
पहु निकट्ट कनवज्ज, ताहि प्रच्छन्न गवन कव॥
मधूसाह गुरराम, रहे दिल्ली रह कज्ज।
गुर बीठल समदेव, अनुज रामह सह सज्ज॥
अह–अट्ठ राज आवा गमन, सजी[1] सेन सथ्थें सुविधि।
कज दान द्रव्य गंगह सजौ, जिम सिमभै तीरथ्थ सिधि॥ ८२॥
प्रा० पा० १, घ० पा०।

शब्दार्थः—विनसव्व=विनाश। पहु=राजा। प्रच्छन्न=प्रगट। गवन=गमन। कव=कवि। रह-कज्ज=कार्यभार के लिये। रामह=गुरुराम। अह-अट्ठ=सर्प के समान ऐंठता, बट खाता। आवा=आगया। गमन=रवाना हुआ। सिम्भै=सिद्ध हो, प्राप्त हो।

अर्थ—अपनी जाति का विनाश जानते हुए भी सब सामन्त राजा के साथ चले। इस प्रकार कवि के गमन के बहाने प्रच्छन्नरूपसे कन्नोज–राज की ओर पृथ्वीराज रवाना हुआ। दिल्ली के कार्यभार के लिये गुरुराम पुरोहित और मधुशाह ही रक्खे गये, देवता तुल्य गुरुराम का भाई विट्ठल तैयार होकर राजा के साथ चला, गमन समय राजा पृथ्वीराज ने सर्प के समान बँट खाकर यथाविधि सेना सजाई, साथ ही गंगा तट पर दान के लिये द्रव्य की भी तैयारी की, जिससे तीर्थ की सिद्धि प्राप्त हो सके।

दोहा

किय आयस सभरि स पहु, सुनौ स गुरबर साह ।
सत क्रम्मेलक मथ्थ घन, सजौ सक्रमन राह ॥८३॥

शब्दार्थ:—आयस=आज्ञा । गुरबर=गुरुवर । साह=मधुशाह । सत=सात या सौ । क्रम्मेलक=उष्ट्र, ऊँट । सजौ=द्रव्य से भरकर रवाना करो । सक्रमन राह=हमारे जाने के रास्ते पर, हमारे साथ २ ।

अर्थ: फिर सम्भरी नरेश ने आज्ञा दी कि-हे गुरुवर और मधुशाह ! हमारे साथ २ (दान और व्यय के लिये) द्रव्य के भरे हुए सात (या सौ) ऊँट रवाना करदो ।

एकादस सर एक नृप, सौ सामँत छह सूर ।
दिसि कनवज दिल्ली नृपति, चेतह बज्जि स तूर ॥८४॥

शब्दार्थ:—एकादस-सर-एक=सत्तरह (या अ० स० ११५१ वि० स० १२४२ में) । नृप=राज पद-धारी या राजा । तूर=रणतूर, तुरही ।

अर्थ:—सतरह राजा, सौ सामन्त छ शूरवीर साथ में लेकर (या अ० स० ११५१ वि० स० १२४२ में) चैत्र मास में रणतूर बजवाकर कन्नौज की ओर प्रयाण किया ।

कवित्त

पारिहार रनवीर, राज अग्गें आभासिय ।
प्रच्छन्नह कनवज्ज, तिथ्थ सक्रमन सु भासिय ॥
साज मव्व बर तास, भरो[1] बामन द्रव रज्जिय ।
अवर सब्ब परिहार, काज भोजन मध सज्जिय ॥
साहनी सद्दि जगमाल तहँ, देहु सवन सामत हय[2] ।
सारद्ध-सिद्ध तेजक्क हय, सजे सब्ब परकार तय[3] ॥ ८५ ॥

प्रा० पा० १ का० पा० घ० । २, ३ पा० ।

शब्दार्थ—पारिहार=परिहार, प्रतिहार क्षत्रिय । तिथ्थ - तीर्थ । सक्रमन=बढ़ो, चलो । भासिय=कहा । बामन=बर्तन । द्रव=द्रव पदार्थ । रज्जिय=रौप्य, चाँदी के । परिहार=प्रतिहार क्षत्रिय । साहनी=अश्वशाला का अधिकारी । सद्दि=बुलाया । सारद्ध सिद्ध=शस्त्र-दत्त । तेजक्क हय=तेज घोड़े । परकार=प्रकार, तरीका । तय=तहाँ, ते, वे ।

अर्थः—रणवीर प्रतिहार (राजा के पाकशाला का अधिकारी) को राजा ने आज्ञा दी कि तुम तीर्थ के बहाने प्रच्छन्न रूप से कनवज्ज की ओर आगे जाओ। द्रव पदार्थ तथा भोजनादि का सब सामान, चांदी के वर्तन आदि और भोजन बनाने वालों के बहाने अपने साथी जितने भी प्रतिहार हों उनको साथ मे लेलो। फिर जगमाल नामक अश्वशाला के अधिकारी को बुलाकर आज्ञा दी कि सब प्रकार से सुसज्जित-पाखरों-युक्त तेज घोड़े, शस्त्र-दक्ष सामन्तों मे विभाजित कर दो।

दोहा

बोलि साहनी सोच मन, दल लक्खन अस लज्ज।
समता¹ कारन बिल्हन, समपि समर जस कज्ज॥ ८६॥

प्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थः—दल लक्खन=लाखों की सख्या वाले दल में। अस=अश्व। बिल्हन=बिलहने घोड़े, राजा द्वारा सामतों को दिये जाने वाले घोड़े, बिलहना कहलाते थे। जस=यश।

अर्थः—तब अश्व शाला के अधिकारी ने अश्वशाला के सेवकों को बुलाकर मन में सोच समझ कर लाखों के दल समूह में वीर की लज्जा रखने योग्य बिलहने घोडे सामन्तों को युद्ध में यश प्राप्त करने के लिये दिये।

प्रथम संबोधे सथ्थ मह, सुत दुज रक्खे साह।
जाम सेख रजनी चढ्यौ, सिलह सु सज्जी ताह॥ ८७॥

शब्दार्थः—संबोधे=सम्बोधित किया। जाम=याम। सेख=शेष. एक प्रहर रात्रि। सिलह=शस्त्र, कवच आदि। ताह=उसने।

अर्थः—प्रथम साथ मे आने वाले समस्त साथियों को आदर सहित सम्बोधित किया-तथा गुरुराम और मधुशाह को राजकुमार के निरीक्षणार्थ दिल्ली में ही छोड एक प्रहर रात्रि शेष रहने पर कवच धारण कर राजा घोडे पर सवार हुआ।

इन पपच भुअपति चल्यौ, अरु कविचन्द अनूप।
जमुना नावनि उत्तरिय, निकट महल अनुरूप॥ ८८॥

शब्दार्थः—प्रपच=छद्म रूप में।

अर्थः—अनुपम कविचन्द के प्रस्थान के बहाने राजा ने प्रपच करके रवानगी की और जमुना तट से सटे हुए महल के निकट ही नावें लगाकर उसने जमुना को पार किया।

कवित्त

चढत राज पृथिराज, सगुन भयभीत उपन्नौ ।
स्याम अग तन छिद्र, कलस समु सपन्नौ ॥
एक अग तिय सकल, एक आभेस भेस बर ।
एक अग शृ गार, एक अगह सु दर नर ॥
दिखवी सुनयन राजन रमनि, पुन्छि वत्त धारह धनिय ।
शृ गार वीर दुअ सचरहि, अब्बूवै आपन भनिय ॥८६॥

शब्दार्थ:—आभेस=अभेष, खराब भेष । रमनि=उस स्त्री को । सचरहि=सचार होगा, छिडेगा । भनिय=कहा ।

अर्थ:—राजा पृथ्वीराज की चढाई के समय भयप्रद शकुन हुए और सामने छिद्र-युक्त काला कलश मिला, तत्पश्चात् एक स्त्री मिली, जिसके अग का एक भाग स्त्री के वेश मे था दूसरा अग कुवेष-युक्त नर का था, एक अग मे शृ गार दीखता था और एक अग मे पुरुष की सुन्दरता प्रगट होती थी (अर्थात कोई बहुरुपिया अर्ध नाटेश्वर का स्वाग बनाकर अर्धाङ्ग से शिव और अर्धाङ्ग से पार्वती स्वरूप था) उसे देखकर राजाने धार राज वशज सलखानी (जैत्र प्रमार) को उसके परिणाम के विषय मे पूछा, तब स्वय उस आबू राजवशी ने कहा कि आगे शृ गार रस के साथ २ वीर रस भी छिडेगा (राजकुमारी सयोगिता युद्ध करने से प्राप्त होगी) ।

तोन बधि भुअपति उभय, अरु कवि चद अनूप ।
जमुन उतरि नावह निकट, मिलिय महिल इन रूप ॥ ६० ॥

शब्दार्थ:—तोन=तोण, भाथे । उभय=दो, दोनो पार्श्व । महिल=महिला ।

अर्थ—राजा सव्य अपसव्य दोनो हाथों से बाण चलाता था, इसीलिये उसने दोनों ओर दो तुणीर (भाथे) कसे और कविचद ने भी अनुसम तुणीर कसा । जब यमुना तट पर नौकाओ के निकट आकर उतरा तब उसे इस स्वरूप मे एक ओर महिला दिखाई दी ।

कवित्त

पानि नाल दालिमी, हास मुष नैन रोम निज ।
उरसि माल जमूल, कमल कनयर सिरसी रज ॥

वाम हेम आभ्रंन, लोह दच्छिन दिसि मडिय।
अद्ध केस सलवध, अद्ध मुकुलित तिहि छंडिय ॥
विपरीत पीत अबर पहरि, पिख्खि राज अचरिज्ज करि।
किन महिली किन घर सुवर, किन सु राज अरधंग धरि ॥ ६१ ॥

शब्दार्थः—नाल=कमल नाल, कमल डडी। दालिमी=दाडिम। सिरछी=सरसों। हेम=हर्म्य, सोना। सलवंध=सँवारे हुए। मुकुलित=खुले हुए।

अर्थः—जिसकी कमल नाल के समान भुजाएँ, दाड़िम के दाने सी रदपंक्ति और मुख पर हंसी थी, उसके नैत्र रोष युक्त थे, हृदय पर जासूल, कमल, कनेर और सरसों के फूल की माला सुशोभित थी। वामांग में स्वर्णाभूषण और दक्षिणांग में लोहाभरण सुशोभित थे। एक ओर सुन्दरता पूर्वक केश पाश सँवारे हुए थे और दूसरी ओर के केश खुले हुए लटकते थे। विपरीत ढंग से पीताम्बर पहने हुए थी। यह देख राजा को आश्चर्य हुआ और सत्तख राज से कहा—यह कौन स्त्री है, इसका कौनसा घर है और कौन वर होगा, जिसने इसे अपनी अर्धांगिनी बनाई होगा? (यह भी शकुन विषयक केवल कल्पना हो या कोई बहुरुपिया ही इस रूप में दृष्टि-गोचर हुआ हो)।

दोहा

इहि विधि नारि पयान मिलि, मुख कल रत्त फुनिंद।
उद्दिम आदर चलिय नृप, तव नह बुझिझय चद ॥ ६२ ॥

शब्दार्थ—कल=सुन्दर। रत्त=अरुण वर्ण, क्रोध पूर्ण। फुनिंद=सर्प। उद्दिम आदर=अपने प्रयत्न में लग गया। बुझिझय=पूछा।

अर्थः—प्रयाण-समय इस प्रकार की स्त्री मिली, जिसका मुख सुन्दर था, किन्तु उसका क्रोध सर्प के समान था। राजा ने ऐसे शकुनों की ओर ध्यान न देकर उद्योग का ही आदर किया और उसके परिणाम के विषय में चद से कुछ भी नहीं पूछा।

कहै चद नृप ईस सुनि, दरस देवि दिय तोहि।
जुग्गि भजि अरि गंजिकै, दुलह सँजोगिय होहि¹ ॥ ६३ ॥

¹ मा० पा० १, का०।

शब्दार्थ—जुग्गि=यज्ञ। भजि=नष्ट करके। दुलह=दुलहा। होहि=होगा।

अर्थः—किन्तु फिर भी चंद ने स्वयं कहा–हे राजाओं के राजा पृथ्वीराज ! (बहुरूपिये के रूप में) आपको देवी ने दर्शन दिये हैं। इसका यही परिणाम है कि पगुराज का यज्ञ (विषयक विचार का) विध्वंस होगा और शत्रुओं का दमन कर आप स्योगिता के स्वामी होंगे।

बहुरि सगुन राजन्न भय१, फल्ल जपै कविचद।
उत्तिम मद्धिम विवह परि, कहि समभावत छ्द ॥६४॥

प्रा० पा० १ घ० पा० का०।

शब्दार्थः—सगुन=शकुन। भय=हुए। विवह परि=ब्यौरेवार। छ्द=तरीका, ढग।

अर्थः—और भी राजा को जो २ शकुन हुए, उनका कविचद ने अच्छे ढग से ब्यौरेवार उत्तम-मध्यम फल्ल समझाया।

वन विलाव घू घू घरह, परत परेव पँडूक।
एक थान दक्खिन दिसह, कहि यन श्रवन स मूक ॥६५॥

शब्दार्थः—घरह=घुघुराना, आवाज। परेव=परेवा। पँडूक=पडुक। कहि=कहा। यन=इन। श्रवन=सुनना। मूक=निषेध।

अर्थः—हे राजनन ! वन-बिलाव, घ घू, पडुक जाति का परेवा यदि दक्षिण दिशा की ओर बोले तो उसे नहीं सुनना चाहिये (ऐसा होना अशुभ प्रद है)।

रासभ उभय कुलाल करि, सिर बधननिस भारि।
नाम दिसा समुह मिलिय, अवसि होइ प्रभु रारि ॥ ६६ ॥

शब्दार्थः—रासभ=गधा। कुलाल=कुभकार। बधननिस=वधे हो। रारि=लड़ाई।

अर्थः—एक साथ दो गधे साथ में लेकर सिर पर बोझा (ईंधन आदि का) लिये हुए यदि कुम्भकार जाते समय बॉयीं ओर मिल जाय तो हे स्वामी ! निश्चय ही युद्ध होना सम्भव है।

अतिलक वभन स्याम असु, जोगी हीन विभुत्त।
समुह राज परक्खियैं, गमन वरज्जै नित्त ॥ ६७ ॥

शब्दार्थः—अतिलक=बिना तिलक के। वभन=ब्राह्मण। स्याम असु=काला शरीर।

अर्थः—श्याम वर्ण और विना तिलक के ब्राह्मण, विभूति हीन योगी अगर सामने मिल जाय तो हे राजन् ! परीक्षा कर देख लीजिये यह अमंगल कारक है। ऐसे शकुन होने पर गमन करना सर्वदा वर्जित है।

सिर पंछी दच्छिन रवै, वामी उवहि सियाल।
मृतक रथी समुह मुखह, कीजै गवन त्रिपाल ॥ ६८ ॥

शब्दार्थः—सिर पंछी=ऊपर उड़ता हुआ पक्षी। दच्छिन=दक्षिण। रवै=आवाज करे। उवहि=बोलना।

अर्थः—दक्षिण की ओर ऊपर उडता हुआ कोई पक्षी, बाईं ओर शृगाल बोले एव मृतक की अर्थी सामने मिले तो हे राजन् ! अवश्य गमन करना चाहिये।

कलस केलि उज्जल बसन, दीपक पावक मच्छ।
सुनिय राज बरदाय भनि, एह सगुन अति अच्छ ॥ ६६ ॥

शब्दार्थः—केलि=केल। उज्जल वसन=श्वेत वस्त्र। मच्छ=मत्स्य।

अर्थः—चंद बरदाई कहता है, हे राजन् ! कलश या केल लिये हुए श्वेत वस्त्रधारी स्त्री पुरुष या दीपक, अग्नि और मत्स्य सामने एक्त मिले तो शकुन अच्छे कहे गये हैं।

राज सगुन समूह हुअ, धुभ्र तन सिंघ दहारि।
मृग दच्छिन छिन छिन खुरहिं, चलहित संभरि वारि ॥ १०० ॥

शब्दार्थः—धुभ्र तन=ध्रुव की ओर। दहारि=दहाड़ा हो। चलहित=चलता हो। खुरहि=जमीन खोदता।

अर्थः—हे राजन ! आपके सामने या उत्तर दिशा में यदि सिंह दहाड़ता हो और दक्षिण में मृग वार २ खुरों से पृथ्वी को खोदता दृष्टिगोचर हो तो ऐसे शकुन लेकर अवश्य चलना चाहिये।

सुनत सीस सारस सबद, उदय सु बद्दल भान।
परनि भाजि प्रतिहार सौ, करहित काज प्रमान ॥ १०१ ॥

शब्दार्थः—परनि=वरण किया। करहित=करेगा।

अर्थः—बादलों में सूर्योदय होते समय सिर पर सारस (दम्पति) ने शब्द किया है जिसके फलस्वरूप प्रतिहार (गिरनार प्रान्तीय नाहरराय) पर जिस प्रकार आपने

राजकुमारी को वरण करते समय विजय प्राप्त की थी। वैसा ही यह शकुन भी प्रमाणित होगा।

कलकलार सद्यौ समह हसि न्रप बुझयौ चद ।
इक रवि मडल भेदि है, इक करिहै आनद ॥१०२॥

शब्दार्थः—कलकलार=कलकला (इसे सिंह चड़ा भी कहते हैं)। सद्यौ=बोला।

अर्थः—इतने में कलकला (एक पक्षी जो सिंह की दाढो मे जाकर मास खींचकर निकल जाता है) पक्षी सामने बोला तब राजा ने हँसकर चद से उसका फल पूछा। चद ने कहा— अपने मे से कोई युद्ध स्थल मे काम आकर सूर्य-मण्डल भेदेगा और कोई विजय पाकर हर्ष मनायेगा।

एक करहि मह नद वहु, इक छिन भिन्न सरीर ।
इक भारथ्थ सु जीति है, जे वज्र ग सु बीर ॥१०३॥

शब्दार्थः—नद=आनद। छिन भिन्न=छिन्न भिन्न, अस्त व्यस्त।

अर्थः—कोई घर मे सुख भोगेगा, कोई अपने शरीर को अस्त व्यस्त करेगा और कोई युद्ध के विजय का श्रेय लेगा। हे बज्र गी! तेरी लीला अपरपार है। तेरी जय हो।

सुवर वीर सोमेस सुअ, गुन अवगुन मन धारि ।
दुख अति दाहिम्मा दहन, मरन सु मगल रारि ॥१०४॥

शब्दार्थः—सुवर=उस समय।

अर्थः—उस समय वीर सोमेश्वर का पुत्र पृथ्वीराज ने गुणों और अवगुणों को मन में सोचते हुए कैमास की मृत्यु पर दुख किया (क्योंकि कैमास जैसा वीर योद्धा कर्नाटी के कारण पृथ्वीराज के हाथ से ही मारा गया था, इसीलिये पृथ्वीराज ने पश्चाताप किया) और कहा, ऐसे वीर का हम साथियों के साथ मरन होता तो अति मगल था।

सम सामतन राज कहि, पहु परमारथ मत्ति ।
समर [illegible] गगा [illegible] उभय अनूपम गत्ति ॥१०५॥

शब्दार्थः—[illegible] = [illegible]। [illegible] = [illegible] विचार, ध्यान।

अर्थः—राजा ने सामंतों से कहा—हे वीरों। मेरे महान कार्यों के तरफ ही सदा तुम्हारा ध्यान रहा है अतः गंगा जैसे तीर्थ स्थान पर युद्ध होने के कारण दोनों प्रकार से अनुपम गति प्राप्त हो सकती है।

रति माधव मोरै सुतरु, पुहप पत्र बन वेलि।
राज कवी करतह चले, सम सामंतन केलि ॥१०६॥

शब्दार्थः—रति=ऋतु। केलि=विनोद।

अर्थः—इस प्रकार बसंत में जब वृक्ष-मंजरियों (मोर) युक्त थे और वन में पुष्प, पत्र तथा लतिकाएँ लहलहा रहीं थीं, उस समय राजा, कवि, और सामंतगण रास्ते में विविध विनोद की बातें करते हुए चले।

कवित्त

चलत मग्ग चहुआन, जाम पिंगिय पहु निक्करि।
सजि दुल्लह सनमुख्ख, सुमन सेहरो सीस धरि॥
सजे पिट्ठ वामंग, रंग निज नेह प्रकम्मे।
पिक्खिराज पृथिराज, मन्नि सा सगुन सु भ्रम्मे॥
उदंयत दिवाकर त्रीय मिलि, सुभट अंत किय जुद्ध जुर।
जय जंपि सथ्थ साहा-गवन, वज्जे वज्जनि सिंधु सुर ॥१०७॥

शब्दार्थः—पिंगिय=पिंगल रग। पहु=प्रात काल। पिट्ठ=पीछे। वामग=वामांगी, स्त्री। प्रकम्मे=चल रही थी। मन्नि=मन में। त्रीय=स्त्री। साहा-गवन=शादी होगी।

अर्थः—चाहुआन नरेश को विदा होते २ पिंगुली समय (प्रातःकाल) हो आया। उस समय सामने फूलों का सेहरा सिर पर सजाये हुए दुलहा मिला, उसके पीछे शृंगार की हुई दुलहन अपने रस रग और स्नेह के साथ चल रही थी। उन्हें देख कर पृथ्वीराज ने भ्रमित हो इस शकुन का फल पूछा—तब साथियों ने कहा—इस रग ढग से सूर्योदय होते २ स्त्री का मिलना, युद्ध छिड़ना, सुभटों का अन्त होना, साथ ही सिंधुराग में बाजे बजना, विजय पाना आदि शकुन आपका विवाह सयोगिता के साथ होने का सूचक है।

वाग खंचि दिल्लेस, जाम उभया खिन उत्तरि।
दिसि दाहिनि सजि द्रुगग, त्रास वित्ती तर-उप्परि॥

दिसि बाईं वर सहि, मसम ऊपर आ रुन्नी ।
ताम तमि उत्तरी, इख्खि राजन सर सम्मी ॥
एकल्ल मृग्ग सम्हौ मिल्यौ, हयौ राज सधेव सर ।
उत्तारी ताम देवी दुहर, देखि मर्व दुम्मन्न भर ॥१०८॥

शब्दार्थः—जाम=जब । उमया=दो । खिन=क्षण । उत्तरि=उतर पड़ा । दुग्ग=दुर्गा, देवी चिड़िया । वाम विची=घोंसले को छोड़कर । तर-उप्परि=तरु से, वृक्ष से । मसम=काले रंग की चिड़िया । आ रुन्नी=आकर रोने के स्वर में बोलने लगी । ताम=तब, फिर । तमि=तमतमाती हुई । उत्तरी=उत्तर को । इख्खी=बोलने लगी । राजन=राजा के । सर सम्मी=मस्तक की ओर, मस्तक पर । एकल्ल मृग्ग=अकेला मृग, काले रंग का मृग । हयौ=मारा । सधेव सर=बाण सधान कर । उत्तरी=उतर पड़ी । दुहर=दूसरी बार । दुम्मन=उदास । मर=भट, सामन्त ।

अर्थः—इस शकुन को सोच दिल्लीश्वर घोडा रोककर दो क्षण के लिये उतर पड़ा । उसी समय वृक्ष से अपना घोंसला छोड़ देवी चिड़िया दाहिनी ओर आकर उतरी और बोलने लगी फिर वह काली चिडिया तमतमाती हुई ऊपर उडकर रुदन-स्वर करने लगी, बाद मे वह उत्तर की ओर आकर राजा के मस्तक पर बोलने लगी । इतने मे एक (कृष्ण) मृग सामने से निकला । उसे राजा ने बाण सधान कर मार दिया, तब वह देवी चिडिया दूसरी बार जमीन पर उतरी । यह देखकर सब सामंत अनमने (उदास) हो गये (घोंसले को छोडकर दाहिनी ओर उतर पडने से अंत में घर छूटने का संकेत है । फिर उस चिडिया का तमतमाकर ऊपर की ओर उडते हुए रुदन का-स्वर करना काल सूचक है । पूर्व को जाते हुए राजा के उत्तर की (बाईं) ओर बोलना शुभ फल देने का सूचक है । कृष्ण मृग का सामने आना काल-स्वरूप है, किन्तु उसे मार देना अप शकुन का शमन करना है । बाद में वह चिडिया जमीन पर उतरी इस प्रकार शुभ और अशुभ शकुन राजा को हुए) ।

चल्यौ राज पृथिराज, उभय खिन तथ्थ बिलंबे ।
मिलि समुह जुग्गिनिय, दरस दीये नृप अंबे ॥
कर खप्पर तिरसूल सबद उच्चरि जय जंपे ।
मधि खप्पर बरि हेम, प्रनमि राजग पयपे ॥
सावत्ति सज्जि हय हंकि सब, अंबर वारि आरोहि त्रिय ।
मद जाइ अग्ग अपशुन किये, मिलिय रान मा समुहिय ॥१०९॥

शब्दार्थः—जुग्गिनिय=देवी रूप में योगिनी, तपस्विनी। प्रनमि=प्रणाम। पयंपे=चरणों में। साकत्ति=जीन, पाखर। अवर=और, फिर। वारि आरोहि=जल में तैरती हुई। अपगुन=अपने कर्म। सा सम्मुहिय=जो सामने मिली थी।

अर्थः—उपर्युक्त अप शकुनों का दोष नष्ट करने के लिये कुछ समय राजा वहीं ठहरा और बाद में रवाना हुआ उसी समय एक दुर्गा-भक्त योगिनी अम्बा के रूप में आकर सामने खड़ी हुई जिसके हाथ में खप्पर और त्रिशूल था, उसने जय २ शब्द का उच्चारण किया। यह देख राजा ने उसके खप्पर मे स्वर्ण मुद्रा रख दी और उसके चरणों में प्रणाम किया। बाद में सभी साथियों सहित पुनः अपने घोडे पर चढ़कर चले। इधर वह स्त्री जो राजा के सामने दुर्गा के रूप मे मिली थी। यमुना के जल में तैरती हुई अपने घर पहुँची और अपना नित्य कर्म किया।

दोहा

इन सगुन दिल्लिय नृपति, संपत्तौ भूसाम।
कोस तीस दुअ अग्गरौ, कियौ मुकाम सु ताम ॥११०॥

शब्दार्थः—भूसाम=स्थान विशेष या सायकाल होने पर।

अर्थः—इस प्रकार शकुन मनाता हुआ दिल्लीपति भूसाम नामक स्थान पर जो दिल्ली से ३२ कोस था वहाँ पहुँच कर विश्राम किया (या सायकाल होता देख वहाँ विश्राम किया)।

सद्दि राज रनवीर तहँ, किय भोजन सुउ ताम।
सब आहारे अन्न रस, चल्यो जाम निसि जाम ॥१११॥

शब्दार्थः—सद्दि=बुलाकर। सुउ=उसने। चल्यो=चढकर रवाना हुआ। जाम=जब। निसि जाम=प्रहर रात्रि शेष थी।

अर्थः—भोजनालय के प्रबन्धक रणवीर प्रतिहार को आदेश देकर राजा ने सबके साथ भोजन किया। जब सभी भोजन कर चुके, तब एक प्रहर रात्रि रहने पर राजा चढकर पुन आगे रवान हुआ।

कवित्त

चलत मग्ग चहुआन, निकट इक गाम समतर।
नट खेलत नाटक्क, भगल मंड्यौ भ्रम ततर ॥

सत्त सगु उप्परै, नट्ट सुत्तौ जय जपत ।
कहुँत सीस कहु पानि धरनि धर पर्यौ सु कपत ॥
इह चरित पिक्खि सामत सब, अप्प चित्त विभ्रम लहै ।
पिक्खंत परसपर मुख सकल, न को बुम्फ राजन कहै ॥११२॥

शब्दार्थः—समतर=गांव के अन्दर और निकट । मगल=इन्द्र जालिक खेल (जिसमें कृत्रिम अगों का काटना बताया जाता है) । सत्त=सात । संगु=सांग, बर्छे, भाले । सुत्तौ=सोया । विभ्रम लहै= भ्रमित हो गये ।

अर्थः—विश्राम के बाद चलने पर राह मे एक गाव के निकट एक नट नाटक खेल रहा था और उसने तत्र मत्र युक्त इद्रजालिक खेल करना प्रारंभ किया । वह नट सात भालों की अणियों पर जाकर जय २ कार करता हुआ सोया तो उसका कहीं शीश, कहीं हाथ जा पडे और धड पृथ्वी पर कॉपता हुआ गिर गया । सब सामत गण अपने २ चित्त में भ्रमित हो गये, और आपस मे एक दूसरे का मुख देखने लगे । न तो कोई बोला और न राजा ने ही कुछ कहा ।

इक्क कहै कोइ तित्थ, कवन थानक को देवह ।
जिहि असगुन चल्लियै, कोइ न जाने इह [1]भेवह ॥
कहिय जैत सम कन्ह, तुमहिं रक्खौ कहि राजन ।
कहै कन्ह नन लहौ, प्रथम बरज्यौ बहु[2]जा जन ॥
पज्जून कहै जुभझहु सरल, इह अवस्य कनवज्ज क्रमै ।
जानै सु भट्ट कारज सयल, मति सु कोट चिंता भ्रमै ॥११३॥
१ मा०पा०१, २ का०पा० ।

शब्दार्थः—असगुन=खराब शकुन । भेवह=भेद नन लहौ=कुछ भी असर नहीं हुआ । बहु= बहुत से । जा=जा जुभझहु=जूझ पडेंगे, कट पड़ेंगे । क्रमै=जायगा । भट्ट=बदीजन, रविचद । सयल=सकल, सब ।

अर्थः—यह देखकर सामतों मे से कोई बोल उठा-यह अद्भुत लीला करने वाला किसी तीर्थ या स्थान का देवता है । ऐसे अप शकुनो मे हम सब चल रहे है, इसके परिणाम का भेद कोई नहीं जान सकता । जैत्र प्रमार ने नरनाह कन्ह से कहा-राजा को आप समझाकर रोकिये । कन्ह बोला- बहुत से आदमियो ने पहले निषेध

कर दिया है, किन्तु उससे कुछ भी सार नहीं निकला, अब कहना वृथा है। तब पज्जून बोला, राजा अवश्य कन्नौज जायगा और हम सबको जूझना पड़ेगा। राजा की बुद्धि किस भ्रम में भटक रही है इस बातको केवल चंद भट्ट ही जानता है।

कहै कन्ह नरनाह, सुनहु कूरभराव ध्रुअ।
जो भविस्य त्रिम्मान, सोइ मिट्टै न मूर भुअ॥
धरम सुअन कत दूत, सोइ बरज्यौ नहिं मानिय।
जनमेजै कहि जग्य, सु हित निष्पेध न जानिय॥
सौमित्र बरज्जित राज रघु, कनक मृग सधेव सर।
दसकध निषेधिय मत्रियन, सीय न अप्पिय काल वर॥११४॥

शब्दार्थः—धुअ=ध्रुव, निश्चय। कत दूत=द्यूत क्रीड़ा, जुआ खेलना। जन्मेजै=जन्मेजय। सौमित्र=लक्ष्मण। राज रघु=राजा रामचन्द्र। अप्पिय=समर्पित की, लौटाई।

अर्थः—यह सुनकर नरनाह कन्ह बोला—हे कूरंभ पति! यह निश्चय है जैसा भविष्य का निर्माण हो चुका वैसा ही होगा, वह मिटाया नहीं जा सकता। युधिष्ठिर को बहुत कुछ समझाया गया था, किन्तु उसने अन्त में द्यूत क्रीडा की ही। जनमेजय को हित के वचन कहकर निषेध किया गया था, किन्तु उसने अश्वमेध यज्ञ किया (और अठारह प्रकार के कुष्ट का रोगी बना)। लक्ष्मण ने बहुत कुछ कहा; किन्तु राम ने स्वर्ण मृग की ओर संधान किया ही। मन्त्रियों ने रावण को बहुत कुछ निषेध किया, किन्तु काल के वशीभूत होकर उसने सीता को नहीं लौटाया।

किय जद्दव त्रिय रूप, श्राप दुर्वास सु धारिय।
काल विनस निर्घोष, विप्र-वाहै न नहारिय॥
इहि राजा प्रथिराज, हन्यौ कैमास अप्प कर।
भरि वेरी चामड, किये दुम्मन्न सव्व भर॥
इह गमन भट्ट बुझझै नृपति, करै कहा सुझझै न मन।
उप्पजो कोइ कृत्या अतुल, सोइ प्रसूचिय राज तन॥११५॥

शब्दार्थः—त्रिय रूप=मूसल को स्त्री वेश में बनाया। निर्घोष=नृग राजा। विप्र वाहै=ब्राह्मणों ने निर्दोषी राजा की ओर। न=नहीं। नहारिय=निहारा, देखा, सोचा। कृत्या=नाशकारी शक्ति।

अर्थः—भविष्य के कारण ही यादवों ने मूसल की स्त्री बनाई, जिससे आगे जाकर दुर्वासा के श्राप के कारण वे सब नष्ट हुए। राजा नृगु भविष्य के कारण अकारण विप्रश्राप से विनाश को प्राप्त हो गिरगिट रूप धारण किया। उसी भविष्य के कारण राजा पृथ्वीराज ने भी अपने योग्य मत्री को अपने हाथों से मारा और चामुडराय जैसे वीर के पैरों में बेड़ी डालकर सब सामंतों को रुष्ट कर दिया। इस गमन के बारे में राजा बार २ भट्ट कवि से पूछता है, क्योंकि वह कर ही क्या सकता है ? उसको मन में कुछ भी नहीं सूझता। अत ऐसी कोई नाशकारी दैविक शक्ति उत्पन्न हुई है, उसी का प्रभाव राजा के शरीर पर पडा है।

दोहा

जानि सगुन चहुआन ने, मन भावी सो गत्ति।
सो न मिटै परब्रह्म सौ, ब्रह्म चित्त भैभित्त ॥११६॥

शब्दार्थः— भैभित्त=भयभीत।

अर्थः— चाहुवान राजाने इन शकुनों के परिणाम को मनमें जानते हुए भी कन्नौज की ओर प्रस्थान किया है। अत जैसा भविष्य होता है वैसी ही गति (बुद्धि) हो जाती है। वह परिब्रह्म परमात्मा से भी नहीं मिटती। उससे डर कर स्वय ब्रह्मा भी चिंतित रहता है।

सहस मद्धि नारं जुलै, सो इन्छिनि मोकल्लि।
गुरु सज्जन सैसव सु-बँध, बरजतै नृप चल्लि ॥११७॥

शब्दार्थः—मद्धि=अतहपुर में। नार=नारियाँ, स्त्रियाँ, सुन्दरियें। जुलै=उनके सहित। सो=इस राजाने। मोकल्लि—हृदय से दूर की, भुला दिया। सैसव-सु-बँध=बालमित्र। बरजते=वर्जित करते हुए।

अर्थः—अत पुर मे एक से एक बढ कर सहस्रों सुन्दरिया हैं उनके सहित इस राजा ने इच्छिनी जैसी रानी को भी भुला दिया और इसने अपने गुरु, सज्जन एव बाल मित्रों के निषेध करने पर भी कन्नौज को चलने की ठानी है यह भविष्य का ही कारण है।

रवि मडल भेदै स फुटि प्रथम चित फुनि होइ।
नन जपै भट जीह करि, नृपहि अमगल जोइ ॥११८॥

शब्दार्थ:—फुट्टि=शस्त्र द्वारा विंध कर । फुनि=पुन । भट=वंदिजन, कविचंद । जोह करि= जबान से ।

अर्थ: सामन्त कहने लगे-शस्त्रों से विंधे जाकर हम तो रवि-मडल को पार कर जायेंगे, लेकिन प्रारभ में जो चित्त में चिंता पैदा हो रही है उसके लिये भट्ट कवि (चंद) क्यों नहीं राजा से कहता है-कि इसमें आपका प्रत्यक्ष अमगल दीख रहा है।

पर पहुमी पत्तो सु पहु, उग्गै भान पयान ।
दल बद्दल सद्दल दिसह, पूरन छयत गयान ॥११६॥

शब्दार्थ:—पर पहुमी=पराये भू भाग पर। पयान=प्रयाण। सद्दल=सेंदुली, सिंदुरी। गयान=ज्ञान।

अर्थ:—(इस प्रकार एक दूसरे के प्रति कई प्रकार के विचार प्रकट करते हुए चले)। तब तक श्रेष्ठ राजा पृथ्वीराज अपनी सीमा पार कर दूसरे की सीमा में प्रविष्ट हुआ। प्रस्थान के समय सूर्योदय हुआ, जिससे ऐसा पूर्ण ज्ञान होने लगा मानों पूर्व दिशा में सिंदूरी रग का दल बादल उमड़ा हो (या दिशा सुन्दरी ने अरुणाभ्र के बहाने सिंदूर से मांग भरी हो)।

उदय हंस सज्जै सगुन, बज्जै अनहद सद्द ।
दिक्खत दरसन परसपर, पुल्लै दस दिस जद्द ॥१२०॥

प्रा०पा०१ पा०।

शब्दार्थ:—हस=सूर्य। अनहद=अपार। पुल्लै=फैल गई। जद्द=जब।

अर्थ:—सूर्योदय होने पर शकुन मनाते हुए वीर तैयार हुए और अत्यधिक वाद्य बजवाये, जब सूर्य किरणें चारों ओर फैल गई तो एक दूसरा आपस में दिखाई देने लगा।

कवित्त

चढ़ि चतुरँग चहुआन, राइ संभरिय सुयंभर।
सकल सूर सामत, मंत भजन समथ्थ वर॥
परभ हंन सम समय, होत सक्कुन्न कुल सोरं।
बज्जि पंचजन देव, सेव अवर मग ओर॥
जल जात पात मिलि विच्छुरत, रोर अलिन सल्लिन सुखद।
लंपट कपाट विट त्रिय तजत, तमचर चर कीनो सुखद॥१२१॥

प्रा० पा० १ का पा० घ०।

शब्दार्थ—सुयंभर=स्वयवर। मंत=मतवाले हाथियों को नष्ट करने। परब्र=पर्व। हन=होने। सम=समान। पचजन=पाचजन्य, शख। जलजात=कमल। रोर=क्रीड़ा। सल्लिन=सरिन, सरिताओं पर। लपट कपाट=पक्के लपट। तमचर=ताम्रचूर, कुक्कुट। चर=चलकर। मुखद=मुख स्वर, आवाज।

अर्थ:—सयोगिता का स्वयवर सुनकर सभरेश्वर ने सेना सजाई। उसके वीर सामत मतवाले हाथियों को नष्ट करने में सामर्थ्यवान थे। जब वह सोरों पहुँचा तब महान पर्व (युद्ध) होने के शकुन तुल्य समय (अरुणिमा लिए हुए प्रात काल) हो पाया। देवालयों में शख बजकर आकाश मार्ग में प्रतिध्वनित हुआ। सपुटित कमलों की पँखुडियों से निकल कर अलिगण सरिता तट पर सुखद क्रीडा करने लगे। पक्के लपट और विट-पुरुष स्त्रियों को त्यागने लगे और ताम्रचूर (कुक्कुट) चलकर आवाज देने लगे।

है सजि सभरि राय, चढिव चौहान प्रनमन।
क्रमत मग्ग पिंगलह, मान उदथान विखनन॥
नैंन दरसि दिसि विदिस, निंद सभगिय पल अगन।
अवलोकित दिन लोक, लोक नर वर है दगन॥
दिखियै वदन दूलह द्रगनि, सदन रग दुलही क्रमत।
वदेवि पाय निंदे अगुन, फल सुभाव अवा' प्रमत॥१२२॥
मा० पा० १, का० ध० पा०।

शब्दार्थ:—प्रनमन=प्रणाम की वदना किया। पिगलह=पिंगला, योगिनी। उदथान=उच्चस्थान। विखनन=विषानन, नीलकठ, शिव। दगन=दग, चकित। वदेवि पाय=चरणों की वदना की। अगुन=निर्गुण, निराकार। प्रमत=उन्मत्त।

अर्थ:—सोरों तीर्थ की वदना कर राजा, घोड़े पर चढ कर और आगे चला। रास्ते में उसे ऊँचे स्थान पर एक पिङ्गला देवी और विषानन (नीलकठ) के रूप में कोई तपस्विनी और तपस्वी दिखाई दिये, जिनकी पलकों से निद्रा दूर हो गई थी। ससार के लोगों को चकित करने वाले उदायमान ससार के सूर्य की ओर फैलती हुई अरुणिमा की छटा को वे चारो ओर से देख रहे थे। वे अपनी ज्ञान दृष्टि से गुप्त वेश में जाते हुए दूलहे (पृथ्वीराज) को और दुलही (सयोगिता) के नेहर में होने वाले रग (युद्ध) को देख रहे थे। पृथ्वीराज ने निराकार की निन्दा करते हुए उन

साकार रूपधारी ऋषि दम्पति की चरण वंदना की और उन्मत्त पिंगला देवी को स्वभावतः ही फल दाता माना।

दोहा

वन सु थान इक देवि मिलि, संग स्वान गन माल।
जट विभूति कर कंवयनि, लखि अचिज्ज भूपाल ॥१२३॥

शब्दार्थः—गन = गण। कंबयनि = कंबु, शंख। अचिज्ज = आश्चर्य।

अर्थ—वहां से चलने पर वन में एक सुन्दर स्थान पर एक अवधूत योगिनी मिली, जिसके साथ में कुत्ते, गले में माला, सिर पर जटा, शरीर पर विभूति और हाथ में शंख था, यह देख राजा को आश्चर्य हुआ।

तिघट तीय माया सरिय, द्रिग लग्गिय तिहि काल।
सज्जि सवेग सु सुन्दरिय, रचि शृंगार रसाल ॥१२४॥

शब्दार्थः—तिघट = उसके घट में, अतर मे। माया सरिय=माया दिखाई। द्रिग लग्गिय = ध्यान किया। संवेग = शीघ्र।

अर्थः—राजा ने उसकी तरफ देख आंखें मूंद कर ध्यान लगाया। उस समय उस अवधूत योगिनो ने राजा को ध्यानावस्था में ही एक विचित्र माया दिखाई। वह शीघ्रतापूर्वक शृंगार सम्पन्न रसीली सुन्दरी दीख पड़ी।

गाथा

पयपि पंग[1] तनया[2], घट्ट घट्टनि[3] सूरय घनयं[4]।
भरता पित कुल बद्धं, सापं सुमंत यो मुनी ॥१२५॥

प्रा० पा० १, ३, ४ का० पा०। २ का०।

शब्दार्थः—पयपि=कहा। पंग तनया=पगुराज की पुत्री, सयोगिता। घट्ट = शरीर। घट्टनि = नाश करने वाली। सूरय=वीरों के। घनयं=विशेष। भरता=भर्ता, पति। पित = पिता। बद्धं=नाश करूंगी।

अर्थः—योगिनी ने कहा—मैं पंगु पुत्री हूँ। मैं बहुत से सामन्तों और वीरों के शरीरों का नाश करवा दूँगी। मैं पिता और पति दोनों कुलों का नाश कराऊँगी; क्योंकि मुझे यह सुमन्त ऋषि के कारण श्राप हुआ है।

कलह प्रिया मो नामं, मंजु घोषापि रंभया सारं[1] ।
समरस्य जन्य समये, प्रछन्न कथित मया ॥१२६॥

म्रा० पा० १ का० पा० ।

शब्दार्थः—सारं=अंश । प्रछन्नं=गुप्त ।

अर्थः—मेरा नाम कलह-प्रिया है और मैं मंजुघोषा तथा (या मृदुभाषिणी) रंभा के अंश से उत्पन्न हुई हूँ । यह बात गुप्त रखना, जिसका मैंने कथन किया है । यद्ध समय में युद्ध होने का संदेश है जो गुप्त रूप से तुम्हें कहती हूँ ।

दोहा

पल प्रगट्टि कवि चंद सौं, कह्यौ कोन इह भाव ।
कह्यौ जु इह ह्वै है अवसि, सुन डंकिनि पुर राव ॥१२७॥

शब्दार्थः—पल प्रगट्टि=आँखें खोलकर, सावधान होकर । अवसि=अवश्य । डंकिनि पुर राव=योगिनीपुर के राजा, दिल्लीश्वर ।

अर्थः—ध्यान मुक्त होने पर राजा ने सारी बात कविचंद से कही और पूछा—कि इसका क्या अभिप्राय है जिसे मैंने ध्यान मे देखा है । इस पर कवि चंद ने उत्तर दिया कि हे दिल्लीश्वर ! जो कुछ आपने मुझे कहा है वह अवश्य होगा ।

कवित्त

पहर कक कलकलिय, भार फनिमन कर भज्जिय ।
सजिय सेन चहुआन, किन्न कारन अरि कज्जिय ॥
अप्प अप्प सजि इष्ट, चलै जैचंद स मानन ।
घर अप्पन चौसट्ठि, करह सो कर दैवानन ॥
रुधि-पत्र-गहन दारुन दिवहि, चंद भट्ट आसिख्ख दिय ।
सुर करिय कित्ति भयभीत भर, करन भत्त आगम कहिय ॥१२८॥

शब्दार्थः—भार=सेना के प्रयाण से । फनिमन=मणिधारी सर्प । किन्न कारण=कारण बनाकर । मानन=नष्ट करने । करह=कलह । दैवानन=देव स्वरूपी । रुधि पत्र गहन=रुधिर पात्र गृहण करने वाली, देवी । दारुन=दारुण, भयानक । दिवहि=दीप्तिमान । आसिख्ख=आशीर्वाद । करन-भत्त=मर्दन ।

अर्थः—कविचन्द कहने लगा—हे राजन्! आपके प्रयाण से विघ्नकारी कंकाल किलकारी करने लगेंगे। मणिधर सर्प भार से कुचला जायगा। शत्रु को निमित्त बनाकर आपने इस प्रकार सेना सजाई है और अपने साथियों सहित जयचंद को नष्ट करने के लिये इष्ट का स्मरण किया है, यह देखकर आपको वरदान देने के लिये चौसठ ही योगिनियाँ आ उपस्थित हुई हैं। अतः हे देवस्वरूपी राजन्! आप अवश्य ही युद्ध छेड़िये-क्योंकि रुधिर-पात्र ग्रहण करने वाली भयानक देवी आपका प्रताप देदीप्यमान करेंगी। यह मेरा आशीर्वाद है साथ ही आपका कीर्ति गान देवता करेंगे। यह सुन सामंतगण आश्चर्यान्वित हो कहने लगे—पृथ्वीराज का पृथ्वी-पर आगमन वीर अर्जुन के समान ही है।

कवित्त

चिहुर बंध बंधियहि, काल छुद्धियहि कुलाहल।
गैन मग्गि संचियहि, भूत प्रेतह हल्लाहल[1]॥
अधर पाइ धर धरनि, कंठ रुधि पियै सुनद्धिय।
मनो पुज्ज प्रब पाव[2], पत्र पत्रन भरि[3] लद्धिय॥
संयोग ब्याह जुध[4] जोग सुनि, चलत राह उधान मग।
रन राग रंग पत्रन भरन, दुरति[5] रूप दानव सु द्रग॥१२६॥

पा० पा० १, ३ भी। २ पा०। ४, ५ का०।

शब्दार्थः—चिहुर=सिर के बाल। बंध=बंधन। बंधियहि=बाँधे। काल छुद्धियहि=क्षुधित काल के समान। गैन=गगन, आकाश। अधर पाइ=पृथ्वी पर पैर नहीं देते हुए भी। धर धरनि=कपायमान होगई। रुधि=रुधिर। नद्धिय=नांघलिया, निश्चय कर लिया। मनोपुज्ज=मानस पूजा। प्रब पाव=पर्व होना, युद्ध होना सोचकर। पत्र पत्रन=प्रत्येक के रुधिर पात्र। भरि=बरसने लगे। लद्धिय=मान लिया। जुध जोग=युद्ध के साथ। दुरति रूप=अदृश्य रूप। सु द्रग=आँखों के सामने दिखाई दिये।

अर्थः—भूत प्रेतादि अपने सिरके चिहुरों (सिर के बालों) को मजबूती से बांधकर क्षुधित काल के समान कोलाहल करते हुए आकाश मार्ग पर एकत्रित हुए और शोर गुल करते हुए बढ चले। उनके पृथ्वी पर पैर नहीं देने पर भी भूतल धड़-धड़ाने लग गया। उन्होंने वीर कंठों से रुधिर पान करने की सोचली। होने वाले

महान पर्व को देखकर वे उसकी मानसिक पूजा करने लगे, उन्हें निश्चय होगया कि प्रत्येक वीर के रुधिर से पात्र पूर्ण हो जायेंगे। संयोगिता को लेकर अरण्य मार्ग पर विचरते हुए युद्ध होने पर ही पृथ्वीराज का विवाह संयोगिता से होगा। यह सुन कर उन्होंने युद्ध राग छेड़ दिया। वे दानव अदृश्य होते हुए भी वीरों को दृष्टिगोचर होने लगे।

एन बान असुरान, भिरन महिषासुर भग्गिय।
एन बान राखिसन, राम रावन्न उछग्गिय॥
एन बान कौरव समथ्थ, पथ्थ भर करन पछारिय।
एन बान संकर सुभग्ग, पानि[1] त्रिपुरासुरि पारिय॥
इन बान पराक्रम बहु करिय, सजिय हथ्थ चहुआन वर।
इन बान मारि पगुर पिसुन, करन कक चल्लै कहर॥१३०॥

प्रा० पा० १, पा० का०।

शब्दार्थः—एन=इस। भग्गिय=भाँज दिया, नष्ट किया। राखिसन=राक्षसों को। उछग्गिय= उड़ा दिया। समथ्थ=सामर्थ्यवान। पथ्थ=पार्थ। त्रिपुरासुरि=त्रिपुरासुर। पारिय=धराशाई कर दिया। सजिय हथ्थ=हाथ में लिया, हाथ में साधा। पगुर पिसुन पगुराज और उसके साथी दुश्मन। कक=युद्ध। कहर=विघ्न स्वरूपी।

अर्थः—इसी बाण से देवी ने राक्षसों और महिषासुर को मारा, रामने राक्षसों सहित रावण का संहार किया, अर्जुन ने कौरवों और उनके कर्ण जैसे बलवान साथियों को धराशाई किया तथा शङ्कर ने त्रिपुरासुर को पछाड़ा। इस प्रकार इसी बाण ने विशेष पराक्रम कर बताया। वही बाण श्रेष्ठ वीर चाहुवान नरेश्वर ने पगुराज (जयचन्द) और उनके साथियों को युद्ध छेड़कर नष्ट करने के लिये हाथ में गृहण किया है। यह सोच कर वे विघ्न स्वरूपा भूत प्रेत (अदृश्यरूप से) राजा के साथ चले।

चलत मग्ग चहुआन, भान सम देखि भयंकर।
गिर तरु लग्गिय गैन, खलन-खंडन तरु खंखर॥
बैल गैल जट जूट, पिट्ठ तठ काम विराजै।
गंग सदक उछ्छरैं, सार चमर सिर साजै॥

तब चल्ल पिक्ख चौहान भट, तब उत्तरि सब भर निभर ।
पेखत पाइ दुज्जन दुसह, धर्यौ पिट्ठ सवि अप्प कर ॥१३१॥

प्रा०पा०१, पा०घ०।

शब्दार्थः—मान=भानु, सूर्य । गेन=गगन, आकाश । खलन खडन=शत्रुओं के भिन्न २ भूभाग निवास स्थान) । तरु लखर=बहुत पुराने वृक्ष । वैल=बैल, नदी गण । तठ काम=इच्छित मनोकामना को पूर्ण करने वाला । सार=समान । भर निभर=निर्भयवीर, या सब सामंत । पेखंत पाइ=पैरों पड़ा हुआ देख कर । दुज्जन=दुर्जन । दुसह=असह्य । सवि=शिव ।

अर्थः—रास्ते में चलता हुआ चाहुवान ग्रीष्म कालीन सूर्य के समान भीषण दिखाई देता था । उस जंगल के पहाड़ और वृक्ष आकाश को छू रहे थे । वह अरण्य दुष्टों के निवास-स्थान के समान था । वहां के वृक्ष बहुत पुराने थे । ऐसे अरण्य मार्ग में कामना पूर्ण करने वाले जटाजूट धारी शिव नदी गण की पीठ पर दिखाई दिये । जिनकी जटासे गंगोदक उछलता हुआ सिर पर चमर के समान शोभा पारहा था । ऐसे अलौकिक देव के दर्शन होने पर चाहुवान नरेश, चन्द कवि और निर्भीक सामन्त घोड़ों से उतर पडे । शत्रुओं के लिये जो बलवान है और जिसका सामना कोई भी नहीं कर सकता ऐसे राजा पृथ्वीराज को चरणों में पड़ा हुआ देखकर उसकी पीठ पर शिव ने हाथ रख दिया ।

उदक गंग विभ्भूत, अग सा रग सुरंगह ।
चरन अनंत मन हरत, निरखि गिरजा मन रंजह ॥
करी चर्म गरलह विक्रम, रच्छिस उर दाहन ।
द्रिग त्रयन ज्वाला बयन्न, क दप्प नमाहन ॥
तरु तरुन तार त्रियवर त्रसह रिसह्हु सत्रु चहुआन रखि ।
भरि-भूत धूत दिद्धिय पिथह, लिय अग्या सिर नाइ सिखि ॥१३२॥

शब्दार्थः—सा=उसका । रग सुरगह=सुन्दर वर्ण । अनंत=अनन्त, अनेक । विक्रम=पराक्रम । द्रिग त्रयन=तृतीय नैत्र । बयन्न=श्राप । नमाहन=नमा देने वाला, नीचा दिखा देने वाला । तरु=तारने वाला । तरुन=तरने वाला । त्रियवर=त्रयपर त्रिपुर, त्रिपुरासुर । त्रसह=त्रसित करने वाला । रिसह=क्रोधित हो । रखि=रक्षा करो । भरि-भूत=विभूति लेकर । धूत=अवधूत, शिव । दिद्धिय=दी । पिथह=पृथ्वीराज को । सिखि=शिखा ।

अर्थः—तब राजा स्तुति करने लगा, गंगाजल और विभूति युक्त आपका शरीर सुन्दर वर्ण से शोभित है, वह अनेक वर्णों के मन को हरने वाला और देखते ही गिरिजा के मन को रंजन करने वाला है। आप गज चर्म और विषयुक्त गले से सुशोभित हैं। आपका पराक्रम राक्षसों के हृदय को भस्म कर देने वाला है। आपका तृतीय नेत्र ज्वालायुक्त है, आप केवल श्राप मात्र से ही कदर्प को नीचा दिखाने वाले हैं और आप नरने और तारने वाले हैं तथा ताड़ना देकर त्रिपुरासुर को त्रसित करने वाले हैं, अत शत्रु पर कोप करके मेरी (चाहुवान की) रक्षा करिये। यह सुन उस अवधूत शम्भू ने विभूति लेकर पृथ्वीराज के हाथ मे रख दी। तब राजा ने शिखातक सिर को नवाकर आगे जाने की आज्ञा ली।

दोहा

चलै राह[1] पहु फट्टेँ, सत सामंत सु राह।
मनों पथ्थ भारथ करन, दल कौरव धरि दाह ॥१३३॥

प्रा० पा० १, का० घ०।

शब्दार्थः—दल=सेना। धरिदाह=जलन पैदा करने, दग्ध करने।

अर्थः—प्रात काल होते २ सामन्तों सहित पृथ्वीराज वहाँ से आगे इस प्रकार चला मानों वीर अर्जुन कौरवों के दल को दग्ध करने के लिये महाभारत करने को चला हो।

कवित्त

दुज उभ्भौ दल नाह, प्रबल तन जोति प्रगासिय।
सुख विद्धौ[1] भर कन्ह, मानि अप्पन मन भासिय॥
दृग पट्टिय छुटि पट्ट, लग्यौ उद्योत उरानह।
भानरूप भजनाह, दिद्ध नाराजी दानह॥
लगि पाय धाय कर पिट्ठ दिय, मम सके जुद्धह निपुन।
फिरि तध्थ विप्रनह पिक्खयौ, तुम हम मंडल रवि मिलन ॥१३४॥

प्रा० पा० १ टि०।

शब्दार्थः—दुज=द्विज। उभ्भा=सामने आ खड़ा हुआ। भासिय=भास्कर सूर्य। उद्योत=आदित्य। उरानहु=हृदय। भज=फहरा, सम्भवत। नाह=नरनाह नह। दिद्ध=दिया। नाराजी=नाराच, धनुष। मम=नहीं। तध्थ=तत्रा।

अर्थ—सूर्य भक्त नरनाह कन्ह के सामने उसके इष्टदेव द्विज के रूप में आ उपस्थित हुए। उनके प्रबल शरीर की कांति का प्रकाश चारों ओर फैल गया। उस वीर कन्ह के मनमें इससे सुख वृद्धि हुई, उसने उसे सूर्य रूप माना और उसके दर्शनार्थ चक्षुओं की पट्टी शीघ्र ही खुल पड़ी, द्विज स्वरूप सूर्य उसके हृदय में प्रगट होगये। नरनाह कन्ह को सूर्य ने अपना रूप समझ कर एक बाण प्रदान किया। यह देख कन्ह ने उसके चरण छू लिये। तब वह कन्ह की पीठ पर हाथ फेरता हुआ बोला—हे रण दक्ष वीर-तू मन में कोई शंका न कर। तुम्हारा और हमारा मिलन अब रवि-मण्डल में ही होगा। इतना कहने के उपरांत वह विप्र वहा से अंतर्ध्यान होगया।

चलिय अग्ग चहुआन, एक जोजन ता अग्गिय।
घटा रूप घन सज्जि, निजरि ता ताहि न लग्गिय॥
जीह बीज विकराल, धजा घन-वद्दल-रंगिय।
हथ्थ गदा सोभत, भूत प्रेतह ता संगिय॥
सामन्त राज पिक्खिय सलख, हनूमान चंदह कहिय।
बाजत नद्द विधि विधि वसुह, त्रह सु वज्जि त्रबक दहिय॥१३५॥

शब्दार्थः—निजरि=नजर। ताहि न लग्गिय=उसकी ओर नहीं देख सका। जीह=जिह्वा। बीज=बिजली। घन-वद्दल-रंगिय=बादलों में घना रंग, विविध रंग वाला इन्द्र धनुष। वसुह=पृथ्वी पर। त्रह=त्रह त्रहाट की ध्वनि। त्रंबक=तासा (वाद्य विशेष)। दहिय=दसों दिशाओं में।

अर्थः—चौहान के वहाँ से आगे चलने पर एक योजन दूरी पर गहरी घटा की भांति सजा हुआ एक वीर दिखाई पड़ा। उसके तेज से उसकी ओर दृष्टि नहीं डाली जा सकती थी और उसकी जिह्वा कराल बिजली के समान तथा प्रावृट कालीन इन्द्र धनुष के समान थी, उसके हाथ में गदा थी और भूत प्रेत उसके साथी थे। उसे स्वयं पृथ्वीराज और सलख-जैत्र ने देखा। सबके समक्ष उसे हनुमान कहकर कवि चद ने उसका परिचय दिया। हनुमान का आना जानकर हर्ष के कारण सेना में रण वाद्य बजने लगे और दसों दिशाओं में त्रबक वाद्य की प्रतिध्वनि होगई।

दोहा

चंद गयौ अग्गें सु वर, तो तन रूप अथाह।
हम मानुख्खी मति अधम, करहु रूप कल नाह॥१३६॥

शब्दार्थः—मानुख्खी = मनुष्य, मनुष्य शरीर धारी। कल=सुन्दर। नाह = नाथ, स्वामी।

अर्थः—फिर चन्द उस दिव्य स्वरूप धारी के सामने गया और बोला, आपके शरीर के विविध रूप हैं। हम मनुष्य शरीर धारी तुच्छ मति आपको कैसे पहचान सकते हैं, अस्तु-हे नाथ! आप सुन्दर रूप बना लीजिये।

कवित

सहस हथ्थ सो वृन्न, धूम्र ब्रन्नह मुख मग्गह।
अखि तेज अगि जानि, पानि पलचर ता संगह॥
धनुप धजा फररत, हथ्थ डकिनि फिक्कारैं।
जै जै मुख उचरत, सिंह वह वह' वल्लारैं॥
लगोट बध काया प्रचड, लोहा लगर समुख करि।
धारत हथ्थ मथ्थे धरिय, सा सुपंख मथ्थें सु हरि॥१३७॥

प्रा० पा० १ पा० घ०।

शब्दार्थः—सहस हथ्थ=सहस्र भुजा वाला। वृन = वर्णन किया जाता, कहा जाता। ब्रनह= वर्ण। मुख मग्गह=सामने। अगि=अग्नि। पानि=पाने को, आशा करते हुए। डकिनि=डाइनी। फिक्कारैं=किलकारती। वह २ = वाह २। वल्लारैं=आवाज देता। लोहा लगर=शस्त्रधारी लघरीराय। सा=उसके। पख=पक्ष म हो गया।

अर्थः—जो सहस्र भुजावाला कहा जाता है तथा जिसका धूमिल वर्ण है वह मार्ग मे दिखाई दिया। उसकी आंखो का तेज अग्नि के समान चमकता था। उसके द्वारा युद्ध की आशा करते हुए मासाहारी जानवर (गिद्धादि) साथ मे थे। इन्द्र धनुप के वर्ण की उसकी ध्वजा फहरा रही थी। साथ मे डाइनिया किलकार रही थीं। वह सिंह-स्वरूपी वीर मुख से जय २ और वाह २ शब्दोच्चारण कर रहा था। उसने दृढ़ सयमी, प्रचडकाय वीर लोहाना लघरी के सामने जाकर उसे देख उसके सिर पर हाथ धर दिया। यह देख कर जो वीर लघरी अपने सिर पर एक मात्र हरि को मानने वाला था उसके लिए वह (सहस्र भुजाधारी) पक्ष (सहायक) हो गया।

जोजन तीन जलद्धि, राव' गोयद सु भारिय।
आप दृष्ट तन सिद्धि, इन्द्र इन्द्रासन वारिय॥

एक कोस आकंप, भद्र जाती उज्जल तन ।
सहस दंत सित हथ्थ, मनो राका जोतिंवन ॥
विमान देव वहु जटित मय, चमर छत्र अच्छरि चलिग ।
गोयंदराव सिर हथ्थ दिय, कहिय तुमम्म हम गृह मिलिग ॥१३८॥
प्रा० पा० १, का० घ० ।

शब्दार्थ:—जलद्धि=समुद्र । मारि=बड़ा । आक्प=कम्पायमान । सहस=हजारों । दंत=उदंत, कहने लगे । सित हथ्थ=श्वेत हाथी । जोतिंवन=ज्योत्स्ना । चलिग=लिये हुए थी, चला रही थी । गृह मिलिग=स्वर्ग में मिलेंगे ।

अर्थ:—वहा से तीन योजन आगे जाने पर बड़ा गोविन्दराय जो समुद्र के समान गहरा था, उसने अपने इष्ट जो इन्द्रासन धारी इन्द्र था उसका स्मरण किया। उसका हाथी भद्र जाति का जो उज्ज्वल शरीर वाला था। जिसके चलने से एक २ कोस की जमीन कम्पित होती थी. उसे देखकर सब बोल उठे कि ऐसा लगता है यह श्वेत हाथी चद्र ज्योत्स्ना से बना हो। उस इन्द्र के साथ बहुत से देवता भी रत्न-जटित विमानों में बैठे हुए थे। इन्द्र पर अप्सराएँ छत्र लिये हुए चमर डुला रही थीं, उस देवाधिदेव ने गोविन्दराय के सिर पर हाथ रख दिया और कहा—तू हमारे घर (स्वर्ग) आकर मिलेगा (तेरा स्वर्ग में वास होगा) ।

विवर एक वट मम्फ, तास ममम्फह कंदल ग्रह ।
भान तेज भलकत, आय सेना उत्तरि सह ॥
चंद गयो चलि अग्ग, देखि पूजा घन विद्धिय ।
वघ्घ-रूप आरोहि, आय उम्भी हर सिद्धिय ॥
मम करहि चद अदेस मन, लेय राज संजोगि ग्रहि ।
चौसट्ठि सुभर भेदें सु हरि, जय २ करि अच्छर' वरहि ॥१३९॥
प्रा० पा० १ पा० घ० ।

शब्दार्थ:—विवर=विवर, गुफा । मम्फ=में । कदल=कंदरा, गुफा । भलकंत=चमक रहा । घन विद्धिय=विशेष विधि से । वघ्घ-रूप=सिंहों का शिरोमणि, देवी का सिंह । उम्भी=खड़ी, समक्ष हुई । हर सिद्धिय=देवी विशेष । मम=मत । अदेस=शका । लेय=लेगा, प्राप्त करेगा । संजोगि=संयोगिता । ग्रहि=ग्रहण करेगा, अपहरण करेगा, वरण करेगा । भेदें=भेदे जायेंगे, मारे जायगे । सुहरि=सुघड़, दक्ष ।

अर्थः—वट वृक्ष में एक बिल जिसमें कि गुफा गृह बना हुआ था, उसमें से सूर्य के समान प्रकाश चमक रहा था, उस स्थान पर आकर सेना ने पडाव डाला, चद ने उस गुफा गृह की ओर बढ़ विविध विधि से वहां देवी की पूजा की, तब व्याघ्रासीन हर सिद्धि देवी आ खड़ी हुई और कहने लगी—हे कवि चद ! तुम मन में कोई शका मत करो। तेरा राजा संयोगिता को प्राप्त करेगा और चौसठ सुघड सामन्त भेदे जायेंगे (नष्ट होंगे)। उन्हें जय २ कार करती हुई अप्सराएँ वरण करेंगी।

दोहा

त्रयत दिवस त्रय जामिनिय, त्रयत जाम पल[1] उन्न।
जोजन इक्कत सचरिग, पृथीराज सपन्न ॥१४०॥

प्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थ—त्रयन=तीन। जामिनिय=निशा, रात्रि। जाम=याम, प्रहर। उन्न=हुन्न, होने पर या वे। सपन्न=पार कर गया।

अर्थः—तीन दिन, तीन रात्रि, तीन प्रहर और तीन पल मे कए साथ ही कई योजन पृथ्वी पृथ्वीराज पार कर गया।

कवित्त

वार भौम[1] पचमी, जाम एकह निसि वित्तिय।
केंदुव्वल वर पट्ट, तहां उत्तरि पहु रत्तिय॥
करि अस्तुति सब सथ्थ, अश्व तजि नींद सु प्रास।
घटी पच निसि सेव, सु पहु चढ़ि चल्यौ तास॥
पत्तौ सु जाइ सकर पुरह, दिवस अन वर थान सथ[2]।
आहारि अन्न आसन्न गय, सब वोल्ले सामत तथ[3] ॥१४१॥

प्रा० पा० १ पा०। २ का० पा०। ३ का०।

शब्दार्थः—भौम=मगल। जाम=याम, प्रहर। केंदुव्वल=केन्द्र बल। नींद सु प्रास=निद्रा में ग्रसित हुए, सोये। दिवस अन=दिन का भोजन।

अर्थः—भौमवार पचमी को जब एक प्रहर रात्रि बीत गई, तब दिल्ली के सिंहासन के लिये जब केन्द्र बल श्रेष्ठ था, उस समय राजा रात्रि मे ही अपने साथियों सहित

वहाँ उतरा और इष्ट की वंदना कर अपने साथियों सहित सो गया। जब पांच घड़ी रात्रि शेष रही तब राजा पुनः अश्वा रूढ हो वहाँ से चल कर श्रेष्ठ स्थान शङ्कर पुर पहुँचा तथा आसन पर बैठकर सब सामंतों के साथ दिनका भोजन किया और बाद में सिंहासन पर बैठ सब सामन्तों को बुलाया।

इह जंपिय प्रथिराज, करिब अस्तुति सामंतं।
धरि छग्गर कविचंद, महल पिक्खन मन संतं॥
जब जानौ जुध समै, तुमै सब काम सुधारौ।
मोचिंता मन मांहि, होइ तुमतें निसतारो॥
सभलत सब्ब सामत मत, भयौ बीर आभासि तन।
चिंतिय सु इष्ट अप्पान अप, आश्रम्में सव्वां सुमन॥१४२॥
मा० पा० १, का० पा० भीं०।

शब्दार्थः—छग्गर=सुराही, जलपात्र। महल=सभा। मनसंतं= मनशा, इच्छा। निसतारो= निस्तार। संभलत=सुनने पर। बीर=वीर रस। आश्रम्मे=अपने २ डेरों में जाकर विश्राम किया।

अर्थः—फिर पृथ्वीराज सामंतों की प्रशसा करता हुआ बोला—मैं कविचद का जल-पात्र (सुराही कुब्जा) लेकर उसके साथ पंगुराज के महल (या सभा) देखने की इच्छा रखता हु, जब युद्ध का अवसर आये तब मेरे सब कार्य तुम सुधारना। मेरे मन में जो कुछ चिंता है उसका निराकरण तुम ही कर पाओगे—इसका मुझे पूर्ण विश्वास है। राजा की यह मत्रणा सुन कर सब सामंतों के शरीर में वीर रस उत्पन्न हो गया और वे सब सामन्त अपने २ डेरों पर विश्राम करके पवित्र मन से अपने २ इष्ट का चिन्तन करने लगे।

दोहा

त्रयति जाम बासुर बिसरि, घटिग हंस तन रात।
जु कछु चखख इच्छा हुती, सोइ दिक्खौ परभात॥१४३॥

शब्दार्थः—त्रयति=तीन। बासुर=दिन। बिसरि=बिछुड़ा। घटिग=समाप्त हो गया, अस्त हो गया। हंस=सूर्य। तन रात=अरुण वर्ण होकर।

अर्थः—दिवस का तृतीय प्रहर व्यतीत होने पर सूर्य दिन से बिछुड़ कर अस्त हो गया था, वह फिर अरुण वर्ण शरीर धर कर उदय हुआ, जिससे प्रात.काल हो गया और कन्नौज को देखने की जो लालसा नैत्रों को थी, वह सफल हो गई।

कवित्त

कहै राज पृथिराज, शमित सामंत सुरेसं ।
मो चिंत्यौ तुम कध, सुनौ कारन कत एस ॥
त्रितिया दिन वाईस, कोस चौवीस चवथ्थी ।
खट त्रीसह पचमी, तीस अठ षष्टि सपथ्थी ॥
जोजन्न उभय कनवज्ज कहि, इन थानक कमधज्ज अगि ।
देखनह पग अभिलास अति, कृत्य सब्ब तुम कध लगि ॥१४४॥

शब्दार्थ:—शमित=श्रामत । एस=ऐसा, यह । वाईस=बाईस । चवथ्थी=चतुर्थी । सपथ्थी=पथिक साथियों सहित या पहुंचे, पार किया । कृत्य=कार्य ।

अर्थ:—श्रमित सामन्तों का इन्द्र, राजा पृथ्वीराज सामन्तों से कहने लगा । मेरे आने का कारण और उसका कार्यफल जो मैंने सोचा है उसका भार तुम्हारे कधों पर है । दिल्ली से तृतीया को रवाना होकर उस दिन बाइस, चतुर्थी को चौबीस, पचमी को छत्तीस और षष्ठी को अडतीस कोस क्रमश हमने पार किये है । अब कहा जाता है-कि कनवज यहाँ से दो योजन दूरी पर है । इसी स्थान पर पगुराज कमधज को सामने देखने की अत्यधिक आशा है, लेकिन यह सब कार्य तुम्हारे ऊपर ही निर्भर है ।

वद्दल चंद किरन्न, छिपै नन सूर छाह घन ।
भूपति छिपैं न भोग, रंक नन छिपत बसन तन ॥
नाह नेह नह छिपत, छिपै नन पुहप बास तर ।
कुलट कुटग न छिपै, छिपै नन दान अधर धर ॥
छिपैं न सुभर जुद्धह समैं, चतुर पुरख कवितह कह्या ।
पमार कहै प्रथिराज सुनि, न न छिपै अग्गर गह्या ॥१४५॥
प्रा० पा० १, २, ना० ।

शब्दार्थ:—सूर=सूर्य । भोग=ऐश्वर्य, विलास । बसन=वस्त्र । नाह=सनाथ । पुहप=पुष्प । बास=सुगंध । तर=तरु वृक्ष । कुलट=कुलटा कुटग=बुरा रास्ता । कवितह=कविता में । कह्या=कहते हैं । पमार=जैत प्रमार । अगर=मुरारी नष्ट पाप गह्या=ग्रहण करने पर, लेने पर ।

अर्थ:—तब जैत्र प्रमार बोला, चन्द्र ज्योत्स्ना और सूर्य बादलों की छाया से नहीं छिप सकता, राजाओं के वैभव तथा विलास नहीं छिपते शरीर पर वस्त्र धारण

करने से दरिद्रता नहीं छिपती, मनुष्य का प्रेम नहीं छिप पाता, तरु-कुसुम की सौरभ नहीं छिपती, कुलटाओं के बुरे रास्ते (बुरे कर्म) नहीं छिप पाते, उदार पुरुष दूसरे के भूभाग में विचरण करता हुआ भी नहीं छिपता, युद्ध-समय श्रेष्ठ योद्धा नहीं छिपते, आदि वाक्य चतुर पुरुषों ने कविता में कह दिये हैं सो सत्य हैं इसीलिये हे राजन् ! आप जलपात्र गृहण करने पर भी नहीं छिप सकेंगे ।

दोहा

करि अस्तुति सामंत नृप, जंपि विगति रति बत्त ।
उत्कंठा दिक्खन नयन, कमधज राज दरत्त ॥१४६॥

शब्दार्थ:—अस्तुति=स्तुति, प्रशंसा । विगति=चर्चा । रति बत्त=प्रेमवार्ता । दरत्त=दलने के लिये ।

अर्थ: राजा ने सामंतों की प्रशंसा की और उसने संयोगिता के साथ अपने पूर्व प्रेम की चर्चा कर कहा कि मेरे नैत्र उसे देखने के लिये लालायित हैं एवं कमधज नरेश (जयचद) का भी मैं इलाज करना चाहता हूँ ।

विहसि सुभर विकसे सुमन, नृप न करहु अदेस ।
धनि धनि मुख जंपिरू गिनय, दिक्खहु महल नरेस ॥१४७॥

शब्दार्थ:—विक्से=विकसित । अंदेस=शङ्का । धनिर=धन्य, धन्य । महल=सभा ।

अर्थ:—यह सुन सामन्त हर्षित हुए और उनके श्रेष्ठ मन विकसित (प्रफुल्लित) हो गये । वे विनय पूर्वक कहने लगे, हे राजन् ! आपको धन्य है, आप कोई शङ्का मत कीजिये । आप अवश्य पंगुराज की सभा को देखिये ।

कवित्त

मानि मत सामंत, राज सुख सेन विचारिय ।
भूम सेज सुख सयन, गग मंडल वर धारिय ॥
घटिय पंच जुग अग्ग, तलप अलपह आनदति ।
फुनि चढ़ि चल्ल्यौ राज, पुरह सकर सानंदति ॥
सुनियै निसान ईसान घन, जनु दरिया पाहार गुरि ।
निस अद्ध घरिय ऊपर चतुर, पंग सु उत्तरि गंजि धरि ॥१४८॥

शब्दार्थः—सेन=शयन । तलप अलपह=करवटें बदलता हुआ । सानंदति=आनन्द पूर्वक । दरिया=समुद्र । गुरि=गिर पड़ा हो । उत्तरि=उत्तर, जवाब । गंजि धरि=दबाकर ही प्राप्त कर सकता है ।

अर्थः—इस प्रकार सामंतों की मन्त्रणा मानकर राजा ने विश्राम करने की सोची। गङ्गा के भू-भाग को श्रेष्ठ समझ कर भूमि पर ही शयन करना ठीक समझा। सात घड़ी से अधिक समय तक संयोगिता के अलख आनन्द में करवटें बदलता हुआ राजा उठा और फिर शङ्करपुर से सानन्द चला। उस समय ईशान कोण से बहुत से नक्कारों की ध्वनि इस प्रकार सुनाई दी मानों समुद्र में पहाड़ टूट पड़ा हो या अर्ध-रात्रि पर एक घटिका शेष रहते हुए पगुराज के नक्कारों की ध्वनि के रूप में यह उत्तर कहा जा रहा हो कि मुझे दबाकर ही तू संयोगिता को प्राप्त कर सकता है।

दोहा

चढत राज चहुआन निस, घोर सपंग निसान ।
जान कि मेघ असाढ सम, उठिय घोर दरसान ॥१४६॥

शब्दार्थः—घोर=घटा, घनघोर । दरसान=दिखाई पड़े ।

अर्थः—इस प्रकार राजा चाहुवान के रात्रि में चढ़ाई करने पर राजा पंगु के नक्कारों की घोर (ऊर्ध्व) ध्वनि इस प्रकार हुई, मानों आषाढ मास की घनघोर घटा चढ आई हो।

चलत मग्ग संभरि सुपहु, सुर वज्जै सहनाइ ।
रस दारुन भय मचरिग, घोर गँभीर विभाइ ॥१५०॥

शब्दार्थः—सुर=स्वर । दारुन=वीर रस । विभाइ=विभाव, भाव ।

अर्थः—संभरी राजा के प्रस्थान के समय शहनाइयों के स्वर बजने लगे और वाद्यों की गंभीर ध्वनि से दारुण (वीर) रस छा गया तथा भय का अभाव हो गया—(अर्थात् निडर हो गये) और भयानक गहरे भाव प्रगट हो गये।

कवित्त

एह कलस दविचद, दद मझ्यौ मुख रख्यिय ।
जग उप्पर जगमगत, मूलि कैलासह छ्यिय ॥

जगतपत्ति जग मगत धज्ज, खग्ग क्रम धज्ज बांहवर ।
दान खग्ग अनभरा, धज्जा, त्रिय बँधि दान पर ॥
आभग्ग अवॅग कनवज्ज पति, सुख नरिंद दुनियंद, वर ।
पाइये वस छत्तीस तहा, नवै रस्स खट भाख गुर ॥१५१॥

शब्दार्थः—एह = इन । दद = द्वन्द । मुख = सामने । रत्रिय = रवि, सूर्य । छत्रिय = छटा, शोभा । जगत पत्ति = जगत में फैल गई । जग मगत = जगमगाती हुई । धज्ज = ध्वजा । खग्ग = खड्ग । त्रिय = दोनों । बधि = बांध दी, फहरा दी । दान = उदारता, मस्ती । आभग = अभग । अवँग = उवग, उदित हो, उदय हो । दुनियद = दिनेन्द, सूर्य । भाख = भाषा ।

अर्थः—इन कलशों ने रवि-मण्डल से अपनी समानता करने के हेतु सामने होकर द्वन्द मचा रक्खा है और संसार पर जगमगा रहे हैं । इन राज प्रासादों ने अपनी शोभा के आगे कैलाश की शोभा को भी भुला दिया है । इस कमधज्ज की श्रेष्ठ भुजा में रहने वाली तलवार जगमगाती हुई ध्वजा के समान ससार पर फैल गई है । इस मस्ताने उदार वीर ने खड्ग ध्वजा के जैसी ही एक ओर अभंग दान ध्वजा भी फहरा रक्खी है । यह कनवज पति अभंग वीर सूर्य के समान उदय हो संसार में सुखका उपभोग करता है । इसके यहाँ छत्तीस ही जाति के क्षत्रिय सेवा के लिये तथा नवरस एव छ भाषा के जानने वाले पंडित उपस्थित रहते है ।

दोहा

गंगा तट साधन सकल, करहि जु भंति अनेक ।
नट नागर सभरि धनी, वर विख्यात छवि केक ॥१५२॥

शब्दार्थः—भति = भाँति । नट नागर = चतुर नृत्यक । छवि = सुन्दरता ।

अर्थः—यदि कोई चाहे तो इस गंगा तट स्थित कनवज्ज नगर मे अनेक भांति के साधन उपस्थित हैं । यहाँ पर चतुर नृत्यक और संसार प्रसिद्ध सुन्दरता देखने मिलती है ।

कह महत दरसंन तिन, कह महत[1] तिन न्हान ।
कह महत[2] सुमिरत तिन, कहि कविचद गियान ॥१५३॥

प्रा०पा०१, २ का०पा० ।

शब्दार्थ:—कह=कहा, क्या। दरसन=देखने से। न्हान=स्नान। महत=माहात्म्य। गियान=ज्ञान।

अर्थ:—तब राजा ने कहा.— इस देव सरिता के दर्शन, स्थान और स्मरण का क्या माहात्म्य है? हे कविचंद! उसका ज्ञान हमें दीजिये।

गाथा

जो फल नीरह नयनं, जो फल गुनो गाइयं गेयं।
सोइ फल न्हात सरीरं, सोइ फल पीयंत अजुल नीरं ॥१५४॥

शब्दार्थ:—नयन=नेत्रों द्वारा देखने से। गुनी गाइयं=गुणीजनों द्वारा गाया। गेय=गृहण करने से, श्रवण करने से। न्हात=स्नान करने से।

अर्थ:—चन्द ने कहा, हे राजन्! इस गङ्गा के जल को देखने, विद्वानों द्वारा इसके गुण गान के श्रवण करने, इसमें स्नान करने और अजुलि भर जल पीने से एक ही समान फल होता है।

ज ज भाव सु बुद्ध, तं तं कहियंपि सुन्दरी कथ्थं।
महिलान वाल-अच्छ, सामं घन सोभियं सार ॥१५५॥

प्रा० पा० १ पा० घ०।

शब्दार्थ:—ज ज=जैसे २। बुद्ध=बुद्धिमान। तं त=तैसे २। कहियपि=कहते रहते हैं। सुन्दरी कथ्थं=सुदर कथा। वाल-अच्छ=यक्ष बालाओं सी। सामं=पति, स्वामि। घन=विशेष। सार=लोहास्त्र, या श्रेष्ठ।

अर्थ—जैसे २ भाव बुद्धि में होते हैं वैसा ही भाव पूर्ण वर्णन कवि यहाँ का करते रहते हैं। अत यहाँ की सुन्दरियाँ यक्ष बालाओं के समान हैं और उनके पति सदैव विशेष लोहास्त्र से सुशोभित रहते हैं (सब वीर हैं)।

दोहा

हो सामत सुमत कहुँ, सु हरि चिति तजि बाज।
त्रिपथ लोक प्रथिराज सुनि, नमसकार करि राज ॥१५६॥

प्रा० पा० १ का० पा० घ०।

शब्दार्थ:—सुमंत=अच्छी मत्रणा। कहुँ=कहता हूँ। तजि बाज=घोड़े से उतर कर। त्रिपथ=त्रिपथ गामिनी।

अर्थः—फिर कविचन्द कहने लगा-सामन्तों सहित हे राजन्! सुनिये! मैं आपको सुमन्त्रणा देता हूँ कि आप सब हरि का चिन्तन कर यहाँ घोडे से उतरिये, क्योंकि यह सरिता ससार में त्रिपथ गामिनि कही गई है अतः आप इसे नमस्कार कीजिये।

कवित्त

पाप मनंमथ हरन, गग नव बंधअ नै पर।
हरि चरनन करि जनम, काम छंड़ै सु दुक्ख बर॥
तीन लोक भर भवन, तहां प्राकंम सु थानन।
निगमन हरि उर धरी, ध्रम्म तट काय प्रमानन॥
बछहि सु चतुर नर नाग सुर, दुति दरसन परसन विहर।
दिल्लीवनाथ सो गग दिखि, जस सम उज्जल वसुअ पर॥१५७॥

शब्दार्थः—पाप मनमथ=कामवासना। नव=नतमस्तक हो। वंधअ नै पर=नत मस्तक हो, वदना करने से। जनम=जन्म, अवतरण। करि=से। काम=कामना। छंड़े=छोड़ देते, विसर्जित कर देते। दुक्ख वर=दुःख का ताप। भर=तक। भवन=भ्रमण, भ्रांति। प्राक्रम=पराक्रम, बल। निगमन=निगम शास्त्र। ध्रम्म=धर्म। बछहि=चाहते हैं, इच्छा करते हैं। सुर=देवता। विहर=विहरते। वसुअ=वसुन्धरा।

अर्थः—गङ्गा को नतमस्तक हो वंदना करने से पाप और काम वासना दूर हो जाती है, क्योंकि इसका विष्णु के चरणारविन्दों से अवतरण हुआ है इसीलिये प्राणी मात्र सभी कामनाओं और दुःखों को यहाँ विसर्जित कर देते हैं। इसके समस्त तीनों लोको में भ्रांति नहीं चलती, इसे शास्त्रों ने ही नहीं-हरि ने भी हृदय में स्थान दे रक्खा है। इसके तट पर काया को धर्म की प्राप्ति होती है। इस दीप्तिमान सरिता के दर्शन, स्पर्श की इच्छा चतुर पुरुषों को ही नहीं नाग और देवताओं तक को है, वे सब इसके तटपर विचरते हैं। हे दिल्लीश्वर! आपके यश के समान यह जगत तारिणी गङ्गा उज्ज्वल रूप में वसुन्धरा पर शोभित है।

साटक

ब्रह्मा कच्छव कमडले कलिकले, कांता हरे-कक्रवी।
त तुष्टा त्रयलोक संपद पद, तंबाय सहसनवी॥
अध काष्ट ज्वलने हुतासन हवी, अध विष्णु आगामिनी।
जंजाले जग तार पार करनी, दरसाय सा' जाह्नवी॥१५८॥

मा० पा १ पा०।

शब्दार्थः—कच्छ=कुक्षी । कलिकले=कल कल ध्वनि । कांता=स्त्री । हरे-ककवी=ककालों का नाश करने वाला, नरकाय नाशक शिव । त=तेरा । तुष्टा=संतुष्ट होना । सपद=सपति । पद=प्रद, दायक । तबाय=प्रतिबिम्ब । सहसनवी=सहस्र किरण, सूर्य । हुतासन हवी=यज्ञ की हवि । अध=नीचे, पृथ्वी पर । आगामिनी=आगमन करने वाली, आने वाली । दरसाय=दरशायी, दीख पड़ी । जाहनवी=जान्हवी, गङ्गा ।

अर्थः—हे ब्रह्म-कमण्डल की कुक्षी में कल कल ध्वनि करने वाली, नरकाय नाशक शिव की कान्ता ! तेरा सतुष्ट होना ही त्रिलोक की सम्पत्ति प्राप्त करना है, तू चमचमाती हुई सूर्य के प्रतिबिम्ब के समान भासित होती है। अघकाष्ठ के नाश के हेतु तू यज्ञ वह्नि की ज्वाला के समान है। विष्णु के द्वारा तेरा पृथ्वी पर आगमन हुआ है। हे जग-जजाल से तारकर पार करने वाली जान्हवी ! तू आज हमें सौभाग्य से दीख पड़ी है।

दोहा

अस्तुति कहि बरदाय बर, पढिय कवींद्र विचार ।
सो गंगा उर जंपई, क्रम उत्तारन पार ॥१५९॥

शब्दार्थः—बरदाय=कवि चद बरदाई । जपई=जपता है । क्रम=कर्म ।

अर्थः—इस प्रकार कविचद ने श्रेष्ठ ढग से गगा की स्तुति की और सबके सामने अपने विचार प्रगट किये और कहा— जो गङ्गा को हृदय से जपता है, वह अपने कर्मो से पार हो जाता है।

जरित रयन घट सुन्दरी, पट कूरन तट सेव ।
मुगति तिथ्थ अरु काम तिथ, मिलहि हत्थ हथलेव ॥१६०॥

शब्दार्थः—जरित=जटित । रयन=रत्न । पट=वस्त्र । कूरन=अकुरित । सेव=सेवा । मुगति तिथ्थ=मुक्ति तीर्थ । काम तिथ=काम तीर्थ । हत्थ हथलेव=हाथ मिलाये हुए ।

अर्थः—इतने मे रत्न जटित कुम्भ लेकर जल भरने के लिये (कन्नौज की) सुन्दरियाँ गङ्गा तट पर आई, जिनके अकुरित कुच-तटों की सेवा सुरंगे पट कर रहे थे, उन्हें देखकर कवि ने कहा हे राजन ! देखिये, यहाँ मुक्ति तीर्थ और काम तीर्थ दोनों प्रेम भाव से हाथ मिलाये हुए हैं। (दोनो का आपस मे सुन्दर समन्वय हो रहा है) ।

काव्य (श्लोक)

उभय कनक सिंभ, भृ ग कंठीव लीला ।
पुनर पुह्प पूजा, विप्रवे काम राज ॥
त्रिवलिय गॅग धारा मद्धि घटीव सद्दा[1] ।
सुगति सुमति भीरे, नग-रग त्रिवेनी ॥१६१॥

प्रा०पा०१ पा० ।

शब्दार्थ:—उभय=दो । कनक सिंभं=स्वर्णिम शिवलिंग (कुच) । भ्रंग=भ्रमर (भौंहे) । कंठीव= कठीर, सिंह (कटि) । पुह्प पूजा= पुष्प पूजा (मृदुभाषण) । विप्रवे कामराज=कामदेव स्वरूपी विप्र । मद्धि=मध्य में, कमर स्थित । घटीव=क्षुद्र घटिका । भीरे=भीड़, समूह । नंग-रग=अनग के रग में रँगी हुई (बालाएँ) ।

अर्थ:—देखिये ! यहाँ दो स्वर्णिम शिवलिङ्ग तुल्य इनके कुच, भ्रमर तुल्य भौंहे, लीला करती हुई सिंह तुल्य कटि, विप्र रूप कामदेव की पुष्प पूजा तुल्य मृदुभाषण और त्रिपथगामिनी गंगा तुल्य त्रिवली, घंटिका, रवतुल्य क्षुद्र घंटिका का नाद और दर्शक समूह को मोक्षदायक, ये अनंग के रंग में रँगी हुई स्वयं बालायें त्रिवेणी तुल्य (कांति युक्त गङ्गा श्यामा-यमुना, गौरी, सरस्वती स्वरूपा) हैं । (इस पद्य में कवि ने केवल उपमाओं का उल्लेख करते हुए उपमेय का बोध कराया है) ।

कवित्त

राह चद इकलास, पास कोवड कुरगा ।
कीर बिंबफल जुगल, उभय भूतेस अनंगा ॥
मग्गराज गजराज, राज पिक्खिय एकंत ।
पुच्छि ताम कविराज, कहा इह अचिरज वत्त ॥
वरदाइ ग्वाब दीनों बहुरि, त्रिखि तट गंग दासी सु तन ।
थानक प्रताप जयचद के, वैर भाव छडिय सु इन ॥१६२॥

शब्दार्थ:—राह=राहु (मृग बिन्दु) । चंद=मुख चद । इकलास=मित्रता । कोवड=कोदड, भौंहे । कुरगा=मृग (दृग मृग) । कीर=शुक (नासिक) । भूतेस=शिव (कुच) । मग्गराज=मृगराज, सिंह (कटि) । पिक्खिय=देखिये । एकतं=साथ २ । पुच्छि=पूछा । ताम=तब । अचिरज= आश्चर्य प्रद । त्रिखि=देखो ।

अर्थः— आगे और सुनिये, राहु और चन्द्रमा, धनुष और मृग, शुक और बिम्बफल, शिव और कामदेव, सिंह और हाथी क्रमश एक दूसरे के विरोधी होते हुए भी एक दूसरे के समीप सुशोभित होते हैं। तब राजा ने कवि से कहा–यह कैसी आश्चर्य-जनक बात कहते हो। कवि ने राजा को प्रत्युत्तर में कहा कि गगा तट स्थित दासियों की ओर देखिये (मुख चद्र और मृगमद बिन्दु राहू, दृग-मृग और भौंह-धनुष, बिम्बोष्ठ और शुक-नासिका, हृदय स्थित कामदेव और कुच शम्भु, करि-सुंड-जघन (या गजपति) और कटि सिंह) यह सब जयचद के प्रताप का ही कारण है कि एक दूसरे के विरोधी होते हुए भी ये एक दूसरे के साथ बसते हैं।

दोहा

द्रिग चचल चचल तरुनि, वन चित्त हरति ।
कचन कलस झकोरि कै, सुदरि नीर भरति ॥१६३॥

शब्दार्थः–हरति=हर लेती। भरति=भर रही हैं।

अर्थः—देखिये-ऐसे सुन्दर अगवाली चचल तरुणियाँ चचल नैत्रों से देखकर चित्त को हरती हुई स्वर्ण कलशों को हिलाकर नीर भर रही हैं।

हसि प्रथिराज नरिंद कहि, कवि चुक्कौ अदेस ।
पग दासि आचिज्ज इह, वाल वरनि विन केस ॥१६४॥

शब्दार्थः–चुक्कौ=चूक गये, भूल गये। अदेस=अदेशा, शका। आचिज्ज=आश्चर्य।

अर्थः—राजा पृथ्वीराज ने हँसकर कवि चद से कहा— मुझे शङ्का और आश्चर्य है कि तुम इन सुन्दरियों के अग वर्णन में चूक गये थे। क्या पगुराज की दासियों के सिर पर बाल नहीं हैं जिससे तुमने इनके वर्णन में केश पाश को स्थान नहीं दिया (अत जान पडता है कि वे सब गँजी हैं)।

दिल्ली सुह अलि की लता, श्रवन सुनहु चहुआन ।
जनु भुजग समुख चढ़ै, कचन खभ प्रमान ॥१६५॥

शब्दार्थः–दिल्लीसुह=दिल्लीश्वर। अलि की लता=भँवर लता।

अर्थः—हे दिल्लीपति चाहुवान सुनिये! इनकी वेणी, भ्रमर लतिका है। या इनके स्वर्ण खभ के समान अग पर भुजग चढ रहे हैं।

रहि रहि चंद म गव्व करि, करहित कवित विचारे ।
जे तुम नयर सुंदरि कही, सह दिक्खिय पनिहारि ॥१६६॥

शब्दार्थ—म गव्व करि=गर्व मत कर । नयर=नगर ।

अर्थः—राजा कहने लगा—ठहरो, कविचंद ! गर्व मत करो और कविता विचार पूर्वक किया करो । तुमने इन नगर सुन्दरियों को देखा है, ये सब पनिहारिनियाँ हैं ।

गाथा

जे जंपी कविराजं, साज सुक्खाय कित्तियं बलय ।
तिरह छित्ति समस्त, जानिज्जै भूलयो कव्वी ॥१६७॥

शब्दार्थः—सुक्खाय=सुख । कित्तियं=कीर्ति । बलयं=बल । तिरए=तारने वाली । छित्ति=पृथ्वी, ससार समुद्र ।

अर्थः—हे कविराज ! जिन्हें तुम पनिहारिनियाँ कहते हो, वे तो साधारण स्त्रियां होती हैं । ये तो सुख-कीर्ति और बल के साज एवं समस्त भव-सिन्धु से पार करने की साधन स्वरूपा हैं । अतः मालूम होता है कि तुम इन्हें सामान्य स्त्रियां मानने की भूल करते हो ।

दोहा

जाहंनवि तट दिखि दरस, रूपरासि ते दासि ।
नगर सु नागर नर घरनि, रहहिं अवास अवास ॥१६८॥

शब्दार्थः—जाहंनवि=जाह्नवी, गङ्गा । नागर=नागरिक । घरनि=स्त्रियाँ, गृहिणी । अवास=आवास ।

अर्थः—कवि बोला—हे राजन् ! जान्हवी के तट पर जिन्हें आप देख रहे हैं, वे रूप-राशि दासियां हैं । नगर के चतुर पुरुषों की स्त्रियाँ तो घरों में ही निवास करती हैं (उनके दर्शन तो दुर्लभ ही हैं) ।

ते दरसन दिनयर दुलह, निय मंडन भरतार ।
सुह कारन विह निरमई, दुह कत्तरि करतार ॥१६९॥

शब्दार्थः—दिनयर=दिनकर, सूर्य । दुलह=दुर्लभ । निय=नजदीक । मडन=शोभा । सुह=सुख । विह=विधाता । निरमई=निर्माण किया । दुह कत्तरि=दुःख को काट देने वाली दुःख नाशक ।

अर्थः—उनके दर्शन तो सूर्य को भी दुर्लभ हैं, वे तो सदा पति के पास रहती हुई शोभा पाती हैं । विधाता ने उन्हें अपने ही हाथों से सुख की कारण-स्वरूपा और दुःख-नाशक रूप में निर्मित की है ।

पाव न धरनि परट्टिये, ऊंच थांन जे बाल ।
कै रवि दिक्खत[1] सतखननि, कै मुख कत विसाल ॥१७०॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थ—पाव=पाँव, पैर । परट्टिये=देती । सतखननि=सत खण्डे, सात खण्ड । कन=पति ।

अर्थ—यहाँ के उच्च आवासों मे रहने वाली वालाएँ आंगन में पैर भी नहीं देती हैं । सात खण्ड के आवासों मे रहती हुई उन सुन्दर कामिनियों के मुख या तो सूर्य या उनके पति देव ही देख सकते है ।

कुवलय रवि लज्जा रहसि, रहि भगि भ्रंग सरन्नि ।
सरस बुद्धि व्रंनन कियो, दुल्लह तरुन तरन्नि[1] ॥१७१॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—कुवलय=नील कुमोदिनी और कमल । सरन्न=शरण । दुल्लह तरुन=युवक पति । तरनि=तरणि, नौका ।

अर्थः—रवि से सकुचित कुमोदिनी के रहने के कारण वहाँ से भागकर भ्रमर गण उनके मुख कमल की शरण लेते हैं । सरस बुद्धि वाले वर्णन करते है— वे तरुणियाँ अपने युवक पतियों को इस भवसिंधु से पार करने के लिए नौका के समान है ।

गाथा

दुल्लह तरुनिनि मुक्ख, घन दीहति ईस सेवाय ।
जानिज्जै मन अप्प, प्रीतमय तप्प अधिकाय ॥१७२॥

शब्दार्थः—दुल्लह=दुर्लभ । घन दीहति=बहुत दिनों तक । ईश=शिव । प्रीतमय=पति । तप्प=तपस्या ।

अर्थः—उन युवतियों के मुख दर्शन बहुत दिनों तक शिव की सेवा करने पर भी कठिनाई से प्राप्त होते है । हे राजन् ! आप अपने मन मे (अपनी प्रेम गाथा से ही) समझ लीजिये कि उन सुन्दरियों के पतियों की तपस्या महान् है ।

कामोद[1] वर विगस[2], सरसीरुह सरसिय तेज ।
चक्कति चक्क चक्क, अरक रकइ पुंथ सजोग ॥१७३॥

प्रा० पा० १, २ पा० ।

शब्दार्थः—कामोद=कुमोदिनी । सरसीरुह=कमल । सरसिय=विकसित होते । तेज=तेज, प्रकाश । चक्कति=चकित । चक्क=चक्रवाक । अरक=अर्क, सूर्य । रकइ=राका, चंद्रमा ।

अर्थः—उन बालाओं का उनके पतियों के साथ संयोग चंद्रमा और सूर्य के संयोग सा दिखाई देता है। उन दोनों के प्रकाश से कुमोदिनी और कमल दोनों साथ २ ही विकसित हो जाते हैं, जिससे चक्रवाक दम्पति-रात्रि है या दिन? इस भ्रम में पड़कर चकित हो जाते हैं।

रोरंत कच विलास[1], चंद मुखी दरसि सरसि प्रतिबिम्बं[2]।
मवसं प्रांन वेसासी, दोह मेकं सय एकं॥१७४॥

ग्रा०पा०१, २ का०पा०घ०।

शब्दार्थः—रोरत=हिलते हुए, बिखरे हुए। कच=केश। सरसि=सरस। मवसं=मेवासी (जंगली तस्कर जाति के)। प्रांन=प्राणी। वे सासी=विश्वास करने वाले। दोहं=द्रोह। मेकं=एक। सय=सौ।

अर्थः—हिलते हुए उनके केश विलसित होते हैं। उसमें उन बालाओं के मुख का केवल प्रतिबिंब ही दिखाई पडता है। सत्य है। मेवासियों (जंगली तस्कर जाति) का विश्वास करने वाला प्राणी एक दिन अनेकों के विद्रोह का शिकार बनता है (जिस प्रकार तस्करों से वह घिर जाता है, उसी प्रकार उनके चन्द्रमुख कच (केश) राशि से घिरे हुए हैं)।

कुमुद कुञ्च प्रगासी, हार वीच तन तय अबं।
अभिवर[1] तरग ओपं, रोमं राजीव सेवालं॥१७५॥

ग्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थः—कुञ्च=कुंचित। वीच तन=मध्य तन,वक्षस्थल। तयं वही। अंब=जल (स्रोत)। अभिवर=अभ्यतर, आंतरिक उमग। ओप=समान। रोम राजीव=रोमराजि। सेवालं=काई।

अर्थः—उनके कुंचित (गुंफित) केश-पाश कुमोदिनी का, वक्षस्थल के मध्य झूमता जल (स्रोत) का, आंतरिक उमंगें तरंगों का और रोम राजि सेवाल (काई) का आभास देती है (अर्थात् वे बालाएँ सुख की सरिताएँ हैं)।

पावस धनुक सु कती, अबर नीलाइ पीतमं वाले।
जानिज्जै परमान[1], स्यामं घन मद्धि तड़िताय॥१७६॥

ग्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थः—पावस धनुक=पावस-धनुष, इन्द्र धनुष। कती=कांति। अबर=वस्त्र। नीलाइ=नीले, हरे। पीतम=पीतवर्ण स्वर्णवर्ण। स्याम घनं=काले बादल। तड़िताय=बिजली।

अर्थः—उनके स्वर्णिम तन नील वस्त्रों के सम्पर्क से इन्द्र धनुष के समान दिखाई देते हैं, तथा वे नील वस्त्रों में ऐसी भासित होती हैं; मानों श्याम बादलों में बिजली चमक रही हो।

प्रथम थान[१] गङ्गा निरखि, पुर रट्ठौर निवास।
फिरि पच्छिम दिसि उत्तरै, जोजन एक सुपास ॥१७७॥

प्रा०पा०१ पा०।

शब्दार्थ:—उत्तरै=डेरा किया।

अर्थ:—इस प्रकार पहले गङ्गा का अवलोकन किया, फिर कन्नौज के राष्ट्रवर राज (जयचन्द) के महलों से एक योजन दूर पश्चिम की ओर पृथ्वीराज ने अपना डेरा डाला।

कवित्त

सो पट्टन तजि नृपति, चल्ल्यौ कनवज्ज राज बल।
जाय सपन्नौ राज[१], गग सुरसर सुरग जल॥
करि मिलान परमान, थान आश्रम्म सु उज्जल।
दीप जाप मन करै, ध्रंम भज्जै सु अध्रम दल॥
चहुआन दान खोडस करिय, तिहि जय जय सुरलोक हुअ।
दिन पतत निसा वधय सयन, रस खिल्लिय प्रथिराज जुअ[२] ॥१७८॥

प्रा०पा०१ पा०घ०का०। २ पा०।

शब्दार्थ:—पट्टन=पत्तन, पतना, सेना। सुरसर=सुरसरी, देव नदी। करि मिलान=पहुँच कर। परमान=प्रमाणकर, सोचकर, देखकर। उज्जल=उज्ज्वल,पवित्र। जाप मन=मानसिक जप। ध्रंम भज्जै=धर्म को भजा, धर्म का चिंतन किया। अध्रम्म=अधर्म। दल=दला, दलन किया। दिन पतत=दिनास्त होते। वधय सयन=निद्रा ग्रस्त हो गया। रस खिल्लय=रस रमण करता रहा। जुअ=अलग हो, (या देखा गया)।

अर्थ:—फिर पृथ्वीराज अपनी सेना को वहीं छोड़कर कन्नौज की ओर, जहाँ गङ्गा का सुन्दर जल प्रवाहित हो रहा था, पहुँचा और पवित्र स्थान देखकर दीपक जलाया और मानसिक जप कर धर्म का चिन्तन करके अधर्म का नाश किया। तत्पश्चात् उसने शोडष प्रकार के दान किये। यह देखकर देवतागण स्वर्ग से उसकी जय जयकार करने लगे। जब सायंकाल हुआ तब वह अपने विमान में आकर निद्राग्रस्त हो गया, किन्तु उसका मन अलग हो रस में रमण करता रहा (उसका मन संयोगिता के प्रेम में मतवाला बन गया)।

दोहा

निसि नखी चिंतान भर, भयग प्रात तम भग्गि ।
तरुन अरुन प्रगटय किरनि, वर प्रयान नृप जग्गि ॥१७६॥

शब्दार्थ:—नखी=व्यतीत की । चिंतान=चिंतन ।

अर्थ:—सामंतों ने भी चिन्तन करते हुए रात्रि व्यतीत की । जब सूर्य की अरुण किरणें फैलने लगी, तब राजा उठा और प्रयाण की तैयारी करने लगा ।

निसि त्रियाम वित्तिय सु जब, उठि सुख निद्रा प्रान[1] ।
प्रात तेज उद्दित भयौ, चढि चल्ल्यौ चहुआन ॥१८०॥

प्रा० पा० १, पा० ।

शब्दार्थ:—त्रियाम=तीसरा प्रहर । प्रान=परान, पलान, पलायन, दूर हुई ।

अर्थ:—जब रात्रि का तीसरा प्रहर बीत चुका तब राजा की निद्रा दूर हुई । वह उठ बैठा और प्रात काल सूर्य का प्रकाश फैलने पर घोडे पर सवार होकर रवाना हुआ ।

कवित्त

जग्गि सु नृप चहुआन, थान सामत सूर फिरि ।
चद राज[1] कर जोरि, मत कीनो सुमंत करि ॥
इहइ दिक्खि कनवज्ज, जहाँ वसि थान सुरत्त ।
दइ विधिना त्रिम्मयो, काल ग्रह आनि सु पत्त ॥
मुख काल व्याल उदर परै, ग्रास मुख्ख मखी जियन ।
तुम सत्त ग्रहौ वधौति खग, मत अप्प देखौ वियन[2] ॥१८१॥

प्रा० पा० १, २ पा० ।

शब्दार्थ:—थान सामत=सामतों के डेरों पर । फिरि=गया, पहुँचा । चदराज=चद पुण्डीर या चँद्र राज नामक कोई सामंत (जिसका उल्लेख हमीर महाकाव्य में भी हुआ है) । इहइ=यह । सुरत्त= शूरता, वीरता । मुख =में मखी = मक्खि । वियन = दूसरा ।

अर्थ:—जागृत होकर प्रस्थान करने के पूर्व चाहुवान राजा सामतों के डेरों पर पहुँचा । तब चन्द्रराज (चद पुडीर या चन्द्रराज नामक कोई सामत) हाथ जोड कर बोला— हे राजन् ! आपने सु मत्रणा कर जो दृढ़ निश्चय कर लिया है वह ठीक है, किन्तु

यह जो सामने है, वह जयचद की राजधानी कन्नौज है। इस स्थान पर समस्त वीरता ने निवास कर रक्खा है। विधि-निर्मित भविष्य के कारण ही इस यमराज के गृह स्वरूपी कनवज्ज में हम इस प्रकार आ पहुँचे है, जिस प्रकार मूषक सर्प के मुँह में जा पड़ता है, किन्तु हमारे लिये शत्रुओं का ग्रसना उसी प्रकार है, जिस प्रकार कोई ग्रास के साथ मक्षिका को ग्रस जाता है (मक्खी का मरना तो सम्भव है ही. किन्तु उसे ग्रसने वाले की भी मृत्यु निश्चय है)। अत हे सामन्तों! आप सब सत्य (सच्ची वीरता) को गृहण कर तलवारें बांध लीजिये। अब अपने को कोई मंत्रणा नहीं करनी है (एक मात्र मर मिटने की ही अपनी अंतिम मंत्रणा है)।

राज अग्ग गोयद, वीर आहुट्ठ नरेसुर[1]।
दाहिम्मो नरसिंघ, चद पुंडीर सूर वर[2] ॥
सोलकी सारग, राव कूरंभ पजून ॥
लोहा लगरिराव, खग्ग मग्गह दह गून।
लक्खन बघेल गुज्जर कनक, बाररसिंघ[3] सु अग्ग चलि।
पिय सेन सव्व साईं सु पुछ्छि, खग्ग मग्ग जिन बल अकल ॥१८२॥
प्रा० पा० १ पा० का० । २, ३ पा० ।

शब्दार्थ:—आहुट्ठ=आहड़ा, गुहिलोत। कूरंभ=कछवाहा। दह गुन=दसगुणा। बाररसिंघ=बारड़ राय नामक सामत। सेन=अन्य सेना। साईं=राजा। पुछ्छि=पीछे। अकल=अज्ञात, अदृश्य।

अर्थ:—सुसज्जित हो अपने २ घोड़ों पर चढ़कर राजा के आगे २ गोविन्दराय गुहिलोत, नरसिंह दाहिमा, वीर श्रेष्ठ चदपुण्डीर, सारगराय सोलकी, कछवाहा नरेश पज्जून, खड्ग मार्ग पर दस गुना शौर्य प्रदर्शित करने वाला लोहाधारी लगरीराय, लखन बघेला, बड़ गुज्जर कनकराय और बारडसिंह (बारड़राय) चलने लगे, एव जिन वीरों का बल अदृश्य है, वे वीर एव अन्य समस्त सेना राजा के पीछे २ चलने लगी।

दोहा

इह समग्ग सब सेन चलि, दिसि कनवज्ज नरिंद।
प्रथीराज टिग राजई, मधि कविता वर चद ॥१८३॥

शब्दार्थः—इहि समंग=इस प्रकार । ढिग=पास । मधि कविता वर=कविता में श्रेष्ठ, कवि श्रेष्ठ ।

अर्थः—इस प्रकार राजा की सेना (राजा के पीछे २) कन्नौज की ओर चली। पृथ्वीराज के पास केवल (कुछ साथियों सहित) कविता में कवि श्रेष्ठ चन्द विरदाई ही रह गया।

एक दिसा उत्तरि नृपति, आरंन छिनक सपन्न ।
मतौ करन साईं सु भृत, पुच्छहिं आयसु कंन्ह ॥१८४॥

शब्दार्थः—उत्तरि=एक ओर ठहरा । आरन=अरण्य, जंगल । मतौ=मन्त्रणा । साईं सु भृत=राजा के सामन्त ।

अर्थः—राजा जंगल में जाकर एक ओर ठहर गया, तब राजा के सब साथी सामंत नरनाह कन्ह से मंत्रणा करने लगे।

कवित्त

सुनि कन्हा चहुआन, ग्रेह कैमास न मंत्री ।
ततसार विन तुंवं, जत्र वाजहि न जत्री ॥
चद दद उप्पाय, गज त्रिन अग्गि लगाई ।
सुभर ध्रम्म रजपूत, पत्ति रक्खे पति पाई ॥
दरवार पग दैवान भर, कल जलद सौ उल्ललै ।
पुच्छौ सु इच्छ वल मंत वर, दल भजै पुज्जै दलै ॥१८५॥
मा० पा० १, पा० ।

शब्दार्थः—ग्रेह=घर पर । तत सार=लोह तार । तुंव=तूंबर, सितार आदि । जत्र=वाद्य । गज त्रिन=तृण समूह । पत्ति रक्खे=स्वामी की रक्षा करे । पति पाई=लज्जा पाई जाती (उसी में उसकी लज्जा है) । दैवान=देव तुल्य । कल=सुन्दर । पुच्छो=पूछो । इच्छवल=इष्ट बल । दल भजै=सेना का नाश कर सकें । पुज्जै दलै=सेना में प्रवेश करें ।

अर्थः—वे कन्ह चहुवान से वोले—हे कन्ह सुनो ! अब राजधानी में कैमास जैसा मन्त्री नहीं रहा, जिससे हमारी ऐसी दशा हो रही है, जैसे तुम्बरु और तन्त्री-वाद्य लोहे के तार के बिना वृथा होते हैं। चद ने यह विघ्न फैलाकर तृण-समूह में आग लगा दी है (राजा को यह कन्नौज लेकर आगया है)। बहादुर क्षत्रिय का धर्म है कि वह स्वामी की रक्षा करे। इसी में उसकी लज्जा है। पगुराज के दरवार

यह जो सामने है, वह जयचद की राजधानी कन्नौज है। इस स्थान पर समस्त वीरता ने निवास कर रक्खा है। विधि-निर्मित भविष्य के कारण ही इस यमराज के गृह स्वरूपी कनवज्ज में हम इस प्रकार आ पहुँचे हैं, जिस प्रकार मूषक सर्प के मुँह में जा पड़ता है, किन्तु हमारे लिये शत्रुओं का ग्रसना उसी प्रकार है, जिस प्रकार कोई ग्रास के साथ मक्षिका को ग्रस जाता है (मक्खी का मरना तो सम्भव है ही. किन्तु उसे ग्रसने वाले की भी मृत्यु निश्चय है)। अत हे सामन्तों! आप सब सत्य (सच्ची वीरता) को ग्रहण कर तलवारें बाध लीजिये। अब अपने को कोई मंत्रणा नहीं करनी है (एक मात्र मर मिटने की ही अपनी अतिम मत्रणा है)।

राज अग्ग गोयद, वीर आहुट्ठ नरेसुर[१]।
दाहिम्मो नरसिंघ, चद पुडीर सूर वर[२]॥
सोलकी सारग, राव कूरभ पजून॥
लोहा लगरिराव, खग्ग मग्गह दह गून।
लक्खन बघेल गुज्जर कनक, वाररसिंघ[३] सु अग्ग चलि।
बिय सेन सब्ब साईं सु पुछ्छि, खग्ग मग्ग जिन बल अकल ॥१८२॥
पा० पा० १ पा० का० । २, ३ पा० ।

शब्दार्थः—आहुट्ठ=आहड़ा, गुहिलोत। कूरभ=कछवाहा। दह गून=दसगुणा। वाररसिंघ=वारड़ राय नामक सामत। सेन=अन्य सेना। साईं=राजा। पुछ्छि=पीछे। अकल=अज्ञात, अदृश्य।

अर्थः—सुसज्जित हो अपने २ घोड़ों पर चढ़कर राजा के आगे २ गोविन्दराय गुहिलोत, नरसिंह दाहिमा, वीर श्रेष्ठ चदपुण्डीर, सारगराय सोलकी, कछवाहा नरेश पज्जून, खड्ग मार्ग पर दस गुना शौर्य प्रदर्शित करने वाला लोहाधारी लगरी-राय, लखन बघेला, बड़ गुज्जर कनकराय और वारडसिंह (वारड़राय) चलने लगे, एव जिन वीरों का बल अदृश्य है, वे वीर एव अन्य समस्त सेना राजा के पीछे २ चलने लगी।

दोहा

दह समग्ग सब सेन चलि, दिसि कनवज्ज नरिंद।
प्रथीराज टिग राजई, मधि कविता वर चद ॥१८३॥

शब्दार्थः—इहि संसंग=इस प्रकार। ढिग=पास। मधि कविता वर=कविता में श्रेष्ठ, कवि श्रेष्ठ।

अर्थः—इस प्रकार राजा की सेना (राजा के पीछे २) कन्नौज की ओर चली। पृथ्वीराज के पास केवल (कुछ साथियों सहित) कविता में कवि श्रेष्ठ चन्द विरदाई ही रह गया।

एक दिसा उत्तरि त्रपति, आरन छिनक संपन्न।
मतौ करन साई सु भृत, पुच्छहिं आयसु कंन्ह ॥१८४॥

शब्दार्थः—उत्तरि=एक ओर ठहरा। आरन=अरण्य, जंगल। मतौ=मन्त्रणा। साई सु भृत=राजा के सामन्त।

अर्थः—राजा जंगल मे जाकर एक ओर ठहर गया, तब राजा के सब साथी सामंत नरनाह कन्ह से मन्त्रणा करने लगे।

कवित्त

सुनि कंन्हा चहुआन, ग्रेह कैमास न मन्त्री।
ततसार विन तुंव, जंत्र बाजहिं न जन्त्री॥
चद दद उप्पाय, गज त्रिन अग्गि लगाई।
सुभर ध्रम्म रजपूत, पत्ति रक्खे पति पाई॥
दरबार पग दैवान भर, कल जलह सौ उल्ललै।
पुच्छौ सु इच्छ वल मत वर, दल भंजै पुज्जै दलै ॥१८५॥
मा० पा० १, पा०।

शब्दार्थः—ग्रेह=घर पर। तत सार=लोह तार। तुंव=तूंबर, सितार आदि। जन्त्र=वाद्य। गज त्रिन=तृण समूह। पत्ति रक्खे=स्वामी की रक्षा करे। पति पाई=लज्जा पाई जाती (उसी में उसकी लज्जा है)। दैवान=देव तुल्य। कल=सुन्दर। पुच्छौ=पूछो। इच्छवल=इष्ट बल। दल भंजै=सेना का नाश कर सकें। पुज्जै दलै=सेना में प्रवेश करें।

अर्थः—वे कन्ह चहुवान से बोले—हे कन्ह सुनो। अब राजधानी में कैमास जैसा मंत्री नहीं रहा, जिससे हमारी ऐसी दशा हो रही है, जैसी तुम्बरु और तन्त्री-वाद्य लोहे के तार के बिना वृथा होते हैं। चद ने यह विघ्न फैलाकर तृण-समूह में आग लगा दी है (राजा को यह कन्नौज लेकर आगया है)। बहादुर क्षत्रिय का धर्म है कि वह स्वामी की रक्षा करे। इसी में उसकी लज्जा है। पगुराज के दरबार

मे सुन्दर देवकाय योद्धा है । वे बादलों के समान उमडने वाले है । इसीलिये आपकी सम्मति चाहते है । आप अपने इष्ट का स्मरण कर ऐसी सलाह दीजिये, ताकि हम शत्रु सेना मे प्रवेश कर उसे नष्ट कर सके ।

कवित्त

सुनि कन्ह चहुआन, कन्ह विठ्यौ जु कन्ह जुगि ।
कन्ह अनी कुव्वेर, मेछ मोरन्न मुट्ठि खगि ॥
साम ध्रम्म अगि प्रान, नीति रक्खन[1] राजनिय ।
तिहि कारन तुअ अखि, निद्धि पाटी जुग जानिय ॥
आचिज्ज लोइ कनवज्ज वर, पूछि-न-दिखितन तन नयन ।
प्रथिराज काज तौ-सुद्दरौ, छोरि पट्ट सद्दौ सयन ॥१८६॥

प्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थः—कन्हा=कान, श्रवन । कन्ह = कृष्ण तुल्य पृथ्वीराज । कन्ह=काला सर्प, कालीय नाग । जुगि=देखा गया या जागृत होकर । कन्ह=कन्ह चाहुवान । अनी = सेना । कुव्वेर = कुसमय, असमय । मेछ=मुसलमान । मोरन्न = मोड देने वाले । मुट्ठि खगि=खड्ग युक्त मुष्टिका, जादूगर के मन्त्रित अक्षत तुल्य । साम = स्वामी । अगि प्राण = आगे प्राण रखने वाले, प्राण न्योछावर करने वाले । निद्धि पाटी=नव रत्न जटित पट्टा । जुग=नग । लोइ=लोग पूछि-न=नहीं पूछने पर भी । दिखितन=देखते ही, देख लेंगे । तौ-सुद्दरो=यदि बनाना चाहो । छोरि=छोड दो, खोल दो । पट्ट=पट्टी, चक्षु पट्टा । सद्दो-सयन=सयाने पन का साधन करो, शात रूप धारण करो ।

अर्थः—हे कन्ह चाहुवान ! इस कृष्ण (तुल्य पृथ्वीराज) के (संयोगिता का प्रेम रूपी) काला सर्प चिपट गया है, किन्तु आपत्ति समय मे सेना को उस काले सर्प से बचाने के लिये मुसलमानो को मोड देने वाली तुम्हारी खड्ग युक्त मुष्टिका (जादूगर द्वारा मन्त्रित अक्षत सी) ही एक मात्र उपचार स्वरूप है । स्वामी-धर्म पर तुम प्राण न्योछावर करने वाले और राजनीति को निभाने वाले हो संसार जानता है कि इसी (वीरता के) कारण तुम्हारी आँखो पर रत्न जटित पट्टी बांधी रहती है अत तुम्हारी आश्चर्य पूर्वक देखते ही कन्नौजवासी बिना पूछे ही (चक्षुपट्टी से) स्वत तुम्हे जान जायेंगे । इसीलिये यदि पृथ्वीराज का कार्य बनाना ही है तो आखो की पट्टी हटा कर शातरूप धारण कर चुपचाप चलिये ।

दोहा

कन्ह मंत मत्ते[1] जवर, बर पुच्छन द्रग सब्ब ।
बर भावी गति चिंत किय, नयनसुब्ब रजि[2] तब्ब ॥१८७॥

प्रा० पा० १, का० घ० । २ सं० ।

शब्दार्थः—मंत=मंत्रणा । मत्ते=मतवाले । जवर=भारी । सब्ब=शुभ । रजि=सुशोभित हुए ।

अर्थः—मतवाले कन्ह की मंत्रणा गंभीर होती थी । इसीलिये सबके नैत्र टकटकी लगा कर उसी की ओर देखने लग गये । तब कन्ह ने भविष्य-गति का चिन्तन कर वीरों के कथन के अनुसार ही किया (आँखों से पट्टी हटाली) । उस समय उसके नैत्र बहुत शोभायमान थे ।

कूच करिग भावी श्रवन, बर बर चलि सहरत्त ।
प्रात भयौ कनवज्ज फिरि, सुनि निसान धुनि पत्त ॥१८८॥

शब्दार्थः—श्रवन=सुनकर । सहरत्त=कम्पायमान होकर । धुनि पत्त=आवाज सुनाई देने लगी ।

अर्थः—वीर कन्ह की आँखों से पट्टी खुलना सुनकर और उसकी शक्ति से कम्पित होकर भविष्य भी कूँच कर गया । प्रातःकाल हुआ और कन्नौज नगर में नक्कारों पर डंके पड़ने से फिर वाद्य-ध्वनि सुनाई देने लगी ।

साटक

वीना धारन अग्र अग्रति दिवं, देवं तम भूतलं ।
तुं बाले जननी[1] जगंत कलया, जोगिन्द्र माया द्युतिं ॥
त्वं सार ससार पार करनी, तोयं-तुअ-सारसं ।
द दीनं दारिद्र दैत्य दलनी, मात त्वया द्रगया ॥१८९॥

प्रा० पा० १, पा० ।

शब्दार्थः—अग्र अग्रति=अग्रगण्य । दिवं=स्वर्ग । तम=तिमि, तैसे ही । कलया=नूर, कांति तेज । द्युतिं=धुति, कांति । तोयं-तुअ-सारसं=तेरे जैसी तू ही है । दंदीन=द्वंद्वकारी, विघ्न करने वाले । त्वया=तू ही । द्रुगया=दुर्गा है ।

अर्थः—(कन्नौज नगर में प्रवेश करते समय कविचन्द्र राजा की मंगल कामना हेतु सरस्वती से स्तुति करता है) हे वीणा पाणि ! स्वर्ग में रहने वाले देवताओं में और पृथ्वी पर तू ही अग्रगण्य है । सदैव बाला वय वाली हे जननी ! तू ही संसारी जीवों का तेज है और तू ही योगमाया की सुन्दर कान्ति से जगमगाती हुई है ।

हे ससार से पार करने वाली ! तत्व स्वरूपी तेरे जैसी तू ही है। विघ्न कर्ताओं, दारिद्रय और दैत्यों का नाश करने वाली माता दुर्गा भी तू ही है।

दोहा

कै मा तुल कै प्रकृति तू, कै पुरिखत्व प्रमान।
तु सब छत्रिन मभ्क है, तू रक्खै चहुआन ॥१६०॥

शब्दार्थ:—कै=अथवा । तुल=तुल्य, समान । पुरिखत्व=पुरुषार्थ । छत्रिन मभ्क=क्षत्रियों के हृदय में । रक्खै=रक्षा करने वाली ।

अर्थ:—माँ तुल्य अथवा प्रकृति स्वरूप या पुरुषत्व रूपी होकर तू ही सब क्षत्रियों के अन्दर निवास करती है। हे देवि ! तू ही चाहुआन की रक्षा करना।

गाथा

लज्जी रूप सु देवी दवि, हवि तेज मुगतिका जनया[1]।
किय कल मल्ल[2] सु जेय, वधि पानि उच्चरै वलय ॥१६१॥

प्रा० पा० १, २ पा०।

शब्दार्थ:—लज्जी, रूप=लज्जास्वरूप । हवि तेज=हवि-प्रभा । मुगतिका=मोक्ष दायिनी । जनया=दास को । कल मल्ल=कलि दोष, कलि-कलुष जेयं=विजय । वधि पानि=हाथ जोड़ कर । वलय=बल का, शक्ति का ।

अर्थ:—हे लज्जा स्वरूपा देवि ! मैं हाथ जोडकर तेरी शक्ति का बखान करता हूँ, तू हवि देते समय सेवक के सामने हवि-प्रभा तुल्य प्रगट होने वाली, अपने दासों के लिए मोक्ष दात्री एवं कलि-कलुष पर विजय पाने वाली है।

तू धारन ससार, चद चद कित्तियौ सुनिय।
ज्यौ पडव मभ्क प्रगट्टी, अब हुज्जै राज मभभ्काई ॥१६२॥

शब्दार्थ:—तू धारन=ससार की धात्री । चद कित्तियौ=चद्रमाँ के समान कीर्ति । पडव मभ्क=पाण्डवों में । प्रगट्टी=प्रगट हुई । राज मभभ्काई=राजा की सहायता पर हो, राजा के हृदय में ।

अर्थ—हे माता ! तू ही विश्व धात्री है। मैंने (कविचद ने) तेरी कीर्ति चन्द्रमाँ के समान सुनी है (यह सब तेरी ही कृपा है)। अब जिस प्रकार तू पाण्डवों के हृदयान्तर मे प्रगट हुई, उसी तरह अब पृथ्वीराज के अन्दर प्रगट होना।

दोहा

किय विचार नृप नगर कौ, सह सामंत सभेव ।
चंद बुम्भि तब मन कियौ, चल्ल्यौ सु दिख्खन[1] देव ॥१६३॥

. प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—भेव=भेद (गुप्त बात) । बुम्भि=पूछकर । दिक्खन- देखने । देव=देव-स्वरूपी पृथ्वीराज ।

अर्थः—सब सामंतों से भेद (गुप्त बात) छिपाकर राजा ने नगर में प्रवेश करने का विचार किया और चन्द से पूछ कर वह देव-स्वरूपी पृथ्वीराज नगर को देखने का विचार कर के चला ।

देत प्रदिख्खन नगर कौं, होत तहां बहु वार ।
राज देख पच्छै करै, अवरसु[1] सकल विचार ॥१६४॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—प्रदिख्खन=प्रदक्षिणा । बहु वार=बहुत देर । पच्छै=पीछे । अवरसु=और, अन्य, सब सामंत ।

अर्थः—नगर की प्रदक्षिणा करने में बहुत समय लगा । राजा को अपने से विदा हुआ देख कर सब सामत विचार करने लगे ।

हर सिद्धि परमान करि, रखि[1] सामंत[2] जु[3] साज ।
कनवज पिक्खन राज गृह, चल्ल्यौ चद वर राज ॥१६५॥

प्रा० पा० १ से ३ पा० ।

शब्दार्थः—परनाम=प्रणाम । साज=साज-बाज । कनवज=कन्नौज ।

अर्थः—हर सिद्धि देवी को प्रणाम कर साथो सामन्तों और साज-बाजों को वहीं छोड़ कर कन्नौज के राज-प्रासाद को देखने के लिये चन्द और पृथ्वीराज चले ।

कवित्त

असुभ सगुन मंगल न, चित्त चहुआन विचारी ।
मग्ग अग्ग मंजार, वाम दक्खिन निक्कारी ॥
वर उच्चिष्ट पावक्क, विघ्घन तिन मम्झ चमकै ।
मेघ वृष्टि आकाल, मध्य घुम्मरिय[1] गहक्कै ॥

आरिष्ट भाव कविचन्द कहि, तब चिंत्यौ त्रिमान वसि ।
भावी विगत्ति[२] भंजन गढन, सुनि चहुआन नरिंद हसि ।।१६६।।

पा० पा० १ का० । २ पा० घ० का० ।

शब्दार्थ:—मगल=मांगलिक । मग्ग=मार्ग में । मजर=मार्जार, बिल्ली । निक्कारी=निकली । पावक्क=अग्नि । विवृन=विविध वर्ण (हरी, लाल) । आकाल=अकाल । धु म्मरिय = धुंधलाई युक्त । गहक्कै=गर्जना । आरिष्ट=अरिष्ट । भाव=भावी या अरिष्टकारी घटना पर विचार ।

अर्थ: – अशुभ शकुन मांगलिक (शुभ प्रद) नहीं होते, यह चौहान ने नगर मे प्रवेश होने से पूर्व हृदय में सोच लिया, क्योंकि रास्ते में बाई ओर से दाहिनी ओर बिल्ली निकली एव अपवित्र (क्रव्यादग्नि, श्मशान की अग्नि) अग्नि जिसमे अशुभ वर्ण की (हरी और लाल) ज्वाला चमक रही थी, वह भी दिखाई दी । धु धल युक्त अकाल वृष्टि भी गर्जना सहित होने लगी थी । ये सब अरिष्ट भाव ईश्वर-निर्माण के वश दीख पडे, उनका चिंतन कर कविचन्द बोला—इन शकुनों का परिणाम दुर्गों का नाश होना है । इसीलिये भावी इन अशुभ शकुनों द्वारा वर्जित करता है । यह सुन कर चौहान राजा (भविष्य को अमिट जानकर) हँस दिया ।

दोहा

सिंगिनि वंदि विरम करि, बाग पग नृप जाइ ।
दिखि अराम सिखि गृह परसि, रहि सुगध वरछाइ ।।१६७।।

शब्दार्थ:—सिंगिनि = सिंह वाहिनी देवी या सांगि, सांग, बरछी (लोह कृत) अथवा-सिंजिनी, प्रत्यचा । वदि = वदना कर । पग=पगुराज । अराम=आराम । सिखि-गृह परसि = गृह की चोटियों को स्पर्श कर रहे थे । रहि-सुगध = सौरभ फैल रही थी, कपा रही थी । वरछाइ = वृक्ष ।

अर्थ:—यह अपशकुन देखकर सिंह वाहिनी देवी (या-अपने लोहकृत,अथवा-प्रत्यचा) को नमस्कार (वदना) कर पगुराज के बाग मे कुछ समय के लिये राजा और चद ठहरे । उस बाग में जितने वृक्ष थे, वे नगर की ऊर्ध्व अटारियों की चोटियों को स्पर्श कर रहे थे और उन्होंने अपनी सौरभ फैला रक्खी थी ।

भवर टोल झकार वर, सुमन राइ फल सिद्ध ।
कूर दिष्ट मन रह घटी, ससि तारक भिन रिद्ध ।।१६८।।

शब्दार्थः—भवर=भ्रमर। टोल=टोली। सुमन राइ=पुष्प राज। लिद्ध=लुब्ध। कूर दिष्ट=क्रूर द्रष्टि। तारक=तारागण। श्रित=सेवक, नौकर। रिद्ध=रौंधा।

अर्थः—पुष्पराज के सुमनों और फलों पर लुब्ध होकर भँवरों की टोली श्रेष्ठ भ्कार करती हुई ऐसी दीखती थी, मानों चँद्रमा और तारागण उनकी शोभा से द्वेष करते हुए क्रूर द्रष्टि का भाव मन में बढ़ाकर अपने सेवकों द्वारा पुष्प और फलों को रौंधा रहे हैं।

रमि[1] सगुन्न चल्यौ नृपति, नेन दरसि सो नथ्थ[2]।
बर दोसी हट नैर कौ, मिलन पसारत हथ्थ ॥१९९॥

प्रा० पा० १, २, पा० का० घ०।

शब्दार्थः—रमि=विरम कर, ठहर कर। नथ्थ=नाथ, परकोटा। बर दोसी=श्रेष्ठ होते हुए भी दोषी, श्रेष्ठ विरोधी, श्रेष्ट दुलहा। हट नैर को=हाटें और नगर का।

अर्थः—अपशकुनों की शांति हेतु राजा कुछ देर ठहर कर फिर आगे बढ़ा, तब उसे कन्नौज नगर का परकोटा दिखाई दिया। वह कोट, नगर और हाट बाटों की शोभा के लिये आड़-स्वरूपी होने के कारण दोषी माना गया फिर भी नगर की रक्षा करने वाला होने के कारण श्रेष्ठ (उपयुक्त) था। वह (फैला हुआ) ऐसा दिखाई दे रहा था, मानों स्वय-वर दोषी (रक्षा करने वाला होने के कारण श्रेष्ठ और शोभा का आड़ स्वरूपी होने के कारण दोषी) होने के कारण उस नगर (कन्नौज) के वर-दोषी (संयोगिता से वरण करने वाला होने के कारण 'वर' किन्तु उसे हरण करके नगर को नष्ट करने वाला होने के कारण 'दोषी' कहा गया है) राजा पृथ्वीराज को आया हुआ जान कर मिलने के लिए हाथ पसार रहा हो (अर्थात् जैसे से तैसा मिल गया हो)।

सो पट्टन रट्टौर पुर, उज्जल पुण्य विपख्ख।
कोट नगर नायक संघन, धज बंधी तिन लख्ख ॥२००॥

शब्दार्थः—पट्टन=पट्टनपुर (जहाँ राजा की प्रतना रहती थी)। उज्जल पुण्य=पुण्य के समान उज्ज्वल। विपख्ख=शुक्ल और कृष्ण, दोनों पक्ष। कोट नगर नायक सघन=नगर के करोड़पति सेठ। धज=ध्वजायें। लख्ख=लाखों।

अर्थः— कन्नौज नगर का पट्टनपुर (जहाँ राजा की प्रतना रहती थी वह) दोनों (शुक्ल और कृष्ण) पक्ष में पुण्य के समान उज्ज्वल था (उजाले में ही नहीं अंधेरे में भी चमचमाता था)। वहाँ पास ही बहुत से करोड़ पति सेठों के कारण लाखों ध्वजाएँ फहरा रही थीं।

अगम हट्ट पट्टन नयर, रत्न मुत्ति मनि-हार।
हाटक पट धन धात रस', तुच्छ २ दिख्खि सवार ॥२०१॥

प्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थः—अगम = अत्यधिक। हट्ट = हाट। पट्टन नयर = पट्टन नगर। मुत्ति = मोती मनि-हार = मणियों के हार। पट = वस्त्र। धात = धातु। रस = रस पदार्थ इत्यादि। तुच्छ २ = थोड़ी देर के लिये।

अर्थः—पट्टन नगर की हाटों में अत्यधिक भीड़ होने के कारण रास्ता नहीं मिलत था। जोहरियों की दुकानों पर रत्न, मुक्ता और मणियों के हार चारों ओर दिखाई देते थे। स्वर्ण, वस्त्र, द्रव्य तथा सब प्रकार के धातु रस पदार्थ इत्यादि उपस्थित थे। राजा ने थोडी देर तक वहाँ का दृश्य देखा।

है' गै[2] दल सुंदरि सहर, जौ वरनो बहु वार।
इह चरित्र कहँ लगि कहूं, चलि पहुपंग दुआर ॥२०२॥

शब्दार्थः—है गै=हाथी, घोड़े। दल=सेना। सुदरि=सुन्दरियां। सहर=शहर। बरनो=वर्णन करो। बहु वार=बहुत समय। कह लगि=कहाँ तक। दुआर=द्वार।

अर्थः—कवि चंद बोला— यहाँ वर्णन में हाथी, घोडे, सेना, सुन्दरियाँ तथा शहर का वर्णन किया जाय तो बहुत समय लगेगा। यहाँ के चरित्र का कहाँ तक वर्णन किया जाय ? हे राजन ! अब तो पंगुराज के द्वार पर चलना चाहिये।

चलत अग्ग दिख्यौ नृपति, हरि सिद्धी सु प्रसाद।
चंद नम्मि अस्तुति करिय, हरिय अघ्घ अपराध ॥२०३॥

शब्दार्थः—अग्ग=आगे। हरि सिद्धी=हर सिद्धि देवी। प्रसाद=प्रासाद, मंदिर। नम्मि=नमस्कार। अस्तुति=स्तुति। हरिय=हरण कर। अघ्घ=अघ, पाप।

अर्थः—वहाँ से रवाना होने पर आगे राजा ने हरसिद्धि का मंदिर देखा। तब चंद ने नमस्कार कर स्तुति की और प्रार्थना की कि हे देवि! हमारे पाप और अपराधों का हरण कर (दूर कर)।

कौतूहल दिक्खै सकल, अकल अपूरब वट्ट।
पनधार[1] छर छगगरह, राज मही बर भट्ट ॥२०४॥

प्रा० पा० १ पा० का०।

शब्दार्थः—अपूरब=अपूर्व। पंनधार=पानदान ग्रहण करने वाला। छर छगगरह=सुराही।

अर्थः—श्रेष्ठ वदीजन (कविचन्द) की सुराही और पान-दान हाथ में लिए हुए साथ २ चलते हुए राजा (पृथ्वीराज) ने नहीं समझने योग्य अपूर्व कौतूहल रास्ते में देखे।

कवित्त

गज घंटन हयहिंस[1], विविध पसु जन समाज इव।
घन निसान घुम्मरत, प्रबल परिजन समथ्थ नव ॥
विविध वज्ज वज्जत सु, चद भर भीर उमत्तिय।
इक्क चलत[2] आवत सु, इक्क नरपत्ति समथ्थिय ॥
खुंभीय अवन्नि सुभिमय[3] महल, जंनु डुल्लित उभ्भिय करन।
दरबार राज कमधज्ज कौ, जग मंडन मभझह धरनि ॥२०५॥

प्रा० पा० १, टि०। २, ३, पा० च०।

शब्दार्थः—घंटन=घटारव। हिंस=हिनहिनाहट। इव=इसी प्रकार। समथ्थ नव=सामर्थ्यवानों को नँवा देने वाले। उमत्तिय=उन्मत्त। खुंभीय=कुंभवाले, हाथी। डुल्लित=डुला रहे हों, पंखा कर रहे हों। उभ्भिय करन=दोनों कान (हाथ)।

अर्थः—हाथियों का घटा रव, घोड़ों की हिनहिनाहट, विविध पशु, जन समूह और बहुत से नक्कारों की आवाज (ध्वनि) से शोरगुल मच रहा था। राजा के परिजन सामर्थ्यवानों को झुका देने वाले थे (प्रबल वीर थे)। राज द्वार पर विविध वाद्य बज रहे थे और वहाँ जयचन्द के उन्मत्त योद्धाओं की भारी भीड़ थी। वहाँ एक राजपदधारी सामर्थ्यवान वीर आता था तो एक जाता हुआ दिखाई देता था। राज-महल के चौक मे खंभों में जंजीरों से जकड़े हुए तथा कानों को हिलाते हुए हाथी

ऐसी शोभा दे रहे थे, मानों राजप्रासाद को दोनों कानो रूपी पंखों से वे हवा कर रहे हों। इस प्रकार कमधज-राज्य का दरबार भूमण्डल की सजावट (शोभा) स्वरूप दिखाई पड़ता था।

कौतुहल आलम अलाप, दिख्खिय दर चदह।
पगराइ दरबार, बार जागत जै-विंदह॥
सत जुग्गह वलिराइ, नगर पुर ध्रम प्रमान।
त्रितिय जुग्ग रघुनाथ, अवधि पट्टन वर थान॥
द्वापरह नाग-नागर-नगर, जुरा-जोध तप्पै सुतप।
जै चद दद दाहन दलन, कलि कनवज कमधज्ज नृप॥२०६॥

शब्दार्थ—अलाप=राग ध्वनि, राग रागिनियाँ। दर=द्वार। पगराइ=पगुराज। जागत=जागृत, सजग। जै-विंदह=विजित योद्धा समूह। पुर ध्रम=धर्मपुर या जहाँ धर्म निवास करता था ऐसा नगर। त्रितिय=त्रेता। अवधि पट्टन=अवधपुरी। नाग-नागर-नगर=जिसमें चतुर पुरुष बसते थे ऐसा हस्तिनापुर। जुरा-जोध=जुट पड़ने वाले योद्धा। दद दाहन दलन=विघ्नकारी दलों का नाश कर्ता। कलि=कलियुग।

अर्थ:—संसार के विविध कौतूहल और राग रागिनियों का समा राजा के द्वार पर दिखाई दिया जहा पर उसके विजित योद्धाओं का समूह भी सजग खड़ा हुआ था। सतयुग में बलिराजा का धर्मपुर नगर (जहाँ पर धर्म निवास करता था ऐसा नगर), त्रेता मे श्री रामचन्द्रजी का अवध पट्टन नगर, द्वापर में जहाँ नागरिक बसते थे, हस्तिनापुर था, जहाँ पर जुट पडने वाले योद्धा श्रेष्ठ प्रताप के साथ तपते थे। ऐसे ही कलियुग मे राजा जयचद जो विघ्नकारी दलों का नाश कर्ता है, उस का यह कन्नौज नगर कहा जाता है।

दिख्खि चद दरबार, छत्र धरि फिरिहि बिनह मद।
भ्रमर पुंज गुंजरत, मुकत[1] क्रमत दुरद रद॥
अनु-चर अनु सक रह, मत्त गम्भित कठीरव।
वासुर-सभ विहारि, वारि अचवत अभग भव॥
दिख्खियै द्रुगम सुगम सु घन, सुगम द्रुगम जयचद ग्रह।
सब जत तत जिम मर कटकि, समन दमन वस भूरि वह॥२०७॥

[1] प्रा० पा० १ टि०।

शब्दार्थः—फिरिहि=फिरते हैं। विनह मद=मद रहित। मुक्त=मुक्ता। कमंत=झूमते हैं, हिलते हैं। दुरद=हाथी। अनु-चर=अनुगमन। अनु सक=नि शाक। गम्मित=गमन। कठीरव=कठीर, सिंह। वासुर मझ=प्रात साय। विहारि=विचरण करते, विचरते। वारि अचवत=जल पीते। अभंग भव=बिना भय के। द्रुगम=दुर्गम। सुगम=सुगम। मरकटकि=मर्कटी (जिसके द्वारा छंद परीक्षा की जाती है)। समन=साम। दमन=दाम। वस=वश।

अर्थः—राजा जयचद के दरबार में देखा तो वहाँ छत्र-धारण करने वाले राजा लोग मद रहित होकर फिरते हैं। हाथियों के दाँतों पर मोतियों के झूमके हिल रहे हैं और मद की सुगन्ध से भ्रमर-पुंज गुंजार कर रहे हैं। मस्त गजराज और कठीर (सिंह) साथ २ बिना शङ्का के अनुगमन करते हैं, तथा प्रातः सायं स २ थाविचरण करते हुए बिना भय के जल पीते हैं। ऐसे उस राजा जयचद के यहाँ कई दुर्गम सुगम और सुगम दुर्गम देखे जाते हैं। उसके यहाँ सब यन्त्र, तन्त्र, मर्कटी (जिसके द्वारा छंद परीक्षा की जाती है) के अनुसार थे (जिससे बलाबल की परख हो जाती थी) तथा साम, दाम, नीति से वीर गण उसके वशीभूत रहते थे।

लख्ख सुभर आवत, लख्ख दरबारह रज्जै।
लख्खह गोलदाज, लख्ख इक नालिभ रिज्जै॥
लख्ख तीनि [1]सिलहान, गिरद रख्खै दरबारह।
पाइक लख्ख प्रचड, सक माने नहँ सारह॥
लख असिय सकल सेवा करै, द्वादस सूरज जोति कल।
लख तीन तुरय पख्खर सहित, पवन पाइ ऐराक भल॥२०८॥

प्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थः—सुभर=सुभट, योद्धा। आवत=आकर। दरबारह=दरबार। रज्जै=शोभा बढाते। गोलदाज=तोपें चलाने वाले। नालिभ=तुपक धारी। रिज्जै=रहते हैं। सिलहान=कवचधारी। गिरद=आसपास। पाइक=पैदल। सक=शका। माने नहँ=नहीं मानता। असिय=अस्सी हजार। जोति=ज्योति। तुरय=घोड़े। पवन पाइ=पवन तुल्य, द्रुतगामी। ऐराक=ऐराक जाति के।

अर्थः—लाखों योद्धा आकर दरबार की शोभा बढाते हैं, लाखों की संख्या में ही जहाँ तोपे चलाने वाले और तुपक धारी रहते हैं, सभा मण्डप के आस पास लाखों

वीर कवच कसे हुए उपस्थित रहते हैं और शस्त्र धारियों को शंका नहीं मानने वाले प्रचंड काय लाखों वीर पैदल जिसके यहाँ हैं, जिसकी सेवा में कुल सैनिक अस्सी लक्ष हैं, ऐसा वह राजा जयचंद द्वादश सूर्य का तेज धारण किये हुए था। पवन तुल्य द्रुतगामी ऐराकी जाति के तीन लक्ष घोड़े उसके यहाँ थे।

गज्जत जलधि प्रमान, संख धुनि बज्जत भारिय।
मन क्रम बच त्रिय रहित, सहित सन्नाह सुधारिय॥
रिख सरूप जयचंद, सहस सखह धुनि रक्खन।
आवध साल प्रलंब, खंभ रुप्पौ अति तिक्खन[1]॥
मन सित्त एक हथ्थिय फिटक[2], इक्क इथ्थ झेलत्त बल।
भुज दंड प्रचंड उचाय करि[3], धरत जानि मदगल कि मल॥२०६॥

प्रा० पा० १, पा० घ०। २, ३, का० पा० घ०।

शब्दार्थः—गज्जत=गर्जना। जलधि=समुद्र। संख धुनि=शंख ध्वनि। बज्जत=बजाने पर। त्रिय=त्रिया, स्त्री। सन्नाह=कवच। सुधारिय=धारण किये हुए। रिख=ऋषि। सरूप=स्वरूप। आवध साल=आयुध शाला। खंभ=स्तंभ। रुप्पौ=रोपा, गड़ा हुआ। मन सित्त=एक सौ मन या सात मन। फिटक=स्फटिक शिला। मदगल=मुद्गल।

अर्थः—शंख बजाने पर उसकी ध्वनि समुद्र-गर्जन के समान होती है। जो मन, वचन और कर्म से स्त्री-सम्पर्क से रहित हैं, जो कवच धारण किये हुए ही रहते हैं और जो ऋषि रूप में शंख ध्वनि योगी कहलाते हैं ऐसे बाल ब्रह्मचारी (नागे) योगी, राजा जयचन्द के यहाँ थे। शस्त्र शाला के द्वार पर अति तीक्ष्ण और ऊँचा एक स्तंभ खड़ा था, उसी के पास एक श्वेत शिला जो एक हाथ लम्बी चौड़ी और सात मन वजन की थी, उसे वे प्रचंड भुजा वाले योगी एक के बाद दूसरा इस प्रकार उठाकर बल परीक्षा कर रहे थे, मानों कोई पहलवान मुद्गल उठा रहा हो।

हथ सित उरध खंभ, बान नक्खन बर[1] भारिय।
फोरत लोह प्रचंड, मुट्ठि चौसट्ठि प्रकारिय[2]॥
सिनकि[3] सगि नक्खन, धरनि सु भन निक्खारिय[4]।
सिनक दथ्थ भरि खंभ कट्ठि नक्खन उच्चारिय

इम रमत सहस सखह धुनिय, रिखि सरूप प्राक्रम अतुल ।
उच्चर्‌यौ राज भट्टह सरिस¹, इह कौतुहल पिक्खि भल ॥२१०॥
ग्रा० पा० १ से ४ का० पा० घ० । ५ घ० ।

शब्दार्थ—हथसित=सात या सौ हाथ । नखत=नाखते, वेधते । चौसट्ठि=योगिनियाँ । सगि=सांग, लोह कुंत । खु'मत=जमीन में उतार देना या कमना । सरिस=मे ।

अर्थ—जो स्तंभ वहाँ गडे हुए थे वे सात २ (या सौ) हाथ ऊँचे थे । उन्हें उन योगियों में से कोई श्रेष्ठ बाणों द्वारा वेध देता था, कोई योगिनियों की तरह मुष्टि प्रहार द्वारा तोड देता था, कोई अपनी तीक्ष्ण सांग (लोहकुंत) का प्रहार कर जमीन मे उतार देता था, कोई करपाश में लेकर उखेड़ फैंकता था, इस प्रकार वे एक सहस्र शख ध्वनि योगी, जो ऋषि-रूप में थे, वे पराक्रम का खेल खेल रहे थे । उसे देख-कर राजा ने वदीजन (कविचन्द) से कहा-इनका यह कौतुक देखने योग्य है ।

मोर पंख तन वस्त्र, मोर सिर मुकुट विराजत ।
मोर पंख वल्लभ अनंत, मोर¹ पंखे कर साजत ॥
तपसु तेज खित्रीय, चख्ख बघ्घह भुज सु'डह ।
पग नेवर भनकार, समर मेर गिरि मडह ॥
अवतार रूप दरसत भल, संख बजावत माधरिय ।
लख असी मभ्भ पौरुख अतुल, धर कपत पगगह धरिय ॥२११॥
प्रा० पा० १, घ० पा० का० ।

शब्दार्थः—मोर पख=मयूर पखधारी (कृष्ण) । तपसु=तपस्वी । बघ्घह=सिंह । माधरिय=मधुर ।

अर्थः—उन योगियों के मयूर-पख के ही वस्त्र, मुकुट तथा पख थे, एव वे मयूर मुकुट धारी विष्णु रूप कृष्ण के उपासक थे। वे श्रेष्ठ तपस्वी एव क्षात्र तेज युक्त थे । दृग ज्योति सिंह के समान तथा भुजायें हाथी की सुंड के समान थी । पैरों में जिनके नेउर भनक रहे थे और वे उन्नत सुमेरु गिरि से टक्कर लेने योग्य थे। वे मधुर ध्वनि में शखनाद करते हुए देव अश धारी दिखाई देते थे । जयचंद के अस्सी सहस्र सैनिकों में उनका पुरुषार्थ अतुल था । उनके पैर रखने पर पृथ्वी कापती थी ।

दोहा

पिखिव पराक्रम राज इह, विरत भयौ मन मंझ ।
चद वरद्दिय उकति करि, सामँत सूर समझ ॥२१२॥

शब्दार्थः—विरत=विरक्त । उकति करि=उक्ति के साथ कहा । समझ=समक्ष ।

अर्थः—उनके पराक्रम को देखकर राजा (पृथ्वीराज) का उत्साह भग हो गया, तब चद विरदाई ने राजा तथा उसके कुछ साथी सामन्तों के समक्ष कहा —

कहिय चद राजन्न प्रति, कहा सोचि मन मड्डि ।
अत्ताताइय[1] जुध जुरै, तब[2] इन सस्त्रन खड्डि ॥२१३॥

प्रा० पा० १ पा० । २ घ० ।

शब्दार्थः—जुरै=जुटे । इन=इन योगियों को ।

अर्थः—हे राजन् ! आप मन में चि ता क्यों करते हैं, आपका सामन्त अत्ताताई जब युद्ध मे जूझेगा, तब इन योगियों को शस्त्र द्वारा खण्ड खण्ड (टुकडे) कर देगा ।

भाखनि भाख सु मिलिय-दिस, दईसि सिखनि-इद ।
नव नव रस अरु सखन सख, जोध सु पग नरिंद ॥२१४॥

शब्दार्थः—भाखनि भाख=भाषा-भाषी । मिलिय--दिस=दिखाई देते थे । दईसि=दे दी । सिखनि- इद=चद्रमा की सब शक्ति (अमृत बरसाने की) । सखन सख=सखाओं का भी सखा, दासानुदास ।

अर्थः—वहाँ पर विविध भाषा भाषी नवों रसों का वाणी द्वारा प्रगट करते हुए (कवि कोविद) दिखाई देते थे, जिससे उनको देख कर ऐसा ज्ञात होता था, मानों चद्रमा ने अमृत बरसाने की शक्ति दे दी हो। यह सब श्रेष्ठ वीर प ंगु नरेश (जयचद) की गुण-ग्राहकता का ही परिणाम था कि वह और उसके योद्धागण कवि कोविदों के दासानुदास थे ।

निसि नौतति मिलि[1] प्रात मिलि, हय गय दिखिय[2] सान ।
विरचि[3] सुभर करि वर गहिय[4], किनहि कह्यौ[5] प्रथिराज ॥२१५॥

प्रा० पा० १, २ पा० ३ ४ पा० ५ा० घ० । ४ टि० ।

शब्दार्थ:—मिलि=देखी गई, जानी गई। साज=सजे हुए, नौबतों से कसे हुए। विरचि= उत्तेजित कर।

अर्थ:—वहाँ पर (राजद्वार पर) रात-दिन हाथी घोड़ों पर नौबतें कसी हुई रहती थी। यह जानकर पृथ्वीराज ने किसी अपने साथी योद्धा को उत्तेजित कर कहा कि इन हाथियों में से किसी हाथी को पकड़ कर अपना बल प्रदर्शित करो?

कहहि चद दंद न करहु, रे सामंत कुमार।
तीन लक्ख निसि दिन रहै, इह जैचंद दुआर ॥२१६॥

शब्दार्थ:—दंद=द्वंद्व, विघ्न। दुआर=द्वार।

अर्थ:—कविचद ने यह कह कर रोक दिया कि हे सामन्त कुमारों! तुम जानते नहीं, यह राजा जयचद का राजद्वार है (इस समय ऐसी उद्दण्डता करना ठीक नहीं) यहाँ पर तीन लक्ष सैनिक रात-दिन उपस्थित रहते हैं।

कवित्त

एक ठौर पृथिराज, रास मगै हल काजै।
समौ ताकि गोविंदि, अग्ग जरसिंध सु भाजै ॥
समौ जानि श्रीराम, वैर-पति-का सिय मुक्किय।
समौ ताकि पडवन, देह जस बल अप लुक्किय ॥
मतिसिष्ट पुरुष तक्कै समौ, मनह मनोरथ चिंति मति।
कवि कहल केलि लागो विषम, टारी टरै न पुव्व गति ॥२१७॥

शब्दार्थ:—रास=रस्सी। मगै=लेनी पड़ती, ग्रहण करनी पड़ती। हल-काजै=हल कार्य के लिये, हल चलाने के लिये। समौ=समय। गोविंदि=गोविंद। जरसध=जरासध। भाजै=भाग गये। वैर-पति-का= पति के साथ उसका क्या द्वेष था (अर्थात पतिवृता थी)। मुक्कि=छोड़ा। पडवन=पाडव। अप्प=आप, स्वयं। लुक्किय=छिप गये। तक्कै=देखकर। मनह=मन में। चिंति मति=बुद्धि से चिंतन करो। कहल=कहर, कलह।

अर्थ:—कवि ने राजा को समझाया कि-हे राजन्! कभी ऐसा समय आता है कि हल-कार्य के लिये बड़ों र को भी (घोड़ो की रासों को छोड़कर) बैलों को रस्सी पकड़नी पड़ती है। समय देख कर श्रीकृष्ण को जरासध से भागना पड़ा, समय विचार कर लोक निंदा के कारण अपने से प्रेम रखने वाली (परम सति) सीता को

वनवास देना पड़ा, पाडवों को भी समय देखकर अपनी शक्ति यश और शरीर को छिपाकर रहना पडा। शिष्ट मति वाले पुरुष समय को देखते हैं। अत अपनी बुद्धि से मनोरथ का चिंतन करिये (अर्थात इस प्रकार से सयोगिता प्राप्त नहीं होगी)। इस विषम-कलह क्रीडा से तुम्हे प्रेम हो गया है। सो किसी भी प्रकार नहीं मिटने का है (अर्थात् कलह क्रीडा होकर ही रहेगी)।

दोहा

मानि राज रस रीस मन, चिंति उदै प्रथु दुत्ति।
सो जागी श्रोतान जल, मन भौ कदउ खत्ति ॥२१८॥

प्रा० पा० १, का० पा०।

शब्दार्थः—रस=प्रेम। रीस=क्रोध। कदउ=कंदरा।

अर्थः—कवि की वात को राजा ने स्वीकार किया और क्रोध को (जयचद के प्रति जो कोप था उसको) मन में रख लिया, किन्तु उसी पृथ्वीराज के मन का दूसरा उद्देश्य सयोगिता के श्रोतानुराग की पूर्ति का भी था, जिसका चिंतन करते ही उसकी क्रोधाग्नि अधिक प्रज्ज्वलित हो गई, और इसीलिये उसका मन सिंह तुल्य वीर क्षत्रिय जयचन्द की कन्दरा में प्रवेश करने के लिये अग्रसर हुआ (जिसके परिणाम स्वरूप आगे बढे)।

कवित्त

करनि कनक मय दंड, परम उद्दंड चंड बल।
दिग्घ देह सुंदर समत्थ, अति सुमति सु न्रिम्मल॥
प्रति नर प्रीति प्रसन्न परम सपन्न सद्व ंग।
अवर भूप पिक्खत नयन्न, परसाद लग्गिनग॥
सु कल+भ कलपतरु वाग जिम, पुन्य पुंज पुज्जिय सु भुव।
प्रतिहार राज दरबार महि, दिखि चंदाय नमित्त हुअ ॥२१९॥

शब्दार्थः—चंड=प्रचंड। सम्पन्न=सम्पन्न। कलभ=हाथी के बच्चे, गजशावक। वाग=बाग, बगीचा। पुज्जिय=पूजनीय। नमित्त=नमें, प्रणाम किया।

अर्थः—जिनके हाथों मे स्वर्ण दंड सुशोभित थे, जो अति उद्दंड, प्रचंड बलशाली, दीर्घकाय, सुन्दर, समर्थ और निर्मल मतिवाले, प्रत्येक व्यक्ति से प्रेम रखने वाले,

प्रसन्न चित्त, संसार में सम्पन्न कहे जाने वाले थे, जो अन्य राजाओं को आते हुए देखकर हर्ष पूर्ण नैत्रों से उनके चरणों का स्पर्श (प्रणाम) करने वाले थे, जिनका देह-गठन गज-शावक के समान था, जो कल्प वृक्ष के समान उदार मना, पुन्य के पुञ्ज और समस्त ससार द्वारा पूजनीय थे, उन जयचद के दरबारी प्रतिहारों ने चदवरदाई को आया देखकर सिर झुका लिया (प्रणाम किया)।

श्लोक

मग्गवान् विवर्त किं, संधिवान् किं विग्रहात् ।
जुद्धवान् पंग राएन, ना भूतो न भविष्यति ॥२२०॥

शब्दार्थः—मग्गवान्=पथिक। विवर्त=विवरण, विस्तृत वर्णन (उद्देश्य)।

अर्थः—हे पथिक (कवि)! आपका उद्देश्य क्या है? आप संधि कराने वाले हैं या विग्रह कराने वाले? इन दोनों में से आप जो कुछ भी हों हमें इसकी परवाह नहीं, क्योंकि पंगु नरेश रण दक्ष हैं ऐसा वीर न तो हुआ है और न भविष्य में होगा ही।

दोहा

वैरी काटन राज वच, डंड भरन परधान ।
सेवा मानन भेदिय न, हिंदू मूसलमान ॥२२१॥

शब्दार्थः—वैरी=शत्रु। काटन=नष्ट करने। भेदिय न=भेद नहीं।

अर्थः—यहाँ राजा की आज्ञा शत्रु को नष्ट कर देने की और प्रधान की आज्ञा उनसे दण्ड वसूल करने की होती है। चाहे हिन्दू हो या मुसलमान, सबसे सेवा एक ही प्रकार से ग्रहण की जाती है, दोनों मे कोई भेद नहीं होता।

असतिनि वुल्लहु[१] हेजमन, ग्रब्ब करहु जिम आलि ।
जु कछु समर वित्तें रनह, इह देखहु तुम काल्हि ॥२२२॥

मा० पा० १ पा०।

शब्दार्थः—असतिनि=असत्य नहीं। आलि=व्यर्थ। काल्हि=कल।

अर्थः—चन्द बोला—हे हेजम (अश्वारोही) प्रतिहार! तुम असत्य बातें मत कहो और न गर्व ही करो, क्योंकि तुम कल (कुछ ही दिनों में) देखना कि युद्ध होने पर तुम पर क्या बीतती है (क्या दशा होती है)?

आदर करि आसन दियौ, पोलिक पंग नरिंद ।
छिनक विलवहु सुहित करि, जव लगि कहौं कविंद ॥२२३॥
मा० पा० १ पा० का० ।

शब्दार्थः—पोलिक=प्रतिहार ।

अर्थः—यह सुन कर पगुराज के प्रतिहार ने कवि को आदर पूर्वक आसन दिया और कहा— हे कविचद ! आप कुछ समय के लिए प्रतीक्षा (विश्राम) कीजिये, जव तक मैं राजा से जाकर आपके आगमन का निवेदन करदूं ।

पग दरस जच्चन मिसह, कै मोकलिग वसीठ ।
कै मिलि खह मंडल त्रपति, राज राजसू दीठ ॥२२४॥

शब्दार्थः—जच्चन=याचन । मिसह=वहाने । वसीठ=दूत । खह मडल त्रपति=आकाश का अधिपति, स्वर्गाधिपति, इन्द्र ।

अर्थः—प्रतिहार फिर वोला-हे कवि ! तुम अपने साथियों सहित पगुराज के दर्शन और याचना के वहाने दूत वनाकर भेजे गये हो या हमारे राजा के राजसूय यज्ञ को देखने के लिए आकाश मडल (स्वर्ग) के अधिपति (इन्द्र) सहित यहाँ उतर पडे हो ? (चतुर द्वारपाल ने कवि के साथ सेवक रूप मे पृथ्वीराज था, उसे शङ्का की दृष्टि से देखते हुए इन्द्र रूप कहा) ।

कवित्त

तू मगन कवि चद, सथ्थ मगन नन होइय ।
तौ दिक्खत तिय थान, इन्द्र भुल्लिय द्रग जोइय ॥
एह कपट कवि हम्यौ, नयन दिग्गियै निनारे ।
त्रपन होइ दरवार, भूत भय छद विचारै ॥
दरवार कहिव विरम्यौ त्ररति, भट समुह रख्यौ न दर ।
तुम राजनीत जानहु सकल, हुकम विना रख्यौ न वर ॥२२५॥
मा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—मगन=मागने वाला । तिय थान=तीनों लोक । निनारे=दूसरी ओर ।

अर्थः—हे कविचन्द ! तुम याचना करने वाले हो पर तुम्हारे साथी याचक नहीं दिखाई देते । तुम्हारे आडम्बर को देखकर तीनों लोक और स्वय इन्द्र भी अपने आप

को भूल जाते हैं। यह सुन कर नेत्रों को दूसरी ओर करके कवि कपट की हँसी हँसने लगा। तब प्रतिहार ने कहा-राज्य दरबारों में पहले से ही भयप्रद विषय पर विचार कर लेना आवश्यक है। उस समय कविचन्द और छद्म वेशधारी राजा पृथ्वीराज वहीं ठहर गये और अन्य सामन्तों को राजद्वार से अलग हटा दिया। यह देख कर प्रतिहार ने कहा-तुम वास्तव में राजनीति के ज्ञाता हो, क्योंकि तुमने राजाज्ञा के पूर्व ही अपने साथियों को यहाँ से अलग हटा दिया है।

दोहा

तहाँ विरम कीनीं सु कबि, सब सामत वहोरि।
चन्द फेरि दच्छिन दिसा, भर उभ्भै बरजोरि ॥२२६॥

प्रा० पा० १ पा० का०।

शब्दार्थः—वहोरि=लौटा दिये।

अर्थः—प्रतिहार के कहने पर कवि चद तो वहीं ठहर गया, किन्तु उसने सामंतों को दक्षिण दिशा की ओर, जहाँ उनके अन्य सबल सामंत डटे हुए थे, भेज दिया।

आदर करि हेजम कविहि, गयौ जहाँ नृपति नरिंद।
दिल्लिय पति चहुआन कौ, कह असीस कविचन्द ॥२२७॥

शब्दार्थः—असीस=आशीष।

अर्थः—कवि का आदर सत्कार करके प्रतिहारों का मुखिया हेजम (अश्वारोही), राजाओं के राजा जयचन्द के सम्मुख पहुँचा और कहा कि दिल्लीश्वर चौहान पृथ्वीराज के वरदाई कवि चन्द ने आशीर्वाद निवेदन किया है।

सीस नाथि बुल्लौ वयन, औसर पग रजेस।
कवि जौ जुग्गिनि पुर कहै, संपत्तौ द्वारेस ॥२२८॥

शब्दार्थः—औसर=अवसर। द्वारेस=द्वार पर।

अर्थः—नतमस्तक होकर एव अवसर देख कर हेजम (अश्वारोही) ने पुनः निवेदन किया कि जो व्यक्ति दिल्ली में कवि कहा जाता है, वह द्वार पर उपस्थित हुआ है।

कवि सरस बानी सरस, कीत्ती रूप प्रमान ।
चद बत्त हर बिदुष जन, गोपथिती समान ॥२२६॥

शब्दार्थः—सरस=श्रेष्ठ । बिदुष जन=विद्वत् जन । गोपथिती=गोप्य, व्यङ्गयात्मक ।

अर्थः— वयं कवि और उसकी वाणी सरस है और वह कवि यश स्वरूपी दिखाई पडता है । उसकी प्रत्येक बात विद्वत जन की सी है और उसके अक्षुण्ण भाव गोप्य (व्यङ्गायात्मक) हैं ।

गुन आगम समद जौ, उक्कति लहरि तरग ।
जुगति[1] कवित्त मजाद ज्यौ, रतन वच्च पखरग[2] ॥२३०॥

प्रा० पा० १ घ०। २ पा० ।

शब्दार्थः—आगम=शास्त्र । उक्कति=युक्ति । पखरंग=प्रखर ।

अर्थः—वह (गुण संग्रह के कारण) गुणों का समुद्र है । उसकी सुउक्तियाँ ही उनमें लहरों के समान हैं. कविता कामिनी ही मर्यादा और (हृदय मे प्रवेश करने तुल्य) प्रखर वाक्य ही रत्न हैं ।

समिय अगुनि प्रगास ज्यौ, गत्ति जुगत्ति बिचार ।
सुक्ख नरेस निधान धन, अनु अर्जुन भर वार ॥२३१॥

शब्दार्थ—समिय=समिधा । अगुनि=अग्नि । प्रगास=प्रकाश । अनु=अन्य के लिये ।

अर्थः—उसकी काव्य मे गति और उक्ति विचार की प्रतिभा समिधाग्नि के प्रकाश तुल्य है । वह आश्रय दाता नरेश्वर के लिए सुख प्रद और सम्पत्ति तुल्य एव अन्य (शत्रुओं) के लिए उसके शर-वाक्य वीर वर अर्जुन के (शर-प्रहार के) अनुरूप है ।

गुन विरूयौ नरूखे धनी, तोन प्रकारय कित्त ।
सरसे सर उतकठ कर, मदवह तन कवि दित्त ॥२३२॥

शब्दार्थः—गुन=डोरी । तोन=भाथा । सरसे=सरसता । मदवह=गर्व ।

अर्थः—वह गुण (डोरी) से कसी हुई प्रत्यचा वाला अक्षय धन्वी है । कीर्ति वाक्य ही उसका तरकस है, सरसता ही उसका शर समूह है और अभिलाषा ही उसके हाथ है । उससे गर्व करने वाला कवि दलित हो जाता है ।

आडम्बर बर भट्ट वहु, भर वर सथ्थ कविंद ।
तव रुक्यौ दरबार में, सग रक्खि कबि चंद ॥२३३॥

शब्दार्थः—वहु = वह । बर = श्रेष्ठ । सथ्थ = साथ में ।

अर्थः—हे नरेन्द्र ! वह वंदीजन (चन्द) श्रेष्ठ आडम्बर युक्त है और उसके साथ अनेकों वीर योद्धा हैं। इसी से शकित होकर मैंने उसके साथियों को हटाकर केवल उसे ही यहाँ रख लिया है।

बयन सुन्यौ रघुवंस कौ, भय सुभ सुभहि नरिंद ।
तिन्न दसौंधिय सौं कह्यौ, बोलि परख्खहु चंद ॥२३४॥

शब्दार्थः—सुभ = शुभ, प्रसन्नता । सुभहि = सभा को । दसौंधिय = वंदीराज । परख्खहु=परीक्षा ।

अर्थः—उस प्रतिहार रघुवशी हेजम के वचन सुनकर राजा सहित सारी सभा को प्रसन्नता हुई। तब जयचद ने अपने वंदीराज से कहा— तुम जाकर चंद से वार्तालाप कर उसकी परीक्षा करो ।

कवियन तन चाह्यौ न्रपति, जो मुखतकौ न जान ।
जौ लाइक लख्खौ लखन, तौ आनह इन थान ॥२३५॥

शब्दार्थः—चाह्यौ = चाहा । मुखतकौ = प्रत्येक का द्वार देखने वाला । लाइक = लायक । लख्खौ-लखन = लक्षणों से युक्त देखो ।

अर्थः—उस कवि से साक्षात्कार (भेंट) करना चाह कर राजा ने अपने वदीराज से यह भी कहा— यदि वह द्वार-द्वार पर भटकने वाला नहीं हो और योग्य लक्षणों से युक्त हो तो उसे मेरे सम्मुख उपस्थित करो।

क्यों मुक्यौ प्रथिराज वर, क्यों ढिल्ली पुर छेह ।
जंपि कहौ कवि चंद तत, तुम कुसलत्तन गेह ॥२३६॥

शब्दार्थः—मुक्यौ=छोड़ा । छेह=उदास । जंपि=जाकर ।

अर्थः—जयचद के वदीराज ने चन्द के पास जाकर कहा- हे कविचद ! बताओ, तुमने श्रेष्ठ पृथ्वीराज को क्यों छोडा और दिल्ली से उदासीन क्यों हुए ? तुम्हारे घर पर सब कुशल-क्षेम तो है ।

गाथा

दीसै विविह चरिय, जानिज्जै सज्जन दुज्जन ।
आपानच कलिज्जै, हिंडिज्जै तेन पुहवीएं ॥२३७॥

शब्दार्थ:—विविह=विविध । चरिय=चरित्र । आपानच=अपने को । कलिज्जै=करिये । हिंडिज्जै=भ्रमण करना ।

अर्थ—कविचद ने कहा- विविध चरित्र और सज्जन-दुर्जन की जानकारी के योग्य अपने को बनाने के लिए पृथ्वी पर भ्रमण करना चाहिए (इस उद्देश्य से ही मैं यहाँ आया हूँ)।

दोहा

जिन मानो चहुआन भौ, (सु) लाइ जालई भट्ट ।
देखि म्रव्व सुरपति गरै, पग दरसि सो थट्ट ॥२३८॥

शब्दा:र्थ—जालई=जलन, ईर्ष्या । गरै=नष्ट होना । थट्ट=वैभव ।

अर्थ:—तुम अपने मन में यह मत समझो कि मुझे पृथ्वीराज से ईर्ष्या हो गई है । मैं तो जिसको देखने से इन्द्र का गर्व भी नष्ट हो जाता है, उस पगुराज के वैभव को देखने आया हूँ ।

जगत समुद्दय कार जल, खग्ग सीस चहुआन ।
इह अचिज्ज वर भट्ट सुनि. तुच्छ निड्डुर समान ॥२३९॥

शब्दार्थ:—समुद्दय=समुद्र । कार=रक्षा, सीमा । तुच्छ=तुच्छ प्राणी निड्डुर=निडर, निर्भय ।

अर्थ:—जिस प्रकार ससार (पृथ्वी) को समुद्र का जल सुरक्षित रखता है उसी प्रकार शत्रुओं के सिर पर चौहान की तलवार है (अर्थात् वह भारत मे विदेशी शत्रुओं को प्रविष्ट नहीं होने देता)। हे श्रेष्ठ वदीराज ! तुमको यह सुन कर आश्चर्य होगा, किन्तु यह सत्य है कि उसकी तलवार के बल पर ही तुच्छ प्राणी निर्भय और सम्मानित है ।

दीन वचन लहु करि कहाँ, कविन करौ मन मद ।
जै सरसै घर कछु हुए, तौ वरनौ जयचन्द ॥२४०॥

शब्दार्थ:—दीन=तुच्छ । लहु करि=नम्रता पूर्वक । मद=उदास ।

करने के तरीके) विस्तृत करने वाले होते हुए भी क्यों कभी मुझे और कभी पृथ्वीराज को श्रेष्ठ कहते हो।

श्लेष में कहा-जगलराव (पृथ्वीराज) की उजाड़ भूमि (मावन शून्य) जिसमें जानवरों के चरने की सुविधा होते और तुच्छ काय (छोटे कद का) होते हुए भी बैल का मुँह क्यों नहीं चलता और कृष काय क्यों है ?

कवित्त

चढि तुरग चहुआन, आन फेरीत परद्धर ।
तास जुद्ध मडयौ, जास जानयौ सवर वर ॥
कोइक तकि गहि पात, कोइ गहि डार मूर तर ।
केइत दंत तुछ त्रिन्न, गए दस दिसनि भाजि डर ॥
भुअ लोक तदिन अचिरिज भयौ, मान सवर वर मरदिया ।
प्रथिराज खलन खद्धौ जु खर, यों दुब्बरौ वरद्दिया ॥२६२॥

शब्दार्थः—आन=दुहाई । फेरीत=फिरा दी । सत्रर=सबल । पान=पत्ते । डार=डालियाँ । मूर=मूल । तर=वृक्ष । दत=दाँत । त्रिन्न=तृण, घास । भाजि=भाग गये । अचिरिज=आश्चर्य । मरदिया=मर्दन किया । खलन खद्धौ=शत्रु चर गये, शत्रु नाशक । जु खर=उस घास को, वह तेरे पर चढाई करता रहता है । दुब्बरौ=दुबला, दो की प्रशसा करने वाला । बरद्दिया=बिरदाई, बेला ।

अर्थः—पगुराज के व्यग का (उसको श्लेष में बैल कहा जिसका) उत्तर कवि ने दिया, हे पगुराज ! हमारे चौहान राजा पृथ्वीराज ने अश्वारूढ होकर अन्य नरेश्वरों की सीमा में अपनी दुहाई फेरदी है और जिसे सबल और श्रेष्ठ समझा उसी से उसने लोहा लिया है। उसके आतक से अनेकों ने मुँह मे पत्ते लिए और बहुतों ने वृक्ष की डालियाँ तथा जड तक को मुँह मे ले लिया है। अनेकों ने दातों से तृण ग्रहण किया और कई उसके भय से आतकित हो दसों दिशाओं में भाग गये। इस प्रकार सभी ओर के वीरों का उसने मान-मर्दन कर दिया है । यह देखकर संसार आश्चर्यान्वित हो गया है। पृथ्वीराज के शत्रुओं ने पशुओं के खाद्य को समाप्त कर दिया है इसीलिए बैल दुर्बल है। इससे जयचन्द को यह व्यग सुनाया कि तुम जैसों ने पृथ्वीराज के सामने घास पत्ते आदि मुँह में ले लिये हैं।

श्लेष में अतिम चरण में जयचद की भी प्रशंसा की कि-ऐसा शत्रु नाशक जो पृथ्वीराज है वह तुझे अपने समान ही वीर समझता है इसी से मैं तेरी और उसकी प्रशसा करता हूँ ।

कवित्त

हस न्याय दुब्बरौ, मुत्ति लभ्भै न चुनतह ।
सिंघ न्याय दुब्बरौ, करी चपे न कठ कह ॥
म्रग न्याय दुब्बरौ, नाद वधियै सु बधन ।
छैल छक्क दुब्बरौ, त्रिया दुब्बरी मीत मन ॥
आसाढ़ गाढ बधन धुरा, एकहि गहि ह हरहिया ।
जंगर जुरारि उज्जर खर न, क्यों दुब्बरो बरहिया ॥२६३॥

शब्दार्थः—चुनतह = चुगने । चपे = दबाना । कठ कह = कुम्भस्थल । नाद=स्वर, आवाज । छैल चक्क = छैल छबीला पुरुष । त्रिया = स्त्री । मीत मन=प्यारे के मन की बात । आसाढ-गाढ-बंधन-धुरा = आषाढ की घटा छाने पर धुरा में नहीं जोता गया, आषाढ के बादलों के समान सेना को सजाने वाला ।

अर्थः—पगुराज बोला— हस के दुबले होने का कारण चुगने के लिये मोतियों का नहीं मिलना, सिंह के दुबले होने का कारण पञ्जों से हाथियों के कुम्भ स्थलों को नहीं दबाना, मृग के दुबले होने का कारण मधुर स्वर के वश मे होकर बन्धन मे पडना, छैल छबीले पुरुष के दुबले होने का कारण विशेष स्त्री लपट होना, स्त्री के दुबले पन का कारण प्यारे के मन की बात नहीं जानना आदि बातें तो न्याय सगत है, लेकिन आषाढ मास मे घनघोर घटा छा जाने पर कभी पृथ्वी को जोतने के लिये वृषभ के कधे पर हल नहीं रखा गया एव बहुत ही पुराने घास से परि पूरित जगल मे रहते हुए भी वह दुबला क्यों है ?

श्लेष मे--आषाढ के धुरवा (बादल) के समान सेना सजाने वाला जो जगलेश्वर (पृथ्वीराज) युद्ध मे बे रोक टोक बढने वाला है उस एक ही बार को हृदय मे स्थान देने वाला विरदाई (कवि चन्द) दूसरे की प्रशसा क्यो करता है ।

पुरै न लग्गी आरि, मारि लग्गी न पित्र पर ।
गज्जनवार गमार गही गद्दी न नथ्थ कर ॥

भ्रम्यौ न कूप भावरी, कवहुँ रस पत्ति न रुत्तौ ।
पंच धार ललकारि, रथ्थ सथ्था नह जुत्तौ ॥
आसाढ मास वरखा समै, कंध न कहों हरद्दिया ।
कमधज्ज राव इम उच्चरै, सु क्यों दुब्बरौ वरद्दिया ॥२६४॥

शब्दार्थः—पुरै=पुरानी । आरि=लकड़ी में लगी हुई कील । लधौं=लादा, भार वहन किया । पिट्ठ=पीठ । गज्जवार=ललकारने वाला, चलाने वाला गवार=मूर्ख । नथ्थ=नाथ । भम्यौ=भ्रमा, घूमा । रस पत्ति=जल प्रवाहित कर रुत्तौ=रुदन ध्वनि कर । रथ्थ सथ्थ=रथ में जुता जाकर । वरखा=वर्षा । आसाढ-मास-वरखा-समै=आषाढी बादलों के छाने पर, सेना के बढने पर । कंध=कथा । कहो=कभी भी । हरद्दिया=हल में जुता, शिव को समर्पित किया ।

अर्थः—पुरानी आरी (लकड़ी के मुँह पर लगी हुई कील) भी जिसके नहीं लगी है, पीठ पर जिसने भार वहन नहीं किया है, उसे चलाने वाला भी मूर्ख है । जिसने उसको नाथ हाथ में नहीं पकड़ रक्खी है, जो जुता जाकर गोल चक्कर में घूमता और जल प्रवाहित कराता हुआ अरहट की रुदन-ध्वनि नहीं कराया या पूँछ पकड़वा कर ललकार सहता हुआ जो रथ में भी नहीं जुता है, वर्षा के आरम्भ (आषाढ) में जिसके कधों पर कभी हल नहीं रक्खा गया है, ऐसे वृषभ के लिये पंगुराज ने कहा—फिर वह क्यों दुर्बल है ?

श्लेष में—आषाढी बादलों के समान उमड़ती हुई सेना में उस पृथ्वीराज का स्कध (मुंड) किसी शत्रु के द्वारा शिव को समर्पित नहीं हुआ है, फिर हे विरदाई ! तुम दूसरे की प्रशसा कैसे करते हो (अब तक तुम्हारा स्वामी पृथ्वीराज अभग वीर है, ऐसा होते हुए तुम्हारा दूसरे की प्रशसा करना उचित नहीं) ।

फुनि जपै कविचद, सुनौ जैचंद राज वर ।
पुरै आर किम सहै, भार किम महै पिट्ठ पर ॥
नथ्थ हथ्थ किम महै, कूप, भाँवरि किम मढै ।
है गै सुर वर सुधर, स्वामि रथ भारथ तढै ॥
वरखा समान चहुआन कै, अरि उर वरह हरद्दिया ।
प्रथिराज खलनि खद्धौ सु खर, (सु) इम दुब्बरौ वरद्दिया ॥२६५॥

शब्दार्थः—फुनि=पुन. । जपै=कहा । आर=लकड़ी में लगी हुई कील (आरी) । सहै=सहन करे । नथ=नाथ, नाक में लगी हुई रस्सी । कूप=अरहट्ठ । भांवरि=गोल चक्कर में घूमना, अरहट्ठ के चारों ओर घूमना । वरह=जलन । हरहिया=हर एक के, प्रत्येक के ।

अर्थः—कवि चद ने पंगुराज की इन बातों का उत्तर इस प्रकार दिया—हे श्रेष्ठ नरेश्वर जयचद ! लकड़ी और लकड़ी मे लगी हुई लोह कील का आघात क्यों सहे, पीठ पर भार भी कैसे वहन करे, नाथ (नाक मे लगी हुई रस्सी) को भी कोईकैसे ग्रहण करे,अरहट के चक्र मे भॉवरी क्या दे और सुश्रेष्ठ देव-तुल्य भूमि भी हाथी घोडे बहुत से हैं, अत रथ मे भी क्यों जोताजाय ? वह तो स्वामी की अर्थ-सिद्धि के लिये युद्ध मे डकारता हुआ ही सुशोभित होता है । वर्षा रूपी चाहुवान की वाण वृष्टि के समय वह प्रत्येक शत्रु के हृदय में जलन पैदा करने वाला है । उस बैल की दुर्बलता का कारण केवल पृथ्वीराज के शत्रुओं का तृण चबाना है ।

श्लेप में—वर्षा तुल्य जो राजा पृथ्वीराज है, वह प्रत्येक शत्रु के हृदय में जलन पैदा करने वाला है, ऐसा वह शत्रु-नाशक तुम पर चढाई करता रहता है । अत तुमही उसके समान वीर हो । मैं (विरदाई) तुम्हारी भी प्रशसा करता हूँ ।

दोहा

कितक सूर सभरि धनी, कितक देस दल वधि ।
कितक हथ्थ रन अगगरौ, हँसि नृप बूझ्यौ चद ॥२६६॥

शब्दार्थः—सूर=शूरवीर । दल वधि =पक्ति बद्ध । रन अग्गरौ=युद्ध स्थल मे किस प्रकार आगे बढ़ने वाला ।

अर्थः—पगुराज हँसकर पूछने लगा—हे कवीश्वर । सभर पति कैसा बहादुर है, उसके देश मे पक्ति बद्ध कितनी सेना है, तथा युद्ध स्थल में उसके हाथ किस प्रकार आगे बढते है ? इसका परिचय हमें दो ।

कवित्त

कितक सूर सभरि नरेस, अदेस कहत करि ।
कितक देस वल वधि, राव रावत्त छत्रधर ॥
कितक कोस मे गल मदव, तोखार भार भर ।
कितइक गहि करिवार, कजह विदारि वीर भर ॥

कितइक्क मौज विदरन बहत, अति पर आगम जानियै ।
उग्गौ न अरक तित्तह लगैं, तिमिर तितें बल मानियै ॥२६७॥

शब्दार्थ:—कितक=कितने । अंदेस=सशंकित होकर । वलबधि=शक्तिशाली । राव रावत्त=रावत तथा राजागण । मैंगल मद्ध=मद मस्त हाथी । तोखार=घोड़े । मार=मारी, बड़े, उन्नत काय । मर=भिड़ने वाले, युद्ध में काम आने योग्य । करिंवार=वार करते हुए । मौज=आनन्द, उत्साह । वहत=बढता है । तित्तह=तब तक । तिमिर=अंधकार । बल=प्रभाव, शक्ति ।

अर्थ:—चंदने कहा-हे पगुराज ! सशंकित होकर आपका यह प्रश्न करना कि-संभरी नरेश कैसा बहादुर है ? उसका देश कैसा शक्ति युक्त है ? मदमस्त हाथी कितने हैं ? युद्ध में काम आने योग्य उन्नत घोड़े कितने हैं ? वीरता के साथ युद्ध में वार करते हुए कितने वीरों को उसने पकड़ा और कितने वीरों का नाश किया है ? विपत्तियों के आगमन पर वह उत्साह पूर्वक उन्हें विदीर्ण करने को कैसे बढ़ता है ? इत्यादि प्रश्नों का उत्तर इतने ही शब्दों में है कि जब तक सूर्य उदय नहीं होता तब तक ही अँधेरे का प्रभाव रहता है (अर्थात् सूर्य-स्वरूपी पृथ्वीराज के सामने आते ही अँधेरे रूपी शत्रु-शक्ति का नाश हो जाता है) ।

दोहा

सूर जिसौ गयनह उवै, दल बल मारन आस ।
जब लग अरि कर उठ्ठवै, तब लग देय पचास ॥२६८॥

शब्दार्थ:—गयनह=गगन मंडल । उवै=उदय । दल वल=शत्रु दल को । मारन=मारने की । अरिकर=शत्रु का हाथ । उठ्ठवै=उठता है ।

अर्थ:—वह वीर ऐसा है जैसा गगन-मडल में सूर्योदय होता है । उससे ही शत्रु-के दमन की आशा है । शत्रु का हाथ आघात करने के लिये ही उठता है, तब तक वह पचास आघात कर देता है ।

कवित्त

सूर तेज चहुआन, हनत गज कुंभ म्मार खग ।
विय विहड होइ खड, परत धर रत्त धार जग ॥
दल बल वरै न आस, तेज आजानबाह वर ।
सपत नाग सर पार, तार कोवड तजै कर ॥

मत्तै दुरद्द रद सद्द वर, पारि झारि मथ्थै धरनि ।
विसगी विकार उख्खारि पटु, मालकार नखे करनि ॥२६६॥

शब्दार्थः—हनत=हनन, नष्ट करना। विहड=कट २ कर। परत=गिरते है। धर=पृथ्वी। रत्त=रक्त। धार=धारा। सपत नाग=सात हाथी। मत्तै=मदमस्त। दुरद=हाथी। पारि झारि=झकझोर कर पटक देता है। विसगी=विषम। उख्खारि=उखाड़ने वाला। मालकार=माला बनाकर। नखे करनि=हाथों से पहनाता।

अर्थः—चाहुवान राजा का तेज सूर्य के समान है, वह तलवार चलाकर हाथियों के कुंभस्थलों को नष्ट कर देता है तथा उसके वार से हाथियों के भ्रसुंड कट २ कर खण्ड २ हो जाते हैं जिससे रक्त की धारा पृथ्वीपर बहने लगजाती है। शत्रु-दल विजयी होने की आशा नहीं करता। वह आजानबाहु श्रेष्ठ कांति वाला वीर है। जब वह धनुष की प्रत्यचा पर बाण चढ़ाकर हाथों से छोड़ता है तो सात २ हाथियों को एक साथ वेध देता है। वह ललकार करता हुआ मदमस्त हाथियों के दांतों को पकड़ उन्हें झकझोर कर पृथ्वी पर पछाड़ देता है। शत्रुओं के विषम विकारों को नष्ट करने वाला वह चतुर वीर (मुंड) माला बनाकर (भगवान शङ्कर के गले में) अपने हाथों से पहना देता है।

दोहा

विहसत कवि बुल्ल्यो बयन, इह लच्छन छिति है न ।
सूअ सु मूरति लच्छिनह, को दिखवों पहु नैंन ॥२७०॥

शब्दार्थः—विहसत=मुस्कराता हुआ। लच्छन=लक्षण। छिति=पृथ्वी पर। सूअ=वैसी।

अर्थः—फिर मुस्कुराता हुआ कवि बोला-ऐसे लक्षणों से युक्त कोई भी राजा पृथ्वीपर मुझे नहीं दिखाई देता। वैसी सुलक्षण युक्त मूर्ति हे पगुराज! तुझे मैं प्रत्यक्ष मे कैसे दिखा सकता हूँ ?

मुकट बंध सब भूप हैं, सब लच्छिन सजुत्त ।
कौन बरन उनहार किहि, कहि चहुआन सु अत्त ॥२७१॥

शब्दार्थः—मुकट बंध=मुकुट धारी। सजुत्त=संयुक्त। बरन=वर्ण। उनहार=उनिहारा, चेहरा।

अर्थः—जयचंद बोला—मेरी सभा में सब मुकुट-धारी राजा हैं तथा सभी सुलक्षणों से युक्त हैं। तेरे राजा चाहुवान का कैसा वर्ण है तथा आकृति किस

से मिलती है ? हे कवि ! उसे तुम कहो (चंद सत्यवक्ता था, इसीलिये जयचंद ने ऐसा प्रश्न किया ।

कवित्त

वत्तीसह लच्छिनह बरस छत्तीस मास छह ।
इम[1] दुज्जन संग्रहत, राह जिम[2] चद सूर ग्रह ॥
एक छुटहि महि दान, एक छुट्टहिति दंड भरि ।
एक गहहि गिर कंद, एक अनुसरहि चरन परि ॥
चहुआन चतुर चावद्दिसहि, हिंदवान सब हथ्थ जिहि ।
इम जंपै चंद वरद्दिया, प्रथीराज उनहारि इहि ॥२७२॥
प्रा० पा० १ पा० का० घ० । २ का० घ० ।

शब्दार्थः—लच्छिनह=लक्षण । बरस=वर्ष । दुज्जन=दुर्जन । सग्रहत=पकड़ लेता है । राह=राहु । सूर=सूर्य । छुटहि=छूटते हैं । इम=इस प्रकार । जिम=जैसे । महि=पृथ्वी गहहि=जाकर । गिर=गिरि । कंद=कदरा । चरन परि=चरणों में झुककर ।

अर्थः— कवि ने जयचन्द से पृथ्वीराज के सम्बन्ध में कहा—कि वह श्रेष्ठ वत्तीस ही सुलक्षणों से युक्त है और इस समय उसकी छत्तीस वर्ष तथा छः मास की आयु है । वह शत्रु को इस प्रकार पकड़ लेताहै जैसे राहु सूर्य, और चद्र को । उससे कोई तो पृथ्वी भेंट कर, कोई दड देकर, कोई पर्वतों की कदराओं में छिपकर, कोई चरणों में पड़ कर, छुटकारा पाते हैं । उस चतुर चाहुवान ने भारत की चारों दिशाओं को अपने हाथ में कर ली है । ऐसो पृथ्वीराज की आकृति है (यहा कवि ने कविता के भाव को प्रगट करने के वहाने अपने हाथ को उठा कर पृथ्वीराज की ओर सकेत करते हुए अतिम पद्य "प्रथोराज उनिहारी इहि" कहा, इस प्रकार अपनी सत्यता का परिचय दिया) ।

इसौ राज प्रथिराज, जिसौ गोकुल महि कन्नह ।
इसौ राज प्रथिराज, जिसौ पथ्थर अहिवन्नह ॥
इसौ राज प्रथिराज, जिसौ अहॅकारिय रावन ।
इसौ राज प्रथिराज, राम रावन सतावन ॥
बरस तीस छह अगरो, लच्छिन सब सजुत्त गनि ।
इम जपै चद वरद्दिया, प्रथीरान उनहारि इनि ॥२७३॥

शब्दार्थ:—कन्नह=कृष्ण। पथ्थर-अहि-बन्नह=खाण्डिव वन को जलाने वाला पार्थ। अहँकारिय= अहकारी, अभिमानी। संतावन=सतानेवाला, नष्ट करनेवाला। वरस तीस छह अग्गौ=छत्तीस से ऊपर। संजुत=युक्त।

अर्थ:—कवि पूर्व सकेतानुसार जयचद से कहने लगा—पृथ्वीराज ऐसा है जैसाकि गोकुल मे कान्ह, खाण्डिव वन (जहॉ तक्षक नाग रहता था) को जलाने वाला पार्थ, अभिमानी लकापति और उसका नाश कर्ता राम था। इस समय उसकी आयु छत्तीस वर्ष से ऊपर है तथा सभी सुलक्षणों से युक्त एव उपर्युक्त आकृति के समान है।

दिक्खि नयन कमधज नरेस, अदेस वृद्धि वर।
दग दहन जीरन जरत, पर-चत अत-पर॥
श्रुत्ति अरुन मुख अरुन, नेन आरत्त पत्त सम।
पानि मींडि दवि अधर, दत दब्बत तेज तम॥
कविचंद बहुत बुल्लहु वयन, छित्ति अछित्ति खत्री कवन।
चल दल समान रसना चपल, विफल बाद मडौ मवन॥२७४॥

शब्दार्थ:—अदेस=आशका। दग=आग की चिनगारी, दगा। दहन=जलाना। जीरन=जीर्ण, पुरानी (लकड़ी)। जरत=जला देती है। पर-चत=चिंता मे पड़ गया। अत-पर=हृदय पटल पर। श्रुति=कान। आरत्त पत्त=अरुण कोंपलों के तुल्य। मींडि=मलता हुआ। दवि=दबाना। दब्बत= दबाना। तेज=जोर से। बुल्लहु=बोला। वयन=वचन। चल दल=पीपल के पत्ते। रसना=जिह्वा। विफल=व्यर्थ ही। बाद=वाद विवाद।

अर्थ:—कवि के सकेत से भ्रम मे पडकर कमधज राज सेवक स्वरूप राजा की ओर देख अधिक सशकित हुआ तथा जिस प्रकार जीर्ण लकड़ी को आग की चिनगारी जलाती है उसी प्रकार जयचन्द के अन्त करण मे चिन्ता ने स्थान प्राप्त कर लिया। शत्रु की प्रशसा सुन क्रोध के कारण उसके कान एव मुख लाल २ हो गये तथा नव कोंपलो के समान नैत्रों मे ललाई छा गई। पगुराज हाथ मलता हुआ ओष्ठ को दॉतों द्वारा जोर से दबाने लगे और तमोगुण के आवेश मे आकर वह कविचद से कहने लगा—तुम अपने स्वामी की बहुत ही प्रशसा करते हो लेकिन समस्त पृथ्वी पर मेरे समान अन्य कौन क्षत्रिय हो सकता है? तुम्हारी चपल जिह्वा चचल पीपल के पत्ते के समान है अत तुम मदान्ध होकर व्यर्थ ही वाद विवाद करते हो।

दोहा

देखि थवाइत थिर नयन, करि कनवज्ज नरिंद ।
नयन नयन अकुरि परिय, इक थह दोइ मयद ॥२७५॥

शब्दार्थः—थवाइत=ठहर कर । थिर=स्थिर । अकुरि=अकुरित, रोष पैदा हुआ । इक थह=एक स्थान पर । दोइ=दोनों । मयद=मदमस्त हाथी ।

अर्थः—यह कह कर कन्नौज पति पलकें रोक कर स्थिर दृष्टि से पुन. सेवक-रूप राजा की ओर देखने लगा, जिससे छद्म वेशी पृथ्वीराज और पगुराज के नैत्र मिल गये । उससे दोनों मे रोष अकुरित हुआ और ऐसा आभास होने लगा मानों एक ही स्थान पर दो मदमस्त हाथियों की भेंट हुई हो ।

कवित्त

दिख्खि नयन रा पग, दग चहुआन महा भर ।
अकुरि नयन विसाल, झाल झारंत रंच उर ॥
इक्क थार कठीर, पलन आकज्ज करत तमि ।
वर वारुनी समग्ग, मत्त मातग रोस जमि ॥
कमधज्जराज फिरि चद कहु, कहत वत्त समरधनिय ।
वर वर कवित्त कवि उच्चरिय, अव सुकित्ति कथ्थी घनिय ॥२७६॥

शब्दार्थः—झाल=ज्वाला । झारत=प्रज्ज्वलित । रच=तनिक । थार=थाहर, स्थान । कंठीर=सिंह । पलन=मांस । आकज्ज=झगड़ना । वारुनी=हस्तिनी । वर वर=वार वार । घनिय=बहुत ।

अर्थः—पगुराज, महान वीर चाहुवान को देख कर आश्चर्यान्वित हुआ और जो ज्वाला हृदय मे प्रज्ज्वलित थी वह तनिक सी विशाल नैत्रों में प्रकट हो गई, जिससे ऐसा दिखाई दिया मानों एक ही स्थान पर दो सिंह मांस के लिये झगड़ रहे हों या श्रेष्ठ हथिनी के लिये मतवाले हाथी क्रोध कर रहे हों । इस प्रकार एक दूसरे को क्रुद्ध दृष्टि से देखने के पश्चात् कमधजपति चंद की तरफ मुड कर बोला तुम सभरी पति की वात कहते हुए वार २ उसका उच्चारण कर कविता में खूब यश वर्णन कर चुके हो ।

दोहा

मत मतौ लहु मत कहि, नीतें नीति चढत ।
जिम जिम सैसव सो दुरै, तिम तिम मदन चढत ॥२७७॥

शब्दार्थः—मत मतौं=मतवाले पन के साथ मतवाला पन। न्त=मत्रणा। नीते नीति=न्याय के साथ न्याय। सैसव=शैशवावस्था। दुरैं=दूर हो जाती है।

अर्थः—फिर कवि चंद, कहने लगा.—हे पगुराज! मतवाले पन के साथ मतवाला पन और न्याय के साथ न्याय होना स्वाभाविक है। जैसे २ शैशवावस्था दूर होती है वैसे २ ही अभिमान (या कामदेव) बढ़ता जाता है (अत आप अपने मन मे ही सोच लीजिये कि किसमे छिछोर पन है और किसमें अभिमान विशेष है? यही कारण है कि आप और पृथ्वीराज मे प्रेम नहीं हो पा रहा है)।

जे त्रिनि पुरख रस परस त्रिनु, उठिग धाइ सुनिसान।
धवलग्ग्रह सपन्न करि, भट्टहि अप्पकौ पान ॥ ७८॥
प्रा० पा० दे० प्र० से।

शब्दार्थः—जे=जो। त्रिनि=स्त्रिया। पुरख=पुरुष। परस=स्पर्श। त्रिनु=अछूती। धाइ=धाय। धवलग्ग्रह=राज प्रासाद। अप्पको=अर्पित करो।

अर्थः—जो स्त्रिया पुरुष-सयोग के रस से अछूती थीं (राजाओं के अन्त पुर मे कुछ ऐसी अविवाहित बालाएँ होती थी जो कि उनके अन्त पुर के क्रीडा स्थल मे ही साथ रहती थी। सेविकाओं से उनका सम्मान अधिक रहता था, यही कारण है कि उन्हें अन्य "सखियाँ या सहेलियाँ" कहा जाता था) उनके पास धाय चुपचाप उठकर गई और कहा कि राज महल मे जाकर भट्ट कविचद को पान दो।

पांन गध रल्लिक जितौ, जुवन दासि परवीन।
काम छक्क छक्की नवल, बोलि इकट्ठी कीन ॥७७९॥

शब्दार्थः—जितौ=जितना। जुवन=युवा। परवीन=प्रवीण। काम छक्क=कामदेव रूपी वारुणी के नशे म जो चूर थीं।

अर्थः— धाय ने ताम्बूल मे सुगन्धित वस्तुएँ डाल कर जितनी प्रवीण नव यौवनाएँ (सहेलियाँ) थीं और जो काम देव रूपी वारुणी के नशे में चूर थीं, उन्हे बुला कर एकत्रित की।

नयन कुरग तरग तिन, नखनि मरारति वार।
टक अचल उद्धरि टरति, लचकति कुचकनि कुच कच भार ॥७८०॥

शब्दार्थः कुरग=मृग तरग=काम तरग। नखनि=नखों मे। कच=केश।

अर्थः—उन वालाओं के नैत्र हिरण के समान तथा काम तरंगों से तरंगित थे, वे अपने नाखूनों से वाल सँवारती तथा अँचलों को उघारती और ढ़ापती हुई थी। कुचों और केशों के भार से उनकी कटि लचक रही थी।

सुरत तरंगिनि नाव इक, परसि होत न्रप पार।
काम फंद भुव बंक हनि, मुरछ्यौ जगवति मार ॥२८१॥

शब्दार्थः—तरंगिनि=काम तरंगें। परसि—स्पर्श। फंद=पाश। बंक=बाँके। मुरछ्यौ=मूर्छित, मुरझाये हुए मन वाले। जगवति=जागृत कर देती। मार=काम देव।

अर्थः—वे श्रेष्ठ सहेलियाँ उठती हुई काम तरंगों के लिये नाव स्वरूपी थीं, जिन्हें स्पर्श कर राजा पार हो जाता था (अर्थात् राजा की कामेच्छा को सन्तुष्ट करने वाली थी) वे वक्रभ्रकुटी वाली काम पाश के सदृश थीं जो मुरझाये मन वालों में भी काम को जागृत कर देती थीं।

विगसित मुख चख कमल जनु, फरकत कुचरु कपोल।
वरसति अम्रित अग अँग, अधर रसन मधु वोल ॥२८२॥

शब्दार्थः—विगसित=विकसित। फरकत=फरकना, थिरकना। मधु=मधुर। वोल=बोल।

अर्थः—उन सखियों के मुख और चक्षु विकसित कमलवत् थे, उनके कुच तथा कपोल थिरक रहे थे, वे अपने अग प्रत्यग से अमृत वर्षा कर रही थी तथा अधरों से मधुरता और रसना से मधुर बोल बरस रहे थे।

अलस वलित ललिता ललित, इठलनि अँडति अैंड।
कोककला अवला सबल, जे रस सागर मैंड ॥२८३॥

शदार्थः—अलस=आलस्य। अैंडति अैंड=अगड़ाई लेती हुई। कोक कला=कामकला। सबल=सबल। मैंड=सीमा।

अर्थः—वे ललित ललिताएँ मादकता से परिपूर्ण और आलस्य से आवृत्त थीं। वे इठलाती और अँगड़ाई लेती हुई अबलाएँ थीं फिर भी कोक-कला में सबल थीं तथा रस-सिन्धु की सीमा के समान थीं।

हाइ भाइ दाइक दरस, परस जनम फल होत।
चपक कमल कि पखुरी, कदलि गर्भ अँग पोत ॥२८४॥

शब्दार्थः—हाइ माइ=हाव भाव। दाइक=लायक, योग्य। परस=स्पर्श।

अर्थः—जिनके हाव भाव देखने योग्य थे और जिनका स्पर्श जन्म-सफल करता था जिनके अंगों का वर्ण चम्पा या कमल पुष्प की पखुडी के समान था और शरीर पर धारण किया हुआ वस्त्र कदली-गर्भ के समान सुन्दर था।

तिनहि सग दासी रहै, करनाटी जिहि भंडि।
जीव रक्खि नट्ठी तदिन, पुर दिल्ली दर छंडि ॥२८५॥

शब्दार्थः—भंडि=अपवादिता। जीव रक्खि=प्राण रक्षार्थ। नट्ठी=भागकर। दर=द्वार। छंडि=छोड़कर।

अर्थः—उन दासियों के साथ वह कर्णाटी जो कयमास मंत्री के कारण निंदित हुई थी तथा प्राण-रक्षार्थ भाग कर दिल्ली छोडकर कन्नौज आगई थी।

मुकत केस तिहि कंध पट्टु, इह जंपै मुख राज।
विनु प्रथिराज न पुरख विय, जिहि ढंकौ सिरु लाज ॥२८६॥

शब्दार्थः—मुक्त केस=मुक्त केश। पुरख=पुरुष। विय=दूसरे का।

अर्थः—जिसके मुक्त केश कन्धों पर पडे रहते थे और वह चतुर सुन्दरी राजा पगुराज से यह कहती थी कि पृथ्वीराज के अतिरिक्त ससार मे अन्य कोई पुरुप नहीं है, जिसका कि मैं घू घट करू (अर्थात् उसकी प्रतिज्ञा थी कि पृथ्वीराज के अतिरिक्त किसी की भी लज्जा नहीं करेगी)।

पान पुहुप मादक करणि, जनु सुर अच्छरि अन्छि।
अमित सुगधु सु सथ्थलै, चली सुमन मन कन्छि ॥२८७॥

शब्दार्थः—पुहुप=पुष्प। मादक करणि=मादक वस्तुए हाथ में। अच्छरि=अप्सरा। अमित=अपार। मन कन्छि=मन को बाधने के लिये।

अर्थः—कर्णाटी, ताम्बुल, पुष्प और मादक वस्तुएँ हाथ मे लेकर तथा अपार सौरभ युक्त वस्तुएँ ले देव लोक की श्रेष्ठ अप्सरा के समान श्रेष्ठ मन वाले का मन बाँधने के लिये चली।

जगतपति दिग्वन नन्रि, दासी धाहरि रुपि।
गलित अग मति भग दो मकुचि सीम पट टपि ॥२८८॥

शब्दार्थः—थरहरि=थर्राकर । कंपि=कंपित । गलित=शिथिल ।

अर्थः—सभा में पहुँचते ही कर्णाटी ने जंगलेश्वर (पृथ्वीराज) को देखा और देखते ही वह थर्राकर कांप गई, उसके अंग शिथिल हो गये तथा मति कुन्ठित हो गई । उसने संकुचित हो वस्त्र से अपना मुख ढॅक लिया (घूंघट निकाल लिया) ।

सिरु ढकिरु सकुची तरुणि, सु विधि च्यति स्वामित्त ।
बहुरि सु जिमि तिम ही कियौ, लवन विचारिय हित्त ॥२८९॥

शब्दार्थः—ढकिरु=घूंघट निकाला । लवन=लवण ।

अर्थः—उस नव यौवना सुन्दरी ने संकुचित होकर घूंघट निकाला और स्वामी-धर्म एवं नमक का विचार कर पृथ्वीराज को प्रगट नहीं होने देने का तरीका सोचा और वैसा ही किया जिससे पृथ्वीराज के होने का जयचंद को ज्ञान नहीं हुआ (कहते है कि जयचन्द ने कर्णाटी से पूछा कि यहा पृथ्वीराज तो है नहीं फिर किसका घूंघट निकाला,उसका उत्तर कर्णाटी ने बड़ी चतुराई के साथ दिया कि जिस पृथ्वीराज को मैं अपना स्वामी मानती हूँ वह पृथ्वीराज कविचन्द को अपना गुरु समझता है अत: गुरु की लज्जा करना मेरा धर्म है) ।

एक कहै बेठै सुभट, इनह सथ्थ प्रथिराज ।
ए नृप जीवन एक है, तिनहि करत त्रिय लाज ॥२९०॥

शब्दार्थः—इनह=इनके । तिनहि=उनके । त्रिय=कर्णाटी ।

अर्थः—वहाँ बैठे हुए में से किसी ने कहा- यह जो वंदीजन बैठा है इसके साथ या तो पृथ्वीराज है या पृथ्वीराज और कवि का जीवन एक समझ कर इस स्त्री ने घूंघट निकाला है ।

अप्पि पान सनमान करि, नहि रक्खो कवि गोय ।
जु कछु इच्छ करि मंगिहौ, प्रात समप्पौं सोय ॥२९१॥

शब्दार्थः—अप्पि=अर्पित किया, दिया । गोय=छिपाकर । सोय=वही ।

अर्थः—राजा ने आदर पूर्वक कवि को ताम्बूल दिया और कहा-किसी भी प्रकार की आशा को मन में छिपाकर मत रखना । जो कुछ तुम चाहोगे उसे मैं कल प्रातः काल भेंट करूँगा ।

हक्कार्‌यौ रावन त्रपति, के के मुक्कि सुवास ।
पच्छि दिस्सि जैंचद पुर, तिहि रक्खौति अवास ॥२६२॥

शब्दार्थः—हक्कार्‌यौ=बुलाया । अवास=आवास, महल ।

अर्थः—राजा जयचन्द ने नगर-रक्षक रावण पदधारी वीर को बुलाया और कहा—कि नगर के पश्चिम की ओर के अच्छे महल रिक्त करवाकर कवि को ठहराओ ।

आयस रावन सथ्थ चलि, अयुत एक भट सथ्थ ।
अग्ग राह सो संचरै, मेर उचावहि वथ्थ ॥२६३॥

शब्दार्थः—आयस=आज्ञा । अग्ग=आगे २ । संचरै=चले । मेर=सुमेरु । उचावहि = उठाने जैसे । वथ्थ = कर पाश में ।

अर्थः—आज्ञा पाते ही वीर रावण कवि के साथ होगया । रावण के अधीन सुमेरु को भुजपाश में उठा लेने जैसे दस हजार यौद्धा थे । वे आगे २ चलने लगे ।

कवित्त

पच्छिम दिसि पुर चद, सुकवि सौ त्रपति सपत्तौ ।
रावन सथ्थ समथ्थ, वचन सो कवि रस रत्तौ ॥
धवल मभ्भ सपन्न, कलस कुदनह वज्र दुति ।
जठित खभ जगमगहि, कनक वासन विचित्र भति ॥
प्रज्जक कनक मनि मुत्ति भति, मानिक मध्य विविद्ध भति ।
आसनह-पट्ट वहु मोल विधि, मनु मनि भूमि कि सभ्भ कृति ॥२६४॥

शब्दार्थः—रस रत्तौ = रस में लीन होगये । धवल मभ्भ=महल के बीच में । कलस = कलश । कुन्दनह=सुवर्ण के । वज्र=एक प्रकार का धातु । जठित=जटित । वासन=वास, प्रासाद । प्रज्जक=पर्यंक । मुत्ति=मुक्ता । विविद्ध=विविध । आसनह-पट्ट=सिंहासन । मनु = मानों । सभ्भकृति = सभ्या रची हो ।

अर्थः—जयचद के नगर से पश्चिम दिशा के राजप्रासादों मे कवि और सेवक रूप मे राजा पहुँचे । रावण तथा उसके सामर्थ्यवान साथी कवि के वाक्य रस में तन्मय होगये । राज प्रासाद मे पहुँचने पर देखा कि वहाँ कुन्दन के कलश वज्र मणियों के समान कांतियुक्त थे । स्वर्णिम प्रासाद विचित्र शोभा दे रहे थे और उनमे जटित स्तम्भ जगमगा रहे थे । स्वर्ण पर्यंक मणि मुक्ताओ से सुशोभित थे, जिनके बीच २

में विविध भांति के माणिक लगे हुए थे और अमूल्य पट्टासन (सिंहासन) ऐसा सजा हुआ था मानों मणिमय भूमि पर संध्या रची हो (आश्विन मास में कुमारियां घर के बाहर दिवाल पर बरसाती विविध पुष्पों से कलाकृति करती हैं उसे राजस्थान में संध्या कहते हैं)।

दोहा

डेरा सुकवि विरंम तुम, करि कवि लखौ चरित्त ।
राजनीति रज गति चरित, चित गनि कहौ सुचित्त ॥२६५॥

शब्दार्थः—विरम=आराम । चरित्त=वैभव आदि । चित गनि=चित्त में ग्रहण ।

अर्थः— हे श्रेष्ठ कवि ! आप यहाँ विश्राम करिये और यहाँ के वैभव, राजनीति, राजस्व आदि को सुमति से चित्त में ग्रहण करिये (अर्थात् स्वागत स्वीकार कीजिये)।

डेरा कराइ रावन चल्यौ, खान पान तिन ठाहि ।
सुख्ख सुखासन आरुहै, तहाँ पंग न्रप आहि ॥२६६॥

शब्दार्थः—तिन ठाहि=उस स्थान पर । आरुहै=बैठा' । आहि=आया, पहुँचा ।

अर्थः—रावण ने कवि को निवास स्थान बता कर भोजनादि का प्रबन्ध किया । बाद में जहाँ पंगुराज सुखासन पर विश्राम कर रहा था, वहाँ पहुँचा ।

कवित्त

बोलि लियौ सब सथ्थ, तथ्थ प्रथिराज सुअत्त ।
सलिता जेम समुद्द, मुद्ध पति मिलन सपत्तं ॥
चामर छत्र रखत्त, लियैं सामत सपत्ते ।
रति सुभ्भौ राजान, मद्धि ग्रह पति रवि रत्ते ॥
आए सु सुहर सब चंदपुर, देखि अनूपम खति तथं ।
सामंत नाथ वरदाइ वर, आयं सपत्तो सत्र सथ ॥ २६७ ॥

शब्दार्थः—बोलिलियौ=बुलालिया । सुअत्तं=स्वय आया था, स्वय था । सलिता=सरिता । मुद्ध=मुग्धा स्त्री । रति=प्रेम या रात्रि होने पर । सुभ्या=सुशोभित हुआ । मद्धि=बीच में । सुहर=सुघड, सुभट । खति=रचना, सजावट, स्वागत सामग्री ।

अर्थ—अपने सब साथियों को पृथ्वीराज ने अपने निवास स्थान पर बुला लिया, वे सब स्वामी से मिलने की आतुरता लिये इस प्रकार आये जिस प्रकार नदियाँ समुद्र में

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

तमीर कुसुम केसरि अगर, कट्ठ कपूर सुगंध सह।
आदर अनंत उपचार वर, करि सु प्रसन्नह कविय कह ॥२००॥

शब्दार्थः—सोमित्र=सौमित्र प्रधान। प्रोहित=पुरोहित। परिहार=प्रतिहार। थानह=स्थान। आएस=आज्ञा। रसानह=रसायनों। तंमीर=ताम्बुल। केसरि=केशर। कट्ट=कठोतियों (में भर कर)।

अर्थः—राजा जयचद ने सौमित्र प्रधान, पुरोहित श्री कण्ठ तथा चतुर प्रतिहार मुकुन्द आदि को सम्बोधित कर आज्ञा दी कि जहा कवि ठहराया गया है वहां तुम सब जाओ और साथ में विविध व्यजन, सरस रस रंग की रसायनें, ताम्बूल, पुष्प, केसर, अगर कर्पूरादि सुगन्धित वस्तुएँ तथा श्रेष्ठ उपचारों की सामग्रियाँ ले जाओ और अति आदर पूर्वक कवि को प्रसन्न करो।

तब आयस जैचद, मंनि सोमित्र प्रधानह।
अरु प्रोहित श्रीकंठ, मुकँद परिहार प्रमानह॥
बचन वदि जयचद[1], लिये उपचार सार सब।
गये कव्वि सुस्थान, रुके दर सथ्थ सब्ब जब॥
दर रक्खि कह्यौ दरबार नृप-भय-खवास स बोलि सहु।
धरि वस्त विवह अग्गै सुकवि, बिविध विवरि वर लख्ख लहु ॥२०१॥

प्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थः—सार सब=सभी श्रेष्ठ सामग्री। रुके=रोक दिये। दर=द्वार पर। सथ्थ=साथियों को। कह्यौ दरबार=कवि की सभा में कहा। नृप-भय खवास=सेवक बने हुए राजा। वस्त=वस्तुएँ। विवह=विविध। अग्गै=आगे। विवरि=वृत्तांत।

अर्थः—राजाज्ञा शिरोधार्य कर सौमित्र प्रधान, पुरोहित श्रीकठ और मुकुन्द प्रतिहार आदि तत्व युक्त उपचार की सब सामग्री लेकर कवि के विश्राम-स्थल के द्वार पर जाकर सब साथियों को सामग्री सहित वहीं ठहरा वे अन्दर गये और कवि की सभा में जाकर कहा कि स्वागत सामग्री बाहर रक्खी गई है। तब कवि ने सेवक बने हुए राजा को कहा—सब को अन्दर बुलालो। तब सब अन्दर आये और सब सामग्री कवि के सामने रखते हुए वहा का विचित्र वृत्तांत भी अपनी आखों से देख लिया। (अर्थात् स्वागतार्थ आए हुए व्यक्तियों ने पृथ्वीराज और उनके सामन्तों को शका की दृष्टि से भाप लिया)।

दोहा

सुनि चित्तह चिंत्यौ नृपति, कवि थह कह कथ चित्त।
गुन गंभीर सु गठि हिय, गौ दिय सख्ख सु भ्रित्त[१] ॥३०२॥

म्रा० पा० १, पा०।

शब्दार्थः—चिंत्यौ=चिंतन किया। थह=स्थान। गंभीर=गहरे। गठि हिय=हृदय में ही रक्खा।

अर्थः— गये हुए प्रधान मंत्रियों और साथी सेवकों ने लौट कर कवि के विश्राम-स्थल के चरित्र राजा से निवेदन किये, उसे सुन कर जयचन्द ने चित्त मे चिन्ता का अनुभव किया, किन्तु गहरे गुण वाले राजा ने चिन्ता को अपने हृदय में ही रक्खा (उस भाव को प्रगट नहीं होने दिया) तथा सेवकों को विदा कर स्वयं अतःपुर में चला गया।

गाथा

इह कहि दिल्लिय नाथो, मैं सुन्यौ वीर वरदाई।
तिहि नव रस भाख छ भनियं, पट्ठाइयं अस्सनं तथ्थं ॥३०३॥

शब्दार्थः—वीर बरदाई=वीरों से वर प्राप्त किया हुआ है। भाख=भाषा। भनिय=भणित, पढा हुआ, ज्ञाता। अस्सन=असन, व्यजन।

अर्थः—अन्त पुर में जाकर पंगुराज रानी से बोला— दिल्लीश्वर के इस राज कवि के लिये मैंने सुना है कि यह वीरों से वर प्राप्त किया हुआ है। वह नवरस और छ भाषाओं का ज्ञाता है ऐसे कवि के स्वागत के लिये तुम अपनी ओर से भी व्यजन भेजो।

तिहि सखि बोली सुजान[१], चित्रनि चित्र केसरी समुख।
लीला विमल सु बुद्धी, सा बुद्धी लग्गि चरनाय ॥३०४॥

म्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थः—चित्रनि चित्र = चचित था। केसरी = केसर म। विमल = निर्मल। लग्गि = स्पर्श किया। चरनाय = चरणों को।

अर्थः—रानी ने चतुर सखियाँ सामने बुलाई। वे सखियाँ सुन्दर ढग से केसर-चर्चित थीं। जिनकी लीलाएँ और बुद्धि निर्मल थी। उन सबने आकर श्रेष्ठ बुद्धि वाली रानी जुन्हाई के चरणों को स्पर्श किया।

दोहा

सुवन सिंगारिय सह सखिय, विवह वस्त लिय सव्व ।
सो निज स्वामिनि अग्गि[१] सुनि, क्रमिय सु अथ्थह कव्व ॥३०५॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—सुवन=स्वर्णाभरण से । सिंगारिय=शृंगार कर । विवह=विविध । वस्त=वस्तुऐं । अग्गि=आज्ञा । क्रमिय=चलीं, विदा हुई । अथ्थह=अर्थ पूर्ति के लिये ।

अर्थः—वे सब सखियाँ स्वर्णाभरण से सुशोभित तथा विविध वस्तुओं को लेकर अपनी स्वामिनी की आज्ञा प्राप्त कर कवि की अर्थ-पूर्ति के लिये विदा हुईं ।

गाथा

सखि दरबार सपन्नी, आदर दीन तथ्थ दरवानं ।
दर गय अदर राजं, नइवेदयं तथ्थ स्रब्बायं ॥३०६॥

शब्दार्थः—सपन्नी=पहुँची । नइवेदय=निवेदन करने लगी ।

अर्थः—वे सखियाँ कवि के सभा भवन के द्वार पर पहुँची, दरवान ने उनका स्वागत किया, फिर वे जहाँ राजा और कवि थे वहाँ प्रविष्ट होकर निवेदन करने लगीं ।

गाथा

कहि आसीस सुकव्वी, सु प्रसन्नों दिष्टतो भासं ।
तो तन चिंता भगो, कथ्थि आसीस केलि कव्वीस ॥३०७॥

शब्दार्थः—कहि=कहलाया । कव्वी=कवि । दिष्टतो=दृष्टि । चिंता भगो=चिंता दूर हो । केलि=केरि, केरी, की ।

अर्थः—हे कवीश्वर ! रानी ने आपको आशीष कहा है और कहलाया है कि तुम्हारी कृपा दृष्टि का आभार हम पर रहे । इसके उत्तर मे कवि ने कहा मेरा यही आशीर्वाद है । हे रानी ! तुम्हारे शरीर में जो चिन्ता व्याप्त है वह दूर हो (संयोगिता की दृढ प्रतिज्ञा पृथ्वीराज को वरण करने की थी । जयचन्द पृथ्वीराज से उसकी शादी कराना नहीं चाहता था । पिता-पुत्री का यह हठ सयोगिता की माता को दुखप्रद था उसी के दूर होने का, कवि ने आशीर्वाद द्वारा सकेत किया) ।

रामा रज गति रिद्धी[1], आदर अदब नीति अनभूत।
कवि थह अथ्थह राज, स पिक्खेय कह कहनायं[2] ॥३०८॥

प्रा० पा० १, पा० का० घ०। २. पा० का०।

शब्दार्थः—रामा=रमणियां। रज गति=रजोगुण स्वरूपी (राजा पृथ्वीराज)। रिद्धी=रीझ गई। थह=स्थान। अथ्थह=यहीं पर। स=उसे। पिक्खेय=देख कर। कह=क्या। कहनाय=कहा जाय (अकथनीय)।

अर्थः—रमणियों ने आदर, अदब और नीति के अनुभव से कवि के विश्राम स्थल पर रजोगुण स्वरूपी राजा को देख कर रीझ गई और यह निश्चय कर लिया कि राजा भी कवि के साथ है, क्योंकि वहाँ सभी बातें अकथनीय थीं।

सुनि सा बत्त जुन्हाई, दिय निज कम्म सब्ब सखि एन।
निज हिय चिंता ठानी, सपन्नी धवल मझ्झेन ॥३०९॥

शब्दार्थः—जुन्हाई=रानी जुन्हाई। दिय=सौंप दिया। कम्म=काम। सखि एन=सखियों को। चिंता ठानी=चिंतित हो। सपन्नी=पहुंची। धवल=राजप्रासाद।

अर्थः—रानी जुन्हाई ने सखियों द्वारा यह बात (कवि के साथ सभव है राजा हो) सुन सखियों को अपना २ काम सौंप दिया और आप स्वय चिंतित हो अपने धवल प्रासाद मे चली गई।

दोहा

तहा सु सूर सामन्त मिलि, मधि नायक कवि चद।
पृथीराज सिंघासनह, जनु परि पूरन इद ॥३१०॥

शब्दार्थः—मधिनायक=शिरो भूषण के मध्य मे जटित हीरा परिपूरन=परिपूर्ण।

अर्थः—उधर कवि के विश्राम स्थल पर सब बहादुर सामन्त एकत्रित हुए, जिनके मध्य कविचद मध्य नायक (सरपेच, एक प्रकार का भूषण जिसके जडाव के मध्य मे एक बडा हीरा होता है उसे मध्य नायक कहते है) के समान और सिंहासन स्थित राजा पृथ्वीराज पूर्ण चन्द्र के समान सुशोभित था।

अहो चद इह दद भलि, हम दरस किय गग।
मन उछाह पुनि मुझ भयौ, कछु बरनन करि रग ॥३११॥

शब्दार्थः—दद=द्वद्व, विघ्न युद्ध। भलि=अच्छा हम=हमने। उछाह=उत्साह। कछु=कुछ। बरनन=वर्णन। करि=कर। रग=गगा।

अर्थः—पृथ्वीराज ने कहा—हे कवि चंद ! यह होने वाला विघ्न (युद्ध) अच्छा है; क्योंकि इसी बहाने हम गगा का दर्शन कर पाये। मेरे मन में गंगा के वर्णन के सुनने की पुनः उत्सुकता है अतः इसका और कुछ रंगीला वर्णन कर सुनाओ।

कहै कव्वि न्रप राज सुनि, मो मुख रसना एक।
इह सु गंग सुर मुनि जिते, लहहि न पार अनेक ॥३१२॥

शब्दार्थः—मो मुख=मेरे मुख में। रसना=जिह्वा। गग=गगा। लहहि=ले सकते, पा सकते।

अर्थः—कविचद बोला—हे राजाओं के राजा पृथ्वीराज सुनिये ! मेरे मुख में तो केवल एक जिह्वा है, मैं इसकी महिमा कहाँ तक करूँ ? इस गंगा के गुण-गान का पार अनेक मुनि और देवता भी नहीं पा सके हैं।

गाथा

सोइ[1] फल निरखित नयन, सोय[2] फल गुन गाइय बैन।
सोइ फल न्हात सरीरं, सोइ फल पिअत अव अंजुलयं ॥३१३॥

प्रा० पा० १ घ०। २ पा० घ०।

शब्दार्थः निरखित=दर्शन मात्र से। गाइयं=गान करने मे। बैनं=वचन। न्हात=स्नान। पिअत=पीने। अव=अबु, जल।

अर्थः—इस देव-सरिता के दर्शन-मात्र से जो फल प्राप्त होता है, वही फल वचनों द्वारा गुणगान करने से, शरीर प्रक्षालन से और अजुलिभर जल पीने से होता है।

दोहा

इय गगा राजन श्रुति, सुनो रत्ति धरि ध्यान।
जनम मरन दोऊ सधै, जो उपजै इह थान ॥३१४॥

शब्दार्थः—श्रुति=स्तुति। रत्ति=लीन। धरि ध्यान=ध्यान मग्न होकर। सधै=सफल होव। उपजै=जन्म लें।

अर्थः—हे राजन् ! इस गगा की स्तुति में लीन होना चाहिये तथा ध्यान मग्न हो सुनना चाहिये, क्योंकि जो इस देव-सरिता की भूमि पर जन्म प्राप्त करता है, उसका जन्म मरण सफल हो जाता है।

भइत निसा दिन मुदित विनु, उड़पति तेज विराज।
कथक साथ कथ्थहि कथा, सुक्ख सयन प्रथिराज ॥३१५॥

शब्दार्थः—भइत निसा=रात्रि होगई । मुदित=उदित, प्रभा । बिनु=रहित । उडपति=चन्द्रमा । विराज=फैल गई । कथक=कथ्थक लोग । कथ्थहि=सुनाने लगे, कहने लगे ।

अर्थः—इस प्रकार गंगा का वर्णन करते-सुनते रात्रि हो गई। दिवस प्रभा रहित हो गया और चन्द्र-प्रभा फैल गई। तब पृथ्वीराज सुख पूर्वक शयन करने लगा और कथ्थक लोग उसे कहांनियाँ सुनाने लगे।

ओसर पग सुरत्त किय, चन्द सुजानह भट्ट।
कहै जाय जुग्गिनि पुरह, नव रस भास सु खट्ट ॥३१६॥

शब्दार्थः—ओसर=अवसर पाकर । सुरत्त=स्मृति । भास=भाषा ।

अर्थः—अवसर देखकर पंगुराज ने चतुर वंदीजन चंद की स्मृति की और सेवक को कहा कि दिल्ली निवासी, नव रस और छ भाषा के ज्ञाता को जाकर कहो (अर्थात् यहाँ आने को कहो)।

एकाकी बोल्यौ सुकवि, ओसर देखन राय।
राज नींद मुक्यौ करत, पौरि सँपत्तौ जाइ ॥३१७॥

शब्दार्थः—एकाकी=अचानक । ओसर=अवसर, समय । पौरि=पंगुराज के द्वार पर ।

अर्थः—राजा जयचन्द ने सुकवि को अचानक अच्छा दृश्य देखने के लिये बुलाया, उस समय कवि, राजा को निद्रावस्था में छोड़ कर पंगुराज के द्वार पर पहुँचा।

मृदु मृदंग धुनि संचरिय, अलि अलाप सुध व्यंद।
ताल त्रिगाम[1] उपंग सुर, औसर पंग नरिंद ॥३१८॥

[1] मा०पा०१, पा०क्रा०।

शब्दार्थः—धुनि=ध्वनि । संचरिय=फैल गई । अलि=नर्तकी । अलाप=आलाप । उपंग सुर= उपंग स्वरों में ।

अर्थः—वहाँ जाने पर मृदंग की मधुर ध्वनि फैल गई और सुन्दर नर्तकी ने शुद्ध आलाप के साथ वंदना गान प्रारंभ किया, फिर पंगुराज के विनोद का अवसर देख उपंग स्वरों मे त्रिग्राम युक्त ताल छिड़ने लगा।

ज्वलन दीप लिय[1] अगर रस, फिरि घनसार तमोर।
जमनिक पट उच महल मुख, (जनु)मरद अभ्भ ससि कोर ॥३१९

[1] मा० पा० १ घ०।

शब्दार्थः—ज्वलन=जलाये। घनसार=कर्पूर युक्त। तमोर=ताम्बूल। जमनिक=यवनीका। पट=पर्दा। उच=उठा। महल-मुख=सभा के सामने। सरद अभ्भ=शरदाभ्र। ससि=चन्द्रमा। कोर=लकीर।

अर्थः—अगर-रस के दीपक जलाये गये, कपूर युक्त ताम्बूल काम में लिया गया, फिर नर्तकी ने सभा के सामने पर्दा उठाया, जिससे ऐसा ज्ञात हुआ मानों चन्द्र मण्डल के चारों ओर शरदाभ्र की लकीरें खींच गई हों (यहाँ शशि से नर्तकी के मुख और शरदाभ्र की लकीर से पर्दे का आशय लिया गया है)।

तत्त[1] धरम्मह मत इह, रत्तह कांम सुचित्त।
काम विरुद्धनि विद्ध किय, न्नत्य नितंविनि नित्त॥ ३२०॥

प्रा० पा० १ पा०।

शब्दार्थः—तत्त=तत्व। धरम्मह=धर्म। मत=मत्रणा। रत्तह=अनुरक्त। विद्ध=विद्ध कर दिये, वेध दिये। नित्त=अहर्निष।

अर्थः—धर्म की मन्त्रणा का यहाँ एक मात्र तत्व यही है कि काम में अनुरक्त होने से पूर्व सावधान रहना चाहिये, ऐसे धर्म के तत्व को जानने वाले तथा काम-वासना से विरुद्ध रहने वालों को भी उन नर्तकियों ने अहर्निष सुनृत्य द्वारा विद्ध कर दिये।

साटक

दीपांगी चन्द्र नेत्रा नलिन अलि मिली, नैन रगी कुरगी।
कोकांक्षी[1] दीर्घनासा सुरसर कलिरवा, नारिंगी सारदंगी॥
इंद्रानी लोल डोला चपल मति धरा, एक बोली अमोली।
पुहपा वानी विसाला सुभग गिरवरा, जैन रभा सु वोली॥३२१॥

प्रा० पा० १, का० पा०।

शब्दार्थः—दीपागी=दीप प्रभा सी शरीर वाली। नलिन=नलिनी। कुरंगी=हिरणी, मृगी। कोकांक्षी=इच्छा की दृष्टि में चक्रवाक सी। कलिरवा=कलरव। सारदंगी=शारदा स्वरूप। पुहपा=पुष्प। विसाला=विशाल। गिर=गिरि (कुच)।

अर्थः—दीप-प्रभा के समान शरीर वाली, नैत्रों को चन्द्र-तुल्य (सुखप्रद), भ्रँमरवत रसिकों को नलिनी, दृग विलास में हरिणी, इच्छा की दृष्टि से चक्रवाक, दीर्घ नासिका वाली, मधुर कलरव सदृश स्वर वाली, नारी रूप मे शारदा स्वरूपा, चपल इन्द्रनी को भी भ्रमित कर देने जैसी चचलमति वाली, पुष्प वर्षा सम

अमूल्य वाणी को लाने वाली और अग पर जिसके श्रेष्ठ विशाल गिरि (कूच) हैं ऐसी रभा को पराजित करने वाली उस नर्तकी ने पुनः बोलना शुरु किया।

दोहा

पुहपंजलि दिसि वाम कर, फिरि लग्गी गुर पाइ।
तरुनि तार सुर धरिय चित, धरनि निरक्खय चाइ ॥ ३२२ ॥

शब्दार्थः—पुहपजलि=पुष्पाञ्जलि। पाइ=चरण। तार=ताल। चाइ=इच्छुक।

अर्थः—ईंवा ओर पुष्पाञ्जलि देकर उसने गुरु के चरणों को स्पर्श किया। तत्पश्चात् युवति ने चित्त से अनुरक्त हो ताल-युक्त स्वरों के साथ गाना शुरू किया। यह दृश्य भू-देवी भी इच्छा पूर्वक देखने लगी।

जाम एक छिनदा नघट, सत्तमि सत्त निवार।
कहु कामिनि सुख रति समर, त्रिपनिय नींद निवार ॥ ३२३ ॥

शब्दार्थः—जाम=याम। छिनदा=रात्रि। नघट=घटने लगी, क्षीण होने लगी। सत्त=निश्चय ही। निवार=समाप्त हुई। कहु=कोई, विरली। रति-समर=रति रण। त्रिपनिय=राज रानियां, राजा के समीप रहने वाली। नींद निवार=जगती रहती।

अर्थः—एक प्रहर रात्रि शेष रही, वह भी शनैः २ क्षीण होने चली। इस प्रकार निश्चय ही सप्तमी समाप्त हो गई, ऐसी सुखद रात्रियों मे रति-रण का सुख प्राप्त करने वाली राज-रानियों में विरली ही भाग्य शालिनी होती है। अन्यथा राज-पत्निया बहुधा वियोग का अनुभव कर जागृत रहती हुई रात्रिया बिताती है (इसका मूल कारण यह है कि राजा लोग विशेष रूप से विलासी होते हैं और वैश्याओं के नृत्य गान आदि मे उलझे रहते हैं)।

सुख्ख सुख्ख मृदग तल्ल जघन, राग कला कोकन।
कठी कठ सुभासने सम जित, काम कला पोपन ॥
उरभी रभकि ता गुन हरि हरो, सुरभीय पवन-पता।
एत्र सुक्खइ काम कुभ गहिना, नय राज रात्र गता ॥ ३२४ ॥

शदार्थः—तल्ल जघन=जघन तल (नितम्ब)। कला-कोकन=कोक क्रीडा, कोक शास्त्र। कठी कठ=कठिया के कठ स्वर। सुभासने=सुभाषित। उरभी=हृदय में लग गई। सुरभिय=सुरभित, सुवासित। पवन=पवित्र। पता-पतित। कुभ=गाथा, कवित्त। गहिता ग्रथित। रात्रगता=रात्रियें बिताते हैं।

अर्थः—जघन तल के मृदगों (नितम्बों) के सुख को ही वे विशेष सुख मानते हैं। एक मात्र राग ही उनके काम-शास्त्र हैं। सुकंठियों के कंठ स्वर ही उनके लिये सुभाषित हैं। वे केवल काम-कला का पोषण ही कर जानते हैं, जो हृदय से लग गई वही उनके लिये रभा है और उसी के गुण उसके लिये शिव और विष्णु हैं। वैश्याओं का पतितकारी सुगन्धित पवन ही उनको पवित्र करता है। इस प्रकार काम-सुख रूपी करिवर ग्रसित राजागण हैं। उनकी जय हो, जो इस प्रकार रात्रि बिताते हैं।

कांती भार पुरान यौविगलिता, साखान गल्हस्थलं।
तुच्छ तुच्छ तुरास लग्गि कमन, कलि कुंभ निंद्रा दल॥
मधुरे माधुरयासि आलिश्र लिनं, अलि भार गु जारियं।
तरुन-प्रात लुटीय पगज जिया, रात्र गता साम्प्रत॥३२५॥

शब्दार्थः—कांति भार पुरान=विशेष तेज फैल गया। विगलिता=बिछुड़ गये, खाली हो गये। साखान=डालियों के। गल्हस्थल=कोटरें, पक्षियों के घोसले तुच्छ तुच्छ=कुछ २। तुरास लग्गि=त्रसित (दुखी) होने लगीं। कमन=कामिनियें। कलि कुम=कलियुग के कुमकर्ण, आलसी। निंदा दल=निद्रा खुल गई, जग गये। आलिश्र=अलिनियां। लिन=अनुरक्त। भार=विशेष। तरुन=तरणी, सूर्य। लुटीय=लौटा। पंगज-जिया=पंकजों का जीवन स्वरूपी, सूर्य। रात्र=रात्रि। साम्प्रत=तत्काल।

अर्थः—विशेष तेज फैल गया, शाखाओं पर लगी हुई कोटरे रिक्त हो गईं, कामिनियाँ पति बिछोह से कुछ त्रसित होने लगीं, कलियुग के कुभ कर्णों की निद्रा खुल गई और अलिनियों से लीन होकर भ्रमर गण मधुर गु जार करने लगे। अहा! पंकजों के जीवन स्वरूपी सूर्य प्रात:काल पुन लौट आया और तत्काल रात्रि बीत गई।

गयौ चद थानह नृपति, मतौ पग चित वार।
भट्ट सथ्थ चहुआन सत वधि दियौ करतार॥३२६॥

शब्दार्थः—थानह=स्थान। मतौ=सोचा, विचारा। चित=चित्त मे। वार=वेला, समय। वधि दियौ=बांध दिया जोड़ दिया। करतार=सृजता।

अर्थः—प्रात काल होता हुआ देखकर कविचन्द, पगुराज से बिदाइ लेकर जहाँ राजा पृथ्वीराज था वहाँ पहुँचा। इधर पगुराज ने मन मे सोचा कि इस वदिराज

(कविचन्द) का सत्य सम्बन्ध सुजता ने चाहुवान (पृथ्वीराज) के साथ ही जोड़ दिया है।

प्रापत चंद कविंद तहँ, जहँ ढिल्ली चहुआन।
जगि बरदाई बर बुलै, बर बधन सुरतान ॥३२७॥

शब्दार्थ:—प्रापत=पहुंचने पर। जगि=जागृत हुआ, जगा।

अर्थ:—कवि के आने पर राजा पृथ्वीराज निद्रा से जगा, तब उस विरदाई ने विरुदोच्चारण किया कि सुलतान के बाँधने वाले नरेश्वर ! तुझे धन्य है।

दोहा

प्रात राव स प्रापतिग, जहँ दर देव अनूप।
सयन करहि दरबार तहँ, सत्त सहस असभूप ॥३२८॥

शब्दार्थ:—स=उस। प्रापतिग=प्राप्त किया। दरबार=द्वार पर।

अर्थ:—जिस राजा के द्वार पर सात हजार राजा उपाधिधारी शयन करते हैं, ऐसे उस राजा ने प्रात:काल होने पर अपने दरवाजे पर अनुपम देवताओं को प्राप्त किया (अर्थात देव दर्शन किये)।

मिसि बज्जहिं गंगा बरन, दान कवी-पति सेव।
चढ़त सुखासन समुहौ, जहँ सामंत नृपेव ॥३२९॥

शब्दार्थ:—मिसि=बहाना। बज्जहिं=कल-कल नाद। बरन=वर्णन करती, सम्बोधन करती। कवि-पति=कवीश्वर। सुखासन=एक प्रकार का चौडोल, मियाना। समुहौ=सामने चला, रवाना हुआ। सामंत नृपेव=सामंत राज, पृथ्वीराज।

अर्थ:— गंगा कल-कल नाद द्वारा मानों यह सम्बोधन कर रही है कि हे पंगुराज ! तू दान से कवीश्वर (चंद) को संतुष्ट कर। यह देख कर जयचन्द सुखासनारूढ हो चन्द के विश्राम स्थल पर, जहाँ छद्म वेश में सामंत-राज पृथ्वीराज था, उस तरफ रवाना हुआ।

तीस करिय मुत्तिय सघन हूँ से तुरग बनाय
द्रव्य उदर बहु संग लिय भट्ट समप्पन जाय ॥३३०॥

शब्दार्थः—मुत्तिय=मुक्ता । सघन=घने, बहुत । समंपन=समर्पण । बदर=विदाई में देने योग्य या विविध ।

अर्थः—पंगुराज ने कविचन्द को विदाई देने के लिये तीस हाथी, बहुत से मोती तथा जो जयचन्द के चित्त को प्रसन्न कर देते थे ऐसे दो सौ घोड़े और सभी प्रकार का द्रव्य साथ में लिया ।

कवित्त

गयौ राव मेल्हान, चद बरदिय समक्खन ।
देखि सिंघासन सठ्यौ, पास पारस्स इंद्र जनु ॥
कवि आदर बहु कियौ, देखि कनवज्ज मुकट मनि ।
इह ढिल्लिय सुर दत्त, वियौ नहि गनै तुमझ गिनि ॥
थिरु रहै थवाइत वज्र कर, छडि सिकारहि छिनकु रहि ।
जिहि असिय लख्ख पल्लानि यहि, पान देहि दिढ हथ्थ गहि ॥ ३३१ ॥

शब्दार्थः—मेल्हान=मल्ल उपाधिधारी । बरदिया=विरदाई चंद । पारस्स=पृथ्वीराज । दत्त=दिया हुआ । तुमझ=तुझे । गिनि=मानता हूँ । थिरु रहे=स्तंभित हो गया । वज्र-कर=वज्र तुल्य हाथों वाला । छडि=छोड़ दिया, विषय को बदल दिया । सिकारहि=स्वीकार करिये । छिनकु-रहि=जरा ठहर कर । पल्लानि यहि= सजाये जाते हैं ।

अर्थः—मल्ल उपाधिधारी पगुराज, विरदाई चंद कवीश्वर के पास पहुँचा । वहाँ उसने सिंहासन और उसी के पास इंद्र के समान पृथ्वीराज को सेवक के रूप मे देखा । कन्नौजपुर के मुकुट मणि राजा को देखकर कवि ने उसका बहुत सम्मान किया, और सिंहासनादि अपने वैभव की ओर सकेत करते हुए कवि ने कहा—यह सब दिल्लीपति का दान किया हुआ है । फिर भी दिल्लीश्वर के अतिरिक्त तुझे भी दानी मानता हूँ । जयचन्द को चन्द द्वारा अपने बराबर दानी कहने से पृथ्वीराज चकित हो गया और वह वज्र तुल्य हाथों वाला क्रोध के आवेश में आकर स्तभित हो गया । यह बात कवि ने ताड़ली और विषय को छोड दिया तथा पगुराज से बोला–जरा ठहर कर भेंट स्वीकार कीजिये और छद्मवेशी पृथ्वीराज को कहा–पगुराज के साथ मे

अस्सी लाख अश्वारोही सुसज्जित होते हैं, ऐसे इस राजा के हाथों में दृढता पूर्वक ताम्बूल ग्रहण कर समर्पित करो।

दोहा

पान देइ दिढ हथ्थ गहि, बर करि हथ[1] दिठ[2] बक्र।
मनु रोहिनी सों मिलिग ज्यों, बीय उदित्त मयंक ॥३३२॥

प्रा० पा० १, २ पा०।

शब्दार्थः—दिढ=काबू में रखकर। दिठ बक्र=वक्र दृष्टि, भृकुटी चढा कर। रोहिनि=चन्द्रमा की स्त्री।

अर्थः—कवि के कहने पर यद्यपि वह अपने क्रोध को काबू में कर सावधान हो गया फिर भी भृकुटी तो टेढी होकर उठ ही गई, जिससे ऐसा प्रतीत हुआ मानों रोहिनी से द्वितीया के चन्द्रमा की भेंट हुई हो (पति मिलन पर स्त्री का इठलाना "वक्र होना" स्वाभाविक है अत यहा वक्र भृकुटी को रोहिनी और पृथ्वीराज का विशाल भाल 'बाल चन्द्रमा" के रूप में माना गया है)।

रा स पान जब अप्पही, पग न मंडै हथ्थ।
रोस नृपति जब चिंति मन, कही चंद तब गथ्थ ॥३३३॥

शब्दार्थः—रा=राय, राजा। न मंडै हथ्थ=हाथ पसार कर नहीं लेने लगा। गथ्थ=गाथा, पद्य, श्लोक।

अर्थः—समर्पित करने के ढंग से पृथ्वीराज ने ताम्बूल नहीं दिया (पृथ्वीराज, समर्पित करने के रूप में न देकर इनाम के रूप में देता था) और पंगुराज ने भी हाथ पसार कर ताम्बूल लेना स्वीकार नहीं किया। इस तनातनी के कारण जब पंगुराज के मुख पर क्रोध दिखाई दिया, तब कविचन्द ने यह पद्य (श्लोक) सुनाया।

श्लोक

तुलसीदल विप्र हस्तेषु विभूति प्रिय योगिना।
ताम्बूल चढि हस्तेषु, ज्यों प्रासाद प्रासाद ॥३३४॥

शब्दार्थः—तुलसीदल=तुलसी दल। विभूति [illegible] विभूति [illegible] धन। चढि=[illegible]। ज्यों=मानों। दानेव=दान [illegible]

अर्थः—ब्राह्मण का दिया हुआ तुलसी पत्र, योगियों की दी हुई विभूति और देवी पुत्र (वंदीजन) का दिया हुआ ताम्बूल, उदार पुरुष को चाहिये कि वह सादर ग्रहण करें।

लिय सु पान भुअ राज रुख, मुख प्रसन्न मन रोस।
दिखत न्रपति चल चित किय, पुव्व प्रसत्तौ' दोस ॥३३५॥

शब्दार्थः—लिय=लिया। रुख=नजर। मनरोस=मन में क्रोध। चल चित=चंचल चित्त,। पुव्व=पूर्व। प्रसत्तौ=पैदा हुआ, प्रकट हो गया।

अर्थः— कवि के कथानानुसार पंगुराज ने ताम्बूल ग्रहण किया, किन्तु पृथ्वीराज से उसकी नजर मिल ही गई जिससे प्रत्यक्ष मे प्रसन्नता दिखलाते हुए भी मन में क्रोध उत्पन्न हुआ और पृथ्वीराज को देख कर उसका चित्त चंचल हो गया। इस प्रकार पूर्व द्वेष प्रकट हो गया।

प्रथमहि सभा परख्खयौ, पान धार नहिं भट्ट।
न्रप कवि थान सपत्तयौ, तव परखयौ निपट्ट ॥३३६॥

शब्दार्थः—परख्खयौ=पहचाना। निपट्ट=निश्चय ही।

अर्थः—जयचन्द ने अपनी सभा में चंद के साथ आये हुए छद्मवेशी पृथ्वीराज को सन्देह की दृष्टि से देखा कि वन्दीजन का यह साथी ताम्बूलादि सामग्री रखने वाला सेवक नहीं है। कवि के विश्राम स्थल पर आने से उसे निश्चय हो गया कि यह पृथ्वीराज ही है।

भुअ वंकी किय पंग नृप, अप्पि हथ्थ तमोर।
मनहु वज्र पति वज्रधर, सव अप्पौ तिहि ओर ॥३३७॥

शब्दार्थः—भुअ=भ्रकुटी। वंकी=टेढी। तमोर=ताम्बूल। वज्र पति=वज्र पात, वज्रप्रहार। वज्र धर=वज्रायुध, इन्द्र।

अर्थः—ताम्बूल लेते समय पंगुराज की भृकुटी चढी हुई देखकर पृथ्वीराज को भी क्रोध हो आया, उसने ताम्बूल देते समय जयचन्द के हाथ पर हाथ इस प्रकार डाला मानो वज्रायुध ने अपनी पूरी शक्ति से वज्र प्रहार किया हो।

कवित्त

पहचान्यो जयचन्द, इहत दिल्लेसुर लिख्यौ।
नहिय चड र्तनिहार, दुसह दारुन तन दिख्यौ ॥

कर-संध्यौ-करि वार, कहै कनवज्ज मुकुट मनि।
हय गय दल पक्खरहु, भाजि पृथिराज जाइ जिनि॥
इत्तनौ सोच भुअपति उठ्यौ, सुनि नरिंद किन्नौ न भौ।
सामंत सूर हँसि राज सों, कहै भलौ रजपूत भौ॥ ३३८॥

शब्दार्थः—इहत=यह तो। नहिय=नहीं रहा। चड=तेज। उनिहार=मुख पर। कर-संध्यौ-करि वार=हाथ पर हाथ डाला। भुअपति=पंगुराज। नरिंद=पृथ्वीराज। भौ=भय। रजपूत=राजपुत्र, क्षत्रिय। भौ=हुआ।

अर्थः—इस हरकत से जयचन्द ने दिल्लीपति को ठीक तरह पहचान लिया, जिससे उसके मुखमंड पर वह तेज नहीं रहा और तन मे गहरी वेदना छा गई। वह कन्नौज का मुकुट मणि राजा कहने लगा—ताम्बूल देते समय हाथ पर इस प्रकार हाथ अन्य नहीं डाल सकता, अत हाथी घोड़ों को सुसज्जित करना चाहिये। ऐसा न हो कि यह पृथ्वीराज भाग जाय। यह निश्चय कर पगुराज उठ खडा हुआ। पगुराज के उपरोक्त कथन से पृथ्वीराज डरा नहीं और उसके सामंतों ने जाते हुए जयचन्द से हँस कर कहा कि आप अच्छे क्षत्रिय हुए। (शत्रु को सामने देख कर आपके हाथ नहीं उठते सैन्य बल पर ही आप गर्व रखते हैं)।

पब्वैसर पृथीराज, राज सोमेसर संभरि।
लगी लगरराइ, राय सजम सुअ जवरि॥
वाराहा थह भुल्लि, बद्ध उठ्यौ लोहानह।
पारद्धी भुलि धार, मूल चप्यौ चहुआनह॥
वर-वीर वराहा उप्परै, केहरि बड्ढारी वढन।
इक चल्लव कन्न कर पग्ग इक, सावक मुख लग्गा रहन॥ ३३९॥

शब्दार्थः—पब्बैसर=पर्वतों का स्वामी, हिमालय। जवरि=जबरा, भारी। लोहानह=लूनी। पारद्ध भुलि=शिकार अपने को भूल गये, सुध बुध खो दी। धार=धार कर, देख कर। मूल=घाटी। चप्यौ दबाया। वर-वीर वराहा उप्परे=श्रेष्ठ वीरों से भी श्रेष्ठ। बड्ढारी=तलवार। कन्न=कान। सावक बच्चा, बालक। मुखलग्गा=सामना किया, भिड़ गया।

अर्थः—संभरीराज सोमेश्वर का पुत्र पर्वतों के स्वामी हिमाचल के सदृश पृथ्वीराज और सजमनराय का पुत्र विशाल काय हनुमान के सदृश लंगरीराय है। एक सम

वाराह के घेरने पर खुनीशेर निकल आया था, उसे देख कर अच्छे अच्छे शिकारी सुधबुध खो बैठे—वह सिंह जहाँ पृथ्वीराज आखेट के लिये बैठा था वहाँ जा पहुँचा और उसे दबा दिया, किन्तु यह लघरी राय जो श्रेष्ठ वीरों का सरताज है इसने बाल्यावस्था में ही उस व्याघ्र पर तलवार का वार किया और आँख से आँख, कान से कान, हाथ से हाथ और पैर से पैर मिला कर भिड़ गया (राजा को सिंह से बचा लिया)।

अद्धा आसन अद्ध-राज अद्धा तंमूलं।
अद्धा देस सुवेस, एक आदर समूलं॥
पगानै दीवान, रह न रक्ख्यौ चलि सध्थह।
काया तुग सु कंन्ह, देव साह्यौ भुज वध्थह॥
गुर—वार—रत्ति गोचर कियौ, प्रात प्रगट्टत छुट्टयौ।
दरबार राव पहुपग दल, चौकी चौरँग जुट्टयौ॥३४०॥

शब्दार्थः—अद्धा आसन=अर्धासन। तमूल=ताम्बूल। देस=देश। समूल=समान ही। साह्यौ भुज वध्थह=भुज पाश में पकड़ कर। गुर-वार-रत्ति=विशेष प्रहार से लीन। प्रगट्टत=प्रगट हुआ। छुट्टयौ= छूटा, टूट पड़ा। चौकी=रक्षक। चौरग=चौरगराय। जुट्टयौ=जुट पड़ा।

अर्थः—बहादुरी के उपहार में पृथ्वीराज ने उसे अर्धासन, आधा राज्य, अर्ध ताम्बूल, आधे वस्त्राभरण और अपने समान ही सब प्रकार से सम्मानित किया था। वही वीर लघरीराय, जब पगुराज के ऐंठ कर चले जाने पर उसकी सभा में जाने को उद्यत हुआ और सामंतों के रोकने पर भी वह नहीं रुका तब उस उत्तंगकाय लघरी को कन्ह ने भुज-पाश में पकड़ कर रोक लिया। फिर भी वह विशेष शस्त्र प्रहार से अनुरक्त रहने वाला शत्रुओं पर टूट पडा और वह उसी प्रातः काल को प्रगट हो गया। पगुराज की सेना और सभा के रक्षक चौरंगीराय से वह जाकर भिड़ पड़ा।

मत्री राव सुमत, हथ्थ विंट्यौ स चढतौ[१]।
दुज्जाई दिल्लीप, कोप कुंजरनि बढतौ॥
हालोहल कन्नवज्ज, मम्फ केहरि कूकंदा॥
सज्जमराव कुमार, लोह लग्गा लूसंदा॥

चहुआन महोवै जुद्ध हुअ, ग्रेहा गिद्ध उड़ाइयॉ।
रन भग राव नै वर विरद, लगै लोह उचाइयॉ॥ ३४१॥

प्रा० पा० १, का० पा० घ०।

शब्दार्थः—हथ्थ विंट्यौ=हाथों (भुज पाश) में पकड़ा। चढतौ=प्रथम हमले में ही। दुब्जाई=द्वितीय। दिल्लीप=दिलीप। कोप=क्रोध। बढतो=काट गिराये। हालोहल=हलचल। मंभ=मध्य। केहरि=केशरी। कूकदा=शोरगुल। लूसदा=लसा, सुशोभित हुआ। महोवै=महोबा। ग्रेहा गिद्ध=ग्रहते हुए गिद्ध समूह को। उड़ाइयां=उड़ाये। लगै=लंगरीराय। उचाइयां=उठाया।

अर्थः—पगुराज के मंत्री सुमत को प्रथम हमले में ही लघरीराय ने भुज पाश मे लेकर छोड दिया। उस द्वितीय दिलीप तुल्य वीर ने क्रुद्ध होकर हाथियों को काट गिराया। कन्नोज शहर मे मानों केशरी ने प्रवेश किया हो, इस प्रकार की हलचल और शोर गुल मच गया। सजमराय का कुमार शस्त्राघात करता हुआ शोभा पाने लगा। जिस प्रकार सजम राय ने महोबा के युद्ध में गिद्ध-समूह को उडा कर विरुद प्राप्त किया था उसी प्रकार उसके पुत्र वीर लघरी ने "रण भग राय" विरुद शस्त्र उठा कर प्राप्त किया।

एक कहै अप्पान, एक कहि वधि दिवाना।
वध्धौ वधनहार, मार लद्धो सिर कान्हा[१]॥
वावारो वल[२] तुग, खग्ग साहै विरुझाना।
लगी लगर राव, अद्ध राजी चहुआना॥
उरतान ढकि कमधज्ज दल, सजम राव समुद हुअ।
प्रारभ जुद्ध जुद्धे सवल, वलि वलि वीर भुजग भुअ॥ ३४०॥

प्रा० पा० १, २, पा०।

शब्दार्थः—अप्पान=महान शक्ति। वधि=बाँध लो। दिवाना=दीवाने को। मार लद्धी=मार होने लगी। वावारो=भाइयों में जो बड़ा था उस सजम राय का पुत्र। अद्ध राजी=अर्ध राज्य का अधिकारी, अर्धासन पर बैठने वाला। उरतान=अरतान, कपाट।

अर्थः—लगरीराय का साहस देख कर कन्नोजपति के सैनिकों मे से किसी ने कहा—यह महा शक्ति है। किसी ने कहा—इस दिवाने को बॉध लो। कोई बोल उठा—इस मारने वाले को मार डालो, लेकिन जयचद के सामन्त कन्हदेव के सिर पर लगरी का शस्त्राघात होता रहा। इन आघातों का आनन्द कन्हदेव का

सिर ही जान सका। पृथ्वीराज के आधे राज्य का अधिकारी उत्कृष्ट पराक्रम वाला बाबा संजमराय का पुत्र (लंघरी का पीता संजम पृथ्वीराज के राज वंश में था, और निकट सम्बन्ध में पिता से बड़ा था, इसीलिये बाबा कहा गया) हनुमान स्वरूप लघरी राय तलवार पकड़ कर उलझता ही रहा और अंत में उसने पंगुराज के द्वार के किंवाड़ लगवा दिये, जिससे उसके पिता सजमराय को दिवंगत-आत्मा प्रमुदित हुई। उस सबल योद्धा द्वारा युद्ध का श्री-गणेश हुआ। बलिहारी है-स्वामी सेवार्थ बलि जाने वाले पृथ्वी के उस सर्प स्वरूप वीर लघरी की।

एह जुद्ध लगरिय, आय चौकी सम जुट्यौ।
एक अंग लगरिय, तीन लक्खह हथ खुट्यौ॥
सार सार उच्छरत, परी गिद्धा रव भख्खन।
गज वाजित्र निहाय, वज्जि उतराधी दक्खिन॥
इम भिर्यौ लग पगह अनी, हाय हाय मुख फुट्टयौ।
हलहलत सेन अभि लख्ख दल, चौकी चौरंग जुट्यौ॥२४३॥

शब्दार्थः—एह=इस प्रकार। चौकी=द्वार रक्षक। सम जुट्यौ=युद्ध में जुट पड़ा। एक अंग=एक अंग युद्ध में रहने पर। खुट्यौ=समाप्त कर दिये। सार सार=लोहे से लोहा। उच्छरत=उछलने लगा, बरसने लगा। परी=पड़ीं। गिद्धा=गिद्धनियाँ। रव=चिल्लाती हुई, शोर करती हुई। भख्खन=भक्षणार्थ। गज वाजित्र=हाथियों पर कसी हुई नौबतें। अनी=सेना। मुख फुट्टयौ=मुख से उच्चारण हुआ। हलहलत=हलचल मच गई। चौकी चौरंग=द्वार रक्षक चौरंग राय। जुट्यौ=जुट पड़ा।

अर्थः—इस प्रकार लघरीराय, पंगुराज के द्वार रक्षक चोरंगराय एवं उसकी सेना से जुट पड़ा। लघरी का एक शरीर धराशायी हो गया फिर भी उसने पंगुराज के तीन लक्ष योद्धाओं को समाप्त कर दिये। लोहे पर लोहा बरसने पर आमिष भक्षण के लिये चिल्लाती हुई गिद्धनियाँ उतर पड़ीं। हाथियों पर कसी हुई नौबतें उत्तर से दक्षिण की ओर बजने लगी हाय २ शब्दोच्चारण होने लगा और पंगुराज की असमी लक्ष सेना में हल चल मच गई।

जौ पच्छिम दिसि उयै, पुव्व अथवै दिनकर।
धर भर फनि फनमुरहि, गवरि परहरै जु संकर॥

ब्रह्म वेद नह चवै, अन्रित जुधिष्टिर बुल्लय ।
जौ सायर जल छिलै, मेर मरयादह डुल्लय ॥
इतनीय होय कविचद कहि, इह इत्तौ खिन में करहि ।
तुम हीन दीन सब चक्कवै, प्रथीराज उर नहिं डरहि ॥३४४॥

शब्दार्थः—उयै=उदय हो । अथवै=अस्त हो । दिनकर=सूर्य । धर=पृथ्वी । भर=भार । मुरहि=मुड जांय । नह चवै=उच्चारण नहीं करै । अन्रित=झूठ । बुल्लय=बोले । सायर=समुद्र । छिलै=छलक पडे । मेर=सुमेरू । मदयादह=मर्यादा । खिन में=क्षण में । हीन-दीन=दीन हीन । चक्कवै=चक्रवर्ती ।

अर्थः—पृथ्वीराज को प्रकट करता हुआ उसकी प्रशसा में कविचद ऊर्ध्व घोष करता हुआ कहने लगा—यदि पश्चिम से सूर्य उदय होकर पूर्व को अस्त होने लग जाय, पृथ्वी के भार से शेष नाग के फण मुड़ जाय, शिव पार्वती का परित्याग करदें, ब्रह्मा वेद का उच्चारण करना छोड़ दें, युधिष्ठिर असत्य भाषण करने लग जाय, समुद्र कार (सीमा) छोड कर छलक पडे, सुमेरु पर्वत अटल रहने की मर्यादा त्याग कर हिल उठे । इतनी असम्भव बातें सम्भव हो सकती हैं और इन असम्भव बातों को क्षण भर मे सम्भव कर दिखाने वाला पृथ्वीराज ही हो सकता है । तुम्हारे जैसे चक्रवर्ती (जयचन्द के लिए सम्बोधित कर कहा) उसके सामने दीन-हीन है । पृथ्वीराज तुम जैसे शत्रु से भयभीत नहीं होने का है ।

दोहा

यह सुनत पगह चल्यउ, वज्जि निसानरु भेरि ।
सकल सूर सामत सम, लेहु नर्यदहि घेरि ॥३४५॥

शब्दार्थः—पगह=पगुराज । चल्यउ=चलपड़ा । निसान=नक्कारे । भेरि=रणभेरी । नर्यदहि=पृथ्वीराज को ।

अर्थः—यह सुनकर पगुराज युद्धार्थ चला और नक्कारे, रणभेरी आदि वजवाये तथा अपने सब योद्धाओं को आज्ञा दी कि सामतों सहित पृथ्वीराज को घेर लो ।

सकल सूर सामत सम, वर वुल्यौ प्रथिराज ।
जौ रुक्कौ विन खेत मे, देखौं नगर विराज ॥३४६॥

शब्दार्थः—रुक्को=टटकर रहो । खेत=रणक्षेत्र । विराज=सुशोभित ।

अर्थः—इधर पृथ्वीराज अपने समस्त वहादुर सामंतों से वोला– हे वीरों ! यदि तुम डटकर रण क्षैत्र का चिन्तन करो तो मैं कुछ समय के लिये इस नगर की शोभा देख आऊँ।

वोल्यौ कन्ह अयान न्रप, रे मत मंड समभ्भ।
जो मुक्कौ सत सथ्थियन, तौ सभरि कुल लज्ज ॥३४७॥

शब्दार्थः—समभ्भ=समझ रखता है, ज्ञान वाला है। मुक्कौ=छोड़ता, अलग होता है। सथ्थियन= साथियों से।

अर्थः—काका कन्ह ने कहा–हे अयाने नरेश ! तू मन्त्रणा के मंडन करने में ज्ञान वान है, यदि तू अपने साथियों से अलग होता है तो यह वात चाहुआन वंश के लिये लज्जास्पद है।

जौ मुक्कौ सत सथ्थियन, तौ संभरि कुल लज्ज।
दिक्खन करि कनवज्ज कों, फिर संमुह मरनज्ज ॥३४८॥

शब्दार्थः—मरनज्ज=मरना।

अर्थः—यह सुन पृथ्वीराज वोला–यदि मैं ऐसी आपत्ति के समय साथियों को छोड़ दूँ तो हमारा चाहुवान-वंश लज्जित होता है इसलिये आप यह न सोचलें कि मैं मृत्यु भय से आपसे दूर हो रहा हूँ। मेरा अभिप्राय यह है कि कन्नौज जैसे नगर को एक वार देख लूँ फिर मरना तो सामने है ही।

जानि पंग चहूवान को, मुख जपीय यह वैन।
वोलि सूर सामंत सव, करौ इकट्ठौ सैन ॥३४९॥

शब्दार्थः—मुख जपीय=वुला कर कहा। वैन=वात। सैन=सेना।

अर्थः—उधर पृथ्वीराज को जव पंगुराज ने ठीक तरह जान लिया तव अपने समस्त वहादुर सामंतों को सामने वुला कर कहा कि सेना एकत्रित करो।

कवित्त

पल्ल्यान्यौ जयचद, गिरद सुरपति आकप्यौ।
असिय लक्ख तोखार, भार फनपति फन तप्यौ ॥
सोरह सहस निसान, भयौ कुहराव भूअ भर।
घरी मद्धि तिहुलोक, नाग सुर देव नाम नर ॥

पाइक्क धनुद्धर को गिनै, असी सहस गेंवर गुरहि ।
पगुरौ कहै सामंत सम, लेहु राज जीवत धरहि ॥३५०॥

शब्दार्थः—पल्लान्यौ=रवाना हुआ । गिरद=धूल, रजराशि । आकम्प्यौ=प्रकंपित हो गया । तोखार=तोषार, घोड़े । फनपति=शेषनाग । तप्यौ=सतप्त होगया । कुहराव=कुहराम । पाइक्क=पैदल । गेंवर=हाथी । गुरहि= बड़े २ । कहै=आज्ञा दी । लेहु=लो । जीवत=जीवित ही । धरहि=धर पकड़ो ।

अर्थः—तत्पश्चात् जयचद युद्धार्थ रवाना हुआ, जिससे अकाश धूल से आच्छादित हो गया । यह देख इन्द्र भी प्रकपित हो गया । अस्सो लक्ष घोड़ों के चलने से शेषनाग के फण सतप्त हो गये । सोलह सहस्र नक्कारे बजने से पृथ्वी पर ही नहीं तीनों लोकों के वासी नर, नाग और देवताओं तक में कुहराम मच गया । पैदल और धनुर्धारियों की सख्या इस अपार सेना में क्या गिनी जा सकती है ? जहाँ भारी २ अस्सी सहस्रहाथी दीख पड़ते थे ऐसी सेना के सचालक पगुराज ने सामतों को आज्ञा दी कि पृथ्वीराज को जीवित ही पकड लो ।

हय गय दल धस ममही, सेस सलसलहि सलक्कहि ।
सहस नयन झल झलहि, रैंन पल पूरि पलक्कहि ॥
तरनि किरन मूदयौ, मान द्रगपाल स छुट्टिहि ।
बसंत पवन जिम पत्र, अरिय इम होइ सु थट्टिहि ॥
पायान राय जैचद कौ, विना[1] पिथ्थ कुन अग वै ।
हय लार वहति, भाजत थल, पक चहुट्टै चक्कवै ॥३५१॥

[1] प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—धस मसहि = कुचला जाना । सेस=शेष नाग । सल सलहि=हिल डुल कर । सलक्कहि=खिसकने लगा । सहस नयन=इन्द्र । झल झलहि=अश्रु बूदें झलकने लगीं । पल =पल मात्र में । पलक्कहि=पलकों में । तरनि=सूर्य । मूदयौ = ढप गया । थट्टिहि = तरह । पायान = प्रयाण । विगरि= विना, अतिरिक्त । पिथ्थ = पृथ्वीराज । कुन=कौन । अग वै=लोहा लेना स्वीकार करें । लार=फैन । भाजंत=कुचला जाता । चहुट्टै=चिपक जाना । चक्कवै=रथ चक्र ।

अर्थः —उस विशाल वाहिनी के गज और अश्वों के प्रयाण से कुचलाता हुआ शेष नाग हिल डुल कर खिसकने लगा । पल मात्र में भूमि से उड़ी हुई (ऊपर चढी हुई)

रज राशि पलकों में पड़ जाने से इन्द्र के सहस्र नैत्रों से अश्रु बूंदे झलकने लगी। उस रज राशि में सूर्य किरणें भी लुप्त होगई। दिगपालों का गर्व नष्ट हो गया। वसंत ऋतु के पवन के चलने से जिस प्रकार वृक्षों के पत्ते हिलते हैं। उसी प्रकार शत्रु समूह थर्राने लगा। इस प्रकार प्रयाण कर्त्ता जयचन्द से पृथ्वीराज के अतिरिक्त कौन लोहा ले सकता है? जयचन्द के घोड़ों के द्रुत गति से चलने पर उनके मुँह से फेन पड़ने के कारण स्थल जल प्रवाह युक्त दीख पड़ता है, किन्तु शीघ्र ही रथ-चक्र से कुचला जाकर वही स्थल पंक से पंकित हो जाता है।

विजय नरिंदह तनौ रोस करि इम धरि चल्ल्यौ।
इम हयु[1] खुर खुद्द त, एम पायालह डुल्ल्यौ॥
एम नाद उच्छर्यौ, एम सुर - इदु गयंदहि।
एम कुलाहल भयौ, एम मुहित रवि - इदहि॥
दल असिय लक्ख पक्खर परहि, एम भुअन आकंप भय।
पगुरौ चढ्यौ[2] कविचंद कहि, विन प्रथिराजह को सहय॥२५२॥

प्रा० पा० १ घ० पा० का०। २ पा०।

शब्दार्थः—खुर खुद्द त=टाप मारना। पायालह=पाताल। उच्छर्यौ=छागया। गयंदहि=गजेन्द्र। कुलाह=कुलाहल, कोलाहल। मुहित=मुदित, छिप जाना। भुअन=प्रत्येक लोक। सहय=सहसकता, लोहा ले सकता।

अर्थः—विजय पाल के पुत्र जयचंद के क्रोधित हो प्रयाण करने से हाथियों का चलना, अश्व समूह का जमीन पर टाप मारना, पाताल का डगमगाना, शोर गुल का छा जाना, सुरेन्द्र और गजेन्द्र (दिगपालों) की दशा बदलना, कोलाहल का होना, सूर्य चंद्र का छिप जाना, घोड़ों पर पाखरें पड़ना और प्रत्येक लोक का प्रकम्पित होना, यह सब दृश्य एक साथ हुए जिसे देख कर कविचंद कहता है ऐसे प्रयाण कर्ता से पृथ्वीराज के अतिरिक्त अन्य कौन लोहा ले सकता है?

एक एक अनुसरिग, अंगदह लच्छि कोटि नर।
धानुक धर को गिनै, लक्ख पच्चासक हैंवर॥
सहस हस्ति चवसट्ठि, गरुअ गाजंत महा भर।
समुद सयन उलटत, डरहिं पन्नग सुर आसुर॥

सेन-समुद्र [illegible] [illegible] [illegible] सुर पुन्नन चलिग ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥३५३॥

शब्दार्थः—[illegible]—[illegible] करने लगे । [illegible]=अगस्त्य तुल्य । [illegible] वर=धनुर्धारी । [illegible]=[illegible] । [illegible]—[illegible] योगिनियां । गरज्ज [illegible]=गर्जना करने वाले गर्वीला । [illegible]=विशेष संख्या में । [illegible] [illegible] [illegible] । [illegible]=[illegible] नाग । [illegible]=पृथ्वी । [illegible]=सूर्य ।

अर्थः—लाखों और करोड़ों की संख्या में अगस्त्य तुल्य अडिग सैनिक मिलकर एक दूसरे का अनुसरण करने लगे । उस सेना में धनुर्धारी गिने नहीं जा सकते थे । पचास लाख के करीब अश्वारोही, एक सहस्र हाथी, चौंसठ ही योगिनियां और विशेष संख्या में गहरी गर्जना करने वाले योद्धा थे । जयचन्द की उस समुद्र तुल्य सेना के चढ़ाई करने से नाग और देव दानव भी डरने लगे । पृथ्वी से धूल उड़ने पर ऐसा दिखाई देने लगा मानों सूर्य की पूजा के लिये पृथ्वी ऊपर उठी हो । उस समय दुर्ग ढह गये, जल के स्थान पर स्थल हो गया । ऐसे ७ दृश्य देखने को मिले ।

[illegible] [illegible] [illegible] लुपित, [illegible] वीरनि गन चाडय ।
अच्छरिय अंग बनाइ, सग देवनि त्रिय लाडय ॥
[illegible] [illegible] ननकि, राग स्वधुव धुनि मड्डिय ।
[illegible] [illegible] विमान, सीस कुसमंजलि छड्डिय ॥
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], तिहि ऊपर यह भर मडिग ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] तालों छड्डिय ॥३५४॥
[illegible] [illegible] [illegible] प्रति में ।

शब्दार्थः [illegible] हो गया, छिप गया । अच्छरि=अप्सरा । अंग बनाइ=शृंगार कर । [illegible]—[illegible] । [illegible]—[illegible] । [illegible]—[illegible] । धुनि=ध्वनि । मड्डिय=छागई । [illegible]—[illegible] । [illegible] [illegible] । [illegible]—कुसुमांजलि । छड्डिय=छोड़ी, बरसाई । सोमेस=द्वितीय [illegible] । [illegible]—[illegible] । [illegible]=समाप्ति । [illegible]—[illegible] गई ।

अर्थः [illegible] [illegible] से [illegible] धूलि से नभ-मण्डल छिप गया, ललकारते हुए वीर [illegible] दूसरे पर [illegible] करने लगे, अप्सराएँ शृंगार कर देवाङ्गनाओं को साथ में [illegible] [illegible], [illegible] और [illegible] का नाद होने लगा, सिंधुराग की ध्वनि [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] पुष्प वर्षा करने लगे, धन्य है–

चाहुवान वीर द्वितीय सोमेश्वर को जिससे युद्ध करने के लिये ऐसे यौद्धागण सुसज्जित हुए हैं। जिनके आघात से पृथ्वी धडधडाने लगी है, यह देखकर सिद्ध लोगों की भी समाधियाँ छूट गई (रामौकार की एक शैली यह भी है कि पुत्र को पिता के नाम से सम्बोधित कर उसी के समान वीर होने का सकेत करता है, यहां पर भी पृथ्वीराज को उसी शैली के अनुसार "सौमेस" कहा गया)।

दोहा

जल थल मिलि हुअ पंक हुअ, तुटि तरवर जर[1] मूल।
देखि सयन[2] सामंत वल, छलन कि वामन फूल ॥३५५॥

मा० पा० १ घ० पा०। २ का० पा०।

शब्दार्थः—तुटि=टूट पडे। तरवर=वृक्ष। सयन=सेना। फूल=फूले हों, उत्साहित हुए हों।

अर्थः—इस प्रकार जयचन्द की सेना को बढती हुई देखकर पृथ्वीराज की सामंत-मण्डली वामनावतार के सदृश उत्साहित होकर पृथ्वी के तीन पैंड (पैर) भरती हुई चल पड़ी, जिससे जल और स्थल मिलकर पंक हो गया और वृक्ष जड़ से उखड़ गये।

कवित्त

डर द्रुग्गम खर हरहि, अढर ढरि परहि गरुअ गिरि।
त्रिन वन घन टूटत, धरनि धस मसहि हयनि भरि॥
सर समुद खर भरहि, डिढह डिढ डाह करक्कहि।
कमठ पिट्ठ कलमलहि, पहुमि महि प्रलय पलट्टहि॥
जयचन्द पयानौ सभरत, फुनि ब्रह्मंड विछुट्टिहय।
मम चलहि मचलि मम चलि मचलि, चलहित प्रलय पलट्टिहय ॥३५६॥

शब्दार्थः—द्रुग्गम=दुर्ग। खर हरहि=थर्रा जायेंगे। अढर=नहीं लुढकने जैसे। ढरि परहि=लुढक जायेंगे। धस मसहि=खिसक जायेगी। सर=तालाब। खर भरहि=अशान्ति फैल जायेगी। डिढह=दढियल, वाराह। डिढ डाह=दृढ दन्तुसल। करक्कहि=तडक्ने, फटने लगेगी। कमठ=कच्छप। कल मलहि=कलमलाने, सिकुड़ने। पलट्टहि=आ जायगा। विछुट्टिहय=छूट पडेगा। मम=मत। चलहित=चलोगे तो। प्रलय-पलट्टि-हय=प्रलय भी लौट जायगा युग-परिवर्तन होगा।

अर्थः—यह देखकर कवि, सामंतों को सम्बोधित कर कहता है—हे वीरों तुम्हारा भय पाकर दुर्ग थर्रा जायेंगे, नहीं लुढक्ने वाले पहाड़ भी लुढक पड़ेंगे, अश्व-पदों के तले

बन स्थित तृण कुचला जाकर जमीन खिसक पडेगी, तालावों और समुद्रों में अशांति फैल जायगी, वाराह की विशेष दृढ़ दन्तुमल तड़कने (फटने) लगेगी, कच्छप की पीठ अति भार से पीड़ित हो सिकुडने लगेगी, पृथ्वी पर प्रलय छा जायगा और ब्रह्माण्ड छूट पड़ेगा । जयचद का प्रयाण सुनकर तुम मचल २ कर मत चलो। यदि मचल २ कर चलोगे तो तुम्हारे से भयभीत हो स्वयम् प्रलय भी लौट जायगा (या युग का परिवर्तन हो जायगा)।

दल्ल राजन मिलि विभजि, अट्ठ दिग्ग कर वर करि ।
कर धरत द्रिग अट्ठ, डड्ढ वाराह मुरहि हरि ॥
हरि वराह दिढ दड्ढ, करतु फनवे फन टारहि ।
फनिवै फनह टरत, कमठ खोपरि जल भारहि ॥
भारहि सु जल्ल खुप्परि उच्छरि, उच्छरि है पायाल जल ।
जल होत होय जग तै प्रलौ, समु चढि चढि जैचद दल ॥३५७॥

शब्दार्थः—दल-राजन=पृथ्वीराज की सेना । विभजि=संहार करने लगेगी । दिग्ग = दिगपाल । कर=सूंड । वर = बल । करि=करेंगे । कर-धरत = सूंड मिलाने पर । द्रिग-अट्ठ=आठों दिगपाल । डड्ढ=दाढ, दन्तूमल । हरि=हरिस्वरूप, अवतारधारी । फनवै = फनेश, शेषनाग । जल-भारहि=जल मग्न हो जायगी । खुप्परि=खोपड़ी । उछरि=उछालेगा, हिलायगा । पायाल= पाताल । प्रलौ = प्रलय । समु=सामने ।

अर्थः—यदि पृथ्वीराज की सेना मिलकर शत्रुओं का सहार करने लगेगी तो आठों दिग्गज सभलने के लिए एक दूसरे से सूंड मिला कर बल करेंगे, आठों दिगपाल एक दूसरे की सूंड से सूंड मिला बल करेंगे तो अवतार धारण करने वाले वाराह की दन्तुसल मुड़ जायगी। यदि वाराह ने अपनी दन्तुमल दृढ़ करली तो शेष नाग का फन फिसल जायगी। यदि शेष नाग ने फन फिसला कर भार को टाल दिया तो कच्छप विशेष समय तक जल मग्न रहेगा और उसकी खोपडी में जल प्रवेश कर जायगा। खोपडी में जल भर जाने के कारण यदि उसने खोपडी हिलादी तो पाताल का जल उछल कर वाहर आजायगा। इस प्रकार जल-उछलने से ससार में प्रलय हो जायगा। इसीलिये हे वीरों ! जयचन्द के दल पर चढाई मत करिये ।

दोहा

मढरि मटरि छोनी सु त्रिय, सत करि छिनक सवल्ल ।
छत्रपति करि जारन भग्गि, न नित निनह नवल्ल ॥३५८॥

शब्दार्थ:—मदरि-मदरि=मत लुढक, मत भ्रम। छीनो=कुमारी स्वरूपा पृथ्वी। छतकरि=सत्य को ग्रहणकर। जीरन=जीर्ण। भखिग=भक्षण कर गई। नवल्ल=नवेली।

अर्थ:—हे कुमारी स्वरूपा पृथ्वी! तू इतनी मत भूम, हे बलवती क्षण मात्र के लिये सत्य ग्रहण कर (एक ही स्वामी की होकर रह) किन्तु तेरा तो अनादिकाल से यही स्वाभाव है कि तू जीर्ण (पहले के या पुराने) छत्र-धारियों को भक्षण कर जाती है और आप स्वय नित्य नवेली ही बनी रहती है।

धमधमकि धुक्किनि खमहि, रमहिन गग सु तट्ट।
गहहि चपि चहुआन को, भव भरि मुहित सु वट्ट ॥३५६॥

शब्दार्थ:—धमधमकि=धड़धड़ाने लगी। धुक्किनि-खमहि=धक्का सहती, टक्कर सहती। रमहिन=रण कौतुक करने लगे। भवभरि=ससार भर में। मुहित=महत। सु=जिसका। वट्ट=वट, ऐंठ।

अर्थ:—गङ्गा तट स्थित सेनाएँ रण कौतुहल रचने लगा, जिससे पृथ्वी टक्कर सहती हुई धड़धडाने लगी, किन्तु जो सारे ससार में महान वट वाला है। ऐसे चाहुआन (पृथ्वीराज) को कौन पकड सकता है ?

हयनि उ च पक्खर परिय, तुरिय कि करिय वलग।
जिन धक्कनि तरवर परहि, चमकत छाह प्रलग ॥३६०॥

आ० पा दे० प्र० से।

शब्दार्थ:—ऊँच=ऊँचे २। वलग=स्वेच्छाचारी, बिलग, श्रृंखला रहित। प्रलग=कूदना, उछलना।

अर्थ:—ऊँचे २ घोडे पाखरों से सुसज्जित थे, वे घोडे क्या थे मानों श्रृंखला रहित हाथी थे जिनकी टक्कर लगने से बडे २ वृक्ष टूट पड़ते थे। छाया की तनिक सी झलक पडते ही वे चमक कर कूद पडते थे।

रोस परे लग्गत मगन, धर धीरे जनु थभ।
असवारनि मन सचरत, तुरी कि पवन अचभ ॥३६१॥

पा०पा० दे० प्रति से।

शब्दार्थ:—रोस परे=क्रुद्ध (युद्ध) छिड जाने पर। मगन=मग्न, प्रसन्न। धर धीरे=धैर्य धारण कर्ता। थम=स्तम्भ। असवारनि=सवार के। अचंभ=आश्चर्यदायक।

अर्थ:—क्रुद्ध (युद्ध) छिड जाने पर वे घोडे प्रसन्नचित, धैर्य मे अडिग स्तभ, सवार के मन के साथ सचार करने वाले एव आश्चर्यदायक पवन तुल्य थे।

लगे लोह प्रगन गनत, भुनत धरनि खुर घाइ ।
वागलेत पखी कहा, पवनहि जात भुलाइ ॥३६२॥
प्रा० पा० दे० प्रति से ।

शब्दार्थः—लगे लोह=शस्त्राघात । खुर घाइ=पद प्रहार । वाग लेत=राम खींचने पर । पखी=पक्षी । कहा=क्या । जात भुलाइ=भुलाया जा सकता ।

अर्थः—शस्त्राघात की भी उन्हें परवाह नहीं थी । अपने पद प्रहार द्वारा वे पृथ्वी को कम्पित कर देते थे । उन घोड़ों की रास खींचने पर बेचारे पक्षी तो क्या पवन भी उनकी गति को नहीं पहुँच सकता था (पवन का भी भुलाया जा सकता था) ।

फौजै फटति सिवाल जनु, अस पवग वल अग ।
स्वामि लीयै मन सचरत, करत सत्र घट भग ॥३६३॥
प्रा० पा० दे० प्रति से ।

शब्दार्थः—फटति=यत्र यत्र हो जाती । सिवाल=काई । अस=ऐसी । पवग=घोडे । वल अग=अग शक्ति । सत्र=शत्रु । घट=शरीर । भग=नाश ।

अर्थः—उन घोडो की अग शक्ति ऐसी प्रबल थी जैसे जल से सहज ही काई हटाई जा सकती है उसी प्रकार उनकी (घोड़ों की) टक्कर से सेनाएँ यत्र तत्र हो जाती थी । वे स्वामी को पीठ पर लिये हुए उसके मन के अनुकूल चलकर शत्रुओं के शरीर का नाश कर देते थे ।

देस सु देस सुवेस तन, वनक वनै अँग अग ।
रणित जलाजलि धरत धुनि, चमर धार छवि गग ॥३६४॥
प्रा० पा० दे० प्रति से ।

शब्दार्थः—देस–सु–देस=देशी विदेशी । सुवेस=श्रेष्ठ आयु वाले कम उम्र वाले । वनक वने=अच्छे सजाये हुए । रणित=रुनझुन । जलाजलि=झलाझल, चमचमाते हुए । धार=धारा, प्रवाह ।

अर्थः—वे घोडे देशी विदेशी जाति के कम उम्र वाले और सुन्दर काय थे । उनके प्रत्येक अग चमचमाते हुए साजों से सजाये हुए थे और चलने पर पदाभरणों की रूनझुन ध्वनि हो रही थी । उन पर हिलते हुए चमर गङ्गा प्रवाह की भाँति शोभित होते थे ।

करिग देव दक्खिन नयर, गंग तरंगिनि कूल ।
जल सीतल निम्मल निरखि, मीन चरित्रनि भूल ॥२६५॥

शब्दार्थः—दक्खिन=देखने के लिये। नयर=नगर। मीन=मछलियां । चरित्रनि=चरित्रों को। भूल=सुधि भूल गया, स्मृति विहीन हो गया।

अर्थः—सामंतों के सामने देव तुल्य पृथ्वीराज नगर देखने की प्रतिज्ञा कर चला था। वह गंगातट की तरंगों और शीतल निर्मल जल तथा जलस्थित मछलियों के चरित्रों को देखता हुआ स्वयं को भूल गया।

सुनि आयौ संभरि नृपति, मुदित संजोगिनि कंति।
चढि गवगह दिक्खन कह, देववरंगिणि भंति ॥२६६॥

शब्दार्थः—कंति=कान्ता, बालिका, कुमारी। गवगह=गवाक्ष। दिक्खन कह=देखने के लिये। देववरंगिणि=देवाङ्गना। भंति=भांति, तरह।

अर्थः—सुन्दरी संयोगिता को जब ज्ञात हुआ कि संभरी नरेश (पृथ्वीराज) आये हुए हैं तो वह प्रसन्न होकर देखने के लिये झरोखे में जा देवाङ्गना के समान खडी हो गई।

सुनि वज्जन संजोग, सुनिय आवन्न नृपति वर ।
भयो चित्त चर चित्त, मित्त संभरि सुरगनर ॥
बलविंटिय राजनह, लाज रक्खी मत किन्नौ ।
कुँवरि गोखसिर रही, चढि सुन्दरि वर चिन्हौ ॥
दिसि पुब्ब देखि चहुआन नृप वर लोचन मन खग्ग मग ।
उग्गम्म बाल चिंतै सुचल, (मनु)पुब्ब दिसा दौ रवि सु उग ॥२६७॥

शब्दार्थः—वज्जन=बाजे। चित्त=चिन्तन। बल=शक्ति। विंटिय=घेरलिया। लाज-रक्खी=लज्जा रखने का, बात बनी रखने का। मत=मंत्रणा, विचार। गोख-सिर-रहि=गवाक्ष में आकर खड़ी हो गई। वर-चिन्हौ=प्यारे की प्रतिक्षा करने लगी, प्यारे को देखा। खग्ग-मग=खड़गये उसी रास्ते को, उसी ओर चल पड़े।

अर्थः—रणवाद्यों के बजने पर ही संयोगिता को ज्ञात हुआ था कि श्रेष्ठ नरेश्वर पृथ्वीराज(उसी के लिए) यहाँ आये हुए हैं उस सुरंगे प्यारे का चिंतन करने से उसका चित्त चंचल होगया, उसने यह भी सुनाकि राजा (जयचन्द) की शक्ति ने उसे घेर

लिया है तब उससुन्दरी ने उसकी (पृथ्वीराज की) बात रखने का विचार किया और खडी होकर अटारी के गवाक्ष मे आकर प्यारे की प्रतिज्ञा करने लगी। उसने पूर्व दिशा को प्रात गङ्गा के तट पर चाहुआन राजा को खडा हुआ देखा तो उसके नेत्र और उसका मन उसी ओर चल पडा वह बाला पूर्व दिशा मे पृथ्वीराज और सूर्य को देख कर चित्त से चिन्तनकर कहने लगी अहो आज दो सूर्य साथ २ उदय हुए है।

कुंजर उप्पर सिंघ, सिंघ उप्पार दुय पव्वय।
पव्वय उप्पर भ्रंग, भ्रंग उप्पर ससि सुम्मय ॥
ससि उप्पर इक कीर, कीर उप्पर मृग दिठ्ठौ।
मृग उप्पर कोवंड, संध कंद्रप्प बयठ्ठौ ॥
अहि मयूर महि उप्परह, हीर सरस हेमन जर्‌यौ।
सुर भुअन छंडि कवि चन्द कही, तिहिं धोखै राजन पर्‌यौ ॥२६८॥

शब्दार्थ:—पव्वय=पर्वत। सुम्मय=सुशोभित। कीर=शुक। कोवंड=कोदंड, धनुष। संध=संधान किये हुए। कंद्रप्प=कंदर्प, काम देव। महि उप्पर=उसी में,उसी के समीप। हेमन-जर्‌यौ=स्वर्ण जटित।

अर्थ:—इतने मे पृथ्वीराज की दृष्टि भी गवाक्ष की ओर पडी तो उसने देखा—हाथी पर सिंह, सिंह पर दो पर्वत, पर्वतों पर दो भृंग, भृंगों पर चन्द्रमा, चन्द्रमा पर शुक, शुक पर मृग और मृग पर धनुष संधान किये हुए कामदेव बैठा है। उसके समीप ही सर्प और मयूर साथ २ सुशोभित है एव स्वर्ण जटित हीरा भी वहा दमदमा रहा है। कवि चन्द कहता है स्वर्ग तुल्य अपने भवन को छोड कर राजा (पृथ्वीराज) इसी अद्भुत दृश्य के कारण धोके मे पड गया (उसी संयोगिता के कारण आपत्ति में पडा—यहा हाथी से संयोगिता को गज तुल्य गति, सिंह से कटि, दो पर्वतों से कुच, दो भ्रंगों से श्याम कुचचंचु, चन्द्रमा से मुख, शुक से नासिका, मृग से नैत्र, धनुष से भौंहें, कामदेव से काम जहा निवास करता है वही भालस्थल, सर्पसे चोटी मयूर से सिर के बाल या—कंठाकृति और स्वर्ण जटित हीरे से वेदी समझना चाहिये)।

भूल्यौ नृप इन रंग महि, पग चढ्यौ हय पुट्टि।
सुनि सुन्दर वर वज्जने, अइ अपुव्व कोइ दिट्ठ ॥२६९॥

शब्दार्थ:—इन रंग महि=इस रंग मे। पुट्टि=पीठ। वर वज्जने=श्रेष्ठ बाजों की आवाज। दिट्ठ=देखने के लिये।

अर्थः—पृथ्वीराज इसमें इतना तन्मय हो गया कि उसे यह भी ज्ञान नहीं रहा कि पगुराज मेरे पीछे सामंतों पर हमला कर रहा है। इधर श्रेष्ठ रण वाद्यों का नाद सुन कर सयोगिता की सहेलियां आदि भी अट्टालिका पर आ चढ़ी। और पृथ्वीराज को गङ्गा तट पर देख कर कहा, यह कोई अनुपम पुरुष है।

देखत सुन्दरि दल मिलनि, चमकि चढौ मन आस।
नर कि देव किधों नाग हर, गग हसंत निवास ॥३७०॥

शब्दार्थः—दल मिलनि=सेना का मिलना। चमकि=चकित हो। चढौ-मन-आस=मन से अभिलाषित हो। हर=रुद्र।

अर्थः—दोनों ओर की सेना का मिलना सुन देखने के लिये अट्टालिका पर आई हुई सयोगिता की सहेलियाँ पृथ्वीराज को देख कर चकित और मन से अभिलाषित होती हुई शका करने लगी कि यह भव्य वीर-नर है, देवता है अथवा कामदेव या रुद्र-स्वरूप है इसे देख कर गंगा और गगा तट स्थित यह महल भी अपनी उज्वलता के बहाने मानों मुस्करा रहे हों।

इक्क कहे दनु देवु[1] इह, इक कह इंद फुनिंद।
इक्क कहै अस कोटि नर, इक प्रथिराज नरिंद ॥३७१॥

प्रा० पा० १ दे०।

शब्दार्थः—दनु=दानव। इद फुनिंद=इन्द्र अथवा नागदेव।

अर्थः—उनमे से किसी ने कहा-दानव है या देव है? कोई बोल उठी, यह इन्द्र है अथवा नागदेव है? तब एक ने कहा-इस श्रेणी का मनुष्य तो केवल एक पृथ्वी-राज ही हो सकता है (अर्थात् उसने पृथ्वीराज का होना ही निश्चय कर सूचित किया)।

गाथा

दिष्टा मा चहुआन, समर कामं समायते।
कमधुज्ज वर वीर, विगलति नो बीवन बसति ॥३७२॥

शब्दार्थः—दिष्टा=देखा। समर=युद्धरत। काम=विलास युक्त। विगलति=विलग होगी, बिछुड़ेगी। नो=नहीं। बीवन=अन्य। बसति=बसता, स्थान पाता।

अर्थः—उपर्युक्त सखी के कहने से पृथ्वीराज का होना निश्चय हो गया तब सब ने (उस) चहुआन को देखा। वह युद्ध रत और विलास युक्त दिखाई दिया। तब एक सखी ने कहा श्रेष्ठ वीर कमधज (जयचन्द) से (अपने पिता से) यह (संयोगिता) बिछुड़ना पसन्द करेगी। क्योंकि इसके हृदय में इस वीर (पृथ्वीराज) के अतिरिक्त अन्य ने कभी स्थान पाया ही नहीं है।

सुनि रव सुन्दरि उम्भतन, उदित रोम अँग अग।
स्वेद कंप सुरभगु भौ, बयन पिक्खि पिथ रग ॥२७३॥

शब्दार्थ—रव=आवाज, वचन। उम्भतन=स्थभित। रोम=रोमाञ्च। अंग अग=शरीर पर। स्वेद=पसीना। सुरभगु=स्वर भग। पिक्खि=देखकर। रग=रगीले चरित्र।

अर्थः—इस प्रकार सहेलीयों के वचन सुनकर तथा पृथ्वीराज की वय और रगीले चरित्र को देखकर सुन्दरी संयोगिता स्थभित हो गई और उसको रोमाञ्च, स्वेद, कप और स्वरभग हो गया।

मच्छ उछ्गन मुत्ति कर, रसन हसन दब दिट्ठ।
प्रति वच रच इन रूप रस, अवसु फेरियन पिट्ठ ॥२७४॥

प्रा० पा० दे० प्र० से।

शब्दार्थः—मच्छ=मछलियां। उछ्गन=उछालना। मुत्ति=मुक्ता। रसन=रसना, जिह्वा। हसन=हँसने लगी। दब=दबा कर। दिट्ठ=देखकर। वच=वचन। रच=राच कर, लीन होकर। अवसु=अवश्य। फेरियन-पिट्ठ=पीठ फेरेगा, लौट जायगा।

अर्थः—देव स्वरूप पृथ्वीराज कौतूहल वश मछलियों को मोती उछाल २ कर चुगा रहा था, उसे देखकर वे सब अपनी जिह्वा को दांतों में दबा कर हँसने लगी और उसके रूप रस में लीन हो प्रत्येक कहने लगी, मुक्ता समाप्त होने पर अवश्य यह लौटेंगे।

गाथा

पिय नेह विलवती, अवली अलि गुंज तेन दिट्ठाया।
परसान सह हीन, भिन्न किं माधुरी माधू[१] ॥२७५॥

प्रा० पा० १ दे०।

शब्दार्थः—नेह=स्नेह। विलवती=विलमती,' लीन हुई। अवली अलि=अलिपक्ति। गु ज-तेन=गूजती हुई। दिक्राया=देखा। परसान=स्पर्श। सद हीन=जो बोल नहीं सकते। माधुरी=मधुरिमा। माधू=मधु।

अर्थः—उस समय प्यारे के स्नेह मे लीन हुई सयोगिता ने गु जार करती हुई अलि-पक्ति की ओर देखा और कहा- जो बोल नहीं सकते क्या उनका स्पर्श नहीं होता? देखिए- मधु और मधुरिमा में क्या कभी भिन्नता दीख पड़ता ? (अर्थात् सखियों से सकेत है कि जिस प्रकार मधु और मधुरिमा भिन्न नहीं है उसी प्रकार मुझे और प्रिय पृथ्वीराज को भिन्न मत समझो)।

दोहा

सुदरि धरि श्रवननि सुन्यौ, गुन कह्यौं गुन विद्ध।
ठग मग पत्ति प्रतच्छि पिय, प्रसनह पत्ति प्रसिद्ध ॥३७६॥

शब्दार्थः—धरि-श्रवननि-सुन्यौ=कान लगा कर (ध्यान पूर्वक) सुना। गुन-कह्यौं=सोच समझ कर कहती हूँ। गुन विद्ध=गुणों द्वारा बाध्य कर। पत्ति=पहुँचा दूगी, ले आऊँगी। प्रतच्छि-पिय=प्रत्यक्ष पति। प्रसनह=प्रछन्न, गुप्त। पत्ति=पहुँची।

अर्थः—सयोगिता के उपरोक्त कथन को एक सुन्दरी ने ध्यान पूर्वक सुना और कहा— हे सयोगिता! मैं सोच समझ कर कहती हूँ कि मैं तेरे प्रत्यक्षपति (वास्तविक पति) को अपने गुणों द्वारा या छद्म मार्ग द्वारा बाध्य करके गुप्त रूप से यहाँ ले आऊँगी। यह कह कर वह प्रसिद्ध-पट्ट-सुन्दरी राजा (पृथ्वीराज) के पास पहुँची।

अजुलि जल मडिग नृपति, जब वित्ते गल मुत्ति।
जलह लभै अ मनु कियौ, स्वमी ति बाल निवत्ति ॥३७७॥

शब्दार्थः—जब=जब। वित्ते=समाप्त हो गये। गल=ग्रीवा।

अर्थः—मछलियों को चुगाते २ जब ग्रीवा (माला) के मोती समाप्त हो गये, तब उस दिवस का मुक्ता दान समाप्त समझ सकल्प करने को जल के लिये पृथ्वीराज ने अजलि पसारी (उसे यह ज्ञात था कि मेरे आसपास बहुत से सेवक खडे हैं। इसी लिये उसने जल के लिये हाथ पसारा)। सयोगिता के पास से आई हुई सहेली द्वारा उसे अजलि मे जल प्राप्त हुआ। जल प्राप्त होने पर भी उसे जल किसके द्वारा

और किस लिये प्राप्त हुआ है इसका भान नहीं रहा, किन्तु जब अंजली में जल डालने के साथ ही "इस नक्षत्र-स्वरूपा बाला को स्वीकार कर क्षमा करते रहियेगा" वाक्य सुनाई पडा तब उस चतुर सहेली से संयोगिता के संकल्प का ज्ञान हुआ।

गौख निरक्खहि सुभ्भ त्रिय, होयै हरक्खहि बाल।
उभै पाणि इक्कत करिग, दिक्खि गुरज्जन हाल ॥३७८॥

शब्दार्थः—सुभ्भ=श्रेष्ठ। उभै-पाणि-इक्कत-करिग=दोनों के हाथ मिला दिये, पाणि ग्रहण करा दिया। दिक्खि=देखकर, सोचकर। गुरज्जन-हाल=गुरूजन के विरुद्ध विचार।

अर्थः—तत् पश्चात् श्रेष्ठ बालाएँ झरोखे से देखती हुई हृदय में प्रसन्न हुई। उसी समय संयोगिता का पाणि ग्रहण गन्धर्व विवाह की विधि से सखियों द्वारा इसी लिये किया गया कि जयचन्द इस विवाह के विरूद्ध था।

यह विध्धी अविधाय कहि, विध्धिय विध्ध निषिद्ध।
सुक्ख सु विद्धिय जानसौ, मुक्खह तिद्धनि विद्ध ॥३७९॥

शब्दार्थः—अविधाय=अवैधानिक। विद्धिय-विद्ध=विधाता द्वारा रची विधी, वेद विधि। मुक्खह=प्रमुख, प्रधान। तिद्धनि=वे धन्य हैं। विद्ध=विधि।

अर्थः— लौकिक व्यवहार में और वेद विधान में ऐसी विधि (इस प्रकार के विवाह) को अवैधानिक और निषिद्ध कहा गया है, किन्तु जो जीवन-सुख की विधि को जानने वाले हैं वे धन्य हैं। उनके लिये यह विधि प्रधान है।

वरि चल्ल्यौ ढील्ली नृपति, सुत जयचद कुमारि।
गठ छोर दच्छिन फिरिग, प्रान करिग मनुहारि ॥३८०॥

शब्दार्थः—वरि=वरण कर। सुत=श्रुत, सुनी गई। गठ छोर=गठ बन्धन छोड़। दच्छिन फिरिग=दक्षिण की ओर जाने लगा। मनुहारि=मनुहार, आग्रह।

अर्थः—इस प्रकार जयचद की कुमारी को दिल्ली पति वरण करके चला गया। यह घटना यत्र तत्र कही सुनी जाने लगा। पृथ्वीराज और संयोगिता की सहेलियों द्वारा गठ बन्धन किया गया था। वह गठ बन्धन छोड़ पृथ्वीराज दक्षिण की ओर, जिधर वह अपने सामंतों को छोड़ कर आया था, उस ओर जाने लगा, तो संयोगिता के प्राण उसे रोकने के लिये आग्रह करने लगे।

जौ जपो तो जित्त हर, अनजंपै विहरत्त।
अहि डट्ठ छछुदरी, हियै विलग्गी वत्त ॥३८१॥

शब्दार्थः—जित हर=विजय में बाधा। विहरत्त=जाते हैं, विछुड़ते हैं। डट्ठ=दाढ़ों में, मुँह में। विल्लग्गी=लग गई, हो गई। वत्त=बात, दशा।

अर्थः—संयोगिता मन ही-मन कहने लगी, यदि प्यारे को जाने से रोकती हूं तो उनकी विजय में बाधक होती हू और चुप रहती हूं तो ये मुझ से बिछुड जाते हैं। इस दुविधा ग्रस्त बात से उसकी दशा उस समय छछुंदर को ग्रसे हुए सर्प की सी थी।

श्लोक

प्रयाने पंग पुत्री च, जैतिकं जोगिनीपुर।
विधि सर्व निषेधाय, तांबूल ददत नृप ॥३८२॥

शब्दार्थः—प्रयाने=प्रयाण समय, विदा होते समय। जैतिक=विजयोत्सुक। निषेधाय=उपेक्षाकर। ददत=दिया।

अर्थः—विजयोत्सुक पृथ्वीराज के प्रयाण के समय पगु कुमारी ने और सब युक्तियों की उपेक्षा कर आदर पूर्वक केवल ताम्बूल भेंट किया (ताम्बूल-लता को नागर वल्लि कहते हैं इस सकेत से उसका आशय "मुझ चतुर नागर लता को नहीं भुलाना" हो सकता है या "मेरे हाथों द्वारा पान समर्पित कर जो रग रचा रही हूँ। वह रग आपके हृदय मे रचा रहे" अथवा—"उस दिन रविवार रहा हो तो शकुन विचार के अनुसार मगल कामना के लिये पान समर्पित किया गया हो।" वर-वधु के पाणि-ग्रहण के समय मेहँदी के साथ नागरवेल का पान दोनों के हाथों के मध्य रक्खा जाता है। सभव है पान इस आशय से समर्पित किया गया हो कि आपके और मेरे पाणि ग्रहण करने का साक्षी यह तांबूल है। अत आप स्वय न भूलें और यह ताम्बूल भी स्मृति दायक हो")

गाथा

सुनि इंदो अनुराओ, दिट्ठी रिझ्झाइ सव्व सो अप्पं।
दै हथ्थ हवि छुट्टा, हाह जे वज्जनो हिययौ ॥३८३॥

शब्दार्थः—अनुराओ=अनुरागी। रिझ्झाइ=प्रसन्न। सव्व=सब। अप्प=अर्पण। हवि=अब। हाह=खेद। वज्जनो=वज्रतुल्य। हिययौ=हृदय।

अर्थः—मुग्ध कर लेने वाली सयोगिता की दृष्टि के पाणग्र को समझ कर उन्द्र के समान अनुरागी राजा पृथ्वीराज ने उसे सर्वस्व अर्पण कर दिया। इस प्रकार कुमारी को हाथ पकड कर पाणीग्रहण कर छोड दिया यह देखकर सहेलियें कहने लगी। खेद का विषय है कि वीर-पुरुष का हृदय बहुधा वज्र तुल्य होता है।

> हजेह आह नखी, कपी तनयाइ[1] काम मजोई।
> त्रिढा[2] अधार विनस, या बाले[3] जीवन कुत्त[4] ॥२८४॥

प्रा० पा० १ से ४ दे०।

शब्दार्थः—हजेह=सजेह, सयोगिता (आज भी सुन्दर स्त्री को राजस्थान में "हजा" कहते हैं और पृथ्वीराज और सयोगिता की स्मृति में यह गायन "हजा मारू यांही रोनी" स्त्रियां गाती हैं जिसका आशय "सयोगिता के पति आज यहीं रहिये" होता है)। त्रिढा अधार=निराधार। विनस=विनाश। कुत्त=क्या कितना।

अर्थः—काम द्वारा प्रज्वलित दीप-शिखा के समान वह सुकुमारी सयोगिता पति विछोह के कारण निश्वास डालने लगी और उसका शरीर कापने लगा। निर्विवाद है कि जो निराधार है उसका जीवन कितना हो सकता है? वह एक दिन अवश्य नाश को प्राप्त होता है।

दोहा

> रैन परै सिर उप्परै, हय गय गहर[1] उछार।
> मनहु ठग्ग ठग मूरिलै, रहिग सबै मुछार ॥२८५॥

शब्दार्थः—रैन=रेणु। गहर=गहरी। मूरिलै=मूल तक। मुछार=मूँछधारी।

अर्थः—उधर पृथ्वीराज के न होने से सामतों के हृदयोद्गार के लिये कवि लिखता है— पगुराज की विशाल वाहिनी के गर्जना करते हुए हाथी-घोडों द्वारा उछली हुई रेणु सिर पर आकर गिर रही थी। उस समय पृथ्वीराज के मूँछधारी वीरों की ऐसी दशा थी मानों ठगों ने ठगे जाकर अपनी मूल पूँजी गँवा दी हो (सयोगिता का हरण करने के लिये आये और राजा को गँवा बैठे)।

> मनहु वद्ध[1] अज[2] हेति[3] भर[4], हैति न जानत थट्ट।
> वचन स्वामि भग न करहि, सह देखहि नृप वट्ट ॥२८६॥

प्रा० पा० १ से ४, पा०।

शब्दार्थ:—वग्घ=व्याघ्र । अज=अज, बकरा, छेरा । हेति=के लिये । हेति=हित । भर=भट, सामंत, वीर । थट्ट=समूह । वट्ट=बाट, प्रतीक्षा ।

अर्थः—अज रूपी शत्रुओं के भक्षण के लिये पृथ्वीराज के वे वीर व्याघ्र स्वरूप थे वे सब अपने हित का ध्यान न देकर स्वामी के आज्ञा पालक थे, अत स्वामी की प्रतीक्षा करने लगे ।

अवलोकति तन स्वामि मन, भौ सामतनि सुक्ख ।
हँसहि सूर सामत मुख, कायर मानहि दुक्ख ॥३८७॥

शब्दार्थ:—अवलोकति=देखकर ।

अर्थः—इतने में पृथ्वीराज आगया, सामंतों को देखकर उसे प्रसन्नता हुई । उसी प्रकार वीर सामन्त भी पृथ्वीराज को देखकर प्रसन्न हुए और कायर दुखी हो गये ।

धीरत धरि ढिल्लेस भर, बहु दती उभ रोभ ।
नृपति नयन तन अकुरे, मनहु मद्द गज सोभ ॥३८८॥

शब्दार्थ:—धीरत धरि=धैर्यधारी । बहुदती=बहुत से हाथी । उभरोम=उठा २ कर पटकना । नयन=नैत्र । अकुरे=अकुरित, खिल पड़ी ।

अर्थः—धैर्यधारी दिल्लीश्वर आते ही बहुत से हाथियों को उठा २ कर पछाड़ने लगा । उस समय उसके नैत्र और शरीर की आकृति मतवाले हाथी सी सुशोभित हो गई ।

हरखवत नृप भत्त हुअ, मन मभ्भह जुध चाव ।
मिलत हथ्थ ककन लख्यौ, कह्यौ कन्ह इह काव ॥३८९॥

शब्दार्थ:—जुध चाव=युद्धेच्छा ।-ककन=कंकण । काव=क्या मामला ।

अर्थः—रणक्षेत्र को देख कर पृथ्वीराज का चित्त प्रसन्न हुआ और उसके मन में युद्धेच्छा बढ़ी । उसने जब युद्धार्थ हाथ बढ़ाया तो उसके हाथ में कंकन दिखाई दिया, जिससे पृथ्वीराज के नव वधु वरण का आभास हो गया और देखकर काका कन्ह कह उठे, यह क्या मामला है ?

गगन रेन रवि मुंदि लिय, धर भर छड्डि फुनिंद ।
इह अपुब्ब धीरत्त तुहि, ककन हथ्थ नरिंद ॥३९०॥

शब्दार्थः—गगन रेन=गगनाच्छादित रजराशि । भर-भर-छंडि=पृथ्वी के भार उठाने को छोड़ दिया । धीरत्त=धैर्य ।

अर्थः— गगनाच्छादित रज राशि ने सूर्य को ढक दिया है और शेषनाग ने भी भूभाग वहन करना छोड दिया है (अर्थात् भयानक युद्ध की सम्भावना दीख पड़ती है)। ऐसे समय मे भी हे राजन ! तुम्हारा यह अपूर्व धैर्य है कि विवाह के कंकन से तुम्हारा हाथ सुशोभित है ।

हथ्थह ककन सिर तिलक, अच्छित लगे लिलार ।
कठ माल तुअ कठ नहिं, कहि नृप कवन विचार ॥३६१॥

शब्दार्थः—अच्छित=अक्षत । लिलार=ललाट । कवन=क्या ।

अर्थः—हाथ में ककन और भाल पर अक्षत युक्त तिलक सुशोभित है, किन्तु कठ-माला तेरे गले में नहीं (दुलहन को पहिना दी) है । हे राजन् ! तेरा क्या विचार है ?

श्लोक

जज्ञ कालेषु धर्मेषु, काम कालेषु शोभिता ।
सर्वत्र वल्लभा बाला, संग्रामे नन गेहिनी ॥३६२॥

शब्दार्थाः—कालेषु=समय में । कामकालेषु=काम-विनोद समय में । गेहिनी=गृहिणी ।

अर्थः—यज्ञ समय, धर्म-कार्य के समय, काम-विनोद के समय, तथा सब समयों में स्त्री प्रिय होती है और उसका होना आवश्यक है, किन्तु युद्ध-समय स्त्री का साथ होना कष्ट प्रद है ।

दोहा

भर बके अच्छर बरन, रस बके दिसि बाल ।
दुहुँ बके पारथ करन, चढि सूरत्तन साल ॥३६३॥

शब्दार्थः—बके=बांके, मतवाले । सूरत्तन=वीर के शरीर को (जयचद के शरीर को) । साल=चुभने लगजा, चुभनसा कार्य कर (संयोगिता को ले आ) ।

अर्थः—ऐसा होते हुए भी—तेरे सामत अप्सराओं को वरण करने की इच्छा में और तू कुमारी के रस में मतवाला है । तू अर्जुन जैसा है तो तेरा शत्रु (जय

चन्द करण जैसा बाका वीर है अत: उस वीर (जयचन्द) के शरीर के लिए नाटशल्य सा कार्य (सयोगिता का अपहरण) करने को घोडे पर सवार हो।

चलि चलि सूर ति सथ्थ हुअ, रन निसक मन भो न ।
सह अचार मुख मंगलह, मनहु करहि फिरि गोंन ॥३६४॥

शब्दार्थः—सूर-ति=तीन बहादुर। मन भो न=मन में भय नहीं। गोंन=गोना।

अर्थः—कन्ह द्वारा नीति वाक्य कहे जाने पर तीन बहादुर सामन्त (कविचन्द, कन्ह और जामराय यादव) जो युद्ध करने में निःशक हैं और जिनके मन में भय का अभाव है (संयोगिता को लाने के लिये) पृथ्वीराज के साथ गये। सामने सब मांगलिक (युद्ध वाद्यादि) रग-ढग इस प्रकार दिखाई पडते थे मानों गौने की तैयारी हो रही हो।

पितु[१] अंतर बिछुरण[२] विपति, नृपति सनेह सँजोग ।
सुनत भयौ सुख कोंन विधि, दैव जिवावन जोग ॥३६५॥

प्रा० पा० १, २ दे०

शब्दार्थः—पितु-अतर=पिता से अतर (विरुद्ध)। बिछुरण=छोड जाना। सँजोग=संयोगिता। जिवावन=जीवित रखना। जोग=योग्य, उचित।

अर्थः—(उधर गठ-बन्धन-छोडकर पृथ्वीराज के चले जाने पर सयोगिता की दुविधा पूर्ण चित्त की दशा देख दु:खी होकर एक सखी कहने लगी) पिता का विरुद्ध होना और जिसके प्रेम में मतवाली है—उस पति द्वारा इस प्रकार छोडा जाना अत्यन्त शोक-प्रद है। हे प्यारी सयोगिता! अपने पर इतना बीतने पर भी तू किस परिणाम स्वरूप सुख से जीवित है और देवताओं द्वारा तुझे इस प्रकार दु:ख प्रद जीवन देना कहाँ तक उचित है?

ता मुख मलिन सुनंत हुव, अलिय न जपहु आलि ।
डड्ढै ऊपर लवन रस, म्रतकु न दीज्जै गारि ॥३६६॥

शब्दार्थः—अलिय=सखियों। जपहु=कहो। आलि=वृथा, अनुचित। डड्ढै ऊपर=दग्ध पर, जलने पर। लवन=लवण। म्रतकु=मरे हुए को। गारि=गाली, अपशब्द।

शब्दार्थः—गगन रैन=गगनाच्छादित रजराशि । भर-भर-छंडि=पृथ्वी के भार उठाने को छोड़ दिया । धीरत्त=धैर्य ।

अर्थः— गगनाच्छादित रज राशि ने सूर्य को ढक दिया है और शेषनाग ने भी भूभाग वहन करना छोड़ दिया है (अर्थात् भयानक युद्ध की सम्भावना दीख पड़ती है)। ऐसे समय मे भी हे राजन ! तुम्हारा यह अपूर्व धैर्य है कि विवाह के कंकन से तुम्हारा हाथ सुशोभित है ।

हथ्थह कंकन सिर तिलक, अच्छित लगो लिलार ।
कंठ माल तुअ कंठ नहिं, कहि त्रप कवन विचार ॥२६१॥

शब्दार्थः—अच्छित=अक्षत । लिलार=ललाट । कवन=क्या ।

अर्थः—हाथ में कंकन और भाल पर अक्षत युक्त तिलक सुशोभित है, किन्तु कंठ-माला तेरे गले में नहीं (दुलहन को पहिना दी) है । हे राजन् ! तेरा क्या विचार है ?

श्लोक

जज्ञ कालेषु धर्मेषु, काम कालेषु शोभिता ।
सर्वत्र वल्लभा बाला, संग्रामे नन गेहिनी ॥२६२॥

शब्दार्थाः—कालेषु=समय में । कामकालेषु=काम-विनोद समय में । गेहिनी=गृहिणी ।

अर्थः—यज्ञ समय, धर्म-कार्य के समय, काम विनोद के समय, तथा सब समयों मे स्त्री प्रिय होती है और उसका होना आवश्यक है, किन्तु युद्ध-समय स्त्री का साथ होना कष्ट प्रद है ।

दोहा

भर बंके अच्छर बरन, रस बंके दिसि बाल ।
दुहुँ बंके पारथ करन, चढि सूरत्तन साल ॥२६३॥

शब्दार्थः—बंके=बांके, मतवाले । सूरत्तन=वीर के शरीर को (जयचंद के शरीर को) । साल=चुभने लगजा, चुभनसा कार्य कर (संयोगिता को ले आ) ।

अर्थः—ऐसा होते हुए भी—तेरे सामंत अप्सराओं को वरण करने की इच्छा में और तू कुमारी के रस में मतवाला है । तू अर्जुन जैसा है तो तेरा शत्रु (जय

चन्द करण जैसा बांका वीर है अतः उस वीर (जयचन्द) के शरीर के लिए नाटशल्य सा कार्य (संयोगिता का अपहरण) करने को घोडे पर सवार हो।

चलि चलि सूर ति सथ्थ हुअ, रन निसक मन भो न ।
सह अचार मुख मगलह, मनहु करहि फिरि गौन ॥३६४॥

शब्दार्थः—सूर-ति=तीन बहादुर। मन भो न=मन में भय नहीं। गौन=गोना।

अर्थः—कन्ह द्वारा नीति वाक्य कहे जाने पर तीन बहादुर सामन्त (कविचन्द, कन्ह और जामराय यादव) जो युद्ध करने में निःशंक हैं और जिनके मन में भय का अभाव है (संयोगिता को लाने के लिये) पृथ्वीराज के साथ गये। सामने सब मांगलिक (युद्ध वाद्यादि) रंग-ढग इस प्रकार दिखाई पडते थे मानों गौने की तैयारी हो रही हो।

पितु[1] अतर बिछुरण[2] बिपति, नृपति सनेह सँजोग ।
सुनत भयौ सुख कौन विधि, दैव जिवावन जोग ॥३६५॥

प्रा० पा० १, २ दे०

शब्दार्थः—पितु-अतर=पिता से अतर (विरुद्ध)। बिछुरण=छोड जाना। सँजोग=सयोगिता। जिवावन=जीवित रखना। जोग=योग्य, उचित।

अर्थः—(उधर गठ-बन्धन-छोडकर पृथ्वीराज के चले जाने पर सयोगिता की दुविधा पूर्ण चित्त की दशा देख दुःखी होकर एक सखी कहने लगी) पिता का विरुद्ध होना और जिसके प्रेम में मतवाली है-उस पति द्वारा इस प्रकार छोडा जाना अत्यन्त शोक-प्रद है। हे प्यारी सयोगिता! अपने पर इतना बीतने पर भी तू किस परिणाम स्वरूप सुख से जीवित है और देवताओं द्वारा तुझे इस प्रकार दुःख प्रद जीवन देना कहाँ तक उचित है?

ता मुख मलिन सुनत हुव, अलिय-न-जपहु आलि ।
डड्ढै ऊपर लवन रस, म्रतकु न दीज्जै गारि ॥३६६॥

शब्दार्थः—अलिय=सखियों। जपहु=कहो। आलि=वृथा, अनुचित। डड्ढै ऊपर=दग्ध पर, जलने पर। लवन=लवण। म्रतकु=मरे हुए को। गारि=गाली, अपशब्द।

अर्थः—सखि के ऐसे वचन सुन सयोगिता का मुख उदास हो गया और कहने लगी हे सखियों! इस प्रकार तुम्हारा उलाहना देना अनुचित है, क्योंकि जले पर नमक छिड़कना और मरे हुए को गाली देना ठीक नहीं कहा गया है।

अधु न द्रप्पनु दिक्खिई, गु ज न जपहि गल्ह।
अश्रुत नर गानु न लहै, अबल न करै सबल्ल ॥३६७॥

प्रा० पा० दे० प्र० से।

शब्दार्थः—अधु=अधे। द्रप्पनु=दर्पण। दिक्खिई=दीखता गु ग=गूगा। गल्ह=बातें। अश्रुत=बहिरा। अबल=अबल, अशक्त।

अर्थः—क्या अधे को कभी दर्पण मे अपना मुख दीख सकता है? मूक व्यक्ति बात नहीं कर सकता, बधिर (बहिरा) ज्ञान प्राप्त नहीं कर पाता और निर्बल की सबल से नहीं हो पाती।

मैं निषेद किन्नौ अकथ, दुज अरु दुजिय प्रमान।
टरै न अ धव अ धविय, विधि कीनौअ प्रमान ॥३६८॥

शब्दार्थः—निषद=मनाकरने पर, निषिद्ध, बुरा। दुज=द्विज। दुजिय=ब्राह्मणी। विधिकीनौअ=विधाता के लेख। प्रमान=प्रमाणित, अमिट।

अथः—मैंने गुरुपत्नि और गुरुआनी, जो कि पूर्व जन्म के गन्धर्व-गन्धर्विनी तथा इस जन्म में ब्राह्मण और ब्राह्मणी है, के वाक्य मानकर कुल के विरुद्ध यह कार्य किया सो तो किया ही फिर भी मेरा ऐसा करना विशेषता लिए हुए है अत विधाता के लेख अमिट है।

श्लोक

गुरुजन मनो नास्ति, तात आज्ञा विवर्जित।
तस्य कार्यं विनश्यति, यावत चन्द्र दिवाकरौ ॥३६९॥

शब्दार्थः—तात=माता पिता। विनश्यति=विनष्ट होता है।

अर्थः—माता पिता के निषेध करते हुए भी जो कार्य किया जाता है और जिससे गुरुजनों के मन को क्षति (दिल को चोट) पहुँचती है। ऐसे मार्ग पर चलने वाले का कार्य जहाँ तक सूर्य और चन्द्र है, वहाँ तक विनाश को प्राप्त होता है।

दोहा

इह कहि सिरु धुणि सखिनि सौं, दिखि संजोगिय राज ।
जिहि प्रिय जन अगुलि करैं, निहि प्रियजन कहि काज ॥४००॥

शब्दार्थः—सिरु = सिर । धुणि=धुनकर । दिखि=देखकर ।=जिहि=जिसके कारण । प्रियजन = कुटुम्बी । अगुली करै=अगुलि उठा कर बतायें । प्रियजन = प्रिय, प्यारा ।

अर्थः—सिर धुन कर अफसोस करती हुई संयोगिता ने उक्त शब्द सखियों से कहे इतने में ही पृथ्वीराज लेने के लिये आ गया । उसे देखकर संयोगिता कहने लगी कि जिसके कारण कुटुम्बी अगुली बताते हैं, ऐसा प्रियजन (छोड़कर चला जाय वह) किस काम का (गठ-बन्धन छोड़कर पृथ्वीराज के जाने पर संयोगिता ने उलाहना दिया) ।

ए सामन्त जु सत्त कहि, पग पुत्ति घटि मत ।
एक लख्ख भर भख्खियै, जै कड्ढै गज दंत ॥४०१॥

शब्दार्थः—सत्त = सत्य, सौ । मत=मंत्रणा । कड्ढै = निकालते । गज दंत=हाथियों के दांत ।

अर्थः—तब संयोगिता से सामन्तों ने कहा हे पगु कुमारी ! हम तुम्हें सत्य कहते हैं कि तुम्हारी मंत्रणा तुच्छ है जो तुम पृथ्वीराज पर विश्वास नहीं करती और न इन सामन्तों का बल जानती हो हम पृथ्वीराज के सौ सामन्त ऐसे हैं जो हाथियों के दांत उखाड दें । (आगे की कवि संयोगिता की दशा का चित्रण करता है) ।

गाथा

मदन-सरा लति विव्हिा, जिव्हा रटयौति प्रानेस ।
नयन प्रवाहति विवहा, अह वामा कंत कथ्थाय ॥४०२॥

शब्दार्थः—मदन-सरा=कामदेव के बाण । लति=लतिका । विव्हिा=विव्हला । रटयौति=रटती है । प्रान-प्रानेस=प्राण से प्राणेश को या प्राणों के भी प्राण को । प्रवाहति=प्रवाहित । विवहा=विचित्र । वामा=स्त्री । कंत=पति की । कथ्थाय = कथा, चरित्र ।

अर्थः—धन्य है इस लता तुल्य सुकुमारी को जो कामदेव के बाणों से विव्हल हुई प्राणेश (पृथ्वीराज) की रट लगा, नैत्रों से अश्रु प्रवाहित करती हुई उसके विविध चरित्रों का पाठ कर रही है ।

कवित्त

सुंदर जंपै वयन, ढिट्ठ ढिल्लिरि नरेस सुनि ।
कहहि सूर सामंत, पवन हल्लहि पहार फुनि ॥
अजहों अलियन चवहि, गठि दैहैं सु जम कहि ।
जो सद्धै सुरलोक, लहहि अच्छरि नन संकहि ॥
इह च्यंत कंत इच्छहि बहुल, बहु समूह भुअबल कहहि ।
संदेह सास संभरि धनी, पलु न प्रान पच्छै लहहि ॥४०३॥
प्रा० पा० दे० प्रति से ।

शब्दार्थः—ढिल्लरि=दिल्ली । पवन हल्लहि पहार=पवन गति से बढ कर पहाड़ों को हिला देंगे । फुनि=पुन । अलियन=अलीह, असत्य । चवै=कहते । जम=यम । नन संकहि=शंका मत कर या निशंक । च्यंत=चिंतना । भुअबल=भुज बल । बहुल=विशेष, अनेकों । संदेह=संदेश । लहहि=दीख सकेंगे, रह सकेंगे ।

अर्थः—संयोगिता सामंतों के कथन का उत्तर पृथ्वीराज को सम्बोधित कर देने लगी, हे दिल्लीपति ! विशेष बढा कर बात करने वाले ढीट होते हैं । आपके बहादुर सामंतों का कहना है कि हम रणाङ्गण में मारुत-गति से प्रवेश कर पहाडों तक को हिला देंगे । कन्नौज की प्रबल वाहिनी को देख कर भी ये असत्य भाषण करते हैं-कि हम यमराज को भी गाठ देंगे और यदि स्वर्ग प्रयाण किया तो मार्ग मे अप्सराओं का वरण करेंगे । अनेकों ऐसी इच्छाओं का ये चिंतन करते हैं और अपने को बहुसंख्या मे बतलाते हुए भुज बल की प्रशंशा करते हैं, किन्तु होना वही जो ईश्वर ने विचारा है । हे प्यारे सम्भरी नरेश । मेरे श्वास का तो आपको यही संदेश है कि आपके विना ये प्राण पीछे नहीं रहेंगे ।

गाथा

आलोकित नृप नयन, वचन जिह्वा सु कातरा साई ।
दोही सुनी श्रवन, स्वामि निंदाम उहए ॥४०४॥
प्रा० पा० दे० प्रति से ।

शब्दार्थः—आलोकित=देखकर । कातरा=कातर, करुण । निंदाम=निंदा ।

अर्थः—इतना कहने के बाद राजा को संयोगिता के नैत्रों और वचनों मे करुण रस दिखाई दिया राजा ने कहा—हे प्यारी ! मेरे सामन्तों की निन्दा करने से तो मेरी निन्दा हुई (अर्थात सामन्तों के लिये ऐसे वाक्य कहना उचित नहीं) ।

कवित्त

सोमारिय सुंदरिय, हासि उपजी तव सद्दह ।
करुण वुल्लियह विहत, रोद कामिनि कत वद्दह ॥
वीर गहत गंधर्व, भयउ भामिनिय भयानक ।
वीभच्छिय सग्राम, भनहि आचिज्ज सयानक ॥
छिन सत मत इय कंत तुव, पिय विलास किय दिन करिय ।
इम कहइ चद वरदाइ वर, कलह कति तुव तैं डरिय ॥४०५॥
प्रा० पा० दे० प्रति से ।

शब्दार्थ:—सोमारिय=सँवारना, शृंगार, शृंगार रस । हासि=हास्य रस । तव सद्दह=तेरे कथन में, भोले वचनों में । विहत=हत, हतोत्साह । रोद=रौद्र । कत वदह=वाद विवाद करने में । वीभच्छिय=वीभत्स । सयानक=सयानी बातों से । छिन=क्षण । सत=शांत । मत=मंत्रणा । इय=यह । किय-दिन=कितने दिन । कलह-कति=कलह प्रिया ।

अर्थ:—चद कहने लगा-हे सुन्दरी ! तेरा शृंगार ही शृंगार रस है । तेरे भोले वचनों से हास्य रस और हतोत्साह युक्त वाक्यों से करुण रस की पूर्ति होती है । तेरे वाद विवाद में रौद्र, गधर्व-कथित वाक्य पर दृढ प्रतिज्ञा करने में वीर रस, तेरे भयभीत होने में भयानक, तेरे कारण सग्राम छिडने में वीभत्स और तेरी सयानी बातों से अद्भुत रस टपकता है । अत. प्यारे पृथ्वीराज को यह मत्रणा देना कि-यह हास्य विलास कितने दिन के लिये है ? इस वाक्य से क्षण भर के लिये शात रस की पूर्ति हो जाती । अर्थात् तुम पर नव ही रस प्रगट होते हैं । हे कलह-प्रिया ! कौन ऐसा है जो तुम से नहीं डरता ? (नव रस भी तेरे भय से तेरे समीप हैं) ।

(हे) प्रथीराज वामग, सग जौ कन्ह नन्ह दल ।
हौं चहुआन समथ्थ, हरू रिपु राय भुजन बल ॥
मोहि विरद नरनाहु, दद को करै भुअन वर ।
मुहि कपहि सुरलोक, पति पनगरु भूमि नर ॥
मम रूपि सकि सुन्दरि सुपहु, चढिग कोटि कायर रखत ।
इन भुजणि ठेलि कनवज धरों, तुहि अपर्फो ढिल्ली तखत ॥४०६॥
प्रा० पा० दे० प्र० से ।

शब्दार्थः—बामग=बामाङ्गना । नन्ह=नहेगा नहीं, नशेगा नहीं । हरू=हरणा करूगा, नाश करूगा। रिपुराय=शत्रुराजा को । दद=द्वंद्व । भुअन बर=भुजाओं के बल पर, भुजबली, बाहु बली । मम=मत । रखत=रक्षित या रखने वाला । भुजणि=भुजों से । अर्पौ=अर्पित करो, दो ।

अर्थः—काका कन्ह कहने लगे—हे पृथ्वीराज की वामाङ्गना । मैं साथ मे हूँ इसलिये स्वपक्ष का नाश नहीं होगा । चाहुआन वंश में मैं सामर्थ्यवान हूँ । मैं अपने भुज-बल से शत्रु-राजा का नाश करूगा । मेरा विरुद नर नाह है । पृथ्वीपर ऐसा कौन बाहु-बली है सो मुझ से द्वंद्व कर सके ? मुझसे स्वर्ग लोक, नागलोक, और भू लोक के निवासी कम्पित होते हैं । हे सुन्दरी ! शकित होकर तू मत काप । करोड़ों काय-रों से रक्षित राजा (जयचद) चढ़ आया है तो भी कुछ परवाह नहीं है । मैं अपनी भुजाओं से कन्नौज (वाहिनी) को ढकेल दूगा और तुझे दिल्लीश्वर के तख्त के बाईं ओर स्थान दिला दूगा ।

तेग छोरि जद्दवन, सोंह सिर धरि करि कथ्थिय ।
इहै सत्त सामत, भूमि श्रृगार भरथ्थिय ॥
अतुलित बल अतुलित प्रमान, अतुलित बल देवह ।
अतुलित छिति छत्रिन गियान, स्वामित्त सु सेवह ॥
देखहि न राज त्रसहि विलगि, कलह केलि कलहत पिय ।
अबलत्त छडि मन सबल करि, बिधर राग त्रिभूव किय ॥४०७॥

शब्दार्थः—छोरि=छोड़कर, खोलकर, निकालकर, । जद्दवन=जामराय यादव । सोंह=सोगद, प्रतज्ञा । सत्त=सौ । भरथ्थिय=भारतीय, भारत के । प्रमान=माने गये । छत्रिन-गियान=क्षत्रित्व ज्ञान । स्वामित्त-सु-सेवह=स्वामि सेवा, स्वामिधर्म । विलगि=अलग । कलहकेलि=कलह क्रीड़ा करने वाला, कलह प्रिय पृथ्वीराज । कलहत पिय=कलह प्रिया । अबलत्त=अबलत्व । बिधर=उधर ।

अर्थः—कमर मे कसी हुई तलवार को निकाल सिर पर चढा कर जामराय यादव कहने लगा— हे सुन्दरी ! इस पृथ्वीराज के सौ सामत हैं वे भारत भूमि के श्रृगार हैं । इनकी समता किसी से नहीं की जा सकती ? इनका बल अतुल माना गया है । शक्ति में इनकी बराबरी की जाय तो देवता ही कर सकते हैं । पृथ्वी पर इनका क्षत्रियत्व ज्ञान भी अतुल्य है और इनका स्वामीधर्म भी श्रेष्ठ है । हे कलह-प्रिया ! तेरा कलह-प्रिय (युद्ध-प्रिय) पति इन्हें (सामतों को) राज वश से अलग नहीं समझना ।

देख-उधर (युद्ध भूमि की ओर) सिंधुराग गाया जा रहा है अत (ऐसे वीरों के भरोसे पर) तुझे अबलत्व को छोड़कर सबलत्व (वीरनारी के गुण) ग्रहण करना चाहिये ।

पुणि प्रथिराज नरयंद, यदवदनी आकखिय ।
मौहनि खंचिय वलह, पिक्खि मुख मोद सु हखिय ॥
भौ अनंग अँग अग, रग रवनी रस भ्यंनिय ।
सुरत समुद्र तरंग, वाहु वर अग्रह क्यंनिय ॥
काम कसाए लोइननि, सुरस विरस विद्धिग उरह ।
आनदि इद प्रथिराज तकि, काम धुरा सची धुरह ॥४०८॥
मा० पा० दे० प्रति से ।

शब्दार्थ—पुणि=पुनि, पुन । यदवदनी=चन्द्रमुखी । आकखिय=आकर्षित किया । मौहनि= भौहों को । खंचिय=खींची, चढाई । वलह=सबल । हखिय=हर्षित हो । रस भ्यंनिय=रस में लीन हो गई । अग्रह=आग्रह । क्यंनिय=किया । काम कसाए लोइननि=काम से कसे हुए नैत्रों द्वारा । सुरस=सरस । विरस=निरस । विद्धिग=वेध दिया । काम धुरा=कामदेव के रथ की धुरी । संची=सचार, किया, आगे कदम दिये । धुरह=निश्चय पूर्वक ।

अर्थः—तत् पश्चात् राजा पृथ्वीराज ने उस चन्द्रमुखी को प्रेम भाव से आकर्षित किया और अपनी सबल भौंहों चढाई। यह देख सुन्दरी के मुख पर प्रसन्नता की रेखा खिंच गई। राजा(पृथ्वीराज)उसके सामने अनग अगधारा दीखा और उसके रस मे वह रमणी लीन हो गई। उस सुरत-सिंधु की तरगिनी से श्रेष्ठ भुजाओं वाले राजा ने मन ही मन आग्रह किया तब उस सुन्दरी ने काम से कसे हुए नैत्रों द्वारा राजा के सरस और निरस हृदय को वेध दिया (रसिक होने से सरस और शत्रुओं पर कठोर होने से राजा का हृदय निरस कहा गया)। इस प्रकार इन्द्र-स्वरूप पृथ्वीराज को देखकर वह कामदेव के रथ की धुरी जैसी सुन्दरी आनन्द मग्न हो गई और पृथ्वीराज के साथ चलने के लिये आगे पैर बढाये ।

दोहा

परणि राइ ढिल्ली रुखह वरि लीनो वर वाम ।
सम सँजोगि स सोभियहि, मनहु वनै रति काम ॥४०९॥

मा० पा० दे० प्रति से ।

शब्दार्थः—पाणि=पाणकर, पाणिग्रहण कर । दिल्ली मग्गह=दिल्ली जाने के लिये । सम=सहित । स=वह । सोभियहि=सुशोभित ।

अर्थः—उस श्रेष्ठ सुन्दरी को वरण कर राना पृथ्वीराज ने उसे दिल्ली चलने के लिये उद्यत किया । उस समय सयोगिता से युक्त पृथ्वीराज ऐसा दिखाई दिया मानों रति और कामदेव सुशोभित हो रहे हो ।

गाथा

एकथ्थोइ सजोई, एकथ्थोइ समर निध्वसो ।
अनिल जथाति पद्म, यदोलए राज हृदयाई ॥४१०॥

प्रा० पा० दे० प्रति से ।

शब्दार्थः—एकथ्थोइ=एक ओर । सजोई=सयोगिता । निध्वसो=नाश के लिये । अनिले=अनिल पवन । जथाति=जैसे । पद्म =कमल । यदोलए=हिलता है, झूमता है । हृदयाई=हृदय ।

अर्थः—एक ओर सयोगिता पर और दूसरी ओर शत्रु नाश के लिये युद्धस्थल मे पृथ्वीराज का हृदय इस प्रकार चलता था, जैसे पवन-सचार के वश में होकर कमल-पुष्प हिलता हो ।

वय सु लग्गि एकत करह, कक्कर लग्गिय लाज
वय जुग्गिनिपुर चलि कहै, लाज कहै भिरि राज ॥४११॥

शब्दार्थः—एकत=एकांत, दूर होना । कक्कर=शरीर । भिरि=भिड़ । वय=आयु ।

अर्थः—पृथ्वीराज की आयु उस युद्ध स्थल से हट जाने के लिये और लज्जा क्षत्रियोचित कर्म करने के लिये विवश करने लगी । उसकी आयु कहती थी, हे नरेश्वर ! दिल्ली लौटजा और लाज कहती थी युद्ध में भिडना ही तेरे लिये उचित है ।

वै तन कुरखि निरक्खयौ लाज सु आदर दीन ।
कलि नारद-नीरद कवि, प्रगट करहु हम कौन ॥४१२॥

शब्दार्थः—वै=वय । तन=शरीर । कुरखि=तनकर । नारद-नीरद=नारद को रद करने वाला, नारद को मात देने वाला (गणेश के कथानुसार नारद अष्टादश पुराण लिखे, किन्तु चद सरस्वती की प्रेरणा से लिखते गये फिर भी थके नही) ।

अर्थः—फिर पृथ्वीराज चंद से कहने लगा-इस कलियुग मे अपनी लेखनी से नारद को मात कर देने वाले हे कवि! हमारी आयु ने तो युद्ध की ओर तनी हुई दृष्टि से देखा है (अर्थात् वह ऐसा नहीं चाहती) और शरीर ने लज्जा को आदर दिया है (यह युद्ध करने के लिए सहमत है) हमने जो कुछ किया है, वह तुमसे छिपा नहीं है। अब जो हमें करना हो वह बात प्रत्यक्ष कह दो।

कहत भट्ट दल विषम है, तुहि दल तुच्छ नरिंद।
परनि पुत्ति जैचंद की, करहि जाइ ग्रह नंद ॥४१३॥

शब्दार्थ—:पुत्ति=पुत्री। नंद=आनन्द।

अर्थः—तब वंदीजन चन्द कहने लगा, हे राजन्! शत्रु की विषम वाहिनी और आपकी सेना तुच्छ है। इसलिये मेरी सम्मति है कि वरण की हुई नव-विवाहिता पगु-पुत्री का लेकर आप घर जाइये और आनन्द कीजिये।

झुकित राज उत्तर दियौ, मो सथ सत्त सुभट्ट।
हूँ चहुआन जु संभरी, भुज ठिल्लों गज थट्ट ॥४१४॥

शब्दार्थः—झुकति=टेढे होकर। मथ=साथ में। भुज=भुजाओं से। ठिल्लों=ठेल दूंगा धकेल दूंगा। थट्ट=समूह।

अर्थः—तब टेढ़े होकर कमर से तलवार ऐंचते हुए रणोद्यत पृथ्वीराज ने चन्द को उत्तर दिया कि मेरे साथ में सौ सामन्त हैं और मैं संभरी चाहुआन ही ऐसा अकेला वीर हूँ कि अपनी भुजाओं के बल से हाथियों के झुण्ड को धकेल सकता हूँ।

श्लोक

कस्य भूपस्य सेनायां, कस्य बाजित्र बाजनं।
कस्य राज रिपू अरित, कस्य सन्नाह पक्खर ॥४१५॥

शब्दार्थः—वाजित्र=रणवाद्य। बाजन=बज रहे हैं। अरितं=ससार से विरक्त, मृत होना चाहता। पक्खर=पाखर।

अर्थः—ऐसा कह पृथ्वीराज युद्धार्थ बढ़ा, जिससे दोनों सेनाओं का आमना-सामना हुआ। जयचन्द की ओरसे घोषणा की गई कि यह सामने डटी हुई सेना किस राजा की है?

ये रणवाद्य किसके बज रहे हैं और किस शत्रु राजा का पतन होने वाला है तथा ये बख्तर पाखर धारी कौन हैं ?

दोहा

छलि आयौ चहुआन नृप, भट्ट सत्थ पृथिराज ।
तिहि पर गय हय पक्खरहि, तिहि पर वज्जन बाज ॥४१६॥

शब्दार्थः—छलि आया = छद्म वेश कर के आया । बाज = बाजे ।

अर्थः—उत्तर मे घोषित किया गया कि बंदीजन चन्द के साथ छद्मवेशी चाहुवान राजा पृथ्वीराज आया है । इसीलिये हाथी घोडे सुसज्जित हैं और रणवाद्य बज रहे हैं ।

गाथा

सा याहि दिल्लि नाथो, साय तु जग्य विध्वसनो ।
परनेवा पग पुत्री, जुद्ध मागत भूषन ॥४१७॥

शब्दार्थः—सा याहि=यह वही । साय तु=जिसने तेरा । विध्वसनौ=विध्वस किया । परनेवा = पाणि ग्रहण कर चुका । मांगत=मांगता ।

अर्थः—यह वही दिल्लीश्वर है, जिसने तेरे यज्ञ का विध्वंस कर दिया है (अथवा कर दिया था) । इस समय हे पगुराज ! आपकी पुत्री इसने वरण की है और युद्ध द्वारा यह आपसे दहेज रूप मे युद्ध रूपी आभूषण मागता है (युद्ध करना मागता है) ।

दोहा

सुनि श्रवननि चहुआन को भयौ निसानन घाव ।
जनु भद्दव रवि अस्त मनि, चपिय बद्दल बाव ॥४१८॥

शब्दार्थः—निसानन=निशान, नक्कारे । घाव=डका । भद्दव=भाद्रपद । बाव=वायु, पवन ।

अर्थः—युद्धार्थ चाहुवान को उद्यत सुन जयचन्द की सेना के नक्कारों पर डका पड़ा । उस समय का दृश्य ऐसा दिखाई पड़ता था, मानों सूर्य को छिपा देने के लिये भाद्रपद के बादलों ने पवन की सहायता से नभ-मण्डल को दबाय हो ।

सुनि बज्जन रज्जन चढिग, सहस सख धुनि चाइ ।
मनौं लक विग्रह करन, चढ्यौ रघुप्पति राइ ॥४१९॥

शब्दार्थ:—धुनि=ध्वनि । रघुप्पति=रघुपति, रामचन्द्र ।

अर्थ:—नक्कारों की ध्वनि श्रवण करते ही राजा जयचंद युद्धार्थ चढ़ चला, और सहस्रों शखों को ध्वनि रण-इच्छा प्रगट करने के लिये हुई। रणोद्यत जयचंद उस समय ऐसा दीख पड़ा मानों लका में विग्रह मचाने के लिए रामचन्द्र ने चढ़ाई की हो ।

राम दलह बदर विखम, रक्खसरावन ग्रंद ।
असी लक्ख सौं सौ जुरिग, धनि प्रथिराज नरिंद ।।४२०।।

शब्दार्थ:—रक्खस=राक्षस । वृंद=समूह । धनि=धन्य है ।

अर्थ:—राम की विषम वानर-वाहिनी के तुल्य जयचन्द की अस्सी लक्ष सेना थी इधर रावण की निशिचर अनी के समान ही पृथ्वीराज की सेना थी किन्तु धन्य है पृथीराज को, जो अस्सी लक्ष सैनिकों से भिड़ गया ।

दल संमुह दतिय सघन, गनत न बनि अगनित्त ।
मनु पव्वय विधि चरन किय, सह दिख्खिय मयमत्त ।।४२०।।

शब्दार्थ:—समुह=सामने, अग्रभाग पर । दतिय=हाथी । सघन=बहुत से । गनत न बनि= नहीं गिने जा सकते । मनु=मानो । पव्वय=पर्वत ।

अर्थ:—सेना के अग्रभाग के सामने ही बहुत से हाथी, जो गिने नहीं जा सकते थे। वे सब मदमत्त थे और ऐसे दिखाई पडते थे मानों ब्रह्मा ने पर्वतों को सचरण (चलते फिरते) बना दिया हों ।

मदमंता दँत उज्जला, मय कपोल मकरंद ।
दुहुँ दिसि भवर गुंजार करि, छुटि अदून गयद ।।४२२।।

शब्दार्थ:—मदमंता=मतवाले । दँत=दांत । उज्जला=उज्ज्वल । मय कपोल=कपोलों पर मद । मकरद=मधु । अंदून=शृंखला ।

अर्थ:—शृंखलाओं से छूटे हुए वे मतवाले हाथी, जिनके दाँत उज्ज्वल, कपोलों पर मद-मधु प्रवाहित और भौंरे गुंजार कर रहे थे ।

गहु गहु कहि सन्या सकल, हय गय वनि चढि गव्व ।
मानों पावस पुह अनिल, हल्लि गति वद्दल सव्व ।।४२३।।
प्रा० पा० दे० प्रति से ।

शब्दार्थः—गहु गहु=ग्रहण करो २ । सन्या=सेना । गन्न=गमन किया । पहं=पहले । अनिल=पवन ।

अर्थः—पंगु सेना पकड़ो २ कहती हुई बढ़ी जिसके अग्रभाग पर क्रमश घोड़े और हाथी इस प्रकार बढ़े, मानों पावस ऋतु मे पहले पवन और उसके बाद बादल चले हों (यहाँ घोड़ों की तुलना पवन से और हाथियो को तुलना बादलो से का गई है)।

कवित्त

बघेलो नरस्यघु, राव केहरि कठेरिय ।
कालिंजर कोलिया, राइ बधिय बर जोरिय ॥
रन रावन तल्लार, बघ्घ कड्ढी मुख जपौ ।
रा-विजपाल नर्यद, काम कारन हूं अप्पौ ॥
बर गहन चपि चहुआन कौ, मत्त घत्त सामंत सह ।
सम समथ सथ्थ भारथ भिरहिं, सहस दिये कमधज्ज दह ॥४२४॥

शब्दार्थ:—भारथ भिरहि=महाभारत में भिड़ पड़े ऐसे । दह=दस ।

अर्थः—इधर पृथ्वीराज की ओर से वरसिंह बघेला और केहरी कठीर बढ़ा, उधर से बलवान कालिंजर और कोलिया नरेश बढ़े । तब युद्ध में जगचन्द का सेवक रावन (यह एक वीर की उपाधि हो सकती है जो राजन से रायन रावन रूप मे प्रयुक्त हुई है)। जो तलारक्षक (तल्हेटी, अर्थात् गढ के नीचे का रखवाला, नगर रक्षक कोतवाल) था उसने अपने घोड़े की रास उठा और केहरी कठीर से बोला मैं इस दूसरे ही विजयपाल नरेश के लिये अपने को समर्पित करता हूं । अत मतवाले सामन्तों को मारता हुआ चाहुवान नरेश को पकड़ कर दबाऊँगा क्योंकि मेरे साथ मे महाभारत में भिडे ऐसे दस सहस्र यौद्धा कमधज (जयचन्द) ने नियुक्त किये हैं ।

दोहा

सह समान सह छत्र पति, सह सम जुद्ध स जुद्ध ।
गहन मीर-बदनि[1] कहै, जिहि लग्गै लहु बुद्ध ॥४२५॥

प्रा० पा० १ दे० ।

शब्दार्थः—मीर बंदनि=जयचद की सेना को मुस्लिम योद्धा । बुद्ध=बुद्धि ।

अर्थः—कण्ठीर वीर कहने लगा-हे रण-रावण। तुम्हारे समान ही छत्र धारण करने वाले और युद्ध कर्ता हिन्दू वीर होते हुए भी मीर वन्दे (जयचन्द की सेना के मुस्लिम यौद्धा) पृथ्वीराज को पकड़ने की बात करें, इससे पंगुराज की तुच्छ बुद्धि दीख पड़ती है।

मीर वद वारुन बलिय सक्क सामत नर्यंद।
मत्र घात सक सूरिमा, विख मुत्तरै फन्यद ॥४२६॥

शब्दार्थः—वारुन=हाथी। वलिय=बलिष्ट। सक=सिक्का। सूरिमा=सामत। विख=विष। मुत्तरै=उतारना।

अर्थः— यद्यपि वे मीर बदे हाथी के समान बलिष्ठ हैं फिर भी राजा (पृथ्वीराज) के हिन्दू यौद्धा सिक्का जमाने में कम नहीं हैं। सर्प के समान विषैले शत्रुओं का विष उतारने में उनके आघात मत्र तुल्य हैं।

तुम विनु जग्य न निव्वहै, तुम विनु राज न धाम।
सुक्क कठ्ठ कट्ठन समुह, जरि जरि अब्ब बुजान ॥४२७॥

शब्दार्थः—निव्वहै=निभना, निभाना। सुक्क=सूखा। कठ्ठ=काष्ट। कट्ठन=काट काट कर। जरि २=जला २ कर। अब्ब=अबु, जल। बुझान=बुझा दिया।

अर्थः—तब रण-रावण बोला—हे वीर कण्ठीर कट्ठी (काठी राजपूत)। तुम वास्तव मे काठ (काठी) हो, तुम्हारे विना यज्ञ नहीं हो सकता और न राज प्रासाद ही रचा जा सकता है हमारे राजाने तुम्हारे जैसे सूखे काठ को काट २ कर जला दिया है और अपने पानी (नूर) से बुझा दिया है।

फिरि रावन न्रप सों कह्यौ, तात-प्र्यौ-तुहि काम।
जव लगि अग-न-नच्चियै, काम न होइ सु ताम ॥४२८॥

शब्दार्थः—तात-पर्यौ-तुहि-काम=हे पिता (राजा को पिता कहा गया)। अब आप में ही आ पीती है। अग-न-नचियै=अपने हाथ पैर न हिलावें, स्वय तलवार न पकड़ें। ताम=तव तक।

अर्थः—तत्पश्चात् वह वीर रावण राजा जयचद से कहने लगा—हे राजन्! अब आपमे ही आ बीती है जब तक कोई अपने हाथ पैर नहीं हिलाता (अर्थात् स्वय आगे नहीं होता) तब तक कार्य की सिद्धि होना कठिन है।

अरे ढीठ रावन्न सुनि, जिहितन हट्ट अप्प।
अय अलोकु लोकत कहै, जिहि मरि मारिय अप्प ॥४२६॥

शब्दार्थः—डह्है=दग्ध होना, होमा जाना। मय=यह। भलोक=लोक विरुद्ध। लोक्त=लोग। अप्प=सर्प।

अर्थः—जयचंद बोला, हे रावन! वह कार्य निषिद्ध है जिसके करने में अपने शरीर को होमना पड़े, सांप को मारकर मरना लोक सगत बात नहीं है किन्तु लोक विरुद्ध बात है (लाठी भी नहीं टूटे और सांप मार लिया जाय, यह लोकोक्ति है)।

कवित्त

(तव) रन रावन उच्चरयउ जग्य मंडि रु कुमत्ति किय।
जयति जग्य आरभ, प्रथम चहुआन बंधि लिय॥
विहत मोह भर करहु, करहु अन दिट्ठौ दिट्ठौ।
द्वै न होंहि प्रभु पग, सलित उडी गुरु मिट्ठौ॥
बचहु बबच मत्रिय मरण, चाहुवानु गहिय न गहिय।
स बरे जाइ कन्या रवन, जुगति जग्य पसरी रहिय॥४२०॥
प्रा० पा० दे० प्रति से।

शब्दार्थः—मंडिरु=आरम्भ, प्रारम्भ। जयति=विजय, जय। विहत=वृथा। भर=वीर। प्रभु=स्वामी। सलित=सरें वाली तकड़ी, पलड़े। उडी=झुकी हुई। गुरु=गुड़। बचहु=कपट। बवच=विबच, दोनों के बीच। सं=वह। बरे=वरण करके। जाइ=जाता है। रवन=रयन, राजा। जुगति=बात। पसरी=फैल गई।

अर्थः—तब रणराज जयचन्द से कहने लगा-आपने यज्ञारभ का विचार कर अच्छा नहीं किया प्रारम्भ में ही आपने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार विजय प्राप्त कर चौहान को बांध ही लिया होगा। हे वीर! आपका यज्ञ-विषयक मोह वृथा है। आप अदृश्य वस्तु को दृश्य रूप देना चाहते हैं। हे पंगुराज! एक साथ दो बातें नहीं हो सकती। गुड भी मीठा हो और पलड़ा भी झुकता हुआ हो यह कैसे हो सकता है? चाहुवान पकड़ा जाय या नहीं, आप दोनों के इस कपट-युद्ध में मत्रणा देने वाले साथियों का नाश होना है। चाहुवान पृथ्वीराज की प्रतिज्ञा तो पूर्ण हो ही गई है वह तो कुमारी का वरण कर चल ही पडा है और आपका जामाता बन ही चुका है। यह यज्ञ वाली बात आपके लिये अमिट हो गई है (अधूरे यज्ञ की बात ससार मे फैल चुकी है)।

श्लोक

अल्प प्रानं समानस्य, लालना पालनादपि ।
प्राप्तेतु युद्ध कालस्य, शुष्क काष्टं हुताशनं ॥४३१॥

शब्दार्थः—लालना पालनादपि=लालन पालन से । शुष्क=सूखा हुआ । काष्टं=काष्ठ । हुताशन=हुताशन, अग्नि ।

अर्थः—आप और हम भिन्न नहीं हैं । आपके और हमारे प्राणों के लालन पालन का सुख और युद्ध समय की आपतियों को इस तरह साथ २ ही भोगनी पड़ी और भोगनी चाहिये जैसे सूखी लकड़ी और अग्नि भुगतती है ।

दोहा

कै प्रारभन प्रिय भरन, मरन सु अग्गर राइ ।
जग्य विगारन जूह चढि, लियें सु कन्या जाइ ॥४३२॥

शब्दार्थः—भरन=भिड़ाकर । विगारन=विगाड़ना, ध्वंस कराना । जूह=जो, या साथी समूह सहित ।

अर्थः—अपने सामन्तों को प्रारम्भ में ही भिड़ाकर हे राजन् ! तू स्वयं अपना नाश कराना चाहता है । जिसने चढ़ाई करके तुम्हारे यज्ञ को ध्वंस किया है वही तुम्हारी पुत्री को लिये जा रहा है ।

मुख म्रजाद बुल्ल्यौ वयन, नयर कध कुटवार ।
सु विधि मीर सग्राम भर, तुम रक्खहु हटवार ॥४३३॥

शब्दार्थः—मुख=सामने । म्रजाद=मर्यादा । नयर कंध कुटवार=नगर रक्षक कोतवाल । सु=यथा । मीर=मीर बन्दे । हटवार=नगर ।

अर्थः—तब जयचन्द का मन्त्री बोला—हे नगर-रक्षक ! राजा के समक्ष तुमको मर्यादा पूर्वक बात करनी चाहिये । यथा विधि रणाङ्गण में मीर बंदे भिडेगें । तुमको तो कन्नौज नगर की रक्षा के लिये तत्पर रहना होगा ।

हट्ट नाम कुटवार सुणि, परि सामतनि जग ।
सबनि निरक्खत पग दल, परि पति दीप पतग ॥४३४॥

शब्दार्थः—कुटवार=नगर रक्षक । सुणि=सुनी । परि=पड़ गये । पति=बढ कर । दीप=दीपक ।

अर्थः—नगर रक्षक को नगर रक्षा की आज्ञा मंत्री ने सुनाई इतने में ही पंगुसेना पर युद्धार्थ सामन्त इस प्रकार झपट पड़े जैसे दीपक पर पतंग पंक्ति पड़ती हो।

बघराउ बघेल, हेलमू गलनि हल्ल किय।
मेघि सिंघ विज्जुलिय, जानि झमूरि झलक्किय॥
बे गयंद वारुनि वहत, वारत्तन वारिय।
मीर पुट्ठि आरुट्ठि, सेन गहि गहि आफारिय॥
आवृत्त वत्त सामंत रण, जमर मेछ समुह मिलिय।
अष्टमी चख्ख-इक्कह सु ग्रह, प्रथम रोस दुंदज मिलिय॥४२५॥

शब्दार्थः—हेलमू=हमला करने वाले विपक्षी। गलनि=गलने के लिए। हल्ल=हल्ला गुल्ला हुंकार। मेघि=मेघ। झमूरि=जमूर, छोटी तोप। झलक्किय=झलक पड़ा हो, चल पड़ा हो। बे=दो। वारुनि=मद। वारत्तन=वार करके, हाथियों के अंग को। वारिय=नष्ट कर दिये। आफारिय=आतुर हो गये। जमर=जबरे, बड़े २। मिलिय=मिल गये। चख्ख-इक्कह=एक चक्षु, शुक्र। दुंदज=द्वंद्व।

अर्थः—बघेले बाघराय ने विपक्षियों के नाश के लिये हमला करते हुए हुँकार की और महा सेना में इस प्रकार द्रुत गति से बढा मानों मेघ चल रहा हो। अथवा सिंह झपटा हो या बिजली अथवा चमचमाता हुआ जमूर (छोटी तोप का गोला) चला हो। उसने मद बहते हुए दो हाथियों को वार कर समाप्त कर दिया। उस वीर के पक्ष में अरिष्ट कर्ता बड़े २ मीर बढ़े पकड़लो २ का संकेत करते हुए चले। उस यम-तुल्य म्लेच्छ समूह से वार २ ख्याति प्राप्त किये हुए सामंत भिड़ गये। यह अष्टमी का क्रोध पूर्ण द्वंद (युद्ध) प्रारंभिक था। उस दिन पृथ्वीराज को शुक्र ग्रह बलवान था।

मित्त रथ रजि व्योम, मध्धि अठईय असुर गुर।
रस रुद्र वित्थरयन, खिन्ति खिझि लगे अमर दर॥
सकर भर लगि लोह, धूरि धधूरि दिसा दवि।
हाजिरु मीर हमाम, मीर गिरदान माम नवि॥
चवदिट्ठि उट्ठि राजन रवद, पारसि गहन गहन किय।
हय छंडि मंडि असिवर तुकर, जपि सु आतुर जीह लिय॥४२६॥

प्रा० पा० दे० प्रति से।

शब्दार्थः—मित्त=मित्र, सूर्य। मधि=में, मध्य में। थट्टंईय=ठहराया। अछुर गुर=असुरों का गुरू, शुक। रउद्र=रौद्र। वित्थरयउ=विस्तृत हो गया, फैल गया। खित्ति=क्षत्रिय। खिभ्भि=अप्रसन्न हो, क्रोधित हो। अमर दर=देवताओं का द्वार, स्वर्ग द्वार। सकर भर=शिवगण या(-आपत्ति पड़ने पर योद्धा)। धूरि धधूरि=धूलि से आच्छादित कर। दवि=दबा दी। हाजिरु=हाजिर हुआ, उपस्थित हुआ। गिरदान=साथी समूह। साम=स्वामी। नवि=नमस्कार। स्वद=स्व, शब्द। पारसि=सकेत गहन=पकड़ लो। छडि=छोड़ कर। असिवर=श्रेष्ठ तलवार। दु कर=दोनों हाथ। जीह=धनुष की प्रत्यन्चा।

अर्थः—जिस दिन पृथ्वीराज का शुक्र-ग्रह प्रबल था, उस दिन सूर्य ने अपना रथ आकाश मे युद्ध देखने के लिये रोक लिया और रौद्र रस विस्तृत हो गया। क्षत्रिय क्रोधित हो स्वग-द्वार पर भेंट करने लगे। शिव-गण सदृश्य सामन्तों ने लोहा झाड़ते हुए दिशाओं को धूलि से आच्छादित कर दवा दिया। उनके समस्त मीर-वदा हमाम अपने स्वामी को नमस्कार कर साथियों को लिये हुए आ उपस्थित हुआ। पृथ्वीराज से उन म्लेच्छों की जब चार आखें हुई तो वे अपनी भाषा में 'राजा को पकड़ लो २' संकेत करते हुए घोड़े छोड़ कर दोनों हाथों मे तलवारें लिए हुए तथा कितने ही धनुष की प्रत्यचा जल्दी से खेंचते हुए पैदल ही राजा की ओर लपके।

दोहा

कहर जहर वित्तिय घरिय, ढरिय जित्त तित्त सूर।
छत्रिनि इच्छति अच्छरीं, मिच्छणि इच्छति हूर ॥४२७॥

प्रा० पा० दे० प्रति से।

शब्दार्थः—कहर जहर=विष पूर्ण विघ्न की। वितिय=व्यतीत हुई। घरिय=घटी। ढरिय=लुढ़क पड़े। जित्त तित=यत्रतत्र। छत्रिनि=क्षत्रियों को। अच्छरीं=अप्सराएं। मिच्छणि=मुस्लिम वीरों को। इच्छति=इच्छा पूर्वक देखने लगी।

अर्थः—विष पूर्ण विघ्न की घड़ी व्यतीत हुई। यत्रतत्र बहादुर लुढ़क पड़े। उस समय क्षत्रियों को अप्सराएँ और मुस्लिम वीरों को हूरें इच्छा पूर्वक देखने लगीं।

पहर एक असिवर सुभट, आरिमि वुट्टो सार।
गिनै कौन गोयन्द सिर, जे खग तुट्टिय धार ॥४२८॥

शब्दार्थः—आरिसि=क्रोध करके। वुट्टो=बरसाया। सार=लोहा।

अर्थः—श्रेष्ठ वीर गोविन्दराय गुहिलोत ने क्रोध करके उस समय एक प्रहर तक तलवार का श्रेष्ठ वार करते हुए प्रत्येक विपक्षी के सिर पर लोहा बरसा दिया, किन्तु उस वीर के सिर पर खड्गधाराएँ टूटी, जिसकी गिनती कौन कर सकता है ?

कवित्त

परत सु धर गहिलौत, सेन नच्चिय असुरायन ।
त्रितिय जाम अह सुक्र, रस्स मत्तौ रुद्रायन ॥
गयत प्रान गेयद, मीर इतिमिन्त्ति सु पिल्लिय ।
खिभिफ राइ पज्जून, सुधर कम्मार सु ढिल्लिय ॥
हहकारि सीस लग्यो गयन, बिहथ कथ असिझारि करि ।
धर पर्यौ दत शत मित्त परि, उछ्यौ हक्कि हरि जेम अरि ॥४३६॥*

शब्दार्थः—अह=अहि, सर्प । सुक्र=शक, इन्द्र । रुद्रायन = रुद्र । गयत=गये । गेयद=गोविन्दराय । इतिमित्ति=इतिश्री, समाप्त । पिल्लिय=बढ़े । कम्मार=किवाड़, कपाट । बिहथ=दोनों हाथों से । दत=दती, हाथी । शत-मित्त=सौमित्र, सौ साथी । हक्कि=बढ़ा । हरि=सिंह । जेम=जैसा ।

अर्थः—जब तृतीय प्रहर दिन शेष रह गया, वह वीर गोविन्दराय गुहिलोत सर्प, इन्द्र और रुद्र के समान बन कर रौद्र रस का मतवाला हो युद्ध मे मुस्लिम वीरों की समाप्ति करता हुआ स्वयं धराशायी हुआ । गोविन्दराय का प्राणान्त हुआ, तब पुन मीर बन्दों ने हमला किया । यह देख दिल्ली-भूमि के लिये जो दृढ़ कपाट तुल्य वीर था । उस पज्जूनराय कछवाहे ने क्रोधित हो हुंकार की और अपना सर ऊँचा कर आसमान से लगा दिया । दोनों हाथों से उसने गज-स्कंध पर तलवार चलाई जिससे एक हाथी कटकर भूमि पर गिर पड़ा, उस समय उसके सौ साथी धराशायी हो गये फिर भी वह वीर कछवाहा शेर के समान उछल कर भिडता और आगे बढ़ता रहा ।

इति मित्तिहि उप्परह, मीर सो पच्छ छडि हय ।
हय हय हय जप जुवान, उथ्थान थान भय ॥

---

* इस समय में अधिकतर पाठ देवलिया प्रति से है ।

तिन रोहिग पज्जून, राइ केहरि करि जुथ्थह ।
दिक्खि सिंघ पामार, पीप परिहार सु पथ्थह ॥
चंदेल भूप भोंहा सुभर, दाहिम्मौ नर सिंघ अर ।
कच्चरा राइ चालुक्क पहु, मिलिय पच उप्पर समर ॥४४०॥

शब्दार्थ:—इतिमिचिहि=इतने में। उप्परह=ऊपर। सौ पंच=पांच सौ। हय ३=मार ३ करते हुए। उथ्थान=उत्थान। रोहिग=रोक लिया, रोंध लिया। करि जुथ्थह=हाथी समूह। पीप=पीपा। सु पथ्थह=श्रेष्ठ पथ पर चलने वाला। कच्चरा राइ=कचराराय। मिलिय=सम्मिलित हुए, आ मिले।

अर्थ:—इतने में उस वीर पज्जून के ऊपर पांच सौ युवक मीर बन्दों ने मार २ कह कर घोड़े बढ़ाये और रणस्थल का पुनः उत्थान हुआ। उन पांच सौ मीर बन्दों को वीर पज्जून ने इस प्रकार रोक लिया, जिस प्रकार सिंह-हाथी समूह को रोक लेता है। इधर यह देख पज्जून की सहायता पर सिंह प्रमार, श्रेष्ठ मार्ग पर चलने वाला पीपा प्रतिहार, श्रेष्ठ वीर चंदेल राज भोंहा, दाहिमा नरसिंह और चालुक्य राज (चालुक्य वंशी) कचराराय आदि पांचों वीर भी युद्ध में आ सम्मिलित हुए (भीमवध समय में कचराराय को भीम का उत्तराधिकारी सर्व प्रतियों में नहीं लिखा गया है और हमारे द्वारा किये गये सम्पादन में भी भीमवध समय में कचराराय भीम का उत्तराधिकारी नहीं माना है वे पद्य हमारी जाच से क्षेपक सिद्ध हुए हैं। यही बात आक्षेप कर्ताओं के उत्तर में हमने स्पष्ट करदी है। कचराराय को यहाँ चालुक्य राज लिखना केवल कवि की शैली ही है। जिसका तात्पर्य यही है कि वह चालुक्य क्षत्रिय था)।

दाहिम्मौ नरसिंघ, रिंघ रक्खी रावत पन।
सिर तुट्टै कर कढ्ढि, चढ्ढि धायौ धरहर घन ॥
मार मार उच्चरंत, राव वज्जै धाराहर।
देव स्तुति करि चार, रभ झग्गरी कहिरुवर ॥
संकरह सीस लिन्यौ जु कर, दई दरिद्री ज्यों गहिय।
कविचद निरखि सुभ्भै सिरह, जुगति उगति कवियन कहिय ॥४४१॥

शब्दार्थ:—रिंघ=बढ़कर। रावत पंन=रावत पने का। कढ्ढि=निकाल कर। धरहर=धाराहर, तलवार। रभ=रमाएँ अप्सराएँ। झग्गरी=झगड़ीं, झगड़ने लगी। कहिरु वर=वरण करने के लिये, कहकर या—अपना वर कह कर। संकरह=भगवान शङ्कर। लिन्यौ=लेकर। दई=ईश्वर। गहिय=ग्रहण कर। निरखि=देखकर। सुभ्भै=सुशोभित। सिरह=सिर। जुगति=रचना। उगति=उक्तियाँ।

अर्थः—दाहिमा वीर नृसिंह ने बढ़कर अपना रावतपन बनाये रक्खा। उसका सिर कट जाने पर भी वह तलवार निकाल कर युद्धार्थ बढ़ा और मार २ उच्चारण करते हुए उस राज पद धारी ने विशेष प्रहार करना शुरू किया। यह देखकर देवता गण उसकी स्तुति करने लगे और अप्सराएँ उसे वरण करने के लिये आपस में झगड़ने लगीं। ईश्वर तुल्य होते हुए भी शङ्कर ने उसका मस्तक हाथ में ले कर इस प्रकार देखा मानों दरिद्री (रंक) के हाथ में रत्न पड़ गया हो कविचन्द कहता है कि शिव की माला में लगे हुए अन्य वीरों के सिर उसके मस्तक से इस प्रकार सुशोभित हुए जैसे कवि की रचना में सु उक्तियाँ आजाने से उसका शोभा बढ़ जाती है।

तुट्टिग तछ्छ तछ्छ अंग, सस्त्र तुट्टिग अगिनिति रण।
अड तुट्टि जनु कट्ठ, सिलह टुट्टिग वक्कल जन॥
गजनि सु डि रद टुटिग, तुट्टि तुरियनि पग कंधे।
फुट्टिग खप्पर कालि, वीर नच्चिय रण तध॥
नरस्यध परत अदभुत्त हुव, समर असम वित्तिय घरिय।
अमर अनत सुर कुसम झरि, कित्ति चंद भट्टह करिय॥४४२॥

शब्दार्थः—अगिनित=अगणित, असंख्य। अड=कलश। कट्ट=काष्ठ। सिलह=कवच। वक्कल=वल्कल, जीर्ण वस्त्र। जन=जनु, मानों। रद=रद पंक्ति, दाँत। तुरियनि=घोड़ों के। फुट्टिग=फूट गया, टूट गया। कालि=कालिका। तधे=तन्द्रावस्था, मूर्छितावस्था। असम=विषम। वित्तिय=बीता। अमर=अम्बर, आकाश। अनत=अपार। किति=कीर्ति गान।

अर्थः—उस वीर नृसिंह के प्रहार से वीरों के अंग कट २ कर गिर पड़े। असंख्य शस्त्र तथा काष्ठ के समान रथों के कलश टूट गये। जीर्ण-वस्त्रों के समान कवच फट गये। हाथियों के दातों सहित सूडें और घोड़ों के कंधों सहित पैर टूट गये। कालिका का खप्पर फूट गया। मूर्छित अवस्था में वीर-नृत्य करने लगे। उक्त वीर के धराशायी होने तक अद्भुत संग्राम होता रहा, तथा विषम-घड़ियां बीत गईं। आकाश से देवता गण अपार पुष्प वर्षा करने लगे। यह देखकर मैंने (कविचन्द ने) भी उसका कीर्ति गान किया।

स्वामि काम तन तजै, तजे संसार सुक्ख ग्रह।
तजे मोह कल फंद, तजे पथ अमग मग्ग रह॥

तुरुणिनि तजे कटाक्ख,तरणि तन सजे वास तन ।
सत खने तजे अवास, हंस उडि मिले देव सन ॥
अद्भुत्त कर्म छत्रिनि करै, देव दनुज पन्नग दुलंभ ।
वयकुंठ वास लम्भिय भरणि, रहिय भूमि कित्ती सुलभ ॥४४३॥

शब्दार्थ:—काम=काम के लिये । मोह-कुल-फंद=कुलके ममत्व को । अमग=कुमार्ग । तुरुणिनि=तरुणियों । कटाक्ख=कटाक्ष । तरणि=सूर्य । वास=निवास, सूर्यमण्डल में निवास । तन=तनकर । सत खन=सात खण्ड । अवास=आवास । हंस=प्राण । देव सन=देवताओं में । भरणि=भट, वीर ।

अर्थ:—धन्य है क्षत्रिय सामन्तों को ? जो स्वामी के कार्य के लिये शरीर को, संसार को, गृह-सुख को और कुल के ममत्व को छोड़ देते हैं । इस प्रकार सांसारिक कुमार्ग छोड़ कर सद्मार्ग पर विचरण करते हैं । युवतियों के कटाक्षों को छोड़ कर शरीर को सूर्य-मण्डल मे पहुँचा देते हैं (सशरीर सूर्य मण्डल में जा मिलते हैं) और भू-मण्डल के सात खण्ड वाले आवासों को छोड़ उनके प्राण, देव-अंश में जा मिलते हैं । देवता, राक्षस और नागगणों को भी जो दुर्लभ है, ऐसे अद्भुत कर्म करते हुए सहज ही अपनी कीर्ति को कल्पांत तक भूमण्डल पर फैलाते हुये वे वैकुण्ठ-वास कर जाते हैं ।

मध्य टरत विप्पहर, सार वज्यौ प्रहार झर ।
मेघ पंग उन्नयौ, मार मंडिय अपार सर ॥
भय कूरंभ टट्टीव, छार भिज्जै तहँ दिज्जै ।
यर ओडन पृथिराज, वीर वीरां रस लिज्जै ॥
तन तमकि तमकि असि वर कढ्यौ, असि प्रहार धारह चढ्यौ ।
पज्जून बंध अरु पुत्र यर, करन जेव हथ्थह वढ्यौ ॥४४४॥

शब्दार्थ:—मध्य टरत=मध्यान्ह हो जाने पर । विप्पहर=दो प्रहर । सार=लोहा । वज्यौ=बजा । उन्नयौ=उमड़ने पर । मार मंडिय=मार होने लगी । सर=शर । टट्टीव=दिवाल । छार=बौछार । भिज्जै=भींजना, लगना, होना । ओडन=आड़ । वीरां-रस-लिज्जै=वीर रस का स्वाद लिया । तन=तनकर । तमकि=तैश में आकर, जोश में आकर । धारह-चढ्यौ=खड्ग धार पर चढ गये, खड्ग धारा से कट गये । बंध=भाई । हथ्थह-वढ्यौ=हाथ बढाये, हाथ चलाये ।

अर्थः—दाहिमा वीर नृसिंह ने बढ़कर अपना रावतपन बनाये रक्खा। उसका सिर कट जाने पर भी वह तलवार निकाल कर युद्धार्थ बढ़ा और मार २ उच्चारण करते हुए उस राज पद धारी ने विशेष प्रहार करना शुरू किया। यह देखकर देवता गण उसकी स्तुति करने लगे और अप्सराएँ उसे वरण करने के लिये आपस में झगड़ने लगीं। ईश्वर तुल्य होते हुए भी शङ्कर ने उसका मस्तक हाथ में ले कर इस प्रकार देखा मानों दरिद्री (रंक) के हाथ में रत्न पड़ गया हो कविचन्द कहता है कि शिव की माला में लगे हुए अन्य वीरों के सिर उसके मस्तक से इस प्रकार सुशोभित हुए जैसे कवि की रचना में सु उक्तियाँ आजाने से उसकी शोभा बढ़ जाती है।

तुट्टिग तछ तछ अंग, सस्त्र तुट्टिग अगिनिति रण।
अंड तुट्टि जनु कट्ठ, सिलह टुट्टिग वक्कल जन ॥
गजनि सुंडि रद टुटिग, तुट्टि तुरियनि पग कंधे।
फुट्टिग खप्पर कालि, वीर नच्चिय रण तंध ॥
नरस्यंघ परत अदभुत्त हुव, समर असम विंत्तिय घरिय।
अमर अनत सुर कुसम झरि, कित्ति चंद भट्टह करिय ॥४४२॥

शब्दार्थः—अगिनित=अगणित, असंख्य। अंड=कलश। कट्ठ=काष्ठ। सिलह=कवच। वक्कल=वल्कल, जीर्ण वस्त्र। जन=जनु, मानों। रद=रद पंक्ति, दाँत। तुरियनि=घोड़ों के। फुट्टिग=फूट गया, टूट गया। कालि=कालिका। तंधे=तन्द्रावस्था, मूर्छितावस्था। असम=विषम। विंत्तिय=बीता। अमर=अम्बर, आकाश। अनत=अपार। कित्ति=कीर्ति गान।

अर्थः—उस वीर नृसिंह के प्रहार से वीरों के अंग कट २ कर गिर पड़े। असंख्य शस्त्र तथा काष्ठ के समान रथों के कलश टूट गये। जीर्ण-वस्त्रों के समान कवच फट गये। हाथियों के दांतों सहित सूंडें और घोड़ों के कंधों सहित पैर टूट गये। कालिका का खप्पर फूट गया। मूर्छित अवस्था में वीर-नृत्य करने लगे। उक्त वीर के धराशायी होने तक अद्भुत संग्राम होता रहा, तथा विषम-घड़ियां बीत गईं। आकाश से देवता गण अपार पुष्प वर्षा करने लगे। यह देखकर मैंने (कविचन्द ने) भी उसका कीर्ति गान किया।

स्वामि काम तन तजै, तजे संसार सुक्ख पह।
तजे मोह कुल फंद, तजे पथ अमग मग्ग रह ॥

तुरुणिनि तजे कटाक्ख,तरणि तन सजे वास तन ।
सत खन तजे अवास, हंस उडि मिले देव सन ॥
अद्भुत्त कर्म छत्रिनि करै, देव दनुजे पन्नग दुर्लभ ।
वयकुंठ वास कम्मिय भरणि, रहिय भूंमि किती सुलभ ॥४४३॥

शब्दार्थः—काम=काम के लिये । मोह-कुल-फद=कुलके ममत्व को । अमग=कुमार्ग । तुरुणिनि= तरुणियों । कटाक्ख=कटाक्ष । तरणि=सूर्य । वास=निवास, सूर्यमण्डल में निवास । तन=तनकर । सत खन=सात खण्ड । अवास=आवास । हंस=प्राण । देव सन=देवताओं में । भरणि=भट, वीर ।

अर्थः—धन्य है क्षत्रिय सामन्तों को ? जो स्वामी के कार्य के लिये शरीर को, संसार को, गृह-सुख को और कुल के ममत्व को छोड़ देते हैं । इस प्रकार सांसारिक कुमार्ग छोड़ कर सद्मार्ग पर विचरण करते हैं । युवतियों के कटाक्षों को छोड़ कर शरीर को सूर्य-मण्डल मे पहुँचा देते हैं (सशरीर सूर्य मण्डल में जा मिलते हैं) और भू-मण्डल के सात खण्ड वाले आवासों को छोड़ उनके प्राण, देव-अंश में जा मिलते हैं । देवता, राक्षस और नागगणों को भी जो दुर्लभ है, ऐसे अद्भुत कर्म करते हुए सहज ही अपनी कीर्ति को कल्पांत तक भूमण्डल पर फैलाते हुये वे वैकुण्ठ-वास कर जाते हैं ।

मध्य टरत विप्पहर, मार वज्यौ प्रहार भर ।
मेघ पग उन्नयौ, मार मंडिय अपार सर ॥
भय कूरंभ टट्टीव, छार भिंज्जै तहँ दिज्जै ।
वर ओडन पृथिराज, वीर वीरा रस लिज्जै ॥
तन तमंकि तमकि असि वर कढ्यौ, असि प्रहार धारह चढ्यौ ।
पज्जून बंध अरु पुत्र वर, करन जेव हथ्थह वढ्यौ ॥४४४॥

शब्दार्थः—मध्य टरत=मध्यान्ह हो जाने पर । विप्पहर=दो प्रहर । सार=लोहा । वज्यौ=बजा । उन्नयौ=उमड़ने पर । मार मंडिय=मार होने लगे । सर=शर । टट्टीव=दिवाल । छार=बोछार । भिज्जे=भींजना, लगना, होना । ओडन=आड़ । वीरा-रस-लिज्जै=वीर रस का स्वाद लिया । तन= तनकर । तमकि=तेश में आकर, जोश में आकर । धारह-चढ्यौ=खड्ग धार पर चढ गये, खड्ग धारा से कट गये । बंध=भाई । हथ्थह-वढ्यौ=हाथ बढाये, हाथ चलाये ।

अर्थः—मध्यान्ह हो जाने पर दो प्रहर तक शस्त्र प्रहार होता रहा, मेघ स्वरूप पंगुराज के उमड़ने पर जल वृष्टि के समान बाण वर्षा होने लगी। उस समय कछवाहे वीर उन बाणों की बौछार से पृथ्वीराज को बचाने के लिये दिवाल स्वरूप हो गये। उन वीरों ने वीर रस का स्वाद ले लिया। वे तन कर जोश में आ अपनी तलवारों को निकाल कर प्रहार करते हुए खड्ग धारा से कट पड़े। इसप्रकार कछवाहे राजा पज्जून के भाई और पुत्र (मलयसिंह) ने उस युद्ध में मृत्यु पर्यंत वीर कर्ण के समान अपने हाथ चढाये।

गंग डोलि ससि डोलि, डोलि ब्रह्म ड सक्र डुल।
अष्ट थान दिगपाल, चाल चचाल विचल थल॥
फिरि रुक्यौ प्रथिराज, सबर पारस पहु पंगिय।
च्यारि च्यारि तरवारि वीर कूरंभ पति सज्जिय॥
नखिय पहुप इक चंदने, एक किति जपन वयन।
वे हथ्थ दरिद्री द्रव्य ज्यौं, रहे सूर निरखत नयन॥४४५॥

शब्दार्थः—गंग=गंगा। ससि=चंद्रमा। डोलि=डल गये, विचलित हो गये। सक्र=इन्द्र। अष्ट थान=आठों स्थानों के, दिशाओं के। चाल=चचाल=चल विचल। थल=पृथ्वी। सबर=सबल। पारस=घेरा। कूमरँपति=पज्जून। नखिय=बरसाये। सूर=बहादुर।

अर्थः—उन कछवाहे वीरों के मृत्यु पर्यंत युद्ध करने पर गंगा, चँद्रमा, ब्रह्माण्ड, इन्द्र, दसों दिशाओं सहित आठों दिगपाल और पृथ्वी चल-विचल हो गई। उनके मरने पर पंगुराज के सबल सैनिकों के घेरे ने पृथ्वीराज को फिर से रोक लिया। तब कूरंभ राज पज्जून ने अपने साथियों सहित चार २ तलवारें कसीं। उसे बढता हुआ देख कर आकाश स्थित एक चंद ने पुष्प वृष्टि की और दूसरे चंद (कविचंद) ने उसका कीर्ति गान किया उस वीर पज्जून के मारे जाने पर बहादुरों की ऐसी दशा हो गई, जैसे रंक के हाथों में द्रव्य पड कर खो जाने पर होती है।

दोहा

भीर परी पहुपंग दल, भये त्रतिय पहुराम।
तब पजून समुह करन, मरन क्रत्य क्रिय काम॥४४६॥

शब्दार्थः—भीर-परी=आपत्ति पड़ने पर। पहुराम=प्रहर। मरन-क्रत्य-क्रिय=मृत्यु कार्य किया, शत्रु संहार किया। काम=काम आ गया, मारा गया।

अर्थः—दिन का तृतीय प्रहर होते २ पंगुसेना द्वारा पृथ्वीराज पर आपत्ति पड़ जाने से वीर पज्जून ने शत्रुओं का सामना किया और उनका संहार करता हुआ स्वयं मृत्यु को प्राप्त हुआ।

हैं हम मंगल अब्ब जियौ, मरन सु मंगल-काज।
मरे पुत्र कौंत्री प्रमुनि, भजौ तामस राज ॥४४७॥

शब्दार्थः—जियौं=अमर हो गया। मंगल—काज=मंगल कार्य के लिये, राजा के विवाह कार्य के लिए। कौंत्री=कूरमी, कूर्म, कछवाहा। प्रमुनि=प्रसन्न। भजौं=नष्ट हुआ, दूर हुआ। तामस=तमोगुण, क्रोध। राज=राजा का, पज्जून का।

अर्थः—अंतिम सांस लेता हुआ कुरंभ राज पज्जून कहने लगा-हमारे लिये मरना मांगलिक है, ऐसी मृत्यु और वह भी राजा के मांगलिक (विवाह) कार्य के लिये प्राप्त कर हम अमर हो गये। इतने में सुना कि उसका पुत्र (मयलसिंह) भी युद्ध में मारा गया, यह सुनकर वह प्रसन्न हो गया और शत्रुओं पर उसका क्रोध था वह भी शान्त हो गया।

हम रत्तो कूरंभ रन, मरन सुमंगल होइ।
पँच पँचीस सवच्छरन, जाहु सु जीवन जोइ ॥४४८॥

शब्दार्थः—रत्ते=रत, लीन। पँच—पँचीस=पांच पच्चीस। सवच्छरन=संवत्सर, शताब्दी। जाहु=जावें (युद्ध से लौट जावें)। जोइ=वही।

अर्थः—अंतिम समय में और कहने लगा—हम कछवाहे वीर सदा से युद्ध में अनुरक्त रहने वाले हैं, मरने में ही हमारा मंगल है। जिन्हें पांच पच्चीस संवत्सर (शताब्दी) तक जीने की आशा हो उन्हें चाहिये कि वह युद्ध से हट जायँ (हम तो आयु को क्षण भंगुर मानने वाले और रण तीर्थ में मरना ही पसन्द करने वाले हैं)।

कवित्त

आवरदा सत बरख, अद्ध ताम निसि छिन्निय।
अद्ध ताम वै वृद्ध, बाल सभमैं हाइ हिन्निय ॥
सुनह सोक संकट प्रताप, प्रिय त्रिय नित समह।
बहि छोह रस कोह, वृद्ध दारुण दुख दुसह ॥
यौं सुनौ सकल हिन्दू तुरक, कौन पुत्र को तात बरि।
करतार हथ्थ तरवार दिय, इह सु तत्त रजपूत करि ॥४४९॥

शब्दार्थः—आवरदा=आयु । सत=सौ । वरख=वर्ष । अद्ध=आधी । छिन्निय=छीन लेती, बीत जाती । तासम=उसमें से । बै=वय । वृद्ध=बुढापा । बाल=बालकपन । मभझै=म । होइ-छिन्निय=हीन हो जाती छीण हो जाती, बीत जाती । सुतह=पुत्र । बद्धि=वृद्धि, उन्नति । च्छोह=उत्साह । कोह=कोध । वृद्ध=बुढापा, बहुत जीवित रहना । दग्रह=दुर्ग्राह्य । नरि=फिर । तत=तत्वमय ज्ञान । रजपूत= क्षत्रिय । करि=करे या किया ।

अर्थः—मनुष्य की अधिक से अधिक आयु सौ वर्ष की मान गई है, जिसमे से आधी आयु तो रात्रियों में बीत जाती है। शेष मे से आधी बचपन और बुढ़ापे में समाप्त होती है। उसमे से आधी युवापन के हिस्से में कही गई, वह पुत्र पालन, चिन्ता, दुख:, प्रताप वृद्धि, प्रिय, स्त्री, धन सग्रह, उन्नति, उत्साह, प्रेम और कोध, में व्यतीत होती है। अत अधिक जीवित रहना भयानक दुख प्रद और दुर्ग्राह्य है। हे हिन्दू और तुरुष्क वीरों ! मेरे ये अंतिम वाक्य सुनों ? कौन किसका पुत्र और कौन किसका पिता है ? यह सब असत्य है। स्रजता ने क्षत्रियों को जन्म देकर उनके हाथों में तलवार देदी है, उसको चलाने में उतीर्ण होना ही एक मात्र तत्वमय ज्ञान है।

परत राइ पज्जून, वित्तित्रय जाम सु बासर ।
विषम रुद्र बिथ्थर्यौ, भीर लग्गै भर सुब्भर ॥
वाघ राउ बघ्घेल, मीर कामोद सेन सम ।
मिलि चपिय चहुआन सूर सुभझै न अगम गम ॥
खह धूरि उट्ठि धंधुर धरनि, किलक हक्क बज्जिय विषम ।
पुंडीर राइ हरि राइ तन, समर बार सज्जिय असम ॥४५०॥

शब्दार्थः—वितित्रय जाम=तीन प्रहर बीत जाने पर । बासर=वासर, दिन । बिथ्थर्यौ=विस्तृत हो गया । भीर लग्गै=भीड़ लग गई । मिलि=मिल कर । चपिय=दबाया । सूर=सूर्य । सुभझै= सूझता, दीख पड़ता । अगम=दुर्गम । गम=सुगम । खह=आकाश । धधुर=धु धलापन । किलक= किलकारियां । हक्क=हाक, हुकार । हरि राइ तन=हरिराय का पुत्र, चन्द पुण्डीर ।

अथः—दिन का तृतीय प्रहर बीतने पर वीरों से वीर भिड़ जाने से भीड़ लग गई और रौद्र-रस विषमता पूर्वक फैल गया। ऐसा भीषण युद्ध करके पज्जूनराय धराशायी हुआ। विपक्षी बार बघेल बाघराय ने मीर अदे कामोद की सेना से मिल कर चाहुवान को दबाया। उस समय पृथ्वी से धूलि की धूधल ने उठकर आकाश को जा छुआ जिससे सूर्य और दुर्गम सुगम कोई वस्तु नहीं दिखाई पड़ती थी

और विषम ढग से किलकारियाँ और हुँकारें होने लगीं तब हरिराय का सुपुत्र पुण्डीरराय (चन्द पुंडीर) उस युद्ध में भयंकर वार करने के लिये तत्पर हुआ।

वीर मंत्र उच्चार, धार धाराहर बज्जिय।
तरणि तेग निव्वरिय गुडिल गयनह लगि गज्जिय॥
उडपति कमल अलोइ, तेज मिंजिय तारा अरि।
अनिय भोर अरि कमल, सयल लग्गे उप्पर परि॥
धर धार धार धु किय धरनि, करिय अरिय किननत धर।
पु डीरराइ चवह सु चिर, अरिय नट्ट नच्चै सु नर॥४५१॥

शब्दार्थः—धाराहर=तलवार। बज्जिय=वज्र तुल्य। निव्वरिय=निपटारा। गुडिल=धूल की धूंधलाहट। गयनह=आकाश से। लगि=लगकर। गज्जिय=गर्जना करने लगा। उडपति=चन्द्रमा। अलोइ=लुप्त हो गये। मिंजिय=मृ द दिया, लुप्त कर दिया। अनिय भोर=भाले की असित नोक। कमल=सिर, मस्तक। सयल=भाला। किननत=कराहना। चिर=चलकर।

अर्थः—सूर्य-प्रभा को धारणकर्ता वह वीर पुंडीर मन्त्रोच्चारण के साथ वज्रवत तलवार हाथ से लेकर (शत्रुओं का) निपटारा करने लगा और आकाश को छूता हुआ वह वज्रकाय वीर गर्जने लगा। उस समय ऐसा धूमल वातावरण हो गया कि चद्रमा और कमल लुप्त हो गये। सूर्य-प्रभा भी प्राय लुप्त हो गई। भाले ऊपर को उठे और उनकी श्यामवर्ण (रगी हुई) नोंकें शत्रुओं के सिर पर लगने लगीं। अपार खड्ग धारों की मार से पृथ्वी भी हिलने लगी। हाथी तथा शत्रु धराशायी हो कर कराहने लगे। इस प्रकार चंद पुण्डीर चलकर अड गया, जिससे वीर पुरुष रणाङ्गण में नटवत् नृत्य करने लगे।

वीर मीर कामोद आय जब पु डिर उप्पर।
विहथ नेज उब्भारि, बाहि निभझारि चद वर॥
सेल सेल समुहिय, हड्ड भजिय हिय चपिय।
सुधर ढार निभझार, वाहि असुराइन कंपिय॥
पुंडीर राइ आसुर सयन, भूत जिम्म नंचिय सभर।
दल भग्गि पग पु डीर परि, जय जय सुर सद्दे अमर॥४५२॥

शब्दार्थः कामोद=मीर मदा कामोदा। विहथ=दोनों हाथों मे। नेज=नेजा। उब्भारि=उठा कर। बाहि=वार कर। निभझारि=मार दिया। हड्ड=हड्डियों को। भजिय=भेद दिया। हिय=हृदय। चपिय=दबाया। सुधर=पृथ्वी पर। असुराइन=मुस्लिम सेना के। कंपिय=कांपने लग गया।

अर्थः—चद पुण्डीर पर वीर मीरवदा कामोद वढा और उसने दोनों हाथों मे नेजा उठाकर वीर पुण्डीर की छाती मे मारा, जिसके उत्तर मे पुण्डीर ने भी भाला उठाकर कामोद के वक्ष स्थल पर चला कर उसकी हड्डियों भेद दी और उसे पकड़ कर छाती से दबा लिया, फिर पृथ्वी पर पछाडकर वार किया जिससे वह म्लेच्छ कापने लगा। उस युद्ध मे मुस्लिम सेना के बीच वह वीर पुण्डीर प्रेत के समान नृत्य करने लगा—जिससे पशु सेना विचलित हो भाग गयी और वीर पुण्डीर भी धराशायी हो गया। यह देख देवता गण उस वीर की जय २ कार करने लगे।

परत राइ पुण्डीर, गहिव क्रूरम खग धायौ।
बाघ राउ बघेल, उहित करि वरु खग साह्यौ॥
त्रिभै त्रिभै निव्वरिग, तेग भारिय टट्टर पर।
मनहु वेद दुज हीन, पिट्टि झल्लरि अग्गै हर॥
गल वाहु लग्गि गह्यौ पिसुन, म्यत भिट्टि जनु बिच्छुरिय।
उर चपि दोइ कट्टारि करि, मुगति मग्ग लभ्भी घरिय॥४५३॥

शब्दार्थः—गहिव=पकड़ी। करि वरु=बल करके, बल पूर्वक। त्रिभै=निर्भय, निडर। निव्वरिय=निपट गये। टट्टर=शरीर। वेद-दुज-हीन=वेद और द्विज कर्म से रहित, शैव मत वाले। पिट्ठि=बजाई। झल्लरि=झालर। हर=शिव। गल-बाहु-लग्गि=गले में हाथ डाल कर। गह्यौ=दृढ। पिसुन=शत्रु। म्यत=मित्र। भिट्टि=भेंट कर। बिच्छुरिय=बिछुड़ा हो। दोइ=दोनों। कट्टारि-करि-कटारी द्वारा। मुगति-मग्ग=मोक्ष मार्ग की। लभ्भी=प्राप्त की। घरिय=घड़ी।

अर्थः—उधर चंद पुण्डीर के धराशायी होते ही क्रूरभराय कछवाहा तलवार पकड कर आगे बढ़ा। उससे भिडने के लिये बघेला बाघ राय बल पूर्वक खड्ग पकड कर आ डटा। एक दूसरे के शरीर पर तलवार का प्रहार कर वे निडर वीर आपस मे निपटे। उनकी तलवारें इस प्रकार बजीं मानों वेद और द्विज कर्म रहित शैवों ने शिव के सामने झालर बजाई हो। वे वीर शत्रु के गले मे हाथ डाल कर इस प्रकार मिले, जैसे कोई मित्र से भेंट कर बिछुडा हो। उन्होंने आपस मे एक दूसरे को हृदय से दबा कर कटारी का वार कर मोक्ष मार्ग की घडी प्राप्त की।

कूरंभह उप्परह, वच पाल्हन्नरा आयौ।
स्यघ छुट्टि सकलैं, दिखिव कुंजर घड धायौ॥

कुंत हुत रनि मँडिग, दढ्ढ जमदढ्ढ वि कस्सै ।
नल्ला, खग्गनि छुट्टि, पग सेना परि नस्से ॥
गज बाज जोध घन रण परिग, पहु कारण दिय प्रान जुअ ।
सुर नरह नाग अस्तुति करैं, बलि बलि बीर भुअंग भुअ ॥४५४॥

शब्दार्थः—बंध=बंधु । पाल्हन रा=पल्हनराय । स्यघ=सिंह । मंकलैं=शृंखला, जंजीर । दिक्खि=देख कर । कुंजर घट=गज सेना, गज समूह । हुत=से, द्वारा । रनि=रण । मँडिग=छोड़ा । दढ्ढ=दृढतापूर्वक । जमदढ्ढ=कटार । वि=उसने । कस्से=कसकर, जोर से वार किया । नल्ला=रस्सा, बंधन । छुट्टि=छोड़ा, खोला । परि=पकड़कर, बढकर । नस्से=संहार किया । जोध=यौद्धा । पहु-कारण=राजा के लिए । जुअ=युवा, युवक । भुअग=भुजग ।

अर्थः—कूरभराय के धराशायी होने पर उसका भाई पल्हनराय इस प्रकार बढा जैसे जंजीर से छूटा हुआ शेर, हाथी-समूह को देखकर बढता है । निकट आते ही भाले से युद्ध प्रारंभ किया, तत्पश्चात् दृढता पूर्वक कटार पकड़ कर जोर से वार किया, इसके बाद तलवार का बंधन खोल पशु-सेना का संहार करने लगा, जिससे बहुत से हाथी घोडे और यौद्धा रणस्थल में लुढकने लगे । उस युवक ने अपने राजा के लिये प्राण दे दिये । देवता, मनुष्य और नाग-गण पृथ्वी के इस विषैले वीर भुजग के लिये 'बलिहारी है रे' कहते हुए उसकी प्रशंसा करने लगे ।

ब्रह्म चालुक ब्रह्म चार, ब्रह्म विद्या वर रक्खिय ।
केस डाभ अरि करिय, रुधिर पण पत्र विसक्खिय ॥
खग्ग गहिग अजुलिय, नाग गहि नासिक ताम ।
धरणि अखर दुहुँ श्रवन जाप जपे मुख राम ॥
सिर फेरि खग्ग सम्हौ धरयौ, दुअन तार मन उल्हसिय ।
अष्टमी युद्ध सुक्रह अथमि, सुरपुर जा सारँग वसिय ॥४५५॥

शब्दार्थः—ब्रह्म-चालुक=ब्रह्म क्षत्रिय चालुक्य । ब्रह्म-चार=ब्रह्म लोक को जाता हुआ । ब्रह्म-विद्या=ब्रह्मकर्म । डाभ=दर्भ । पण-पत्र=पानी का पात्र, जल पात्र । विसक्खिय=विशेष रूप से, परिपूर्ण । नाग गहि=हाथियों को पकड़ना, करि-सूंड-ग्रहण । नासिक=नासिका ग्रहण । ताम=उस समय । धरणि=पृथ्वी पर, या धरे, सुने । सम्हौ-धरयौ=सामना किया, आगे बढा । दुअन=दुजन, दुर्जन शत्रु । तार=तार दिये, मोक्ष दान किया । उल्हसिय=उल्हासित किया, प्रसन्न किया । अथमि=अस्त हुआ ।

अर्थः—ब्रह्म क्षत्रिय चालुक्य ने ब्रह्म लोक जाते हुए ब्रह्म क्रिया को रख लिया (ब्रह्म कर्म किया)। शत्रुओं के केशों को उसने दर्भ (डाभ) बनाया और विशेष रूप से जल पात्र स्वरूपी रक्त पात्र को रुधिर से भरा। खड्ग पकड़ कर–उसी ही से अञ्जलि का काम किया। करि-सुण्ड को पकड़ना ही नासिका को पकड़ना हुआ। पृथ्वी के सबसे पवित्र दो अक्षर 'राम' के सुनने में ही कथा-श्रवण का अनुभव किया और राम नाम का ही जप हुआ। करन्यास के समान खडग घुमाता हुआ वह आगे बढ शत्रुओं को मोक्ष का दान देकर मनसे प्रसन्न हुआ। अष्टमी शुक्रवार का युद्ध इस प्रकार हुआ और दिन की समाप्ति होते ही वीर सारगदेव स्वर्ग मे चला गया।

दोहा

भान विहान जु दिक्खि कै,पिखि सामत सु सूर।
खिनुकु धीरतनु धरहु तीरथ हक्कू कुर ॥ ४५६ ॥

शब्दार्थः—खिनुकु=क्षणिक, थोड़ी देर के लिए। धिरतनु-धरहु=धैर्य धरो 'ठहरो, युद्ध बद कर दो। हक्कु=बढ़ाना है, कदम बढाना है। कुरु=कुरुक्षेत्र।

अर्थः—इधर पृथ्वीराज ने भी सूर्यास्त के समय सामतों की ओर देख कर आज्ञा दी कि हे बहादुर सामन्तों। प्रात काल होने पर सूर्य के दर्शन होते ही द्वितीय कुरुक्षेत्र के समान इस रण तीर्थ में हमे कदम बढाना है। अत इस समय युद्ध श्रम को दूर करने के लिये धैय धारण करो (युद्ध करना बन्द करदो)।

गाथा

निसि गत वछिय भान, चक्की चक्काइ सूर साचित्ता।
विधु सजोग वि जोगी, कुमुदिनि कलिकाइ कातरा न ॥४५७॥

शब्दार्थः—निसि-गत=रात्रि का अवसान। वछिय=चाहते। विधु सजोग=चन्द्रमा तुल्य सयोगिता। वि=और या दूसरे। जोगी=योगी। कातरा=कायर। न=नहीं।

अर्थः—रात्रि के अवसान और सूर्योदय होने को चकवाक दम्पति और बहादुर चाहते हैं, किन्तु पृथ्वी की साक्षात चन्द्र समान सयोगिता, योगी पुरुष, कुमुद-कलिका और कायर-पुरुष ये रात्रि का अवसान नहीं चाहते (चक्रवाक दम्पति परस्पर मिलन और वीर युद्ध के लिये प्रात की प्रतीक्षा करते हैं, किन्तु सयोगिता पति के हृदय से

दूर होने या रक्तपात की आशका से, योगी ईश्वर स्मरण में बाधक होने से, कुमुदिनी सुर्योदय के कारण मुरझाने की आशका से और कायर युद्ध भय से प्रातः काल होना नहीं चाहते)।

उभै सहस हय गय परिग, निसा निग्रहत भान।
सत्त सहस अस मीर हनि, थल विठ्यौ चहुआन ॥४५८॥

शब्दार्थः—उभै सहस=दोसहस्र। निग्रहत=दवाया। मान=मानु, सूर्य। अस=ऐसे। थल विठ्यौ= रण स्थल को घेर लिया, अधिकार में कर लिया।

अर्थः—जब तक रात्रि ने सूर्य को दबाया तब तक इस युद्ध में दो सहस्र हाथी, घोडे धराशायी हुए और सात हजार मीर बंदों को मारकर रणस्थल को पृथ्वीराज ने अपने अधिकार में कर लिया।

कवित्त

प्रथम मार सामन्त, सहिय मीरणि इति भित्तिय।
बाघ राउ बघ्घेल, हेल इन उप्पर खित्तिय॥
उभय उमगि गजराज, काज क्यन्नौ प्रथिराजह।
इक्कति सुंडि अखारि, इक्क मिडिग पग पाजह॥
खुरतार उरह कट्टार करि, परिग खित्त ते खिनु न जिय।
इह जुद्ध मुद्ध चहुआन सों, प्रथम केलि कमधज्ज किय॥४५९॥

शब्दार्थः—मीरणि=मीर बन्दों की। इति भित्तिय=सीमा से परे, अपार। हेल=साथी समूह। उप्पर-खितिय=ऊपर बीती, हमला हुआ। काज-क्यन्नौ=कार्य किया, शौर्य प्रदर्शित किया। इक्कति=एक को। सुंडि=सूंड धारी, हाथी। अखारि=अखड़ा दिया, पछाड़ दिया। मिडिग= मसल दिया, कुचल दिया। पाजह=प्राजह, पराजय। खुतार=खुरताल, घोड़ों की नाल। खित= रण क्षेत्र। ते=वह। खिनु=क्षण भर। मुद्ध= रण-मुग्ध। केलि=रण क्रीड़ा।

अर्थः—इस युद्ध के प्रारंभ में सामन्तों पर मीर बंदो की विशेष मार पड़ी। इतने में बघेले बाघराय और उनके साथियों का भी हमला हो गया। इस प्रकार मीर बंदे और बघेले दोनों गजराज के समान उत्साहित होकर बढ़े। उस समय पृथ्वीराज ने भी अपना शौर्य प्रदर्शित किया और करि-रूप एक शत्रु को तो पछाड़ दिया और दूसरे को सामने पाकर पैरों के नीचे कुचल कर पराजित कर दिया। पृथ्वीराज के अश्व की नाल और कटार को विपक्षी, हृदय पर धारण कर क्षण भर के लिये भी जीवित नहीं

रहे और तत्काल धराशायी हो गये। यह प्रथम युद्ध कीड़ा रण भूमि में पान के साथ कमधज नरेश की हुई।

परयौ गजि गहिलोत, नाम गोयद राज पर।
दाहिम्मौ नरस्यघ, परयौ नागोरि जास भर॥
परयौ चद पुडीर, चद पिक्ख्यौ मारतौ।
सोलकी सारगु, परयौ असि वर भारतौ॥
क्ररभ रावु पाल्हन दे, वधौ तीनि निवट्टिया।
कनवज्ज रारि पहिलै दिना, सौ मे सत्त निघट्टिया॥४६०॥

शब्दार्थः—गजि=दबाता हुआ,दमन करता हुआ। नागोरि=नागोर। सारगु=सारगराय। असि वर=श्रेष्ठ तलवार। वधौ= बधु। निवट्टिया=निपट गये, समाप्त हो गये। रारि=युद्ध। सौ मे=सौ म मे। सत्त=सात। निघट्टिया=कम हो गये।

अर्थः—शत्रुओं का दमन करता हुआ श्रेष्ठ गोविन्द राय गुहिलोत, नागोर भूभाग का दाहिमा नरसिंह, कवि चद कहता है मैंने स्वय शत्रुओं को मारते हुए जिन्हे देखा वह वीर चदपुण्डीर, श्रेष्ठ तलवार चलाने वाला सोलंकी सारगराय और क्रूरभराय, पल्हनदे आदि तीनों भाइयों सहित धराशायी हुए इस प्रकार कन्नौज को पहले दिन की लडाई मे पृथ्वीराज के सौ सामतों में से सात कम हो गये।

पज्जूनह उप्परह, राज प्रथिराज झंपत्तौ।
गरुअ राय गोयद, घाइ अघाइ ससत्तौ॥
चाइ चित्त चहुआन, कन्ह क्यन्नौ कर उभ्भौ।
रारडी ढिल्लरी, आज लग्गौ मन दुभ्भौ।
धाराधिनाथ वारग वर, जैत जीत क्यनौ रुदन।
चामड इस मुक्यौ सुपह, रखन छिति छत्ती हदन॥४६१॥

शब्दार्थः—गरुअ=गरूर रखने वाला। घाइ अघाइ=घावों से अक गया। ससत्तौ=शस्त्र धारी। चाइ=चाहते हुए। रारडी=राड, लडाई। ढिल्लरी=दिल्लीश्वर। दुभ्भौ=दुर्लभ। धाराधिनाथ=धार राज वशज। जैत=जेत्र। जीत=विजई। उभ=पकडा जाकर, बधन में लिया जाकर। मुक्यौ=छोड़ा गया। छत्ती हदन=क्षत्रियत्व की सीमा।

अर्थः—युद्ध के प्रारंभ मे पज्जून आगे बढा उसकी सहायतार्थ स्वय पृथ्वीराज को बढना पडा। उसी समय शस्त्र का गरूर रखने वाला गोविन्दराय भी घावों से छक

कर धराशाई हो गया। यह देख कर पृथ्वीराज को चाहने वाले काका कन्ह ने हाथ उठाकर कहा, लड़ाई छिड़ने पर ही अच्छे वीर याद आते हैं) । हे राजन्! उस दुर्लभ वीर (कैमास) में आज हमारा मन आ लगा है (अर्थात् आज वह होता तो यह घटना नहीं घटती, यदि घटती भी तो वह स्वय निपट लेता। आज तुम्हें स्वय लोहा नहीं लेना पड़ता)। यह सुन खड्ग धारण करने वाला धारराज वंश विजयी जैत्र ने कयमास की स्मृति मे आसू टपका दिये और कहा जो पृथ्वीपर क्षत्रियत्व की सीमा रखने वाला चामुण्ड राय था वह भी बंदी बनाया गया और उसे घर पर ही रक्खा गया

अद्ध रयनि चदनिय, अद्ध अगौ अँधियारिय ।
भोग भरनि अष्टमिय, सुक्रवारह सुदि रारिय ॥
च्यारि जाम जगलिय, राव निसि स्यंदन घु ट्यौ ।
थल विंट्यौ कमधज्जु, रह्यौ कदल आहुट्यौ ॥
दस कोस कोस कनवज्जतैं, कोस कोस अतर अनिय ।
वाराह रोह जिम पारधी, इम रुक्यो सभरि धनिय ॥४६२॥

शब्दार्थः—भोग भरनि=नाश करने वाली। रारिय=युद्ध। स्यदन-घुट्यौ=निद्रा के वश मे हुआ। विंट्यौ=घेर रक्खा। कदल=काम कन्दला, संयोगिता। आहुट्यौ=उलझा अनिय=सेना। रोह=रोकना। पारधी=शिकारी।

अर्थः—अर्द्ध रात्रि सचद्र और अर्द्ध तिमिराच्छादित थी शुक्ल पक्षीय शुक्रवार की वह अष्टमी सामतों का नाश करने वाली ही कही जा सकती है क्योंकि उस दिन कन्नौज का युद्ध आरभ हुआ। सूर्यास्त के चार प्रहर बाद जंगलेश्वर (पृथ्वीराज) निद्रा वश हो गया। यद्यपि जयचद ने चारों ओर घेरा डाल रक्खा था फिर भी वह काम-कन्दला (नव वधू संयोगिता) से उलझा रहा। वह स्थान कन्नौज से ग्यारह कोस की दूरी पर था। उस स्थान से कोस २ की दूरी पर पगु सेना डटी हुई थी। पृथ्वीराज को शत्रु सेना ने इस तरह घेर रक्खा था, जैसे विकट वाराह को पारधि रोक रखता है।

रोह राह वाराह, भार सामत ढढारे।
ढल्ला ढार जुझार, पच सूरति रखवारे॥

रण स्यगार झुभझार, टढ्ढ ढल्हा उन्ढारे।
पारथ वीर पंथिया, सत्त स्वामित्त सुधारे॥
पारस विलास रा पग दल, घन जिमि धर बंबरि दवन।
सग्राम धाम धुंधरि परिय, निसि त्रिघात तारह छ्वन॥४६३॥

शब्दार्थः—रोह=रोके जाने वाली। ढढारे=वाराह। ढल्ला=ढलेतों। ढार=लुढ़काने वाले। पच सूरती=पचज्ञान (पच भौतिक ज्ञान, शरीर प्राप्ति के तत्व)। ढढ्ढ=दढ या दतूसल। पथिया=पथ पर चलने वाले। पारस=आस-पास लगी हुई। बंबरि-दवन=बंब देने वाले, गर्जना करने वाले। छ्वन=छाने पर।

अर्थः—वाराह वीर (पृथ्वीराज) की रोके जाने वाली राह को साफ करने वाले उसके सामन्त भी शत्रुओं पर दतूसल झाडने वाले स्वय वाराह थे। वे जुझार ढलेतों को लुढ़का देने वाले, पचज्ञान के रक्षक युद्ध स्थल के शृंगार, उछल २ कर तलवारों का वार करने वाले, अर्जुन के पथ के अनुगामी, सत्यता पूर्वक स्वामी-धर्म को धारण करने वाले, आस-पास लगी हुई पगु सेना से विनोद कर्ता और मेघ के समान गर्जना करने वाले थे। उन वीरों का स नक्षत्र रात्रि हो जाने पर विपक्षियों के साथ युद्ध होता रहा जिससे युद्ध स्थल धूमिल बना रहा।

दोहा

अज्जि अवन्निय चद किय, ता रस मारू भ्यन्न।
पलचर रुधि चर हस चर, करिय रवन्निय र्यन्न॥४६४॥

शब्दार्थः—अज्जि=आज। अवन्निय=अवर्णनीय, अकथनीय। ता=उसके। मारू=पति, प्यारा। भ्यन्न=भीन गया भीज गया। रुधिचर=रुधिर भुक्ता। हसचर=प्राण भुक्ता। रवन्निय=रमणीक। र्यन्न=रैन, रात्रि।

अर्थः—आज यह अकथनीय रात्रि उस चद्रमा (चद्र मुखी सयोगिता के सुहाग) की है जिसके रस में उसका प्यारा भींज (तर) गया है। पल, रुधिर और प्राण भुक्ताओं की स्वर लहरी द्वारा ही उस सयोग सुख का मगल गान गाया जाकर उसे और भी रमणीक बना दिया है।

श्लोक

जित नीरं तित नलिनी, जित नलिनी जल तित।
जतो गृह तता गृहिणी, जत्र गृहिणी ततो गृह॥४६५॥

शब्दार्थः—जित=जहां। तितं=तहां। नलिनी=कमलिनी। जतो=जहां। ततो=तहां। जत्र=जहां।

अर्थः—जहाँ जल वहाँ कमलिनी और जहाँ कमलिनी है वहाँ जल का होना स्वाभाविक है। इसी प्रकार जहाँ गृह वहाँ गृहिणी और जहाँ गृहिणी वहाँ गृह का होना भी स्वाभविक है।

कवित्त

रा-निड्डुर रा-जैत, राव भोंहा भर च्यतिय।
सो अरिष्ट उपनौ, मरण अपकोत्ति सुनतिय॥
छच्छदरि गिलि अप्प, ग्रहन उग्रह को सुमभ्झइ।
मरि छुट्टौ कैमास, मत जरिगय ता मभ्झइ॥
त्रिप कियौ भयौ सो भट्ट सँग, तट्ट भेख राजन कियौ।
परपच पच वधह सु परि, जोगिनि पुर जाइ सु जियौ॥४६६॥

शब्दार्थः—च्यतिय=चिन्तनकिया। अपकोत्ति=अपकीर्ति, अयश। सुनंतिय=सुनी जायगी। छच्छदरि=छछुन्दर। गिलि=निगलना। अप्प=सर्प। उग्रह=छोड़ना। मंत=मन्त्रणा। जरिगय=भस्म हो गये। ता-मभ्झइ=उसी के साथ। तट्ट=यहां आने पर या हमसे तटस्थ रह कर। परपच=प्रपंच। पंच=पचतत्व मय (सयोगिता की काया)। वधह=बधन। जोगिनिपुर=दिल्ली। जाइ=जाय। जियौ=जीवित।

अर्थः—इधर निड्डुरराय, जैत्रराय और भोंहा-चदेल ने मिलकर भविष्य के सम्बन्ध में विचार करना प्रारंभ किया। वे आपस मे कहने लगे-यह अरिष्ट प्रद अवमर प्राप्त हुआ है, इसमें मृत्यु के साथ २ अपकीर्ति होने की भी सभावना है। इस समय हमारी ऐसी दशा है जैसे सापने छछुन्दर को निगल लिया हो। छछुन्दर को पकड़ना तो सहज है परन्तु छोडना कठिन हो गया है। अच्छा हुआ जो कैमास मर गया और इन अघटित घटनाओं से छुटकारा पा गया। अच्छी मंत्रणाएँ भी उसी के साथ समाप्त हो गई। राजा ने अपनी मन मानी की और इसने बन्दी जन के साथ यहाँ आकार छद्म वेश धारण किया तथा पचतत्व के प्रपचों के बन्धन(सयोगिता की सुन्दरता के बन्धन) में पड गया, किन्तु अब यह किसी तरह दिल्ली पहुँच जाय तो अच्छा है।

दोहा

कन्न लग्गि कहि कन्ह सौं, तक्किति रा अनुवत्त।
निसा अप्प ग्रह किय न कछु, प्रात परैं इहि छत्त॥४६७॥

शब्दार्थः—कन्न-लग्गि=कान में । तक्किति=देखा गया । रा=राजा । ... अपने ग्रह की (चिन्ता) । इहि=यह । सव=सब ।

अर्थः—तब वे मंत्रणा करने वाले तीनों सामन्त काका कन्ह के पास जाकर चुपके से उसके कान में कहने लगे-राजा तो रानी के सौंदर्य में अनुरक्त हो गया है। हमें इस रात्रि में ही अपनी गृह-चिंता की बातें करनी चाहिये थीं, किन्तु नहीं की गई। बहुत सम्भव है प्रात काल होने पर शत्रुओं द्वारा दिल्ली का यह छत्र पतित हो जाय।

कहै कन्ह तुम मुद्ध, मुद्ध राजन जिनि मगह ।
उद्ध मरण तैं डरहु काइ भग्गहु अनभग्गह ॥
कही राइ पज्जून, सोइ वित्तक यह वित्तिय ।
असुर बुद्धि आसुरिय, भट्ट मंडन किय कित्तिय ॥
गारुडिय ग्रह्मौ अमृत मितिय, विषम विखन्नल उत्तरै ।
अवघट्ट घाट नखै नृपति, दैव वट्ट घट्टह करै ॥४६८॥

शब्दार्थः—मुद्ध=मूढ़ । जिनि=जिसके । उद्ध=ऊर्ध्व, पवित्र । काइ=क्या, क्यों या काया । वित्तक=बात । गारुडिय=सपेरा । अमृत-मितिय=अमृत रहित । विखन्नल=विषाग्नि । अवघट्ट-घाट=विकट घाट । नखै=डाल दी । देव=देवता प्रभु वट्ट-घट्टह करै=घाट पर लगावे, रास्ते पर ले आवे, पार लगादे ।

अर्थः—कन्ह ने कहा-तुम और तुम्हारा राजा दोनों ही मूर्ख हो जो पवित्र मृत्यु से डरते हो और अभग्न काय होते हुए भी भागने की इच्छा प्रगट करते हो। स्वर्गीय वीर पज्जूनराय ने जो बात कही थी वही बात अब आ मिली है। यह राजा दानव-अंशी है और इसकी बुद्धि भी आसुरी है। जिसे बढ़ावा देने के लिये यह बंदीजन इसकी कीर्ति का मण्डन करता रहता है। हमने सपेरे के रूप में इस अमृत रहित सर्प (जयचन्द) को पकड़ तो लिया है, इसकी विषम विषाग्नि से हम बच जायें। राजा ने तो हमारी नाव को विकट धार में डाल ही दी है परन्तु प्रभु प्रबल है। उस डूबती हुई नौका को रास्ते पर लाकर पार लगा सकता है।

जिहि देवल भर कोट, सूर सामंत थंभ धर ।
कित्ति कलस आरुहिय, नीम जीरन जुग्गह-कर ॥

सार पट्ट पट्टयो, चित्र मंडयौ सु उकति अप ।
धर्यौ पुहुप पहु पग, करौ पूजा सु वीर जप ॥
साध्रम्म वचन लग्गौ चरन, देवतेव प्रथिराज हुअ ।
वामंग अग सजोगि करि, लच्छि रूप मड्यौ सु धुअ ॥४६६॥

शब्दार्थः—देवल=देवालय । मर=भट, योद्धा, सैनिक । आरुहिय=चढा दिया । जीरन=जीर्ण, पुरानी । उग्गह-कर=आग्रत हाथ, बढते हुए हाथ, कर प्रहार । पट्ट=किंवाड़ । पट्टयौ=लगा दिये । अप=अपनी, मुक्त कवि चंद की । साध्रम्म वचन=स्वामि धर्म के वचन । देवतेव=देव तुल्य यह । धुअ=ध्रुव, निश्चय ।

अर्थः—कन्ह कहता है कि अब तो ऐसे देवालय की रचना हो गई है, जिसके सैनिकों रूपी कोट, श्रेष्ठ सामतों रूपी स्तम्भ, कीर्ति रूपी कलश, योद्धाओं के कर-प्रहार रूपी पुरानी नींव, शस्त्र रूपी कपाट, कवि चन्द की सुउक्तियों रूपी चित्र-मंडना और पगुराज द्वारा (शस्त्र झड़ी के रूप में) पुष्प-वर्षा हो रही है। ऐसे देवालय में देव (विष्णु) तुल्य पृथ्वीराज लक्ष्मी स्वरूपा संयोगिता को वामांग में धारण किये हुए सुशोभित है अब हम को स्वामि-धर्म युक्त स्तुति वाक्य कथन करते हुए उनके चरण छूकर वीर-पूजा करने का सुअवसर मिल गया है, अब उसे हाथ से नहीं जाने देना चाहिए।

दोहा

सुनी मत्त कन्नह नृपति, जगी सजोगि निवार ।
वीर रोस उभ्भौ न्रपति, मनु रजि रुट्ठे मार ॥४७०॥

शब्दार्थः—मत्त=मन्त्रणा । निवार=छोड़ कर । उभ्भौ=उमग पड़ा । रजि=सुशोभित हुआ । रुट्ठे=रूठा हुआ । मार=कामदेव ।

अर्थः—कन्ह की इस मन्त्रणा को सुनकर राजा पृथ्वीराज संयोगिता को छोड़कर बाहर आया। उस समय वीर रस और क्रोध से भरा हुआ वह दुल्हा राजा पृथ्वीराज ऐसा दिखाई दे रहा था मानों रुष्ट हुआ कामदेव सुशोभित हो।

मिलै सव्व सामत, वोल भग्गहिति नरेसर ।
आपु मग्ग लग्गियै, मग्ग रक्खै इकु इकु भर ॥
इक्क इक्क जूझत, दूत नतिनि ढढोरहि ।
जिके पंग रा भीड़, मारि मारिन मुख मोरहि ॥

हम बोलु रहै कलि अंतरै, देहि स्वामि पारथ्थियै ।
अरि असी लख्ख को अगमैं, बिना राइ सारथ्थियै ।।४७१।।

शब्दार्थः—बोल=वचन । मग्गहिति=मांगा । नरेसर=नरेश्वर । अप्पु=आप । मग्ग रक्खै=रास्ते पर नियुक्त करिये । इक्कु-इक्कु=एक एक । टटोरहि=टटोल लेंगे । जिके=जो । भीच=भीड़, या भयानक । सारिन=लोहे द्वारा, शस्त्रों द्वारा । बोलु=बात । कलि अंतरैं=कलियुग में । देहि=शरीर में । पारथ्थियै=पार्थ, अर्जुन । अगमैं=लोहालेना स्वीकृत करैं । राइ=राजा । सारथ्थियै=सारथी ।

अर्थः—इसके बाद सब सामंतों ने एकत्रित होकर राजा से यह वचन मांगा कि हे नरेश्वर ! आप अपना (दिल्ली का) रास्ता पकड़िये और शत्रु-समूह को रोकने के लिये क्रमश एक एक सामन्त को रास्ते पर नियुक्त कर दीजिये । हम एक एक सामन्त क्रमश जूझते हुए हाथियों के दांतों को टटोल लेंगे और पंगु नरेश की सेना की बड़ी भारी भीड़ है उसे शस्त्रों द्वारा मृत प्राय करके मोड़ देंगे । हम यही चाहते हैं कि कलियुग में हमारी यह बात बनी रहे हे स्वामि ! हम जानते हैं कि आप शारिरिक शक्ति में अर्जुन के समान वीर हैं, किन्तु अस्सी लक्ष शत्रुओं से लोहा लेना साधारण बात नहीं है । आप अर्जुन जैसे हैं, किन्तु सारथी की कमी है । (सारथी की कमी बतलाने में सामन्तों का चित्तौड़ पति रावल समर-विक्रम के लिये संकेत है ।)

मति घट्टी सामंत, मरण भौ मोहि दिखावहु ।
जम चिट्ठी विनु मरणु, होइ तो मोहि सिखावहु ।।
तुम गञ्यौ भर भीमु, तासु मझ्झह मैमंतौ ।
मैं गोरी साहाब, साहि सर-भर साहंतौ ।।
मोहीजु सरन हिंदू तुरक, तिहि सरनागत तुम करहु ।
बुझियैन सूर सामंत हौ, इतौ बोझ अप्पुनु धरहु ।।४७२।।

शब्दार्थः—घट्टी=कम हो गई, फर्क था गया । मरण भौ=मृत्यु भय । जम-चिट्ठी=यमराज का पत्र, यमराज की आज्ञा । मरणु=मृत्यु । गञ्यौ=दबाया, दमन किया । मझ्झह=गर्व, अभिमान । मैमंतौ=मतवाले । सर-भर=बाणवार, या बाणों के बल पर । हिंदू=हिन्दू । बुझियैन=क्या बूझूं, क्या प्रश्न करूँ । बोझ=भार । अप्पुनु=अपने पर, मेरे पर ।

अर्थः—तब पृथ्वीराज ने कहा–हे सामन्तों! तुम्हारी बुद्धि में फर्क (अन्तर) आ गया है। इसीलिये तुम मुझे मृत्यु का भय दिखाते हो; किन्तु यह शिक्षा तो मुझे तब देनी चाहिये थी, जब यमराज की आज्ञा के बिना किसी की मृत्यु हुई हो। तुमने चालुक्य राज भीम और उसके सामन्तों का दमन कर दिया है। उसी अभिमान के कारण तुम मतवाले हो रहे हो, किन्तु मैं भी कम शक्ति नहीं रखता हूँ। मैंने अपने ही बल पर शहाबुद्दीन गौरी जैसे बादशाह को पांच बार (या मेरे बाणों के बल पर) पकड़ा है और मेरी शरण में समस्त हिन्दू और तुरक हैं। मेरे जैसे वीर को तुम शरण मे रखना चाहते हो। तुम स्वयं बहादुर सामन्त हो। इस समय मुझे क्या करना चाहिये, इसके लिये तुम से क्या प्रश्न करूँ (अर्थात् तुम स्वय वीर बाने को जानते हो)। आप मुझ पर इतना भार क्यों डालते हैं? (आपको और मुझे तो साथ ही रहना और साथ ही लड़ना है)।

कवित्त

मैं जित्तौ गढ द्रग, मोहि सब भूपति कपहि।
मोहि कित्ति नव खड, पहुमि–बदीजन जपहि॥
मैं भजै भिरि भूप, भिरवि भुज दड उपारे।
होन कहा मुख कहौं, कौन खग खेत विथारे॥
मैं जित्ति साहि सुरतान दल, मुहि अमान जानै जगत।
चहुआन राव इम उच्चरै, हुं देख्खौ कब कौ भगत॥४७३॥

शब्दार्थः–जित्तौ=जीत। द्रग=दुर्गम। पहुमि–बदीजन=बदीजन पृथ्वीभट्ट (कविचन्द) भिरवि=भिड़कर। उपारे=उखाड़ दिये हैं। होंव=मैं अब। विथारे=विस्तृत किया। अमान=नहीं मानने वाला। हु=मुझे। कौ=किसने।

अर्थः—पृथ्वीराज कहने लगा— हे सामतों! मैंने दुर्गम दुर्गों को जीत लिया है, मुझ से ससार के सारे राजा काँपते हैं, मेरी कीर्ति नवों खण्डों में फैली हुई है जिसका पृथ्वी भट्ट (कविचद) जैसा बदीजन भी वर्णन करता है और मैंने राजाओं से भिड़कर उनके भुज-दण्डों को उखाड़ दिया। मैं अपने मुख से अपनी क्या प्रशसा करू? मेरे सामने युद्ध क्षेत्र मे कौन अपनी तलवार को विस्तार दे सकता है। मैंने सुलतान के दल को भी जीत लिया है और सारा ससार मुझे किसी खिर पर नहीं मानने वाला जानता है। मुझे किसने और कब (युद्ध क्षेत्र से) भागते हुए देखा है?

जा क्त्ती कारनह, म्रत्त मग्यौ भीखम नर ।
जा क्त्ती कारनह, अस्ति दद्धीच देय बर ॥
जा क्त्ती कारनह, देव दुर्जोधन मानी ।
जा क्त्ती कारनह, राम बनवास प्रमानी ॥
कारन्न क्त्ती दीलीप न्रप, सिंघ मस गोदान दिय ।
मम मुक्कि कित्त हथ्थह रतन, मत्त बरख जीवै न जिय ॥४७४॥

शब्दार्थ:—म्रत=मृत्यु । भीखम=भीष्म । अस्ति=अस्थियां । मानी=हठ बनाये रखा । प्रमानी=स्वीकार किया । मम मुक्कि=नहीं छोड़नी चाहिए ।

अर्थ:—जिस कीर्ति के लिये भीष्म ने मृत्यु माँगी, दधीचि ने देवताओं को अपनी अस्थियों का दान दे दिया, देव तुल्य दुर्योधन ने अपना हठ बनाये रखा, राम ने वनवास स्वीकार किया और दिलीप ने गौ की रक्षा हेतु अपने माँस का दान देना चाहा, उसी कीर्ति-रत्न को हाथ से नहीं छोडना चाहिए; क्योंकि कोई सौ वर्ष तक तो जीता नहीं है ।

बनु रक्खै ज्यौं रयघु, बिंभ बनु रक्खहि रयघह ।
धर रक्खै ज्यौं भुअँग, धरणि रक्खैति भुअंगह ॥
कुलु रक्खै कुलबधू, बधू रक्खैति अप्प कुलु ।
जलु रक्खै ज्यौं हेम, हेम रक्खैति सब्बु जलु ॥
अवतारु जबह लगि जीवनौ, जियन जम सह आवतह ।
राधत्त तेह रा रक्खनौ, राजन रक्खहि रावतह ॥४७५॥

शब्दार्थ:—बनु=बन । बिंभबनु=विन्ध्याचल जैसा वन । भुअँग=भुजग, शेषनाग । कुलु=कुल । जलु=जल । हेम=हिम । अवतारु=अवतरित । जबह—लगि=जब तक । जम=जन्म । आवतह=आते । तेह=वहाँ । रा=राजा । रक्खनौ=रक्षक । राजन=राजा ।

अर्थ:—जब स्वामी और सेवकों में इस प्रकार वाद विवाद होते हुए देखा तो चन्द बोल उठा जिस प्रकार वन बनराज की और बनराज भी विंध्याचल जैसे वनों की, शेषनाग पृथ्वी की और पृथ्वी शेष नाग की, कुल कुल-वधू की और कुलवधू कुल की, जल हिम की और हिम जल की रक्षा करता है । उसी प्रकार सामन्तगण राजा के और राजागण सामन्तों के रक्षक कहे गये हैं । अवतरित पुरुषों की जब तक जिन्दगी

(उम्र) है, तब तक जीवित रहना है और जब आयु शेष नहीं रहती तब मरकर जनम लेना पड़ता है। यह निश्चित है। इस प्रकार यह आवागमन ससार से नहीं मिटता। इस लिये मृत्यु से डरना वृथा है।

अनि अग्गें हठ परहि, चोट चिहुरत्त न घल्लहि।
परे लेहि परि गाहि, दाह दुअननि उर सल्लहि ॥
पहु डुल्लत पच्छै परत, पाय अच्चल्ल चलहि कर।
अत असन सिर सहहि, भाइ भलपनति लहहि भर ॥
बरदाइ चद चिंतनु करइ, धनि छत्री जिन ध्रम्म मति।
मुक्कहि न स्वामि सकट परै, ते कहियै रावत्तपति ॥४७६॥

शब्दार्थः—अनि=सेना। चिहुरत्त=चिहुडते, कराहते। घल्लहि=करते। परे=छूट पडने पर, आक्रमण करने पर। लेहि=लेते, देते। परि=अन्य को। गाहि=कुचल। दाह=जलन। दुअननि=शत्रुओं के। सल्लहि=चुमते। पहु-डुल्लत=राजागण विचलित हो जाते, पीठ बता देते। पच्छै-परत=पीछे पडने पर। अचल्ल=अच्चल, अटल। चलहि=चलते। असन=असिन, तलवारें। भाइ=भाव। भलपनति=भलाई के, परोपकार के। मुक्कहि=छोडते। रावत्तपति=राजवंशियों के सिरमोर। चिंतनु=चिंतन, प्रकाश डालता हुआ, वीचारता हुआ।

अर्थः—हठ पूर्वक सेना के अग्रभाग पर वे चल पड़ते हैं परन्तु कराहते हुए योद्धाओं पर वार नहीं करते। आक्रमण करने पर वे शत्रुओं को कुचल उनके हृदय मे जलन पैदा कर वे चुभते रहते हैं। जब वे पीछे पड़ जाते हैं तो बडे २ राजागण भी पीठ बता देते हैं। उनके पैर अटल है (पीछे पैर नहीं देते) किन्तु हाथ द्रुत गति से (युद्ध और दान समय) चलते रहते हैं। अत समय तक तलवारों के वार सिर पर सहन करते रहते हैं और परोपकार के अच्छे भाव हृदय मे भरे रखते हैं। चन्द बरदाई इस प्रकार उनके गुणों पर प्रकाश डालता हुआ कहता है-धन्य है उन क्षत्रियों को जिनकी मति धर्म में है और जो स्वामी को आपत्ति में नहीं छोडते हैं। वही तो सच्चे राज-वंशियों के सिर मौर कहे जाते हैं।

पंचति रक्खहि पास, पच धरणी धन रक्खहि।
पच पुच्छि अनुसरहि, पच तत्तै जिय लक्खहि ॥
पच विहत वंचियहि, पच आदरअ मनाइति।
पच पच धरि तोन, करुनि मडिय वासन जित्तो ॥

चहुआन राइ सोमस सुत्र, इम गत्तह वद्धै सु क्रिति ।
अनुसरिय लाज राजन रवन, सुत्तु राज राजन पति ॥४७७॥

शब्दार्थः–पुच्छि=पूछ कर । ततै=तत्व । विहीत=विहिन, रहित । वचियहि=छोड़ देना चाहिये । आदरअ=सम्मान कर । मनाइति=मान कर या मनायें । तोन भा शा । करुनि-मडिय=हाथों द्वारा मडन करें, कर प्रहार करें । वासन जिति= निवास स्थानों को अधिकार में करें । इमगत्तह=इस नीति पर चल ने से । बद्धै=वृद्धि होती । क्रिति=कीर्ति । राजन–रवन=राजाओं से रण क्रीड़ा करने वाले सुत्तु=श्रुतु, सुनो

अर्थः—मंत्रणा देने वाले श्रेष्ठ पाच व्यक्ति पास मे रक्खे जाते है और उन्ही के कारण धरा और धन की रक्षा होती है। उन्हीं के कथनानुसार कार्य किये जाते है। पच नाम धारी का बड़ा ही महत्व है क्यों कि पचतत्व के पुतले मे ही जीव बसता है। अत जो पच से रहित हैं, उन्हें छोड देना चाहिये। हे सोमेश्वर के सुपुत्र चाहुआनराज। मैं इसीलिये कहता हूँ कि पाचों को मान कर उनका सम्मान करना चाहिये और पांच-पाच भाथे कसकर प्रहार करते हुए विपक्षियों के स्थानों को अधिकार मे लेना चाहिये। तलवार पकड कर इसी नीति का अनुसरण करने पर कीर्ति की वृद्धि होती है। हे राजाओं से रण-क्रीडा करने वाले हे राजेश्वर ! मेरी इस बात को सुन कर लज्जा का अनुभव कीजिये।

दोहा

राज विमुख्यौ लोक सुणि, धुनि सामत अनत ।
वक दीह वछै न को, सुर णर नाग गनत ॥४८८॥

शब्दार्थः—राज=राज से, राज वैभव से। विमुख्यौ=विमुख, प्रतिकूल। लोक=जनता। सुणि= सुनकर। धुनि=सिर धुन लिया। अनत=असख्य। वक दीह=बाके दिन, युद्धदिवस। वछै=चाहते। न को=कौन नहीं। णर=नर। गनत=मानते, चाहते।

अर्थः—हे राजन् ! यद्यपि अपनी सुख सम्पति के प्रतिकूल आपको सुनकर जनता और असख्य सामन्तों ने सिर धुन लिया है फिर भी सुर-नर-नाग आदि जिसको चाहते है ऐसे बाके दिन को (युद्ध के दिन को) कौन नहीं चाहता ?

कवित्त

तैं रख्यौ हिंदवानु, गज्जि गौरी गाहतौ ।
तैं रख्यौ जालौरु, चपि चालुकु चाहतौ ॥

तें रख्यौ पंगुरौ, भीउ भट्टी दै मथ्थैं ।
ते रख्यौ रणथमु, राय जद्दों सै हथ्थैं ॥
इहि मरन कित्ति रा पंग की, जियन कित्ति रा जगली ।
पहु परनि जाइ ढिल्ली लगै, (तौ) होइ घरद्घर मंगली ॥४७६॥

शब्दार्थः—गाहतौ=कुचला जाने से। चाहतौ=चाहना करके। रख्यौ पगुरौ=पंगुराज को शत्रु बनाकर रखा। भीउ=भीम। दै-मथ्थैं=सरपर उठाया। सै-हथ्थै=अपने ही हाथों। जंगली=जंगलेश्वर। परनि=परनी हुई, नवविवाहिता। ढिल्ली-लगै=दिल्लपी हुच जाय। घरघ्घर=घर २। मंगली=मंगल गान।

अर्थः—हे नरेश्वर ! तूने गौरी शाह के द्वारा कुचला जाने से हिन्दुस्तान की रक्षा की है। जालोर-स्थान जिसकी चालुक्य ने इच्छा की और घर दवाना चाहा था उसकी भी तुमने रक्षा की। तूने पगुराज को शत्रु बना कर रक्खा है इस आपत्ति को भी तेरे सामन्त भीम भट्टी ने सर पर उठाया। यादव राजा को रणथभौर में रखकर तूने अपने हाथों से उसकी रक्षा की (अर्थात् तेरी सदैव विजय रही)। वर्तमान में यह विचारने जैसी बात है कि पगुराज की कीर्ति इस समय मर जाने में और आपकी जीवित रहने में ही है। इसलिये हे राजन् ! इस नव विवहिता को लेकर आप दिल्ली पहुँच जांय तो आपकी विजय और विवाह के मांगलिक गीत ससार में घर २ गाये जाने लगेंगे।

सूर मरण मगली, स्याल मगलु घर आयैं ।
वाय मेघ मगली, धरणि मगल जल पायैं ॥
कृपन लोभ मगली, दानि मगलु कछु दन्नै ।
सत मगल साहसी, मँगन मगलु कछु ल्यन्नै ॥
मगली वार हैं मरण की, पति सथ्थै तनु छंडियै ।
चढि खेत कमद्धजराइ सौं, मरण सनमुख मडियै ॥४८०॥

शब्दार्थः-स्याल=गीदड़। आयैं=आयें, आने पर। वाय=वायु। पायैं=पायें, पाने पर। दन्नै=देने पर। मंगन=मगन, याचक। पति-सथ्थै=लज्जा के लिये।

अर्थः—तब पृथ्वीराज ने कहा-हे कवीश्वर ! बहादुरों का मरने मे, गीदड़ का जीवित अपने स्थान पर लौट जाने मे, मेघ का वायु के प्रयोग मे, पृथ्वी का जल प्राप्ति में,

कृपण का स्वार्थ पूर्ति में, दाता का दान देने में, साहसी पुरुष का सत्यव्रत पालन में और याचक का इच्छित वस्तु प्राप्त करने में मंगल कहा गया है। इस लिये हम वीर पुरुषों के लिये यह मरने का मांगलिक समय है। अतः लज्जा के लिये शरीर छोड़ना ही मेरे लिये उत्तम है। कमधजराज रण क्षेत्र में चढ़ आया है, तो हमें भी सामना करके मृत्यु का मण्डन करना चाहिये।

मरणु दियै प्रथिराज, हमें छत्री कर गेठे।
मीचु लगनिया पाइ, कहै आयौ घर वैठें॥
पच घट्टि सौ कोस, कहै दिल्ली अस कथ्थैं।
इक्क इक्क सूरिमा, पिख्खि वाहते बथ्थैं॥
घर घरनि परणि रा पग की, पहु चै इही वडप्पनौ।
जब लग्गि गग धर चदु रवि, तब लगि चलैं कविप्पनौ॥४८१॥

शब्दार्थः—मरणु-दियै=मृत्यु के समर्पित कर देने पर। पच-घट्टि सौ=पांच कम सौ, पिच्चानवें। सूरिमा=बहादुर, सामंत। वाहते-बथ्थैं=बाहु पसारता हुआ। घर=घर पर। घरनि=गृहिणी। परणि=नव विवाहिता। रा-पग की=पगु-पुत्री। इही=इसी में। वडप्पनौ=गौरव। कविप्पनौ=कवि कथित कीर्ति गान।

अर्थः—कविचद बोला—हे राजन! इस तरह स्वय को मृत्यु के समर्पित कर देने से क्षत्रिय गण गठ कर परिहास करेंगे और कहेंगे कि मृत्यु की लगन पाकर देखो, यह विपक्षी स्वय घर नैठ आ गया। इसीलिये कहना है कि यहाँ से दिल्ली ६५ कोस है। अतः एक २ सामन्त बाहु पसारता हुआ अड़ेगा और आप नव विवाहिता पगु-पुत्री को लेकर दिल्ली पहुँच जायेंगे। इसी में आपका गौरव है और ऐसा करने से जब तक गंगा, पृथ्वी, चद्रमा और सूर्य रहेंगे तब तक कवि-कथित आपका कीर्ति गान चारों ओर विस्तृत रहेगा—

गाथा

मिट्टयौ न जाइ कहिनौ, कहनो कविचद सार सामत।
प्राची हय गय वाहो, गहनौ गत च्यत न्यद आवत॥४८२॥

शब्दार्थः—मिट्टयौ-न-जाइ=मेटा नहीं जाता, उलघन करने योग्य नहीं। प्राची=पूर्व रूप। वाहो=बढाते रहो। गहनौ-गत-च्यत=निश्चित रहो। न्यद-आवत=नींद आती है।

अर्थः—इस प्रकार सामन्तों की ओर से तत्व युक्त कथन कविचन्द ने कहा, वह कथन उल्लंघन करने योग्य नहीं था, किन्तु उस समय राजा ने यही कहा कि पूर्व योजनानुसार हाथी, घोड़ों को बढाते रहो और निश्चिंत रहो। इस समय निद्रा ने मुझे घेर लिया है।

कवित्त

नहँ मन्निय मति राज, सूर सामंत सहिशं।
अरजि ताम कविचद मन्नि मन राजन बत्तं ॥
बहुरि दूयंन्न सामत, गिरद रख्यौ फिरि राजन।
फिरै अत्थ अप थान, व्यटि ल्यनै जे जा जन ॥
वुल्लियउ ताम जादव जु रण, अहो कन्ह सुनि नाह नर।
त्रिप व्याह राह च्यतौ सुचित, घर तरुणी तरुणी ति घर ॥४८३॥

शब्दार्थः—मन्निग=मानी। मति=मंत्रणा। सहिच=के हित की। अरनि=कहा। ताम=तब। मन्नि=मानली। बहुरि-धन्न=लौटा दिये। गिरद=घेरा। व्यटि-स्यन्नै=चारों ओर हो गये। जे-जा-जन=वे और उनके साथी। राह=रश्म। च्यतौ=चिंतन, किया, सोचा, चाहा।

अर्थः—बहादुर सामन्तों की हित प्रद श्रेष्ठ मत्रणा राजा ने नहीं मानी। तब कवि चन्द ने उपर्युक्त ढग से समझाया। जिससे राजा ने उसकी बात को मान लिया। सामन्तों को वहाँ से अपने २ वितान पर लौटा दिया गया। उन सामन्तों ने सावधानी से सब प्रबन्ध कर लिया। और राजा की रक्षा के लिये चारों ओर डटा रहना निश्चित कर अपने २ साथियों सहित निरीक्षण करने के लिये तत्पर हो डट गये। तब रणराय यादव काका कन्ह से कहने लगा—हे वीर नरनाह! राजा नववधू से विवाह की रस्म पूरी करना चाहता है, क्योंकि कहा गया है कि जहाँ गृहिणी वहाँ गृह और जहाँ गृह वहाँ गृहिणी है।

दोहा

अवर व्याह अनि मगली एह व्याह जुध राह।
तिन रति व्याह हरखियै, रयन सयन प्रथमाह ॥४८४॥

शब्दार्थः—अनि-मगली=अमांगलिक। एह=यह। जुध राह=युद्ध द्वारा। रति=प्रेम। हरखियैं=हर्ष मनाना चाहिये। रयन-सयन-प्रथमाह=सुहाग की प्रथम रात्रि।

अर्थः—अन्य युद्ध अमांगलिक कहे जा सकते हैं, किन्तु यह युद्ध मांगलिक मानना चाहिये, क्यों कि युद्ध द्वारा संयोगिता का पाणिग्रहण हुआ है। इस नव दम्पति का प्रेम और प्रथम मिलन धन्य है, जिसका हमे भी हर्ष मनाना चाहिये।

कवित्त

कहै कन्ह नरनाह, सुनहि जामान जद्दवर।
विरुध राह बृद्धाह, तुमहि बुभ्झौ सुभाव वर॥
तुम समान नहिं बीर, नेह सम सगुन सुधा रस।
तुमहि कहौ तिनि राज, प्रेम कारण्ण काम कस॥
हम काज आज सिर उप्परें, खग्ग धार भारी सु खल।
पुज्जओं राज ढिल्ली सुधर, दुब्भर सुब्भर भजि दल॥४८५॥

शब्दार्थः—जामान=जामराय। जद्दवर=यादव। विरुध=विरोध। बृद्धाह=वृद्धि हुई। बुभ्झौ= पूछो। वर=दुलहे के। तिनि=इस। कारण्ण=कारण। काम-कस=कैसा कार्य हुआ। पुज्जओं= पहुँचाऊं। दुब्भर—भयंकर।

अर्थः—तब नरनाह कन्ह कहने लगा- हे श्रेष्ठ वीर जामराय यादव! श्रेष्ठ दुलहे के स्वाभव की बात तुम ही इससे पूछ सकते हो। जिसके कारण इस विरोध मे वृद्धि हुई है, तुम्हारे सदृश दूसरा वीर नहीं हो सकता, क्योंकि तुम को जैसा प्रेम निभाना आता है वैसा ही तुम में मधुर भाषण करने का गुण भी है। इस राजा से कहो कि इस प्रेम के हेतु कौन सी कार्य सिद्धि हुई है? हमारा कार्य तो हमे करना ही है। आज शत्रुओं के सिर पर खड्ग धार झाड़कर भयंकर योद्धाओं को काट कर नष्ट कर देंगे और राजा को दिल्ली पहुँचा देंगे।

मैं जान्यौ पहिलौ न, एह कारण क्रत राजन।
मरण पच्छ कैमास, मत जानै नहि जा जन॥
भट्ट कज्ज न्रप कहिय, सकल लोकह सो जानिय।
एह कथ्थ पहिलोन, सन सन भई सवानिय॥
मंत्यौ सु एह कारन प्रथम, पुर कमद्ध प्रथिराज किय।
त्वहौ सु अच्च अरि हर उकसि, लोक सु जित्तौ काज जिय॥४८५॥

शब्दार्थ:—पहिलौं=पहिले । जा=जिसका । पहिलौन=पहिले से । संन-सन=शनैः शनैः । सवानिय=सब में, सब की जबान पर । मंत्यौ=मंत्र लिया, मंत्र के वश में कर लिया । पुर-क्मद्ध=कमधज पुर, कन्नौज । घरि-हर=प्रत्येक शत्रु को । उकसि=उकस कर, उमड़कर । काज-जिय=इसकी जिन्दगी के लिए ।

अर्थ:—फिर कन्ह कहने लगा—राजा ने यह कार्य किया है इसे मैं पहले नहीं जान सका था । कैमास की मृत्यु के बाद जो मंत्रणा हुई और जिसे राजा के अन्य सेवक भी नहीं जान सके थे । राजा के इस कार्य को पूरा मरने में कविचंद का पूरा हाथ है । यह बात अब सारा संसार जानने लग गया है और यह कथा अब पहले से शनै २ अधिक रूप में फैलेगी । राजा को मानो किसी ने मत्र के वश में कर लिया हो यही कारण है कि पृथ्वीराज ने कमंध राज के नगर में प्रवेश किया । अब अवसर आगया है कि मैं भी आज राजा की जिन्दगी के लिये डट कर प्रत्येक शत्रु का संहार करके सारे लोकों पर विजय प्राप्त करूँ ।

कवित्त

सुनिय वत्त राजंन, कन्ह मन रीस आप चित ।
पय लग्यौ नर नाह, धन्नि जपी सु धन्नि हित ॥
लिय वासन अन्नन्य, फिरित रोपिय सब संगिय ।
वधिवारि विथ्थारि, उद्ध वित्तान विलग्गिय ॥
जंपयौ राज जहौ नमिय, प्रथिमराज इह व्याह रह ।
रवनिय सु मेंह प्रथमह मिलन, करहु सयन त्रिप सुख्ख सह ॥४८७॥

शब्दार्थ:—राजंन=राजा पृथ्वीराज ने । चित=सोचकर । पय-लग्यौ=चरण छूये । धन्नि=धन्य । धन्निहित=स्वामी का हित चिंतन करते हुए । लिय=मँगा लिये । वासन-अन्नन्य=अन्य वितानों से । फिरित=फिर से । सगिय=लोहे के माले । बंधिवारि=वंदन माल । विथ्थारि=फैलाई । विलग्गिय=लटकाई । जंपियो=निवेदन किया । नमिय=नमकर । प्रथिमराज=पृथ्वीराज । रह=रस्म । रवनिय=रमणी । सुख्ख-सह=सुख के साथ ।

अर्थ:—कन्ह को इस प्रकार अपने चित्त में क्रोध करते हुए सुन कर पृथ्वीराज ने भ क र उसके चरण छुए । अपने स्वामी का हित चिंतन करते हुए वीर कन्ह ने

राजा को धन्यवाद दिया और वीरों के अन्य वितानों से लोहे के भाले मँगवा कर राजा के ऊर्ध्व वितान के सामने रोप कर बदन वारें (तोरण) लटकाई। बाद मे जामराय ने राजा से निवेदन किया कि आप निश्चिंत रहिये और इस नूतन विवाह के प्रथम दिन की रस्म को सुख के साथ शयन कर पूरी कीजिये।

दोहा

तब सु राज रवनिय निरखि, हसि आसन मुख विट्टि।
रचिय काम सयनह सुबर, लिय निय ढिग हठि निट्टि ॥४८८॥

शब्दार्थः—आसन-मुख=सामने सुसज्जित शैया पर। निय=समीप। हठि=हठ पूर्वक।

अर्थः—पृथ्वीराज पुन अपने वितान में प्रवेश कर संयोगिता के सामने सुसज्जित शैया पर जा बैठा और काम-विलास के लिये शयन किया और हठ पूर्वक संयोगिता को समीप लिया।

संजोगिय नयननि निरखि, सफल जम्म न्रप मानि।
काम कसाये लोइननि, हन्यौ मदन सरतानि ॥४८९॥

शब्दार्थः—जम्म=जन्म। कसाये=आकर्षित। लोइननि = नैत्रों से।

अर्थः—पृथ्वीराज ने संयोगिता को देख कर अपने जन्म को सफल माना। इधर संयोगिता ने भी काम द्वारा आकर्षित नैत्रों का वार काम-शर के समान ही किया।

सुधि भूली संग्राम की, भूलि अप्पनिय देह।
जो न भयौ बसि पंग दल, (सो) भयो वाम सन्नेह ॥४९०॥

शब्दार्थः—अप्पनिय=अपनी। बसि=वश में। वाम=वामा, संयोगिता।

अर्थः—जो पंगु सेना के भी वश मे नहीं हुआ, वह पृथ्वीराज संयोगिता के स्नेह के वशीभूत होकर युद्ध और अपने देह की सुधि भूल गया।

नयन चरन कर मुख उरज, विकसत कमल अकार।
कनक वेलि जनु कामिनी, लपकति वारणि भार ॥४९१॥

शब्दार्थः—उरज=उरोज, कुच। अकार=आकृति। वारणि=रैशों से।

अर्थः—संयोगिता के नैत्र, चरण हाथ तथा मुख की शोभा विकसित कमल के समान थी, और कुच कमल-कलिकाकृति तुल्य थे एव वह सुन्दरी केशों के भार से लचकती हुई कनक लता के समान शोभा प्राप्त करती थी।

रवनि रमण मनु राज भय, भयै नैन मन पंग।
सूरणि सों सग्राम करि, मँडूयौ प्रथम रस जंग ॥४६२॥

शब्दार्थः–रवनि=रमणि। मनु=मन। मये=राजा के ही हो गये, राजा को अर्पित हो गये। पग=पंगु कुमारी (सयोगिता)। सूरणि=बहादुरों। सों=से। रस-जग=रति रण।

अर्थः—उस रमणी से रमण करने मे राजा का मन लग गया। उधर पगु कुमारी के नैत्र और मन राजा को अर्पित हो गये। दिन में राजा ने बहादुरों से जिस प्रकार युद्ध किया था। उसी प्रकार प्रथम समागम की रात्रि में रति-रण छेड़ दिया।

चित अति चिंता जग्गि-ज्वल, सज्जि राज कमधज्ज।
जिके सुभट वर आपने, फिरै तत्र क्रित रज्ज ॥४६३॥

शब्दार्थः–जग्गि ज्वल=ज्वाला जल रही थी। जिके=जो। फिरै=घूम रहे थे। क्रित-रज्ज=राजा के कार्य के लिये।

अर्थः—उधर कमधज राज के चित्त मे चिंता की ज्वाला अपार रूप से जल रही थी, इसीलिये रात्रि में भी वह सुसज्जित था और उसके श्रेष्ठ वीर भी रात्रि मे अपने स्वामि के कार्य की लगन में यत्र तत्र घूम रहे थे।

सैन सजग प्रथिराज हुअ, वज्जहि लाग निसान।
काइर विधु मन वच्छही, सूर ति वच्छहि भान ॥४६४॥

शब्दार्थः–सैन=शयन, निद्रा। सूर=शूर, बहादुर। ति=वह।

अर्थः- इधर पृथ्वीराज निद्रामे सावधान हुआ। उस समय नक्कारे बजने लगे। जिन्हें सुन कर कायर पुरुष चंद्रमा और बहादुर सूर्य-दर्शन की इच्छा करने लगे। (अर्थात कायर पुरुप रात्रि चाहते थे और वीर पुरुष सूर्योदय की इच्छा करते थे)।

गाथा

सन भट किरणि समूरो पुरिया रैंण सुगा आयेस।
जुग्गिनिपुर पति सूरो, पारस मिस पग राएस ॥४६५॥

शब्दार्थः—समूरो=सम्पूर्ण । पुरिया- रैण=रात्रि को पलायन कर दी । सुग्ग=स्वर्ग । आयेस=आज्ञा पत्र । सूरो=सूर्य । पारस=घेरा । पगु रायेस=पगुराज ।

अर्थः—पृथ्वीराज के सौ सामन्त उस समय सूर्य की सम्पूर्ण किरणों के समान दिखाई देते थे, जिन्होने स्वर्ग जाने के आज्ञा पत्र को प्राप्त कर अपनी कांति से रात्रि को पलायन कर दी थी। इधर दिल्लीश्वर सूर्य सा भासित होता था और सूर्य के आस पास के घेरे के तुल्य पंगुराज और उसके साथी घेरा दिये हुए सुशोभित थे ।

कवित्त

चित्त चिंता कमधज्ज, दिक्खि लग्गी चहुआन ।
प्रथम जुद्ध दरबार, सूर सद्धे असमान ॥
घटिय सत्त दिन उद्ध, जुद्ध लग्गे सुमहाभर ।
अस्तकाल सम मीर, परे धर सूर अप्प वर ॥
सामत सत्त प्रथिराज परि, करे क्रम्म अतुलित्त सह ।
प्रथिराज तरनि सामॅत किरनी, थप्पी तेज आरेण थह ॥४६६॥

शब्दार्थः—दिक्खि=देखकर । दरबार=सभा से, द्वार से । असमान=असम, विषम । उद्ध=ऊँचा उठने पर, चढ़ने पर । अस्तकाल=सूर्यास्त समय । सत्त=सात । आरेण-थह=शत्रु के भूभाग पर ।

अर्थः—प्रबल वीर पृथ्वीराज को देखकर पगुराज चिन्तित होगया। मन ही मन वह दिन में हुई युद्ध की घटनाओं का स्मरण करने लगा कि प्रथम युद्ध मेरे द्वार से ही छिड़ा, जिसमे प्रचण्ड वीरों ने युद्ध किया । सात घड़ी दिन चढने पर महान यौद्धा युद्ध में लग गये और सूर्यास्त समय मीर वर्दो जैसे मेरे श्रेष्ठ यौद्धा धराशायी हो गये। इधर पृथ्वीराज के केवल सात ही सामत अतुलित क्षत्रिय कर्म करते हुए धराशायी हुए (अर्थात् शत्रु पक्ष के केवल सात ही मरे और मेरे अपार वीरों का नाश हुआ) । धन्य है सूर्य रूपी पृथ्वीराज और किरणों रूपी सामतों को जिन्होंने शत्रु के भूभाग पर आकर अपने प्रतापरूपी तेज को स्थापित कर दिया है ।

सहस पच सम सूर, पास क्षत्तिय निम्मल कुल ।
निज-सरीर हय देह, सज्जि सिर अग्य राज वल ॥
तिन समथ्थ रा-पग, फिरित सत्र सेन अप्प प्रति ।
जिके नृपत्तो सेव, कहै प्रथिराज रोह तति ॥

जिनि जाय निकसि चहुआन ग्रह, ग्रहौ तास सब सेन हय ।
इमि फेरि राज निज भ्रत्त प्रति, प्रथु सनमानित सव्व रय ।।४६७।।

शब्दार्थः—सम=समान । पास वत्तिय=समीप वर्ती, पास में रहने वाले । त्रिम्मल-कुल=कुलीन । निज-सरीर=अपने अग स्वरूप । हय-देह-सज्जि=घोड़ों को सजाये । सिर-अग्य-राज=राजाज्ञा को शिरोधार्य कर । व न=शक्ति युक्त । रा-पंग=पंगुराज । फिरिन=फिरता रहा । जिके=जो । रोह=रोके रहो । तति=इसी स्थल पर । जिनि-जाय-निकसि=नहीं निकल जाय । फेरि=फिराता रहा, घुमाता रहा । भ्रत्त=भृत्य । प्रति=प्रत्येक । सनमानित=सम्मानित, स्वागत प्राप्त किये हुए । सव्व-रय=सब राजाओं से, या सारी रात्रि ।

अर्थः—पगुराज के समान ही उसके पास मे रहने वाले पांच सहस्र कुलीन यौद्धा उसी के अग स्वरूप थे जो राजाज्ञा से अपने घोडे और अपनी शक्ति युक्त सुसज्जित थे। उन सामर्थ्यवानों सहित पंगुराज सारी रात्रि अपनी सेना में विचरण करता रहा और जितने राजा पगुराज की सेवा में थे उन सबको पृथ्वीराज को रोकने की आज्ञा देता रहा और सावधान करता रहा कि पृथ्वीराज, सामन्त और उनके घोडे इस घेरे के बाहर नहीं निकल जांय। इस प्रकार कमधज राज सेवक-पक्ति को रात्रि भर पृथ्वीराज की सेना के चारों ओर घुमाता रहा। मानों सावधानी के बहाने वह पृथ्वीराज (जामाता) का स्वागत करता हो।

करति अरिति पहुपग फिरित, सब सेन अप्प प्रति ।
जग्गि तेज हुल्लाल, झाल दुति भई दीह भति ।।
प्रथम पुव्व दिसि राज जथ्थ हुनह फिरि पारस ।
तहँ फिरि आइय राज, जाम जामनिय रहिय तस ।।
प्राचीय मुक्ख दिसि राज गजि, दिक्खि सोय कमधज्ज नमि ।
नृप चढ़े तेउ टामक करि, ग्रहन राज चहुआन तमि ।।४६८।।

शब्दार्थः—करति=करता हुआ । अरिति=आरति । फिरित=फिरता, परिक्रमा देता । हुल्लाल=हलालें । झाल=ज्वाला । दीह=दिन । भति=भाँति, तरह । पुव्व=पूर्व । जथ्थ-हुनह=जहाँ से । फिरि पारस=घेरा देता हुआ चला । तहँ-फिरि-आइय=जहाँ से चला वहाँ लौट कर आया तब तक । जाम-जा-मनिय=प्रहर रात । मुक्ख=ओर । गजि=गर्जना की । नमि=नमकर, नमस्कार करके । टामक-करि=टंकार करता हुआ । ग्रहन=पकड़ने को । तमि=वैसे ही, उसी प्रकार ।

अर्थः—जिनकी ज्वाला से दिन का आभास होता था ऐसी तेज मशालें जलवाकर पंगुराज, अपने सेना पतियों सहित पृथ्वीराज और उसकी सेना के चारों ओर इस प्रकार रात्रि मे घूमता रहा मानो वह अपने जामाता पृथ्वीराज की आरती उतार कर परिक्रमा दे रहा हो। प्रारभ मे पगुराज पृथ्वीराज की सेना के पूर्व मे था, और जब वह घूमता हुआ पूर्व स्थान पर आ पहुँचा तब एक प्रहर रात्रि शेष रह गई थी। उस समय प्राची दिशा की ओर देखकर पृथ्वीराज जाग उठा और गर्जना की। कमधज राजा ने भी प्राची की ओर देख कर नमस्का किया। राजा पृथ्वीराज धनुष की टकार करता हुआ अश्व पर आरुढ़ हुआ उधर विपक्षि (जयचन्द) भी दिल्लीश्वर को पकड़ने के लिये इसी प्रकार सुसज्जित हुआ।

दोहा

विरदावलि बोलत जग्यौ, श्रीय सँजोइय कंत।
कदल रस रत्ते नयन, क्रोध सहित विहसंत ॥४६६॥

शब्दार्थः—जग्यौ=जागृत हुआ। श्रीय=लक्ष्मी स्वरूपा। सँजोइय=सयोगिता। कंत=पति। कदल=कदन, नाश, (शत्रुनाश)। रस=विनोद।

अर्थः—लक्ष्मी स्वरूपा सयोगिता का पति कवियों द्वारा विरुदोच्चारण करने पर जगा। उस समय उसके नैत्र शत्रुनाश की लगन में अरुण वर्ण हो रहे थे और उसके चैहरे पर क्रोध तथा मुस्कुराहट थी।

गाथा

इम सज्जत सामंत, घट्टिय रयनि तुच्छ स घरिय।
जग्गत नृप चहुँआन, पयान भान प्रच्छान ॥५००॥

शब्दार्थ.—घट्टिय=कम हो गई। तुच्छ=थोड़ी। घरिय=घड़ी। प्रच्छान=प्रस्थान, विचरण।

शब्दार्थः—जब कि एक घड़ी रात्रि शेष थी उस समय सामंत भी सुसज्जित हो गये। चाहुवान राजा के जगते ही उसने और उसके सामन्तों ने युद्धार्थ प्रयाण किया। उधर सूर्य उठकर आकाश मडल की ओर विचरण करने लगा।

दोहा

सयन-संधि-मंडिय न्रपति, दुश्र दिख्यौ चहुआन।
मनहु तिमर अरि हरण कह, पहुमि प्रगासित भान ॥५०१॥

शब्दार्थः—सयन सधि–मडिय=सेना को पंक्ति वद्ध करता हुआ। दुअ=दोनों पक्ष के वीरों ने। हरण–कह=नाश करने के लिये। प्रगासित भान=सूर्योदय हुआ हो।

अर्थः—अपनी सेना को पक्ति वद्ध करता हुआ वीर चाहुवान दोनों पक्ष के वीरों को ऐसा दिखाई दिया मानों तम रूपी शत्रु समूह का नाश करने के लिये पृथ्वी पर सूर्य उदय हुआ हो।

कवित्त

विनह भान पायान, इद कमधज्ज गज्ज हुअ।
सह्यौ न बोल सखुलै, बिरदु पागार बज्र भुअ॥
सु–कल खोलि कल्हार, झक कड्ढ्यौ झाराहर।
विनुहि अरुन उद्यौत, अरुनु उग्यौ धाराहर॥
पहु विनु पुकार पहु उप्परिग, स पुह पहक फट्टी फह न।
उद्दिग उदौत असिवर किरणि, मिलिव चक्क चक्की गहन॥५०२॥

शब्दार्थः—विनह-भान-पायान=सूर्यने प्रयाण नहीं किया। इन्द=इन्द्र गज्ज=गर्जना। वज्रभुअ=वज्र तुल्य भुजा वाला। सु-कल=सु-कर, अपने हाथों से। कल्हार=कमा। झक=झाक कर, देख कर। झाराहर=ज्वाज्वल्यमान, चमचमाती खड्ग। विनुहि=विना। अरुण=सूर्य। धाराहर=खड्ग। पहु-विनु-पुकार=राजा की बिना आज्ञा के ही। पहु=राज पदधारी। उप्परिग=रास उठाई, घोड़े को वढ़ाया। स पुह=उस दिन का प्रात काल। पहक=पुष्पित। फट्टी-फह-न=अँधेरा दूर नहीं हुआ, प्रात नहीं हुआ। उदौत=उदित। मिलिव=मिल गये, सयोग सुख प्राप्त किया। गहन=गहरा।

अर्थः—आकाश मडल मे सूर्य ने अपना रथ नहीं चलाया, उससे पूर्व ही इन्द्र रूपी पगुराज की गर्जना हो गई। उस की गर्जना को वीर सालखा जो वज्र तुल्य भुजा वाला था और जिसका विरुद पागार (थाह लेने वाला) था, उसने सहन नहीं किया। शत्रु सेना की ओर देख अपने हाथों से खड्ग को कमें खोल कर चम चमाती हुई तलवार निकाली। जिसने यद्यपि अरुणोदय नहीं हुआ था फिर भी खड्ग–प्रभा ने अरुणोदय का आभास करा दिया। राजा की विना आज्ञा के ही उस राज पदधारी ने अपना घोडा वढ़ा दिया, यद्यपि पुष्प कलियों को विकसित करने वाली प्रात प्रकट नहीं हो पाई थी फिर भी उस उद्दीग वीर (इस वीर का उपाधियुक्त उद्दिग पगार नाम

था) ने खड्ग-प्रभा से सूर्य किरण की भ्रांति करा दी जिससे चक्रवाक दम्पति ने प्रातः काल समझकर सयोग सुख प्राप्त किया।

असिवर झर उद्घरिय, चक्क चक्की अनंदि मन।
कुमुद मुदिग कमधज्ज, सेन संपुटिग सघन रिन॥
पंचजन्य सपन्न, सकल कुल निकल धरीय।
पसु कि मभक मुखपंच, तिमरु किरणिनि निवरीय॥
उडगन अचभ कौतूहलह, अरुजु स्वामि क्यन्नौ गहरु।
उद्दिग पगार सिर उप्परह, समर सार वुट्ठिग पहरु॥५०३॥

शब्दार्थः—उघ्घरिय=फैलकर। रिन=रिण। पचजन्य-सपन्न=शखनाद होने लगा। सकल-कुल=सब कोई। निकल-धरिय=निष्कलंक हो गये, पवित्र हो गये। मुखपच=पचानन, सिंह। निवरीय=निपट गया, नष्ट हो गया। अरुजु स्वामी=अड़ाकू स्वामी, तलवार को रखने वाले अडाकू ने। क्यन्नौ-गहरु=देरीतक युद्ध करके। सार=लोहा। वुट्ठिग=वर्षा था। पहरु=प्रहर तक।

अर्थः—तलवार की ज्वाला ने फै र चक्रवाक दम्पति का मन प्रफुल्लित कर दिया। उस घनघोर युद्ध में कुमोदिनी रूपी कमधज की सेना मुरझा कर सिकुड़ गई। शख नाद होने लगा। प्रत्येक पवित्र होगया। जिस प्रकार पशु-समूह सिंह को देख कर तितर बितर हो जाता है, उसी प्रकार अधकार बिखर गया। उस तलवार पकड़ने वाले लडाकू ने देरी तक युद्ध कर तारागणों को अपनी खड्गाकृति से चन्द्रमा का आभास करा दिया और कौतूहल पैदा कर दिया। उस खड्ग धारण करने वाले वीर उद्दीग के सिर पर युद्ध मे एक प्रहर तक विपक्षियों ने शस्त्र बरसाये।

पहर एक असि एक, एक एकह निव्वरि धर।
धर धर धरनि निहारि, नाग धुक्किय नागिनि सिर॥
हलि हलि मिलि रट्ठिवर, रीठ बज्जिग बज्जा रह।
कर कक्कस रस केलि, धार तुट्टिय लगि धारह॥
दुहु दल पगार पागार गिरि, भिरि भुअंग भूनिग तनौ।
पहु फटिग घटिग सर्वरि समर, अमर मोह जग्यौ घनौ॥५०४॥

शब्दार्थः—निव्वरि=निपटा दिये। धर-धर=कम्पित। धुक्किय=झुक गया, सहारा लिया। रट्ठिवर=राष्ट्र वर, कमधज। रीठ=झड़ी। बज्जिय=कर दी। बज्जारह=वज्र तुल्य। कर-कक्कस=

रस-केलि= कठिन रस क्रीडा। पगार=थाहता हुआ। पागार=उद्दिग पगार। भुअग=सर्प। भूनिंग-तनौ=भूणिग का पुत्र। पहु-फटिग=सुबह हो गई। सर्वरि=रात्रि। मोह=मोहित हुए, मुग्ध हुए। घनो=विशेष।

अर्थः—एक प्रहर तक शस्त्र वर्षा करने वाले विपत्तियों को भी उद्दिग की एक ही तलवार ने निपटा दिया। उस समय पृथ्वी को कम्पायमान होती देखकर शेषनाग ने अपनी नागिनी का सहारा लिया। उसी समय राष्ट्रवर वीर भी चल २ कर यूथ रूप मे हो गया। यह देख कर उस वीर ने वज्राघात के समान तलवार का प्रहार किया। उसकी असि-धार कठिन रस की क्रीडा करती हुई विपत्ति की असि-धार से टकराकर टूट गई। वह वीर भूनिंग (उद्दिग पगार के पिता का नाम) का पुत्र उद्दिग पगार नामधारी शत्रुओं के लिये सर्प के समान होगया। जिस समय रात्रि समाप्त हो चुकी और अरुणोदय होने लगा उस समय दोनों दलों को परख कर धराशायी हो गया। इससे कुछ समय के लिये युद्ध स्थगित रहा और देवता उस वीर की वीरता पर विशेष मुग्ध हो गये।

अरुन वरण उग्यउ अरक्क, उद्दिग उदग भुज्ज।
सह उप्पर सखुला, खुल्लि खड्यौ उडग दुज्ज॥
हय गय नर आरडिउ, राह वीर वर तोरयौ।
सार मार भंकार, वीर वंवरि भम्भोर्‌यौ॥
पहुपग समुद ऊरद्ध अध, सूर मार सारह हनिय।
दनु देव नाग जैजै करहिं, रवन-रुद्र रुद्दह भनिय॥५०४॥

शब्दार्थः—उग्यउ=उदय हुआ। अरक्क=सूर्य। उदंग-भुज्ज=भुजायें उठी। सखुला=साखुला क्षत्रिय। खुल्लि-खड्यौन=तलवार निकाल कर। उडग-दुज=पक्षी के समान झपटा। आरडिउ=उमड़ कर। वीरंवर=श्रेष्ट वीर। तोर्‌यौ=तोड़ दिया, साफ कर दिया। मार-सार-संभार=लोहे का जवाब लोहे से देकर। वीर-वबरि=वीर घोष करके। झम्भोर्‌यौ=झम्भेड़ दिया, झकझोर दिया, हिला दिया। समुद=समुद्र। ऊरद्ध=उठे हुए को, तूफान पर आये हुए को। अध=नीचे बैठा दिया, शान्त कर दिया। रवन-रुद्र=रौद्र रस का खिलाड़ी। भनिय=कहा।

अर्थः—जिस समय अरुण वर्ण धारण कर सूर्य उदय हुआ। उसी समय उस वीर की भूजाएँ उठीं। वह साखला क्षत्रिय घायल होते हुए भी समस्त विपत्तियों पर पुन कुछ समय के लिये खड़ा हुआ और तलवार निकाल कर पक्षी के समान

झपट पड़ा। वार करते हुए उसने हाथी घोड़ों सहित सैनिकों को जिन्होंने उमड़कर रास्ते को रोक लिया था, उसे साफ कर दिया। उस भयंकर वीर ने लोहे का जवाब लोहे से देकर वीर घोष किया और सब को झकझोर दिया। तूफान पर आये हुए समुद्र के समान पंगुराज को उसने शान्त कर दिया और लोहे पर लोहा बजाता हुआ वह धराशायी हो गया। यह देख देवता, दानव, नाग आदि उस वीर की जय २ कार करने लगे और रुद्र भी उसकी प्रशसा मे कहने लगे कि यह वीर वास्तव मे रौद्र रस का खिलाडी था।

जहँ जहँ संभरि वार, सूर सामंत बहिग वर।
तहँ ति तेज अग्गरौ, फिरयौ करि वारु करतु कर॥
जहँ जहँ भय भागंत, सारु सनमुख सिर सह्यौ।
जहाँ जहाँ चहुआन, चिहुरि चचल चितु रहयौ॥
जहँ जहँ सु सार सारगु लिय, विरचि वीर चदह तनौ।
पहु पुछ तुरिय रिझवि रणह, तहँ तहँ करै निनच्छनौ॥५०६॥

शब्दार्थः—बहिग=चल पड़ता। तेज-अग्गरौ=विशेष चम चमाता खड्ग। भय-भागंत=भागता हुआ (दल)। सारु=मार,शस्त्र। चिहुरि=चिहुट जाता। चितु=चित्त। विरचि=प्रचारता, ललकारता ज चन्दह-तनौ=चन्द्रराज का वशज जयचन्द (जयचन्द के पूर्व-पुरुष का नाम चन्द्र राज था)। पहु=राजा के। पुछ-तुरिय=घोड़े के पीछे। रिझवि-रणह=रण-रिझवार। निवच्छनौ=इच्छा के विपरीत।

अर्थः—जिस ओर सभरी नरेश पृथ्वीराज युद्ध मे दिखाई पडता उसी ओर वह बहादुर सामन्त (उद्दिग पगार) विशेष रूप से चमकता हुआ खड्गाघात करता दिखाई देता था। भय पाकर भागता हुआ अपना दल जिधर दिखाई देता उधर ही वह वीर सर पर शस्त्र का वार सहता हुआ नजर आता था। जिधर चाहुवान नरेश विचरता उधर ही उसका चचल चित्त रक्षार्थ पहुँच जाता था। जिधर चन्द्रराज का वशज (जयचन्द) लोह-धनुष लेकर ललकारता हुआ दिखाई पड़ता उधर ही राजा पृथ्वीराज के घोडे के पीछे २ वह रण-रिझवार चल पड़ता और विपत्ती की इच्छा के विपरीत कार्य कर डालता था।

चढि पवग पृथिराज, कोस दस गयउ ततक्खिन।
परत कोट चिहुँकोद, घेरि करि लियउ गयदन॥

इमि बुल्लइ जयचयदु, भगि पृथिराजु जाइ जनि ।
सोइ रावतु रजपुत्तु, सूरु तिहि कहउ अध्थि गनि ॥
कर कोवँड कविचंद कहि, दुव भुव वल करि तानियौ ।
लग्यौ सु वान जयचंद हय, तव दुहु दल फिरि मानियौ ॥५०७॥

शब्दार्थः—पवंग=घोड़ा । ततक्खिन=तत्क्षण । परत-कोट=दिवाल के रूप में घेरा । चिहुं कोद=चारों ओर । बुल्लइ=बोला, आवाज दी । रावतु=राज वंश । रजपुत्तु=राजपूत, क्षत्रिय । सूर=बहादुर । अध्थि=यहां पर । गनि=समझूंगा । कोवँड=धनुप । दुव-भुव-बल-करि=दोनों भोहों को चढ़ा कर । फिरि=फिरसे । मानियौ=माना, सम्मान की दृष्टि से देखा ।

अर्थः—उद्दिग पगार के धराशाई होने तक-पृथ्वीराज घोड़ा बढाकर दस कोस पहुँच गया । वहाँ जाने पर चारों ओर से आपत्ति आई और वह हाथियों द्वारा घेर लिया गया । उस समय जयचन्द ने अपने साथियों को आवाज दी कि पृथ्वीरा भाग न जाय । मैं सच्चा राजवंशज क्षत्रिय और वहादुर उसी को समझूंगा जो इस समय डटा रहेगा—कविचद कहता है—उस समय वीर पृथ्वीराज ने भोहों चढ़ाते हुए वल पूर्वक धनुष को खींचा । वह वाण जयचद के घोडे के जाकर लगा । यह देख दोनों सेनाओं के वीरों ने पृथ्वीराज को सम्मान की दृष्टि से देखा (पृथ्वीराज को इस वाण द्वारा यही वतला देना था कि मैं वाण लगाने में कुशल हूँ । जयचद को मारना नहीं चाहता । यदि जयचद को मारना चाहता तो घोडे को न मार इसे ही समाप्त कर देता । इस उदारता के कारण ही दोनों दल के वीरों ने उसे सम्मान की दृष्टि से देखा ।

जंघारो जोगी जुग्गदु, कठह कथारिय ।
फरस पाणि तु गिय त्रिसूल, ग्वपरु अधिकारिय ॥
जटजु-वान स्यगिय विभूति, भगवत्त भोग हरि ।
समद वह वद्दन विखान, मद पक जंग करि ॥
आसनअ संभ जय पत्त भरि, अरध चंद्र अंम्रित अमर ।
मडलिय राम रावत्त भिरत, न भय वीर इत्तौ समर ॥५०८॥

शब्दार्थः—जुग्गदु=पुराना, महान । कथारिया=कंथा । फरस=फरसा । तुंगिय=उत्तंग, ऊँची । जटजु-वान=जटावान । स्यगिय=सिंगी । भगवत्त-भोग-हरि=ईश्वर के नैवेद्य को ग्रहण करने वाला, प्रसाद पाने वाला । समद=मतवाला । वद-वद्दन=रण विवाद छेड़ कर । विखान=वर्षा दिया ।

झपट पड़ा। वार करते हुए उसने हाथी घोड़ों सहित सैनिकों को जिन्होंने उमड़कर रास्ते को रोक लिया था, उसे साफ कर दिया। उस भयकर वीर ने लोहे का जबाब लोहे से देकर वीर घोष किया और सब को झकझोर दिया। तूफान पर आये हुए समुद्र के समान पंगुराज को उसने शान्त कर दिया और लोहे पर लोहा बजाता हुआ वह धराशायी हो गया। यह देख देवता, दानव, नाग आदि उस वीर की जय २ कार करने लगे और रुद्र भी उसकी प्रशसा मे कहने लगे कि यह वीर वास्तव में रौद्र रस का खिलाडी था।

जहँ जहँ संभरि वार, सूर सामंत बहिग वर।
तहँ ति तेज अग्गरो, फिरयौ करि वारु करतु कर॥
जहँ जहँ भय भागत, सारु सनमुख सिर सह्यौ।
जहाँ जहाँ चहूआन, चिहुरि चचल चितु रह्यौ॥
जहँ जहँ सु सार सारंगु लिय, विरचि वीर चन्दह तनौ।
पहु पु छ तुरिय रिभझवि रणह, तहँ तहँ करै निवन्छनौ॥५०६॥

शब्दार्थः—बहिग=चल पड़ता। तेज-अग्गरौ=विशेष चम चमाता खड्ग। भय-मागंत=भागता हुआ (दल)। सारु=मार,शस्त्र। चिहुरि=चिहुट जाता। चितु=चित्त। विरचि=प्रचारता, ललकारता ज चन्दह-तनौ=चन्द्रराज का वशज जयचन्द (जयचन्द के पूर्व-पुरुष का नाम चन्द्र राज था)। पहु=राजा के। पु छ-तुरिय=घोडे के पीछे। रिभझवि-रणह=रण-रिझवार। निवन्छनौ=इच्छा के विपरीत।

अर्थः—जिस ओर सभरी नरेश पृथ्वीराज युद्ध मे दिखाई पडता उसी ओर वह बहादुर सामन्त (उहिग पगार) विशेष रूप से चमकता हुआ खड्गाघात करता दिखाई देता था। भय पाकर भागता हुआ अपना दल जिधर दिखाई देता उधर ही वह वीर सर पर शस्त्र का वार सहता हुआ नजर अता था। जिधर चाहुवान नरेश विचरता उधर ही उसका चचल चित्त रक्षार्थ पहुँच जाता था। जिधर चन्द्रराज का वशज (जयचन्द) लोह-धनुष लेकर ललकारता हुआ दिखाई पड़ता उधर ही राजा पृथ्वीराज के घोडे के पीछे २ वह रण-रिझवार चल पड़ता और विपक्षी की इच्छा के विपरीत कार्य कर डालता था।

चढ़ि पवग पृथिराज, कोस दस गयउ ततक्खिन।
परत कोट चिहँकोद, घेरि करि लियउ गयदन॥

इमि बुल्लइ जयचंदु, भग्गि पृथिराजु जाइ जनि ।
सोइ रावतु रज पुत्तु, सूरु तिहि कहउ अथ्थि गनि ॥
कर कोवंड कविचद कहि, दुव भुव वल करि तानियौ ।
लग्यौ सु वान जयचंद हय, तव दुहु दल फिरि मानियौ ॥५०७॥

शब्दार्थः—पवंग=घोड़ा । ततक्खिन=तत्क्षण । परत–कोट=दिवाल के रूप में घेरा । चिहु कोद= चारों ओर । बुल्लइ=बोला, आवाज दी । रावतु=राज वंश । रजपुत्तु=राजपूत, क्षत्रिय । सूरु= बहादुर । अथ्थि=यहा पर । गनि=समझूंगा । कोवंड=धनुष । दुव–भुव–वल–करि=दोनों भोहों को चढ़ा कर । फिरि=फिरसे । मानियौ=माना, सम्मान की दृष्टि से देखा ।

अर्थः—उदिग पगार के धराशाई होने तक–पृथ्वीराज घोड़ा बढाकर दस कोस पहुँच गया । वहाँ जाने पर चारों ओर से आपत्ति आई और वह हाथियों द्वारा घेर लिया गया । उस समय जयचन्द ने अपने साथियों को आवाज दी कि पृथ्वीरा भाग न जाय । मैं सच्चा राजवंशज क्षत्रिय और बहादुर उसी को समझूंगा जो इस समय डटा रहेगा—कविचद कहता है—उस समय वीर पृथ्वीराज ने भोहों चढ़ाते हुए वल पूर्वक धनुष को खींचा । वह वाण जयचद के घोडे के जाकर लगा । यह देख दोनों सेनाओं के वीरों ने पृथ्वीराज को सम्मान की दृष्टि से देखा (पृथ्वीराज को इस वाण द्वारा यही वतला देना था कि मैं वाण लगाने में कुशल हूँ । जयचद को मारना नहीं चाहता । यदि जयचद को मारना चाहता तो घोडे को न मार इसे ही समाप्त कर देता । इस उदारता के कारण ही दोनों दल के वीरों ने उसे सम्मान की दृष्टि से देखा ।

जंघारो जोगी जुग्गंदु, कंठह कथारिय ।
फरस पाणि तुगिय त्रिसूल, खप्परु अधिकारिय ॥
जटजु–धान स्यंगिय विभूति, भगवत्त भोग हरि ।
समद वद्द वद्दन विखान, मद पक जंग करि ॥
आसनअ सभ जय पत्त भरि, अरध चंद्र अम्रित अमर ।
मडलिय राम रावन भिरत, न भय वीर इत्तौ समर ॥५०८॥

शब्दार्थः—जुग्गदु=पुराना, महान । कथारिया=कंथा । फरस=फरसा । तुगिय=उत्तुग, ऊँची । जटजु–धान=जटाधान । स्यंगिय=सिंगी । भगवत्त–भोग–हरि=ईश्वर के नैवेद्य को ग्रहण करने वाला, प्रसाद पाने वाला । समद=मतवाला । वद्द–वद्दन=रण विवाद छेड़ कर । विखान=वर्षा दिया ।

जंग=जग में। करि=हाथी। आसनअ-संभ=शिव की रमणी, शिव की अर्धाङ्गिनी। अमित-अमर=अजर अमर करता अमित। मण्डलिय=माथी समूह। न-भय=नहीं हुआ। इत्तो=इतना, ऐसा।

अर्थः—उस समय महान् योगिन्द उपाधिधारी वीर जघारा चढ़ा। कवि परिसहा की दृष्टि से कहता है कि योगी पुरुष तो गले मे कन्था, हाथों मे फरसा, ऊंची त्रिशूल, खप्पर, जटा, सिंगी, विभूति, और प्रसाद (ईश्वर को चढाया हुआ नैवद्य) के अधिकारी होते हैं किन्तु इस महाबली वीर जघारा योगी ने युद्ध-स्थल मे रण विवाद छेड़ कर हाथियों की मद-वर्षा करके उसे पंकित कर दिया और अपने अर्ध चन्द्र बाण द्वारा शिव की अर्धाङ्गिनी के पात्र को अजर-अमर- कर्ता अमृत के तुल्य शोणित से भर दिया (चँद्रमा से टपका हुआ अमृत पीने वाले को अमर कर देता है। उसी प्रकार अर्द्ध चन्द्राकार बाण द्वारा शोणित बहाकर रण चंडी के पात्र को भर देने से वीर की यश काया सदा के लिये अमर हो जाती है। इसीलिये कवि ने अमृत और शत्रु-शोणित में अमृतत्व का सादृश्य-धर्म मान कर वर्णन किया है)। राम चन्द्र और रावण के साथियों के भिड़ने पर भी जैसा युद्ध नहीं हुआ वैसा युद्ध इस जघारे ने किया।

जदिन रोस रठ्ठोर, चपि चहुआन गहन कहि।
सै ऊपर सैं महस, बीह अगिनित्त लख्ख दहि॥
तुटि डुंगर थल भरिग, फुट्टि जल थलति प्रवाहिग।
सह अच्छरि अछ्छैं विमान, सुरलोक बनाइग॥
कहि चंद दंदु दुहुं दल भयौ, घन जिमि सिर सारह झरिग।
हरि सेस ईस ब्रह्मानि तनि, तिहु समाधि तद्दिन टरिग॥५०६॥

शब्दार्थः—जदिन=जिस दिन। रठ्ठोर=राष्ट्रवर जयचंद। सैं=सौ (सामंत)। उप्पर=चढ़ते हुए। सै-सहस=लक्ष। बीह-अगिनित्त=अगणित वीरों को भयातुर कर। लख्ख-दहि=लाखों को झुलसा दिये। डुंगर=पहाड़। फुट्टि=छलक कर। अच्छरि=अप्सरायें। अछ्छैं=इच्छा करती हुई। बनाइग=शोभा बढ़ा दी। दंदु=द्वन्द। सारह=सार, लोहा। सेस=शेष नाग। ईस=शिव। ब्रह्मानि=ब्रह्मा। तनि=की। तिहु=उनकी। तद्दिन=उसदिन।

अर्थः—जिस दिन क्रोधित होकर राष्ट्रवर राज ने वीर पृथ्वीराज को दबालेने के लिये आज्ञा दी। उस दिन पृथ्वीराज के सौ सामन्त चढते हुए एक लक्ष वीरों के समान

दिखाई पड़े और अगणित वीरों को भयातुर कर लाखों विपत्तियों को कोप-ज्वाला में भुलसा दिये। उनके वीरोचित उत्पात से पहाड़ टूट २ कर जमीन पर फैल गये तथा सर-समुद्र आदि से जल फूट कर (छलक कर) स्थल पर प्रवाहित हो गया। अप्सराओं ने अपनी इच्छा से विमान द्वारा आ-आकर (वीरों को वरण करके) सुरलोक की शोभा बढ़ाई। कविचद कहता है कि दोनों दलों में द्वन्द्व छिड़ गया जिससे मेघ-वर्षा के समान वीरों के सिर पर लोहा बरसने लगा। उस दिन विष्णु, शेषनाग, शिव, ब्रह्मा आदि की भी समाधि छूट गई।

दिनियर-सुअ दिन जुद्ध, जूह चपिय सामतनि।
भर उप्पर भर परैं, परै उप्पर धावतनि॥
दल दतिनि बिच्छुरहि, हय जु हय २ किननकहि।
अच्छरि वर हर हार, धार धारनि भननकहि॥
जय जया सद्द जुगिगनि करहि, कलि कनवज ढिल्ली वयर।
सामंत पंच खित्ताह खपिग, भिरत पंच भय विप्पहर ॥५१०॥

शब्दार्थः—दिनियर-सुअ=दोनों (चाहुवान और राठौड़) सूर्य वंशी। जूह=जूथ, समूह। परैं-उप्पर=पड़े हुए के ऊपर होकर। धावतनि=भागने लगे। हय २-किननं कहि=घोड़े हिन हिनाने लगे। अच्छरि-वर=अप्सराए वरण करने लगी। हर-हार=शिव मुंड माला पाने लगे। धार-धारणि=तलवार की धारा से धारा। ढिल्ली=दिल्ली। वयर=वैर, शत्रुता। खित्तह=रण क्षेत्र में। खपिग=मारे गये। भय=होगया। विप्पहर=मध्यान्ह।

अर्थः—उस दिन दोनों सूर्य वंशियों (चाहुवान और राठौड़ों) के सैन्य समूह ने सारे दिन युद्ध किया। पृथ्वीराज के सामन्तों ने शत्रु-समूह को धर दबाया। जिससे एक यौद्धा के ऊपर दूसरा यौद्धा पृथ्वी पर पड़ने लगा। उन मृत योद्धाओं को कुचलते हुए कितने ही वीर भागते हुए दिखाई दिये। हाथी सेना को छोड़ २ कर भागने लगे। घोडे हिन हिनाने लगे, अप्सरायें वरण करने लगीं, शिव मुण्ड माला धारण करने लगे, तलवारों की धारें आपस मे टकराकर भनभनाने लगीं। इस प्रकार कलियुग मे कन्नौज और दिल्ली की शत्रुता का यह दृश्य देख कर रणाङ्गण मे योगिनियाँ जय २ शब्द उच्चारण करने लगीं। मध्यान्ह होने तक पृथ्वीराज के पाच सामन्त लडे और अंत मे वे सदा के लिये रण क्षेत्र मे सो गये।

गाथा

विपहुर पहट परीय, हय गय नर भार सा हथ्थेन ।
रह रग रोस भरिय, उट्ठियं वीर ब्यवेन ॥५११॥

शब्दार्थः—विपहुर=दो प्रहर, मध्यान्ह । पहट-परीय=पट पड़े, पट गये । भार-सार=शस्त्र भार । हथ्थेनं=हाथों से । रह-रग=रस रग । ब्यवेन=बवाल, रक्त झरते हुए, घायल ।

अर्थः—मध्यान्ह होने पर हाथी घोड़े और अनेक मनुष्य रणाङ्गण मे पट गये । अपार शस्त्रभार भी हाथों से गिर गया । घायल वीर क्रोध रस के रग में रगे हुए जमीन से उठ खडे हुए ।

कवित्त

पर्‌यौ माल चदेल, जेन धवली धर गुज्जर ।
पर्‌यौ भान भट्टी भुआलु, थट्टा धर अग्गर ॥
पर्‌यौ सूरु सामलौ, जेन बानैं मुख मुछ्छह ।
हँसे तेन पावार जेन विरदावलि अच्छह ॥
त्रिब्बान वीर धावर धनू, हनुय नरिंद अनेक बल ।
इन भिरत पच भय विप्पहर, अगिनित भजि असखि दल ॥५१२॥

शब्दार्थ—अग्गर=अगुआ । बानैं=शोभा । त्रिब्बान=निर्वान । धावर-धनू=धावरपति-या- धन्य है उस धाय भाई को । हनुय=हन, नष्ट कर दिये, दमन कर दिये । विप्पहर=दो प्रहर । अगिनित=अगणित । असखि=असख्य ।

अर्थः जिसके कारण गुर्जर धरा उज्ज्वल है ऐसा वीर चदेला मालदेव, थट्टा भूभाग का अगुआ राजा भान भट्टी जिसके मुख की शोभा मूछे बढ़ा रही हैं ऐसा वीर सामला सूर, जिनके श्रेष्ठ विरुद हैं उन वीरों का परिहास कर्ता प्रमार वीर और धावर पति निर्वान वीर (या निर्वान धाय भाई) इन पाचों वीरों को भिडते हुए मध्यान्ह हो गया । उन्होंने अनेक राजाओं की शक्ति को नष्ट कर दिया और अगणित वीरों और असंख्य सेना को समाप्त करते हुए वे धराशायी हो गये ।

चढ्यौ सूर मध्यान, पग परत्यग गहन किय ।
खिभिरि खेत खह मिलिय, श्रवन सुनिये सु लीय लिय ॥

तब नरयद जगलिय, कोह कढ्ढी सु वकि असि ।
धर धुम्मिलि धुम्मरिय, मनहु दल मम्भि दुतिय ससि ॥
अरि अरुण रत्त कौतिग कलह, भयौ न भयह भिरंत भर ।
सामंत त्रिघट तेरह परिग, नृपति स पट्ठिय पंच सर ॥५१३॥

शब्दार्थ:—परत्यग=प्रतिज्ञा । खिमिरि-खेत=रणक्षेत्र को खदेड़ते हुए । लह-मिलिय=आकाश मे जा लगा । लीय-लिय=पकड़लो-पकड़लो । नरयंद-जंगलिय=जगलेश्वर पृथ्वीराज । कोह=क्रोध में आकर । दुतिय-ससि=द्वितीया का चन्द्रमा । रत्त=रक्त । त्रिघट-तेरह=तीन कम तेरह, या-उनके घट तेरह । पट्ठिय=पहुचाये, चलाये, छोड़े ।

अर्थ:—मध्यान्ह का सूर्य जब सिर पर आगया उस समय पंगुराज ने पृथ्वीराज को पकड़ने की प्रतिज्ञा की और रण-क्षेत्र में वीरों को खदेड़ते हुए उसने अपना सिर आकाश से लगा लिया । जब "पकड़लो पकड़लो" की आवाज पृथ्वीराज के कानों में पड़ी तब जगलेश्वर ने क्रोध में आकर बाँकी तलवार निकाल ली । सेना की पदाघात की रज के कारण धरा धूमिल होगई और अँधेरे का रूप धारण कर लिया । उस समय सेना के मध्य भाग में पृथ्वीराज की निकाली हुई वह वक्र तलवार द्वितीया के चन्द्रमाँ तुल्य दिखाई दी । जिस के द्वारा पृथ्वीराज ने युद्ध में शत्रुओं का रक्त बहाकर अद्भुत कौतुक रच डाला । ऐसा कौतुक वीरों के भिड़ने पर पहले कभी नहीं हुआ था । उस वीर (पृथ्वीराज) ने एक साथ पाच बाण छोड़े जिससे जयचंद के दस या तेरह वीर मारे गये ।

दोहा

तीर तबक सिर पर बहन, गहत नरिन्द गुमान ।
बरदाई तहँ लरन को, हुकम मगि चहुआन ॥५१४॥

शब्दार्थ:—तबक=तबक या तुपक शस्त्र विशेष । गुमान=गर्व । लरन=युद्ध करने की । हुकम=आज्ञा । मगि=मांगी ।

अर्थ:—जब तीर-तबकादि शस्त्रों की बोछार करता हुआ राजा पृथ्वीराज सगर्व आगे बढ़ने लगा उस समय विरदाई कविचन्द ने युद्ध करने की आज्ञा राजा से मांगी ।

हम भूखन रजपूत रिन, जंपत सभरि राव ।
अमर कित्ति सामँत करन, बरदाई घर जाव ॥५१५॥

शब्दार्थः—झूझत=जूझते हैं। रजपूत=राजपूत, क्षत्रिय। रिन=रण। जपत=कहने लगा। समरिराव=संमरेश्वर, पृथ्वीराज। कित्ति=कीर्ति। सामंत=सामंत। बरदाई=विरदाई। जाव=जाओ।

अर्थः—तब समरेश्वर (पृथ्वीराज) ने कविचन्द से कहा—हे विरदाई! हम क्षत्रिय वीरों पर युद्ध भार छोड़कर, हमे कीर्ति रूप में अमर करने को तुम घर को रवाना हो जावो।

किित्ति करन गुन उद्धरन, जल्हन पच्छ सु लज्ज।
मोहि नृपति आयस करौ, ईस सीस द्यौ अज्ज ॥५१६॥

शब्दार्थः—गुन = गुणचन्द। उद्धरन=उद्धरणचन्द। जल्हन=जल्ह। पच्छ = पीछे। लज्ज = लज्जा। आयस=आदेश। ईस=स्वामी। द्यौं=दों, समर्पित करों। अज्ज=आज।

अर्थः—कवि चन्द ने निवेदन किया-हे नरेश्वर! कीर्ति रूप मे अमर करने को मेरे पीछे मेरे पुत्र गुणचन्द और उद्धरणचन्द हैं एव मेरे ही समान कुल लज्जा को रखने वाला मेरा पुत्र जल्हन है अत मुझे आज्ञा दीजिये ताकि मैं आपके कार्य के लिए, युद्ध में सिर समर्पित करूँ।

विन आयस प्रथिराज के, धाय नखयौ बाज।
को रक्खै सुत मल्ह कौ, सूर नूर मुख लाज ॥५१७॥

शब्दार्थः—आयस=आज्ञा। धाय-नखयौं=चल कर बढाया। बाज=बाजि, घोड़ा। को रक्खै= कौन बढते हुए को रख (रोक) सकता। सुत = स्रुति (वेद) स्वरूप। मल्ह = मल्ल।

अर्थः—यह सुनकर राजा पृथ्वीराज ने कुछ भी नहीं कहा-तब राजा की आज्ञा न होते हुए भी कविचन्द ने युद्धस्थल मे अपने घोड़े को बढ़ाया, उस वेद-स्वरूप मल्ल को कौन रोक सकता था। जिसके मुख पर वीरों के समान ही कान्ति और लज्जा शोभा देती थी।

कुंजर पंजर छिद्र करि, फिरि बरदाई चन्द।
तिन अंदर गिद्धनि भ्रमत, ज्यौं कन्दरा मुनिन्द ॥५१८॥

शब्दार्थः—कुंजर=हाथी। पंजर=शरीर। कंदरा=गुफा।

अर्थः—उस (कविचंद) ने शस्त्र प्रहार करके हाथियों के अंगों को सछिद्र कर दिये उन छिद्रों द्वारा गिद्ध आमिष भक्षण करने को उनके अंगों मे प्रवेश कर फिरते हुए ऐसे दिखाई देते थे मानों गिरि गुफाओं के अन्दर तपस्वी फिर रहे हों।

कवित्त

तरत चंद बरदाइ, करत अच्छरि बिरदावलि ।
भरत कुसम गयनग, धरत गर ईस मुँडावलि ॥
करत घाव कबिराव, पिसुन परि बथ्थ पछारत ।
भरत पत्र कालिका, भूत बेताल डकारत ॥
जहाँ तहाँ गज बाज नर, लोह लपटि पावक लहर ।
मुख वाह २ पृथिराज कहि, कटक भट्ट किन्नौ कहर ॥५१६॥

शब्दार्थः—भरत = बरसने लगे । कुसम = पुष्प । गयनंग=आकाश से । कबिराव = कविराव । पिसुन–शत्रुओं को । पत्र = पात्र । लपटि = लपट, ज्वाला । वाह २=धन्य है २ । कहर = कुहराम, उत्पात ।

अर्थः—कविराव चन्द बिरदाई जिस समय युद्ध में शस्त्राघात करता हुआ शत्रुओं को पछाड़ने लगा उस समय-अप्सरायें उसका विरुद-गान करने लगी, आकाश से पुष्प वर्षा होने लगी, शिव नूतन मुण्ड माला धारण करने लगे, कालिका अपने रक्त-पात्र को भरने लगी और भूत-प्रेत वेतालादि तृप्त हो डकारने लगे । उसकी शस्त्र-ज्वाला, अग्नि-ज्वाला के समान फैलने पर, हाथी, घोडे और सैनिक जत्र तत्र हो गये ऐसा उस भट्ट कवि ने युद्ध स्थल में कुहराम मचा दिया यह देखकर स्वयम् पृथ्वीराज ने उसकी प्रशसा में धन्य है । धन्य है !! उच्चारण किया ।

भयो पाज कविराज, पग रुक्यौ दल सायर ।
कर कृपान चमकत, कपि थरहर कर काहर ॥
साज बाज रूधि भींज बरयौ छर हर गति नाहर ।
भूमि तुरग परत. मुक्ख ‿विय गिरिजा हर ॥
कविचन्द पयादो होइ करि, नृप विरदावलि आय पढि ।
विलहान कन्ह चहुआन कौ, बगसि भट्ट खिरनाइ चढि ॥५२०॥

शब्दार्थः—कृपान=कृपान । रुधि-भींज=रक्त रञ्जित हो गये । छर हर=छेड़ा हुआ । गति=दशा । नाहर=सिंह । विलहान=विलहना घोडा (खासा घोडा) ।

अर्थः—पगुराज के दल-समुद्र को रोकने के लिए कविश्वर (कविचन्द) पाज स्वरूप बन गया । उसके हाथ मे चमचमाती हुई कृपाण को देख कर कायरों के हाथ

कॉपने लगे। उसके साजबाज (वस्त्रादि) रक्त रंजित हो गये। उसने छेड़े हुए सिंह के समान युद्ध-कौतुक कर बताया। उसी समय उसका घोड़ा मारा गया। यह देख उस देवीपुत्र (कविराव) पर आपत्ति आई हुई जान कर देवी ने शिव-शिव उच्चारण किया। तब पैदल ही लोट कर कवि चन्द राजा के विरुद उच्चारण करने लगा। उसे पैदल देख कर पृथ्वीराज ने कन्ह चाहुवान का विलहना (राजा के द्वारा दिया हुआ) घोड़ा उसे चढ़ने को दिया तब कविचन्द राजा को सिर नमा उस घोड़े पर सवार हो राजा के साथ हो गया। (राजा के रक्षा का भार अपने पर समझ राजा के साथ चल पड़ा)।

घरिय रस्स रवि सेख, भयौ कलहत ताम भर।
वज्रघात सामंत, अग्गि लग्गी सु खग्ग झर॥
हल हलत दल पग, दग चहुआन जान भग।
तब आयौ रयसल्लु, बिरद भैरू सु भूत रग॥
हाकत हक्क वर उच्चरिग, अतुल पान आजान भुअ।
कमधज्ज लग्गि कमधज्ज छल, वीर धीर विजपाल सुअ॥५२१॥

शब्दार्थः—रस्स=रस, छ या नव। ताम=तब। अग्गि-लग्गी=अग्नि काण्ड। झर=ज्वाला। हल-हलत=हल चल मच गई, विचलित हो गया। भैरु-सु-भूत=भैरवभूत। रग=रहा, था। हाकत=घोड़े को बढ़ाते हुए। हक्क=हुकार। उच्चरिग=की। आजान-भुअ=लम्बी भुजावाला। लग्गि-कमधज्ज-छल=कमधज जयचन्द के छद्म युद्ध में समिलित हो गया। विजपाल-सुअ=विजयपाल का पुत्र।

अर्थः—सूर्यास्त होने मे छ या नौ घड़ी (सख्या के लिये रस का प्रयोग हुआ है अत आयुर्वेदिक दृष्टि से षट्‌रस और साहित्यिक नियम से नवरस माने गये हैं। इसलिये यहाँ छ या नव की सख्या माननी चाहिये) शेष थी। उस समय अंतिम रूप से वीरो द्वारा युद्ध छिड़ा। पृथ्वीराज के सामन्तो के वज्राघात और खड्ग की ज्वाला ने अग्निकाण्ड उपस्थित कर दिया जिससे तग आकर पगुसेना चाहुआन के भय से विचलित हो गई। यह जानकर जो भैरो भूत विरुद से सुशोभित था। उस वीर रयसल्ल ने घोड़ा बढ़ाकर हुकार की। उस लम्बी भुजा वाले वीर के सदृश्य पृथ्वी पर कोई दूसरा वीर नहीं था। वह वीर कमधज्ज और वीर विजयपाल के पुत्र (जयचद) के छद्म-युद्ध मे सम्मिलित हो गया।

दोहा

सहस बीस भर अपर पर, इक इक रक्खै रिंघ।
मभरि जुध सामत मिलि, मनु सम लग्गिय सिंघ॥५२२॥

शब्दार्थः—अपर=अन्य के, विपक्षी के। रिंच=चला दिये, डुला दिये। लग्गिय=लग गये, झपट पड़े।

अर्थः—विपक्षी सेना के बीस सहस्र श्रेष्ठ योद्धाओं के पैर, पृथ्वीराज के केवल एक-२ वीर ने ही डिगा दिये। इस युद्ध में पृथ्वीराज के सामन्तों ने उसका साथ देकर शत्रु-समूह से इस प्रकार सामना किया मानों शेर झपटे हों।

मझ सपत्तिय न्रपति रन, बिय पारस परकोट।
रहे सूर सामत जकि, देखि न्रपति तन चोट ॥५२३॥

शब्दार्थः—बिय पारस=दोनों ओर। पर कोट=घेरा। जकि=चकित।

अर्थः—इस प्रकार युद्ध होते होते रात्रि हो गई और युद्ध बंद हुआ, किन्तु पगु सेना ने पृथ्वीराज की सेना के आगे पीछे दोनों ओर घेरा डाल दिया। इधर सामंतों ने पृथ्वीराज के शरीर पर युद्ध के घाव देखे जिससे वे चकित रह गये।

दुइ वर अश्वनि पक्खरह, दुअ नृप इक्क सँजोई।
इह अवस्थ अखिनि-लखी, हम जीवत नृप तोइ ॥५२४॥

शब्दार्थः—दुइ वर=दो बार, दो दिन। अश्वनि-पक्खरह=घोडे सजाये गये, युद्ध हुआ। सँजोइ= सयोगिता के। अवस्थ=अवस्था, स्थिति। अखिनि-लखी=आँखों देखी। तोइ=तेरी।

अर्थः—सामन्त गण पृथ्वीराज से कहने लगे- हे राजन्! दो दिन के युद्ध में दो घाव आपको और एक सयोगिता को लगा। ऐसी स्थिति हमने जीते-जी अपनी आँखों से देखी है, उसका हमें दुःख है।

इह कहि त्रग लग्गे-चरण, साईं दूख न अखि।
जाहु सु जीवत जानि-घर, पाच पचीसहि नखि ॥५२५॥

शब्दार्थः—लग्गे-चरण=चरण छुये। साइ=स्वामी। दूख-न=नहीं दूखे। अखि=आँख। जानि-घर=घर की ओर देखकर, दिल्ली का विचार कर। नखि=मरवा कर, धराशायी करवा कर।

अर्थः—इतना कह कर सामन्तो ने पृथ्वीराज के चरण छूये और कहा, हम आपकी आँखों का दूखना भी सहन नहीं कर सकते। अब तक केवल पाच पच्चीस सामन्त ही मारे गये है, अभी कुछ बिगडा नहीं है। अब भी आप जीते जागते दिल्ली का विचार कर लौट जाइये, इसी मे आपकी कुशलता है।

कवित्त

परे रेन रावत्त, राम रण रग अग्गरस ।
उठ्ठत इक धावत, पंच वाहत बीर दस ॥
बलि बारड मोहिल्ल मयद, मारुअ मुखे मध्ये ।
आरिन्नी अरि लघि, पग पारस दल खद्धे ॥
नारेन वीर वध्यौव रण, द्विव दिवान गो देवरो ।
कलहत्त जीव सामंत मुअ, रच्यौ स्वामि सिर सेहरो ॥५२६॥

शब्दार्थः—अग्गरस=अग्रगण्य । मयद=मदमस्त हाथी । मारुअ-मुख=मध्य-मरुस्थल निवासियों के मुखियों का मुखिया । आरिन्नी = आरणे भैंसे, जंगली भैंसे । लघि = उछल कर । खद्धे =खा गया, नष्ट कर दिया । वध्यौव=वृद्धि कर दी । द्विव-दिवान=स्वर्ग-सभा । कलहत्त-जीव = युद्ध प्रिय प्राणी, युद्ध प्रिय । मुअ=मारे जाकर ।

अर्थः—रण-रस में रँगा हुआ वीरों का अग्रगण्य रामरेण रावत जो-उठते ही एक का, चलते ही पांच का और वार करते समय दस का संहार करता था वह, तथा मरुस्थल-निवासीयों के मुखियों का मुखिया मदमस्त हाथी के समान बलवान, जिसने जंगली भैंसो जैसे शत्रुओं पर उछल कर पंगुराज के पास रहने वाली सेना नष्ट कर दी, ऐसा वीर बारड़राय मोहिल, व जिस वीर ने रण वृद्धि करदी और जो स्वर्ग-सभा मे जा पहुँचा ऐसा नारेणराय देवड़ादि अन्य युद्ध-प्रिय सामन्त इन दो दिनों के युद्ध मे मारे गये और स्वामी के सिर पर सेहरा बँधवा दिया (अर्थात् अब तक आपकी विजय हो रही है और अब दिल्ली चले जाने में कोई परिहास जैसी बात नहीं है)।

दोहा

मग्ग मयच्छिय रत्ति भर, फुनि सज्जै दल पग ।
चलिग पति पहु पग मिलि, जुद्ध भरनि किय जग ॥५२७॥

शब्दार्थः—रत्ति भर=अरुणिमा भर गई, अरुणिमा छा गई । पति=पंक्ति । मिलि=जोड़ (पंक्ति बद्ध की) । जुद्ध-भरनी=युद्ध कर्ता ।

अर्थः—(इस प्रकार राजा को सामन्त समझा रहे थे) इतने मे आकाश अरुण वर्ण हो गया, ज्यों ही रात्रि का अवसान हुआ त्योंहि पंगुराज की सेना सुसज्जित होगई । पंगुराज सेना को पंक्ति बद्ध करके बढ़ा और युद्ध-कर्ता वीरों ने युद्धारंभ किया ।

कवित्त

कमधज्जह रयसल्ल, बिरद भैरू सु भूत गह ।
करनाटिय किय सोर, राज सारग थट्ट थह ।।
सुपट्ट गुड सुग्रीव, राव वघ्घेल सिंघ वर ।
मोरी कासु मुकद, पुट्ठि भोमेह पति धर ।।
नृप कन्ह राव मर हट्ठ वै, हरियसिंघ हथनेव पर ।
नरपाल राव नेपाल पति, राइसल्ल कमि लै सुभर ।।५२८।।

शब्दार्थः—करनाटिय=कर्णाटक प्रांतीय । सोर=शोरगुल । राज-सारंग=सारंगराय । थट्ट-थह= समूह बद्ध हो युद्ध भूमि में डटे । सुग्रीउ=श्रेष्ठ ग्रीवा वाला । कासु=खास । पुट्ठि=पीछे, जाने के रास्ते पर । भोमेह=पृथ्वी, पृथ्वीराज । मर-हट्ठ-वै=मर कर ही हठने वाला । हथनेव=हाथ तुल्य, भुजा तुल्य । पर=पड़े, उमड़ पडे । पति=धराशाई हुआ । कमि=चल पड़ा, भाग गया ।

अर्थः—जिसका भैरों भूत विरुद था ऐसा कमधज्ज वीर रयसल्ल और कर्णाटक प्रान्तीय सारंगराय, जयचंद की ओर से शोरगुल करते हुए समूह बद्ध हो रणस्थल में सामने आये । तब पृथ्वीराज के रक्षार्थ-श्रेष्ठ ग्रीवा वाला गुड्डनरेश बाघेला सिंहराय सैन्य पंक्ति को संभालता हुआ उसका खास सामन्त मुकंद मोरी, मरकर ही हठने वाला कन्ह और राजा का भुजा स्वरूपो (छोटा भाई) हरिसिंह (हरिराज) राजा के जाने के रास्ते पर शत्रुओं को रोकते हुए भिड गये । जिससे नैपाल प्रान्तीय राजा नरपाल धराशाई हुआ और रयसल्ल अपने सामन्तों सहित भाग गया ।

दोहा

भगे सेन बिजपाल नृप, लखि भै तामस राइ ।
सहस एक भर सख धर, कहि हय छड्डि रिसाइ ।।५२९।।

शब्दार्थः—भगे-सेन=सेना के भागने पर । बिजपाल=द्वितीय विजयपाल (शैली के अनुसार जयचन्द को उसके पिता के नाम से सम्बोधित किया) । तामस=तमोगुण । हय-छडि=घोडे को बढा कर ।

अर्थः—इस प्रकार अपने पक्ष की सेना को भागती हुई देखकर द्वितीय विजयपाल (जयचन्द) ने तमोगुण धारण कर लिया और घोड़े को बढा क्रुद्ध हो एक सहस्र शस्त्रधारी वीरों को बढने को आज्ञा दी ।

बाने शख बिरद्द बर, बैरागी - जुध धीर।
सुरचि संख त्रिप नाइ सिर, भर पहु भंजन भीर ॥५३०॥

शब्दार्थ:—बाने=बाना, चिन्ह। सुरचि=ठीक किया। नाइ-सिर=सिर नमा कर। पहु=राजा को। भजन-भीर=आपत्ति को दूर करने वाले।

अर्थ:—उन वीरों का विरुद शख धर था और वे गृहस्थाश्रम से विरक्त तथा युद्ध में धैर्यवान थे। राजा की आपत्ति दूर करने वाले वे वीर आज्ञा पाकर राजा को सिर नवा नाद करने के लिये शंखों को ठीक किये।

पखँर मोर पक्खरह, मोर ग्रोवनि गज गाहिय।
मोर टोप टट्टरिय, मोर मंडित सनाहिय॥
मोर माल उर मध्, सक छंडिय भय भग्गिय।
धार तित्थ आदरिय, पग सेवहि वयरग्गिय॥
तिहि डरणि डारि चल्लै तिनहि, नितसु राज अग्गे रहै।
हलहलत सेन सामंत भय, मुक्कि मुक्कि अप्पुन कहै ॥५३१॥

शब्दार्थ:—मोर=तोड़ मरोड़ दिया। गाहिय=कुचल दिये। टट्टरिय=कलेवर, अंग। मंडित-संनाहिय=सु सज्जित कवच। धार-तित्थ=धारा तीर्थ। आदरिय=स्वीकार किया। वयरग्गिय=बैरागी। डरणि-डारि=भय छोड़ देना, आतंक नहीं मानना। चल्लै-तिनह=उन्हें धर दबाते। अग्गे रहे=अग्र भाग में रहते, हरावल में रहने। हलहलत=विचलित। भय=हो गये। मुक्कि-मुक्कि=छोड़ दो २। अप्पन=अपने साथियों को।

अर्थ:—उन शख धारी वीरों ने घोड़ों की पाखरें, हाथियों को कुचल कर उनकी ग्रीवाएँ, शिरस्त्राण, सुसज्जित कवचों सहित वीर-कलेवर को और झूमती हुई अमूल्य मालाओं सहित वक्ष स्थलों को तोड़ दिया। पगुराज की सेवा करने वाले उन वैरागियों ने शंका को छोड़ भय रहित होकर धारा तीर्थ में मरना स्वीकार किया वे शंखधारी योगी सदा राजा जयचन्द की हरावल में रहने वाले थे और जयचन्द के आतंक को जो नहीं मानता उसे वे धर दबाते थे। उन वीरों के हमले से पृथ्वीराज की सेना और सामन्त विचलित हो गये। उन्होंने अपने २ साथियों को युद्ध से हट जाने की सलाह दी।

त्रिप केहरि कट्ठेरि, राउ परताप पट्ठ पह ।
सिंधुआ राइ पहार, राम खम्भार थट्ट थह ॥
कढ्ढिय आस सु काज, पत्ति गड्डी रण रत्ता ।
पहु परवत पाहार, रहै सांखुला सु मत्ता ॥
अन्नेक सेन पति सस्त्र धर, सहस एक बिन मोह मत ।
अज्ञा सुपग किलकत क्रिमि, अप्पु अप्पु मुख रुक्ख रत ॥५३२॥

शब्दार्थ:—कट्ठेरि=कट्ठी । पट्ठ पह=पीठ पर, पक्ष पर । थट्ट-थह=थट्टा प्रान्तीय । आस=इच्छा । पत्ति-गड्डी=गड्डी नरेश । पाहार=पहाड़ी । मत्ता=मस्त । सेनपति=सेनापति या सेना बढी । मत=मतवाले । अज्ञा=आज्ञा । क्रिमि=क्रमि, चल पड़े । मुख-रुक्ख-रत=अरूण वर्ण मुख चेष्टा ।

अर्थ:—साथ ही केहरी कठठी भी बढा उसकी इच्छा पूर्ति के लिये उसके पक्ष में प्रताप-राय, सिन्धुआ पहाड़राय, थट्टा प्रान्तीय खम्भार का रामराय, युद्ध-रत गड़ी नरेश और सदा मस्त रहने वाला सांखला पर्वतराय पहाडी एव असंख्य सेना सहित ममत्व रहित रहने वाले मतवाले सहस्त्र शस्त्रधारी योद्धा हो गये । पगुराज की आज्ञा होते ही सब मुख पर अरुणिमा छाते हुए (क्रुद्ध हो) चाहुवानी सेना पर झपटे ।

बजत सख दह सत्त, सघन निस्सान धुनक्किय ।
पावस रिति आगमन, सिखिरि सिखि जानी निरत्तिय ॥
तिन अमित्त पौरुक्ख, सहस सामत वि अक्खिय ।
निबडुर जैत नरयद स्वामि अग्गौ धपि दिक्खिय ॥
हहकारि भूप भोंहा सुभर, गहिअ कास नख्यौ स हय ।
उड़ मडल उड्डत निरखयौ, मनहु बाजु पंखी सुभय ॥५३३॥

शब्दार्थ:—दह सत्त=दस सौ, एक सहस । सघन=गहरी ध्वनि से । निस्सान=नक्कारे । धुनक्किय=बजे । सिखिरि=पहाड़ों की चोटी । सिखि=मयूर । निरत्तिय=नृत्य किया हो (नृत्य करते हुए कलरव किया हो) । तिन=उनका । पौरुक्ख=पुरुषार्थ । सहस=सहस्त्रों । वि=दोनों ओर के । अक्खिय=कहा । स्वामि=पृथ्वीराज को । अग्गौ-धपि=आगे बढता हुआ । हहकारि=हुंकार करता हुआ । कास=खासा । नख्यौ=बढ़ाया । उड़मडल=आकाश मडल । बाजु-पंखी=बाज पक्षी । सुभय=सुशोभित हुआ ।

अर्थ:—नगारों की भिषण ध्वनि के साथ २ शस्त्र-धारियों के एक सहस्त्र शख इस प्रकार बजने लगे—जैसे पावस ऋतु के आगमन पर मेघ की गर्जना होती हो

और उसी के साथ पहाड़ों की चोटी पर नृत्य करते हुए मयूर-समूह का कलरव होता हो। उन शस्त्र धारियों के अमित पुरुषार्थ की प्रशंसा दोनों ओर के सहस्त्रों वीरों ने की। इतने में निडडुराय और जैत्र प्रमार ने शत्रुओं की ओर पृथ्वीराज को अकेले आगे बढ़ते हुए देखा। यह देख हुंकार मार कर श्रेष्ठ वीर मोहा ने रास खींच कर अपना खास (प्रमुख) घोड़ा बढ़ाया। वह घोड़ा आकाश-मंडल की ओर उड़ता हुआ ऐसा दिखाई दिया मानो बाज पक्षी झपटता हुआ सुशोभित हो रहा हो।

केहरि रा कट्ठेरि, स्वामी सिंगिनि गर घत्तिय।
वरुण पासनिय नद, लोक पालह पति पत्तिय॥
हँसि हलक्कि हक्कारि, पग पुत्तिय जानन-पन।
तात अग्ग स-व्वरिय, राइ-राजन आनी धन॥
चहुआन रथिर मथ्थह चढ़िय, न खिवथ्थ कमधज्ज वर।
खचत अनाप भर कन्ह दिखि, हरि हरि हरि कहि हरजि वर॥५३४॥

शब्दार्थः—सिंगिनि=कमान। गर=गले में। घत्तिय=डाल दी। पासनिय=पाश। नद=प्रसन्नता पूर्वक। लोक पालह=दिग्गजेश्वर। पत्तिय=पटकी हो, डाली हो। हलक्कि=आक्रमण कर्ता। हक्कारि=हुंकार कर, गर्जना कर। पग पुत्तिय=पगुपुत्री, संयोगिता। जानन-पन=प्रण का जानने वाली। स-व्वरिय=इसे वरण किया। राइ-राजन=राज राजेश्वर, पृथ्वीराज। आनी-धन=धन्य है यह ले जा रहा है। रथिर=एक रथी, अर्जुन तुल्य। न=नहीं। खिवथ्थ=खिमत, क्षमा कर सका, सह सका। खचत अनाप=व्यथा का अलाप लेते हुए। हरजि=हहरा गई, कंपित हो गई।

अर्थः—इधर पृथ्वीराज के गले में केहरी कट्ठी ने कमान डाली, वह ऐसी दिखाई दी मानो दिग्गजेश्वर (लोकपाल) के गले में वरुण पाश डाला गया हो। यह देख पृथ्वीराज के प्रण को जानने वाली संयोगिता हँसती हुई आक्रमण कर्ता वीरों को ललकार कर कहने लगी तुम नहीं जानते कि मैंने पिता के सामने ही इस वीर (इसकी स्वर्ण प्रतिमा) का मैंने वरण किया था इसीलिये यह राज राजेश्वर धन्य है जो मुझे साथ में लिये जा रहा है। मैं इस एक रथी (अर्जुन तुल्य) चाहुआन के पीछे घोड़े पर इसी लिये चढ़ी हुई हूँ। संयोगिता के ये वाक्य श्रेष्ठ होते हुए भी जयचन्द सहन नहीं कर सका। इस प्रकार अपनी व्यथा को प्रगट करती हुई संयोगिता को देखकर कन्ह ने हे हरि! हे हरि!! उच्चारण किया और पृथ्वी भी जयचन्द के दुष्कृत्यों से कांपने लगी।

दोहा

गुन कट्टिय रमनिय सु वर, डसनह पंग कुआरि।
असि वर झार प्रथिराज हनि, सूर हथ्थ नर वारि ॥५३५॥

शब्दार्थः—गुन=चाप । रमनिय=रमणी, संयोगिता । डसनह=डहनह, डहाली, तलवार से। असि-वर=श्रेष्ठ तलवार। झार=झाड कर, वार करके। हनि=हन दिया, मार दिया। नर वारि=निपट गया या निवार दिया, समाप्त कर दिया।

अर्थः—उस समय पृथ्वीराज के पीछे घोडे पर चढी हुई श्रेष्ठ सुन्दरी संयोगिता ने पति के गले में डाली हुई प्रत्यचा की रस्सी अपनी कटि (कमर) में कसी हुई तलवार से काट दी। इधर पृथ्वीराज ने भी शत्रु केहरी कट्ठी पर खड्ग का कठिन वार कर सिर काट गिराया।

कवित्त

उदित चंद आकास, मुदित किरणिय सर छुट्टिय।
कमल कोस छिपि छपय, छपिग कातर भुव टट्टिय॥
टुरिय सुभट तन सस्त्र, टोप टंकार तटक्किय।
फिरिय गज्जि सामंत, जानि नभ विज्जु कटक्किय॥
थक्के सु पंग दल बल करत, सुभट हक्कि संभिर धनिय।
खोडस्स इष्ट धर अवनि परि, सुकवि चंद छंदह गनिय ॥५३६॥

शब्दार्थः—मुदित=प्रसन्न कर देने वाली। किरणिय=किरणें। सर-छुट्टिय=सिर पर छूट पड़ी, प्रसार पाया। कातर=कायर। तटक्किय=तड़क गये, फट गये। विज्जु=बिजली। हक्कि=चल पड़े। खोडस्स=शोड्ष। छंदह-गनिय=अपनी रचना में स्थान देने योग्य वीर माने, अच्छे ढंग के वीर माने।

अर्थः- युद्ध करते २ आकाश में चंद्रमा उदय हो गया और मनको मुदित कर देने वाली चन्द्र किरणें फैली, भँवरे मुँदते हुए कमल कोष में छिप गये। कायर गण पृथ्वी पर टट्टियों की आड में जा छिपे फिर भी युद्ध होता रहा। बहादुरों के शरीर पर शस्त्र गिर २ कर टूटने लगे और शस्त्राघात से शिरस्त्राण बजकर तड़कने लगे। केहरी कट्ठेरी द्वारा राजा को आपत्ति में डालने पर राजा भी उससे निपट लिया था फिर भी बदला लेने के लिये सामन्त गण लौट कर गर्जते हुए इस प्रकार टूट पडे मानों आकाश से कडककर बिजली पडी हो। संभरीपति के वीरों के बढने पर पंगुसेना

जोर (बल) लगा २ कर थक गई। उस समय इष्ट को धारण करने वाले पृथ्वीराज के सोलह वीर धराशायी हुए। कविचंद कहता है मैंने उन्हें अपनी रचना मे वीर होने से ही स्थान देने योग्य समझा था (या-मैंने उन्हें अपने ढग के एक ही वीर माने है।)

तब नायौ रयपाल, जहाँ ढिल्ली सभरिवै।
मुहि साई लगि मरन, चंद अरु सूर साखि द्वै ॥
सार सिंगि सिर परत, फुट्टि सिर चिहुं दिसि तुट्टी।
धर धायौ असमान, श्रत पय पय भर खुट्टौ ॥
हटक्यौ सु कटक किन्नो अटक, सब दल भयौ भयावनौ।
जग जेठ झुझिझ धरनी परयौ, अच्छरि करिहि बधावनौ ॥५३७॥

शब्दार्थः—सार-सिंगि=लोह कुंत। श्रंत=रक्त झरते हुए भी। पय पय=कदम २ पर। खुट्टौ=खट गया, समाप्त हो गया। हटक्यौ=रोक दिया। अटक=आड। जेठ=जैठा, बड़ा। बधावनौ=बधाई, मगल गान।

अर्थः—तब रयपाल नामक वीर ने जहाँ दिल्लीश्वर चाहुवान था, वहाँ आकर सिर नवाया और कहा कि हे स्वामी चंद्र और सूर्य को साक्षी देकर कहता हूँ मुझे आपके लिये मरना है। युद्ध करते हुए उस वीर के सिर पर लोहे की साग गिरी जिससे उसकी खोपडी फूट कर चारों ओर बिखर गई, किन्तु उसका रुंड आसमान की ओर उछला और शरीर से रक्त बरसते हुए भी अंत समय तक लडता हुआ स्वर्ग सिधारा। उस मृत वीर का धड जब तक खड़ा रहा, तब तक उसने ऐसी आड कर दी कि विपक्षी सेना भयभीत होकर रुक गई और जिस समय ससार के उस बड़े वीर का रुंड धराशायी हुआ, उस समय अप्सराएं उसका मगल गान करने लगी।

दोहा

पहु-पचार रट्ठौर रिन, जिहि सिंगिनि गर कीन।
भुअ भुअंग सामंत कय, गही साव चर लीन ॥५३८॥

शब्दार्थः—पहु-पचार=राजा को प्रचार, ललकारा भुअंग=भुजंग। कय=कितने ही।

अर्थः—कन्नौजपति के साथ युद्ध में राजा को ललकार कर गले मे कमान डाल दी थी, उसके बदले में कितने ही सामन्तों की सर्पाकृति भुजाओं ने युद्ध करते हुए शस्त्रधारी वीरों को पकड़ लिया।

तुरँग मंडि खग खड्डि सु, करिग सु सस्त्र निसस्त्र ।
रुधिर धार उद्धह धरिय, भरिग उमा पति पत्र ॥५३६॥

शब्दार्थः—तुरँग-मडि=घोड़े बढा कर । निसस्त्र=निशस्त्र । उद्धह-धरिय=ऊँची उठी । भरिग=भर लिया । उमा=पार्वती, देवी । पति=बढकर, दौड़ कर । पत्र=पात्र ।

अर्थः—सामन्तों ने सुसज्जित घोडे बढा कर विपक्षियों को खड्ग से काट दिया और शस्त्र धारियों को निशस्त्र कर दिया उस युद्ध में शोणित-धारा ऊँची उठ २ कर बरसने लगी । उस शोणित से देवी ने दौडकर अपना पात्र भर लिया ।

राज पयम्पौ मिरण भर, आज कहौं हिय छोहि ।
भोंहा भूप पराक्रमह, कुल चदेलन होहि ॥५४०॥

शब्दार्थः—राज-पयम्पौ=राजा से कहा । हिय-छोहि=हृदय से उत्साहित होकर ।

अर्थः—उत्साहित होकर वीर चदेला ने पृथ्वीराज से निवेदन किया कि मुझे विपक्षी योद्धाओं से भिड़ने की आज्ञा दीजिये । हमारे चन्देले वंश में भोंहा भूप के समान ही सब में पराक्रम होता है ।

कवित्त

जिनै सब्ब धर सब्ब, पूर पूरत भुअ कंपिय ।
जिनै सब्ब धर सब्ब, भूमि डारित भर चंपिय ॥
जिनै सब्ब वर संब, राज गर सिंगिनि घत्तिय ।
सो सब्बद्धर असि समेत, आयास सपत्तिय ॥
धणि वीर वीर वीरम्म सुअ, सु कज्ज वारि अवधारितै ।
सामत सूर सूरन हनहि, सु कलि किन्ति विसतारितै ॥५४१॥

शब्दार्थः—जिनै=जिनके या जिन्होने । धणि=धन्य है । सु-कज्ज=उस युद्ध कार्य के । वारि=पानी, नूर, कान्ति । अवधारितै=धारण किया, बना रखा ।

अर्थः—जिनके शब्द-नाद से भूमि कम्पायमान हो जाती है और जो शत्रु-योद्धाओं को जमीन पर पटक २ कर दबा देने वाले हैं । जिनके बल पर राजा के गले में कमान डाली गई थी, ऐसे शस्त्रधारी वीरों को अश्व सहित जहाँ से वे आये थे वहाँ पहुँचा दिया । (अर्थात् स्वर्ग मे भेज दिया) । धन्य है ऐसे "वीरम के पुत्र" वीर चन्देले

को जिसने इस श्रेष्ठ युद्ध कार्य में नूर (कान्ति को) बनाये रखा, वीर धीर को मारते रहे हैं, किन्तु कलियुग में वैसी शुभ्र कीर्ति विस्तृत करने वाला दूसरा कौन हो सकता है ?

दिट्ठी द्रुग्ग नर्यंद, कासिराजा जुर जग्गिय ।
रायहनो लगूर, गोठि कन्नर कर भग्गिय ॥
पग राइ परतक्खि, जंग रक्खन रण साई ।
निसि नवमी ससि अस्त, गस्त गैअर गहि पाई ॥
हाकत मत चाल्यौ न्रपति, सामतनि सब्बर ब्रहिय ।
भ्रमु परयौ छत्त आछत्त कौ, कहहि सब्ब गहिय न गहिय ॥५४२॥

शब्दार्थः—दिट्ठी=दृष्टि । द्रुग-नर्यद=योगिनीपुर के स्वामी, दिल्लीश्वर । कासि-राजा=जयचन्द को काशी का राजा भी मानते आये हैं । जुर-जग्गिय=मिलने पर क्रोध जागृत हुआ या युद्ध छिड़ा । रायहनो=रायहन, रायसेन । लगूर=रगूर (कोई स्थान विशेष) । गोठि-कन्नर=कर्ण गोष्ठी । भग्गिय=दौड़ा, झपटा । परतक्खि=प्रत्यक्ष, समान ही । गस्त=पहरा, चौकी । गैवर=हाथी, गजवाहक । गहि-पाई=नियुक्त कर पाये । हाकत मत=मतवाले हाथी को बढाया । सब्बर=लोह कुत, सांग । भ्रमु=भ्रम । छत्त-आछत्त=था या नहीं था । सब्ब=सब्बल, लोह कुत । गहिय-न-गहिय=नहीं पकड़ा, पकड़ा गया ।

अर्थः—उस समय दिल्लीश्वर पृथ्वीराज और काशीराज(कन्नोजेश्वर) की दृष्टि एक दूसरे पर एक साथ पड़ी । पगुराज से रगूर नरेश रामहन (रायसेन) कर्ण गोष्टी करके झपटा । वह वीर भी पगुराज के समान ही रण-रक्षक था । नवमी की रात्रि का चन्द्रमा अस्त होने आया तब उसने पृथ्वीराज के चारों ओर गजवाहकों की चौकी नियुक्त की और स्वय भी मस्त हाथी को बढा कर राजा को दबा दिया । तब सामतों ने शीघ्रता से सब्बल (लोह कुत) का वार किया । यह देख कर वह शीघ्रता पूर्वक गायब हो गया (भाग गया) । उस दृश्य के देखने से लोह कुत चलाने वाले वीर ने तथा भागने वाले उस रगूर नरेश ने सबको आश्चर्य मे डाल दिया, दर्शकों मे से बहुतों ने कहा कि कुत पकडा गया, कोई कहता नहीं पकडा गया, कोई कहता रगूर नरेश था, कोई कहता नहीं था । (धन्य है वार कर्ताओं और भागने वालों को, जिन्होंने दर्शकों को चकित कर दिया) ।

कोपि चाइ चहुआन, तह्रि तिरसूल उपारिय ।
स्यगि नाद आनंद, इष्ट करि ईस सँभारिय ॥
सुधरि सत्त सामंत, रुधिर खप्पर लख संगह ।
रहसि राइ लगूर, ग्रीव चप्यौ आसगह ॥
जे सद्द वद्द जुग्गिणि करिय, अत्ताताइ उतग सिरि ।
भरिहरिय पग पगुर सयन, गग सुरगिय रग ढरि ॥५४३॥

शब्दार्थः—कोपि=क्रोध कर । चाइ–चहुयान=चाहुवान नरेश को चाहने वाला । तह्रि=तहाँ । तिरसूल=त्रिशूल । स्यगिनाद=सिंगीनाद । ईस–सँभारिय=शिव की आराधना की । सुधरि–सत्त=उसने मत ग्रहण किया । लख=लखचंडी, लाखों । रहसि=भागने का रहस्य मय दृश्य लाने वाला, भाग कर सब को चकित करने वाला । राइ–लगूर=रगूर नरेश । आसगह=असग । सद=शब्द । वद्द=वादविवाद । जुग्गिणि=योगिनियें । उतग-सिरि=मस्तक उठ गया, उन्नत होगा या मरि हरिय=मर हरा, भयभीत हो गया । सयन=सेना । सुरंगिय=सुरग (अरुण) वर्ण । रग–ढरि=रक्त रग बहने से ।

अर्थः—उस समय चाहुवान का शुभ चाहने वाले वीर अत्ताताई (चौहान) ने क्रोध कर त्रिशूल उठाया और सिंगीनाद करते हुए प्रसन्नता पूर्वक उसने अपने इष्ट-देव शिव की आराधना की तथा सामन्तों के सत्य का पालन किया । युद्ध में उसे बढता हुआ देख कर लख चडियाँ लाखों खप्पर लेकर साथ में हो गई । जिस रगूरनरेश ने भाग कर सब को चकित कर दिया था उस वीर की, वीर अत्ताताई ने झपट कर गर्दन दबा दी । उस समय योगिनियों ने जय २ शब्दोच्चारण किया । जिससे उस वीर का सिर उन्मत्त हो ऊपर उठ गया । पगुराज एव पगु सेना भयभीत हो गई । उस युद्ध में इतना शोणित बहा कि जिससे गगा का जल अरुण वर्ण हो गया ।

दोहा

चौरगी नन्दन सुभर, अत्ताताइ उतंग ।
स मरि ईस आनदि नृप, करि त्रिसूल जुरि जग ॥५४४॥

शब्दार्थः—चौरगी-नदन=चौरगीराय का पुत्र । स-मरि=वह मारा जाकर ।

अर्थः—वह उन्नत-काय वीर श्रेष्ठ अत्ताताई जो चौरगीराय (चाहुवान) का पुत्र था और जिसने त्रिशूल से युद्ध किया तथा मारा गया । उसने रणस्थल मे शिव और अपने स्वामी को प्रसन्न कर दिया (अर्थात् शिव को सिर समर्पित कर और राजा को विजय का श्रेय देकर प्रसन्न किया) ।

ढरत सु धर चहुआन कय, मज्झि गगवै माहि ।
जय जय सुर जंपिय सुभर, धनि धनि अत्ताताई ॥५४५॥

शब्दार्थः—ढरत=लुढकने पर । धर=धड़ । चहुआन-कय=अत्ताताई चाहुआन का । मज्झि=बीच । माहि=मे ।

अर्थः—वीर अत्ताताई चाहुवान का धड युद्ध करते हुए गगा के बीच लुढक गया तब देवतागण जय २ और सामन्त गण धन्य २ कहने लगे ।

अत्ताताइ उतंग भर, सब पहु पाक्रम पेखि ।
लगि टग्ग टगि दुव दलनि, तब दौरे करि तेखि ॥५४६॥

शब्दार्थः—सब=सब । पहु=राजागण । पाक्रम=पराक्रम । तब=तब । तेखि=तेश में आकर, जोश में आकर ।

अर्थः—उस उन्नतवीर अत्ताताई का पराक्रम देख युद्ध स्थल मे जितने राजा और दोनों तरफ के सैनिक थे उन सब के नैत्र स्थिर हो गये । उसका धड जब गगा मे जा गिरा तब विपक्षी वीर पुन. जोश मे आकर दौडे ।

कासिराज सज्ज्यौ सु दल, पुनि अग्या दिय पंग ।
गज्जै बीर अभीर रण, वज्जि विसंभ सु जग ॥५४७॥

शब्दार्थः—अग्या=आज्ञा । वज्जि=छिड़ा, हुआ । अभीर=अभीरु, निर्भय ।

अर्थः—काशी नरेश पगुराज ने अपनी सेना सु सज्जित कर आज्ञा दी तब वीर निर्भय हो गर्जना करने लगे । उन वज्रवत शरीर वाले वोरों में भयानक युद्ध हुआ ।

स्यधु जसिस कमधज्ज दल, विचरि अनी अनि लक्खि ।
दिय आइस कर उच करि, कच्छराइ परतक्खि ॥५४८॥

शब्दार्थः—स्यधु=समुद्र । जसिस=जेसी । अनी=सेना । अनि=अ य । कच्छराइ=कच्छ राज वशज । परतक्खि=प्रत्यक्ष ।

अर्थः—कमधज की सेना समुद्र के समान थी और जिसमे अन्य राजाओं की सेना भी लाखों की सख्या में थी । वह चली । उसका सचालन करने के लिये कच्छ नरेश (कच्छराज वशज) को पंगुराज ने हाथ उठा आज्ञा दी ।

एक लक्ख सन्या सु भर, वज्जि वज्ज रस वीर ।
अनी बंधि आषाढ त्रिप, वरखि बु द घन तीर ॥५४६॥

शब्दार्थः—सन्या=सेना । अनी–बंधि=सेना को पंक्ति बद्ध किया । त्रिप=राजा पृथ्वीराज ।

अर्थः—कच्छराज की अध्यक्षता में एकलक्ष सेना जब बढ़ी तब वीर रस पूर्ण वाद्य बजने लगे । पृथ्वीराज ने भी आषाढ़ के घुमड़ते हुए बादलों के समान अपनी सेना को पंक्ति बद्ध किया । और बूंदों की वर्षा के समान तीर बरसाने लगा ।

हाडा राव हमीर, राय गभीर बिबंधौ ।
लक्खीना तोखार, लक्ख जर जीन सुहंदो ॥
राज अग्ग फेरियहि, जाहि जगल पति जानहि ।
चाहुआन चामर नरिंद, जोगिनि पुर थानहि ॥
असि द्र ग्ग द्रुग्ग दल सों जुरिग, सामंतति सत्तह चढिग ।
आ लोह सेन लग्गत बिखम, बली दान बामन बढिग ॥५५०॥

शब्दार्थः—हाडा=हाडा क्षत्रिय । बिबंधौ=दोनों भाई । लक्खीना=लक्ष मूल्य के । तोखार=घोड़े । जर=जरीन । हंदौ=का । राज-अग्ग=राजा के समक्ष । फेरियहि=चलाये जाते । जगल पति=जगलेश्वर, पृथ्वीराज । चाहुवान-चामर=चमर धारी चाहुवान (पद-या-पूर्व शाखा) । जोगिनिपुर=दिल्ली । द्रुग्ग=दुर्गम । सत्तह=सत, जोश या-सौ (सामंत) । आ-लोह-लग्गत=आकर (बढ़ कर) लोहा बरसाने लगे । बली दान=बली के दान समय । बामन बढिग=भगवान बामन ने कदम बढया हो ।

अर्थः—हाड़ा (चाहुवान क्षत्रियों की एक शाखा) नरेश हमीर और गम्भीर दोनों भाई पृथ्वीराज की ओर से आगे बढ़े । जिनके घोड़ों की जरीन काठियों का मूल्य एक एक लक्ष था । उन हाड़ा राजाओं का ऐसा सम्मान था कि दिल्लीश्वर जगलाधिराज चाहुवान के सामने भी उनके चमर चलते रहते थे जिससे वे चमर धारी कहलाते थे । जिनके सामने शत्रु प्रवेश नहीं कर सकते ऐसी तलवारें हाथ में लेकर वे वीर दुर्गम सेना से जा भिडे और उनको वीरोचित जोश चढा । विपक्षी सेना पर वे विषम लौहा झाड़ते हुए इस प्रकार कदम बढाने लगे, जैसे बली राजा के दान के समय बामन अवतार ने कदम बढ़ाया हो ।

कासिराज दल बिखम, मद्धि जनु तारणि छुट्टिय ।
भिरिनि हारि भुज धारि, अद्ध अद्धह लिय चट्टिय ॥

निघनि घात तन व्रात, घात हय घात अघानिय ।
जनु जिहाज सायरिय, तिरहि तु ग ति तिहि ब्रानिय ॥
बलबधि बलप्पति बत्त तिन, छिन छिनदा कमधज्ज दल ।
भूचाल भूमि उत्थल्ल पथल्ल, इम सु छत्र पङ्गुरा डुल ॥५५१॥

शब्दार्थः—तारायि=तारे । छुट्टिय=छूटे हों । भिरिनि-हारि=भिड़ने वाले, युद्ध कर्ता । भुज भारि= भुजाओं पर धारा । अद्ध अद्धह=आधा २ । लिय-वट्टिय=बाँट लिया, हिस्से में कर लिया । निघनिघात=अपार शस्त्राघात । तन-व्रात=तनव्रात, शरीर समूह । घात-हय=आघात से नष्ट हो गये । घात-अघानिय=घावों से छक गये । जिहाज-सायरिय=सरोवर में चलने वाली छोटी जहाजें, नावें । तिरहि=तैरते । तु ग-ति=वह उत्तग शव । तिहिं-ब्रानिय=इस ढग से, इस प्रकार । बलबधि= बल में वृद्धि की या सैन्य शक्ति को पक्ति वद्ध किया । बलप्पति=बलवानों के स्वामी या बलप्रदेश के स्वामी । बत्त तिन=उनकी चर्चा । छिन=क्षीण । छिनदा=रात्रि । डुल=डलने लगा ।

अर्थः—काशीराज(कन्नौजेश्वर)की शक्तिशाली सेना के बीच वे(हाडा वीर)इस प्रकार टूटे मानों आकाश से तारागण टूटे हों । युद्धकर्ता विपक्षियों के आक्रमण का भार उन दोनों भाइयों ने अपने हिस्से में अपनी २ भुजाओं के बल पर आधा २ ढोने का निश्चय किया, उनके कठिन शस्त्राघात से कितने ही वीर नष्ट हुए और कितने ही घावों से छक गये । उस शोणित-प्रवाह में ऊँचे-शव इस प्रकार तैरने लगे मानों सरोवर में छोटी जहाजें तैर रही हों । उन बलवानों के स्वामी वीर हाडाओं के बल की चर्चा विस्तृत रूप से होने लगी और उन्होंने रात्रि रूपी कमधज सेना को क्षीण कर दिया । उनके आतंक से पगुनरेश का छत्र इस प्रकार हिलने लगा, जिस प्रकार भूकम्प के समय भू-भाग में उथल पुथल होने लगती है ।

हाडाराय हलक्किक, कासिराजा करवर कसि ।
जोगिनिपुर सामंत, वहत कनवज्ज वीर रसि ॥
बियौ वीर आहुरिय, धरिय दतद्दुर आवध ।
नामि वीर निउजुरिय, करिय केहरि कुस-रा वध ॥
उडि हस मस नसह मुहर, कुहर देव वज्जिय सुहर ।
जग्गयौ नाग तब नाग पुर, हाम दुरग वासक धर ॥५५२॥

शब्दार्थः—हलक्कि=हमला किया । करवर=करवाल, खड्ग । बहत=प्रवाहित किया । वीर-रसि= वीर रस । बियो वीर=दोनों (हाडा) वीर । आहुरिय=गड गये । धरिय=ग्रहण किये । दतद्दुर=

दांतों में तलवारें पकड़ कर। आवध=आयुध, कटारादि। नामि-बीर=नामी २ वीर, प्रसिद्ध वीर। निच्छरिय=नहीं छूटे, टलकर हट गये। केहरि=केशरी (सिंह तुल्य वीरों ने)। कुस-रा=कच्छराज वंश का। हस=प्राण पखेरु। मम=मांस। नमह=नष्ट हो गया, समाप्त हो गया। मुहर=पल चारियों के मुँह द्वारा। कुहर-देव=विघ्नकर्ता देव। सुहर=सुहृद्, सुभट। हाम=ग्राम, प्रत्येक। दुरग=दुर्ग। धामक=धड़ धड़ाना, कांपना।

अर्थः—जब काशीराज (कन्नौजेश्वर) ने युद्धार्थ कसकर खड्ग बांधी, तब इधर (पृथ्वीराज की ओर) से हाड़ाराव ने हमला किया। इस प्रकार दिल्ली और कन्नौज के वीरों में वीर रस प्रगट हुआ। उस समय दोनों हाड़ा वीरों (हमीर-गंभीर) ने दांतों मे तलवारें पकडी और अन्यशस्त्रादि (कटारादि) लेकर भिड़ गये। जिससे नामी २ विपक्षी वीर एक ओर हट गये। कच्छराज वंशज उन सिंह तुल्य वीरों के द्वारा मारा गया। उस शत्रु का प्राण पखेरु उड़ गया और उसका मांस, मांस-भक्तियों के मुँह से समाप्त होगया। वे सुघड़वीर उस समय विघ्नकर्ता देव तुल्य कहे गये। उनके उत्पात से नागलोक स्थित नाग जागृत हो गये और दुर्ग तथा पृथ्वी धड़ धड़ाने (कांपने) लगी।

दोहा

हाडा हथ्थ-सु-हथ्थ-धरि, गभीरा रस वीर।
कासिराज दल सम जुरिग, कुल उच्चारिय नीर ॥५५३॥

शब्दार्थः—हथ्थ-सु-हथ्थ-धरि=हाथ पर हाथ मारकर। रस-बीर=वीर रस स्वरूप। सम=से। कुल=वंश के। उच्चारिय-नीर=नूर की प्रशंसा कराई, अपनी उज्ज्वलता (पवित्रता या कान्ति) को प्रकट किया।

अर्थः—वीर रस के समान वह साक्षात हाडा वीर गम्भीर हाथ पर हाथ मार कर काशीराज के दल से जुझ गया और अपने वंश के नूर (कीर्ति) को संसार में प्रकट कर दिया।

नृप अलसिग अलसिग सुभर, अलसिग पग नरयंद।
विलसित काल करक किय, सहसति तीम गयद ॥५५४॥

शब्दार्थः—अलसिग=आलस्य को ग्रहण किया। विलसित=युद्ध क्रीड़ा करते हुए। काल=घत। सहसति=सहस्रों। गयद=हाथी।

अर्थः—वीर गम्भीर हाड़ा के पराक्रम को देख कर पृथ्वीराज ने और साथी सामंतों ने इसलिये शिथिलता बरती कि अकेला यही वीर शत्रुओं से निपट लेगा और पगुराज ने इसलिये ढील दी कि ऐसे वीर से मुकाबला करना बड़ा कठिन है। इसलिये उसने हतोत्साह हो युद्ध की उपेक्षा की, किन्तु उस वीर हाड़ा ने युद्ध क्रीड़ा कर सहस्रों शरीरधारी वीरों का एव तीस हाथियों का अंत कर दिया।

कवित्त

बधौ रा जैच्चद, राय विजपाल स पुत्तह।
सेरध्री उर जनमु, नामु बीरमु रावत्तह॥
सहस तीस द्युदूर, ढाल नेजा स्यदूरिय।
स्यदूरिय सन्नाह, सेव वारुणि सपूरिय॥
दिन महिख एक भुजै भखस, विजय द्रग्ग अग्गै त्रपह।
जीते जुवान हिंदू तुरक, वाम अग टोडर पगह॥५५५॥

शब्दार्थः—बधौ=भाई। सेरध्री-उर=दासी की कोख से। द्युदूर=सिंधुर, हाथी। स्यदूरिय=सिंदूरी रग की। सन्नाह=कवच। सेव=सेवता, काम में लेता। वारुणि=मदिरा। स-पूरिय=परिपूर्ण। भुजै=भूंनकर। भखस=भक्षण करता। द्रग-अग्गै=आंखों के सामने, उसके समय में ही। वाम-अंग=बाईं ओर। टोडर=पैर में पहनने का एक भूषण। पगह=पेर में।

अर्थः—विजय पाल की उप पत्नी (दासी) द्वारा उत्पन्न जयचन्द का भाई, जिसका नाम बीरम रावत था और जिसकी अधिकृत सेना मे तीस हजार हाथी थे। जिसकी ढाल, नेजा, कवच आदि सिंदूरी रग के थे और जो वारुणि का पूर्ण उपासक था। एक भैंसे जितना एक दिन में मास भक्षण करता था। विजयपाल के समय में ही उस युवक ने हिन्दू-मुसलमानों से विजय प्राप्त की थी और उसके बाए पैर मे टोडर (स्वर्ण भूषण) सम्मान के रूप मे पड़ा रहता था।

सुक्रवार अष्टमिय, निंद जानो न जुद्ध पुर।
नौमि सनी टरि गइय, सामि सग्राम इद्र जुर॥
इय दिक्खत खव्याम, पाइ गहि सत्त पद्धारिय।
रे सु मुद्ध मुद्ध ग, जग जुरि हौं न अगारिय॥
आयौ निसक सामंत जहँ, कर कसत आलसअ सन।
तितने सूर साहिग समर, जनु अगस्ति दरिया गमन॥५५६॥

शब्दार्थः—निंद=निद्रा में। जानो न=नहीं जान पाया। जुद्ध-पुर=कनवज्ज में युद्ध छिड़ा उसे। सामि=स्वामी (जयचन्द)। इन्द्र=इन्द्र स्वरूपी पृथ्वीराज। जुर=जुटे। हय=मारा। सत्त=स्वतः, अकारण। मुद्ध-मुद्धग=वज्र मूर्ख। आलसअ सन=आलस्य में सना हुआ, जमुहाई लेता। तित्तने=इतने में। दरिया=समुद्र। गसन=असने, चुल्लू करने, पी जाने।

अर्थः—कन्नौजेश्वर और दिल्लीश्वर मे प्रारंभिक दिन का युद्ध शुक्रवार अष्टमी को कन्नौज पुर से ही प्रारंभ हुआ। उस दिन वह शराबी रावत वीरम निद्रावस्था में ही रहा, उसे युद्ध की स्मृति तक नहीं थी। उसी प्रकार नवमीं शनिवार भी बीत गया, उस दिन भी इन्द्र, स्वरूपी पृथ्वीराज और जयचन्द में युद्ध होता रहा। तृतीय दिन इस युद्ध घटना की बात उसने सुनी तब सेवक पर अकारण ही उसने चरण प्रहार कर जमीन पर गिरा दिया और कहा—हे वज्र मूर्ख! युद्ध हो रहा है फिर भी तूने मुझे क्यों नहीं जगाया? यह कह कर वह निश्चित हो जमुहाई ले अपने हाथों को मलता हुआ पैदल ही जहाँ पृथ्वीराज के सामन्त युद्ध कर रहे थे उस स्थान पर आया। उसे आता देखकर पृथ्वीराज के बहादुर सामन्तों ने युद्ध में इस प्रकार वृद्धि करदी मानों समुद्र के तीन चुल्लू करने के लिये अगस्त्य ऋषि बढ़े हों।

दोहा

रा-जैचंद नरयंद दल, दरसि भ्रत्त बल-काज।
मैं भुज पजर भिरि गहिग, इनमें को प्रथिराज ॥५५७॥

शब्दार्थः—भ्रत=भृत्य, सेवक। भुज-पंजर=भुजा पिंजर, कर पाश। गहिग=पकड़ूंगा।

अर्थः—जयचन्द से उसने कहा—तुम और तुम्हारी सेना इस सेवक के बल-कार्य को देखो। मैं अपनी भुजाओं के बल से उसे पकड़ूंगा, मुझे बतलाओ इन आक्रमण कर्ता वीरों में से तुम्हारा शत्रु पृथ्वीराज कौनसा है?

माया मग्गति देव जगि, हवि जिम हक्क प्रगट्टि।
तिन कट्टारिय कर धरिग, तिन घन सेननि घट्टि ॥५५८॥

शब्दार्थः—मग्गति=मार्ग से। हक्क=हुंकार। तिन=तीन। तीन=उसने। सेननि=सेना को। घट्टि=घटा दी, कम कर दी, समाप्त कर दी।

अर्थः—उस समय वह (वीरम रावत्त) ऐसा दीखा मानों यज्ञान्तर हवि के समय हुंकार करता हुआ माया-मार्ग से देव प्रगट हुए हों। उसने जयचन्द से सम्भाषण

करने के पश्चात् ज्यों २ टूटती गई त्यों २ क्रमश तीन चार कटारियों बदल युद्ध किया तथा उसने बहुतसी सेना समाप्त करदी।

कवित्त

कट्टिय बर बिस्तर्यौ, घाइ लग्गौ घड राजन।
जहाँ भीम जुवान, तिरस तु गह भिरि भाजन॥
रा-रणबीर पवित्त, सु पति रक्खिय परिहारह।
राजु काज चहुआन, स्वामी सकेत सहारह॥
जुध भिरत तिनहि हय गय वहिग, गहु गहु कहैति सभरिय।
निसि घटी एक सामत परि, भई पीत निसि अमरिय॥५५६॥

शब्दार्थः—कट्टिय=काठी क्षत्रिय। बर=बल। घड=सेना। तिरस=तरासता हुआ, काटता हुआ। तु गह=समूह। भाजन=नष्ट करने लगा। रा-रण-बीर=रण बीर राय। पवित्त=पवित्र। पति=लज्जा। परिहारह=प्रतिहार वश की। सहारह=सहायक। वहिग=बढे। गहु-गहु=पकड लो, पकड लो। अमरिय=आकाश।

अर्थः—वीरम रावत के बाद कठ्ठी वीरों ने बल पकड कर पृथ्वीराज की सेना का नाश प्रारंभ किया। उस समय युवक भीम यादव कठ्ठी-समूह से भिड गया और काटता हुआ नष्ट करने लगा। पवित्र रणवीर राय प्रतिहार ने भी भिड़ कर अपने वश की लाज रखी। वह प्रतिहार वीर पृथ्वीराज के सकेत पर राजकार्य मे सहायक स्वरूप था। उपरोक्त वीर के लड़ने से विपक्षी दल के अश्वपति, गजपति सभरी नरेश को "पकड़ लो २" इस प्रकार शोर गुल करते हुए बढे। उनसे लोहा लेता हुआ वह प्रतिहार सामन्त धराशायी हुआ उस समय केवल एक घड़ी रात्रि शेष थी और आकाश भी पीत वर्ण का हो गया था।

दोहा

गहन आस गई पग नृप, जियन आस चहुआन।
सूर खड मडल रवन, उयौ सु रत्तौ भान॥५६०॥

शब्दार्थः—गहन=पकड़ने की। आस=आशा। जियन=जीवित। मडल=भूमडल। उय=उदित हुआ। रत्तौ=अरुण वर्ण।

अर्थः—पंगुराज को पृथ्वीराज के पकड़ने और पृथ्वीराज को जीवित धर जाने की आशा नहीं रही। इसी समय बहादुरों का नाश सूचक सूर्य भू-मण्डल पर अरुण वर्ण हो उदय हुआ।

कनवज्जै भज्जै सयन, जे भर-ढिल्लिय-सार।
वे-धर अजुलि झल्लरित, उद्दित आदित वार ॥५६१॥

शब्दार्थः—भज्जै=मारे गये। भर-ढिल्लिय-सार=दिल्ली के सामन्तों के शस्त्रों द्वारा। वे-धर=उनके घर पर (उनके कुटुम्बियों द्वारा)। अजुलि-झल्लरित=झलकती हुई अञ्जलि, जलपूर्ण अंजुली दी गई। उद्दित-आदित=सूर्योदय। वार=समय।

अर्थः—अष्टमी शुक्रवार को कन्नौज पुरान्तर्गत कलह का बीज बोया गया और युद्ध हुआ। दिल्लीश्वर के सामन्तों के लोहे से जो मारे गये, उन वीरों को सूर्योदय होने पर उनके कुटुम्बियों ने जलाञ्जलि दी।

कनवज्जह झज्जकिय करुण,अरु करि न्नपति निऊर।
जिहि गुन प्रगटित प्यड किय, तिहिं सघारिग सूर ॥५६२॥

शब्दार्थः—अरुकरि=और कर दिया। निऊर=उर रहित, हृदय शून्य, हृदय हीन। जिहिं-गुन-प्रगटित= उसकी बुद्धि के कारण ही प्यड किय=पिंड दान किया। सघारिग=मारे गये।

अर्थः—कन्नौज पुर में वीरों के मरने से करुण रस बरस पड़ा और पगुराज को भी उस दृश्य ने हृदय हीन कर दिया, क्योंकि उसीकी बुद्धि का यह परिणाम था कि बहुत से यौद्धा मारे गये और उनका पिंडदान किया गया।

दिख्खि सँजोगिय पिय सुबल, श्रम जल बूंद बदन्न।
रति पति अहिनु पवित्त मुख, जाजि प्रजालि मदन्न ॥५६३॥

शब्दार्थ.—सुबल=सबल। बदन्न=मुख। रति पति=कामदेव। अहिनु=यही तो। पवित्त=पवित्र। मदन्न=कामदेव।

अर्थः—सयोगिता ने अपने बलवान प्यारे (पृथ्वीराज) का मुख युद्ध के कारण श्रम-बिन्दु युक्त देखा और मन ही मन कहने लगी, अहो! सुन्दर मुखाकृति वाला यही (पृथ्वीराज ही) तो वास्तव में कामदेव है। जिस अनग को मनुष्य भ्रम वश कामदेव समझ बैठे हैं। उसे तो (शिव द्वारा) जला दिया गया है। (वह इसकी समता कैसे कर सकता है?)।

सुघर विलब न घरिय भर, रहि ठढ़िय घटि तीन ।
उठहि न अलसित कर सुबर कछु मन मोह प्रवीन ॥५६४॥

शब्दार्थः—सुघर=सुघड़ । विलब=विलम्ब । घरिय=घरी । मोह=मुग्ध ।

अर्थः—वे सुघड योद्धा युद्ध मे घडी भर भी विलम्ब नहीं करने वाले थे, किन्तु दिन रात युद्ध करने से थक कर तीन घड़ी तक खड़े रह कर उन्होंने विश्राम किया। वे इतने थक गये थे कि आलस्य के कारण उनके हाथ उठते तक नहीं थे। डट कर युद्ध करने वालों को यह हालत देख कर प्रवीण पुरुष कुछ मन मे मुग्ध हो गये (या पद्म सयोगिता उन वीरों की वीरता पर कुछ मुग्ध हुई)।

उत रुख चपिय रट्ठिवर, इत मुख सभरि वार ।
चलत राइ फिरि फिरि परिय, उदित आदित वार ॥५६५॥

शब्दार्थः—रुख=सेना का मुहाना । रट्ठिवर=राष्ट्रवर । समरि वार=चाहुवानी सामत । चलत=जाता हुआ । राइ=राजा, पृथ्वीराज । फिरि=फिर मे । फिरि-परिय=लौट पडा ।

अर्थः—ऐसे थके हुए वीरों को उधर से राष्ट्रवर वीरों ने दबाया। इधर से चाहु-वानी सामत भी बढे। यह देख पृथ्वीराज जाता हुआ वापस लौटा। यह घटना सूर्योदय के समय हुई (या रविवार को प्रात काल को हुई)।

करि विचारु सामत सह, त्रिपतिहि रक्खन काज ।
कहै अचलु सुन सूर हौ, करौ चलन कौ साज ॥५६६॥

शब्दार्थः—सूर=शूर, बहादुर ।

अर्थः—तब सब सामन्तों ने राजा की रक्षा का विचार किया और अचलेश चाहु-वान (खींची) ने सब से कहा—आप लोग बहादुर है। अब यहाँ से चलने की तय्यारी करनी चाहिये।

सहसकर कर दिय दरस, विन्चि सुभर आपान ।
चलिय राज जीवत पिह, कहिय अचल चहुआन ॥५६७॥

शब्दार्थः—सहसकर=सहस्र किरण, सूर्य । कर=किरणें । विन्चि=विरची, रचना की, मत्रणा की । अप्पान=अपने । पिह=गृह ।

अर्थः—उसी समय सूर्य ने सहस्र किरणों का प्रसार कर दर्शन दिये। पृथ्वीराज के सामन्तों ने राजा को सुरक्षित अवस्था से दिल्ली पहुँचाने की मत्रणा की और

सामन्तों की ओर से अचलेश चाहुवान ने राजा को निवेदन किया कि अब आपको जीवित अवस्था मे ही घर लौट जाना चाहिये।

कवित्त

कहै कन्ह चहुआन, अहो वरदाइ चद वर।
जुरत जुद्ध दिन तीय, भये अनभुत्त उभै भर॥
एक ऊन पचास, परे सामत सूर धर।
पग राउ घन सेन, टुट्टि सक मीर धीर थर॥
थक्के सु हाथ सुभ्भर नयन, उठ्ठ न रिणि विश्रम-विरम।
पहु चलिग मग्ग रख्खैं सुभर, कियौ राज अदभुत्त क्रम॥५६८॥

शब्दार्थः—तीय=तीन। अनभुत्त=अद्भूत। एक ऊन पचास=एक कम पचास, गुनपचास। टुट्टि=कट गई। थर=थल। थक्के=थक गये। उठ्ठन रिणि=युद्ध में नहीं उठते। विश्रम-विरम=कुछ समय विश्राम (ठहर) कर रवाना होओ। क्रम=कर्म।

अर्थः—कन्ह चाहुवान ने चदवरदाई से कहा—हे कवि! युद्ध करते हुए आज तीसरा दिन है। इस युद्ध में दोनों ओर के योद्धाओं ने अद्भुत काम किया है। अब तक अपने पक्ष के गुनपचास वहादुर सामत धराशायी हुए हैं और पगुराज की वहुत सी सेना तथा धैर्य वान सक्का मीर(मीर बदे)पृथ्वी पर कट कर पड गये हैं अब तो वीर इतने थक गये हैं कि इन्हें कुछ समय के लिये युद्ध वन्द करना पडेगा; क्योंकि इनके हाथ और नैत्र युद्ध स्थल की ओर बढते नहीं दीख रहे है। इसलिये अब तुम ऐसा कार्य करो जिससे सामन्तों को रास्ते पर क्रमश नियुक्त किये जा सकें और राजा स्वय कुछ देर ठहर कर युद्ध से (दिल्ली को) चला जाय। राजा को कोई भागने का कलक नहीं लगा सकता, क्योंकि राजकुमारी के अपहरण के साथ ही उसने क्षत्रियोचित पर्याप्त कर्म कर लिया है।

समौ जानि कविचद, कहै प्रथिराज राज सुनि।
आदि कम्म ते करैं, तास को सकै गनिक गुनि॥
सेस जीह सम्रहै, पार गुन तोहि न पमैं।
तैं जु करिय पहु पग, मिलय आरनि थर-मम्मैं॥
नन कियौ न को करि है पहुमि, जैं जैं जैं लद्धी तरुणि।
ग्रिह जाइ अप्प आनद करि, बढै कित्ति सब्ब लोग पुणि॥५६९॥

शब्दार्थः—समौ=समय। कम्म=कर्म, काम। पमै=पार। गगनि=शत्रु। भर-गमै=धूल में, धूल में। पुणि=पुन।

अर्थः—तब उपयुक्त समय देखकर कविचन्द ने पृथ्वीराज से कहा- हे राजन। तुम्हारे किये हुए कर्मो का पार शेष नाग भी अपनी जिह्वा से संग्रह नहीं कर सकता तो फिर ऐसा कौन गुणी है जो कर सके। तुमने अपने पूर्व गुणों के समान ही वह कर्म किया है कि पगुराज जैसे बलवान को तथा इसी प्रकार के अन्य शत्रुओं को धूल मे मिला दिया है। तुमने विजय कीर्ति के साथ कुमारी संयोगिता को प्राप्त कर लिया है। ऐसा कार्य न तो किसी ने किया और न कोई कर सकेगा? अब आपको चाहिये कि घर जाकर आनन्द मनायें ताकि आपकी कीर्ति सब लोकों मे फैल जाय।

दोहा

इह कहि सुकवि समीप गय, गहिय बग्ग है-राज।
चल्यौ खचि ढिल्ली सु रह, सुभर सु मन्यौ काज ॥५७०॥

शब्दार्थः—बग्ग=रास। है-राज=राजा के घोडे की। रह=राह, ओर।

अर्थः—यह कह कर कविचन्द राजा के समीप जा उसके घोडे की रास पकड कर उसे जबरदस्ती दिल्ली की ओर ले चला। यह देखकर सब सामन्तों ने अपने कार्य को सफल माना।

प्रलय जलह जलहर चलिय, बलि बधन बलि वार।
रथ चक्का हरि करि करिय, परि प्रब्बत पत्थार ॥५७१॥

शब्दार्थः—जलहर=जलधर, मेघ। बलि-बधन=बली को बधन में लेने वाले वामन। बलि वार=बली को ठगने के समय। चक्का=चक्र, सुदर्शन चक्र। हरि-सूर्य और विष्णु। करि=ऐसा करके। करिय=कर दिया, दृश्य छा दिया। प्रब्बत=पर्वत। पत्थार=प्रसारित, फैले हुए।

अर्थः—उस समय सामन्त इस प्रकार चल पडे मानों प्रलय कालीन मेघ बरसने को उमडे हों या बली को बधन में लेने वाले वामन ने उसे छलने को पैर बढाये हों अथवा सूर्य का रथ या विष्णु का चक्र चल पडा हो। इस प्रकार बढकर उन्होंने पर्वत काय हाथियों को जमीन पर बिछा दिये (लुढका दिये)।

उदय तरुनि नट्टिग तिमिर, सजि सामत समूह ।
नृप अग्गै वहँ सु इम, चलहु स्वामी करि कूह ॥५७२॥

शब्दार्थ:—तरुनि=तरणि, सूर्य । नट्टिग=नष्ट हो गया, दूर हो गया । नृप–अग्गै=राजा से कहने लगे । कूह=किलकारी, ललकार ।

अर्थ:—सूर्योदय होने पर अँधेरा दूर हुआ उसी समय सामन्त समूह ने सुसज्जित हो निवेदन किया । हे स्वामी । शत्रुओं को ललकारते हुए दिल्ली की ओर आगे बढ़िये ।

साँमि ध्रम्म रत्तो सुभर, चढ़े क्रोध विप झाल ।
दभ्भै कायर दूर टरि, मिले गरूर मुँछाल ॥५७३॥

शब्दार्थ:—रत्ते=रत, अनुरक्त । झाल=ज्वाला । दभ्भै=दग्ध होते हुए । मिले=मिल गये, उलझपड़े । मुँछाल=मूछाले ।

अर्थ:—उन स्वामि धर्म से अनुरक्त रहने वाले सामन्तों ने युद्ध भूमि में क्रोध रूपी विष–ज्वाला फैलादी जिससे दग्ध होते हुए कायर वहा से हट गये और गरुर-धारी मूँछाले वीर उलझ पडे ।

जे छत्री अड्डे अरे, ते झुभ्भै असि थान ।
मानों बुन्द समुन्द मे, परै तत्त पाखान ॥५७४॥

शब्दार्थ:—अड्डे अरे=आड़े आकर अड़े, बाधक हुए । असि-थान=उसी स्थान पर, खड्ग मार्ग पर । तत्त=तहीं पर । पाखान=पाषाण, पत्थर ।

अर्थ:—जो क्षत्रिय उस समय पृथ्वीराज की राह में बाधक हुए वे सब इस प्रकार खड्ग-मार्ग के पथिक बन गये (मारे गये) जैसे समुद्र में पडकर जल–बून्दें या पत्थर विलीन होजाते हैं ।

चलन मानि चहुआन नृप, बज्जै पग निसान ।
निसि जु दद्दु दुहुँ दल भयौ विधू सहित विनु भान ॥ ५७५ ॥

शब्दार्थ:—दद्दु=द्वंद (युद्ध) । विधू=विधु, चन्द्रमा । विनु=बना, या–विनय की, वदना की । भान=भानु, सूर्य ।

अर्थः—पृथ्वीराज ने चद की बात मानकर युद्ध स्थल से चले जाना स्वीकार कर लिया। इतने में ही पगुराज के नक्कारे बजे और दोनों दलों के द्वन्द्व युद्ध ने रात्रि का रूप धारण कर लिया। उस द्वन्द्व निशा मे सयोगिता सहित पृथ्वीराज का सयोग ऐसा बना मानों चद्रमा और सूर्य दोनों ही एक साथ उदय हुए हों। (अत सब ने उस चन्द्र, सूर्य की वदना की)।

कवित्त

बली अली द्वै मीर, उभै बंधव वर बीरह।
छत्तिय हथ्थ दुसल्ल, मल्ल विद्या सक श्रीरह॥
खग्ग मग्ग बिन रेह, जुद्ध जानें निरगम गम।
हक हलाल प्रिच्छवन, करन वदिगि त्रतीय सम॥
भुज लहै कोरि उम्भय अभय, स्वामि धम्म रत्ते सु रह।
आनहि सु पग लज्जी अदव, दल पगर विय उदित गह॥५७६॥

शब्दार्थः—छत्तिय=छाती, वक्ष स्थल। हथ्थ=एक हाथ चौड़े। दुसल्ल=कठोर शिला तुल्य। सक=शिक्के, अग रक्षक। श्रीरह=शरीर। बिन-रेह=चील्हें रहित, नियम रहित। निरगम=निगम, अगम्य। गम=गमन, गति। प्रिच्छवन=परीक्षक। त्रतिय=तृतीय देव, महेश, रुद्र। कोरि=सकोरि, पकड़ में। धम्म=धर्म। रत्ते=रत, लीन। रह=राह, रास्ता। लज्जी=लाज। विय=दोनों। उदित-ग्रह=आदित्यग्रह, सूर्य।

अर्थः—इधर पगु सेना के दो मीर योद्धा जिनका नाम बली और अली था, वे दोनों सगे भाई और श्रेष्ठ थे। इन दोनों के वक्षस्थल एक हाथ चौड़े और शिला तुल्य कठोर थे, वे मल्ल विद्या के जानने वाले और सिक्के जैसे शरीर वाले (राजाओं व बादशाहों के अग रक्षकों को सिक्के या इक्के कहते हैं) थे। जिनका युद्ध-मार्ग पर चल पड़ना बिना नियम के ही होता था। युद्ध में उनकी अगम्य गति थी। वे हक और हलाल के परीक्षक थे, वे अपने स्वामी की तृतीय देव (रुद्र रूप धारण कर) के समान सेवा करते थे। वे दोनों निडर वीर शत्रु-समूह को भुज-पाश में पकड लेते थे, स्वामी धर्म में लीन रहना ही उनका रास्ता था। पगुराज की लज्जा और अदब के वे सुरक्षक थे, पगुराज के दल मे वे सूर्य ग्रह से भासित होते थे।

करिय कृपा पहुपग, सहस पचह दिय मीरह।
कुल विख्त जुध जुत्त, लहइ वर लज्जि अभीरह॥

स्याम चमर पक्खर सु, स्याम गज-गाह सु नेतह ।
झडे स्याम सु माम, पच्छ पय पुलै न खेतह ॥
अग्या सु मंगि पहुपग पहि, आए पीर पठान पनि ।
आदित्त जुद्ध हरि उग्गमनि, आए आतुर सज्जि अनि ॥५७७॥

शब्दार्थः—विखत्त=विख्यात । जुध-जुत्त=युद्ध में भिड़पड़ने के कारण । अमीरह=अमीर, नि.शंक । गजगाह=वन सुरभि के पूछ के बने हुए चामर जो घोडे के जिनके दोनों ओर डाले जाते हैं । सु नेतह=युद्ध का श्रेष्ठ नेतृत्व करने वाले । पच्छ-पय-पुलैन=पीछे पैर नहीं देने वाले । खेतह=रण क्षेत्र मे । पनि=पने में । अनि=सेना ।

अर्थः— उनको पंगुराज ने कृपा कर पाच सहस्र मीर साथ में दिये । उन मीरों का कुल युद्ध के कारण विख्यात था, वे श्रेष्ठ वीर निर्भीक और लज्जावान थे । जिनके चामर, घोड़ों की पाखरें, गजगाह (घोड़ों की पीठ से दोनों ओर लटकते हुए चामर) रासें और झडे तथा घोड़ों के सूम (खुर) कृष्ण रग के थे । वे मीर श्रेष्ठ नैतृत्व करने वाले और रण क्षैत्र में पीछे गैर देने वाले नहीं थे । वे पंगुराज से आज्ञा लेकर पीर पने और पठान पने के आवेश में आ सूर्योदय के समय ही रविवार के युद्ध में शीघ्रता पूर्वक अपनी सेना सजा कर सम्मिलित होने के लिये उपस्थित हुए ।

दोहा

मग्यौ आइस नमि सिर, कहँ पंग करि आन ।
जीय सु छडै खत्त पहु, गहो गहो चहुवान ॥५७८॥

शब्दार्थः—आइस=आदेश । करि-आन=दुहाई देकर । जीय=जीवित । छडै=छोड़ कर । खत्त=क्षैत्र । पहु=राजा ।

अर्थः—उन वीरों ने सिर नवा कर पगुराज से आज्ञा प्राप्त की और पगुराज की दुहाई दे, अपने साथियों से कहने लगे कि चाहुवान राजा रण-क्षैत्र छोड कर जा रहा है । इसे पकड़ लो, यह युद्ध से जाने न पावे ।

कवित्त

करि जुहारु नरस्यघु, नयौ चहुआन पहिल्लौ ।
धरी अनी सावरी, लख्ख सों भिर्‌यौ इकल्लौ ॥
अगम कहायो फिरै, धरणि खुर सों खुर खुन्दइ ।
एक लख्ख सौं भिरइ, एक लख्खह रन रुन्धइ ॥

तिलु तिलु ह्वै टुट्यौ नहिं मुर्यउ, जै जै जै आगास भौ ।
इम जपै चंद वरद्दिया, च्यारि कोस चहुआन गौ ॥५७९॥

शब्दार्थ:—जुहारु=नमस्कार । नर स्यंघ=नृसिंह । नयो=सिर नमाया । चहुआन-पहार्यो=चाहुवान राजा के पक्ष में । करी=वरण की, काबू में की । सावरी=साव, समस्त । अगम=दुर्गम । दल्ह=खूंद दी, कुचल दी । टुट्यौ=टूट पड़ा, कट पड़ा । मुर्यउ=मुड़ा, पीछे नहीं हटा । आगास=आकाश । भौ=हुआ । गौ=गया ।

अर्थ:—मीरों सहित उन दो सिक्कों (बली-अली) को बढ़ते हुए देख कर नृसिंह नामक चाहुवान पृथ्वीराज को सिर नँवा आगे बढ़ा । उस बलवान ने समस्त शत्रु-सेना को वश में (काबू मे) किया और लाखों से वह अकेला भिड़ पड़ा । रण स्थल मे वह वीर भयावना कहा गया । उसने अपने घोड़े के पदाघात से पृथ्वी कुचल दी । वह जिस प्रकार एक लक्ष वीरों से भिड़ता था उसी प्रकार दूसरी ओर एक लक्ष वीरों को रोक लेता था, ऐसा वह पराक्रमी वीर था । विपक्षियों से वह युद्ध करता हुआ कटकर मरा गया, किन्तु पीछे नहीं हटा । उसकी मृत्यु पर आकाश मण्डल मे "जय जय" की ध्वनि हुई । चंद बरदाई कहता है—इस वीर नृसिंह के धराशायी होने तक पृथ्वीराज दिल्ली की ओर चार कोस आगे बढ़ गया ।

दोहा

परत धरनि नरसिंघ कहुं, रुकिग पगु दल सव्व ।
मनहु जुद्ध जुग्गिनि पुरह, मह मुक्यौ तिन गव्व ॥५८०॥

शब्दार्थ:—कहुं=के । सव्व=सब । जुग्गिनि पुरह—दिल्लीश्वर । मुक्यौ=छोड़ दिया । गव्व=गर्व ।

अर्थ:—वीर नरसिंघ के धराशाई होते ही सामन्तों मे जोश भर गया जिससे पंगुराज की सेना आगे नहीं बढ़ सकी, मानों पंगुराज ने दिल्लीश्वर से युद्ध कर अपने गर्व को मुक्त कर दिया (मानो वह गर्व की मादकता से छुटकारा पा गया हो) ।

पुणि पृथीराजह अग्गि दल, घर रट्ठौर नरेस ।
सिर सरोज चहुआन कै, भ्रमर सस्त्र सम भेस ॥५८१॥

शब्दार्थः—पुणि=पुनः । अच्छि=इच्छि, इच्छा की । त्र=जल । सरोज=कमल । भवर=भ्रँमर । भेस=तरह ।

अर्थः—इसके पश्चात् पुन राष्ट्रवर राज के बल को प्राप्त कर शत्रु सेना ने पृथ्वीराज को पकड़ने की इच्छा की। उस समय पृथ्वीराज के कमल रूपी सिर के चारों ओर भ्रँमरवत् शस्त्र भ्रमने (घूमने) लगे।

कवित्त

भौ आइसु प्रथिराज, कनकु नायौ बडगुज्जर ।
हम तुम दुस्सह मिलनु, स्वामि हुज्जैव अप्पु घर ॥
हौं रवि मडलु भिद्दि, जीव लगि सत्तु न छडौं ।
खड खंड करि रूड, मुंडु हर हार सु मडौं ॥
इन वंस भग्गि जानै न कौ, हौं पति पंक अलुभझयौ ।
इमि जपै चदु वरद्दिया, कोस खट्ट चहुआन गौ ॥५८१॥

शब्दार्थः—आइसु=आदेश । दुस्सह=दुर्लभ । हुज्जेव=जाइये । अप्पु=आप । भिद्दि=भेद कर । सतु=सत्य । मडौं=मडन कर दूंगा, शोभा बढा दूंगा । इन-वंस=इस वंश में । कौ=कोई भी । पति=लज्जा । पंक=कीचड़, दल दल । अलुभझयौ=उलझा हुआ । खट्ट=छः ।

अर्थः—तब पृथ्वीराज की आज्ञा पाकर कनकराय बडगुज्जर ने राजा को प्रणाम कर कहा-हे स्वामी! हमारा और आपका मिलना अब दुर्लभ है। आप अब निश्चिन्त हो घर जाइये। जब तक मैं जीवित रहूँगा तब तक सत्य का पालन करता रहूंगा और सूर्य मण्डल से आगे स्थान प्राप्त करूँगा। विपक्षियों के रूण्डों को खण्ड र कर उनके मुण्डों से शिव की माला की शोभा बढ़ा दूँगा। मेरे इस वंश मे कोई भी कभी युद्ध स्थल से नहीं भागा। इसीलिये मैं इस लोक-लज्जा रूपी पंक मे उलझा हुआ युद्ध के द्वारा ही मुक्त हो सकूँगा। चंद वरदाई कहता है-इस बडगुज्जर वीर के डटकर युद्ध करते रहने तक चाहुवान नरेश दिल्ली की ओर छः कोस आगे बढ गया।

सुअन-धाह जैचंद. नाम वीरम वीर वर ।
गरुअ लाज गुर-भार, जुद्ध जुति जान ग्यान गुर ॥

बधव सम जैचद, प्रीति लिखवै प्रेम गुन ।
अगि आदर न्रप करै, गात उत्तग अग रन ॥
सहसत्त सत्त सेना ससत, बरन रत्त बाना धरै ।
जहँ जहँ सु राज काजह समथ, तहँ तहँ परि अग्गे लरै ॥५८३॥

शब्दार्थः—सुअन-धाइ=धात्रृ सुत । गुर-भार=विशेष राज्य भार । जुति=युक्ति । लिखवै=दिखाई देती । अगि-आदर=प्रथम सम्मान, अधिक आदर । सहसत्त=सहस्र । सत्त=सात । ससत=सशस्त्र । रत्त=रक्त, अरुण । बाना= साज । परि=पर ।

अर्थः- इधर जयचद का धात्रृ सुत वीरम-वीर आगे आया जिसकी लज्जा गौरव युक्त थी और राज्य विषयक भार जिसके स्कधों पर था और जो युद्ध की युक्ति का विशेष ज्ञाता था उसके प्रेम और गुणों के कारण जयचद उसे भाई तुल्य समझता था और वह सप्रेम उसका अधिक आदर करता था । वह वीर उत्तग काय और युद्ध स्थल का मुख्य अग था । उसके अधिकार मे रक्त वर्ण का बाना धारण किये हुए सशस्त्र सात हजार योद्धा थे । जहाँ राजा द्वारा युद्ध छिडता था वहाँ वह सामर्थ्यवान अपने साथियों सहित आगे बढ़ कर लड़ता था ।

परे मीर दिक्खे उभै, दिय अग्या तमि पग ।
गहौ जाइ चहुआन कौं, हनौ सुभर सब जग ॥५८४॥

शब्दार्थः—अग्या=आज्ञा । तमि=तमोगुण में आकर, क्रोध करके । हनौं=मार दो ।

अर्थः—जब (बड़गुज्जर द्वारा) दोनों मीरों (मिरजों) को युद्ध मे पडा हुआ देखा तो पगुराज ने क्रोध मे आकर (वीरम वीर को) आज्ञा दी कि तुम जाकर चाहुवान को पकड़ो और उसके सामन्तों को मार डालो ।

बड हथ्थह बड गुज्जरह, जुझिझ गयो बैकुठ ।
भीर सघन सामित परन चव निद्दुर अरि दिट्ठ ॥५८५॥

शब्दार्थः-बडहथ्थह=लम्बे हाथों वाला । जुझिझ=जूझ कर । भीर=आपत्ति । सघन=गहरी, भारी । सामित=स्वामी (पृथ्वीराज) । निद्दुर=निठुरराय ।

अर्थः—जब लम्बे हाथों वाला कनकराय बड गुज्जर जयचद के धायभाई के साथ युद्ध मे भली प्रकार जूझ कर वैकुण्ठ को सिधारा तब स्वामी पृथ्वीराज पर भारी

आपत्ति आई देख कमधज वीर निड्डुरराय ने आंखे उठाकर शत्रुओं की ओर देखा।

परयौ खेत बड़गुज्जरह, अप्प पग दल हक्कि।
तम्मि सनमुख नेन करि, दिय अज्ञा तन तक्कि ॥५८६॥

शब्दार्थः—अप्प=स्वयम्। हक्कि=बढाया, संचालन किया। तम्मि=तमोगुण में आकर। तन=तन-कर। तक्कि=देखते हुए।

अर्थः—जब रण क्षैत्र मे बडगुज्जर (कनकराय) धराशाई हो गया तब पगुराज ने विपक्षी सेना की ओर तमोगुण मे आ, तन कर देखते हुए अपनी सेना को बढ़ने का आदेश दे स्वय ने उसका सचालन किया।

समर भमर निड्डुर परे, जिते पग दल पूर।
सस्त्र सलित सह सू ति लिय, कर कमधज्जी क्रूर ॥५८७॥

शब्दार्थः—भमर=भ्रामरी, जलचक्र। जिते=जितनी भी। पूर=पुर गये, समा गये, डूब गये। सलित=सरिता। सू ति लिय=खींच लिए। कमधज्जी=कमधज के, निड्डुर के।

अर्थः—उस समय (पृथ्वीराज के सामन्त) कमधज निड्डुरराय के क्रूर हाथों में रहने वाले शस्त्रों ने सरिता का रूप धारण कर पंगुराज की जितनी सेना थी उसको अपने प्रवाह में खींच लिया (रौंध लिया) और वह वार निड्डुर स्वयम् भ्रामरी (जलचक्र) स्वरूप होकर उसे अपने मे समाविष्ट कर लिया (डुबो दिया, नष्ट कर दिया)।

इक्क घरी उसरे उभय, अभय भयंकर भेख।
पुणि सज्जे साक्षग जनु, करणि कढी असि रेख ॥५८८॥

शब्दार्थः—उसरे=उठे, बरसाये, झड़ी की। भेख=स्वरूप। पुणि=फिर। साक्षग=साक्षात। करणि=किरणें, या—हाथों में। असि=तलवारे। रेख=रेखा।

अर्थः—तब पगुराज और निड्डुर का सामाना हुआ। वे दोनों निर्भय और भयानक वीर एक घडी तक एक दूसरे पर शस्त्र वर्षा करते रहे, बाद मे तलवारें निकालीं। उन तलवारों की चमचमाती हुई रेखाओं ने सूर्य-किरणों का आभास करा दिया। वे दोनों वीर ऐसे दिखाई दिये मानों किरणों का विस्तार करते हुए साक्षात दो सूर्य उदय हुए हों।

कवित्त

धर फुट्टै खुरतार, लार तुट्टै सिर उप्पर ।
तहँ नायौ रट्ठिवर, त्रिपति प्रथिराज स्वामि छर ॥
खग्गह सीसु हनंत, खग्ग खुप्परिय खनक्खन ।
श्रोनित बुंद भरत्ति, पक किद्धीय धरघ्घन ॥
विरचयौ लोह वरस्यघ सुअ, खंड खंड तनु खडयौ ।
निढ्ढुर निसंक झुम्भत रन, अट्ठ कोस नृप हिंडयौ ॥५८६

शब्दार्थः—खुरतार=खुरताल, नाल । लार=झाग, फेन । नायौ=उनया, उमड़ा । रट्ठिवर=राष्ट्रवर । छर=छड़ा कर, रवाना करके । पक-किद्धीय=पक युक्त कर दी । धरघ्घन=पृथ्वी को विशेष । विरचयौ-लोह=ललकार कर लोहा लिया । वरस्यघ-सुअ=वरसिंह का पुत्र । निढ्ढुर=निड्डुरराय । अट्ठ=आठ । हिंडयो=चलपड़ा, आगे बढ़ गया ।

अर्थः—अपने स्वामी पृथ्वीराज को निड्डुरराय ने दिल्ली की ओर आगे रवाना कर युद्ध करना शुरू किया । उस समय उसके घोडे के पदाघातों से पृथ्वी फटने लगी और उसके घोड़े के मुँह के झाग (फेन) शत्रुओं के सिर पर पडने लगे । वह वीर राष्ट्रवर शत्रुओं पर टूट पड़ा, उसकी तलवार शत्रुओं की खोपड़ी से टकरा कर झन-झनाने लगी; रक्त की बूंदें बरसाकर उसने पृथ्वी को विशेष पकित कर दिया । उस वरसिंह के पुत्र निड्डुर ने ललकार कर शत्रुओं से इस प्रकार लोहा लेते हुए अपने शरीर को भी खण्ड २ (टुकडे २) करा दिया । उस निर्भय वीर के युद्ध करने तक राजा पृथ्वीराज दिल्ली की ओर आगे आठ कोस बढ़ गया ।

अट्ठ कोस अंतरिय, पग सथ्थरिय परिय भर ।
परि निढ्ढुर पथ्थरिय, मस गजराज दंत धर ॥
हय हय हय उप्परह, धवल अयरह भिरत हुअ ।
ब्रह्म लोक सिव लोक, लोक ससि छुहि लोक धुअ ॥
रघरिय राइ आरिढ्ढि अरुण, तरुण अरुण मडन खिलिय ।
अट्ठाह कोस चहुआन पर, बहुरि पग पारस झिलिय ॥५६०॥

शब्दार्थः—अंतरिय=अन्तर्गत । सथ्थरिय=माथरें, लाशें । परि=उमड़ पड़ने पर । पथ्थरिय=प्रसर गई, बिछ गई, देर लग गया । मस=मांस । दंत=दाँत । हय हय=मार २ । हय उप्परह=घोड़े को बढ़ा

कर ही। धवल-धंतरह=धवल वृषभ का ऊर्ध्व घोष होने लगा। छंडि=पार करता हुआ। रंवरिय राइ= रंघड़ राज, बांका क्षत्रिय। आरिढ़ि=आकर बढ़ गया, मिल गया, पहुँच गया। अरुण-तरुण=नवीन सूर्य। अरुण-मंडल=सूर्य मंडल। खिलिय=विकास को प्राप्त हुआ, प्रकाश मान हुआ, तेज को फैलाया। अट्ठाह=आठ। पास=घेरा। झिलिय=झिलगया, छा गया।

अर्थः—वीर निड्डुर ने घमासान युद्ध किया जिसमे आठ कोस के अन्तर्गत पंगुराज के योद्धाओं की लाशें बिछ गई और रास्ते पर गज-आमिष तथा गज-दाँतों का ढेर लग गया। उस वीर के अश्व बढ़ाते ही युद्धस्थल में मार २ का तुमुल शब्द होने लगा। युद्ध में भिडने के साथ ही धवल-वृषभ (युद्ध भार को ढोने वाले) का भी ऊर्ध्व घोष हो गया। उस बांके क्षत्रिय के युद्ध में आ भिड़ने पर प्रातः कालीन अरुणिमा लिये हुए सूर्य के समान उसके रक्तरंजित शरीर को (घायल अवस्था में) देखकर ब्रह्मलोक, शिवलोक, चन्द्रलोक और ध्रुवलोक कम्पित होकर स्थान-च्युत हो गये (यह जानकर कि वह वीर मरने पर इन लोकों में नहीं आयगा), किन्तु सूर्य मंडल (यह जानकर कि वह अन्य लोकों को छोड़ कर इस लोक में आ जायगा) अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उस समय तक पृथ्वीराज आठ कोस पार कर गया था, फिर भी पंगुराज की सेना ने उसे घेर लिया।

झिलि पारस पहुपंग, रंग रंगह घन घेरिय।
घन निसान गय घट, ठनकि ठठनि वजि भेरिय॥
तल वितालं धर धरणि, गहन गहनह उच्चरयौ।
तब कन्हा चहुआन, छगन छंछट सभरयौ॥
पट्टन पवंग उड्डी उकसि, सु गुर सार भेरिय भरण।
छुट्टेति स्वामि ससारि हँसि, तजि धमारि वंछिय मरण॥५६१॥

शब्दार्थः—झिलि-पास=आसपास आकर। रंग-रंगह=धन्य है। गय-घट=गज घटायें। ठनकि-ठठनि=ठनठनाई। वितालं=वितल, पातालादि। धर-धरणि=धड़धड़ाये, कम्पायमान हो गये। गहन-गहनह=पकड़ो २। छगन=कन्ह चाहुवान का सेवक। छंछट=मक्ट, कष्ट प्रद, आपत्तिप्रद। सभरयौ= सुना। पवंग=घोड़ा। उड्डी= घोड़ा, जीनका फश। उकसि=कसाया। गुर=भारी। सार=लोहा,शस्त्र। भेरिय-भरण=भैरवी (देवी) को तृप्त करने। छुट्टेति=छूट पड़े, टूट पड़े। स्वामि-हसारि=स्वामी के हिसकों पर। धमारि=राग विशेष। वंछिय=चाहा।

अर्थ:—उस आसपास फैलती हुई पगु सेना को धन्य है जिसने पृथ्वीराज जैसे वीर को घेर लिया और उस समय बहुत से नक्कारों के साथ गज घन्टाएँ तथा भेरी का नाद होने लगा। पृथ्वी और पाताल कम्पित हो गये और पकड़ो २ की ध्वनि होने लगी। यह आपत्ति प्रद शोर कन्ह चाहुवान और उसके सेवक छगन ने सुना, तब कन्ह चाहुवान ने भारी शस्त्रों द्वारा भैरवी को तृप्त करने के लिये अपने पट्टन नामक घोडे के साज के कसे को दृढता से कमाया और वे राग रागादि भोग विलास को छोड़ मृत्यु निश्चित् समझ स्वामी के शत्रुओं की ओर हँसते हुए टूट पड़े।

छुट्टट छल रक्खनह, पवँग पट्टन प्रवेस किय।
तब लगि हय गय भर भरति, चहुआन चपि लिय॥
बलिय वीर बखरेत, खग्ग खोहिनि दल रुक्यौ।
तब लगि कन्ह पटनेस, झारि झझरि झर झुक्यौ॥
उच्चित्त सीस तस अमरह, समर देखि ससो पर्‌यौ।
निढ्ढुर निसंक उप्पर पहर, बहुरि पग पहु उत्तर्‌यौ॥५६७॥

शब्दार्थ—छछट=झपट। रक्खनह=रक्षा करने को। पवँग=प्लवग, घोड़ा। भरति=भिड़ने वाले। चहुवान=पृथ्वीराज। बखेत=कवच धारी, दिल्लीश्वर पृथ्वीराज। खोहिनि=अक्षौहिणी। पटनेस=पट्टन अश्व का सवार, या पटना का स्वामी, सेनापति। झारि-झझरि=खड्ग झड़ी करके झकझोड़ (हिला) दिया। झर=नमा दिया। झुक्यो=टेढा होकर। उच्चित्त-सीस=सिर को उठाता हुआ। तस=उस घायल निढ्ढुर का। अमरह=आकाश की ओर, आकाश को छूता हुआ। ससो-पर्‌यौ=संशय में पड़ गये, शंका में पड़ गये। निसंक=निशंक। पहर=प्रहर तक। उत्तर्‌यौ=उतर पड़ा।

अर्थ:—उस झपट और छल से रक्षा करने के लिये कन्ह के प्यारे अश्व पट्टन ने जब तक युद्धस्थल में प्रवेश किया तब तक भिडने वाले अश्वारोही, गजारोही, वीरों को अकेले वीर पृथ्वीराज ने अपनी खड्ग द्वारा दबा दिया। उस बलवान कवच धारी (दिल्लीश्वर) की खड्ग ने एक अक्षौहिणी सेना रोकली। इतने में पट्टन अश्व के स्वामी (सेनापति भी हो सकता है) वीर कन्ह ने भी टेढ़े होकर खड्ग झड़ी करते हुए शत्रु दल को झुका दिया। इतने में घायल वीर निढ्ढुर ने अपने सिर को ऊँचा कर के आकाश से लगा दिया। यह देख कर पंगुराज और उसके साथी शंका में पड़ गये और उस निःशंक वीर पर पंगुराज ससैन्य उतर आया तथा उसने घायलावस्था में एक प्रहर तक तलवार चलाई।

दोहा

परयौ खेत निठ्ठर सुभर, दिक्खि दुहूँ दल सथ्थ ।
कटि पट छोरि जैचन्द पहु, ढंक्यौ अप्पुन हथ्थ ॥५६३॥

शब्दार्थः—सथ्थ=साथ । कटिपट=दुपट्टा । छोरि=खोलकर । ढंक्यौ=ढँकदिया ।

अर्थः—इस प्रकार युद्ध करते हुए निड्डुरराय के धराशायी होने पर दोनों दलों के वीरों ने उस श्रेष्ठ योद्धा निड्डुरराय को एक साथ ही देखा। यह देख जयचंद ने अपने हाथों से अपनी कमर का दुपट्टा खोल उसे ढक दिया।

कवित्त

तूं कुल रक्खन केलि, बध बारुण बल बोहिथ ।
तें रख्यौ चहुआन, सामि सङ्कट सुभ सोहिथ ॥
तें आरस अलिअल उतग, वारधि वर वंध्यौ ।
जहँ जहँ हय भर भरँत, तहाँ फट्यौ सर सध्यौ ॥
रंडरी ढाल ढिल्लिय नयर, मरद मयन जुभयौ पुरिस ।
निद्दुर निसक उप्पर पहुर, बहुरि पग बुल्यौ सरिस ॥५६४॥

शब्दार्थः—बारुण=हाथी । बोहिथ=वहन करने वाला, थाह लेने वाला । सोहिथ=सुशोभित हो । आरस=आलस्य में ही, सहज ही या रस मे आकर, वीर रस में आकर । अलिअल=अलीखान । वरधि=वारिधि, समुद्र । वंध्यौ=बांध लिया, रोक लिया, पाज स्वरूप हो गया । हय-भर=अश्वारोही । भरँत=भिड़ने पर । फट्यौ=तितर बितर कर दिया । सर संध्यौ=सर संधान कर रंडरी=पीठ पर, पीठ पर, पक्ष पर । मयन=मृत्यु, मरने को । पुरिस=पुरुष । सरिस=सरस, श्रेष्ठ ।

अर्थः—हे प्यारे निड्डुर ! तू कुल-किशोर को रखने वाला था और हाथी रूपी तेरे बंधु जयचंद (अर्थात् निड्डुर भी जयचंद के वश में था) के बल की तू थाह लेने वाला था। अपने स्वामी पर संकट आने पर अच्छी तरह उसके साथ में सुशोभित हो तूने ही इस चौहुवान को रक्खा और आलस्य (सहज) में ही तू उत्तंग काय अलीखान जैसे बल-वारिधि को रोकने में पाज (तालाब की पाल) स्वरूप हो गया। जहाँ २ इस युद्ध मे अश्वारोही दल भिड़ा, वहाँ २ तूने शर-सन्धान कर उस दल को तितर बितर कर दिया। दिल्ली नगर के पक्ष पर रहने वाले हे ढाल स्वरूप मर्दाने वीर ! तू मरने के लिये ही जूझा था। इसप्रकार पंगु नरेश ने निःशंक वीर निद्दुर की मृत्यु पर दुःख प्रगट करते हुए उसकी एक प्रहर तक प्रशंसा की।

दोहा

सम रठयौरणि रट्ठिवरु, निढ्ढुर झुभिझग जाम ।
दिनयर दल पृथ्वीराज कौं, राहु पग भय ताम ॥५८२॥

शब्दार्थः—रठ्यौरणि=राष्ट्रवर से । रठ्ठिवरु=राष्ट्र वर । झुभिझग=जूझ पड़ा । जाम=जब । दिनयर दल=सूर्यवंशी सेना । ताम=तब ।

अर्थः—इस प्रकार राष्ट्रवर से राष्ट्रवर भिडे और जब एक प्रहर तक युद्ध कर निढ्ढुरराय धराशायी हुआ. तब पृथ्वीराज की सूर्यवंशी सेना (चाहुवानी सेना) के लिये उस समय पगुराज राहु स्वरूप बनगया ।

चपत अच्छरि रिंढ लगि, चखि अप्पुन तन दिख्ख ।
तन तुरग तिल तिल करण, भयौ कन्ह मन भिख्ख ॥५८३॥

शब्दार्थः—रिंढ=रीढ, पीठ पर, पीछे । चखि=चक्षु, नेत्रों से । दिख्ख=देखकर । करण=करने को । भिख्ख=भीषण ।

अर्थः—वीर कन्ह नरनाह ने अपने शरीर की ओर देखती हुई और (वरमाला पहनाने को) पीठ पर लगी हुई (पीछा करती हुई) अप्सराओं का देख कर उसने अपने और अपने अश्व के अंग को तिल-तिल करना निश्चय कर भीषण रूप धारण कर लिया ।

कवित्त

सुनहु वत्त बखरैत, लहु ओढो दल रुध्धौ
चिहुरि कोरि चपंत, अंत ओटह किम चुध्धौ ॥
पहु पट्टन पल्लानि, हटकि करि हनौ गयदह ।
सबर वीर मंघरउँ, मीर नह परै नरयदह ॥
रुक्यौ छुगन जैचद दलु, सिरु टुट्टै असि वरु कह्यौ ।
तब लगि सु तिहौ दलु रक्यौ, जब लगि कन्ह हैंवर चढ्यौ ॥५८४॥

शब्दार्थः—बखरैत=बख्तर धारी, पृथ्वीराज । चिहुरि-कोरि=चारों ओर से । चपत=दबाये गये । अंत=अतिम । ओटह=आड । हटकि करि=रोक कर । मीर=आपत्ति । दलु=दल, सेना । सिरु=शिर । असिरु=तलवार । हैंवर=घोड़ा ।

अर्थः—भीषण स्वरूप धारण कर कन्ह नरनाह ने कवचधारी वीर (पृथ्वीराज) से कहा-पंगुराज का आक्रमण आप पर हुआ है-इसलिये मैं आड़ देकर उसे रोकता हूँ। चारों ओर से आप दबाए गये हैं इसलिये आप इस अंतिम ओट (मेरी इस अंतिम सेवा) को मत चूकिये। मैं अपने प्यारे अश्व पट्टन को सुसज्जित (बढा) कर हाथियों को रोकता हुआ उनका नाश करुँगा और बलवान वीरों का संहार कर दूंगा, जिससे आप पर कोई आपति नहीं आ सकेगी। इस प्रकार कन्ह पृथ्वीराज को सबोधन कर रहा था, इतने में कन्ह के सेवक छगन ने जयचंद के दल को रोका और सिर कट जाने पर भी उस वीर के रुण्ड ने तलवार निकाली तथा जब तक कन्ह घोडे पर सवार होकर नहीं बढा तब तक वह रुण्ड शत्रु-दल को रोके रहा।

हय कट्टत भू भयौ, भये भू पग्ग न पलट्यौ।
पग्ग कट्टय कर चल्यौ, करहि सब सेन समिट्यौ॥
कर कट्टत सिर भिर्‌यौ, सिरह सनमुख होय फुट्यौ।
सिर फुट्टत धर धर्‌यौ, धरह तिल तिल होय तुट्यौ॥
धर तुट्टि फुट्टि कविचन्द कहि, रोम रोम विंध्यौ सरन।
सुर नरह नाग अस्तुति करहि, बलि-बलि बलि छगन मरन॥५६८॥

शब्दार्थः—भू-भयौ=पैदल ही पृथ्वी पर चल पड़ा। पग्ग=पैर, कदम। पलट्यौ=पलटा, लौटाया, पीछे को दिया। धर-धर्‌यौ=धड़ ने युद्ध भार ग्रहण किया। सरन=बाणों द्वारा। बलि-बलि= बलिहारी है।

अर्थः—छगन का अश्व कट कर पडने से वह पैदल ही जुट पड़ा और एक भी कदम पीछे नहीं दिया, पैर के कट जाने पर भी उसके हाथ चलकर सारी सेना को समाप्त कर दिया। हाथों के कट जाने पर उसका सिर उछल २ कर सामाना करता हुआ फूट गया, सिर के टुकडे २ हो जाने पर धड़ जुटने लगा और वह भी तिल २ होकर कट पडा। कविचन्द कहता है इस प्रकार उसका शरीर बाणों द्वारा रोम रोम से बिंध गया। यह देखकर उसकी प्रशंसा करते हुए बलैयां लेकर देवता, मनुष्य और नाग कहने लगे कि बलवान छगन का इस प्रकार युद्ध में मारा जाना धन्य है।

दोहा

चढ़त कन्ह सामंत हय, जय जय करहि सुदेव ।
मनहु कमल करिवर भ्रमर, कुहर पग दल सेय ॥५९९॥

शब्दार्थः—कमल = सिर, मस्तक । करिवर = हाथियों के । कुहर = अंधेरा ।

अर्थः— वीर कन्ह-नरनाह के, घोडे पर चढ़ते ही (बढ़ाते ही) आकाश से देवगण जय २ कार करने लगे । पंगु दल के हाथियों के सिर पर भ्रमरों का मँडराना ऐसा दीख पड़ता था मानों कन्ह का सामना करने पर पंगु-राज की सेना में अंधेरा छा गया हो ।

गाथा

समर सजे नरनाह, गज्जे वीरभद्र रुचि लाह ।
स्यंधू लाग उछाहं, पिखवै कंन्ह द्रवन जनु दाहं ॥६००॥

शब्दार्थः—नरनाह=नरनाह कन्ह । रुचि-लाह=इछित कार्य की उमंग में । स्यंधू-लाग=सिन्धू (वीर) राग गाया जाने लगा । उछाहं=उत्साहित हुआ । द्रुवन=शत्रु । दाह=दावग्नि ।

अर्थः—नरनाह कन्ह युद्ध में इस प्रकार तत्पर हुआ, जिस प्रकार वीरभद्र गण अपने इच्छित कार्य की पूर्ति के लिये गर्जता हो । उसी समय गायकों द्वारा वीर राग गाये जाने लगे, जिससे उत्साहित होता हुआ कन्ह ऐसा दिखाई दिया मानों शत्रुओं के लिये दावाग्नि प्रगट हुई हो ।

कवित्त

पट्टै छुट्टत कन्ह, धार धाराहर बज्ज्यौ ।
जनुकि मेघ मह्लिय, बीर बिज्जुलि गहि गज्ज्यौ ॥
हय गय नर टुट्टत, बिहर तुट्टिय तारायन ।
छुट्टिय खोहनि पग, राय खोनिय भारायन ॥
हल हलिय नाग नागिनि परत, नागिन सिर-बुट्यौ रुहिर ।
धावहि न मग स्यंगा-रमन, मननि सीस मुक्यौ सु धर ॥६०१॥

शब्दार्थः—पट्टै=चक्षु पट्टी । छुट्टत=खुलते ही । धार धाराहर=खड्ग धारा । बिहर=चल पड़े । तारायन=तारे । खोहनि=अक्षोहिणी सेना । खोनिय भारायन=पृथ्वी पर भार स्वरूप । नाग=शेष नाग । नागिनि परत=नागिनि स्वरूपा तलवार के प्रहार में । नागिन=नाग, हाथी, दिग्गज, दिगपाल । रुहिर=

रुधिर, रक्त । धावंहि-न-संग=साथ नहीं दिया । स्यंगा-रमन=शृंगधारियों से रमण करने वाला, वृषम, धर्म-वृषभ । मननि=मणियों । सीस=पर । मुक्यौ=छोड़ दिया ।

अर्थः—कन्ह की चक्षु-पट्टी खुलते ही उसके हाथों द्वारा खड्ग-धार इस प्रकार बजने लगी मानों बिजली को पकड़ कर मेघ-मण्डल गर्ज रहा हो । हाथी-घोड़े तथा वीरों के शव कट कट कर पड़ने लगे और तारागण टूट २ कर आकाश से चल पड़े । पृथ्वी पर भार स्वरूप पंगुराज की अक्षौहिणी सेना ने भी सामना किया, किन्तु कन्ह की नागिनी स्वरूप तलवार के प्रहार से शेष नाग हिलने लगा और भूमण्डल से रक्त प्रवाहित हो दिग्गजों (दिगपालों) के सिर पर बरसने लगा । धर्म-वृषभ ने भी उस समय शेष नाग का साथ नहीं दिया । उसने उस मणिधारी की मणियों के आधार पर ही पृथ्वी को छोड़ दिया ।

दोहा

अै-अै कन्ह निवर्ण कर, धर धर टुट्टिय धार ।
पहर एक पर-हथ्थरैं, सिर सिर वुट्टिय सार ॥६०२॥

शब्दार्थःअै-अै=अहो २। निवर्ण=भयानक, भयानक स्वरूप । धर-धर=प्रत्येक के रुण्ड पर । टुट्टिय=तोड़ दी । धार=खड्ग धारा को । पहर=प्रहर । पर-हथ्थरैं=हाथों में पड़ गया । वुट्टिय-सार=लोहा बरसाया, शस्त्र झड़ी कर दी ।

अर्थः—अहा ! वीर कन्ह ने भयानक स्वरूप धारण कर विपक्षी के रुण्डों पर अपनी खड्ग की धार तोड़ दी और जो उसके हाथ पड़ गया उसके सिर पर एक प्रहर तक शस्त्र वर्षा की ।

कवित्त

तव सु कन्ह चहुवान, तुरिय पट्टनु पल्लान्यउ ।
हसि किनक्कि वर उठ्यो, मरनु अपनो पहिचान्यउ ॥
उहि कर असि वरु लयौ, गहिवि गज कुंभ उपट्टइ ।
वह मारइ लत्तानि, खुंदि अरि दंतनि कट्टइ ॥
वह नरु गिसकु हैवरु सु धनु, पिक्खहु चित्तकु चित्तयउ ।
वह मुंड माल हर सठयउ, वह रवि रथलै जुत्तयउ ॥६०३॥

शब्दार्थः—तव=तब, फिर या जिस समय । पल्लान्यउ=सजा बढाया । किनक्कि=किलकि, किलकारी कर । वर-उठ्यो=श्रेष्ठ ढग से उठा, उमड़ पड़ा । मरनु=मृत्यु । पहिचान्यउ=जानकर ।

उहि=उसने । असिवरु=श्रेष्ठ खड्ग । लग्गो=लिया, ग्रहण किया । उपट्टइ=उठाकर झपट कर, आघात किया । लतानि=लातें, पदाघात । खुदि=कुचल दिये । दतनि=दांतों से । कट्टइ=काटने लगा, नोंचने लगा । नरु=नरनाह कन्ह । णिसकु=निःशंक । हैवरु=घोड़ा । धनु=धन्य । पिक्खहु=देखो । बिषकु=हाल, घटना । वितयउ=समाप्त हो गये, मारे गये, । गग्गउ=गनादी । जुत्तयउ=जुत गया ।

अर्थः—कन्ह चाहुवान ने अपनी मृत्यु निश्चित समझ कर अपना पट्टन-अश्व बढ़ाया । हँसता हुआ ललकार कर वह विपक्षियों पर टूट पड़ा । उसने अपने हाथों में श्रेष्ठ खड्ग पकड़ा और हाथी के कुम्भस्थल पर आघात किया । उसके प्यारे अश्व पट्टन ने पदाघातों द्वारा शत्रुओं को कुचल दिया तथा दांतों से नोंचना शुरू किया । धन्य है उस निःशंक नरनाह कन्ह और उसके घोड़े को जो रणकुशल थे । वे उस युद्ध में मारे गये । कन्ह ने अपना मुण्ड शिव की माला के लिये समर्पित किया और उसका अश्व मर कर सूर्य-रथ से जा जुता ।

दोहा

निकस्यौ नृप प्रथिराज पहु, रह्यौ कन्ह दल रोकि ।
हय हय हय म्रतलोक हुअ, जय जय चवि सुरलोक ॥६०४॥

शब्दार्थः—निकस्यौ=निकल गया । पहु=राजा (जयचंद) । हय हय हय=मार २ उच्चारण । चवि=कहा, उच्चारण किया ।

अर्थः—नरनाह कन्ह पंगुदल को रोकता रहा । इतने में पृथ्वीराज आगे बढ़ गया । उस समय मृत्युलोक में मार २ और स्वर्गलोक में जय २ शब्दोच्चारण होने लगा ।

लरत सीस तुट्यौ सुहर, धर उठ्यौ करि मार ।
घरी तीन लू सीस बिन, कट्टे तीस हजार ॥६०५॥

शब्दार्थः—सुहर=सुभट, भट्ट, सामंत, वीर । धर=धड़ । करि मार=मार २ शब्दोच्चारण । लू=लों, तक । तीस हजार=तीस हजार सैनिक ।

अर्थः—युद्ध करते हुए वीर नरनाह कन्ह का मस्तक कट गया, फिर भी उसका रुण्ड मार २ शब्दोच्चारण करता हुआ खड़ा होगया और तीन घड़ी तक युद्ध कर तीस हजार सैनिकों को खण्ड २ कर दिया ।

जिम जिम तन जरजर्‌यौ, बिहसि वर धायौ तिम तिम ।
जिम जिम स्रत रुलत, लख्य दल तिन गनि तिम तिम ॥

जिम जिम करि वर परत, उठत जिम सीस सहित वर ।
जिम जिम रुधिर झरंत, सघन घन वरखत सद्धर ।।
जिम जिम सु खग्ग खव्यौ उरह, तिम तिम सुर नर मुनि मन्यौ ।
जिम जिम सु घाय धरनी पर्यौ, तिम तिम शंकर सिर धुन्यौ ।।६०६।।

शब्दार्थः—जरजर्यौ=जर्जरित हुआ । विहसि==हँसता हुआ । अत=आँतें । रुलत=बिखरीं । तिन गनि=तृण तुल्य समझा । करि वर=श्रेष्ठ हाथी । सद्धर=धारा वाहिक (या पृथ्वी पर) । खव्यौ उरह=हृदय में खटकने लगा । मन्यौं=वीर माना । घाय=घायल होकर ।

अर्थः—जैसे २ उसका शरीर जर्जर (अस्त व्यस्त) होता गया, वैसे २ वह हँसता हुआ आगे बढता गया । जैसे २ उसकी आँते विखरती गई, वैसे २ ही वह लाखों की सख्या वाली सेना को तृण तुल्य समझने लगा । जैसे २ उसके द्वारा श्रेष्ठ हाथी धराशायी होते गये, वैसे ही वे मस्तक उठा कर पुन' खडे होते गये । उनसे रक्त प्रवाहित होता हुआ ऐसा दिखाई दिया मानों सघन बादल एक धार (निरन्तर) कर बरस रहे हो । जैसे २ उसका खडग प्रहार शत्रुओं के हृदय मे खटकने लगा, वैसे ही सुर, नर और मुनियों ने उसे श्रेष्ठ वीर माना । जैसे २ वह घायल होता हुआ (कट कर) धराशायी हुआ वैसे ही शिव अपना मस्तक धुनने लगे (यह जानकर कि वैसा वीर अब पृथ्वी पर नहीं रहा) ।

गह गह गह उच्चार, देव देवासुर भज्जिय ।
रह रह रह उच्चार, नाग नागिनि मन लज्जिय ।।
वह वह वह उच्चार, सुरह असुरन धुनि सज्जिय ।
त्रह त्रह त्रह तामत, तुट्टि पायन परि तज्जिय ।।
मुह मुह सु मुच्छ कर कन्ह तुअ, चमर छत्र पहु पंग लिय ।
सिर बध कध असिवर ढरिग, पहर एक पट्टन न दिय ।।६०७।।

शब्दार्थः—गह गह गह=पकडो २, या गम्भीर । देव=देवस्वरूपी कन्ह ने । भज्जिय=भाग गये । रह रह रह=ठहरो ठहरो । वह वह वह=वाह २, धन्य है २ । तामंत=थकित हो कर, या थाम टेकर । तुट्टि-पायन=टूट पड़ने पर । सिर-बध-कध=सिर को कंधे से बांध (लगा) कर (मुहावरे के रूप में कहा जाता है कि इसने तो माथे को काट कर पहले से ही कंधे से बांध रक्खा है) । पट्टन-न-दियं=पटने नहीं दो ।

अमिय सद्द आयास, लयौ अच्छरिय उछंगह ।
तहँ सु भई परतखिख अरित अरि कहत कहगह ॥
अल्हन कुमार विभ्रम सुभ्यौ, रण कि विमानह मनु मन्यौ ।
तामियहि तिलोयन तिमहि तिम, तिम तिम सकर सिर धुन्यौ ॥६११॥

शब्दार्थः—सुमिरी=स्मरण किया । महमाइ=महामाई, देवी । म्यन्नौ=दिया, की । हुकारौ=हुकार । अमिय-सद्द=अमृत तुल्य मधुर स्वर । आयास=आकाश । लयौ=लिया । उछगह=अक में । तहँ-सु-भई=वहाँ पर यह आश्चर्य प्रद घटना घटी । परतखिख=प्रत्यक्ष । अरित-अरि=अड़ने वाला शत्रु । कहगह=कहाँ गया । मनु-मन्यौ=मन में माना, मन में सोचा । तामियहि-तिलोयन-त्रिलोचन तुल्य उस वीर के क्रोध करने पर । तिम-तिम=त्यों ही ।

अर्थः—उस अल्हन वीर का सिर कट गया और वह हाथियों द्वारा घेर लिया गया, उसके रुण्ड ने हाथ में कटार पकड़ी और अपनी इष्ट देवी महामाया का स्मरण किया । देवी ने अदृश्य हुँकार की और आकाश से अमृत के समान मधुर स्वर करती हुई अप्सरा ने भी उसे अंक में ले लिया । जिससे वहाँ आश्चर्य प्रद घटना घटी । लड़ने वाले दोनों और के वीर उस वीर के यकायक अदृश्य हो जाने से मन ही मन सोचने लगे कि वह वीर कहाँ गया ? रणस्थल में ही है या विमान मे जा बैठा । उसको इस युद्ध में शिव ने अपने तृतीय नैत्र के समान ज्यों ही क्रोध मे देखा त्यों ही वे भी उसकी वीरता पर प्रसन्न हो अपना सिर धुनने लगे ।

दोहा

धुनत ईस सिर अल्हनहि, धनि धनि कहि प्रथिराज ।
सुनि कुप्यौ अचलेस भर, मुहि बरु दिख्खिव राज ॥६१२॥

शब्दार्थः—धनि-धनि=धन्य है २ । कुप्यौ=क्रोध में आगया । बरु=बल । दिख्खिव=देखिये ।

अर्थः—अल्हन की वीरता पर शिव को सिर धुनता देख कर पृथ्वीराज ने धन्य २ कहा । इधर श्रेष्ठ वीर अचलेश (खींची चाहुवान) क्रोध में आगया और कहने लगा-हे राजन ! अब मेरा बल भी देखिये ।

सघन घाय बिद्धयो सु तन, धरणि ढर्यौ परिहार ।
परे बहुत्तरि सुभर रन, सद्धे अल्हन सार ॥६१३॥

शब्दार्थः—परिहार=प्रतिहार क्षत्रिय (अल्हन)। बहुत्तरी=बहत्तर । सद्धे=साधे, अजमाये । सार=लोहा, शस्त्र ।

अर्थः—वीर अल्हन प्रतिहार के शस्त्र आजमाने पर बहत्तर विपक्षी वीर धराशाई हुए, पश्चात गहरे घावों से छक कर वह वीर धराशाई होगया ।

इह चरित्र नट्टिय सु चिर, करिय राज परिहार ।
अद्भुत क्रम दिक्खो नृपति, कर्‌यौ खेत सर सार ॥६१४॥

शब्दार्थः—नट्टिय=नाट्य । चिर=बहुत । कर्‌यौ—खेत=रण क्षेत्र को बना दिया (पाट दिया)। सर=सिर, मुण्ड । सार=लोहा ।

अर्थः—उस प्रतिहार राजा ने बहुत समय तक इस युद्ध के चरित्र का नाट्य किया और उस ने सारा रणक्षेत्र नर मुण्डो और लोहे से पाट (बिछा) दिया । राजा पृथ्वीराज ने उसके ऐसे अद्भुत क्षत्रिय कर्म को देखा ।

पर्‌यौ अल्ह सामत वर, गाहि पग दल सव्व ।
सुभर रज्जि कमधज्ज दल, सु मन राज गुर गव्व ॥६१५॥

शब्दार्थः—गाहि=कुचल दिया । सव्व=सब, सारी । गव्व=गर्व ।

अर्थः—वह सामन्त अल्हन वीर कमधज्ज की सेना के मध्य भाग मे सुशोभित हो सारी सेना को कुचल कर धाराशायी हुआ जिससे पृथ्वीराज को भारी गर्व हो आया ।

कवित्त

करिवि पैज अचलेम, सुछ्छल चहुआन खग्ग गहि ।
अरि दल बल सघर्‌यौ, पूरि धर भरति रुहिर दहि ॥
मच्छ ति हैवर तिरहि, कच्छ गज्ज कुंभ विराजहि ।
उअर हंस उड़ि चलहि, हंस मुख कमल तिराजहि ॥
चवसट्ठि सद जै जैं करहि, छत्र पत्ति परि मचरिग ।
वोहिथ्थ वीरु वाहर तनौ, ढिल्लीपति चढ़ि तरिग ॥६१६॥

शब्दार्थः—करिवि=की । पैज=प्रतिज्ञा । सुछल=स्वच्छंद । भरति=भरदिया । रुहिर=रुधिर । दहि=दह, नदी के बीच का गहरा खड्डा । ति=वे । हैवर=घोड़े । तिरहि=तैरते । कुंभ=कुंभस्थल । उअर—हंस=

हृदय से प्राण पखेरू का उड़ना ही हस । हस मुख=हँस मुख । राजहि=शोभा पाते । चवसठ्ठि=चौसठ ही योगिनियाँ । बोहिथ्थ=नौका । बाहर-तनौ=बाहरराय का पुत्र । चढ्ढिउ=चढ़कर, सहारा लेकर ।तरिग=पार कर गया ।

अर्थः—अचलेश चाहुवान ने स्वच्छन्दता पूर्वक प्रतिज्ञा कर तलवार पकड़ी और शत्रुओं के दल बल का सहार कर युद्ध भूमि को रक्त से परि पूरित कर उसे महानद (नदियों के बीच २ में स्वाभाविक गहराई होती है जिसे "दह" कहते हैं) का रूप दे दिया । उसमें घोडे इस तरह तैर रहे थे मानों मत्स्य समूह तैर रहा हो । गजों के कुम्भस्थल कच्छप की भाति शोभा दे रहे थे । हृदय से प्राण पक्षी का निकलना ही मानों हसों का उड़ना था । वीरों के हँसते हुए मुख ही कमल की भाति शोभा पाते थे । ऐसा घमासान युद्ध देख चौसठ ही योगिनियाँ वीर अचलेश की जय २ कार करने लगी । उस वीर द्वारा कितने ही छत्रधारी वीर धराशायी होकर ससार से चल बसे । उस महा-युद्ध रूपी महा नदी में वीर बाहर का पुत्र अचलेश नौका रूप बन गया, जिसके सहारे दिल्लीश्वर उसको पार कर सका ।

दोहा

सु तन घाइ बिढ्यो मरन, ढरयौ अचल चहुआन ।
भयौ मोह कमधज्ज भर, परे पच से थान ॥६१७॥

शब्दार्थः—सु तन=उसका शरीर । ढरयौ=धराशाई हुआ । मोह=ममत्व । थान=रण क्षेत्र में ।

अर्थः—उस अचल चाहुवान द्वारा कमधजी सेना के पाच सौ योद्धा रण क्षेत्र मे धराशायी होगये । यह देख कर पगुराज मे ममत्व पैदा हो गया कि इतने योद्धा मारे गये । इधर वीर अचलेश के शरीर पर भी गहरे घाव लगे और वह धराशायी हुआ ।

अचल अचेत सु खेत हुअ, परिग पग बहु राइ ।
पट्टन छर अरु पट्ट छर, उठे विंझ विरुझाइ ॥६१८॥

शब्दार्थः—बहु राइ=बहुत मे राज पद धारी । पट्टन-छर=अनहलपुर पाटन का राजवशी छेला । [illegible]=अड़कर, भिड़कर । पट्ट-छर=वीर छेलाओं को पाटने के लिए । विंझ=विंझराज । [illegible]रुझाइ=उलझ पड़ा ।

अर्थः—पंगुराज के बहुत से राज पदधारी वीरों के धराशायी होने पर वीर अचलेश भी रणक्षेत्र में जब मूर्छित हो गया, तब पट्टन (अल्हन पुर) का राजवंशी "छेला" विभ्कराज भिड कर बहुत से वीर छेलाओं को पाटन के लिए खड़ा होकर उस युद्ध मे उलझ पडा।

परयौ अचल पिल्यौ अरिय, करिय कोप पहुपग।
अप्प बग्ग कढ्ढिय विरचि, हनू हनू चवि जग ॥६१६॥

शब्दार्थः—अप्प=अपने घोड़े की। वग्ग=बाग, रास। कढ्ढिय=उठाई। विरचि=ललकार कर। हनू-हनू=मार २। चवि=कहते हुए।

अर्थः—वीर अचलेश को पड़ा हुआ शत्रुओं ने देखा। उस समय पंगुराज ने क्रुद्ध हो अपने घोड़े की रास, मार मार शब्द कहते हुए युद्ध के लिये उठाई।

कवित्त

दल आवत पहुपग, दिखिव चहुआन सब्ब सजि।
वींभराज चालुक्क, दियौ आयेस अप्प गजि ॥
अहो वीर चालुक्क, सद्धि अनभग खग्ग धरि।
सनमुख सज्जि खल जूह, तास भर सुभर अत करि ॥
उभरयौ ब्रह्म चालुक्क तहँ, अहो राज प्रथिराज सुनि।
पथ्थरों धरणि घन सूर भर, करों पग दल दति रिनि ॥६२०॥

शब्दार्थः—आयेस=आदेश। गजि=गर्जना करके। सद्धि=सधा, वढा। अनभग=अभंग। खल-जूह=शत्रु समूह। तास=उनके। अंत-करि=अंत करदे। ब्रह्म चालुक्क=ब्रह्म-क्षत्रिय-चालुक्य। पथ्थरों=बिछा दूंगा। दल-दति-रिनि=हाथियों का दलन कर ऋणी कर दूंगा।

अर्थः—पंगुराज के दल को इस प्रकार झपट कर आता हुआ देखकर पृथ्वीराज साथियों सहित युद्धार्थ तत्पर हुआ और गर्ज कर विंभराज चालुक्य को आज्ञा दी कि-हे धैर्यवान्! तू अभग खड्ग धारण कर इन आते हुए शत्रुओं की ओर बढ और जो शत्रु समूह सामना कर रहा है, उनके बहादुर वीरों का अत कर दे। तब वह ब्रह्म-क्षत्रिय-चालुक्य कहने लगा—हे राजा पृथ्वीराज! मैं इन बहुत से वीर विपक्षियों को अकेला ही पृथ्वी पर बिछा दूंगा और पंगुराज बहुत से हाथियों का दलन उसको ऋणी कर दूंगा (जब पंगुराज हमारी सेना के उतने ही हाथियों को मार सकेगा तभी वह इस ऋण से उऋण होगा)।

दोहा

सहस इक्क परि पग दल, धणि-धणि जपै धीर ।
जै जै सुर बद्दे सयल, धनि धनि विंझा बीर ॥६२१॥

शब्दार्थः—धणि-धणि=धन्य है, धन्य है । जपै=कहा । धीर=धैर्यवानों ने । बद्दे=कहा । सयल=सकल, सब ।

अर्थः—उस वींझराज द्वारा पगुराज के एक सहस्र वीर धराशायी हो जाने पर धैर्यवान वीरों ने उसकी प्रशंसा में धन्य धन्य शब्द कहे और सब देवताओं ने धन्य वीर वींझा कह कर उसकी जय २ कार की ।

कवित्त

कलन कल्यौ असियन मिल्यौ, भरहरि नहिं भग्गौ ।
अजसु न लयौ जस हीनु न भयौ, अमगह नहँ लग्गौ ॥
पहुन लयौ जियतु न गयौ, अप जम नहँ सुनयौ ।
अवरणि जिमि दवरि न रह्यौ, गाहत न गहयौ ॥
चलिन गयऊ मंदिर दिस्सह मरण जानि झुम्यौ अनी ।
विंझ दिय दागु तिलकह मिसह, वह-वह-वह भग्गुल धनी ॥६२२॥

शब्दार्थः—कलन=फँसाने को । कल्यौ=फँसा । असियन मिल्यौ=तलवारों से तलवार मिलाई । भग्गौ=भागा । लयौ=लिया । अमगह=कुमार्ग को । पहुन लयौ=राजा को बचा लिया । अप-जम-नहँ-सुनयौ=यमराज को अर्पित हुआ नहीं सुना । अवरणि=औरों की । दवरि-न-रह्यौ=दब कर नहीं रहा । गाहत=कुचलता हुआ । गहयौ=कुचला गया । मन्दिर-दिसह=घर की ओर । मरण-जानि=मृत्यु को जानता हुआ । वह-वह-वह=वाह वाह, धन्य है २ । भग्गुल=स्थान विशेष । धनी=स्वामी ।

अर्थः—फँसने और फसाने के लिये तलवारों से तलवरें मिलाईं । वह उस युद्ध से डर कर नहीं भागा उसने अपयश नहीं लिया और न यश हीन ही हुआ, न कुमार्ग ही ग्रहण किया । राजा को बचा लिया, किन्तु युद्ध स्थल से वह जीवित नहीं जासका और यमराज के भेंट होगया हो यह भी नहीं सुना गया (मोक्ष को प्राप्त किया) । औरों के समान दब कर भी वह न रहा । कुचलते हुए भी वह कुचला नहीं गया । मृत्यु निश्चित जानकर भी वह विपक्षी सेना से भिड़ गया और घर का

रास्ता नहीं लिया, केवल तिलक ही उसके शरीर में दाग लगा कहा जा सकता है, अन्यथा वह निष्कलंक ही था। धन्य है उस भगुल पति विंझराज चालुक्य को।

दोहा

परत देखि चालुक धर, करिग पग वल कूह।
जिमि सु देव इंदह परसि, रहे विंटि अरि जूह ॥६२३॥

शब्दार्थ:—कूह=किलकारी, शोरगुल। इन्दह=इन्द्र। परसि=परसने को, पकड़ने को। विंटि=घेंटना, घेरना। अरि-जूह=देवताओं के शत्रुओं (दानवों) का समूह।

अर्थ:— विंझराज चालुक्य के धराशायी होने पर पंगुसेना ने इस प्रकार शोरगुल मचाया जैसे देवता और इन्द्र को स्पर्श करने के लिये (पकड़ने के लिये) उनके शत्रुओं (दानवगण) ने घेरा डाला हो।

कवित्त

परत विंझ चालुक्क, गहकि रा पंग सेन सव।
जट्ट राउ सारँग-देउ, आयौ सु तप्पि तव ॥
सहस तीनि असवार, धार धारार समथ्थ।
त्रिमल नेह स्वामित्त, सिंघ रन वहै सु हथ्थ ॥
नाइयौ सीस नमि पग कह, दइय सीख पहु उच कर।
उप्पारि वग्ग निज सेन सम, भाल प्रमसिय अप्प भर ॥६२४॥

शब्दार्थ:—गहकि=गर्जना की। सव=सब। जट्ट राउ=जट्ट राज (जट्ट क्षत्रिय)। तप्पि=तपता हुआ, तेज प्रसारता हुआ। तव=तब। धारार=खड्ग। सिंघ=सिंह। वहै=चलाता। सीख=विदा। उचकर=हाथ उठा कर। उप्पारि=उठाई। वग्ग=घोड़े की रास। भाल=भाग्य। प्रमसिय=सराहा। अप्प-भर=स्वय युद्ध में भिड़ कर।

अर्थ:—विंझराज चालुक्य के पडने पर पंगुराज की समस्त सेना गर्ज उठी। उसी समय तेजस्वी जट्टराज सारंग देव तीन सहस्र अश्वारोहियों सहित आ पहुँचा। वह वीर खड्ग धारण करने में सामर्थ्यवान् था और स्वामी धर्म के लिये उसका स्नेह निर्मल था। युद्ध में जिसके हाथ सिंह तुल्य चलते थे। उसने आकर पंगुराज के सामने सिर नँवाया। पँगुराज ने ऊँचा हाथ उठाकर उसे युद्धार्थ विदा किया। उसने अपनी सेना सहित घोड़ों की रासें उठाई और स्वय ने युद्ध में भिड़कर अपना भाग्य सराहा।

दोहा

फिर्‌यौ सलख पम्मार तब, वज्जि दुहूं दल लग्ग ।
हसहि सूर सामंत मुख, मुरि कायर आभग्ग ॥६२५॥

शब्दार्थः—फिर्‌यौ=मुड़ा । सलख=सलखानी, सलख राज (इसका नाम आगे नरेन पमार लिखा है, जिससे इसका नाम नारेन या नारायण निश्चित होता है) । पम्मार=पमार नामक । वज्जि=वज्रपात तुल्य । दुहूँदल=दोनों सेनाओं को । लग्ग=लगा, दीख पड़ा । आभग्ग=अभागे ।

अर्थः—पृथ्वीराज की ओर से सलग्न प्रमार (शैली के अनुसार सलख वंशी या स्वयं सलख) युद्ध के लिये मुड़ा । उस समय दोनों सेनाओं को वह वज्रपात सा दिखाई दिया । उसे इस प्रकार बढ़ता हुआ देख बहादुर सामंतों के मुख पर प्रसन्नता छागई और अभागे कायर पीठ बताने लगे ।

कवित्त

सिर हरत धर धुक्कि, भुक्कि कढ्ढी कट्टारिय ।
बिना कंध आकंध, सुद्ध होइ किद्ध प्रहारिय ॥
लग्गि सुधर फुटि पार, सुरिम सलख करि वाह्यौ ।
खग्ग ग्राह्यौ खिझि खेत, वाव अद्ध अध वाह्यौ ॥
वाहंत घाव धर धर मिल्यो, पराक्रम्म पम्मार किय ।
धनि उभय सेन अस्तुति करय, प्रथीराज सो जाव दिय ॥६२६॥

शब्दार्थः—धुक्कि=धड़ पर । भुक्कि=झुक कर, टेढ़ा होकर । बिना कंध=स्कंध रहित, मस्तक रहित, कबंध । आकंध=कंधे पर आकर कंधे को पकड़ कर । सुद्ध होइ=सुधि को प्राप्त करके, सावधान हो कर । सुरिम=शूरमा, शूरवीर । सलख=सलखानी (नारेन) । ग्राह्यौ=ग्रहण किया । धर=धड़ । धर-मिल्यौ=पृथ्वी पर पड़ गया । जाव दिय=सदा के लिए जवाब दे गया (विदा हो गया) ।

अर्थः—जब उसका मस्तक कट कर पृथ्वी पर गिर पड़ा तब उसने (उसके धड़ने) झुक कर कटार निकाल ली । उस कबंध ने सावधान होकर शत्रुओं के कंधे को पकड़ कर प्रहार किया । उस शूरवीर सलखानी के कर प्रहार से वह कटार शत्रु के धड़ के आरपार हो गई और उसका धड़ पृथ्वी पर गिर पड़ा । उसने पुन क्रुद्ध होकर हाथ मे तलवार पकड़ी और उसके प्रहार से शत्रु के धड़ के दो टुकडे कर दिये । उसके इस प्रकार प्रहार करने पर उसका धड पृथ्वी पर धाराशायी हो गया । उस

प्रमार के इस प्रकार पराक्रम दिखाने पर दोनों सेनाएं धन्य २ कह कर उसकी स्तुति करने लगीं। अंत में वह वीर पृथ्वीराज से हमेशा के लिए विदा हो गया।

कवित्त

राह रूप कमधज्जु, गज्जि लग्गौ आयासह।
धार तित्थ्यु तिरु जांनि, नन्हु पामारु फिर्यऊ तह॥
रुधिर मद्धि जव जीव, तन्नु तिल मिलहि प्यंड उस।
जचित सीस अरि गह्हिग, पानि सौभियैं केस कुस॥
करि त्रिपति सार नृप पग दल, अब्बूपति जपु सब्बु किय।
उग्रह्यौ ग्रहनु प्रथिराज रवि, सलख अलख भुज दान दिय॥६२७॥

शब्दार्थ:—राह=राहू। आयासह=आकाश से। धार-तित्थ्यु=धारातीर्थ। तिरु-जानि=तैरने के लिए, पार करने के लिए। नन्हु=नारेन या-नारायण नाम विशेष। पामारु=प्रमार। फिर्यउ=फिरा, मुड़ा। मद्धि=में। जव=यव। तन्नु=शरीर। प्यंड=पिंड। जचित=जच कर, दृढ़ता से पकड़े गये। कुस=कुश। त्रिपति=तृप्त। सार=लोहे द्वारा। जपु=जप। सब्बु=शिव २, हर हर। उग्रह्यौ=वचा लिया। ग्रहनु=ग्रहन से। अलख=गुप्त।

अर्थ:—राहु रूप होकर पंगुराज गर्जता हुआ आकाश से लग गया। तब वह वीर नारेन प्रमार सलखानी धारा तीर्थ द्वारा भव सिन्धु को पार करने के लिए तथा युद्ध स्थल में शत्रु सहार के लिये मुड़ा। उसने रुधिर रूपी जल में प्राण रूपी यव और शरीर रूपी तिल को मिलाकर पिंड बनाया। शत्रुओं के केशों का कुश रूप दिया तथा पगुदल को भिक्षुक रूप देकर लोहे से तृप्त कर उस आबू राज-वंशज ने हर-हर उच्चारण का जप पाठ किया और अपनी भुजाओं से गुप्त (प्राण) दान देकर सूर्य स्वरूप पृथ्वीराज को ग्रहण से मुक्त किया।

दोहा

दियौ दान पम्मार जब, अरि पग्गह सम खेल।
मरण जाणि मन मज्झ रत, लरि लख्खन बघ्घेल॥६२८॥

शब्दार्थ:—मरण-जाणि=मृत्यु को जानते हुए भी। मज्झ=में। लरि=लड़ने लगा।

अर्थ:—पगुराज के साथ ऐसा युद्ध का खेल खेलते हुए जब वीर प्रमार उपरोक्त ढग से दान दे चुका, तब मृत्यु को जान कर भी मन में युद्ध के लिये लीन हो लक्खन बघेला (पृथ्वीराज की ओर से) लड़ने लगा।

कवित्त

वंधव पति कनवज्ज, सिंघ परताप समथ्थह ।
सुत मातुल जैचद, ब्रह्म चालुक्क सुदत्तह ॥
तन उतग गरुअत्त, गात दीरघ हथ्थ भर ।
सहस खट्ट सेना सुभट्ट, कुलवट्ट जुद्ध जुर ॥
कढ्ढी सु वग्ग त्रिप नाइ सिर, जनु वद्दल बधी अनिय ।
जप्पी सु अप्प सेना सरस, गहौ राज सुब्भर हनिय ॥६२६॥

शब्दार्थ:—बंधव-पति कनवज्ज=कन्नौजेश्वर जिसका भाई लगता था । समथ्थह=सामर्थ्यवान, बलवान । सुत-मातुल=मामा का पुत्र । सुदत्तह=श्रेष्ठ दानी । तन=तनी हुई । गरुअत्त गात=स्थूल काय । खट्ट=छ । कढ्ढी=उठाई । वग्ग=रास । जप्पी=आज्ञा दी । सरस=से ।

अर्थ:—कन्नौजेश्वर जयचन्द उसके मामा का पुत्र होता था* वह ब्रह्मक्षत्रिय चालुक्य बलवान और उदार हृदय था । लक्खन बघेले का सामना करने के लिये वह आगे बढा । उस योद्धा का तनी हुई उत्तग एव स्थूल काया और लम्बी भुजायें थीं । कुल मर्यादानुसार युद्ध में जूझने वाले उस की सेना मे छ सहस्त्र योद्धा थे । उस वीर ने पगुराज को प्रणाम कर अपने साथियो सहित घोडे की रास उठाई । तथा अपनी सेना को बादल के समान पक्तिबद्ध किया और आज्ञा दी कि सामन्तो को मारकर पृथ्वीराज को पकड लो ।

जीति समर लक्खन बघेल, अरि हनिग खग्ग झर ।
ति वर तुट्टि धरणी धुकत, निवरत अद्ध धर ॥
तहँ गिद्धारव करिग, अत-गहि अतह लग्गिग ।
तरणि-तेज रस वसह, पमुक्कि पवन वन बज्जिग ॥
तिहि सद ईस मथ्थौ धुन्यो, अमिय बुंद ससि उल्लस्यौ ।
धिझर्‌यौ धवलु सकिय गवरि, टरिग गग सकर हस्यौ ॥६३०॥

* यदि इसके विपरीत अर्थ किया जाय और प्रतापसिंह को जयचन्द के मामा का पुत्र माना जाय तो मानना होगा कि बहु-विवाह की प्रथा के अनुसार वह जयचन्द के पिता विजयपाल (विजयचन्द) की किसी अन्य रानी के भाई का लड़का था ।

शब्दार्थ:—ति=उसका । धर=धड़ । धुकंत=झुक गया । निवर्रंत=निपट गया, समाप्त हो गया । अद्ध-धर=दो टुकड़े होकर । ररिग=भीड़ लग गई, शोर गुल होने लगा । अत-गाहि=अंतक ग्रसित । अतह-लगिग=आँतों से लग गई, आँतों को भक्षण करने लगी । तरणि-तेज=प्रखर सूर्य । रस-वसह=उसके रण रस में लीन हो गया । पमुक्कि=पमग क्या था, घोड़ा क्या था । तिहि-सद्द=उसकी आवाज पर । उल्लस्यौं=उलस पड़ी, उमग पड़ी, टपक पड़ी । विडर्यौं=डर गया । धवलु=नदीगण । टरिग=खिसक गई ।

अर्थ:—उस युद्ध में लक्खन बघेला विजयी होता हुआ बढ़ कर अपनी श्रेष्ठ खड्ग का वार करने लगा जिससे शत्रु (प्रतापसिंह) के धड़ के दो टुकड़े हो गये । वह पृथ्वी पर गिर पड़ा । उसके शव की ओर गिद्धों का शोरगुल होने लगा तथा वे गिद्ध अतक-ग्रसित उस वीर की आँतें खींचने लगे । उस समय प्रखर-सूर्य उस वीर (लक्खन) के रण-रस मे लीन हो गया । उसका द्रुतगामी घोड़ा क्या था मानो विशेष वेग से पवन चला हो । उस वीर की आवाज पर मुग्ध हो शिव ने सिर हिलाया, जिससे चद्रमा द्वारा अमृत की बूंदें टपकने लगीं । नंदी गण व्याघाम्बर का पुनः व्याघ्र हो जाना देखकर डरने लगे । पार्वती को अपने वाहन तुल्य ही दूसरा व्याघ्र पैदा होने पर दोनो के आपस में लड़ने की आशङ्का हुई और गङ्गा भी जटाजूट से खिसक गई । यह देख कर भगवान शंकर हँसे ।

दोहा

परत बघेल सु मेल किय, रण रट्ठौर सु भार ।
तौ,वर डिल्लिय कंकरह, तोंवर लिष्टि पहार ॥६३१॥

शब्दार्थ:- मेलक्रिय=मिल गये, भिड़ गये । तौ वर=तेरे ही बल पर । डिल्लिय-कंकरह=दिल्ली की काया । तोंवर=तवर क्षत्रिय । तिष्टि=प्रसन्न हुआ । पहार=पहाड़राय, नाम विशेष ।

अर्थ:—वीर बघेला (लक्खन) के धराशायी होते ही राष्ट्रवर सेना का युद्ध भार पुनः सिर पर आ पड़ा । यह देख राजा पृथ्वीराज पहाड़राय तँवर से बोला, 'तेरे ही बल पर दिल्ली की काया सुरक्षित है' इस प्रकार के शब्द सुनते ही वह वीर युद्ध करने के लिये प्रसन्न हो उठा ।

कवित्त

द्वादस दिन पच्छलौ, घटिय पल बीह समग्गल ।
सविता आसर सेत, दसमि दह पष वक्ष पल ॥

मिलिय 'चन्द' निज नारि, रारि सज्ज्यो सु रौद्र रस।
रा 'असोक' साहनी, सहस सन्या सु अट्ठ तस॥
स्वामित्त ध्रम्म रत्तौ सु रह, करै प्रीति रा पग तसि।
लग्यौ सु जाइ चहुआन दिठ, कम्यौ फौज त्रविय उकसि॥६३२॥

शब्दार्थ:—द्वादस=बारह। दिन पच्छलौ=दिन के उत्तरार्ध समय। घरिय=घड़ी। वीह=बीस। समग्गल=से ऊपर। सविता वासर=रविवार। सेत=शुक्ल पक्षीय। दह पच=पन्द्रह (घटि पूर्वार्ध)। वज्र-पल=वज्र योग समय घातक योग समय। रा-असोक=अशोक राय। साहनी=अश्व शाला का अधिकारी। सन्या=सेना। तसि=तिस पर। दिठ=देखते ही। उकसि=उकस कर, उमड़ कर।

अर्थ:—शुक्ल पक्ष की दसवीं रविवार की प्रात काल से पन्द्रह घड़ी बीतने पर मध्यान्होत्तर हो चुका था और शेष उत्तरार्ध बारह घड़ी और बीस पल से भी ऊपर दिन शेष था उस समय वीरों की घातक दशा आई। चन्द कहता है कि उस दिन पंगुराज के अशोक नामक साहनी (अश्वशाला का अधिकारी) ने अपनी पत्नी से प्रेम किया और रौद्ररस स्वरूपी वह वीर युद्ध के लिये सुसज्जित हुआ। उसके अधिकार मे आठ हजार योद्धा थे, वह वीर सदा स्वामी धर्म को मानने वाला था। पगुराज की उस पर कृपा थी। वह युद्ध-स्थल मे गया और चाहुवान को देखते ही झपट कर अपनी सेना बढ़ाई तथा स्वय भी आगे बढा।

पग देख साहनी, जात जगल पहु उप्पर।
मनहु स्यघ पर स्यघ, वीर आयौ सु स्वामि छर॥
तब राजा सहदेव, दिक्खि दिसि वाम समग्गल।
चख रत्ता हवि जान, अप्प उद्धर जद्दव कुल॥
सिर नाइ आइ अघ्घा सरकि, दिय अग्या पहु पग तसि।
सग्रहौ जाइ चहुआन कौं, रा-असोक साहाय क्रमि॥६३३॥

शब्दार्थ:—साहनी=अश्व शाला का अधिकारी। जगल-पहु=जगलेश्वर, पृथ्वीराज। स्वामि-छर=अपने स्वामी (जयचन्द) को छलने पर, सयोगिता का अपहरण करने पर। समग्गल=अग्र भाग की ओर। उद्धार=उद्धार करने को। अघ्घा-सरकि=आगे बढ़ कर। तसि=तब। सग्रहौ=पकड़ लो। जाइ=जाकर। साहाय=सहायता पर।

अर्थः—स'हनी (अश्वाधिपति) की सेना को जंगल नरेश पृथ्वीराज की ओर जाती हुई पंगुराज ने देखी, वह साहनी वीर अपने स्वामी पृथ्वीराज द्वारा छल (कुमारी का अपहरण) करने पर ऐसे बढा मानो सिंह पर सिंह झपटता हो। उसी समय राज पद्धारी वीर सहदेव ने भी अग्र भाग के बांई ओर देखा, जिसके नैत्र हवि के समान चमचमाते हुए अरुण वर्ण थे। उसने युद्ध मे अपने यादव कुल के उद्धार की इच्छा कर आगे बढ पंगुराज को सिर नॅवाया (प्रणाम किया)। तब पंगुनरेश ने आज्ञा दो कि तुम अशोकराय (साहनी) की सहायतार्थ जाकर चाहुआन पृथ्वीराज को पकडलो।

दोहा

नाइ सीस मिलि निज मयन, दिय अग्यॉ बर पंग।
बंधि अनिय द्वादस सहस, वाजे वज्जे जग ॥६३४॥

शब्दार्थः—सयन=सेना। बधि अनिय=सेना की पंक्ति बद्ध किया। जंग=जग के, युद्ध के।

अर्थः—पंगुराज की आज्ञा प्राप्त कर वह वीर सहदेव सिर झुका कर अपनी सेना में सम्मिलित हुआ तथा अपने अधिकार की द्वादश सहस्र सेना पंक्ति बद्ध की। उस समय युद्ध के वाजे वजने लगे।

सजिय आप सहदेव दल, अनिय सु राय असोक।
मिल्यौ जाइ मध्ये सु भर, अप्प चिंति उधलोक ॥६३५॥

शब्दार्थः—मध्ये=में। उधलोक=ऊर्ध्व लोक, स्वर्ग।

अर्थः—अपने दल को सुसज्जित कर वह श्रेष्ठ योद्धा सहदेव, अशोकराय की सेना में ऊर्ध्व (स्वर्ग) लोक का चिन्तन करता हुआ जा मिला।

रा-असोक सहदेव-रा, मिलि उम्भय दल एक।
सहस वीस दल भर जुरिग, चले सु तत्तो तेक ॥६३६॥

शब्दार्थः—तत्ते=तेज। तेक=तेग, तलवारें।

अर्थः—अशोकराय और सहदेवराय के बीस हजार सैनिकों ने एक होकर तेज तलवारे चलानी शुरू की।

प्रिथीराज बॉई दिसा, आवत खल दल पिक्खि।
गहिय वग्ग पाहार सम, तपि दिय आयस तिक्खि ॥६३७॥

शब्दार्थः–गहिय-बग्ग=रास पकड़ी, रास उठाई। पाहार-सम=पहाड़राय को। तपि=तेज होकर। तिक्खि=तीक्ष्ण, चुभने जैसी।

अर्थः—पृथ्वीराज ने वाम पार्श्व से शत्रुदल को आता देख अपने घोड़े की रास उठाई और तेज होकर पहाडराय को युद्ध के लिये शत्रुओं के दिल मे चुभने जैसी कठोर आज्ञा दी।

कवित्त

दल दुपग रट्ठिवर, जाम चंपिय ढिल्लिय भर।
तोंवर लिष्टि प्रहार, पड वंसह पहार नर॥
हरि हथ्था हरि गहहिं, वाम रक्खे वर वारह।
सेस सीसु कंपियो, डढ्ढ डुल्लिय भुवि भारह॥
कविचंद पढ्ढ आपुव्व सुनु, नृप रक्खन भुज बल भिर्‌यौ।
फिरि कंपि संकि जयचंद दलु, तिन सम लरि तोंअरु पर्‌यौ॥६३८॥

शब्दार्थः–रट्ठिवर=राष्ट्रवर। जाम=जब। पड-वंसह=पाण्डव वंशी। पहार=पहाड़राय। नर=अर्जुन (तुल्य)। हरि-हथ्था=सिंह के पंजो के समान हाथों मे (या हाथों में पहनने के लोह के दस्ताने होते थे जिन में नाखून भी होते थे उन्हें शेरपंजे कहते थे)। हरि-गहहिं=सिंह तुल्य वीरों को पकड़ने लगा। वाम रक्खे=बाई ओर कमर में बंधी हुई ही पड़ी रक्खी। वर-वारह=श्रेष्ठ वार करने वाला तलवार को। अ पु व=अपूर्व। फिरि=फिर गई, मुड़ गई। तोंअरु=तोंवर क्षत्रिय।

अर्थः—जिस समय राष्ट्रवर पंगुराज की सेना ने दिल्लीश्वर और उनके सामंतो को दबाया। तब प्रसन्न होकर पाडव वंशी अर्जुन स्वरूप पहाडराय तँवर ने अपने सिंह के पंजों के समान हाथों मे (या–हाथों मे लोह के दस्ताने होते उन्हे शेर पंजे कहते थे उन मे) सिंह–तुल्य शत्रुओं को पकड लिया। उसने श्रेष्ठ वार करने वाली (तलवार) को बायें अंग मे ही पडी रक्खी (उसे छुआ तक नहीं)। उसके आक्रमण के भार से शेष नाग के फन (सिर) काँप उठे और वाराह की दाढ़ हिलने लग गई। कवि चंद कहता है–उसकी अपूर्व कथा सुनिये–वह वीर राजा की रक्षा के लिये अपनी दोनों भुजाओं के बल पर भिड पडा। उससे सशंकित और कंपित हो जयचंद की सेना मुड़ गई, फिर भी वह तँवर वीर उनसे भिडता रहा।

नाइ सीस प्रथिराज, अप्प कस्स्यौ हय हंसह।
तार पत्त सम तेज, खित्रि वाहन हरि वंसह॥

हंस हस आपेखि, इष्ट मत्रह उच्चारिय।
चल्यौ जंपि मुख राम, स्वामि ध्रम्मह सभारिय ॥
जोगनिय जूह दुअ पल्लव हुअ, बीर जूह अग्गै सु नचि।
निरखत अमर नारद निगह, अच्छरि रथ सीसह सु रचि ॥६३६॥

शब्दार्थः—कस्स्यौ=सजाया, तय्यार किया। तार-पत्त=उल्कापात। तेज=तीव्र गति। खित्रि-वाहन=वह घोडा क्षत्रिय वर्ण का था। हरि-मसह=हयग्रीवावतार का वशज, या सूर्य पुत्र। हंस=उस हस नामक घोडा का। हस-आपेखि=हस (सूर्य) तुल्य साहसी। समारिय=संभाला, अपनाया। जूह=जूथ, यूथ, समूह। दुअ-पल्लव=दोनों पार्श्व में, दोनों ओर। बीर-जूह=बावन ही वीरों का समूह। अग्गै=आगे। नचि=नाचने लगा। निगह=निगाह मे। सीसह=ऊपर को। रचि=उडने लगे।

अर्थः—पृथ्वीराज को सिर झुका कर (प्रणाम कर) उस वीर तँवर क्षत्रिय ने अपने 'हँस' नामक घोडे को युद्धार्थ तैयार किया। उस घोडे की तीव्र गति उल्कापात के समान थी और उसका वर्ण क्षत्रिय था (अश्वशास्त्र के अनुसार घोडों के भी चार वर्ण माने गये है जिनमें ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्ण का घोडा श्रेष्ट माना गया है) तथा वह साक्षात हय ग्रीवावतार के वशज जैसा था (या घोडों को सूर्य पुत्र माना हो)। ऐसे हस नामक घोडे पर चढने वाला वह वीर स्वय भी हस (सूर्य) सा साहसी था। उस वीर ने इष्ट मत्र का उच्चारण और राम का जय-जय कार करते हुए स्वामी-धर्म को अपनाया और युद्ध भूमि मे आगे बढा। उसकी दायीं-बायीं भुजाओं के समीप योगिनियों का समूह हो गया और बावन ही वीरों का समूह आगे नाचने लगा। देवता और देवर्षि उसकी ओर देखने लगे तथा अप्सराओं के विमान ऊपर को उडने लगे।

धरिय भार पाहार पग दल बल ढढोर्‌यौ।
हय गय नर पतिय पताख, ताम बवरि झझोर्‌यौ ॥
छत्र पत्र मारुत महत, अरि हत उडाइय।
मार मार सभार, चद जिमि मुख मुख भाइय ॥
आनद केलि कलहत किय, इय हिलोल दल उम्भरिय।
तोंअर विचार मारह सुभर, सिर सु वार अभभर भरिय ॥६४०॥

शब्दार्थः—पतिय=पक्ति। पताख=पताकायें। ताम=उसने। बबरि=उच्च घोषणा कर। झझोर्‌यौ=झकेझ दिया, झक झोर दिया, नमित कर दिया। पत्र=पत्ते। हत=हनना हुआ, वार करता हुआ।

सार-सार=प्रत्येक शस्त्र को। सभार=सँभाल कर, सावधानी से उठा कर। चंद-जिमि=चन्द्रमा के तुल्य। मुख-मुख=प्रत्येक के मुख पर। झांइय=कालिमा ला दी। ध्रय=उसने। हिलोल=हिलोर दिया, हिला दिया, चल विचल कर दिया। दल-दुम्भरिय=दम्भर दल को, सिन्धु तुल्य अगम्य सेना को। तोंअर=तवर क्षत्रिय। त्रिवार=तीन बार। मारह=मार मचाई। झम्झर-झरिय=बुरी तरह से प्रहार किया।

अर्थः—पहाडराय तँवर ने युद्ध-भार ग्रहण कर पगुराज के सारे दल बल की जाच की तथा ऊर्ध्वघोषणा कर उसने हाथी, घोडे, सैनिक पक्ति तथा पताकाओं को हिला (कपित कर) दिया। विपक्षी छत्र धारियो के पत्र रूपी छत्रों को झझा-वात के समान उस वीर ने वार कर उड़ादिया, प्रत्येक शस्त्र सावधानी से उठाकर उसने विपक्षियों के मुख पर चन्द्रमा के तुल्य कालिमा फैलादी। उस वीर ने सहर्ष ऐसा कलह का खेल खेला जिससे समुद्ररूपी अगम्य शत्रु-सेना बिखर गई। इस प्रकार उस तँवर यौद्धा ने तीन बार हमला किया और शत्रुओं के सिर पर बुरी तरह प्रहार किया।

रा कमधज्ज नरिंद, अद्ध खोहिनि चतुरंगिय।
तिन महि अद्धति वक्क, जीन नग मुत्ति सुरंगिय॥
तिन छुट्टत हल बलत, साहि सामत-राज चढि।
ते थल थक्किवि रहत, सथ्थ चहुवान राण रढि॥
सिथि सिथिल गगथल बल अबल, परसि प्रान मुक्कि न रहिय।
जुरि जोग मग्ग सोरों समर, चवत जुद्ध चदह कहिय॥ ६४१॥

शब्दार्थः—अद्ध खोहिनि=अर्ध अक्षौहिणी। चतुरंगिय=सेना। तिन महि=उसमें से। अद्धति=आधी। वक्क=वक्र। जीन=साज, पाखरें। मुत्ति=मोती। छुट्टत=बढने पर। हल बलत=हल चल। साहि=पकड़ने को। सामत राज=पृथ्वीराज। चढि=अपने घोड़े को बढाते हुए। ते-थल=उस स्थल पर। थक्किवि रहत=थके हुए देख कर। सथ्थ=साथी। चहुआन-राण=चाहुवान राजा, पृथ्वीराज। रढि=रटा, कहा। सिथि सिथिल=शिथिल से भी शिथिल, अधिक शान्ति प्रद। बल-अबल=निर्बलों को बलदायक। परसि=स्पर्श कर, प्राप्त कर। प्रान मुक्कि न=प्राण नहीं देना। जुरि=जुट गये, युद्धारंभ हुआ। चवत=कहते हो।

अर्थः—पगुराज और उसके साथियो की अर्ध अक्षौहिणी सेना (रह पाई) थी। उसमे से अर्ध अश्वारोही सेना बड़ी बहादुर थी। उस सेना के घोडों की पाखरें

रंगविरंगे नॅग और मोतियों से सजी हुई थीं। उन अश्वारोही वीरों ने सामन्त राज (पृथ्वीराज) को पकड़ने के लिये घोड़े बढ़ाये, जिससे हलचल मच गई। उसी स्थल पर अपने साथियों को थका हुआ देख चाहुवान राजा पृथ्वीराज ने अपना घोड़ा बढ़ा कर कहा—निर्बलों को बल दायक और शांति प्रद गंगा के भूभाग को प्राप्त करके भी प्राणों की आहुति नहीं देना कहाँ तक ठीक है ? चंद कहता है-पृथ्वीराज के ऐसा कहते ही सोरों नामक पवित्र स्थान पर योग मार्ग (मोक्ष प्रद) रूपी युद्ध का प्रारम्भ हो गया।

वेद कोस नर स्यघ, उमै त्रत्तिय बडगुज्जर।
काम वान हर नयन, निडर निड्डुर भो सुमभ्भर॥
छग्गन खट्ट पलानि, कन्ह खंचिय द्रगपालह।
अल्हन बल द्वादसह, अचल विग्घा गनि कालह॥
शृंगार व्यंभ सलखह सु कथ, लखन पहारति पंच चय।
इत्तने सूर जुभ्भत रण, सोरों पुर प्रथिराज अय॥६४८॥

शब्दार्थ:—वेद–कोस=चार कोस। उमै–त्रत्तिय=छ, या तीन और दो (पाच)। कामबान-हर नयन=पांच और तीन (आठ)। निड्डुर-भो=निर्भय होकर। सुमभ्भर=श्रेष्ठ शस्त्र झड़ी करते हुए। खट्ट=छ। पलानि=घोड़े को बढा कर। खंचिय=युद्ध भार वहन किया। द्रगपालह=दिगपाल (आठ)। अवल=अचलेश खींची। विग्घा=बाघराय बघेला। कालह=त्रिकाल (तीन)। शृंगार= सोलह। व्यंभ=बींझराय। सलखह=सलखानी नारेन (या-सलख)। पहरति=पहाड़राय। पच-चय=पांच और चार (नव)।

अर्थ:—नरसिंह चाहुवान ने चार, कनकराय बड़ गुज्जर ने छ (या पाच), निर्भय होकर श्रेष्ठ शस्त्र वर्षा करते हुए निड्डुराय ने आठ, छगन ने छ, नरनाह कन्हने आठ, अल्हन की शक्ति ने बारह, अचल और बाघराय ने तीन, बींझराज और सलखानी (नारेन) ने सोलह, लक्खन और पहाड़राय ने नव कोस तक क्रमश जूझकर पृथ्वीराज को पहुँचा दिया इस प्रकार पृथ्वीराज सोरों तीर्थ पर आ पहुँचा।

पर्‌यौ पिखिल पाहार, राज कमधज्ज कोप किय।
पहु सोरों प्रथिराज, निकट दिख्यो सु चिंति हिय॥
गयौ राउ जंगलिय, नाथ कनवज्ज मण्णि मनु।
जग्गु जोंग विग्गार, लहिय जै पुन्नि हरिय तिनु॥

आइयौ राउ महदेव तब, नाउ सीस तुल्यौ बयन।
सग्रहों राज प्रथिराज को, सद्धो पहु जुग्गिनि सयन ॥६४३॥

शब्दार्थः—पाहार=पहाड़राय। पहु-सोरों=सोरो नामक स्थान पर। राउ-जंगली=जंगलेश्वर, पृथ्वीराज। मण्णि-मनु=मन में मान कर, मन में सोच कर। जोंग=जोग, योग, अवसर, समय। लहिय जै=विजय प्राप्त करके। पुन्नि=पुन, फिर। हरिय-तिनु=तनुजा का हरण किया, कुमारी का हरण किया। महदेव=महादेव। सग्रहं=पकड़ लूंगा। सद्धों=साधन करके। पहु-जुग्गिनि=दिल्लीश्वर का।

अर्थः—पहाड़राय के धराशायी होने पर कमधज राज ने क्रोध किया। उस कन्नौज पति ने सोरों नामक स्थान पर पृथ्वीराज को अति निकट देख अपने हृदय मे सोचा कि जंगलीराज (पृथ्वीराज) मेरे हाथ से अब निश्चय ही निकल जायगा। इसने मेरा यज्ञ-समय बिगाड विजय प्राप्त कर कुमारी का हरण किया है, इतने में महादेव नामक योद्धा ने आकर सिर नंवाया और बोला—"दिल्लीश्वर की सेना पर लोहा बरसा कर मैं पृथ्वीराज को पकड लूंगा।"

कस्सि सुत्त सामंत, देव सजि चल्यौ सेन वर।
लैं लैं नाम पमार, प्रथुक परससि अप्प भर॥
जंपि वाया जगनाथ, ध्यान उच्चारिय वीरह।
अनी वधि दस सहस अप्प मल्लैं पर पीरह॥
ठननंकि घंट भेरिय भनकि, पूरि निसान दिसान सुर।
महदेव चल्यौ प्रथिराज पर, मिलिय जुद्ध मनु देव दुर॥६४४॥

शब्दार्थः—लै लैं नाम=नाम ले लेकर, सम्बोधन करके। प्रथुक=एक एक की। परससि=प्रशंसा की। वाया=वाचा, वचन, वाणी द्वारा। मल्लैं=भूमा। पर=दूसरों को, विपक्षियों को। पीरह=पोड़ा पहुंचाई। पूरि=पूर दिया, बजा दिया। दिसान=दिशाओं में। सुर=स्वर। देव-दुर=दुर्दैव, भयंकर देवता।

अर्थः—इधर से सामंतराय का पुत्र देवराज (प्रमार) सुसज्जित होकर अपनी श्रेष्ठ सेना युद्धार्थ तैयार कर विपक्षी की ओर चला। उस प्रमार वीर ने अपने एक एक वीर की प्रशंसा की। तत्पश्चात् उस वीर ने अपने इष्टदेव का ध्यान कर अपनी वाणी द्वारा जगन्नाथ की "जय हो २" उच्चारण किया और अपनी दस हजार सेना

पक्ति बद्ध कर विपक्षियों के दिल मे जा चुभा तथा पीड़ा पहुँचाई। उस समय गज-घण्टाएँ बजने लगी, भेरी का निनाद गूँज उठा और नगारों की ध्वनि दिशाओं में छागई। पृथ्वीराज को दबाने की प्रतिज्ञा कर महादेव के चलने पर उसे देवराज युद्ध में क्या मिला मानों स्वयं दुर्दैव से सामना करना पड़ा हो।

दुहुँ पक्खां गंभीर, दुहू पक्खां छत्रपत्ती।
दुहुँ पक्खै गजान, दुहूँ पक्खै रावत्तो॥
दुहुँ बाहा ज मरण, मात मातुल मुख लक्खै।
कठमाल सुभ कठ, नाग सो जोगह रक्खै॥
सकठह स्वामि वंकट विकट, त्रिघट रुक्कि कमधज्ज दल।
आदित्तवार दसमिय दिवस, गरुअ गंग भ्रंमुंग जल॥६४५॥

शब्दार्थः—पक्खा=पक्ष। छत्रपत्ते=छत्रपति। दुहु बाहां=दोनों भुजाओं से वार करने वाले। ज मरण=जैसे ही मृत्यु को प्राप्त हुआ। मात=मौत, मृत्यु। मातुल=मामा। मुख=मुख में पड़ा। सो=जैसा। जोगह=जोग, सयोग, संपर्क। त्रिघट=तीन घंटे तक। गरुअ=भारी, उन्नत काय। भ्रमुग=भ्रम दिया, प्रक्षालन कर दिया (मारा गया)।

अर्थः—वह देवराज-दोनों (मातृ और पितृ) पक्ष से गभीर (सहनशील), छत्रपति, राजा और रावत पदधारी एव दोनों भुजाओं से भयानक वार करने वाला था। ज्योंही वह मृत्यु के मुख मे पडा त्योंही उसका भानजा कचराराय (कच्छराय) आगे बढ़ा। उसके कठ में माला शोभा दे रही थी। शत्रुओं के लिए उसका सपर्क होना सर्प से भेट होने के समान था। स्वामी (पृथ्वीराज) के सकट समय उस बाके विकट वीर ने कमधजी सेना को तीन घटे तक रोक दिया। और दसवीं रवि-वार को युद्ध करते हुए उसने अपने उन्नत शरीर को गगा के गहरे जल में प्रवाहित किया (मारा गया)।

मगराइ भानेज, राय कचरा अरि कच्चरि।
गरुअ भ्रम स्वामित्त, साग समुह रन अच्चरि॥
पट्टन सिर अरु पट्ट, गग घट्टह घट्ट नच्यौ।
जै जै जपि जगत्र, नह त्रिभुअन पति भच्यौ॥
पक्खरत पालिय वज्जिय विहर, उग्र राय रठौर धर।
चालुक चलत सुभ स्वर नमन, ब्रह्म अरघ दीनौ सु वर॥६४६॥

शब्दार्थः—संगरादि=संगर करने वाला, युद्ध कर्ता वीर देवराज। कच्चरि=कुचलता हुआ। अच्चरि=चलाया, प्रहार किया। पट्टन-सिर=शिरियें पाट दी, मुण्ड राशि बिछादी। अरु=फिर। पट्ट=पट गया, धराशाई होगया। घट्टह=घाट पर। घट=घट, शरीर। नग्यौ=गिरादिया। जगत्र=जगत, संसार। पति-भरुयौ=पहुँच कर प्रतिध्वनित हुआ, पति ध्वनित होकर फैल गया। पक्खरत=पखरैत, अश्वारोही। पत्तिय=पहुँचा। बज्जिय-बिहर=वज्र गति से। उग्र=उग्र स्वभाव वाले। राय रट्ठौर=राष्ट्रवर राय, पंगुराज। धर दबाया। स्वर-गमन=स्वर्गारोहण। ब्रह्म=ब्रह्म क्षत्रिय ने। अरघ=अर्घ्य।

अर्थः—युद्ध कर्ता देवराज प्रमार के भानजे कचराराय (कन्ह राय) ने शत्रुओं को कुचलते हुए स्वामी-धर्म के पालन का गौरव रख कर रण में शस्त्राघात किया और रण स्थल में उस पट्टन राजवंशी ने सिरों को बिछा गंगा के घाट पर अपना शरीर गिरा दिया। अन्तिम समय में संसार ने उसके जय का उद्घोष किया, जो त्रिभुवन में प्रतिध्वनित हुआ। वह अश्वारोही वीर वज्र-गति से उग्र स्वभाव वाले राष्ट्रवर राज (जयचन्द) के पास जाकर उसे धर दबाया। उस ब्रह्म-क्षत्रिय चालुक्य वीर ने स्वर्गारोहण कर पृथ्वी को अन्तिम अर्घ्य दिया।

दोहा

परे पंच से पंग भर, परि चालुक्क सु तप्प।
बिलख बदन प्रथिराज भय, बञ्छिय मरण सु अप्प ॥६४७॥

शब्दार्थः—से=सौ। तप्प=तपता हुआ तेज प्रसारता हुआ। बिलख बदन=उदास मुख। बञ्छिय=सोच लिया। अप्प=अपना।

अर्थः—पंगुराज के पांच सौ सामन्तों को धराशायी कर अपना तेज फैला कर चालुक्य वीर (कचराराय) धराशायी हुआ। यह देख पृथ्वीराज उदास मुख होगया और मन में सोचा कि अब मेरी मृत्यु भी निकट है।

निसि नौमिय चित्तिय लरत, दसमिय पहुरिति चारि।
पग पहुमि प्रथिराज भिरि, अत्थिग आदित बारि ॥६४८॥

शब्दार्थः—पहुरिति=प्रहर। चारि=चार। पहुमि=राजा। अथिग=अस्त होगया। आदित बारि=सूर्य जल में डूब गया, या रविवार।

अर्थः—युद्ध करते करते २ नवमी की रात्रि बीत गई, दसवीं रविवार को पंगुराज और पृथ्वीराज को भिड़ते २ चार प्रहर व्यतीत होगये और सूर्य अस्त होकर जल मे डूब गया।

पुर सोरों गंगह उदक, जोग मग्ग तिथ वित्त।
अद्भुत रस असिवरु भयौ, विंभंन बरन कवित्त ॥ ६४६ ॥

शब्दार्थ.—तिथ-वित्त=तीर्थ कर पाये। असिवरु=तलवार द्वारा। विंभन=वींभराज का। बरण=वर्णन किया। कवित्त=पद्यात्मक।

अर्थः—सोरों में गङ्गातट पर वीरों को योगियों के समान मोक्ष प्राप्ति हुई और उस समय वहाँ तलवारों द्वारा अद्भुत रस प्रवाहित हुआ। विंभराज ने जैसा बल प्रदर्शित किया वैसा ही मैंने पद्य मय वर्णन किया है।

घरिय सत्त आदित्त, देव दस्समिय दिन रोहिन।
रुक्यौ तथ्थ प्रथिराज, पग सथ्थह अध खोहिन ॥
पच अग्ग च्यालीस, सत्त सामंत सुरत्तिय।
पच अग्ग पचास, सद्धि सथ्थह सेवक त्रिय ॥
वामंग तुरगम राज तजि, तोन सज्जि स्यगिनि सु कर।
बदेव चंद सदेह नहिं तवहि राज अचिरज्जु नर ॥ ६५० ॥

शब्दार्थः—सत्त=सात। रोहिन=रोका। खोहिन=अक्षौहिणी। पच-अग्ग-च्यालीस=चालीस पर पांच (४५)। सत्त सामंत=सौ सामंतों में से। सुरत्तिय=शूरिमा बन गये, जूझ पड़े, शहीद हो गये। पच-अग्ग-पचास=पच्चास पर पांच (५५)। सथ्थह=शेष साथ रहे। त्रिय=अन्य, भृत्य। वामग=बायें। तजि=मोड़कर। स्यगिनि=प्रत्यंचा। बदेव=वदना करके। तवहि=स्तुति की। नर=अर्जुन।

अर्थः—सात घड़ी सूर्य शेष रहा (अथवा बीत गया) तब देव-दसमी के दिन पगुराज के साथियों की आधी अक्षौहिणी सेना रोकने के लिये बढ़ी और पृथ्वीराज को घेर लिया। उस समय सौ सामंतों मे से पैंतालीस जूझ पड़े थे शेष पचपन सामत और सेवक ही पृथ्वीराज के पास रह गये थे। पृथ्वीराज ने स्वयं शर-युद्ध करने की इच्छा से घोड़े पर अपने बायें अङ्ग को मोड साथे और प्रत्यचा पर

हाथ डाला। यह देख कर कवि चद राजा से वंदना करके उसकी स्तुति में कहने लगा-हे नरेश्वर! आप निस्सन्देह आश्चर्य जनक धनुष ग्रहण करने वाले अर्जुन ही हैं।

दोहा

गग पुट्ठि अग्गै विहड़, व्रत वंको जल किंदु।
उठ्यौ छत्र तँह पग पर, (मनु) हेमं दंड पर इंदु ॥६५१॥

शब्दार्थ:—विहड़=भयानक व्रत बंको=बांका व्रतधारी। जलकिन्दु=जलकेन्द्र, जल समूह, समुद्र तुल्य। हेम दंड=सुमेरु, या-स्वर्णिम दंड तुल्य अंग पर।

अर्थ: उस समय पगुराज की पीठ पर गंगा और आगे विषम व्रतधारी भयानक समुद्र के समान पृथ्वीराज था। उसी समय पगुराज के सिर पर (आगे बढ़ने के लिये, छत्र इस प्रकार उठा मानों हेम-दंड (सुमेरु पर्वत या पगुराज के स्वर्ण-दण्ड वत शरीर) पर चन्द्रमाँ उदित हुआ हो।

कवित्त

जघारौ रा-भीम, स्वामि अग्गै भयो ओडन।
दुहु वाहा सामन्त, दुहूँ द्वादस दस कोडन॥
पच्छ सथ्थ सजोगि, कलह कंतिय कौतूहल।
महनरभ मोहनिय, सुरा अमृत तदूहल॥
दुहुं राय जुद्ध दुदज भयौ, चाहुआन रट्ठौर भर।
घरि च्यारि श्रोन असिवरु झर्‌यौ मनहु धुम्म अग्गी सु झर ॥६५२॥

शब्दार्थ:—अग्गै=अग्रभाग में। ओडन=आड़, अर्गला। दुहु बाहा=राजा की दोनों भुजायें स्वरूप। दुहूँ=दोनों ओर दायें बायें। द्वादस-दस=बारह और दस (२२)। कोडन=कोड़, प्रसन्नता पूर्वक। पच्छ=पीछे को सथ्थ=साथ में सजोगिता=सयोगिता। महनरभ=महान युद्धारंभ। तदूहल=तन्द्रा (मूर्छाना) युक्त करने वाला विष। दुदज=द्वन्द। असिवरु=तलवार। झर्‌यौ=बरसा, प्रवाहित हुआ। धुम्म=धूम्र। अग्गी=अग्नि। झर=झड़ती हो।

अर्थ:—तब अर्गला स्वरूपी जघारा-भीम स्वामी पृथ्वीराज के हरावल (अग्रभाग) मे होगया और शेष चौपन सामंत जो राजा की भुजा स्वरूप थे उनमे से बाईस प्रसन्नता पूर्वक राजा के दायें बायें पार्श्व मे होगये शेष राजा के पृष्ट भाग पर रहे। घोड़े पर चढे हुए राजा के पीछे सयोगिता थी। उस कलह-कान्ता के कारण ही यह

युद्ध-कौतुक हो होरहा था। उस युद्ध-वारिधी के मन्थन में सयोगिता की लावण्यता रभा, मोहिनी, सुरा, अमृत और मूर्छित कर देने वाले हलाहल (विष) का काम कर रही थी (पृथ्वीराज के लिए वह रभा, मोहिनी, मादकता और सुधा स्वरूप थी एवं वीरों के लिए वह विष हो रही थी)। उस समय चाहुवान और राष्ट्र वर राजा का आमना सामना हुआ और द्वंद युद्ध छिड़ा जिससे चार घड़ी तक तलवार से रक्त-वर्षा हुई और उस धुंमिल वातावरण में तलवार की धार से झड़ती हुई चिनगारिया ऐसी दीख पड़ी मानों धूम्र से अग्नि झड रही हो।

घरिय च्यार रवि रत्त, पंग दल वल आहुट्यौ।
तव जघारौ भीम, ध्रम्म स्वामित तन तुट्यौ॥
सगर गौर सिर मौर, रेह रख्खिय अजमेरिय।
उडत हंस आकास, दिट्ठ घन अच्छरि घेरिय॥
जधार सूर अवधूत मन, असि विभूति अंगह घसिय।
पुच्छ्यौ सु जान त्रिभुवन सकल, कोसु लोक लोकैं वसिय॥६५३॥

शब्दार्थः—रत्त=रहते। ध्रम्म-स्वामित=स्वामि धर्म के लिए। रेह=रेखा, मर्यादा। हंस=प्राण पखेरू। जंघार=जघारा भीम। घसिय=सघर्षण कर। कोसु लोक=किस लोक के। लोकैं=लोगों में, निवासियों में।

अर्थः—जब चार घडी सूर्य शेष था तब युद्ध में रत होकर पंगुदल जुट पड़ा। उस समय वीर जंघारा भीम ने स्वामी-धर्म के लिये अपने रुण्ड को खण्ड २ करा दिया। यह देख सगरराय वीर जो गौड वंश का शिरोमणी था उसने अजमेर राज वंश (गौडों का मुख्य स्थान अजमेर) की मर्यादा रखली। जब उसका प्राण पखेरू उड़कर आकाश मार्ग को रवाना हुआ तब उसे देख अप्सराओं ने आ घेरा (अर्थात् वह अप्सराओं के हाथ पड गया) किन्तु जंघारा भीम तो अवधूत योगियों के समान रहने वाला था। इसीलिये तलवार रूपी विभूति का अंग से संघर्षण कर इस लोक से चल बसा। उसकी विदाई पर त्रिभुवन में यह प्रश्न छिड़ गया कि वह किस लोक के निवासियों में जाकर बसा (अर्थात मोक्ष हो जाने से वह किसी लोक में नहीं देखा गया)।

भो समुद जैंचद, उत्तरि जैयै किमि पारह।
अद्भुत रसु असमान, अब्ब बुझहि करि यारह॥

तहँ बोहिथ हरब्रह्म, भार सब सिर पर धर्यो।
उद्धरि उद्ध कुमार, धनि सु जननी जिहिं जनयो॥
नन करिय कोइ करि है न को, गौर वंस अस कुमभयौ।
सब साहिब सेनु निबाहि के, तब आपन फिरि बुझभयौ॥६५४॥

शब्दार्थः—समुद्द=समुद्र। असमान=विषम। अब्बन=सब। बुड्डहि=डूब जाते। बोहित=नौका। भारु=भार। सबु=सब। उद्धरि=मुक्त कर दिये। उद्ध=लड़े। कुमार=पुत्र। नन=नहीं। को=कोई। सव=सब। साहिब-सेन=सेना की साहिबी (शान)। निबाहिके=बनी रखकर। बुझभयौ=बुझगया, शान्त होगया।

अर्थः—उस समय जयचंद समुद्र रूप दिखाई देता था। जिसमें विषमता युक्त अद्भुत रस भरा हुआ था उसे किस प्रकार पार किया जासकता था। वार करते हुए भी सब योद्धा उस समुद्र में डूब जाते थे। तब वीर हरब्रह्मराय गौड़ क्षत्रिय, नौका रूप हो उस युद्धभार को वहन किया। धन्य है उसकी जननी को, जिसका जाया हुआ पुत्र वह वीर वार करता हुआ बढ़ कर स्वामी (पृथ्वीराज) तथा बड़े २ साथियों पर आई हुई विपत्ति से उन्हें मुक्त किया। जैसा उस गौर वंशी ने युद्ध किया वैसा न तो कोई कर पाया और न कोई कर ही सकेगा। उसने अपनी सेना की तरफ से सब प्रकार से शान रखली, तब वह (कुल दीपक) वीर बुझ पाया। (या तभी उसका क्रोध शान्त हुआ)।

घरिय च्यारि दिन रह्यौ, घरिय दुअ विक्तकु वित्तौ।
नको जीय भय मुर्‌यो, नको हार्‌यौ नहँ जित्तौ॥
पंच सहस में पंच, लुथ्थि पर लुथ्थि अहुट्टिय
लिखं अक बिनु क्रक, नको जुझयो बिनु खुट्टिय॥
दुअ घरिय मोह मारुत बज्यौ, करुण-अभ्र बरख्यौ निमुख।
तिरि गत्त राज तामस बुझयौ, दिख्यिय पग सजोगि मुख॥६५५॥

शब्दार्थः—विक्तकु वित्तौ=ऐसी घटना घटी, ऐसी स्थिति होगई। नको=नहीं। जित्तौ=जाता। सें पंच=पांच सौ। लुथ्थि=शव। अहुट्टिय=अरगई, लगगई। क्रक=युद्ध। नको=ऐसा कोई भी नहीं। खुट्टिय=मारे गये। करुण अभ्र=करुणाभ्र। बरख्यौ=बरसा, टपका। निमुख=निमेष। तिरि-गत्त=त्वर गति, अतिशीघ्र, उसी क्षण। तामस=तमोगुण, क्रोध। बुझयौ=शान्त होगया, अंत होगया।

अर्थः—जब चार घड़ी दिन शेष रह पाया तब दो घडी तक युद्ध की ऐसी स्थिति रही कि कौन जीवित रहा और कौन मारा गया तथा किसकी हार और किसकी जीत हुई, इसका निश्चय नहीं हो पाया। उस समय दोनों ओर के साढ़े पांच सहस्र वीर मारे गये जिनके शवों का ढेर लग गया। वहां पर जितने भी थे वे सब मारे नहीं गये किन्तु जिनके भाल पर विधाता द्वारा युद्ध में आंक नहीं लिखे गये उनमें से भी उस समय शायद ही कोई अभागा होगा जिसने युद्ध न किया हो। अपनी आन बनी रखने का मोह-मारुत दो घडी तक सब को स्पर्श किये रहा। उसी समय ऐसी दुखद घटना के कारण संयोगिता के करुणाश्रु एक निमेष मात्र के लिये टपके पड़े, उसके मुख को देखते ही पंगुराज के क्रोध का उसी क्षण अंत हो गया।

नैननि नख्खति कनक कन, पेमं समुद्दह बाल।
प्रथम सु पिय उड्डुन उरह, (मनु) भुलवति मुद्ध मराल ॥६४६॥

शब्दार्थः—नख्खति=डालती हुई, बरसाती हुई। कनक-कन=स्वर्ण कण तुल्य अश्रु बूंदें। पेम=प्रेम। समुद्दह=समुद्र। बाल=बाला, सुन्दरी संयोगिता। उड्डुन=उड़ना चाहती। भुलवति=भुला देती। मुद्ध=मुग्धा।

अर्थः—वह प्रेम समुद्र रूपी मुग्धा सुन्दरी (संयोगिता) उस समय नेत्रों द्वारा स्वर्ण-कण सदृश (उसके स्वर्णिम कपोलों की झलक पडने के कारण स्वर्ण-कण तुल्य) अश्रु बूंदे बरसाती हुई हृदय से प्यारे पृथ्वीराज से पहले ही उड़ कर इस संसार से विदा होने का भाव दिखाती हुई हंसो (की द्रुत गति) को भुला देती थी (अर्थात प्यारे से पूर्व ही संसार से विदा होने के भाव उसकी चेष्टाओं से दिखाई पड़ने के कारण ही जयचंद की तामस वृत्ति का अंत हुआ)।

दिख्ख पग सजोगि मुख, दुख किन्नौ दल सोग।
जग्य जरयौ राजन सघन, अवरण आहुति जोग ॥६४७॥

शब्दार्थः—सोग=शोक, खेद। जरयौ=जलाया गया, प्रज्वलित किया। सघन=बहुत से। अवरण=अवर्ण। जोग=योग्य, उचित।

अर्थः—इस प्रकार संयोगिता का उपरोक्त भाव पूर्ण मुख देखकर चिन्तित हो युद्ध द्वारा व्यर्थ ही सेना की समाप्ति होने पर खेद प्रगट करता हुआ पंगुराज कहने लगा—

बहुत से राजाओं द्वारा जो यज्ञ प्रज्ज्वलित किया गया। उसकी अन्तिम आहुति इस युद्ध द्वारा हो चुकी (अर्थात् अब युद्ध समाप्त कर देना चाहिये)।

इह कहि परदक्खिन फिरिग, नमसकारु सुव कीन।
दान पतिष्ठा तू अ वर, मैं ढिल्ली पुर दीन ॥ ६५८॥

शब्दार्थः—इय कहि=ऐसा कहता हुआ। परदक्खिन=प्रदक्षिणा। फिरिग=कर। नमसकारु=नमस्कार। सुव=उसने। तू अ–वर=तुझ को समर्पित कर के।

अर्थः—ऐसा कहता हुआ पगुराज वर–वधू (पृथ्वीराज और संयोगिता) के अंतिम विदाई की प्रथा के अनुसार प्रदक्षिणा कर उनसे नमस्कार कर निम्न वाक्य कहे–हे प्यारी पुत्री! तुझे वीर चाहुआन को समर्पित करते हुए दिल्ली नगर को मैं अपनी प्रतिष्ठा दान में अर्पित करता हूँ।

चढि चुहान दिल्ली रुखह, उडी दुहुँ दल खेह।
छडि आस चहुआन की गयौ पग फिरि गेह ॥६५६॥

शब्दार्थः—चुहान=चाहुवान राजा पृथ्वीराज। दिल्ली–रुखह=दिल्ली की ओर। खेह=धूलि। फिरि=लौट कर।

अर्थः—तत्पश्चात् चाहुआन ने दिल्ली की ओर घोडों को बढाया और पगुराज भी पृथ्वीराज को पकडने की आशा छोडकर घर लौटा जिससे दोनों दलों की पद–धूलि आकाश में छा गई।

कवित्त

फिर्यौ राज कमधज्ज, मुक्कि जीवत चहुआनह।
जानि सँजोगि समध, मग्ग कनवज्ज सु प्रानह ॥
फिरे सग राजान, मानि मत्तौ वर बीरह।
मणु पल छंडे स्यघ, कोप उर करे सु धीरह ॥
निज चलत मग्ग जैचंद पहु, परे सुभर रण अप्प पर।
किय प्रथुक वन्हि कारण न्रपति, दीय दाघ जल गग थर ॥६६०॥

शब्दार्थः—मतौ=मन्त्रणा। मणु=मनु, मानो। अप्प=अपने। पर=पराये। किय–प्रथुक=युद्ध स्थल से दूर किये (उठवाये)। वन्हि–कारण=दाह क्रिया के लिए। दीय=किया। दाघ=अग्नि संस्कार। थर=थल, स्थान।

अर्थ:—संयोगिता के सम्बन्ध को जानकर पृथ्वीराज को जीवित छोड़ कर कमधज राज का मन कन्नौज के मार्ग की ओर हो गया और वह लौट पड़ा। उसने अपने साथी राजाओं को भी अपने २ स्थान को लौटा दिये। वे श्रेष्ठ धीर-वीर राजा पगु-राज की मन्त्रणा को मान कर क्रोध में सने हुए (संयोगिता के वरण की आशा छोड़ कर) इस प्रकार लौटे जिस प्रकार सिंह अपने भक्ष्य को कोप करते हुए छोड़ता है। अपने साथियो सहित राजा जयचद मार्ग में चलता हुआ रण स्थल में, जो अपने और पराये श्रेष्ठ योद्धा पड़े हुए थे, उन्हें-दाह क्रिया के लिये उठवाये और गंगा जैसे पवित्र स्थान पर अग्नि संस्कार कर उन्हें जलाञ्जलि दी।

वरु छड्यौ दुव राइ, वरु ण छंड्यौ वर वारर।
सिर थक्यौ सहि सार, करु न थक्यौ गहि सारर॥
रव थक्यौ रव रवन, रवन थक्यौ मुख मारह।
धरु थक्यौ धर परत, मनु न थक्यौ उच्चारह॥
पायौ न पारु पौरिख पिसुन, स्वामि न मह अच्छरि जप्यो।
जिम जिम सु सिंह सम्मीर सिव, तिम तिम सिव! सिव!! सिव तप्यो॥६६१॥

शब्दार्थ:—वरु=बल, शक्ति प्रदर्शित करना। दुव=दोनों। राइ=राजा। वरु=किन्तु। वारर=वार करना। करु=कर। सारर=लोहा, शस्त्र। रव=आवाज। रव=रमकर, फैलकर। रवन=रमण, प्यारे। धरु=धड़, रुण्ड। उच्चारह=वह विचरण करता, विहरता। पौरिख=पुरुषार्थ। पिसुन=शत्रुओं ने। जप्यो=कहा। सिंह=सिंह स्वरूपी। सम्मीर=स्मरण किया। तप्यो=तृप्यो, लज्जित हुआ।

अर्थ:—उधर स्वर्ग में अप्सराएँ वरण किये हुए वीरों को कहने लगी। हे स्वामी! दोनों राजाओं (पगुराज और पृथ्वीराज) ने अपना २ बल प्रदर्शित करना छोड दिया फिर भी वार करने की इच्छा आपकी नहीं मिटी। आपका सिर लोह प्रहारों को सहन कर थक गया है, किन्तु आपके हाथ लोह ग्रहण करने की अभी भी शक्ति रखते हैं। आपके मुख से निकले हुए शब्द चारों ओर व्याप्त हो जाने से थक गये हैं किन्तु आपका मुख मार २ ध्वनि करने से नहीं थका। आपका रुण्ड धराशायी होने पर थक गया, किन्तु आपका मन अब भी उसी प्रकार युद्ध में विहरता है। आपके पुरुषार्थ का विपत्तियों ने पार नहीं पाया। आप सिंह स्वरूपी वीरों ने ज्योंही शिव का स्मरण किया। त्योंही शिव! शिव!! शिव लज्जित हो गये। (शिव इसलिये

बहुत से राजाओं द्वारा जो यज्ञ प्रज्ज्वलित किया गया। उसकी अन्तिम आहुति इस युद्ध द्वारा हो चुकी (अर्थात् अब युद्ध समाप्त कर देना चाहिये)।

इह कहि परदछिन फिरिग, नमसकारु सुव कीन।
दान पतिष्ठा तू अ अर, मैं ढिल्ली पुर दीन ॥ ६७८॥

शब्दार्थः—इय कहि=ऐसा कहता हुआ। परदछिन=प्रदक्षिणा। फिरिग=कर। नमसकारु=नमस्कार। सुव=उसने। तू अ—अर=तुझ को समर्पित कर के।

अर्थः—ऐसा कहता हुआ पंगुराज वर-वधू (पृथ्वीराज और संयोगिता) के अंतिम विदाई की प्रथा के अनुसार प्रदक्षिणा कर उनसे नमस्कार कर निम्न वाक्य कहे—हे प्यारी पुत्री! तुझे वीर चाहुआन को समर्पित करते हुए दिल्ली नगर को मैं अपनी प्रतिष्ठा दान मे अर्पित करता हूँ।

चढि चुहान दिल्ली रुखह, उड़ी दुहुँ दल खेह।
छडि आस चहुआन की गयौ पग फिरि गेह ॥६७९॥

शब्दार्थः—चुहान=चाहुआन राजा पृथ्वीराज। दिल्ली—रुखह=दिल्ली की ओर। खेह=धूलि। फिरि=लौट कर।

अर्थः—तत्तपश्चात् चाहुआन ने दिल्ली की ओर घोडो को बढाया और पंगुराज भी पृथ्वीराज को पकडने की आशा छोडकर घर लौटा जिससे दोनों दलों की पद-धूलि आकाश मे छा गई।

कवित्त

फिरयौ राज कमधज्ज, मुक्कि जीवत चहुआनह।
जानि संजोगि समध, मग्ग कनवज्ज सु थानह ॥
फिरे सग राजान, मानि मनौ वर वीरह।
मणु पल छंड स्यघ, कोप उर करे सु धीरह ॥
निज चलत मग्ग जैचंद पहु, परे सुभर रण अप्प पर।
किय प्रथुक वन्हि कारण नृपति, दीय दाघ जल गग थर ॥६८०॥

शब्दार्थः—मनौ=मनवा। मणु=मनु, मानो। अप्प=अपने। पर=पराये। किय—प्रथुक=युद्ध स्थल से दूर किये (उठवाये)। वन्हि—कारण=दाह किया के लिए। दीय=किया। दाघ=अग्नि संस्कार। थर=थल, स्थान।

दोहा

वध्धाई ढिल्ली नगर, एकादसि दिन छेह।
के रवि मंडल संचरिग, के मिलि मंगल ग्रेह ॥६६३॥

शब्दार्थः—छेह=छागई, दीगई। के=कितने ही। मिलि=मिलने वाले है, आने वाले हैं।

अर्थः—इस विजय की बधाई (सूचना) दिल्ली नगर को एकादशी के दिन दी गई कि कितने ही वीर तो सूर्य मण्डल को पार कर गये हैं और शेष सकुशल घर पर आने वाले हैं।

सघन घाय सामंत रिण, उप्पारिग कवि ईस।
मध्य अमौलिक सुन्दरी, डोला तेरह तीस ॥६६४॥

शब्दार्थः—सघन-घाय=गहरे घाव लगे हुए। रिण=युद्धस्थल से। उप्पारिग=उठाये। कवि ईस=कवीश्वर, कवि चन्द। अमोलिक=अमूल्य। तेरह-तीस=त्रयालीस।

अर्थः—रणस्थल मे कवि चन्द ठहर कर गहरे घाव लगे हुए घायल सामन्तों को उठवाया और अमूल्य सुन्दरी संयोगिता को पालकी में बिठाकर उपरोक्त त्रयालीस घायल सामन्तों की डोलियें भी आगे पीछे चलाई।

हमकि हसम हय गय खरिग, वाहिर जुग्गिनि नैर।
हलकि जमुन जल उत्तरिग, बाल वृद्ध जुअ वैर ॥६६५॥

शब्दार्थः—हमकि=हुँकार करते हुए। हसम-हय-गय=अश्वारोही और गजारोही सेनायें। [illegible]=चलकर। वाहिर=बाहर। हलकि=हरकि, हर्षित होते हुए। जुअ=युवा। वैर=उस समय।

[illegible]—हुँकार करती हुई अश्वारोही और गजारोही सेनाये उन डोलियों के साथ [illegible]कर दिल्ली नगर के बाहर आ पहुँची, यह देख हर्षित होते हुए दिल्ली निवासी [illegible] वृद्ध और युवकों ने उसी समय राजा की अगवानी के लिये जमुना नदी को [illegible]।

इक घर सिंधुअ सचरिग, इक घर बन्दन वार।
तेरसित त्रयक वज्जि वहु, राज घरह गुरवार* ॥६६६॥

* अष्टमी को कनवज का युद्ध शुरू हुआ उस हिसाब से त्रयोदशी बुधवार को आती [illegible] की वृद्धि हुई हो तो त्रयोदशी गुरुवार को होना संभव है। अथवा "तेरसि" का [illegible]करना चाहिये।

लज्जित हुए कि उन्होंने कई कल्पो तक तपस्या की। उस करनी को इन्होंने क्षण भर मे युद्ध द्वारा प्राप्त करली। अर्थात ये मुझ से भी महान योगी हैं मुझे स्मरण कर वृथा लज्जित करते हैं)।

एक गत्तिय सकल, विकल उच्चरिय राज मुख।
भृकुटि अङ्क बकुरिय, असु तिहि लिखिय मद्धि रुख ॥
विस्न विमान उपारि, देव डुल्लिय मिलि चल्लिय।
भ्रम-भ्रमंकि आयास, पति अच्छरि अलि मिल्लिय ॥
एक चवै कवि किय कमल, मुकति ध्रंक-करि-करिय त्रप।
तन राज काज जाजह भिरिग, सुमति सीह भइ देव वप ॥६६७॥

शब्दार्थः—एक गत्तिय=एक ही गति। भृकुटि-अंक=भृकुटि रेखा। बकुरिय=वक्रता। असु=अश्रु। लिखिय=लखिय, दिखाई दिया। रुख=चेष्टा। विस्न=विष्णु। उपारि=बैठा कर। डुल्लिय=डुलादिये चकित कर दिये। भ्रम भ्रमकि=ध्वनि करती हुई। आयास=आकाश। पति=पंक्ति। अलि-मिल्लिय=वे सब सुन्दरियें मिलकर। चवै=कहने लगे। किय-कमल=कमाल का काम किया। ध्रंक-करि=ढलका कर, बिखेर कर। करिय=हाथियों के। तन=तन कर। राज काज=आपके कार्य के लिए। जाजह=आभा करने योग्य, सम्मान करने योग्य, या जहां तहां। सुमति-सीह=सुमति धारी शेर। भइ=होगई। देव-वप=देव तुल्य काया।

अर्थः—मृत वीरों के लिये दुःख प्रगट करता हुआ कवि चन्द राजा पृथ्वीराज से कहने लगा— सभी वीरों ने एक ही गति प्राप्त की। उसने जब ये वाक्य कहे तब उसकी भृकुटी मे वक्रता (ऐसे वीरों की मृत्यु के कारण विपक्षियो पर क्रोध का भाव दीख पडा) और मुख चेष्टापर अश्रु बहाने का सा आभास हो आया। फिर वह कहने लगा— उन मृत वीरों मे से कितनों को तो स्वयं विष्णु ने आ उनसे भेंट कर देवताओं को चकित करते हुए उन्हें विमान मे बैठा कर ले चले। कितने ही वीरों को आकाश मे विमानों की ध्वनि करती हुई अप्सराओं की टोली ने अपने विमान मे बैठा लिये। वे अप्सराओं को वरण कर चल पडे। कई सम्माननीय वीरों ने कमाल का काम किया, उन्होंने गज-कुम्भ विदीर्ण कर गज मुक्ताओं को बिखेर दियीं, आपके कार्य के लिये वे तनकर उत्साह पूर्वक भिड पडे। उन सुमति धारी शेरों ने देव-शरीर प्राप्त कर लिया (अर्थात् कोई विष्णु द्वारा कोई अप्सराओं द्वारा और कोई देव स्वरूप प्राप्त कर स्वर्ग मे जा बसे)।

दोहा

वध्धाई ढिल्ली नगर, एकादसि दिन छेह।
के रवि मंडल संचरिग, के मिलि मंगल ग्रेह॥६६३॥

शब्दार्थः—छेह=छागई, दीगई। के=कितने ही। मिलि=मिलने वाले हैं, आने वाले हैं।

अर्थः—इस विजय की वधाई (सूचना) दिल्ली नगर को एकादशी के दिन दी गई कि कितने ही वीर तो सूर्य मण्डल को पार कर गये हैं और शेष सकुशल घर पर आने वाले हैं।

सघन घाय सामंत रिण, उप्पारिग कवि ईस।
मध्य अमोलिक सुन्दरी, डोला तेरह तीस॥६६४॥

शब्दार्थः—सघन-घाय=गहरे घाव लगे हुए। रिण=युद्धस्थल से। उप्पारिग=उठवायें। कवि ईस=कवीश्वर, कवि चन्द। अमोलिक=अमूल्य। तेरह-तीस=त्रयालीस।

अर्थः—रणस्थल में कवि चन्द ठहर कर गहरे घाव लगे हुए घायल सामन्तों को उठवाया और अमूल्य सुन्दरी संयोगिता को पालकी में बिठाकर उपरोक्त त्रयालीस घायल सामन्तों की डोलियें भी आगे पीछे चलाई।

हमकि हसम हय गय खरिग, वाहिर जुग्गिनि नैर।
हलकि जमुन जल उत्तरिग, बाल वृद्ध जुअ वैर॥६६५॥

शब्दार्थः—हमकि=हुंकार करते हुए। हसम-हय-गय=अश्वारोही और गजारोही सेनायें। खरिग=चलकर। वाहिर=बाहर। हलकि=हरकि, हर्षित होते हुए। जुअ=युवा। वेर=उस समय।

अर्थः—हुंकार करती हुई अश्वारोही और गजारोही सेनायें उन डोलियों के साथ चलकर दिल्ली नगर के बाहर आ पहुँची, यह देख हर्षित होते हुए दिल्ली निवासी बाल, वृद्ध और युवकों ने उसी समय राजा की अगवानी के लिये जमुना नदी को पार किया।

इक घर सिंधुअ संचरिग, इक घर वन्दन वार।
तेरसित त्रवक वज्जि वहु, राज घरह गुरवार*॥६६६॥

---

* शुक्रवार अष्टमी को कनवज का युद्ध शुरू हुआ उस हिसाब से त्रयोदशी बुधवार को आती है लेकिन कोई तिथि की वृद्धि हुई हो तो त्रयोदशी गुरुवार को होना सम्भव है। अथवा "तेरसि" का अर्थ "उनके प्रेम से" करना चाहिये।

शब्दार्थः—सिन्धुश्र = सिन्धू राग, वीर राग। सचरिग=सचार हुआ, गाया जाने लगा। वन्दनवार= बन्दन माला। तेरसि=तेरस को या उनके प्रेम के। त्रवक=वाद्य। गुर वार=गुरूवार।

अर्थः—मृत वीरों के द्वार पर उनकी वीरता के वीर राग गाये जाने लगे और विजयी वीरों के द्वार पर जय-सूचक वन्दन वार (तोरण) शोभा देने लगी। राज-द्वार पर त्रयोदशी गुरुवार को बहुत से विजय वाद्य बजने लगे (या राजप्रासाद के द्वार पर उस संयोगिता और पृथ्वीराज के प्रेम के वाद्य बजने लगे)।

पुर कनवज कमधज्ज गौ, अति उर गठिय अथ्थ।
व्याह विद्धि कन्या करौ, चिंति कन्नौजी नथ्थ ॥६६७॥

शब्दार्थः—गठिय=गाठ कर, निश्चय कर। अथ्थ=अर्थ, द्रव्य।

अर्थः—कन्नौजपति कमधज्जराज कन्नौज पहुँच कर विशेष द्रव्य दहेज मे पहुँचाने की हृदय मे दृढ़ निश्चय कर कुमारी का विधिवत विवाह करवाये जाने का चिन्तन किया।

कहै चद प्रोहित प्रति, तुम दिल्लीपुर जाहु।
विधि विचित्र सजोगि को, करौ देव विधि व्याहु ६६८॥

शब्दार्थः—विधि विचित्र=विचित्र विधि से। विधि व्याहु=विधि पूर्वक विवाह।

अर्थः—जयचद ने पुरोहित से कहा—तुम दिल्ली जाकर जिस कुमारी सयोगिता का का विचित्र विधि से विवाह हो पाया है उसका अब देव विधि से विवाह करो (देवताओं की साक्षी से पाणि ग्रहण कराओ)।

नग अनेक विधि विधि विचित्र विवणि गनै को गेउ।
विर्जै करत विजपाल निज, लिय सु वस्त दिवि जेउ ॥६६९॥

शब्दार्थः—विवणि = विवरण। गनै को = कौन गिन सकता है। गेऊ = गणितज्ञ। वस्त = वस्तु। दिवि जेऊ = दे आओ।

अर्थः—अनेक प्रकार के विचित्र नँग जिनका विवरण और गिनती कौन गणितज्ञ कर सकता है, ऐसे नँग और विविध वस्तुएँ मेरे पिता राजा विजयपाल ने जो प्राप्त की थी वे सब तुम जाकर दहेज मे दे आओ।

हेम हयगय अमरह, दासी सहस सु दिन्न।
प्रोहित पंग सु ब्रह्म रिषि व्याह विद्धि वर किन्न ॥६७०॥

शब्दार्थः—अमरह=अंबर, वस्त्र। सहस=सहस्र। ब्रह्म रिखि=ब्रह्मर्षि।

अर्थः—स्वर्ण, हाथी, घोड़े, वस्त्र और एक सहस्र दासियाँ दहेज में देते हुए पंगुराज के पुरोहित ब्रह्म ऋषि (योग को प्राप्त किये हुए) ने श्रेष्ठ विवाह विधि को पूर्ण की।

कवित्त

कनक कलस सिर धरहि, चवहिं मंगल अनेक त्रिय।
पाटंवर वहु द्रव्य, सज्जि सव सगुन राज लिय॥
ढ़रहि चौर गजगाह, इक्क आरती उतारहि।
इक्क छोरि करि केस, रेण चरणन की झारहि॥
इमि जंपहि चंदु वरहिया, मुकता हल पुज्जहि विभुअ।
घर आइ जित्ति ढ़िल्ली नर-यँदु, सकल लोक आनद हुअ॥६७१॥

शब्दार्थः—चवहिं-मंगल=मगल गान करती। पाटवर=रेशमी वस्त्र। द्रव्य=सुरभित द्रव पदार्थ या- निछावर करने को विविध द्रव्य। चौर—गजगाह=वन सुरभि के केशों के बने हुए चामर। रेण=रज। विभुअ=ईश्वर, स्वामी। जित्ति=विजय प्राप्त कर। ढ़िल्ली—नर्यँदु=दिल्लीश्वर।

अर्थः—विवाह के समय कितनी ही सुन्दरियाँ श्रेष्ठ वस्त्राभूषणों से सुसज्जित, सिर पर स्वर्ण-कलश लिये हुए राजा को शुभ शकुन देने के लिये मगल गान करती हुई सामने आकर खडी हो गई। उनमे से कोई तो वन सुरभि के केशों से बनी हुई चामरें डुलाती थी, कोई आरती उतारती थी, कोई अपने सिर के खुले हुए केशों द्वारा चरणों की रज को झाडने लगती थी। चँद वरदाई कहता है—कोई मोती बिखेर कर स्वामी की पूजा करने लगी थी। इस प्रकार दिल्लीश्वर के विजय प्राप्त कर घर लौटने पर सब लोकों मे आनन्द छा गया।

दोहा

दिव मडन तारक सकल, सर मंडन कमलान।
रन मडन नर भर सु भर, महि मंडन महिलान॥६७२॥

शब्दार्थः—दिव=आकाश। मडन=शोभा। तारक=तारे। सर=तालाब। कमलान=कमलों से। महिलान=महिलाओं से।

अर्थः—जिस प्रकार आकाश की शोभा तारों से, तालाब की शोभा कमल से, रण-स्थल की शोभा श्रेष्ठ योद्धाओं से मानी जाती है, उसी प्रकार पृथ्वी की शोभा सुन्दर महिलाओं से है।

महिलन मडन त्रपति ग्रह, कनक कंति ललनान ।
ता उप्पर संजोगि नगु, धरि राजनु बलवान ।।६७३।।

शब्दार्थः—महिलन=महिलाओं की । मडन=शोभा । त्रपति ग्रह=राज प्रासाद में । कनक-कंति=स्वर्ण कान्ति । ता-उप्पर=उनमें, उनके बीच । नगु=नॅग । धरि=स्थान दिया । राजनु=राजा पृथ्वीराज ।

अर्थः—पहले ही से पृथ्वीराज के राजप्रासाद में महिलाओं की शोभा स्वरूपा स्वर्णकांति वाली कितनी ही ललनाएँ थीं, किन्तु बलवान राजा पृथ्वीराज ने उन कनककांति धारी ललनाओं के बीच मे संयोगिता को नॅग के समान स्थान दिया ।

राजन तन सह प्रिय वदन, काम गिनति न भोग ।
सरैं न पल लेतें पलनि, त्रपति-नयन संजोग ।।६७४।।

शब्दार्थः—राजन-तन=राजा के शरीर को, राजा पृथ्वीराज को । वदन=मुख । गिन त न=नही गिनती, स्थान नहीं देती । सर न= नही बनता, शान्ति नहीं मिलती । लेते-पलनि=पलकों में बसाने के । सजोग=सयोगिता ।

अर्थः—राजा को सभी रानियो के मुख प्यारे थे । वे रानियाँ उत्तम प्रेम पालन करना जानती थीं । काम और भोग को वे कुछ भी स्थान नही देती थी । फिर भी राजा के नेत्रों की पलके सयोगिता को देखे बिना पल भर भी शान्ति नही पाती थी ।

सुभ हरम्य मडिग त्रपति, दिपति दीप दिव लोक ।
मकुर मयूख अमृत झरहि, करहि ति मनह असोक ।।६७५।।

शब्दार्थः—हरम्य=महल, राजप्रासाद । दिपति=दिप्ति । दीप-दिव लोक=स्वर्ग के दीपक तुल्य सयोगिता । मयूख=चन्द्र किरण । करहि=कर देती । ति=वह । असोक=शोक रहित ।

अर्थः—पृथ्वीराज ने स्वर्ग लोक के दीपक तुल्य सयोगिता को लाकर अपने राज प्रासाद को सुशोभित कर दिया । दर्पण मे उसके मुख का प्रतिबिम्ब पडने से चारों ओर (मुख चन्द्र का) प्रकाश फैलने लगा और (वाणी द्वारा) अमृत वर्षा होने लगी जो मन को शोक रहित करने वाली थी ।

वय वसत छत स तकिय, अत सामत सजीव ।
ग्रीष्म गढ़ि सु पिम्म पहु, अमृत सुधारस पीव ।।६७६।।

शब्दार्थ:—वय=उस (संयोगिता)। छत=क्षत। स-तकिय=वे देखे गये। भ्रत=भृत्य, सेवक। सजीव=जीवन शक्ति रखने वाले। गंठि=गाँठ, गठ बंधन। पिम्म=प्रेम। अमृत=अमर देव तुल्य। पीव=पीने लगा।

अर्थ:—उस संयोगिता के कारण वसंत ऋतु में बहुत से जीवन शक्ति रखने वाले सामंतों और सेवकों के शरीर क्षत-विक्षत देखे गये। ग्रीष्म ऋतु में पृथ्वीराज और संयोगिता के प्रेम का गठ बधन हो गया और वह देव तुल्य राजा सुधारस का पान करने लगा।

गाथा

अंबा अंबाह पत्ती, कंती कताय दिट्ठ सा दिट्ठौ।
महिला मरम सु मिट्ठौ, पत्तौ कंताइ इच्छि सिच्छाइ ॥६७७॥

शब्दार्थ:—अंबा=आम। अंबाह पत्ती=आम्र मजरी। कंती=स्त्री, रानी। कंताय=कंथ (पृथ्वीराज)। दिट्ठ=दृष्टि से। सा=उसने। दिट्ठौ=देखा। मरम=तत्व युक्त। मिट्ठौ=मिठास। पत्तौ=पहुँचा। इच्छि=इच्छनी। सिच्छाइ=शिक्षित।

अर्थ:—प्यारे पृथ्वीराज ने अपनी दृष्टि से एक (रानी इच्छनी) को फलित आम्र तुल्य और दूसरी (रानी सयोगिता) को आम्र मजरी के समान कोमल देखा। इसलिए वह महिलाओं मे गहरे मिठास वाली तथा शिक्षिता रानी इच्छनी के यहाँ चला गया।

दोहा

भजै न राज सँजोगि सम, अति सुख्खिम तन जानि।
तब सु सखी पगारिण वर, रची बुद्धि आपानि ॥६७८॥

शब्दार्थ:—भजै-न=स्मृति नहीं करता, पास नहीं जाता, सुरति प्रेम नहीं करता। सुख्खिम-तन=क्षीण काय, कृषाङ्गी। पंगाणि=पगु कुमारी (सयोगिता)। रची=रचना की। आपानि=अपनी।

अर्थ:—उस संयोगिता को अति कृपाङ्गी समझ कर राजा उससे सुरति प्रेम नहीं करना चाहता, यह देख सयोगिता की श्रेष्ठ सखी ने अपनी बुद्धि से यह रचना की।

मधि अगन नव दल सु तरु, पत्र मौर घन उट्ठि।
इक मजर पर भ्रमर भ्रमि, वास आस रस त्रिट्ठि ॥६७९॥

शब्दार्थ:—मधि अगन=राज महल के आँगन में। नव दल=पल्लव। घन=घने। त्रिट्ठि=बैठा।

महिलन मंडन नृपति ग्रह, कनक कंति ललनान ।
ता उप्पर संजोगि नगु, धरि राजनु बलवान ॥६७३॥

शब्दार्थ:—महिलन=महिलाओं की। मंडन=शोभा । नृपति ग्रह=राज प्रासाद में। कनक-कंति=स्वर्ण कान्ति । ता-उप्पर=उनमें, उनके बीच। नगु=नग। धरि=स्थान दिया । राजनु= राजा पृथ्वीराज।

अर्थ:—पहले ही से पृथ्वीराज के राजप्रासाद में महिलाओं की शोभा स्वरूपा स्वर्णकांति वाली कितनी ही ललनाएँ थीं, किन्तु बलवान राजा पृथ्वीराज ने उन कनककांति धारी ललनाओं के बीच मे संयोगिता को नग के समान स्थान दिया।

राजन तन मह प्रिय वदन, काम गिनति न भोग ।
सरै न पल लेतें पलनि, नृपति-नयन सजोग ॥६७४॥

शब्दार्थ:—राजन-तन=राजा के शरीर को, राजा पृथ्वीराज को। वदन=मुख । गिन त न=नहीं गिनती, स्थान नहीं देती। सरै न= नही बनता, शान्ति नहीं मिलती । लेते-पलनि=पलकों में बसाने के। सजोग=सयोगिता।

अर्थ:—राजा को सभी रानियों के मुख प्यारे थे। वे रानियाँ उत्तम प्रेम पालन करना जानती थीं। काम और भोग को वे कुछ भी स्थान नहीं देती थीं। फिर भी राजा के नेत्रों की पलकें सयोगिता को देखे बिना पल भर भी शान्ति नहीं पाती थीं।

सुभ हरम्य मंडिग ग्रानि, दिपति दीप दिव लोक ।
मुकुर मयूख अमृत झरहि, करहि ति मनह असोक ॥६७५॥

शब्दार्थ:—हरम्य=महल, राजप्रासाद । दिपति=दिप्ति। दीप-दिव लोक=स्वर्ग के दीपक तुल्य सयोगिता। मयूख=चन्द्र किरण। करहि=कर देती। ति=वह। असोक=शोक रहित ।

अर्थ:—पृथ्वीराज ने स्वर्ग लोक के दीपक तुल्य सयोगिता को लाकर अपने राज प्रासाद को सुशोभित कर दिया । दर्पण में उसके मुख का प्रतिबिम्ब पड़ने से चारों ओर (मुख चन्द्र का) प्रकाश फैलने लगा और (वाणी द्वारा) अमृत वर्षा होने लगी जो मन को शोक रहित करने वाली थी।

वय वसंत छुत स तकिय, ध्रुत सामंत सजीव।
ग्रीषम गट्टि सु पिम्म पहु, अमृत सुधारस पीव ॥६७६॥

शब्दार्थ:—वय=उस (संयोगिता)। छत=क्षत। स-तकिय=वे देखे गये। भ्रत=भृत्य, सेवक। सजीव=जीवन शक्ति रखने वाले। गठि=गाँठ, गठ बंधन। पिम्म=प्रेम। अमृत=अमर देव तुल्य। पीव=पीने लगा।

अर्थ:—उस संयोगिता के कारण वसंत ऋतु में बहुत से जीवन शक्ति रखने वाले सामंतों और सेवकों के शरीर क्षत-विक्षत देखे गये। ग्रीष्म ऋतु में पृथ्वीराज और संयोगिता के प्रेम का गठ बंधन हो गया और वह देव तुल्य राजा सुधारस का पान करने लगा।

गाथा

अंबा अंबाह पत्ती, कंती कंताय दिट्ठ सा दिट्ठौ।
महिला मरम सु मिट्ठौ, पत्तौ कंताइ इच्छि सिच्छाइ ॥६७७॥

शब्दार्थ:—अंबा=आम। अंबाह पत्ती=आम्र मंजरी। कंती=स्त्री, रानी। कंताय=कंथ (पृथ्वीराज)। दिट्ठ=दृष्टि से। सा=उसने। दिट्ठौ=देखा। मरम=तत्व युक्त। मिट्ठौ=मिठास। पत्तौ=पहुँचा। इच्छि=इच्छनी। सिच्छाइ=शिक्षित।

अर्थ:—प्यारे पृथ्वीराज ने अपनी दृष्टि से एक (रानी इच्छनी) को फलित आम्र तुल्य और दूसरी (रानी संयोगिता) को आम्र मंजरी के समान कोमल देखा। इसलिए वह महिलाओं में गहरे मिठास वाली तथा शिक्षिता रानी इच्छनी के यहाँ चला गया।

दोहा

भजै न राज सँजोगि सम, अति सुखिम तन जानि।
तब सु सखी पगारिण वर, रची बुद्धि अपानि ॥६७८॥

शब्दार्थ:—भजै-न=स्मृति नहीं करता, पास नहीं जाता, सुरति प्रेम नहीं करता। सुखिम-तन=क्षीण काय, कृषाङ्गी। पगारिण=पंगु कुमारी (संयोगिता)। रची=रचना की। अपानि=अपनी।

अर्थ:—उस संयोगिता को अति कृषाङ्गी समझ कर राजा उससे सुरति प्रेम नहीं करना चाहता, यह देख संयोगिता की श्रेष्ठ सखी ने अपनी बुद्धि से यह रचना की।

मधि अंगन नव दल सु तरु, पत्र मौर घन उट्ठि।
इक मंजर पर भ्रमर भ्रमि, त्रास आस रस विट्ठि ॥६७९॥

शब्दार्थ:—मधि अंगन=राज महल के आंगन में। नव दल=पल्लव। घन=घने। विट्ठि=बैठा।

अर्थः— राज महल के आंगन मे पल्लवित और मंजरित एक सुन्दर आम्रवृक्ष लगा हुआ था। उससे उठने वाली सुवास का रस ग्रहण करने का इच्छुक एक भ्रमर उसकी मंजरी पर आकर बैठा।

भार भ्रमर मंजरि नमिगं, तुटत जानि उठि पंखि।
कछु अंतर राजन सुनहि, बोलि बयन दिखि अखि ॥६८०॥

शब्दार्थः—नमिग=लचक पड़ी। तुटत=टूटती हुई। उठि-पखि=पंख उठाये। कछु-अंतर=कुछ ही दूर पर।

अर्थः—उस भ्रमर के भार से मंजरी लचक पड़ी उसे टूटती हुई जान भ्रमर ने उड़ने के लिये अपने पंख उठाये। उस समय राजा को कुछ ही दूर पर देख कर उस चतुर सखी ने कहना आरंभ किया और राजा सुनने लगा।

रस घुट्टत लुट्टत मयन, नन डुलि नजरियाह।
भार भगत कथ्थह सुणी, अलियल मंजरियाह ॥६७१॥

शब्दार्थः—रस-घुट्टत=रस लेता हुआ। लुट्टत-मयन=मदन सुख लेता हुआ। नन-डुलि=मत टाल। नजरियाह=नजर, दृष्टि। भगत= टूटती हुई। कथ्थह-सणी=कहां सुना। अलियल=अलि, भ्रमर। मंजरियाह=मंजरी।

अर्थः—रस लेता हुआ, मदन-सुख लेता हुआ हे रसिक भॅवरे (प्यारे)! दृष्टि मत टाल। हे अलि! भ्रमर भार से मंजरी को टूटते हुए तूने कहाँ सुना है?

गाथा

आरुहि आरुहि भ्रंग मम डरइ मुद्ध दिक्खि भीनगी।
पतली खग्ग धारा, हय गय कुम्भस्थल हनई ॥६८२॥

शब्दार्थः—आरुहि-आरुहि=बैठ जा-बैठजा। भ्रंग=भ्रंग, भमर। मम डरइ=मत डर, शंका मतकर। मुद्ध=मुग्ध। दिक्खि=देख कर, समझ कर झीनगी=कृषाङ्गी। हनई=चीर देती, काट देती।

अर्थः—खड्ग की पतली धारा घोड़े और हाथियों के कुम्भस्थलो को चीर देती है। अतः हे मुग्धभृंग! इस पर बैठजा, बैठजा, इस नवीन मंजरी को कृषाङ्गी समझ टूटने की शङ्का मत कर।

जं केहरि तन खीन, तं गज मत्त जूथ य दलए।
नव रमनी रमि राज, इक्क पत्त जम्म सुक्खाई ॥६८३॥

शब्दार्थः—ज=जैसे ही, यद्यपि। केहरि=केशरी, सिंह। खीनं=क्षीण, पतला। तं=तैसे ही, फिर भी। जूथयं=यूथ को, समूह को। दलए=दल देता। नव-रमनी=नवीन रमणी से। रमि=रमण कर। इक्कं-पलं=एक पल। जन्म-सुक्खाई=जन्म भर के सुख तुल्य।

अर्थः—यद्यपि सिंह का शरीर पतला होता है फिर भी वह दंगल मे मतवाले हाथियों के समूह को दल देता है। इसीलिये हे राजन! नवीन रमणी के साथ एक पल भर भी रमण करना जन्म भर के सुख के तुल्य है।

दोहा

अलि अलि चलि इक्कत मिलिय, रस सरवर सजोगि।
सो कविचँद त्रिय वर सरस, पुह प्रगटित रति भोग ॥६८४॥

शब्दार्थः—अलि अलि=सब सखियाँ। इक्कत=एक ओर। रस सरवर=रससिन्धु स्वरूपी। त्रिय=संयोगिता। वर=पृथ्वीराज। सरस=सरस मन वाले। पुह प्रगटित=प्रफुल्लित पुष्प के समान। रति भोग=सुरति सुख।

अर्थः—कवि चन्द कहता है कि इसके बाद सब सखियाँ हिल मिलकर चली गईं। तब वह पृथ्वीराज रस सिंधु रूपी संयोगिता के पास पहुँचा। वे दोनों सरस मन वाले थे अत सुरति सुख प्राप्त करते हुए वे पुष्प तुल्य प्रफुल्लित रहने लगे।

सुरत विलास

(समय ५६)

कवित्त

इरु जोवन धन मद, मद राजन मद वारुनि ।
अरु मद देह अरोज, सग नव बनिता तारुनि ॥
अरु बधन पति साह, पैज कनवज्ज सँपूरिय ।
एते मद राजान[1], दुक्ख दंदह करि दूरिय ॥
आनद कद उमगे तनह, संजोगी सर हंस सरि ।
जानै न राज अस्तम उदय, महि जीवन मानै सुपरि ॥ १ ॥

ग्रा० पा० १ भी० ।

शब्दार्थः—मद=नशा, मादकता । राजन=राजत्व का । वारुनि=शराब या गज समूह । अरोज=अरोग, आरोग्य । तारुनि=तरुणी, युवा । बधन-पतिशाह=बादशाह को पकड़ने का । पैज=प्रतिज्ञा । सपूरिय=पूर्ण होना । एते=इतने । राजान=राजा को । ददह=विघ्न । करि दूरिय=दूर कर दिया, दूर रहने लगा । तनह=शरीर । सजोगी=सयोगिता । सर=सरोवर । सरि=समान । अस्तम=अस्त होना । महि=पृथ्वी । सुपरि=सर्वोपरि या-पर ।

अर्थः—राजा को यौवन, धन, राज, शराब (या-गज समूह), आरोग्यता, नव वनिता का रग, बादशाह को पकड़ने और कन्नौज युद्ध मे विजय पाकर प्रतिज्ञा पूर्ण करने का अभिमान हो गया । वह दु ख-द्वन्द्वों से दूर रहने लगा । उसके शरीर मे हर्ष की तरगे उठने लगीं । वह सरोवर रूपी सयोगिता के लिए हस के समान हो गया । उसे उदय अस्त का भी ज्ञान नहीं रहा, पृथ्वी पर वह जवनी को ही सर्वोपरि मानने लगा ।

दोहा

सुरति वरन्निय[1] धव धवनि, रमनि रमे रति रग ।
सम सँजोगि आलिगनह, भ्रमन चित्त अति भ्रंग ॥ २ ॥

ग्रा० पा० १ भी० ।

शब्दार्थ:—सुरति=सुरतिसुख, क्रीड़ा। वरन्नी=वर्णन किया। घवधवनि=उन राजा रानी का दम्पति का)। रमनि=रानी सयोगिता। रमे=रग गया। भ्रमन=मँडराने लगा। भ्र ग=भँवरा।

अर्थ:—उस दम्पति (संयोगिता-पृथ्वीराज) का मैं सुरति-सुख वर्णन करता हूँ, राजा संयोगिता के साथ रति-रग में रगा हुआ था। उसी के साथ सुख और उसीका आलिंगन करता रहता था। उसका चित्त भ्रमर के समान उसी के पास मँडराने लगा।"

सुक्ख दुक्ख इंछिनि सु दुज, मन मंडिय सुनि कान।
मो सेवा तैं बहुत किय, करो[1] खबरि चहुआन ॥ ३ ॥

१ प्रा० पा० १ का०।

शब्दार्थ:—इछिनि=पृथ्वीराज की पटरानी इच्छनी। दुज=पक्षी (तोता,शुक)। मन मडिय=मन में ही रख ली। मो=मेरी। सेवा=चाकरी। तैं=तूने। करो=कर। खबरि=खबर।

अर्थ:—पटरानी इच्छनी के सुख दुःख की बातें सुनकर तोते ने उन्हें मन मे ही रख लिया। तब इच्छनी पुनः कहने लगी, "तूने मेरी बहुत सेवा की है। अत तू चहुआन नरेश्वर के आजकल के चरित्र से मुझे अवगत कर।"

कवित्त

सुक उचरत सुकीय, इछि पम्मारि पवित्तिय।
जैत अनुजि अजुलिय, सलख नदनि अनुरत्तिय ॥
समय अमय भरतार, हार हरनी उर जपिय।
अमय दुमय[1] दुरजनिय, वास वित्तरि क्रर कपिय ॥
विलसै न विसरि रस प्रिय प्रियनि[2], विरह विसरजन भ्रम न करि।
हा रम्य सजोइय[3] निसि, निगम महल मोह मडप न धरि ॥ ४ ॥

१ प्रा० पा० १, ३, पा०। २ भी० पा०।

शब्दार्थ:—सुक=शुक। सुकीय=स्वकीया। इछि=इच्छनी। पम्मारी=प्रमार जाति की। पवित्तिय=पवित्र। जैत=जैत्र प्रमार। अनुजि=बहिन। अजुलिय=अञ्जली देदे। सलख नदनि=सलख पुत्री। अनुरत्तिय=अनुरक्तता को। अमय=अमृतमय। हरनी उर=हृदय को हरण करने वाली। जपिय=कही जाती है। अमय=इस अमृत समय में। दुमय=बुराईयुक्त। दुरजनिय=शत्रु। वास=राज महलों में। वित्तरिक्र=विस्तार कर दिया है। क्र कंपिय=कपित कर। विलसै न=विलसता नहीं है,

विलास नहीं करता है। विसरि=भूल गया है। प्रिय=पति, राजा। प्रियनि=अन्य रानियों को। विसरजन=भूल गया। भ्रम न करि=भ्रम मत कर। हा=अहो! रम्य=सुन्दर। सजोइय=सयोगिता निगम=बेखबर। महल=महिला, रानी। न धरि=मत कर।

अर्थः—तब क कहने लगा—हे स्वकीयापन पालन करने वाली अति पवित्र रानी इच्छनी प्रमारिनी! तू जैत्र की वहिन और सलख की पुत्री है। अब तू अनुरक्ति को अजलि दे दे। इस अमृत-तुल्य समय मे तेरे पति के हृदय को हरने वाली तेरी सवतो उसके गले का हार कही जाती है। इस समय वह बुराई को लेकर और रानियों के लिये शत्रु-तुल्य हो गई है। सारे राज-महलो मे उसने अपना आतक फैला दिया है। उसके सिवाय रस-प्रिय राजा और रानियों से विलास नहीं करता। इसलिए तुझे पति वियोग भूल जाना चाहिये और भ्रम मे नहीं पडना चाहिये। हा, सयोगिता की रात्रियाँ सुन्दर बीत रही है, उस दपति को रात-दिन की खबर तक नहीं है। अत हे रानी! तुझे मडप (पति सभा मे जाने) का मोह नहीं करना चाहिये।"

दोहा

वरत्रिय कर त्रिय निसि निगम, जाम दुनिसि गइ वित्ति।
सुख सु दरि मदिरनि मिल, पजुलि प्रसन प्रतीति॥ ५॥

शब्दार्थः—धरत्रिय=धरित्रा, पृथ्वा, दुनिया। त्रिय=हे सुन्दरि। निगम=अधिक। जाम=प्रहर। दुनिसि=दो रात्रि (उम्र)। वित्ति=वार्ता। सु=मे। दरि=डर। मदिरनि=मदिरों मे। मिल=प्रवेश कर जा। पजुलि प्रसन=पुष्पांजलि मे प्रसन्न होने वाला (ईश्वर)। प्रतीति=विश्वास करले।

अर्थः—हे रानी! तू अब सासारिक बातो को रात्रि का रूप दे (स्वप्न समझ) निश्चित हो जा, क्योंकि तेरी रात्रि रूपी आधी आयु हो गई है। अत सासारिक सुखों से डर कर देव मदिरों मे जाकर पुष्पाञ्जलि से प्रसन्न होने वाले भगवान पर भरोसा कर ले।

दूसरा अर्थ— पृथ्वीराज (पृथ्वी-धरित्रि-पृथ्वीराज) को उस स्त्री ने रात्रि का रूप धारण कर ज्ञानरहित (निगम) कर दिया है। यद्यपि राजा की आधी उम्र बीत गई है फिर भी वह सुख से दलित (दरिद्री हो गया) है क्योंकि उसे वह अत

पुर में पंगु कुमारी (पंगुली) जैसी मिल गई है । राजा उसी से प्रसन्न है और उसी का विश्वास करता है ।

कर धरि इंछनि कीर लिय, हीर मुत्ति जुत कंठ ।
मन मंजुल तंडुल दधहि, प्रेम, पुच्छ भ्रम नंठ ॥ ६ ॥

शब्दार्थः—कीर=तोता । मुत्ति=मोती । मंजुल=श्रेष्ठ । तंडुल=चावल । नंठ=नष्ट कर दिया ।

अर्थः—तब प्रेम पूर्वक रानी इच्छनी ने उस तोते को हाथ पर बैठा लिया जिसके गले में हीरे,मोती पड़े हुए थे और वह तोता तंदुल और दधि खाता था उन्हीं के समान मंजुल (उज्ज्वल) मन वाला था जिससे प्रेम विषयक प्रश्न करके अपने भ्रम को वह दूर कर पाई (अर्थात विरह के दु:ख को दूर कर पाई) ।

पित्र घात सों मन मिलै, और वैर मिट जाय ।
सौंति वैर अंतर जलनि, दिन प्रति ग्रीषम लाय ॥ ७ ॥

शब्दार्थः—पित्र घात=पिता की हत्या करने वाले । लाय=तप, ज्वाला ।

अर्थः—पितृ घातक से मन मिलना और अन्य प्रकार की शत्रुता का भी मिट जाना सम्भव है किन्तु सवति-वैर की आतंरिक जलन ग्रीष्म ज्वाला के समान प्रतिदिन वृद्धि को ही प्राप्त होती रहती है ।

मुख मिट्ठी व्रत्ता करैं, मन में देत सराप ।
बटै प्रेम सु पीय को, अंतर दभ्भै आप ॥ ८ ॥

शब्दार्थः—बत्ता=बातें । बटै=बाट लेती । अंतर=हृदय के अन्दर । आप=स्वयं ।

अर्थः—सवति (सौत) का स्वभाव होता है कि वह मुख पर मीठी बाते करती है और मन में श्राप देती है । पति के प्रेम की साझेदार बन कर अंतर में जलन रखती है ।

एक दिवस संजोगि ग्रह महमानिय सब सौंति ।
आनि सुक्ख प्रगटन मच्छर, अधिक सवतनी होंति ॥ ९ ॥

शब्दार्थः—महमानिय=आमंत्रित की । आनि=लाई । मच्छर=मस्ती, उमंग । अधिक सवतनी=सौतों से विशेष ।

अर्थः—एक दिन संयोगिता ने सब सौतों (रानियां) को अपने महल में आमंत्रित किया । एकत्रित करने का कारण यह था कि वह अपना सुख वैभव और उमंग उन पर प्रगट कर अपने को उनसे विशेष बताना चाहती थी ।

सौति सुहागिलि सुक्ख दिखि, लग्गै नैन अगार ।
ज्यों २ वह छदा करे, त्यों २ करवत धार ॥ १० ॥

शब्दार्थ:—सुहागिलि=सुहागिनी । दिखि=देख कर । लग्गैं=लगने लगे । अंगार=आग, अगारे । छदा=नाज, नखरे ।

अर्थ:—उस सुहागिनी सौत का सुख देखने से अन्य रानियों के नेत्रों मे अगारे जलने लगे और ज्यों२ वह नखरे करने लगीं । त्यों२ दूसरी रानियों के हृदय मे करवतें चलने लगीं ।

धन ग्रह बंटन मुत्ति नग, हेम पटबर सार ॥
पुनि त्रिय प्रिय बंटन सुरति, लगै अधिक खग धार ॥११॥

शब्दार्थ:—बटन=बांटना, हिस्सारसी करना । मुत्ति=मोती । हेम=स्वर्ण । पटबर=पाटवर, रेशमी कपड़ा । सार=लोहा, शस्त्र । सुरति = सुरति सुख, श्रेष्ट प्रेम ।

अर्थ:—द्रव्य, घर मोती, नग, स्वर्ण, पाटवर (रेशमी वस्त्र) और शस्त्र बांटने मे दु ख नहीं होता, किंतु स्त्रियों को पति के प्रेम की हिस्सेदारी खड्गधार से भी अधिक घातक लगती है ।

न्रप षेर चामर सखि सरहि, वपु गुंजहि हर-नच्छ ॥
कला केलि दिन २ चढिय, सुभग सँजोई सिच्छ ॥१२ ॥

शब्दार्थ:—चामर=चँवर । सरहि=कर रही थी । वपु=शरीर में । गु जहि=गु जार कर रहा था । हर-नच्छ=शिव द्वारा नाश किया हुआ, कामदेव । सुभग=सु दर । सँजोई=सयोगिता । सिच्छ=शिक्षा ।

अर्थ:—उस समय राजा के सिर पर सखिया चँवर कर रही थी और राजा के शरीर मे शिव द्वारा जलाया हुआ कामदेव गु जार कर रहा था । सु दर संयोगिता की शिक्षा से राजा के मन मे क्रीडा-कला का दिन २ विकास हो रहा था ॥

सुभ आदर रानिय सु पटु[1], चरित चित्त चहुआन ।
दुर दिन दाहिम्मिय महिल, किम किन्नौ न[2] पयान ॥१३॥

ग्रा० पा० १ भीं० । २ भीं० पा० ।

शब्दार्थ:—सुभ=अच्छी तरह । आदर=सम्मान किया । रानिय=रानियों का । चरित=चरित्र । दुर=बुरे । दाहिम्मिय=रानी दाहिमी, कैमास और चामंडराय की बहिन । महिल=महल में । पयान=प्रवेश ।

अर्थः—चाहुआन राजा का चित्तचरित्र-पटु था। अत. उसने सब रानियों का भली प्रकार सन्मान किया, केवल एक मात्र दाहिमी के बुरे दिन थे, जिससे उसने महल मे प्रवेश नहीं किया और सम्मान से वंचित रही।

श्लोक

सगुणं ज्येष्ठ ज्येष्ठानां, ज्येष्ठ रूप मरूपिनाम्।
ज्येष्ठांतु मान राजानां, ज्येष्ठा मान विलोकिनी ॥ १४ ॥

शब्दार्थः—सगुण=जो गुणों सहित, गुणवान। ज्येष्ठ ज्येष्ठानां=बड़ी से भी बड़ी, सब से श्रेष्ठ। ज्येष्ठ-रूप=बड़ी रूपवान। मरूपिनाम्=कुरूपा। मान=माने। राजानां=राजा। ज्येष्ठा=बड़ा। मान=इज्जत। विलोकिनी=विलोकने वाली, देखने वाली, ध्यान में रखने वाली।

अर्थः—कवि कहता है— जो गुणवान है वही सब से ज्येष्ठ है। कुरूपवती होते हुए भी वह बड़ी रूपवती है। राजाओं को चाहिए कि वह उसी रानी को ज्येष्ठा माने जो अपने मान को बड़ा मान कर उसका ध्यान रखती है।

भावी गति आगम विगति, को मेटन समरत्थ।
राम जुधिष्टिल और नल, तिन मे परी अवत्थ ॥ १५ ॥

शब्दार्थः—भावी=भविष्य। आगम=शास्त्र। विगति=चर्चा, वर्णन। समरत्थ=सामर्थ्यवान। जुधिष्टिल=युधिष्ठिर। अवत्थ=अवस्था, समय, घड़ी। परी=पड़ी, असर हो पाया।

अर्थः—शास्त्रों मे जिसकी चर्चा है ऐसे भविष्य की गति को मिटाने की किसमें सामर्थ्य है? रामचन्द्र, युधिष्ठिर और नल पर भी उसका असर हो गया था।

मान करे मति हीन नर, जोवन धन तन रूप।
कोन न दिन द्वै है गये, विना ज्ञान रस कूप ॥ १६ ॥

शब्दार्थः—जोवन=युवापन। दिन द्वै है गये=दो दिन के लिए पड़ कर गया। रस कूप=प्रेम के कुए में।

अर्थः—मति-हीन पुरुष ही यौवम, धन, शरीर और रूप का अभिमान करते हैं कौन ज्ञान हीन दो दिन के लिए ऐसे रस के कुएँ में पड़ कर इस संसार से नहीं गया?

—*❀*—

धीर-पुण्डीर

(समय ६०)

कवित्त

इक्क समय प्रथिराज, वत्त जपिय भर सारणि ।
अष्ट धातु करि खभ, सगि कढ्ढे वल पारणि ॥
तिहि समान नय वीर, विजय दसमी इय किज्जे ।
अप्प अप्प वल तोकि, इष्ट निय जाप जपिज्जे ॥
सुणि सूर सकल आनदि मन, पुनित महल राजन उठ्यउ ।
सुणि धीर जाइ जालधरह, प्रसन करण कारण हठ्यउ ॥ १ ॥

शब्दार्थ:—इक्क=एक । वत्त=बात जपिय=कहा । सारणि=श्रेष्ट या शस्त्र धारी । खभ=स्तम । सगि=साग (लोह की सपूर्ण बर्छी) । विजय दसमी=आश्विन शुक्ला दसमी । इय=इस प्रकार । किज्जे मनाएँ । अप्प २=अपने २ । इष्ट=ईष्ट । निय=निज, अपने । सुणि=सुनकर । पुनित=फिर । महल=ममा । उठयउ=उठा, विमर्जन की । जालधरह=देवी जालपा । प्रसन=प्रसन्न । हठ्यउ=रवाना हुआ ।

अर्थ:—एक समय पृथ्वीराज ने अपने श्रेष्ठ (या-शस्त्र धारी) वीरो का यह बात कही कि अष्ट धातु का एक स्तम्भ तैयार किया जाय और जिसके बल का पार नही हो ऐसे वीर द्वारा साग (लोहे के बर्छे) से उसे वेधा जाय इस तरह सब मे श्रेष्ठ वीर हो उस की परीक्षा की जाय यह कार्य विजया दशमी को किया जाय और जो इस परीक्षा मे उत्तीर्ण हो जायगा, उसके समान कोई वीर नही समझा जायगा। अत अपने २ बल को बढा कर बतलाने के उद्देश्य से अपने २ इष्ट का जप करो। राजा के ये वचन सुन सब ही सामन्तों के मन मे प्रसन्नता हुई और राजाने सभा विसर्जित की। इस प्रस्ताव को सुन धीर-पुण्डीर वहाँ से उठ भगवती जालन्धर देवी को प्रसन्न करने के लिये चला गया ।

दोहा

अति आनद सु धीर किय, सद्यो सूर सुभास ॥
अनंत विप्र पूजे भगति, दीय अमित दुखिनास ॥ २ ॥

शब्दार्थः—सघो=बोला। सूर=बहादुर। सुभास=अच्छी भाषा। अनँत=अनंत, बहुत से। अमित=अपार। दछिनास=दक्षिणा।

अर्थः—धीर-पुण्डीर ने विशेष आनद मनाया और अच्छी वाणी से स्वागत करते हुए उसने बहुत से ब्राह्मणों की पूजा की और उनको अपार दक्षिणा दी।

विप्र कुमारी कन्यकनि, खीर खड रस दीन।
अवर अनंदित दान दे, धीर पारणउ कीन॥ ३॥

शब्दार्थः—विप्र=ब्राह्मण। कन्यकनि=बालिकाएँ। दीन=दिया। अवर=और। अनदित=आनदित। पारणउ=पारणा, व्रत, भोजन किया। कीन=किया।

अर्थः—ब्राह्मणों की कुमारी कन्याओं को खीर का भोजन करा प्रसन्नता पूर्वक कई प्रकार का दान किया। तत्पश्चात् उसने (धीर ने) व्रत समाप्ति कर भोजन किया।

कवित्त

ग्यारह से बावना, मास आसोज विपक्खिवय॥
नव दुर्गे नव दीय, नवल सामत निरक्खिवय॥
नव सत्तव दिय, महिप, जोग जुग्गिनि हल्लारहि।
हवन मत्र दुज पढहि, पूजि द्रुग्गे जगारहि॥
उच्छह उनग तह राइ पर, तिजर तेग बधहि नृपति।
सपदा चित्ति चहुआन की, प्रथीराजु तेजह तपति॥ ४॥

शब्दार्थः—विपक्खिय=दूसरा पक्ष (शुक्ल पक्ष)। नव दीय=नव दिन। नव सत्तव=नमन करके स्तवन करते हुए या सौलह। दिय महिव=महिप बलि दी। जोग=यथा योग्य। जुग्गिनि=योगिनी। हल्लारहि=प्रसन्न किया। दुज=ब्राह्मण। उच्छह=उत्सव। उनग=उमड़ा हुआ, ऊंचा। तिजर=तेज। तेग=तलवार। बधहि=वदना की या बांधा। संपदा=सम्पत्ति। चित्ति=सोची गई, मानी गई। तेजह=प्रताप युक्त।

अर्थः अ० स० ११५२ (वि० स० १२४३) के आश्विन शुक्ल पक्ष की नवरात्रि में उन युवक सामंतों ने नव दुर्गा के दर्शन किए और नमन कर स्तवन करते हुए उन्होंने महिप की या सौलह महिषों की बलि दी तथा प्रत्येक ने देवी की यथा योग्य पूजा कर उसे प्रसन्न किया एव ब्राह्मणों द्वारा हवन-मत्र पूजा आदि

करके दुर्गा को जगाया । उस पवित्र उत्सव की उमगों के साथ ही राजा ने तेज तलवार की वदना की । वह खड्ग ही, एक मात्र चाहुआन नरेश्वर की सपत्ति थी और उसी के कारण वह प्रताप युक्त तपता था ।

तट्ठह अट्ठह अट्ठ, अग्ग अट्ठै दिय मडिय ।
अट्ठह अट्ठ प्रमान, सहर सिंगारिसि कंडिय ॥
आहुट्टा सें दून, राज अग्या भर मनिय ।
जैत खभ जैतान, जोर जग हत्थ सु जनिय ॥
आनद तेज आयास तर, भूपर भूप मुअ पत्तिय ।
मानिक्क राइ जग्गन छह्र, प्रथीराज छत्रह पतिय ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—तट्ठै=उस स्थान पर । अट्ठह अटठ-आठ आठ, चौंसठ (चौंसठ ही योगिनियों के निमित्त) । अटठह दिय=आठ ही दीपक । मडिय=जलाये, सजाये । अट्ठ—अट्ठ=सोलह शृगार । सहर=सँवारे, सजाये सिंगारिसि—शृंगार । कडिय=बाँस के बने हुए कडिये । आहुट्टा=अडाकू, विजयी । सें दून=दो सौ । मनिय=मानकर । जैत खभ=जैत्र तस्भ पर । जग=उत्तेजित हुए । आयास तर=आकाश के नीचे, पृथ्वी पर । भूप भूअपतिय=राजओं का राजा । मानिक्क राइ= पृथ्वीराज के पुरखा मानिक राय । जग्गन=जागृत, वृद्धि करने वाला । छहर=छोह, उत्साह । छत्रह पतिय=छत्र पति, छत्रधारी ।

अर्थः—उस जैत्र स्तभ के स्थान पर चौसठ ही योगिनियो के निमित्त आठों दिशाओं मे आठ दीपक जलाये गये और चौसठ ही वश पात्रो (कडियों) मे शोडष शृगार की सामग्री रक्खी गई । फिर दो सौ अडाकू विजयी वीरो ने राजज्ञा शिरोधार्य कर जैत्र स्तभ पर अपने हाथों की बल-परीक्षा के लिये उत्तेजित हो गये । धन्य है राजा पृथ्वीराज को जो आकाश मडल के नीचे पृथ्वीपर अपने पूर्वज आनन्द राज के समान ही प्रताप युक्त और राजाओं का राजा कहा जाता है तथा माणिक्यराय के समान ही उत्साह मे वृद्धि करने वाला यह छत्र धारी है ।

जैत खभ मडियौ, स्वामि सामत परक्खन ।
अष्ट धातु करि अष्ट, रेख गज अष्ट सु रक्खन ॥
अष्ट मुष्टि चा रुष्टि, वाहि कट्टै जु सगि वर ।
दृष्ट देव मत सील, सच आभग रग भर ॥

तारुन्न तु ग सै सत्त भर, अस अभ्यासु दिन प्रति करहि ।
इक्क मुट्ठि दु मुट्ठि ति मुट्ठि लगि, किहुन सारु दुम्र अंग सरहि ॥ ६ ॥

शब्दार्थः—मंडियौ=रचा, बनाया । परक्खन=परीक्षार्थ । करि=बना कर । अष्ट-रेख=आठ रेखों (पहलुओं) वाला । गज अष्ट=आठ गज । मुट्ठि=मुष्टि-(प्रहार) । चा=और । रुष्टि=क्रोध कर । वाहि=चला कर । सगि=सांग, लोह का बर्छा । सत=सत्य । सील=शील । संच=संचय कर के । आमग=अभग (योद्धा) । रग=रङ्गिले या विनोद में आकर । तारुन्न=तरुण । तु ग=ऊँचे, दीर्घकाय । सैं=सब । सत्त-भर=सच्चै यौद्धा । अस=ऐसा । लगि=मारने पर । किहु न=किसी से भी नहीं । सारु=लोह स्तम । दुम्र अग=दो अगुल । सरहि=सरकता, खिसकता ।

अर्थः—राजा पृथ्वीराज ने सामतों की परीक्षा के लिए जैत्र-स्तभ की स्थापना की, वह अष्ट धातुओं से आठ रेखा युक्त आठ गज लबा (ऊँचा) बनाया गया । उसे उखाड़ने के लिए दो नियम रक्खे गए । एक तो आठ मुष्टि प्रहार द्वारा उखाडे दूसरा क्रोधके आवेशमे सांग द्वारा उखाड दे । इसी कार्य-सिद्धिके लिए वे अभग यौद्धा अपने अपने इष्ट देव और सत्यशील का सचय करने लगे, वे सब उत्त ग काय सच्चे यौद्धा प्रतिदिन अभ्यास करते थे. किन्तु नियमानुसार आठ मुष्टि तो कोई भी नहीं दे पाता था. केवल कोई एक, दो या तीन मुष्टि प्रहार करता, किन्तु वह लोह-स्तभ दो अगुल भी नहीं हटता था ।

चकित चित्त चहुआन, आन मामंत न सुमझहि ।
रण पक्खर भर भिरण, खभ सों खिजी र झुम्भहि ॥
तीनि पक्ख दिन पच, वीर नीसाननि वज्जहि ।
सबर बैर सुलतान, जाहि सम्मुह करि सज्जहि ॥
पुडीर राउ चदह तनौ, वीर नाउ त्रिय अकुरिय ।
रण स्यघ कध थप्परि तरकि, हिम समान लिन्नउ तुरिय ॥ ~ ॥

शब्दार्थः—आन=अन्य । पक्खर=अश्वारोही । भिरण=भिड़ने वाले । खिजिर=क्रोधित हो । झुम्भति=टक्करें खाते । तीनि पक्ख=उस पक्ष, उस पखवाडे । नीसानति=नक्कारे । सबर=सबल । जाहि=जिसके । सज्जहि=तैयारी करना । चदह तनौ=चद पुण्डीर का पुत्र । नाउ=नाम । त्रिय=वीर रस । अकुरिय=अकुरित । रण स्यघ=रण-केशरी । कंज-थप्परि=कधा थपथपाता । तरकि=तैश में आकर । हिम-समान= हिमालय के समान उच्च । लिन्नउ-तुरिय=घोड़े की रास हाथ में ली ।

अर्थः—स्वयं पृथ्वीराज उस लोह स्तंभ को उखाड़ने के विषय में संदिग्ध था और बहादुर सामंतों को भी उसे उखाड़ने के विषय में कुछ नहीं सूझता था। युद्ध में भिड़ने वाले अश्वारोही वीर उस स्तंभ से क्रोध के आवेश में टक्करें खाते थे, उस पक्ष के पांच दिनों तक नक्कारे बजवाकर वे बल आजमाते रहे। यह परीक्षा सबल-शत्रु सुलतान से सामना करने की तैयारी के लिए थी, किंतु चंद्र-पुण्डीर के पुत्र धीर पुण्डीर नामक वीर में वीर रस अंकुरित हो गया। वह रण केशरी तमक कर हिमाचल के समान अपने उत्तंग घोड़े के कंधों को थपथपाता हुआ घोड़े की रास हाथ में ली (घोड़े पर आरूढ़ हुआ)।

विहँसि चढ्यौ चहुआन, सूर सह सैन बुलायौ।
जैत खंभ जहँ कर्यो, लोह मन तीस मिलायौ॥
भयौ राइ आयेसु कुअर सब वेभझौ खेलहु।
सेथि तीर तरवारि, सगि सर बर करि मेलहु॥
चिहुँटै न चोट दुइ अंगुरिय उद्दित सगा मथै धरिय।
अप्पी जु राइ तिहिं अप्प कर मनह राइ सह अह डरिय॥ ८॥

शब्दार्थः—विहँसि=प्रसन्न हो। सह=सब। सैन=सेना। राइ=राजा। आयेसु=आदेश। कुअर=कुँवर। वेभझौ=वेधने का खेल। सेथि=बर्छी। सर बर=बराबर। करि=कर के। मेलहु=प्रवेश करो। चिहुटैं=छूना प्रवेश करना। दुइ=दो। उद्दित=उसी समय। सगि=साग। मत्थै=सिर। अप्पी=दी, प्रवेश करदी। तिहिं=उस में। अप्प कर=अपने हाथों से। मनह=मन में। राइ-सह-अह=सब सर्पों का राजा, शेष नाग।

अर्थः—प्रसन्न होकर चाहुआन पृथ्वीराज अपने घोड़े पर चढ़ा और जहाँ जैत्र स्तंभ तीस मन लोहा मिलाकर बनवाया और रोपा गया था उस स्थान पर सब बहादुरों को ससैन्य बुलवाया गया। राजा ने आज्ञा दी कि हे वीर युवक कुमारो! इस स्तंभ को भेद देने का खेल खेलो। एक दूसरे की समानता करते हुए, इस पर बर्छी, तीर, तलवार साग आदि का वार करो, किंतु उन वीर युवकों के आघात से शस्त्रास्त्र दो अंगुल भी उस लोह स्तंभ में प्रवेश नहीं कर पाते थे। तब स्वयं पृथ्वीराज ने अपनी साग को शिर से स्पर्श कर अपने हाथों से वार कर उसे लोह स्तंभ में प्रवेश करा दिया।

यह देख कर सर्पों के राजा शेष नाग का मन भी भयातुर हो गया।

दोहा

दिन अट्टह पूजी सकती, नवल नवम्मिय दीह ।
सिलस सुरंग सु मंडि करि, चढ्यौ तुरंगम सीह ॥ ६ ॥

शब्दार्थ:—सकति=शक्ति । नवल=नूतन, त्यौहार । दीह=दिन । सिलह=कवच । मंडिकरि=सजकर । तुरंगम=घोड़े पर । सीह=सिंह स्वरूपी वीर ।

अर्थ:—रण-केशरी युवक धीर पुण्डीर भी आठ दिन तक शक्ति की पूजा कर नवमी के दिन अच्छे रंग वाला कवच धारण कर अपने घोड़े पर चढ़ कर वहाँ उपस्थित हुआ ।

कवित्त

हो रावत मंडली, कोरि मच्छर मन मंडहु ।
मो तुरंग वलु खस्यौ, संगि वाहिर गहि कड्ढहु ॥
वंस कुली छत्तीस, करहु वलु जा मन भावै ।
संगि न टारी टरै, जंत्रु छिन अद्ध डुलावै ॥
अस्यउ तुरंगु चहुआन तव, विहसि धीर पुंडीर लियु ।
उप्परि जैत खंभहि सहित, तव पसाउ पृथिराजु कियु ॥ १० ॥

शब्दार्थ:—हो=अहो । रावत=राज वंशज । कोरि=कोरी, वृथा । मच्छर=मस्ती, मत्सर । मंडहु=करते हो । मो=मेरा (वार) । वलु=वल, शक्ति । खस्यौ=फिसला । सगि=सांग । वाहिर=बाहिर । वस=वंशज । कुली=शाखा । जत्रु=लोह स्तंभ । छिन=क्षण । अद्ध=अर्ध । अस्यउ=दिया । तुरंगु=घोड़ा । तव=तब । उप्पारि=उखेड़ दिया । पसाउ=पुरस्कार ।

अर्थ:—पृथ्वीराज ने सामंतों से कहा, हे क्षत्रिय-राजवंशों ! तुम केवल उछल कूद ही कर जानते हो, विजय स्तंभ पर मेरे हाथ से प्रहार की गई सांग यद्यपि अन्दर प्रवेश कर गई है, किन्तु घोड़े के वेग के कारण मेरे हाथ से छूट गई, उसे तुममें से कोई पकड़ कर बाहिर निकाल लो । हे छत्तीस ही वंश के क्षत्रियों ! जिसके मन में इच्छा हो वह अपने बल को आजमा लें । यह सुन कर विजय स्तंभ के पास जाकर अर्द्ध क्षण के लिए सब ने उसे निकालने का प्रयत्न किया, किंतु वह सांग किसी के हिलाने पर भी न हिली, तब राजा पृथ्वीराज ने अपनी सवारी का घोड़ा धीर पुण्डीर को दिया । उसने प्रसन्नता पूर्वक लेकर उस पर सवार हो सांग को जैत्र-

स्तंभ सहित उखाड दिया। यह देख कर राजा ने उसको पुरस्कार देकर बहुत सम्मानित किया।

दोहा

वढि अवाज ढिल्ली सहर, धीर गहन कहि साहि।
हँसहि सूर सामत मुख, कुटिल दिट्ठि मुख चाहि ॥ ११ ॥

शब्दार्थः—वढि=फैली। ढिल्ली=दिल्ली। गहन=पकडने की। साहि=बादशाह को। मुख=प्रमुख। दिट्ठि=दृष्टि।

अर्थः—तत्पश्चात् धीर पुण्डीर ने शाह को पकडने की प्रतिज्ञा की। यह बात सारे दिल्ली नगर मे फैल गई और प्रमुख सामत कुटिल दृष्टि से वीर पुण्डीर की ओर देखते हुए हँसने लगे।

कवित्त

हँसि वुल्लइ चामड, धीर सुनि बात हमारी।
पातिसाहि दल विषम, तुरी अगणित है भारी॥
घर बैठै आपनै, बोल तुम वड्डे बोलहु।
मेर भरण कहौ बत्थ, स्यघ सम कुजर तोलहु॥
रे सुनहि सूर पुण्डीर कुल, इतो मुट्ठ बत्ता कहहि।
जिहि सत्त फेर हत्थी फिरहि, किम सु साहि जीवत गहहि ॥ १२ ॥

शब्दार्थः—वुल्लइ=बोला। विषम=अतुल्य। मेर=सुमेरु। भरण=भरना, पकडना। बत्थ=बाहु-पाश। स्यघ=सिह। इतो=इतना। मुट्ठ=झूठ। बत्ता=बातें। जिहि=जो। सत्त फेर=सात २ हाथियो के घेरे म। किम=कैसे। गहहि=पकडेगा।

अर्थः—चामुण्डराय से मिलने पर उसने हँस कर कहा— हे वीर पुण्डीर! हमारी बात सुनो, बादशाह की सेना विषम है और उसमे अगणित बडे बडे घोडे है। घर बैठे बिठाये बडे बोल बोलकर वृथा उसे छेडते हो। सुमेरु पर्वत को बाहु-पाश में लेना कठिन है, सिह और हाथी की शक्ति की तुलना समान नहीं हो सकती। हाँ! सुना है, पुण्डीर कुल बहादुर है किंतु इस प्रकार असत्य भाषण नहीं करना चाहिये। तुमसे मेरा कहना है, जो बादशाह गजवाहकों के सात २ परकोटे के बीच मे रहता है उसे जिंदा कैसे पकडा जा सकता है?

हौं पुण्डीर नरेस, हौतु झुम्झार सबर बर।
हौं सुत चद्दह तनउ, ठिल्लि दल दैंउ त्रिविध धर॥
मोहि इष्ट बल सकति, मोहि बाने बर छज्जित।
मो सम और ण सूर, माहि उप्पर दल गज्जित॥
हौत सत्रु दाहन दहन, हौत तिनहि त्रिन वरि गनउ।
वरु वीरु धीरु इम उच्चरउ, साहि ग्रहिउ सूरणि हनउ॥ १३॥

शब्दार्थः—हौंतु=मैं। झुम्झार=योद्धा। सबर=प्रबल। चद्दह=चंद पुंडीर। तनउ=का। ठिल्लि=धकेल। त्रिविध=तीनों प्रकार से (शस्त्र, अस्त्र और भुजबल से)। बल=बल। सकति=शक्ति। मोहि=मेरे। बाने=विरुद। छज्जित=शोभित। और ण=अन्य नहीं। साहि=शाह। गज्जित=गर्जना करने वाला। दाहन=जलाने वाला। दहन=अग्नि। तिनहि=उन्हें। त्रिन वरि=तृण तुल्य। गनउ=गिनता हूँ। वरु=श्रेष्ट। वीरु=वीर। धीरु=धीर। ग्रहिउ=पकड़ूँगा। सूरणि=शूर वीरों को। हनउ=मार दूँगा।

अर्थः—धीर पुण्डीर ने कहा, हे वीर चामुण्डराय! मैं पुण्डीर राजा हूँ और बलवानों मे श्रेष्ठ योद्धा हूँ, मैं चंद-पुत्र हूँ अत शत्रु-सेना को शस्त्र-अस्त्र और भुज बल से पृथ्वी पर ठेल देने वाला हूँ मुझ में शक्ति के इष्ट का बल है और मैं श्रेष्ठ विरुदों से सुशोभित हूँ, मेरे समान अन्य बहादुर नहीं है। मेरे अतिरिक्त शाही-सेना पर कौन गर्जना कर सकता है? मैं शत्रु को जलाने के लिए अग्नि रूपी हूँ, विपक्षी को मैं तृण-तुल्य समझता हूँ, मैं श्रेष्ठ वीर तुम से यही कहता हूँ कि बहादुरों को मार कर सुलतान को अवश्य पकड़ूँगा।"

दोहा

लिख्यौ कपट कग्गदु करह, जैत पवारह वीर।
बोल्यौ बोलु अचग्गरो, तिन पकरायौ धीर॥ १४॥

शब्दार्थः—कपट कग्गदु=छद्म-पत्र। करह=हाथ मे। पवारह=प्रमार क्षत्रिय। बोल्यौ=बोला। बोलु=बोल। अचग्गरो=छेड़ छाड़ भरा, विरोधात्मक। तिन=उसने।

अर्थः—इस प्रकार धीर पुण्डीर के विरोधात्मक और रूखे वचनों को सुन कर वीर जैत्र प्रमार ने शाह के नाम छद्म पत्र लिख कर उसे (धीर को) पकड़वा दिया।

[illegible] नाम पृथ्वीराज [illegible] [illegible] ।
निति निहाई [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] ॥ २५ ॥

शब्दार्थः—[illegible]=[illegible], [illegible] [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] ।
निति=हमेशा । निहाई=निभाई । [illegible] । [illegible] । [illegible] ।

अर्थः—कवि कहता है – हे पृथ्वीराज ! तुम्हारा नाम [illegible], [illegible], और तलवार के कारण ससार मे प्रसिद्ध हुआ। कीर्ति के मार्ग मे [illegible] हुए तुमने बात निभाली ।

कवित्त

लिखि अरदासि जुगत्ति, जैत सुरतान स पट्ठिय ।
कौतूहल गुभभह गमार, मुख ही मुख ठट्ठिय ॥
नन्नाही गोचर गिम्यानि, पावर पुण्डीरा ।
राज छजे रवि देउ, सुह सजुल समीरा ॥
मभभाह गुभभ अतरु कियो, बोला रावत रत्तिया ।
साईन सग वछै मरण, सोहै साहस छत्तिया ॥ २६ ॥

शब्दार्थः—अरदासि=अर्जी । जुगति=युक्ति युक्त । सपट्ठिय=पहुचाया । गुभभह=गर्जन । ठट्ठिय=हुआ । नन्नाहि=ओछापन । गोचर=चला गया । गिम्यानि=ज्ञान । पावर=प्रमार वली । राज छजे=राजा ने शोभा बढाई । रवि देउ=सूर्य को दिए । सुह=उसी को, या उसने । सजुल समीरा=पवन युक्त जल, छींटे । मभभाह=मध्य में आपस मे । अतरु=अतर, भेदभाव । बोला=बोल पर, वचन पर । रत्तिया=आसक्त । साईन=स्वामी । वछै=इच्छा करता है । छत्तियो=क्षत्रियों का ।

अथः—जैत्र प्रमार ने युक्ति पूर्वक अर्जी लिख कर सुलतान के पास भेज दी, केवल जबानी बातों की कहा सुनी मे ही यह मूर्खता आश्चर्य कारक हुई। उसमे हीनता का सचार होगया, इसीलिए बुद्धिमान होते हुए भी उस प्रमार वीर ने पुडीर के साथ दुर्व्यवहार किया। राजा पृथ्वीराज ने जिस जैत्र की शोभा बढाई थी उसने उस सूर्य स्वरूपी नरेश्वर को भी पवन मिश्रित जल दिया (छींटे दिए, दोषारोपण किया)। आपसी बातो मे ऐसा अतर हो गया कि वे अपनी अपनी बात पर ही तन-कर अड गये (डट गये)। कवि कहता है (जैत्र ने यह कार्य कुक्षत्रिय सा किया) कि सच्चा क्षत्रिय तो वही है जो अपने स्वामी का साथ देते हुए मरने की इच्छा करता है और उसी मे उसका साहस है।

इति अरदासिय लिक्खि, दई जित गोरि नर्‌यंद कह ॥
ग्रब गवार पुण्डीर, जात जालंध कहिय यह ॥
अवस मस आसुभम्फ, चंद साहस तापि गामर ॥
गजन नर्‌यद साहाय, लिक्खि पट्ठी इय पामर ॥
पावस पुंडीर लग्गो रहसि, प्रगट पराक्रम दिक्खऔ ॥
सा रभ सुत्त चंदह तनौ, सु फटि दुहू दिसि नक्खयौ ॥१७॥

शब्दार्थः—इति=समाप्ति । जित=जैत्र । गोरि नर्‌यंद=गोरीशाह । ग्रब=गर्व । गवार=गँवार । जात=जा रहा । जालध=जालधर । अवस=अवश्य, निश्चय । मस=मांस । आसुभम्फ=आश्विन । चंद=चदपुंडीर (धीर के पिता) । तपि=तप, प्रताप । गामर=गँवार । गजन=गजनी । साहाव=शहाबुद्दीन । पट्ठी=पठाया, भेजा । इय=इस प्रकार । पामर=प्रमार क्षत्री । पावस पुँडीर=धीर का पुत्र । लग्गो रहसि=अन्य रहस्य में लग गया । प्रगट पराकम=अपने पराक्रम को प्रसिद्ध करने में । सा रभ=उसका आरम्भ । सुत्त=पुत्र । चदह तनौ=चद का । सु फटि=उनको फटा दिया । दुह=दोनों में । दिशि=ओर । नक्खयौ=डाल दी ।

अर्थः—अर्जी पर इति श्री लिख कर जैत्र ने गौरीशाह के पास पहुँचाई और जबानी कहलाया कि मूर्ख पुण्डीर गर्व मे आकर जालधर जा रहा है। इस आश्विन मास मे ही इस गँवार ने अपने पिता चद पुण्डीर के समान पराक्रम और प्रताप प्रदर्शित करने का निश्चय किया है। प्रमार ने गौरीशाह को पत्र मे यह भी लिख भेजा कि चन्द पुण्डीर के पुत्र धीर की इस प्रतिज्ञा-पालन के प्रारंभ मे उसके पुत्र और उसमे हमने फूट डाल दी है। धीर-पुत्र पावस पुंडीर इसी से अलग ही अपने पराक्रम को प्रदर्शित करने में लग गया है।

गज्जि मेघ निव्वरिय, सरद स्व्वरिय रत्तन्निय ।
जल थल न्रिम्मलनिय अकास, वह वास अवन्निय ॥
हस वस सा रस सवह, कं केलि कुकढिय ।
सलित सरोवर मन मजाद, अमृत कल चढ्ढिय ॥
रति नइय नैमि जहव सदिय, जल जलद पूजन वहसि ।
सद्धाणि सिद्ध करि चदु सुभ्र, अम्महुरितु सावस पहसि ॥१८॥

शब्दार्थः—गज्जि=गर्जना । मेघ=बादल । निव्वरिय=निपट चुके । स्व्वरिय=रात्रि । न्रिम्मलनिय=निर्मल, स्वच्छ । अकास=आकाश । वह=बसना, रहने के मकान । अवनिय=पृथ्वी । सा=वे । रस=

[illegible] । [illegible] ।।। [illegible] लगे । [illegible] सरिता । मजाद=मर्यादा । [illegible] कथा, [illegible] । [illegible] । रति=[illegible] । [illegible]= नवीनता । नेमि=नियम । [illegible] वर्ण । [illegible] । [illegible] । [illegible] हर्षित=प्रसन्न हुआ । [illegible] । [illegible] । [illegible] । पुत्र=पुत्र । [illegible] । [illegible] । [illegible] ।

अर्थः- गर्जना करने वाले मेघ निपट चुके (वर्षा ऋतु समाप्त हो गई) और शरद काल की रमणीय रात्रियाँ दिखाई दीं, जिसमें जल-स्थल, आकाश, निवास-स्थान और सारी पृथ्वी निर्मल हो गई, हंस परिवार रस युक्त (मधुर) शब्दों का ऊँचे स्वर से उच्चारण करते हुए क्रीड़ा करने लगे । सरिता और सरोवर के मन मर्यादा युक्त हो गये (स्थिर हो गये) । चन्द्रकिरण अमृत बरसाने वाली कही जाने लगीं । इस शरद-वर्ण शरद ऋतु में प्रेम के नियमों में भी नवीनता आगई । इसी समय वह चन्द पुण्डीर का पुत्र जल द्वारा जालन्धर देवी की पूजा के लिये हर्षित हो उठा और उसने सिद्धिदात्री अम्बिका को प्रसन्न करने के लिए उसकी भक्तिमें लीन हो इसी अमावस्या को जालंधर के स्थान में प्रवेश किया है ।

दिन सु अव्व सत्तमिय, जाय जालंधर पत्तिय ।
दान न्हान परमान, थान थानक करि अत्तिय ।।
तहसु देव उर मुसलमान, लख विप्र सु आवहि ।
जवनिक कुल छत्री कुलाह, शोडष मिलि धावहि ।।
जानेत कोटि नर भर चपति, प्रव्वत लगि पारस पर्यौ ।
कोटन सकोट भंडार भरि, घन सु द्रव्य हाहुलि भरयौ ।। १६ ।।

शब्दार्थः—दिन सु अव्व = सातवें दिवस आ पाया, हो पाया । सत्तमिय=सातवाँ, सात । पत्तिय= पहुँचा । परमान=प्रामाणिक रूप से, प्राचीन नियम से । थान-थानक=स्थान २ पर । करि=किया । अत्तिय = विशेष । देवउर=देवालय । लख=लक्ष, लाखों । जवनिक=मुसलमान । छत्री-कुलाह= क्षत्रिय वंश के (जाति के) । धावहि=ध्यान करते । भर=बहादुर । चपति=दबाया गया । प्रव्वत लगि-पारस=पर्वतों से घिरा । पर्यौ=हुआ । कोटन=करोड़ों का । कोट=दुर्ग । भंडार भरि= परि पूर्ण कोष भरे हुए । घन=बहुत । हाहुलि=हाहुलिराय । भर्यो=सञ्चय किया ।

अर्थः—धीर पुण्डीर को जालंधर गये आज सातवाँ दिवस हुआ है । उसने वहाँ जाने पर स्नान कर उस स्थान के प्रत्येक भाग पर विशेष दान का प्रचार किया ।

उस देवालय का विशेष महत्व होने से मुसलमान और लाखों ब्राह्मण वहां आते और यवन तथा क्षत्रिय वश के लोग मिलकर शोडप विधि से पूजा करके वहां ध्यान करते हैं। किसी वीर से वह स्थान दवाया गया हो ऐसा कोई मनुष्य नहीं जानता, क्योंकि पर्वत श्रेणी से वह घिरा हुआ है। वहा के राजा हाहुलिराय ने दुर्ग के भडार मे करोडों की संपत्ति (कोप) संचित कर रक्खी है।

तक्यौ साहि गज्जनै, धीर जालधर जत्तह।
सहस अट्ठ गक्खरी, भेप करि कप्पर रत्तह॥
छल बल गहि आनहु पुंडीर, रा चंद कुमारह।
कर कग्गद लिखि दए, भेद रा-जैत पमारह॥
तारुन्य तुग साधक मकल, मन मवन्न मूरति रसिग।
गुन गुपत हत्थ गुपती धरिय, भुगति मंगि जुग्गी हँसिग॥ २०॥

शब्दार्थ:—तक्यौ=देखा, जान पाया, ज्ञात हुआ। जत्तह=जाता हुआ। गक्खरी=गक्खर, जाति विशेष। कप्पर=कापड़िये साधु। रत्तह=अरुण रग। रा=राजा। चद=चन्द पुण्डीर। रा-जैत=जैत राय। तारुन्य=युवक। तुंग=समूह। साधक मकल=मव प्रकार की साधना करने वाले। मवन्न=मतवाले। मूरति=शरीर। रसिग=रसिक। गुन=कार्य फल। हत्थ=हाथ। गुपती=अन्दर छिपी हुई वर्छी वाली लकड़ी। भुगति=भक्ति। मगि=याचना की। जुग्गी=जोगी। हसिग=हँस पड़े।

अर्थ:—धीर पुण्डीर जालधर गया, यह गजनेश्वर को ज्ञात हुआ। तब उसने आठ सहस्र गक्खरी वीरों को कहा कि तुम कापडिये साधुओं के समान अरुण वर्ण वेश कर छल और बल के द्वारा चन्द पुण्डीर के पुत्र को पकड लाओ। यह भेद हमको जैत्र प्रमार ने पत्र द्वारा दिया है। यह सुनकर वह युवक–समूह (गक्खरी वीर) जो सब बातों के साधक थे जिनका मन मतवाला था और मूर्तियों रसिक थीं उनका कार्य फल गुप्त था, अत उन सबने हाथों मे गुप्तियाँ (अदर छिपा हुई बर्छिये वाली लकडी) ग्रहण की और वहा से चले। धीर ने उन्हें योगी समझ कर उनसे भक्ति की याचना की यह देख कर वे कपट वेषधारी योगी हँस पडे।

दोहा

वीर निकट ठड्ढे भये, कपट हेत सह रूप।
जोरि हत्थ तिन विन्नयो, भुगति देहि हम भूप॥ २१॥

शब्दार्थः—[illegible] । देहि=देंगे ।

अर्थः—वे कपट मूर्तिधारी योगी [illegible] के [illegible] हो गए । [illegible] वीर ने उन से हाथ जोड़ कर विनय की उस पर वे बोले [illegible] हम तुम्हें [illegible] शक्ति देंगे ।

कवित्त

सुगति देन कहि वीर, इच्छ आपरिय जु तुमह कह ।
निसा आइ एकलौ, पूजि मूरति तब सक्कह ॥
बोलि मगि सहु सिद्ध फेरि दीना हुकारिय ।
ठाम ठाम सम्महिय, धूत धुत्तार हकारिय ॥
जोजन बिपच उग्यौ आरक, स्यधु स्यधनि उत्तारिय ।
लै गये साहि पह वीर कह, करु ऊँचौ किहु नहिं करिय ॥८२॥

शब्दार्थः—इच्छ=इच्छा करके । एकलौ=अकेला । तब=तब । सक्कह=सकेगा । बोलि मगि=वचन लेकर । सहु=सब । फेरि=फिर । हुकारिय=स्वीकृत किया । ठाम ठाम=स्थान २ पर । सम्महिय=एकत्रित किये । धूतार=धूर्तों को । हकारिय=बुला लिया । बिपच=दस । उग्यौ=उदय हुआ । आरक=अर्क, सूर्य । स्यधु=सिंधु नदी । स्यधनि=सिंध निवासी । साहि=बादशाह । पह=पास । करु=कर, हाथ । किहु=किसी ने ।

अर्थः—हे वीर ! हम कापड़ी योगियों ने तुम्हें इच्छित भक्ति देने के लिये कहा है, किंतु तुम रात्री में यहाँ अकेले आकर मूर्ति पूजा करो, तब यह हो सकता है । इस प्रकार वीर से अकेले आने का वचन लेकर उन सब सिद्धों ने भक्ति देना स्वीकार किया । उन धूर्त योगियों ने यत्र तत्र अपने धूर्त साथी इकट्ठे कर रक्खे थे । उन्हें भी बुला लिया और सूर्योदय होते २ वीर को पकड़ कर वे दस योजन पार कर गये । सिंधु पार कर वे सिंध प्रदेशीय शाह के पास वीर को ले गये । उस समय उस वीर को देख कर किसी ने हाथ तक ऊँचा नहीं किया ।

दोहा

सुनी बत्त दिल्ली नयर, गह्यौ वीरु सुलितानु ।
जट सपन्न विपरीत हुव, वट बयन्च कवानु ॥८३॥

शब्दार्थ:—बत्त=बात । नयर=नगर । जट=जहाँ । सपन्न=स्वप्न । वड=बड़े, दीर्घकाय । ववच्छ=बछड़ा । कधान=कधे वाला ।

अर्थ:—दिल्ली में भी यह सूचना पहुँची कि सुलतान ने धीर पुण्डीर को पकड़ लिया है, जिससे वहाँ विपरीत स्वप्न के समान आभास हुआ, क्योंकि दीर्घकाय वृषभ के बछड़े के समान कंधे वाले उस वीर के लिए इस प्रकार पकड़े जाने की सम्भावना नहीं थी ।

कवित्त

मिलिय खान पट्ठान, साहि सभ्भा भर मंडौ ।
तह सु धीर पुण्डीर, आइ उत्तर करि छंडौ ॥
वे आ दान उद्दान, धाक भंजै धक लग्गी ।
जंग रंग चहुवान, देस देसह धन मग्गी ॥
गामी गवार पुण्डीर कुल, बप्प भलेरा पुत्त वड ।
सुरतांन खाँन दिट्ठा न दिट्ठ, कित्त कुराणा चित्त चढ़ ॥ २४ ॥

शब्दार्थ:—सभ्भा=सभा । मंडौ=मंडित, सुशोभित । उत्तर=उतरकर । करि=हाथी । छंडौ=छोड़ा । वे=अब्वे, अरे ओ । आ दान=दान (मस्ती) में आकर । उद्दान=उद्दाम, स्वच्छंद । धाक=आतक । भंजै=लोप दी, नष्ट करदी । धक-लग्गी=जोश में आकर । जंग रंग=युद्ध रंग । मग्गी=मंगी, मांगने वाला । गामी=ग्रामीण । गवार=गँवार । बप्प=बाप । भले=अच्छे । रा=का । पुत्तवड=बड़ा पुत्र । दिट्ठा न दिट्ठ=देखा या नहीं देखा । कित्त=कीति । कुराणा=कुरान (कुरान धर्म को मानने वाले) । चित्तचढ=चित्त में चढ़ी हुई ।

अर्थ:—खान पठान आदि योद्धाओं से शाह की सभा सुशोभित थी, वहाँ धीर पुण्डीर को लाकर हाथी से उतारा गया और उसे कहा गया, अरे ! तू मस्ती में आ उद्दाम (स्वच्छद) हो मेरे आतंक को नष्ट कर दिया है । चाहुआन को तो जंग का रंग चढा हुआ है अत. वह देश विदेश के वीरों से दण्ड रूप में धन की ही मांग करता है । हे जंगली पुण्डीर वंशज ! तेरे पिता के तू बड़ा अच्छा पुत्र हुआ जो प्रतिज्ञा के कारण पकड़ा गया । अब तूने मुसलमानों के बादशाह को देखा या नहीं, जिसके चित्त मे कुरान की कीर्ति चढ़ी हुई है ।

हरम हार स्र्यगार, गौख जाली दिठि जब्बै।
खलक खान उमहिय, साहि हिन्दू सम बद्दै॥
कौतूहल आलम उदार, जाणि दल बद्दल उन्नै।
हणौ कि छुट्टै साहि, चढ़ी चिंता चित दुन्नै॥
करतार जाहि रक्खे करां, तिहि न रोम कट्टै जमन।
रहमान राम बड्ढै न कछु, तिहि निमक्ख रक्खै कमन॥ २७॥

शब्दार्थ—हरम=बेगमें। स्र्यगार=श्रृंगार। दिठि-दिखाई देने लगे। जब्बै=जब। खलक खान=यवन समूह। उमहिय=उमड़ पड़े। हिन्दू=हिन्दू वीर (धीर पुण्डीर)। सम=समक्ष। बद्दै=वाद-विवाद। आलम=संसार, जन समूह। जाणि=मानो। दल बद्दल=बादल समूह। उन्नै=उमड़ पड़े। हणौ=मारेगा। छुट्टै=छोड़ेगा। दुन्नै=दोनों (दोनों दीन, हिन्दू-मुसलमान)। जाहि=जिसको। करां=हाथों से। तिहि=उसको। रोम=बाल। कट्टै=काटता, नष्ट करता। जमन=यमराज। बड्ढै न कछु=उसकी आयु में कुछ भी वृद्धि नहीं करते। निमक्ख=निमेष मात्र, पल भर। कमन=कौन।

अर्थः—उस समय झरोखे की जालियों में हरमाओं (बेगमों) के हार और श्रृंगार दिखाई पड़ने लगे (अर्थात उस वीर को देखने के लिए बेगमें भी झरोखों में आगयी) मुसलमान समूह भी बादशाह और हिंदू-वीर के वाद-विवाद को सुनने के लिये उमड पड़ा। उदार जनता भी उस कौतुहल को देखने के लिए इस तरह उमडी जैसे दल बादल उमड़ते हों। उन दोनों दीन वालों के चित्त में यही चिंता चढ़ी हुई थी कि शाह इस वीर को मरवा देता है या छोड देता है, किंतु विधाता जिसे अपने हाथों से रखना चाहता है उसका स्वयं यमराज भी एक बाल खंडित नहीं कर सकता और जिसकी आयु रंच मात्र भी रहिमान और राम नहीं बढाना चाहते, उसे पल मात्र के लिए भी संसार में कौन रख सकता है?

स्यौं पुच्छै सुलितान, अवै तू चंदह नंदन।
तुव विरद इम कहै, अप्पु वर वैरि निकंदन॥
सकट्टह अवसान, जीउ रावतु जो सचइ।
ता जननी निय दोसु, मरनु खत्री जो वचइ॥

यह जीभ हडह विहरी पिसुन, इत्तौ झुठ्ठ न झंखियह।
कहि धीर लज्ज कारण कवन, प्रानु रक्खि पति मुक्कियह ॥ २६ ॥

शब्दार्थः—स्यौं=स्वयं। श्रवे=अव्वे, अहो। तुव=तेरे। इम=ऐसे। कहैं=कहे जाते हैं। वैरि=शत्रु। अप्पु=स्वयं। संकट्टह=संकट समय। अवसान=मृत्यु। जीअ=जीव, जिंदगी! रावतु-राजवंशी, क्षत्रिय। सचई=संग्रह करता, रखना चाहता। ता=उस। नियर=नजदीक, समीप। दोसु=दोष। मरनु=मरने से। वंचइ=बचना। हडह=हड्डियाँ, (अस्थि)। विहरि=बाहिरी, जकड़ी हुई नहीं। पिसुन=शत्रु। इत्तौ=इतना। झुठ्ठ=झूठ। झखियह-दिखा पावे, प्रकाश में लावे। कहि=कहिय। कवन=कौन सा। प्रानु रक्खि=प्राण रखना चाहते हो तो। पति=लज्जा। मुक्कियह=छोड़ दो।

अर्थः—स्वयं बादशाह प्रश्न करने लगा-अहो, तू चंद-पुण्डीर का पुत्र और शत्रु-नाशक विरुद वाला होकर पकड़ा गया। संकट-समय जो राज वंशज (क्षत्रिय) अपने प्राणों की रक्षा कर मृत्यु से बचना चाहता है। उसकी माता दोष से दूर नहीं। यह जिह्वा हड्डियों से जकड़ी हुई (मर्यादित) नहीं है। अत पिशुन-पुरुष को चाहिए कि वे असत्य बात को प्रकाश में नलावें, हे-वीर पुण्डीर! कहो तुम्हारी इस लज्जा का कारण क्या है? यदि प्राण रखना चाहते हो तो इस लज्जा को छोड़ दो।

न मैं खग्ग सम्महयौ, न मैं सिंगिणि कर खंचिय।
न हौं टर्‌यौ टकुर्‌यौ, पत्ति लग्गह तनु सचिय॥
टर्‌यौ जु हौं ज्योग्गंद्र, जानि धीरत्तनु धर्‌यौ।
चावद्दिसि विंटयौ, वचन जचनह बल छर्‌यौ॥
बुल्यौजु बोलु चहुवान सौं, सो न बोलु छंडै हियौ।
गहि साहि हत्थ अप्फन कह्‌यौ, तिहि पयज्ज कारण जियौ॥ २७॥

शब्दार्थः—न=नहीं। मैं=मैंने। खग्ग=तलवार। सम्महयौ=पकड़ा। सिंगिणि=चाप, प्रत्यंचा। खंचिय=खैंची। हौं=मैं। टर्‌यौ=हटा। टकुर्‌यौ=टकार की (धनुष को टकारा)। पत्ति लग्गह=लज्जा के लिए। धीरत्तनु धर्‌यौ=धीर ग्रहण की, शान्त रहा। चावद्दिसि=चारों ओर। विंटयौ=घेरा गया। जचनह=जाचने, याचने। बल=शक्ति, कारण। छर्‌यौ=छला गया। बुल्यौ जु बोलु=जो प्रतिज्ञा की थी। सो=वह। बोलु=प्रतिज्ञा, वचन। छंडै=दूर करता। गहि=पकड़। साहि=बादशाह। अप्फन=अर्पण, सुपर्द करने के लिए। पयज्ज=पैज, प्रतिज्ञा। जियौ=जीवित रहा।

अर्थ:—धीर ने उत्तर दिया—मैंने न तो तलवार पकड़ी, न मैंने बाण को ही अपने हाथ में लेकर खींचा, न मैं [illegible] से हटा, और न मैंने धनुष की टंकार ही की, इस शरीर को लज्जा के लिए ही रक्खा। मैंने इसे योगी समझ कर ही लोहा नहीं लिया और यही कारण है कि शान्ति को शरीर में धारण किए रहा। उन्होंने मुझे चारों ओर से घेर लिया। मैं वचन बद्ध होकर ही [illegible] गया। मैंने जो वचन चाहुआन (पृथ्वीराज) को दिया वह वचन बिसारा नहीं [illegible]। मैंने उससे (पृथ्वीराज से) यह प्रतिज्ञा की थी कि शाह को पकड़ कर तेरे हवाले करूंगा, केवल उसी प्रतिज्ञा के कारण मैं जीता रहा हूं। (इसीलिये लड़ाई नहीं की)।

पुनि जपइ सुरतान, धीर तैं झुट्ठ बुल्लउ।
किन साइरु थाहयो, मेरु किन हत्थह ठिल्लउ॥
किनै सूरु समह्यौ, किनै सपनै धनु पायौ।
कौन स्यंघ सौं छुच्छि, खेलि जीवतु घर आयो॥
सुरतान दीन साहाब सों, इत्तौ झूट्ठ न तू कहहि।
जिमि समुद मझझ वडवानलहु, किमि सु साहि जीवत गहहि॥ २८॥

शब्दार्थ:—पुनि=फिर। जपइ=कहा। किन=किसने। साइरु=समुद्र। थाहयौ=थाह पाया। मेरु=सुमेरु पर्वत। हत्थह=हाथ से। ठिल्यउ=ढकेला। सूरु=सूर्य। समह्यौ=पकड़ा। स्यंघ=सिंह। छुच्छि=छेड़ कर। खेलि=खेल कर। जीवतु=जिंदा। दीन साहाब=शहाबुद्दीन। इत्तौ=इतना। जिमि=जैसे। वडवानलहु=वाडवाग्नि। किमि=कैसे। साहि=शाह।

अर्थ:—तब बादशाह ने कहा—हे धीर! तू ने असत्य बात कही। क्या कभी किसी ने समुद्र का थाह लिया है? हाथ से किसी ने सुमेरु को ढकेला है? सूर्य को किसी ने पकडा है? स्वप्न में देखा हुआ धन कोई पा सका है? और शेर को छेड कर उससे जूझने वाला कभी कोई जिंदा घर आया है? तू मुझ शहाबुद्दीन बादशाह से इतनी असत्य बात कहता है। जिस प्रकार समुद्र से सुरक्षित वडवानल है उसी तरह मैं सुरक्षित हूँ। तूं मुझे जिंदा कैसे पकड़ सकता है?

जौ विषहर विषु अधिकु, गरुड सौं मल्लुन मडइ।
जौ गलु गज्जे स्यघु, कोरि कुंजर बनु छडइ॥

जौ घन सघन मिलत, पवनु परचडु निकदइ।
जौ पसरहि रवि क्रिनि, कुहरु फट्टइ जगु वंदइ॥
जौ राहु चपि चंदइ गहइ, का ताराइन रक्खनउ।
जदिन साहि चहुवान रिण, तहिनु धीरु परक्खनउ॥ २६॥

शब्दार्थ:—विषहर=विषधर, सर्प। विषु==जहर। अधिकु=ज्यादा। ग्रब्बु=गर्व। मडइ=करते। गलु=गले से। गज्जे=गर्जना करने पर। स्यघु=सिंह। कोरि=करोडी, करोडों। कुंजर=हाथी। वनु=वन। छडइ=छोडता। घन=बादल। सघन=गहरे। मिलत=एकत्रित हो जाय। पवनु=पवन। परचडु=प्रचंड। निकदइ=नष्ट कर देता। पसरहि=फैले। क्रिनि=किरणें। कुहरु=कोहरा। फट्टइ=फट जाता। जगु वदइ=जग वदित। चपि=दबाए। गहइ=पकड़कर। तक्कि=ताकना, झांकना। ताराइन=तारागण। रक्खनउ=रक्षित। जदिन=जिस दिन। साहि=बादशाह। रिण=युद्ध। तहिनु=उस दिन। धीरु=धीर पुंडीर को। परक्खनउ=परख लेना।

अर्थ:—धीर कहने लगा—विषधारी सर्प मे अधिक विष होते हुए भी गरुड से गर्व नहीं कर सकता। करोडों हाथी होते हुए भी एक सिंह की गर्जना पर वन को उन्हें छोडना पडता है। चाहे जितने सघन बादल हों प्रचड पवन द्वारा नष्ट हो जाते हैं, चाहे जितना ही कुहरा हो उसे जग वदित रवि किरणों के फैलने पर नष्ट होना पड़ता है और अनेक तारागणों से रक्षित चन्द्र को राहू से दबना ही पड़ता है। इसी प्रकार हे शाह! जिस दिन तुम्हारा चाहुआन (पृथ्वीराज) से युद्ध होगा, उस दिन मेरी परीक्षा करना।

ऐ दुरोग बोलत, सैन हँस्सै सुलिताना।
ऐ दुरोग बोलत, पारि दोजक चदानी॥
ऐ दुरोग बोलत, लाज छुट्टै पति घट्टै।
ऐ दुरोग बोलत, ध्रिगु जु छत्री ठट्ठ ठट्टै॥
ता दुरोग वसि जिह कहै, चड्ड परती जानिए।
धावत धीर सुलतान रन, तौ रावत्त बखानिए॥ ३०॥

शब्दार्थ:—दुरोग=कपट युक्त। बोलत=बोलता। सैन=फौज। हँस्सै=हँसती है। सुलितानी=शाही। पारि=पटकेगा। चदानी=अपने पिता (चंद पुण्डीर को)। छुट्टै=छूटे। पति=पत,

विश्वास । [illegible] [illegible] । [illegible] । [illegible] ।
[illegible] । [illegible] । [illegible] ।
[illegible]-चढ़ने पर । [illegible] । [illegible] । [illegible] ।

अर्थ:—बादशाह कहने लगा— तेरे इस प्रकार असत्य कहने से शाही दल हँसेगा, तेरा पिता चहुआन धीर नर्क में पड़ेगा, लाज रह जायगी और विश्वास घट जायगा, क्योंकि इसे असत्य भाषण द्वारा जो क्षत्रिय अपना गर्व जताता है, उसको धिक्कार है। जिसे असत्य के वश में जिसकी जिह्वा है, वह बड़ा होता हुआ भी एक दिन अवश्य गिरेगा। उसी राज वंश की प्रशंसा करनी चाहिये जिसके मन में रणस्थल में बहुत समय धैर्य रह पाता है।

रवि न उवइ अथवइ चंद चंदनी नह मंडइ।
कोल करक्कइ दड्ढ, विसुकि वासुगि मरु छंडइ॥
पवनु थकिक थिरु रहइ, अवरु जलनिहि जलु खुट्टइ।
मेरु टरइ डग मगइ, ध्रुव टुट्टइ बलि छुट्टइ॥
जो न जियत साहि हिं गहौं, जौ न खग्ग पारउ खवरि।
तो बोल धीर धरणी खिसइ, बसइ न सिव अरधंग गवरि॥ ३१॥

शब्दार्थ:—उवइ=उदय। अथवइ=अस्त। चंदनी=चंद्रिका। मंडइ=मंडन करना, सजाना। कोल=वाराह। करक्कइ=तिड़कना, फटना। दड्ढ=डाढ़, दाढ़। विसु=विष, जहर। वासुगी=वासुकी नाग। मरु=मरे हुए, संचित। छंडइ=छोड़दे। पवनु=पवन। थकिक=थकित, थककर। थिरु=स्थिर। अवरु=और। जलधिहि=समुद्र में। जलु=जल। खुट्टइ=बीत जाय, समाप्त हो जाय। मेरु=सुमेरु। टरइ=टल जाय, ढह जाय। डग मगइ=हिल जाय। ध्रुव-ध्रुव। टुट्टइ=टूट पड़े। बलि=बलि राजा। छुट्टइ=बंधन मुक्त हो जाय। साहि हिं=शाह को। गहौं=पकड़ा। खग्ग-तलवार। पारउ=पटकदूँ, पछाड़दूँ। खवरि=खब को मानने वाले मुसलमान शत्रु। बोल=बोल। धीर=धीर-पुण्डीर। धरणी=पृथ्वी। खिसइ=खिसक जाय, हट जाय। बसइ न=बसे नहीं। अरधंग=आधे अंग में। गवरि=पार्वती।

अर्थ:—सूर्य उदय-अस्त होना छोड़ दे, चन्द्र चंद्रिका का मंडन करना त्याग दे, भू भार से वाराह की डाढ़ तड़कने लग जाय, संचित विष को वासुकी छोड़ दे, श्रमित होकर पवन स्थिर हो जाय, समुद्र का जल समाप्त हो जाय, सुमेरु डगमगा कर

ढह पड़े, ध्रुव नक्षत्र टूट जाय और बलि बंधन से मुक्त हो जाय। तब ही मेरे द्वारा शाह जीवित नहीं पकड़ा जा सकता और मेरी तलवार द्वारा मुसलमान शत्रु नहीं पछाड़े जा सकते। ऐसा होने पर ही मेरी प्रतिज्ञा के साथ पृथ्वी रसातल को जा सकती है और पार्वती शिव के वाम पार्श्व का त्याग कर सकती है।

धीर नाम तुहि धरिग, धीर रण होइ न जानौ।
भरिण चंड धर सड, तैं न दिट्ठौ सुलितानौ॥
नेज अग्र धज अग्र, अग्र वंवरि ढल्लानी।
अग्र वॉन कम्मान, पंखि दिट्ठैं हिंदवानी॥
जंवूर धारि हथनारि घन, घन अवाज फुट्टै घनी।
हुंकाह हुंक फुट्टै हिया, तव न कोय लग्गै धनी॥ ३२॥

शब्दार्थः—तुहि=तेरा। धरिग=रखा। धीर=धैर्यवान। रण=युद्ध। होइ=होना। जानौ=जानता। भरिण=भिड़ नहीं सकता। चंड=तेजी से। धर=पृथ्वी। सड=क्लीव। तैं न=तैंने नहीं। दिट्ठौ=देखा। सुलितानौ=शाही सत्ता। नेज=नेजे। अग्र=आगे। धज=ध्वजा। वंवरि=बंवाल, भयानक। ढल्लानी=ढलैत (ढालें रखने वाले)। वान-कम्मान=धनुष वाण। पंखि=पक्षी। हिंदवानी=हिंदू। जंवूर=जम्बूर, छोटी तोपें। हथनारि=बंदूकें। घन=बहुत। घन=बादल। फुट्टै=फैली हैं। घनी=विशेष, बहुत। हुंकाह हुंक=हुंकार की ध्वनि फैलने से। फुट्टै=फट-जावे। हिया=हृदय। तव न=तब नहीं। कोय=कोई भी। लग्गै=होता है। धनी=स्वामी, रक्षक।

अर्थः—बादशाह कहने लगा—तेरा नाम धीर रक्खा गया है, किन्तु तूं रण में धैर्य रखना नहीं जानता। क्लीव भूमिका में रहने वाला तेजी से कैसे भिड सकता है? तूंने कभी शाही सत्ता नहीं देखी है। शाही दल के आगे नेजे, ध्वजाएँ, बंब (वाद्य), ढलैत, और धनुष धारी योद्धा रहते हैं। वीरों के जम्बूरे, तुपक आदि की आवाज मेघ गर्जना की सी होती है और वीरों की हुंकारों से हृदय विदीर्ण हो जाते हैं, उस समय शत्रु का रक्षक कौन हो सकता है?

उंदरु ताम उच्छरइ, जाम वसि परि न विलारह।
मच्छु ताम तरफरइ, जाम नहिं रुध्यउ जारह॥
गैंवरु ताम गुट्टवइ, जाम नहिं केहरि गज्जइ।
हरण फाल तां करइ, जाम नहिं चीतउ लग्गइ॥

विश्वास । [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] पतित होगा।
[illegible] चढ़ने पर। [illegible]

अर्थः—बादशाह कहने लगा– तेरे [illegible] करने से शाही दल हँसेगा, तेरा पिता चक्रगम्भीर नर्क में पड़ेगा, लाज [illegible] जायगी और विश्वास घट जायगा, क्योंकि इसमें असत्य भाषण द्वारा जो क्षत्रिय अपना गर्व जताता है, उसको धिक्कार है। इसमें असत्य के वश में जिसकी जिह्वा है, वह बड़ा होता हुआ भी एक दिन अवश्य गिरेगा। उसी राज [illegible] की प्रशंसा करनी चाहिये जिसके मन में रणस्थल में बढ़ते समय धैर्य रह पाता है।

रवि न उवइ अथवइ चंद चंदनौ नह मडइ।
कौल करकइ दड्ढ, बिसुकि वासुगि भरु छुट्टइ॥
पवनु थकिक थिरु रहइ, अवरु जलधिहि जलु खुट्टइ।
मेरु डरइ डग मगइ, ध्रुव टुट्टइ बलि छुट्टइ॥
जौ न जियत साहि हिं गहौं, जौ न खग्ग पारउ रवरि।
तौ बोल धीर धरणी खिसइ, बसइ न सिव अरधंग गवरि॥ ३१॥

शब्दार्थः—उवइ=उदय। अथवइ=अस्त। चंदनौ–चंद्रिका। मडइ=मंडन करना, सजाना। कौल=बाराह। करकइ=तिड़कना, फटना। दड्ढ=डाढ़, दाँत। बिसु=विष, जहर। वासुगी=वासुकी नाग। भरु=भरे हुए, सचित। छुट्टइ=छोड़ दें। पवनु=पवन। थकिक=श्रमित, थककर। थिरु=स्थिर। अवरु=और। जलधिहि=समुद्र में। जलु=जल। खुट्टइ=बीत जाय, समाप्त हो जाय। मेरु=सुमेरु। डरइ=टल जाय, ढह जाय। डग मगइ=हिल जाय। ध्रुव-ध्रुव। टुट्टइ=टूट पड़े। बलि=बलि राजा। छुट्टइ=बंधन मुक्त हो जाय। साहि हिं=शाह को। गहौं=पकड़ा। खग्ग–तलवार। पारउ=पटकूँ, पछाड़ूँ। रवरि=रब को मानने वाले मुसलमान शत्रु। बोल=बोल। धीर=धीर-पुण्डीर। धरणी=पृथ्वी। खिसइ=खिसक जाय, हट जाय। बसइ न=बसे नहीं। अरधंग=आधे अंग में। गवरि=पार्वती।

अर्थः—सूर्य उदय–अस्त होना छोड़ दे, चन्द्र चंद्रिका का मंडन करना त्याग दे, भू भार से बाराह की डाढ़ तड़कने लग जाय, संचित विष को वासुकी छोड़ दे, श्रमित होकर पवन स्थिर हो जाय, समुद्र का जल समाप्त हो जाय, सुमेरु डगमगा कर

ढह पड़े, ध्रुव नक्षत्र टूट जाय और बलि बंधन से मुक्त हो जाय। तब ही मेरे द्वारा शाह जीवित नहीं पकड़ा जा सकता और मेरी तलवार द्वारा मुसलमान शत्रु नहीं पछाड़े जा सकते। ऐसा होने पर ही मेरी प्रतिज्ञा के साथ पृथ्वी रसातल को जा सकती है और पार्वती शिव के वाम पार्श्व का त्याग कर सकती है।

धीर नाम तुहि धरिग, धीर रण होइ न जानौ।
भरिए चंड धर संड, तैं न दिट्ठौ सुलितानौ॥
नेज अग्र धज अग्र, अग्र बंवरि ढल्लानी।
अग्र बॉन कम्मान, पंखि दिट्टैं हिंदवानी॥
जंबूर धारि हथनारि घन, घन अवाज फुट्टै घनी।
हुंकाह हुंक फुट्टै हिया, तव न कोय लग्गै धनी॥३२॥

शब्दार्थः—तुहि=तेरा। धरिग=रक्खा। धीर=धैर्यवान। रण=युद्ध। होइ=होना। जानौ=जानता। भरिए=भिड़ नहीं सकता। चंड=तेजी से। धर=पृथ्वी। संड=क्लीव। तैं न=तैंने नहीं। दिट्ठौ=देखा। सुलितानौ=शाही सत्ता। नेज=नेजे। अग्र=आगे। धज=ध्वजा। बंवरि=बबाल, भयानक। ढल्लानी=ढलैत (ढालें रखने वाले)। बान-कम्मान=धनुष बाण। पंखि=पक्षी। हिंदवानी=हिंदू। जंबूर=जम्बूर, छोटी तोपें। हथनारि=बंदूकें। घन=बहुत। घन=बादल। फुट्टै=फैली हैं। घनी=विशेष, बहुत। हुंकाह हुंक=हुंकार की ध्वनि फैलने से। फुट्टै=फट जावे। हिया=हृदय। तव न=तब नहीं। कोय=कोई भी। लग्गै=होता है। धनी=स्वामी, रक्षक।

अर्थः—बादशाह कहने लगा—तेरा नाम धीर रक्खा गया है, किन्तु तू रण में धैर्य रखना नहीं जानता। क्लीव भूमिका में रहने वाला तेजी से कैसे भिड़ सकता है? तूंने कभी शाही सत्ता नहीं देखी है। शाही दल के आगे नेजे, ध्वजाएँ, बंब (वाद्य), ढलैत, और धनुष धारी योद्धा रहते हैं। वीरों के जम्बूरे, तुपक आदि की आवाज मेघ गर्जना की सी होती है और वीरों की हुंकारों से हृदय विदीर्ण हो जाते हैं, उस समय शत्रु का रक्षक कौन हो सकता है?

उंदरु ताम उन्छरइ, जाम वसि परि न बिलारह।
मच्छु ताम तरफरइ, जाम नहिं रुध्यउ जारह॥
गैवरु ताम गुट्टवइ, जाम नहिं केहरि गज्जइ।
हरण फाल तां करइ, जाम नहिं चीतउ लग्गइ॥

सुम्मेरु ताम गरुवत नह, जव न हनू गहु करि कढ्ढइ।
अस्सम समूह दल तब लगै, जब न धीर पक्खरि चढइ ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ:—उद्दरु=चूहा। ताम=तब तक। उच्छरइ=उछलता, कूदता। जाम=जब तक। वसि=काबू में। परि=पड़ा। बिलारह=बिलाव के। मच्छु=मच्छी। तरफरइ=उछल कूद। फंध्यउ=फसती, उलझती। जारह=जाल, फंदा। गैवर=हाथी। गुड्डरइ=समूह-बद्ध रहते। केहरि=केशरी। गज्जइ=गर्जना करता। फाल=छलांगें। ता=तब तक। फरइ=मारता। चीतउ=चीता। लग्गइ=लगता, झपटता। सुम्मेरु=सुमेरु पर्वत। गरुवतनह=भारी पन। जब=जब। हनू=हनुमान। गहु=पकड़। कढ्ढइ=उठाना। अस्सम=विषम। तब लगै=तब तक। पक्खरि=घोड़े पर। चढइ=सवार होता।

अर्थ:—धीर ने कहा – चूहा तब तक ही उछलता है, जब तक बिलाव के काबू मे नहीं आता। मच्छी तभी तक तडपती रहती है जब तक जाल मे नहीं उलझती, हाथी समूह-बद्ध वहीं तक रहते हैं जब तक सिंह गर्जना नहीं करता। हिरण वहीं तक कूदता है जब तक चीता नहीं झपटता, सुमेरु का भारीपन वहीं तक है जब तक हनुमान ने हाथ से पकड उसे नहीं उठाया, इसी तरह शत्रुओं के दल समूह मे विषमता वहीं तक है जब तक मैं (धीर-पुण्डीर) घोडे पर नहीं चढता।

ढिल्ली ढाहि अवास, पकरि चहुवानहि डंडउ।
मारउ मत्त गयद, सज्जि सबु सैनु विहडउ ॥
चौरासी मडली, बंधि अपने घर आनौ।
रे रावत सुनि वत्त, पैज अपुनू परवानौ ॥
सुलतानु कहै साहाबदी, खिनकु गुमा मन महँ धरउ।
तौ वरु भुमि गड ढाहि सब, रण वासौ घर घर करउ ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ:—ढिल्ली=दिल्ली। ढाहि=गिरा कर। अवास=भवन। डंडउ=दंडित करूं। मारउँ=मार दूं। मत्त=मस्त। गयद=हाथी। सज्जि=सज कर। सबु=सब। सैनु=सेना। विहडउ=नष्ट कर दूं। चौरासी=चौरासी मंडल, चौरासी लक्ष योनि मे उत्पन्न। बंधि=बांध कर। वत्त=बात। पैज=प्रतिज्ञा। अपुनु=अपना। परवानौ=प्रमाण युक्त कर दूं। खिनकु=क्षणिक। गुमा=गुस्सा, क्रोध। रण वासौ=रनिवास में रहने वाली, अन्तःपुर में रहने वाली, रानियों।

अर्थः—शाह-वचन, मैं दिल्ली के निवास-स्थानों को ढहा दू, चाहुआन को पकड़ कर दंडित कर दू, मतवाले हाथियों का ध्वंस कर दूं, सज कर सब सेना का नाश करदूँ और चौरासी-लक्ष-उद्भव समूह को बाँध कर अपने निवास स्थान पर ले आऊं। हे राजवंशी धीर पुण्डीर! मेरी बात सुन, मैं (शहाबुद्दीन सुलतान) सत्य कहता हूँ, यदि क्षण मात्र के लिए क्रुद्ध हो जाऊ तो बाके वीरों के गढ और भूमि को ढहाकर उनकी रानियों को घर घर की कर दू।

गर जज्जी सकरी, पाइ वेरी को कट्टइ।
खणित गड्ड गड्डियहि, तेज बलु सव्व निघट्टइ॥
तुहि धीरतनु नाहिं, पान पीपर लौं डुल्लहि।
कहत न लजहि नलज्ज, वचन पुनि पुनि कर बुल्लहि॥
जित्तउव कालि ढिल्ली नयर, सम रण को सम्मुह रहइ।
सुरतानु कहै साहावदी, तव पयज्ज किम निव्वहइ॥ ३५॥

शब्दार्थः—गर=गला। जज्जी=जजीर। संकरी–सँकड़ी, कसी हुई। पाइ=पैर। वेरी=वेड़ी। को=कौन। खणित=खोदकर। गड्ड=गडढा। गड्डियहि=गड़वा देने पर। तेज=तेज। बलु=बल। सव्व=सब। निघट्टइ=घट जायगा, समाप्त हो जायगा। तुहि=तेरे। धीरतनु=शरीर में धैर्य। पान=पत्ते। पीपर=पीपल। डुल्लहि=डुलना, हिलना। नलज्ज=निर्लज्ज। बुल्लहि=बोलता है, कहता है। जित्तउव=जीत लूँगा। कालि=कल (कुछ ही अर्थ में)। ढिल्ली=दिल्ली। नयर=नगर। सम रण=समान रूप से रण में। सम्मुह=सनमुख। रहइ=रहेगा, टिकेगा। साहावदी=शहाबुद्दीन। तव=तेरी। पयज्ज=पैज, प्रतिज्ञा। किम=कैसे। निव्वहइ=निभेगी, पालन कर सकेगा।

अर्थः–फिर शाह कहने लगा—मैं तेरे गले मे कसकर जँजीर डाल दूँगा और पैरों मे वेड़ी पटकवा दूँगा उसे कौन काटेगा? गड्ढा खोदकर गड़वा देने पर तेरा तेज और बल सब समाप्त हो जायगा। तब हे धीर! तेरे शरीर मे वह धैर्य नहीं रहेगा। उस समय तूँ पीपल के पत्ते की तरह कापने लग जायगा। हे निर्लज्ज! तुझे लाज नहीं आती, तू बार बार मेरे सामने क्यों बोलता है, मैं कल (कुछ ही समय मे) दिल्ली नगर जीत लूगा। देखता हूँ युद्ध मे मेरे सामने कौन टिकता है और तेरी प्रतिज्ञा का पालन भी कैसे होता है?

तोरउ तरपि जजीर, थाट मोरउ साहन तुव ।
हौंन बचन टलि कहउ, गंग जिम पहुमि अटल ध्रुव ॥
कीर भाग उब्बरहि, सत्त साइर दिग्गंतर ।
वरु ण पवन उल्लटहि, काल पिरिख यहि निरतर ॥
पुण्डीरु धीरु इम उच्चहि, कवनु झुट्ठ बुल्लइ बयन ।
गहि पातिसाहि राजन अपउ, यह चरित्त दिक्खहि नयन ॥२६॥

शब्दार्थः–तोरउ = तोड दूंगा । तरपि = तडफकर, झटका देकर । थाट = समूह । मोरउ = मोड दूं, उलट दूं । साहन=अश्वारोही । तुव=तेरी । हौं=मुझे । टलि=टलने वाला । जिम=जैसे । ध्रुव = ध्रुव । कीर = मल्लाह । भागि=भाग्यवश । उब्बरहि =बचपाता है । सत्त = सात । साइर = समुद्र । दिग्गंतर= दिशाओं के अंत तक । वरु=फिर । ण=नहीं । उल्लटहि = पलटता । पिरिख=देखा जाता । उच्चहि= कहता । कवन=कौन । झुट्ठ=झूठ । बुल्लइ=बोलता है । बयन=वचन गहि – पकड कर । पातिसाहि=बादशाह । राजन=राजा ।

अर्थः धीर ने कहा–मैं तडफ (झटका दे) कर तेरी जजीरे तोड दूंगा और तेरे अश्वारोही समूह को मोड दूंगा । मुझे बचन चूक मत समझना । मेरे वचन तो गंगा के समान पवित्र और पृथ्वी तथा ध्रुव के समान अटल है । सप्त सिंधु जो दिशाओं के अंत तक है उनसे मल्लाह भाग्य से ही अपनी नौका बचा सकता है, हवा पलटा नही खाती, समय ही पलटा देता है । अत देख लेना, कौन असत्य बोलता है । हे शाह ! मैं तुझे पकड कर राजा पृथ्वीराज के सिपुर्द अवश्य कर दूंगा, यह चरित्र तू अपने नेत्रों से देखेगा ।

वे हयदू आलोल, बोल बोलहि सिर हीना ।
किन अम्मरु ढकयौ, समुद किन सैं मुख पीना ॥
किन जिम्मी जजार, भार कढ्ढे भुज भिल्ले ।
किन सिखिगनि ससार, हार मुरली मुरलिल्ले ॥
किन असन पान जित्तिय पहुमि, किन सुरतान जु सद्धिया ।
गामी गवार पुण्डीर कुल, सेरण सकर वद्धिया ॥३०॥

शब्दार्थः–वे=वे, थे । हयदू=हिंदू । आलोल=नादान । बोल=बोल । सिर हीना=बिना सिर-पैर के, बे पते के । किन=किस । अम्मरु=अम्बर, आकाश । ढकयौ=ढका, छाया की । समुद= समुद्र । सैंमुख=अपने मुख से । पीना=पिया । जिम्मी=जमीन सगार । जजार=जजाल । कढ्ढे=

धकेला, दूर किया। भिल्ले=उठाकर। सिखियनि=शिखा पर। मुरल्लिले=मुरलीधर की ग्रहण की हुई। असन=भोजन। पान=जलपान। जित्तिय=जीता। सद्धिया=युद्ध का साधन किया। गामी=ग्रामीण। गवार=गँवार मूर्ख। सेर=शेर। ण=नहीं। सकर=श्रृंखला। बधिया=बाँधा।

अर्थः—शाह कहने लगा—अरे नादान हिन्दू! बिना सिर पैर की बात करता है। कभी किसी ने आकाश पर भी छाया की है? कोई समुद्र को भी पी सका है? सांसारिक जंजाल का भार किसी ने भुजा पर उठाकर धकेला है? शिखा पर कोई पृथ्वी को उठा सका है? मुरलीधर की ग्रहण की हुई वैजयंती माला और मुरली को कोई प्राप्त कर सका है? भोजन और जल-पान पर किसी ने विजय पाई है? इसी तरह मुझ (सुलतान) से कोई युद्ध छेड़ सकता है? हे ग्रामीण मूर्ख पुण्डीर वंशज! शेर श्रृंखला से नहीं जकड़े जाते।

कहै धीर सुलितान, आन जल्लाल साहि तजि।
वड्डालां डीचाल, माल उट्ठति दिक्खि मुजि॥
आषाढी झड्डर, तुट्टि तर वर तन पत्तिय।
उडिड सेन दव जेन, रैण घल्लैं गल बत्थिय॥
तिहिं तेज तुंग लग्गैं तरणि, जनु अयास फुट्टै किरणि।
देवाह द्रुग्ग मत्तह भिरण, जनि विसांसि हिंदू नरणि॥ ३८॥

शब्दार्थः—आन=गर्व। जल्लाल=जलाल पन जालिम पन। साहि=ग्रहण कर। तजि=छोड़ दे। वड्डालां=खड्ग धारी। डीचाल=भयंकर। माल=पंक्ति, समूह। उट्ठति=उठते हुए। दिक्खि=देखना। मुजि=हमारा। झड्डर=झंझावात। तरवर=वृक्ष पत्तिय=पड़ जाते। दव=दग्ध करने वाली, अग्नि ज्वाला। जेन=जिसे। रैण=रयणायर, समुद्र। घल्लैं=डाल देते। गलबत्थिय=बाथ गुत्थ। तुंग=समूह। तरणि=सूर्य। जनु=मानो। अयास=आकाश। फुट्टै=फूटती, फैलती। किरणि=किरणें। देवाह=देव तुल्य। द्रुग्ग=दुर्गम, भयानक। मत्तह=मतवाले। भिरण=भिड़ना। जनि=नहीं। विसांसि=विश्वास कर। हिन्दू-नरणि=हिन्दू वीरों का।

अर्थः—धीर कहने लगा—हे सुलतान! तूने जो जालिम पने की आन ग्रहण कर रक्खी है उसे छोड़ दे। हम भयंकर खड्ग धारी वीरों के समूह को उठता हुआ देखना, जिसका चलना आषाढ़ की झंझावात के समान है। जिससे शत्रुओं के शरीर-वृक्षों

के तुल्य टूट २ कर पड जाते हैं। जो शत्रु सेना अग्नि ज्वाला के समान बढने वाली है उस पर वह तूफान पर आये हुए समुद्र के समान बढ कर बत्थंगुत्थ हो जाता है। जिसका तेज-समूह उदित होते हुए सूर्य किरणों के समान है। हम मतवाले वीरों का भिडना भयानक देवों के तुल्य है ऐसे हम हिंदू वीरो का तू विश्वास मत कर।

जिन दरिया दुस्तरिग, तेन खड्डुरि नी तल्लहि ।
जिन गिरवर गजिया, पन्न पत्तरि राह हल्लहि ॥
जिन भैरौ वर मत्र, ते न टर डकनि डक्का ।
जिन पचाए पॅजीय, तेन जंमुखिख निहक्का ॥
गोरी नरिंद रारिंद सौं, न्यदि पुंडीर ए चद सुव ।
सामत लक्ख सखा मिलैं, साहि न साधे सू धतुव ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ.—जिन=जो। दरिया=समुद्र। दुस्तरिग=दुस्तर (समुद्र) को तर गया। तेन वह नहीं। खड्डुरि=खड्डे। नी=नहीं। तल्लहि=तुलते। गजिया=नष्ट कर दिये, हिला दिए। पन्न=पत्ते। पत्तरि=कोंपलें। राह=नहीं। हल्लहि=हिलाते। भैरौं=भैरव। डकनि=डाकिनि। डक्का=उछलकूद। पचाए=पचानन, शेर। पॅजीय=पँजा दिया, दबादिया। जमुखिख=जबुक। (गीदड़)। निहक्का=शोर गुल। रारिंद=लड़ाकू। न्यदि=निंदित। हलकी बात। ए=नहीं। चद-सुव=चद्र पुण्डीर का पुत्र। लक्ख=लक्ष। सखा=सख्या। मिलैं=मिले, एकत्रित हो। साहि=बादशाह। साधे=साधना, कुछ करपाना। सू=वह। धतुव=धूर्त।

अर्थः—शाह कहने लगा-जिसने दुस्तर समुद्र को पार कर लिया है उसके सामने साधारण गड्ढे क्या चीज है? जिसने पहाडों को हिला दिया, वह पत्तों और कोपलों पर अपना बल नहीं आजमाता। जिसके पास भैरव का श्रेष्ट मत्र हैं वह डायन की उछलकूद से नहीं डरता। जिसने शेर को दबा दिया, उसके सामने गीदड का शोर गुल कुछ नहीं। अत मुझ लडाकू (गोरी शाह) के प्रति हे चद-पुत्र धीर पुण्डीर! इस प्रकार हलकी बात मत कर। लाखों की सख्या मे योद्धा आकर मिल जायें तो भी वे धूर्त मेरे (शाह के) सामने कुछ नहीं कर सकते।

जे जीवहि अग मैं, साहि ते जमहि न भज्जै ।
जे कामहि महमहे, लहकि ते कुलहि न लज्जै ॥
जे स्वारथ नदेह, देह दुक्खै न परक्खै ।
जे [illegible] ॥

डरऊं न साहि डंबर डरणि, अंबर लगि हक्कौं सयन।
मो धीर नाम धम्मह धरिग, चंद पुत्त जम्मह भय न ॥४०॥

शब्दार्थ:—जे=वह, जो। अगमें=अपनाता, काबू में रखता। जमहि=यमराज से। भज्जें=नष्ट होते, भागते। कामहि=शुभ कामना। महमहे=सौरभ। लहकि=लहकना, फैलना। नदेह=निन्दा करता। देह=शरीर। दुक्खें=दूखे, पीड़ित हो। परक्खैं=परीखा। जोगहि=जोगी, योगी। जग मैं=जंगम। डरऊं न=नहीं डरता। डंबर=आडम्बर। डरणि=डर से। अम्मर-लगि=आकाश से लगकर, उन्नत होकर। हक्कौं सयन=सेना में बढ़ौं, या सेना का वहन करूं। मो=मेरा। धम्मह=धर्म राज ने। धरिग=धर दिया, रख दिया। जम्मह=यमराज। भय न=भय नहीं।

अर्थ:—धीर कहने लगा—हे शाह! जिसका जीव काबू में है वह यमराज से भी नष्ट नहीं होता, जिसकी श्रेष्ठ कामना की सौरभ फैली हुई है वह अपने कुल को लज्जित नहीं करता, जो स्वार्थ की निंदा करता है उसके शरीर की तरफ दुःख नहीं फटकता और जो चलते फिरते जोगी हैं वे स्त्री से प्रेम नहीं करते। मैं आडम्बर के डर से डरने वाला नहीं हूं, मैं अपना उन्नत मस्तक आकाश से लगाकर सेना से भिडने वाला वीर हूँ। मेरा धीर नाम धर्मराज ने ही रख दिया है। मुझ चंद-पुत्र को यमराज का भी भय नहीं है।

हालै हसम हमीर, कीट्ट हयंदू दल खुंदौं।
जपि साहि जल्लाल, जोर जुगिनि पुर रुन्दौं॥
वे कुसाव आसा गवार, गरुत्तन गामी।
बोलां ही रावत्त, खंभ फुट्टैं वड नामी॥
आवर्त वत्त इय अक्खि मैं, गामी ग्रभु कड्ढौं रसै।
पति गत्रैं प्रान रक्खे पुरुख, छत्री छल छडे हँसे॥ ४१॥

शब्दार्थ:—हालै=चलते। हसम=सेना। हमीर=अमीर। कीट=कीड़े। हयंदू=हिंदू। खुंदौं=कुचल दूँगा। जपि=कहते। जल्लाल=जालिम, क्रूर। जोर=शक्ति। जुगिनि पुर=दिल्ली। रुन्दौं=रौंद दूँगा, कुचल दूँगा। वे=वे, अच्छे। कुसाव=बुराई को ग्रहण कर। आसा=आशा, इच्छा। गवार=गँवार। गरुअत्तन=गर्व। गामी=ग्रामीण। बोलां=बोलने मात्र से, आवाज मात्र से। खंभ फुट्टैं=स्तंभ रूपी वीर फट जाते हैं (नष्ट हो जाते हैं)। वड नामी=बड़े २ प्रसिद्ध। आवर्त=बार २। वत्त=बात। इय=यह। अक्खि=कही। ग्रभु=गर्व। कड्ढौं=दूर कर दूँगा। रसैं=रसा, पृथ्वी। पति गत्रैं=लज्जा चली जाने पर। पुरुख=पुरुष। छत्री=क्षत्रिय। छल-छडे=छद्म रहित।

अर्थः—शाह कहने लगा—मेरी सेना में बडे २ अमीर चलते हैं उनके बल पर कीड़े रूपी हिन्दुओं की सेना को कुचल दूँगा । मुझे जालिम कहते हैं । अत मैं अपनी शक्ति से दिल्ली के भू भाग को रौंद दूँगा । अरे ओ ! मनमानी बुरी आशा करने वाले मूर्ख, शरीर में अभिमान रखकर चलने वाले राजपूत ! तेरे जैसे वडे २ प्रसिद्ध स्तम्भ मेरी आवाज मात्र से फट पडते हैं । मैंने तुझे यह बात बार २ कही है कि तेरे जैसे ग्रामीण का गौरव पृथ्वी से नष्ट कर दूँगा । लज्जा चली जाने पर जो पुरुष अपना प्राण रखता है ऐसे को छद्म-रहित क्षत्रिय हँसते हैं ।

छलु छंड्यौ सुलितान, बलु न छड्यौ जिहि बद्धौ ।
जिउ रख्यो पति साहि, जियत पतिसाहि हि सद्धौ ॥
तनु रक्खो तजि तेग, तेग रक्खौ खुदि आलम ।
जब कड्ढौ करवाल, ढाल लग्गौ मुख लालम ॥
जलजात घात रक्खै जलै, दुद्ध विनट्ठौ सुद्ध हिय ।
लज्जनिय साहि गज्जन मनह, धीर पयंपइ अत्थ त्रिय ॥४२॥

अर्थः—छलु=छल । छड्यौ=छोड़ा । बलु=बल । जिहि=जिसको । बद्धौ=नष्ट कर्ता हूँ । जिउ=जिय । पति=लज्जा । साहि=ग्रहण कर के । जियत=जीवित रहते । पतिसाहि=बादशाह । सद्धौ=युद्ध छेड़ूँ । तनु=शरीर । तेग=तलवार । खुदि=खदेड़ कर । आलम=भीड़, शत्रु समूह । जब=जब । कड्ढौ=निकालूँ । करवाल=तलवार । ढाल लग्गौ=लुढ़काने लग जाता हूँ । मुख लालम=लाल २ मुँह वाले । जलजात=कमल । घातु=आघात । जलै=पानी । दुद्ध विनट्ठौ=नाश कर्ता दूध । लज्जनिय=लज्जा । साहि=ग्रहण कर । गज्जन=गजनी । मनह=मन । पयंपइ=कहता । अत्थ त्रिय=पराये अर्थ साधन के लिये ।

अर्थः—धीर वचन—हे शाह मैंने छल छोड़ दिया है, किन्तु जिसने बल नहीं छोड़ा उसका मैं नाश-कर्ता हूँ । मैंने लज्जा को ग्रहण कर अपने जीव की रक्षा इसलिए की है कि मैं जीते जी—तुझ (बादशाह) से युद्ध करूँ । तलवार छोड कर मैंने शरीर को रक्खा है उसी तेग को ग्रहण कर शत्रु समूह को व्यथित कर दूँगा । उस तलवार को निकाल कर तुम लाल २ मुख वाले शत्रुओं को मैं लुढ़का दूँगा, जलाघात से जिस प्रकार कमल अपने शरीर की रक्षा कर लेता है उसी तरह मैं अपने को सुरक्षित रख सकता हूँ । मेरा हृदय शुद्ध है, किन्तु मेरी माता के

दूध का जहर विनाश करने वाला है। हे गजनेश्वर! मेरे मन मे लज्जा पराये अर्थ साधन के लिए ही है।

सुनें बोल सुलितान, साहि सम्मुह जे मद्दिय।
बे कज्जे हाजर गवार, नाजरि है वद्दिय॥
तपित खान तत्तार, पकरि सिंगिन सर मगित्र।
ख्यचि करणि आवर्त्त, दिट्ठि सुरतान जु ठिंगित्र॥
बिय करे दरसु आलम चरितु, मुहि सु चच्च वाचा बगसि।
आ दान चद वच्चा यह जु मुहि सु गल्ह अक्खै रहसि॥४३॥

शब्दार्थः—सम्मुह=सामने। जे=जो। सद्दिय=कहा। बे कज्जे=निरर्थक। हाजिर=उपस्थित। गवार=गंवार, मूर्ख। नाजरि=जन्म से नपुंसक (ऐसे व्यक्ति बादशाहों के अंतहपुर में प्रतिहार "प्रहरी" वगैरा के रूप मे रहा करते थे वे नाजर कहाते थे)। है=होन्र। वद्दिय=कहता है। तपित=तेजी से आकर। पकरि=पकड़ कर। सिंगिनि=धनुष, प्रत्यंचा। सर=बाण, तीर। मंगिय=मांगा। ख्यचि=खींचा। करणी=हाथों मे। आवर्त्त=बार २। दिट्ठि=नजर। ठिंगिय=ठहर गई, टकटकी बंध गई। बिय=दोनों दीन के। दरसु=दर्शक। आलम=भीड़। चरितु=चरित्र। मुहिसु=हमको। चच्च=सच्च। वाचा=वचन। बगसि=दीजिये। आ दान=मस्ती मे आया हुआ। चद-वच्चा=चद पुण्डीर का पुत्र। मुहि सु=हमको। गल्ह=बात। अक्खैं=कहने मे। रहसि=रहस्य।

अर्थः—धीर ने बादशाह के सामने जो कहा—वे वचन तत्तार ने सुने और उसने कहा यह उपस्थित मूर्ख नाजिर जैसा क्या वृथा विवाद करता है। फिर उसने तेजी से आकर कमान उठाया और तीर मांगा तथा कमान को बार २ खींचा। यह देखकर शाह की टकटकी बंध गई और दोनों दीन के दर्शकगण इस लीला को देखने लगे। आई हुई जनता ने तत्तार से कहा, हमे सत्य वचनों के साथ उस मतवाले चंद-पुण्डीर के पुत्र को दे दीजिये, क्योंकि इसकी बात हमे रहस्य युक्त मालूम होती है।

ए गल्हा आखत, गल्ल फार्रौ लगि-कन्नां।
एई गल्ह सुनंत, खाल कड्ढौ नह तन्ना॥
एई गल्ह सुनत, प्रान कड्ढौ आपानी।
बे हराम आराम, दोह लग्गे सुचिहानी॥
आदिट्ठ पुट्ठि हिंदू इहा, के छुराण गड्ढौ गला।
चहि तुरक मान-हैंवै दिसा, हनो याहि कोजै हलां॥४४॥

शब्दार्थः—ए=ऐसी गल्ला=बातें। भाखत=कहने पर। गल्ल=गाल, जाबड़ा। फारौं=चीर दूं। लगि-कन्ना=कानों तक। एई=ऐसी। गल्ह=बात। सुनत=सुनने वाले। खाल=चमड़ी। कढ्ढौं=निकाललों। नह=नाखुन से। तन्ना=शरीर की। प्रान=प्राण। अप्पानी=स्व-कुटुम्बी की। वे=वो। हराम=हरामी। आराम=बगीचा। दोह=दोष। लग्गे=लगाते। सुविहानी=सुभान के भा=आकर। डिट्ठ=देखने को। पुट्ठि=पीठ पर, पक्ष पर। इहां=यहां पर। वे=कहते हैं। छुराण=छुटाने को। गड्ढी गला=ऊँची आवाज से। चढि=चढाई करके। तुरक=तुरुक, यवन। मान हेवे=मान भग करने वालों की। दिसा=ओर, तरफ। हनो=मार कर। याहि=इस। कीजे=करना चाहिये, करिये। हल्ला=आक्रमण।

अर्थः—तत्तार कहने लगा—ऐसी बात कहने वाले का मैं कानो तक जबडा चीर दूँ। सुनने वालों की नाखून से खाल निकाल लूँ। मेरा कुटुम्बी ही क्यों न हो, मैं उसका प्राण लेलूँ. वे लोग हरामी हैं जो सुभान के बगीचे को दोष लगाते हैं (मुसलमानो को दूषित करते हैं)। यहां पर यह भीड, देखने के बहाने हिन्दू के पक्ष पर आई हुई दिखाई देती है जो ऊँची आवाज से इसे छोडने के लिए कहती है, किन्तु हम मुसलमानों को यही करना उचित है कि इसे (धीर पुंडीर को) मारदें और मान भग करने वाले हिन्दू-राजा (पृथ्वीराज) की ओर चढाई करके उस पर आक्रमण करें।

हालाहल किय नैन, हत्थ तत्तार पथारह।
छीनि लिए सुविहान, रोस देखत अपारह॥
या वद्धे या वड्ड, याहि छड्डै जु वडाई।
पुच्छैं खा खुरसान, अग औसाफ चढाई॥
मन मेर वीर अकुरि रह्यौ, दिक्खि नयननि ज्वाल भ्रम।
इम कहै साहि साहाव तव, जाह धीर तू छडि कम॥४५॥

शब्दार्थः—हालाहल=हलाहल, जहर। हत्थ=हाथ। पथारह=पसारे। सुविहान=सुभान धर्म धारी गौरीशाह। रोस=क्रोध। या=इसको। वद्धे=मारने में। वड्ड=बड़ाई। याही=इसको। छड्डै=छोडने में। वडाई=वडाई। पुच्छै=पूछा, प्रश्न किया। खां खुरसान=खुरासनखाँ। औसाफ=इ साफ। चढाई=स्थान देकर। अंकुरि=ऊपर उठना। दिक्खि=देखने में। नयननि=नेत्रों में। ज्वाल=ज्वाला। इम=इस प्रकार। साहि साहाव=शहाबुद्दीन गोरी। जाह=जाओ। छडिकम=वाद विवाद का सिलसिला छोड़कर।

अर्थः—यह कहते हुए तत्तार के नेत्रों मे जहर छा गया और उसने अपने हाथ बाण चलाने के लिये फैलाए। उसे अपार क्रोध मे आया देखकर बादशाह ने बाण छीन लिया। उसमें इन्साफ की भावना पैदा हुई। वह खुरासान खॉ से कहने लगा— मेरा बड़प्पन इसे मारने मे है, या छोड देने में है। उस समय धीर पुण्डीर का मन ऊपर उठकर सुमेरु के समान अटल था और उसके नेत्रों से ज्वाला निकलती हो ऐसा भ्रम हो रहा था। यह देख बादशाह ने धीर से कहा—हे धीर! तू वाद विवाद के सिलसिले को छोड यहां से जा सकता है।

> बोलु बोलि चहुवान, वचन नह वच्चि पलडउं।
> चढि हय-गय पुण्डीर, खलक खुरसान विहडउ॥
> तीन लक्ख अगवडं, सहस सत्तरि सभरवैं।
> तव जानिजे प्रमान, साहि लहवहि सभरवे॥
> गजउ अगंज भूपति सरण, गोरी सयनु निहट्टिअउ।
> इम कहै धीरु सुलतान सौं, वाउ वहन्तो कट्टिहउं॥४६॥

शब्दार्थः—वच्चि = बीच में। पलडउ=पलटूंगा। चढि = चढ कर। हय-गय = घोड़े हाथी। खलक=भीड। खुरसान = मुसलमान। विहडउ =विनष्ट कर दूंगा। लक्ख = लक्ष। अगवडं= युद्ध स्वीकृत करूंगा, या-काबू में करूंगा। सहस सत्तरि = सित्तर सहस्र। संभरवैं=चाहुवान की (सेना)। तव=तब। जानिजे=समझ सकेगा। प्रमाण=सबूत, प्रमाण युक्त। साहि=पकड़ लूंगा। सभरवे=जोश मे आकर। गजउ=दबा दूंगा। अगंज=नहीं दबने वाले को। भूपति सरण=पृथ्वीराज की शरण में रह कर। सयनु=सेना। निहट्टियउ=नष्ट कर दूंगा। वाउवहंतो=पवन वेग से बढते हुए को। कट्टिहउं=काटदूंगा।

अर्थः—बादशाह से धीर कहने लगा-चाहुआन को जो मैंने कहा है, उन वचनों को बीच मे नहीं पलटूंगा। मैं पुण्डीर वीर हाथी घोड़े पर चढ कर मुसलमानी भीड़ का नाश कर दूंगा। चाहुआन की सित्तर सहस्र सेना के बल पर तेरे तीन लक्ष सैनिकों को काबू में कर और जोश मे आकर मैं तुझे पकड़ लूं तब ही तू मेरी प्रतिज्ञा को प्रमाण युक्त समझ सकेगा। मैं उस राजा की शरण मे रह कर नहीं दबने वालों को भी दबाकर छोड़ूंगा और गौरी सेना का नाश कर दूंगा। यदि पवन के समान झपट कर भी मेरे सामने कोई आयेगा तो उसको भी मैं काटे बिना नहीं छोड़ूंगा।

दोहा

खूब खूब सुलतान कहि, मरद भला वे तुमझ ।
मगि २ जो मगना, मैं न समप्पौं तुमझ ॥४७॥

शब्दार्थः—खूब २=वाह २ । कहि=कहा । भला=अच्छा । वे=अरे । मगि २=माग २ । मगना=मागना हो । व=वह । समप्पौं=दूं ।

अर्थः—शाह ने कहा—वाह २ अरे तूं अच्छा मर्द है तुझे मागना हो वह माग ले । मैं तुझे सब कुछ देने को तैयार हूं ।

कवित्त

जदिन जननि हौं जनिग, तदिन वज्जे वहु वज्जिग ।
तदिन वस पुण्डीर, विरद बानै मुहि छज्जिग ॥
तद्दिन मानु महत, तद्दिन पट्टे लिखि हत्थह ।
तदिन गाम गढ कोट, राइ रावत मुहि सत्थह ॥
असपत्ति सेनु वल गजि हौं, धीरु नाम तद्दिन लहौं ।
वासव पसाव तद्दिन लहौं, जब सु साहि जीवत गहौं ॥४८॥

शब्दार्थ—जदिन=जिस दिन । जननि=माता । हों=मुझे । जनिग=जन्म दिया । तदिन=उस दिन । वज्जे=बाजे । वहु=बहुत । वज्जिग=बजे । विरद=विरुद, बखान । बानै=साज । मुहि=मुझे । छज्जिग=सुशोभित हुए । मानु= माना गया, या इज्जत महत=बड़ा, महत् । पट्टे=पट्टा, सनद । हत्थह=हाथों में । कोट=महल । राइ-रावत=राजा सामत, साहिबी सत्थह=साथ । असपति=असुर-पति बादशाह । सेनु=सेना गजिहौं=दबाओं । लहौं=कहलाऊ, सार्थक करू । वासव=इन्द्र । पसाव=वैभव । साहि=बादशाह ।

अर्थ—मेरी माता ने जिस दिन मुझे जन्म दिया, उसी दिन अनेक प्रकार के बाजे बजे । पुण्डीर वश के विरुदों से मैं सुशोभित हुआ । मुझे महत् मान मिला, मेरे अधिकार की भूमि के पट्टे (सनद) लिखे जाकर मेरे हाथ मे दिए गए । ग्राम, गढ, महल मेरे अधिकार मे आए, और मेरे सामत आदि साहिबी मेरे साथ हो गई । केवल दो बात की इच्छा है, एक तो हे शाह ! तेरी सेना को दबा कर मैं अपने धीर नाम को सार्थक करूं, दूसरी इच्छा यह है कि तुझे जीवित पकडकर इन्द्र के समान वैभव प्राप्त कर पाऊं ।

कंजानी कब्बाइ, तुंग तेजी दह वाही।
जर जीना संजोइ, रेस रेसम्मि मुसाही॥
ले हयदू आ दान, जाह जंगा संभाही।
मैं आया तो पच्छ, लक्ख लोहा संमाही॥
सल्लाम अली आलम्म का, सामंतां सव्वा कहौ।
जगाह राज वज्जै भरा, तुम इक्कां कानी रहौ॥४६॥

शब्दार्थः—कजानी=कमल डंडी की आकृति की। कब्बाइ=कमान। तुंग=उत्तंग। तेजी=तेज। दह=दश। वाही=वाहन, वहन करने वाले घोड़े। जर जीना=जरीन सामान, जीन। संजोइ=सुसज्जित। रेस=रास। मुसाही=लगाम। हयंदू=हिन्दू वीर। आ दान=भरती में आया हुआ। जाह=जाओ। जगा=युद्धार्थ। संमाही=तैयार हो। पच्छ=पीछे १, साथ २। लक्ख=लाखों। लोहा=शस्त्र। संमाही=ग्रहणकर। सल्लाम=सलाम। अलि आलम्म=खुदा के बन्दों का। सामतों=सामंतों को। सव्वां=सबको। कहौ=कहना। राज=राजा (पृथ्वीराज)। वज्जे भरां=यौद्धाओं में ही होगा। इक्का कानी=एक तरफ।

अर्थः—शाह कहने लगा–यह कमल डंडी की आकृति वाली कमान और यह तेज चलने वाले दस घोड़े जरीन जीनों से सुसज्जित जिनकी रासें रेशम की हैं, हे हिन्दू वीर ! मैं तुझे देता हूं, इन्हें तू लेकर जा और जंग के लिए तैयार हो जा, मैं भी लाखों वीरों के हाथों मे शस्त्र ग्रहण करा कर तेरे पीछे पीछे ही आता हूँ। हम खुदा के बंदों का सलाम सब सामंतों से कहना और राजा (पृथ्वीराज) से कहना कि यह युद्ध सामंतों के साथ ही छिड़ेगा। अत: तुम एक ओर ही रहना।

ए तेजी कब्बाइ, साहि दिंनी मो हत्थैं।
वे हयदू ये मुसलमान, कत्थां सह कत्थैं॥
मैं झूठा सच्चा तु, साहि जो जंगन नच्चा।
मैं जग न वज्जिया, साहि तौ सच्चा शच्चा॥
वप्पाह वोलि अप्पा हलै, अप्पा वोल सहत्थिया।
चगाह चद वच्चा वचन, करि सलाम यह कत्थिया॥५०॥

शब्दार्थः—ए=यह। तेजी=तेज घोड़े। कब्बाइ=कमान। साहि=शाह। दिंनी=दी। मो=मेरे। हत्थें=हाथ में। वे=वह। हयदू=हिंदू। कत्था=ख्याति। कत्थैं=कहेंगे। झूठा=असत्य वक्ता। तु=तू।

जगन=युद्ध में । नच्चा=नाचा । जगन नज्जिया=जग न करूँ । अप्पाह=बाप, पिता । वालि=वचन आज्ञा । अप्पा=आप, स्वयं । हलै=चलें बोल म हण्णिया=बोल पर मारा जाय । नगाह=दृढ़ और, अटल, बलिष्ठ । चंद नंदना=चंद का पुत्र, धीर पुण्डीर । कथ्यिया=कहा ।

अर्थः— धीर कहने लगा–हे शाह ! तुमने यह तेज घोड़ा और कमान मेरे हाथ में दिया है, इसकी ख्याति वहाँ के हिंदू और यहाँ के मुसलमान करेंगे । मैं असत्य वक्ता और तू सत्य वक्ता तब ही होगा जब तू जग मे आकर लोहा लेगा और मैं युद्ध स्थल मे आकर युद्ध न करू, सच्चा वही है जो पिता की आज्ञा पर चले । अपने वचन पर मारा जाय । यह कह कर उस बलिष्ट चंद पुत्र ने सलाम किया ।

हँसिय साहि सुलतान, उच्च सिरपाउ मँगायौ ।
जो सुलितानी पट्ट, तुरी सोई पलनायौ ॥
पक्खर बक्खर राग, टोप टकार निवाज्यौ ।
पर्‌यौ निसाननि घाउ, हि रव जन बद्दलु गाज्यौ ॥
चौदह सै गैगर गुरिय, सज्जिय साहि असम्म दल ।
सुरतान कहइ साहाबदी, अवकिन सज्ज हि अप्प बल ॥ ५१ ॥

शब्दार्थः—उच्च=ऊँचे दर्जे का, बेश कीमती । सिरपाउ=सिरोपाव । मँगायौ=मँगाया । सुलतानी=बादशाह के चढ़ने का । पट्ट=खास । तुरी=घोड़ा । सोई=उसे । पलनायौ=सजाया । पक्खर=पाखर । बक्खर=बखतर । राग=प्रेम । टोप =शिरस्त्राण । टकार=चढ़ा हुआ धनुष । निवाज्यौ= दिया । पर्‌यौ=पड़ा, लगा । निसाननि=निशानों, नक्कारों पर । घाउ=चोट, डंका । हि=सी, उसकी । रव=आवाज । जन=जनु, जानो । बद्दलु = बादल । गाज्यौ=गर्जना की । सै=सौ । गैगर=गैवर, हाथी । गुरिय=गर्जना । असम्म दल=जिसका सामना कोई न कर सके या विषम । साहाबदी=शहाबुद्दीन । अव=अब । किन=क्यों नहीं । अप्पबल=अपनी शक्ति को ।

अर्थः—तब हँस कर बादशाह ने बेश कीमती पोशाक मँगाई और अपने चढ़ने का खास घोड़ा तैयार कराया, प्रेम से बख्तर, पाखर, टोप और टंकार करता हुआ धनुष धीर को दिया । तत्पश्चात् अपने नक्कारे पर डंका दिलवाया, जिनकी आवाज बादल को गर्जना के समान हुई । उस समय चौदह सहस्र हाथी गर्जने लगे और जिसका सामना कोई न कर सके । ऐसा शाही दल सुसज्जित हुआ । उस समय सुलतान शहाबुद्दीन ने धीर से कहा—जाओ तुम अपनी (सैन्य) शक्ति सजाओ ।

जप्पिय तुरि चढि मत्र, धीर चौदह सै सत्थह ।
दिक्खि अनंदिय धीर, साहि गहि हौं निय हत्थह ॥
विड्डारउ गज जूह, रुण्ड-मुण्डनि महि पट्टउं ।
तीनि लक्ख सत्तरि सहस, करिवर वर कट्टउ ॥
जित्तवहूँअ हयंदू तुरक, भिरउं नहकि पचारि रण ।
पुण्डीरु धीरु इम उच्चरैं, ध्रुव जानहि सुलितान मन ॥ ५२ ॥

शब्दार्थः—जप्पिय=कहा । तुरि=घोड़ा । चौदह सै=चौदह सौ । सत्थह=साथ में । दिक्खि=देखकर । अनंदिय=प्रसन्न हुआ । साहि=शाह । निय=निज । हत्थह=हाथों में । विड्डारउ=नष्ट कर दूंगा । जूह=समूह, यूथ । पट्टउं=पाट दूंगा, पूर दूंगा । सहस=सहस्र, हजार । करि=करके । वर=बल, शक्ति । वर=श्रेष्ट । कट्टउं=काट दूंगा । जित्तवहेंअ=जिता दूंगा । भिरउ=भिड़ूंगा । नहकि=निशंक । पचारि=प्रचारता (ललकारता) हुआ । ध्रुव=ध्रुव, निश्चय । सुलितान=बादशाह ।

अर्थः— अपने चौदह सौ साथियों सहित घोड़े पर चढ़ कर धीर ने अपने इष्ट का मंत्र जपा और बहुत प्रसन्न होकर बादशाह से कहा कि मैं तुझे अपने हाथों से पकड़ूंगा, हाथियों के झुण्ड को विदीर्ण कर रुण्ड-मुण्ड से पृथ्वी को पाट दूंगा, तेरे तीन लक्ष सत्तर सहस्र सैनिकों में से श्रेष्ठ होगा, उसे बल पूर्वक काट दूंगा, हिन्दुओं की विजय करूंगा और निःशंक होकर तुरुष्कों को युद्ध में भिड़ कर प्रचारूंगा। मेरे इन वाक्यों को तुम अपने मन में ध्रुव-निश्चय समझो।

धीर हत्थ दिय पान, पच्छ निस्सान जु सद्दे ।
खान तेग तत्तार, तरकि कस्यउ पर बद्दे ॥
दह दीहा आलंम, गभ गभीर उपट्टै ।
जनु बद्दल उत्तरा, देस दक्खिन पर लुट्टै ॥
आडड डभ जोगिन पुरां, धरि लग्गी संभरि धरा ।
प्रथिराज देव उप्परि हयत, है हिल्ली कात्रिल धरा ॥ ५३ ॥

शब्दार्थः—हत्थ=हाथ । दिय=दिया । पान=ताम्बूल । पच्छ=बाद में । निस्सान=नक्कारे । सद्दे=बजे । खान=यवन । तेग=तलवार । तरकि=तैश में आकर । कस्यउ=कसी । पर बद्दे=विपक्षी के वाद विवादके कारण । दह दीहा=दसों दिशा । आलंम=सौह । गभ गभीर=गहरी से गहरी ।

उप्पट्टे=उमड़ पड़ी। बद्दल=बादल। उत्तरा=उत्तर के। दक्खिन=दक्षिण। तुट्टे=टूटे। गाडड=गदडित। दम=दम, गर्व। जोगिन पुरा=दिल्ली। धरि लग्गि=धर लग, धर पकड़। ममरि धरा=चाहुआन की पृथ्वी। देव=देव तुल्य। उप्परि=ऊपर। दयत=दैत्य तुल्य। हिल्ली=हल्ली, चली। काबिल=काबुल, मुसलमानी। घरा=घटा, सेना।

अर्थ:—धीर को विदाई का ताम्बूल हाथ में देने पर फिर से नक्कारे बजवाये गये, मुसलमान और तत्तार वीरों ने विपत्ती के (धीर के) वाद विवाद के कारण जोश में आकर तलवारें बांधी, दसों दिशाओं से भारी भीड़ इस प्रकार उमड़ पड़ी मानो उत्तर के बादल दक्षिण पर छूट पड़े हों। दिल्ली का भू-भाग जिसे अदडित होने का गर्व है और जो चाहुआन की धरा है, उसमें धर पकड़ मच गई। देव तुल्य पृथ्वीराज के ऊपर काबुली (मुसलमानी) सेना ने दैत्य समूह के तुल्य होकर आक्रमण किया।

प्रथिराज चहुआन, विलसि वसुधा सह उप्पर।
डड भरइ चक्कवै, पिसुन पैरे कोलू वर॥
सहइ न कोइ सग्राम, पुव्व पच्छिम अरु दक्खिन।
यह अपुव्व पिक्खिए, गौर गाजनैं ततक्खिन॥
रहइ न कुइ सुनते श्रवन, जहँ जहँ सिंघ पुकारयौ।
आकपु भयौ सब सहर मे, जब सुरतानु हकारयौ॥ ५४॥

शब्दार्थ:—विलसि=विलासमान। वसुधा=पृथ्वी। सह=सब। उप्पर=ऊपर। डड=दड। भरइ=भरते। चक्कवै=चक्कर, पृथ्वी। पिसुन=शत्रु। पैरे=पेलना। वर=श्रेष्ठ। सहइन=सहन न करे। सग्राम=युद्ध। पुव्व=पूर्व। अपुव्व=अपूर्व। पिक्खिये=देखो। गौर=गौरा। गाजने=गर्जने, दहाड़ने। ततक्खिन=तत्क्षण। रहइ न=नहीं रहेगा। कुइ=कोई। आकपु=कपायमान। जब=जब। हकारियो=हुंकार की।

अर्थ:—चाहुआन पृथ्वीराज सारी पृथ्वी पर विलास मान था, पृथ्वी भर के उसको दड भरते थे, वह श्रेष्ठ-वीर शत्रुओं को कोलू में पीला देता था। युद्ध में उसकी समानता करने वाला पूर्व-पश्चिम और दक्षिण में कोई नहीं था और न कोई उससे लोहा ले सकता था* किन्तु यह अपूर्व बात है कि तत्क्षण ऐसे बलिष्ठ राजा

---

* कवि ने उत्तर का कथन इसलिए नहीं किया कि उत्तर में सांभर अजमेर जो उसी के राज्यान्तर थे एवं मेवाड़ राज्य उसका सहायक था।

की भूमि पर गोरी-वीर गर्जने लगे। जब कभी सिंह स्वरूपी पृथ्वीराज ने आवाज दी तो उसे सुनकर कोई भी न टिक सका, किन्तु आश्चर्य की बात है कि सारा शहर गौरीशाह की हुँक्कार से कपायमान हो गया।

ग्रह अप्पना छंडि, राज ग्रह धीर धवंदा।
ठा ढिल्ली रा-लोय, ताहि देखन आवदा॥
निय नीचानी नैंन, वैंन ऊँचा उच्चारा।
जा लग्गानी अग्गि, जीह जंपी पुक्कारा॥
दरबार राज वर वीर घन, मन हुलास मिल्यो धनी।
भुजंगम दुःख दुक्खाह गत, जनु कि नाग लद्धी मनी॥ ५५॥

शब्दार्थः—ग्रह=घर। अप्पना छंडि=अपना छोड़कर (शाह साथ ही चढ़कर आरहा था अतः घर न जाकर) राजग्रह=दिल्ली, राजधानी। धवदा=गया। ठा=स्थान। ढिल्ली=दिल्ली। रा=के। लोय=लोग। आवदा=आये। निय=निज। नीचानी=नीचे की तरफ। वैंन=वचन। ऊँचा=ऊँचे। उच्चारा=कहे। जा=जो। लग्गानी=लगगई। अग्गि=आग। जीह=जबान। जपी=कही। पुक्कारा=पुकारा। दरबार=सभा। राज=राजा की। घन=बहुत से। हुलास=प्रसन्न होकर। मिल्यो=भेंटा, मिला। धनी=स्वामी (पृथ्वीराज)। भुजगम=सर्प। दुक्खाह गत=दुःख रहित होजाता है। जनु=मानो। नाग=सर्प। लद्धी=मिली। मनी=मणि।

अर्थः—अपने घर की ओर न जाकर (शाह के चढ़ आने से घर जाने का त्याग करके) धीर दिल्ली की ओर रवाना हुआ। दिल्ली स्थान के निवासी लोग उसे देखने आये, उस समय संकोच के कारण धीर के नेत्र नीचे थे, फिर भी उसके वचनों में उच्च भाव था। उसने जो आग लगाई उसका अपनी जबान से उल्लेख किया (बादशाह के आने की सूचना दी)। उस समय राज सभा में बहुत से श्रेष्ठ वीर थे उनके सामने मन से अति प्रसन्न होता हुआ राजा पृथ्वीराज धीर से मिला। जिस प्रकार सर्प की मणि चली जाने पर कुछ समय तक दुःख होता है उसी प्रकार धीर के न होने से जो दुःख राजा को था वह उसके आजाने से दूर होगया मानो सर्प को मणि वापस मिल गई हो।

दोहा

सामंतां अमता अमित, चित्ता ताय निवार।
उट्ठि न सिर सम्मुह-सहज, लज्ज विरद्दां भार॥ ५६॥

शब्दार्थः—सामतां=सामंत गण । मामता=कुमंत्रणा । गमिन=गपार । बिता=बीती हुई, थी । ताय=उसे । निवार=निवारण किया । उद्दि न=नहीं उठा । सम्माह=सामने । मद्दज=सामान । लज्जे=लाज । बिरद्दा=बिरुद । भार=बोझा ।

अर्थः—सामंतो मे जो अपार कुमंत्रणा थी वह भी दूर हो गई (अर्थात धीर के आने पर सामतों का द्वेष मिट गया) किंतु फिर भी धीर का मस्तक लज्जा और बिरुद के भार से नहीं उठा ।

सा इन्छिनि पामारि, राज बज्जे बज्जाही ।
धा धक्कानी छडि, प्रौढ जोवन लज्जा ही ॥
अनि आनँद चदाह, चद जाया जनु अज्जा ।
हेम चीर हम्मेल, मेल नग आरति कज्जा ॥
उच्छाग अग राजनदरा, राज कान सब सुद्धरें ।
बंधीन साहि देखत ग, अज्ज हिंद दिन पद्धरें ॥ ५७ ॥

शब्दार्थः—सा=वह । पामारि=प्रमारिनी । बज्जे=बाजे । बज्जाही=बजवाये । धा=डर । धक्कानी=आतंक । छडि=छोड दिया । प्रौढ=प्रौढा । अनि आनँद=आनद प्राप्त हुआ । चदाह=चद पुण्डीर की पुत्री । जाया=उत्पन्न । जनु=मानो । अज्जा=आज ही । हेम=स्वर्ण । चीर हम्मेल=जरीन वस्त्र । मेल=रक्खा (सजाया) । कज्जा=के लिए । उच्छाग=उत्साह । राजनदरा=राजवंश, राज-वशजों के । सब=सब । सुद्धरें=सुधरे । बधीन=बांधा जायगा । साहि=बादशाह । देखत ग = देखा गया । अज्ज = आज । पद्धरें = अच्छे ।

अर्थः पटरानी इन्छनी और राजा ने धीर के आगमन पर बाजे बजवाये और दिल्ली निवासियों के हृदय से शत्रु की आतंक ज्वाला इस तरह विदा हो गई जैसे प्रौढा स्त्री मे लज्जा दृष्टिगोचर नहीं होती । चंदपुण्डीर की पुत्री रानी पुण्डीरनी के हृदय को इस प्रकार हर्ष प्राप्त हुआ, मानों चद पुण्डीर द्वारा धीर का जन्म आज ही हुआ हो (पकड़ा जाने से जो दुख था वह दूर हुआ और भाई द्वारा पुन वीरता प्रदर्शित करने का अवसर आने से उसे प्रसन्नता हुई) उस ने धीर की आरती के लिये स्वर्णाभूषण, जरीन पौशाकें, नग आदि थाल में सजाये । इस प्रकार प्रत्येक राज वंशजों के अग मे उत्साह की वृद्धि हुई और सब राज-काज सुधरते

दिखाई देने लगे। शाह पकड़ा जायगा ऐसा ज्ञात होने लगा और सभी यह कहने लगे कि आज हिन्दुओं के दिन अच्छे हैं।

दोहा

भुज भिस्यो संभरि धनी, नयन वुयन मिटि चाहि।
उचै न सीस समुह सुहर, लज्ज विरद भइ ताहि ॥ ५८ ॥

शब्दार्थ:—भुज=भुजा। भिस्यो=भेंठा। संभरि धनी=पृथ्वीराज। वुयन=वचन। चाहि=इच्छा। उचै=उठे। समुह=सामने। सुहर=सुभर। लज्ज=लज्जा। विरद=विरुद। भइ=हुई। ताहि=उसकी।

अर्थ:—पृथ्वीराज ने भुजाओं से भुजा मिला कर उसका सम्मान किया। नेत्रों से देखने और जिव्हा से बात करने की इच्छा मिट (तृप्त हो) गई। फिर भी सुभट धीर का सिर नहीं उठा, कारण कि बंधन में आने से अपने विरुद का सकोच उस मे बना हुआ था।

हेट हेट गंजन गयंद, वरणियहि चंद सुअ।
अग्गमग्ग अकलक, मीर रावत न लीह तुव ॥
तू अलग जुरि जग, खग्ग खत्रिनि वहु अड्डो।
सु क्यों गयो गज्जन गयद,मोहि अचरज यह वड्डो ॥
सभरि वै इम उच्चरइ रिपु अरिप्ट कुजर दवन।
कहि धीर भीर सपुरस दवन, जियतु गह्यौ कारन कवन ॥ ५९ ॥

शब्दार्थ:—हेट हेट=हेड़ें, समूह, भीड़। गजन=गजने वाला, नाश करने वाला। गयंद=हाथी। वरणियहि=कहा जाता है। चद सुअ=चद पुत्र, धीर पुण्डीर। अग्गमग्ग=वीरों के मार्ग में अग्रगण्य। अकलक=निष्कलक। मीर=अमीर। रावत=राजवंशज। लीह=रीति। तुव=तेरी। अलग=अलघनीय। जुटि जग=युद्ध में जुटने वाला। खग्ग=तलवार। खत्रिनि=क्षत्रियों के। वहु-विशेष रूप से। अड्डो=आडा, अर्गला, रक्षक। गज्जन=गजनी। गयद=हाथी रूपी वीर। अचरज=आश्चर्य। वड्डो=भारी। समरिवै=पृथ्वीराज। इम=इस प्रकार। उच्चरइ=कहा। रिपु=शत्रु। अरिप्ट=अमगल। कुजर=हाथी। दवन=दमन करना। भीर=समूह। सपुरस=श्रेप्ट पुरुष। दवन=शत्रु। जियतु=जीवित। गह्यौ=पकड़ा। कवन=कौन, किस।

अर्थ:—पृथ्वीराज कहने लगा-हे चंद पुण्डीर के पुत्र! तू हाथियों की भीड़ को नष्ट करने वाला है। तू वीरों का अग्रगण्य है और तेरा वंश निष्कलंक है। तेरी

वीरोचित परम्परा की तुलना पर कोई भी वीर और गजनवी नहीं माने जाते। युद्ध में तेरे भिड़ने पर कोई आगे नहीं ठहर सकता। तेरा खड्ग क्षत्रियों के लिये अर्गला स्वरूप है। हे मतवाले हाथी रूपी वीर! तू गजनी कैसे लेजाया गया, इसका मुझे भारी आश्चर्य है। तू अरिष्ट-कर्त्ता हाथियों रूपी शत्रुओं का दमन करने वाला और वीर समूह में श्रेष्ट कहा जाने वाला है, फिरभी हे धीर! तू शत्रुओं द्वारा जिन्दा किस कारण पकड़ा गया?

हँसिय चौंड रा जैत, सीह सामत अभंगे।
खभ फोरि गिरविग्गो, चद गभ्भरु मू चंगे ॥
मुख नन्हा आदान, बोल बड्डा बहि लग्गा।
गव गवार पुण्डीर, साहि बधै बलु भग्गा ॥
सुलतान दीन सिलु स्वामि सिर, मरयौ न जिय आरसु करयौ।
वर विरणि सूर इम उच्चरे, धीर जननि ग्रभ न गर्यौ ॥ ६० ॥

शब्दार्थः—चौंड=चामंडराय। रा जैत=जैतराय। सीह=सिंह। सामत=योद्धा। अभंगे=अखंड, अभग। गिरविग्गो=गर्व किया। गभ्भरू=भयभीत। मूचंगे=श्रेष्ट, बलिष्ट। मुखनन्हा=छोटा मुँह। आदान=मस्ती में आकर। बोल बड्डा=बड़े बोल। बहि लग्गा=कहने लगा। गव=गर्व। गवार=मूर्ख, अयाना। साहि बधै=बादशाह द्वारा पकड़े जाने से। भग्गा=नष्ट हो गया। सिलु=मीर दिया सहारा दिया, दया का पात्र किया। जिय=प्राण। आरसु=आलस्य। विरणि=वीर। सूर=बहादुर। ग्रभन गिर्यौ=गर्भ पात नहीं हुआ।

अर्थः—धीर का आना सुनकर सिंह के समान अभंग वीर चामंड और जैत्रराय हँसते हुए कहने लगे—विजय स्तंभ को तोड़ फोड़ देने से जो गर्व आगया था वह चूर हो गया। हे बलिष्ट तू अच्छा कायर हुआ, मस्ती में आकर छोटे मुँह से बड़ी बात कही, हे अभिमानी अयाने पुण्डीर! बादशाह द्वारा पकड़े जाने पर सब बल नष्ट हो गया। पृथ्वीराज जैसे स्वामी के सिर पर होते हुए भी तू बादशाह द्वारा दया का पात्र बना, तुझको इससे तो मर जाना अच्छा था। किन्तु तूने आलस्य किया और जिन्दा रहा। औरभी श्रेष्ट बहादुर वीर कहने लगे—हे धीर तेरी माता का गर्भ-पात क्यों नहीं हुआ?

दोहा

गल्यौ न ग्रभ पुण्डीर तुव, जन्नि लजाई माय।
वंचित दिष्ट राजन तनी, कही सुनाइ सुनाइ ॥ ६१ ॥

शब्दार्थः—जन्नि=जन्म देकर। माय=माता। वचित=बचाकर। दिष्ट=नजर। तनी=की। सुनाइ२=सुना २ कर।

अर्थः—हे पुण्डीर तू गर्भ में था तब गर्भपात क्यों नहीं हुआ ? तुझे पैदा कर तेरी माता लज्जित हुई। यह बातें राजा के परोक्ष में उसके विषय में की गई।

कवित्त

समौ जानि सहि रह्यौ, धीर सम्मुह बोलांही।
अवसि होइ संग्राम, दिट्ठ चावड जिताही॥
राज मद्धि मरजाद, समुद हद लोपन लग्यो।
पहु पवार पुण्डीर, दाहि दाहिम भर भग्यो॥
सिर सिलह धार पुण्डीर पर, सिलह वधि समुह तहीं।
एकत्थ तत्थ प्रथिराज पर, विवरि २ चदह कही॥ ६२॥

शब्दार्थः—समौ=समय। जानि=जानकर। सहिरह्यौ=सहता रहा। सम्मुह बोलांही=सामने कहे हुए वचनों को। अवसि=अवश्य। होइ=होवेगा। संग्राम=युद्ध। दिट्ठ=देखते हुए। जिताही=जीतेगा। राजमद्धि=राज सभा में। मरजाद=मर्यादा। समुद=समुद्र (समुद्र रूपी वीर समूह)। हद=सीमा। पहु=पास, से। पवार=प्रमार। दाहि=जलन। दाहिम=चामंडराय। भर=योद्धत्व। भग्यौ=नष्ट होगया। सिर=सिर उपर। सिलह=कवच, शस्त्र। धार=धारण करना। वंधि=कमी। सम्मुह=सामने। तही=उसने, वह भी। एकत्थ=एकांत। तत्थ=तहां। पर=से। विवरि २=ब्यौरेवार। चदह=कवि चद ने।

अर्थः—कवि चद ने पृथ्वीराज से यह ब्यौरेवार समाचार कहा—कि चामंड और जैत्र पँवार ने धीर को व्यंग वाक्य कहे हैं किंतु समय को देख धीर चुप रह गया। शाह के साथ युद्ध मे चामंड को देख कर धीर विजय प्राप्त करेगा। राज सभाओं में मर्यादा होनी चाहिये किंतु समुद्र कार लोपने लग गया है (अर्थात् समुद्र रूपी गंभीर सामंत मर्यादा को लोपने लग गये हैं)। पुण्डीर से जलन होने के कारण प्रमार-नरेश जैत्र और दाहिमे चावड का वीरत्व (वीरो चित गुण) नष्ट हो गया है। ये शत्रु पर नहीं पुण्डीर पर कवच और शस्त्र धारण करना चाहते हैं और वह भी इन्हीं पर अपने शस्त्र और कवच सजाना चाहता है (अर्थात् इस युद्ध मे एक दूसरे के विरुद्ध चलने की सम्भावना है)।

कालिह लियौ गज्जनो, कालिह तुरकाइनु डंडौ।
मोरउ कालिह गयद, सज्जि सनु सेनु विहंडौ॥
कलिह जित्तौ गोरी समूह, कालिह पर दलु वित्तारौ।
कालिह चद की आन, जौ न स्वामित्त्व सु धारौ॥
सुइ करिय पैज बरदाइ भनि, सभर धनी उबारिहौ।
पुण्डीरु धीरु इम उच्चरै, कालिह मिच्छ दलु मारिहौ॥ ६३॥

शब्दार्थ:—कालिह=कल। लियौं=ले लूगा। गज्जनो=गजनी। तुरकाइनु=तुरुकों को। डडौं=दण्डित करूंगा। मोरउ=मोड़ दूंगा। सज्जि=सजा कर। सबु=सब। सेनु=सेना। विहडौं=नाश कर दूंगा। जित्तौं=जीत लूंगा। दलु=सेना। वितारौं=समाप्त कर दूंगा। आन=शपथ, दुहाई। जौ न=जो नहीं। स्वामित्त्व=स्वामी-धर्म। धारौं=धारण करू। सुइ=वही, ऐसी। करिय=करके। पैज=प्रतिज्ञा। वरदाइ भनि=वरदाइ कवि चद ने कहा। समरधनी=समरेश्वर पृथ्वीराज। उबारिहौं=बचा लूंगा। मिच्छ=म्लेच्छ, यवन।

अर्थ:—फिर विरदाई (चद) ने कहा कि धीर ने उनके सामने यह प्रतिज्ञा की कि मैं कल गज्जनी फतह करूंगा, तुरुष्कों को दड दूंगा, हाथियो को मोड दूंगा, सुसज्जित होकर सब सेना का नाश करूंगा और गोरी समूह पर विजय पा लूंगा। विपक्षी की सेना को समाप्त कर दूंगा। मैं मेरे पिता चद पुण्डीर की शपथ खाकर कहता हूँ कि कल मैं श्रेष्ठ स्वामी-धर्म को धारण कर समरेश्वर पृथ्वीराज को बचा-लूंगा और म्लेच्छ-दल को मारकर गिरा दूंगा।

कहै राउ चावड, धीर यह बात विचारी।
पाति साह दल विषम, तुरी अगनित है भारी॥
तीनि लक्ख तुक्खार, घालि पक्खर घुम्मावै।
मलिक मीर उम्मरां काहु सावग न आवै॥
अरि जुरत नयन खडै वलन, पुणि पच्छै सका करै।
ता जननि दोस दुरजनु हसै, बोलु बोलि पच्छै टरै॥ ६४॥

शब्दार्थ:—तुक्खार=अश्व। घालि=डाल कर। पक्खर=पाखरें। उम्मरा=उमराव। काहु=कोई भी। सावग=समानता पर। जुरत नयन=चार आँखे होते ही, मिलते ही। खडै वलन=चल नष्ट हो जाता। पुणि=पुनि, फिर। पच्छैं=पीछे से। ता=उसकी। दोस=दोष लगा कर। दुरजनु=शत्रु। बोलु=बोल। बोलि=कहकर। पच्छै टरै=विचलित हो जायें, पीछे हटे।

अर्थः—इस पर चावंडराय ने कहा, हे धीर ! तेरी यह बात तो बेसमझ की है। बादशाह का दल विषम है, उसकी सेना मे बडे २ अगणित घोडे हैं उनकी संख्या तीन लक्ष है। जो पाखरे डालकर घुमाए जाते हैं। उस गोरी शाह के मलिक मीर और उमराव पद धारी योद्धा ऐसे हैं। जिनकी तुलना में दूसरा कोई भी वीर नहीं आ सकता है। ऐसे शत्रुओं से चार आँखे होते ही बल क्षय हो जाता है और उनके सामने लज्जित होना पड़ता है। ऐसे भग्न प्रतिज्ञ की माता को दूषित ठहरा कर दुर्जन हँसते हैं।

धुर ण गाजि जलु खसइ, बोल सपुरस नहि झुंटउ।
वह त्रिव्व हे नियान, वाहि जनि जानहु पुट्टउ॥
करै पैज पुण्डीर, खग्ग खत्रि न खिसि भज्जइ।
सिरु टुट्टै धर परै, जनिक जाव्रत न लज्जइ॥
जुद्ध धीरु इम उच्चरइ, हौं न झूठु बुल्लौं घनौं।
है वै सु हेल हत्थह हनौ. तौ सु धीरु चंदह तनौं॥ ६५॥

शब्दार्थः—धुर=धराऊ, उत्तर मे। ण=नहीं। गाजि=गर्जना। जलु=जल। खसइ=बरसे। बोल=बोल सपुरस=सत पुरुष। झुंटउ=असत्य। त्रिव्व है=निभाता। नियान=न्याय युक्त, निश्चय। वाहि=उसे। जनि=नहीं। पुट्टउ=पीठ दियें, विमुख। खग्ग खत्रि=खड्ग धारी क्षत्रिय। खिसि=खिसक कर। भज्जइ=भगेगा सिरु=सिर। टुट्टै=टूटे। धर=धड। परै=पड़ना। जाव्रत=जन्म दात्री। न लज्जइ=नहीं ले जाऊँगा। जुद्ध धीरु=युद्ध में धीरज रखने वाला। बुल्लौं=बोलूँ। घनौं=बहुत (विशेष बातें नहीं बनाता)। है वै=अश्वारोही। हेल=समूह। हत्थह हनौ=हाथों मे नष्ट कर दूंगा। तौ सु=तब ही। तनौ=का।

अर्थः—धीर ने कहा— उत्तर से उमड कर गर्जता हुआ मेघ जल न बरसाये, यह होना सम्भव है परन्तु सत्य-पुरुष के बोल (वचन) झूठे होना संभव नहीं है। वह सत्यता पूर्वक उन्हें निभाता है। वह वचनों से विमुख नहीं होता। खड्ग धारी क्षत्रीय पुण्डीर प्रतिज्ञा करता है कि मैं खिसक कर नहीं भागूंगा, सिर टूट पडे, धड़ धराशाई हो जाये, किंतु जन्मदात्री माता को मैं लज्जित नहीं करूंगा। मैं युद्ध-धीर (युद्ध मे धैर्य्य रखने वाला) हूँ, असत्य वक्ता नहीं जो विशेष बातें बनाऊँ। मैं अश्वारोही समूह को पुन हाथों से नष्ट न कर दूँ तो मुझे चंद पुण्डीर का पुत्र मत समझना।

चंदा बसै अकास, तरह किम तोरण पाइय।
कनै लंक दधि मभ्झ, कोउ कंचनु लै आइय॥
को केहरि कच गहै, पाइ को प्रव्वतु ठिल्लै।
को दरिया दुस्तरे, अनिलको अकम भिल्लै॥
रावत्त राइ सह सभरै, दाहिम्मा इम उच्चरै।
सज्जेव सेन आलम असमु, किम सु धीर पद्धर परै॥ ६६॥

शब्दार्थः—चंदा=चन्द्र। बसै रहता है। अकास=आकाश। तरह=प्रकार। किम=कैसे। तोरन=तोडना। पाइय=पावै, पा सके। कनै=कैसे। दधि=समुद्र। मभ्झ=में। कोउ=कौन। कंचनु=सोना। आइय=आवे। को=कौन। केहरि=सिंह। कच=केश, बाल। गहै=पकडे। पाइ=पैरों। प्रव्वतु=पर्वत। ठिल्ले=धकेले। दरिया=समुद्र। दुस्तरे=दुस्तर, पार कर सके। अनिल=पवन। अकम=बाहु पाश में। भिल्लैं=लेवें, पकडें। समरैं=सुनते। असमु=विषम। सज्जेव=सजने पर। आलम=भीड़ बादशाही। किम=कैसे। पद्धर परे=(पादरो पडे) पार पड़े।

अर्थः—चावंड ने कहा—आकाश-स्थित चन्द्रमा को तोडकर किस प्रकार जमीन पर लाया जा सकता है, समुद्र स्थित लंका से कोई स्वर्ण कैसे ला सकता है, सिंह की सटा को कोई कैसे ग्रहण कर सकता है, पैर से कौन पहाड को धकेल सकता है, समुद्र को कौन तैर सकता है, पवन को कौन बाहुपाश मे ले सकता है। समस्त राज वंशज और राज पद धारियों के समक्ष दाहिमा ने यह कहा कि इस प्रकार शाह का सुसज्जित विषम दल है, उसके सामने धीर की प्रतिज्ञा कैसे पूरी हो सकती है?

जब लगि जिय अरु सासु, जीह मुक्खन खनु थक्कहि।
जब लग हिये हकार, मुच्छ मुह मछर फरक्कहि॥
जब लग कर करिवारु, गहिव गज्जन वै गंजौ।
ढाल ढोल ने जे पराइ, सभरवै रजौ॥
जब लगि सिर मुहि कँध पर, पवन मेघ वरतत घनु।
यह कहै धीरु चामंड सौं, तेज पनट्टै प्रान विनु॥ ६७॥

शब्दार्थः—जब लगि=जब तक। सासु=श्वास। जीह=जिव्हा। मुक्खन=मुख में। खनु=क्षण। थक्कई=थकैगी। हिये हकार=हृदय चलता रहे, हृदय की गति बनी रहे। मुच्छ=मूँछें। मछर=मस्तानी। फरक्कई=फरकेगी। करिवारु=रवान, तलवार। गहिव=पकड़कर। गज्जन वै=गजनी

वाला। गंजौं=दबाऊँ। ढाल=ढालें। ढोल=वाद्य विशेष। नेजे=झंडे। पराइ=गिरा कर। संमरि नरेश= पृथ्वीराज को। रजौं=प्रसन्न करू। वरतत=बरता दूँगा। घनु=विशेष रूप मे। पनट्ठे=नष्ट हों। प्राण विन=प्राण रहित।

अर्थः—धीर ने कहा—जब तक मेरे प्राण और श्वास हैं; तब तक मेरा मुँह हुंकार करता हुआ नहीं थकेगा। जहाँ तक मेरी हृदय गति चलती रहेगी वहाँ तक मेरी मस्तानी मूंछें फड़कती रहेगीं। जहाँ तक मेरे हाथ में तलवार है मैं अवश्य ही शाह को पकड़ कर दबा दूँगा और विपक्षियों की ढालें, ढोल (वाद्य विशेष) और नेजे (पताकाएँ) गिरा कर सभरी नरेश को प्रसन्न कर दूँगा। जब तक मेरा सिर धड़ पर है, तब तक पवन सयुक्त मेघ की अति वृष्टि का सा दृश्य कर बताऊँगा। धीर चामड से कहने लगा-मेरी प्रतिज्ञा तभी पूर्ण न हो सकेगी जब मेरे प्राण नहीं रहेंगे।

कहि ग्रह पत्तौ धीर, राज दरबार हसतो।
मन उछाह आनन्द, राज सिर भार वहंतो॥
मिले सव्व पुण्डीर, आय त्रण राय व्रग्ग वर।
अति सुमान दिय दान, व्रन्न जिहि मंडि आनिकर॥
जय जय सद्द जंपै जगत, बाल वृद्ध उच्छह तरुण।
अति प्रेम सहित अन्तर मिले, रस सु माह रज्जे करुण॥ ६८॥

शब्दार्थः—पत्तौ=गया, पहुचा। हसतो=प्रसन्न होता हुआ। उछाह=उत्साह। वहतो=वहन करता। सव्व=सब। आइ=आकर। त्रण रायव्रग्ग=तीन श्रेणी के राज वशज (ऊँचे, मँझले और साधारण पद के)। व्रन्न=वर्णन किया। जिहि=जिसने। मडि=मांडकर। आनिकर= आकर। सद्द=आवाज। उच्छह=उत्साह। तरुण=युवक। अंतर=आंतरिक। रस=प्रेम। माह=परस्पर। रज्जे=सुशोभित हुए। करुण=करके।

अर्थः—इतना कह हँसता हुआ धीर राज दरबार से विदा हो अपने घर चला गया। राजा के भार को सिर पर वहन करने का जिसके मन में उत्साह और हर्ष था। घर पहुँचने पर सब पुण्डीर (ऊँचे, मँझले और साधारण पद के) आकर मिले। धीर ने उनका सम्मान किया और पुरस्कार दिया। जो अपने में बीती उसको ठीक ढग से ब्योरेवार कहा और बाल, वृद्ध तथा तरुण सब ने उत्सव मनाया। वे सब आंतरिक प्रेम से मिले और उसी प्रेम-रस को परस्पर स्थान देते हुए सुशोभित हुए।

इक्क महूरत मिलिग, सब्ब सबोध सुमन किग ।
ता पच्छै एकंत, बोलि भर अग्ग अप्पुलिय ॥
रघर राइ विरम्म सग, सागर पुण्डीरह ।
साहि बखान सुमान, राम हरिराउ हमीरह ॥
मल्हन सु महरपति, सत्त मन, कमधज केल्हन जास पति ।
बिट्ठै सुचित्त चिंता सुचित, बिरद लज्ज लग्गी सु गति ॥ ६६ ॥

शब्दार्थः—इक्क=एक । महूरत=मुहूर्त । सब्ब=सब । सबोध=संबोधन । ता पच्छै=तत् पश्चात् । अप्पुलिय=अपने लिए । रघर=सुभट, रघरराय वीर क्षत्री । सग=सहित । साहि बखान=बादशाह द्वारा प्रशंसित । सुमान=सम्मान । राम=राम राय । महरपति=मिहरों का स्वामी, मिहर जाति का मुखिया । सत्त-मन=सच्चे मन वाला । जास पति=जिसकी इज्जत है । बिट्ठे=बैठे । सुचित=चिंतन करते हुए । लज्ज=लज्जा । लग्गी=हुई ।

अर्थः—श्रेष्ठता पूर्वक संबोधन कर वह एक मुहूर्त तक सबसे मिला । पश्चात् अपने सामंत वर्ग को एकान्त मे बुलाया । उनमे प्रमुख वीर रघरराय, वीरमराय, सागर राय सहित उपस्थित हुए । वे पुण्डीर के वंशज थे । बादशाह ने जिनका बखान किया ऐसे सम्मान वाले, रामराय, हरिराय और हम्मीर भी सम्मिलित हुए । मिहर-पति मल्हन जो सच्चे मन वाला था वह तथा कल्हन कमधज्ज जिनकी विशेष प्रतिष्ठा थी वे भी आ पहुँचे । सब शुद्ध चित्त वाले बैठकर अपने विरुद, प्रतिष्ठा और प्रतिज्ञा का पालन कैसे हो, इसका चिंतन करने लगे ।

तब जंपै हरिराउ, सरस सागर पुण्डीरह ।
कहा धीर तुम सुनी, बत्त आ हित्त सुही रह ॥
जपै रघर राऊ, हित्तकह मत्त विचारहु ।
सीस काज सम धरें, सूर सम गल्ह गु जारहु ॥
सजि चढ़ो अप्प सेना सकल, कहै बंध अप्पान भर ।
पद्धरें खेत पति साहि सौं, करैं मार उभभार भर ॥ ७० ॥

शब्दार्थः—सरस=सरसता पूर्वक । बत्त=बात । आ=यह । हित्त=हितप्रद । रह=रास्ते की । हित्तकह=हित के लिए । मत्त=मंत्रणा । विचारहु=विचारो । सम=स्वामी, या के लिये । धरें=धर दें, दूर कर दें । गल्ह=ख्याति । गु जारहु=बखान करो । कहै=कहे जाते । बंध=बंधु, भाइयों ।

अप्पन = खुद । भर = योद्धा । पद्धरे खेत = युद्ध स्थल को साफ कर दें । सौं = सौ । झारउभझार = घात प्रत्याघात ।

अर्थः—तब सरसता पूर्वक हरिराय और सागर पुण्डीर कहने लगे—हे धीर ! तुमने कहा उसे हमने सुना । तुम्हारी यह बात (अपने वंश-परंपरा से प्रतिज्ञा पालन करने जैसी) हित प्रद और अच्छे रास्ते की है । इस पर रंघरराय बोला-इस हित के वाक्य पर मंत्रणा करनी चाहिये, क्योंकि स्वामी के कार्य के लिए हमारा सिर तैयार है और बहादुरों के समान ही हमारी ख्याति फैली है । अत अपनी समस्त सेना को सुसज्जित कर चढ़ाई करना चाहिये । हे भाइयों ! तभी हम योद्धा कहलायेंगे । बादशाह से लोहा लेकर हम शस्त्र झड़ी करके शत्रुओं को काट कर गिराते हुए युद्ध स्थल को साफ कर देंगे ।

तब तमि जपै धीर, जुद्ध सा वध कध तुम ।
सजै सुभर अप्पान, प्रान दक्खो सु जुद्ध दम ॥
राज काज राजग, अग बद्धे सु अप्प जस ।
कै जित्तहि उधलोक, सुजस आवरहि छोभि तस ॥
इम कहै सत्थ मज्जे सु निज, एक चित्त आ भित्त सव ।
तजि मोह सोह संसार सुख, जग्यो भीर अभीर तव ॥ ७१ ॥

शब्दार्थः—तमि=तमक कर । सा=यह । वध=बन्धु । कध=कंधों पर । अप्पान= अपने । दक्खो = कहो । दम = दमन । राजग = राजा के अंग । बद्धे=कटाकर । अप्प=अर्पण । जस=यश । उधलोक=ऊर्ध्व लोक (स्वर्ग) । आ=आकर । वरहि = वरण करेगी । छोभि-तस= उन शत्रुओं को क्षुभित करने पर आ = आकर । भित्त=भृत्य, भाई । सोह = वे । जग्यो= जाग्रत हुआ । भीर=समूह अभी=अभीरु निडर ।

अर्थः—जोश में आकर धीर कहने लगा हे भाइयों - इस युद्ध का भार तुम्हारे कधों पर है । हमें अपने साथियों सहित (युद्धार्थ) तैयार हो कर जूझने और प्राण देने की प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिए । हम राजा के कार्य के लिए राजा के अङ्ग स्वरूपी हैं । हमें अपने शरीर को खड २ करा के राजा को यश अर्पित करना चाहिये । यदि हम मारे गये तो सुरलोक पर विजय प्राप्त करेंगे । और जीवित रहे तो शत्रुओं को क्षुभित कर कीर्ति रूपी कामिनी का वरण करेंगे । धीर के ऐसा

कहने पर एक चित्त होकर अपने २ साथी सेवकों सहित सब वीर सुसज्जित हो गए। इस प्रकार वह निडर पुण्डीर-समूह मोह और सांसारिक सुखों को छोड़ जाग उठा।

विरंचि सयल पुण्डीर, धीर सम लोह लरण कह।
वरकि वीर तमसत, स्यघ जनु भग्ग्य स्वान लह॥
दुवनि पक्ख वीरग, अग जिन जयति जग किय।
ऋुट्टिजम्म वहु सत्थ, इष्ट बल शक्ति सवनि जिय॥
तन तुरग तिन नेह तजि, भजि सु स्वामि इक चित्तकरि।
बढि कोहु छोहु छुट्टे जुरण, विडन यत्त कविचन्द धरि॥ ५२॥

शब्दार्थ:—विरंचि=ललकारना। सयल=सकल, सब। सम=समान। लरण कह=युद्ध करने। वरकि=फूलकर। तमसत=तेश में आकर, जोश में आकर। स्यघ=सिंह। जनु=मानो। भग्ग्य=भक्षण। स्वान=खाने को। लहि=प्राप्त किया। दुवनि=दोनों। पक्ख=पक्ष। वीरग=वीर। जिन=उनके। जयति=विजय करने वाले। जग=युद्ध। ऋुट्टिजम्म=जुट्टियम, जुड़ा दिये मिला दिये, जुट पड़े। बल=बल। सक्ति=शक्ति। सवनि=सब। जिय=उन्होंने। तुरग=टूट जाने वाला, नाशवान। तिन=उसमें। भजि=श्रद्धा, प्रेम। कोहु=क्रोध। बढि=बढा कर, वृद्धि करते हुए। छुट्टे=छूट पड़े। जुरण=जुटने के लिए। विडान=भारी वीरों की।

अर्थ:—धीर के समान ही सब पुण्डीर यौद्धा शत्रुओं को ललकार कर युद्ध घोषणा करने लगे। वे वीर जोश में आकर इस प्रकार फूले नहीं समाये मानो सिंह को अपने खाने के लिए आहार मिल गया हो। वे मातृ-पितृ पक्ष से वीर कुल के थे। उनके शरीर विजयी थे उन्होंने जग शुरू किया। उन सब ने इष्ट देव और शक्ति के बल पर अपने बहुत से शस्त्र शत्रुओं के शस्त्रों से मिलाए और नाशवान शरीर का मोह छोड़ दिया। अपने स्वामी पर श्रद्धा रखते हुए अपने चित्त को एका करके युद्ध भूमि में क्रोध और उत्साह की वृद्धि करते हुए वे लडने के लिए टूट पड़े। उन भारी वीरों की ख्याति कविचन्द ने (राजा के समक्ष) कही।

सहस तीन पुंडीर, वलू भूखय अचाए।
त्रियन वसिन यसि द्रव्य, वम्यु ज मोह गमाए॥
मभ मेलि सामत, रयन अद्धी ते जग्गा।
सुणि अवाज मुलितान रक वन जान विलग्गा॥

दुज घंट सोम दिन पन्निपथ, सहस सट्ठि सेना मिली।
अनभंग जैत अग्गा अगर, विच चावँड वज्जह वली ॥ ७३ ॥

शब्दार्थः—सहस=हजार। वलू=वलवान। धूखध–अचाये=धूकारते हुए कंधे उठाये। त्रियन = स्त्रियें। वसि = वश। द्रव्य = धन। वसु=वसु, पृथ्वी। जं = जन्म मे। गमाए=खो दिया। मभ्भ=बीच में। मेलि = मिल गये। रयन=रात्रि। अद्धी = आधी। ते=वो। जग्गा=जागे। रक=दीन। जानि=जानकर। विलग्गा=लगे, चिपटे। दुअ=दो। घट=घड़ी, घटे। पन्निपथ=पानीपथ। सट्ठि = साठ। अनभग = अभग। जैत=जैत्रराय। अग्गा = आज्ञा। विच=मध्य। चावड = चामंडराय। वज्जह = वज्र। वली=बली।

अर्थः—तीन सहस्र बलवान पुण्डीरों ने वृषभ तुल्य भूकारते हुए कंधे उठाये, वे त्रिया, द्रव्य, पृथ्वी और जन्म के मोह के वश मे नहीं थे। उसी पुण्डीर दल में पृथ्वीराज के सामन्त भी आ सम्मिलित हुए। अर्द्ध रात्रि मे उनके शोर गुल को बादशाह ने जगकर सुना, उन्होंने इस प्रकार घेरा डाला मानो दरिद्री द्रव्य राशि के चारों ओर होगये हों। सोमवार को दो घंटे दिन चढ़े पानीपत स्थान में पृथ्वीराज की साठ हजार सेना आ डटी, उसका अग्रगण्य अभग वीर जैत्र प्रमार हुआ और सेना के मध्य भाग मे वज्र तुल्य बलवान चामडराय दिखाई दिया*।

जब ग्रह आयौ धीर, पुट्ठि सुलितान मॅपत्तौ।
सुनिय राइ चामंड, जैंत सम मन्न मिलंतौ ॥
सजि हय गय सामंत, स्यंधु आयो पहु उप्पर।
धीर तेनि छडयौ, पच्छ चग्गौ दल दुस्तर ॥
कत्याह ग्रह अप्पन करिय, अवहि कहौ कह किज्जियै।
भज्जेज राज सुलितान रण, डणि परि अप्पुन छिज्जियै ॥ ७४ ॥

---

* पद्य ६३ से स्पष्ट है कि चामडराय के उत्तेजित करने पर धीर ने प्रतिज्ञा की कि तुम युद्ध में सम्मिलित होकर देखना मैं शाह को पकड़ूंगा। तदुपरान्त पद्य ७४ में चावडराय ने जैत्र से कहा कि यह कार्य (शाह को बुलाने का) हमने ही किया है यदि राजा पराजित हो जायगा तो हमको दु:ख होगा इन्हीं दो कारणों से पैरों में बेड़ी होते हुए भी चामंडराय युद्ध में शरीक हुआ।

शब्दार्थ:—ग्रह=घर। पुट्ठि=पीछे से। संपत्तौ=पहुँचा। गय=गये। मन=मन। मिलतो=मिलाकर। सज्जि=सजाकर। स्य गु=सैन्य और का, शहाबुद्दीन। पहु=राजा। उप्पर=पर। तेनि=उसने। छंडयो=छोड़ा। पच्छ=पीछे से। चप्यौ=दबाया। दुस्तर=कठिन अपार। कत्यहि=इस पर यह=यह। अप्पन=हमने ही। अब=अब। कह=क्या। किज्जिये=किया जाय। भज्जेत=पराजय। सुलितान=बादशाह से। रण=युद्ध। इथि=ऐसा होने पर। अप्पनु=हमे ही। छिज्जिये=चिंतित होना पड़ता।

अर्थ:— जब धीर अपने घर गया तो पीछे से सुलतान आ पहुँचा। यह बात सुनकर जैत्र से मन मिलाकर चामंड राय ने कहा—धीर को छोड़ते ही हाथी घोड़े और योद्धाओं सहित दुस्तर सेना को सजाकर शाह ने राजा पर चढ़ाई की और वह आ ही पहुँचा है। यह कार्य हमने ही किया है। अब हमे क्या करना चाहिये ? यदि युद्ध मे सुलतान से राजा पराजित होता है तो अपनी आत्मा को दुःख होना स्वाभाविक है।

जेन बलनि जय होइ, सोइ जुभ्भे कनवज्जा।
साइं मंत सुद्धरौ, जेन जित्ते रण रज्जां॥
सत मत सुब्भर रचिय, जैत चामंड स उट्ठिय।
गये सजन निज ग्रेह, आइ सब सेन स पुट्ठिय॥
चामंड गज्ज मग्यो चढन, सम बेरी दाहिम्म वर।
आयौ सु चंद बरदाइ तहँ, देखत बुल्यौ गुभ्भ गुर॥ ७६॥

शब्दार्थ:—जेन=जिनके। बलनि=शक्ति पर। सोइ=वे। जुभ्भे=युद्ध में मारे गये। कनवज्जां=कनवज के युद्ध में। साइं=स्वामि। मत=मंत्रणा, विचार (संयोगिता को वरण करने की इच्छा)। सुद्धरौ=सुधारा, सफल कर दिया। जेन—जिन्होंने। जित्ते=विजय की। रण=युद्ध में। रज्जां=राजाओं को। सत=सत्य, सच्ची। मत=मंत्रणा। सुब्भर=सामंत। रचिय=की। उट्ठिय=खड़े होगये। सजन=सजने को, तैयार होने को। ग्रेह=घर। आइ=आगये। सब=सब। सेन=सेना। पुट्ठिय=पीछे। गज्ज=हाथी। मग्यो=मगवाया। सम=सहित। बेरी=बेड़ी (लोह की बेड़ी)। तह=वहाँ पर। बुल्यो=बोला (चिल्लाया)। गुभ्भ गुर=ऊंची आवाज से।

अर्थ:—जिनकी शक्ति पर विजय होना निर्भर था, वे वीर तो कन्नौज के युद्ध मे स्वामी की मंत्रणा (विचार) को सफल बना कितने ही राजाओं पर विजय प्राप्त कर मारे जाकर रणाङ्गण मे सुशोभित हो गये। यह कह सच्ची शुभ मंत्रणा कर जैत्र

और चामंडराय वहां से घर पर जा तैयार होकर धीर की सहायतार्थ भेजी गई सेना के पीछे पीछे रवाना होगये। पैर में बेड़ी होते हुये भी चामंडराय ने अपने चढने के लिये हाथी मंगवाया, उसी समय कविचन्द ने आकर उसे देखा और ऊंची आवाज से उसके विरुद वर्णन किये।

तीर-ब्रम्ह चामंड, झंड हेमानि दंड करि।
रजक पत्त सिर मंडि, फौज आखंड मंडि सिरि॥
उव अवाज निस्सान, कान बिय सेननि साननि।
पर पहार उत्त ग, थंभ थंथरि परि थाननि॥
नफेरि भेरि सहनाइ सुर, मुर कपाट वज्जिय रवरि।
अग्राम जैत चामड दल, सिंध सहाव उप्पर द्ववरि॥ ७७॥

शब्दार्थः—तीर-ब्रम्ह=ब्रम्हास्त्र या धनुर्विद्या का विधाता (आचार्य)। झंड=झंडे। हेमानि=स्वर्ण मंडित। दड=दंडे। रजक पत्त=रुपहरी पतडे का, रूपहरी छत्र। मडि=सुशोभित। उव=उमडना, फैलना। अवाज=आवाज। निस्सान=नक्कारों की। कान= कानों में। बिय=दोनों। सेननि=सेनाओं के। साननि=सनगई। पर=पड़ गये, ढह पड़े। पहार=पहाड़, पर्वत। उतग=ऊँचे। थभ=स्थंभ। थथरिपरि=थर्रा गये। थाननि=स्थान स्थान के। सुर=स्वर। मुर=मुड़ गये। कपाट=कपाट स्वरूपी वीर। वज्जिय=वज्र। रवरि=रव, आवाज, घोषणा। अग्राम=अग्रगण्य। सिंध=सिंध नदी। सहाव=शहाबुद्दीन। उप्पर=चढ कर। दवरि=दबाया।

अर्थः—ब्रह्मास्त्र तुल्य चामंडराय के स्वर्ण दंडमय झडे उठे। रुपहरी (रजतार से बना) छत्र सिर पर सुशोभित हुआ और समस्त सेना का सेनापतित्व ग्रहण किया। नगारों की आवाज (फैल कर) दोनों सेनाओं के कानों मे पड़ी। बड़े २ पहाड़ ढह गये और स्थानों के दृढ़स्तभ थर्रागए। नफेरी, भेरी और शहनाई का स्वर होने लगा (बजने लगी), वीरों की वज्र घोषणा से सेना के दृढ कपाट तुल्य यौद्धा मुड़ने लगे। अग्रगण्य जैत्र और चामड की सेना सिंधु नदी की ओर से आये हुए शहाबुद्दीन के ऊपर चढी और उसे दबाने लगी।

अरुण वरण उदय न, फौज पिच्छैं सुलितानी।
मिलन सूर सामंत, रेण अद्धी संमानी॥

तास तुंग ब्बरिहि, माम नेजे उडि म डिय।
रव भिगुरि झुम्मु खिय, पकरि हिंसारव छंडिय ॥
उडि सार धार अपार कर, वरन पार हिन्दू तुरक।
लगे तिरच्छ तत्ते तरकि, सुभति अग धीरह मुरक ॥ ७८ ॥

शब्दार्थः—उदय न=नहीं उदय हुआ। पिच्छैं=पीछा किया। मुलितानी=शाही। मिलन=मिलगये। रेण अद्धी=अर्ध रात्री को। समानी=समान पूर्वक। तास=उनका। तु ग=समूह। ब्बरिहि=गर्जना करने लगा। माम नेजे=उनकी पताकायें। उडि मडिय=उड़ कर शोभा पाने लगी। रव=सूर्य। भिगुरि=जरासी। झुम्मुखिय=चमका, नजर आया। पकरि=रासें पकड़ कर, ऐंचकर। हिसारव=घोड़े। छंडिय=छोड़े, बढाये। उडि=उड़ने लगी, झड़ने लगी, चलने लगी। सार धार=लोह धारा शस्त्र धारा। अपार=असंख्य। कर=हाथ। वरन=वर्न, दीन। पार=पटकने लगे, धरा शाई करने लगे। लगैं=लग गये। तिरच्छ=तिरछा (या काटना)। तत्ते=तेजी से। तरकि=जोश में। सुभति=शोभा पाने लगा। धीरह=धीर के। मुरक=वेंट, ऐंठ।

अर्थः—अरुण वरुण सूर्य उदय नहीं हुआ। उससे पूर्व ही जो वीर अर्द्ध रात्रि मे आकर समान पूर्वक पुण्डीर के दल से मिलेथे। उन्होंने शाही दल का पीछा किया। उनका समूह गर्जने लगा। पताकाएँ उड़ने लगी। जिस समय सूर्य चमका, उस समय रासें खींच घोडे बढाये। हाथों से असख्य शस्त्र धारें चलने लगी। हिन्दू और तुर्क दौनों दीन एक दूसरे को धराशाई करने लगा। उस समय जोश में आ तेजी के साथ तिरछा धावा करते हुये धीर के अङ्ग मे वेंट (एंठ) शोभा पाने लगा।

चवदह से बर वीर, भए भर धीर महाई।
जालधर जगमात, जैत करिबे को आई ॥
भैरव भूत भयक्र, भए तहाँ आनि सखाई।
ईस सीस कारनें, दई तहाँ आनि दिखाई ॥
सुचि चद जेम त्रप चद सुअ, घट घट प्रति प्रतिब्यव हुअ।
सामत सूर इम उच्चरै, वलि वलि वीर भुअग भुअ ॥ ७९ ॥

शब्दार्थः—सें=सो। भर=सुभट। महाई=सहायता पर। जैत=विजय। भूत=प्रेतादि। भयक्र=भयकर। आनि=आकर। सखाई=सखा रूप में। ईस=शिव। कारनें=लिये। दई=दिये। सुचि=पवित्र। जेम=जैसा। सुअ=पुत्र। घट=कुभ, शरीर, हृदय। भुअग=भुजग, सर्प। वलि=बलिहारी। भुअ=पृथ्वी।

अर्थः—धीर के निजी चवदहसौ सामन्त उसकी सहायता पर होगये। जगदज-ननि जालंधर देवी भी उसकी विजय के लिये आ पहुँची। भैरव, प्रेतादि भयंकर समूह उसके सखा बन गये। वीरों के सिरों के लिए शंकर भी वहाँ दिखाई देने लगे। उस समय पवित्र चंद के समान चंद-पुत्र धीर प्रत्येक घट (कुम्भ और हृदय) में प्रतिबिंबित हो गया। उसी समय बहादुर सामन्त उसके लिये कहने लगे कि हे पृथ्वी के भुजंग रूपी वीर! तेरी बलिहारी है।

ए सहाब सुलतान, तुरिय छंडवि गज चढ्यौ।
धीर बीर सम्मूह, रोस संमुह वर बढ्यौ॥
है समेत असवार, हक्कि पुण्डीर सु चंपै।
जिमि मुख्खह जमराज, चंद नदन नह-कपै॥
कढ्ढी कटार गज तोलि हित, राह अधम रवि जुद्ध लरि।
कट्टार नंखि खग्गह कढ्यौ, करिय सीस सिर लोह झरि॥ ८०॥

शब्दार्थः—ऐ=अथ, आया। तुरिय=घोड़े। छंडवि=छोड़कर, उतरकर। गज=हाथी। चढ्यौ=सवार हुआ। सम्मूह=समूह। रोस=क्रोध। संमुह=सामने वालों पर, विपक्षियों पर। बढ्यौ=बढ़ा। है=घोड़ों। समेत=सहित। हक्कि=बढ़कर। चपै=दबाने लगे। जिमि=जैसे। मुख्खह=सामने। चंद नदन=चंद पुण्डीर का पुत्र। नह कपै=कंपना रहित, निडर। कढ्ढी=निकाली। कटार=कटारी। गज=हाथी। तोलि हित=तुलना करने को, शक्ति आजमाने को। राह=राहु। अधम=अधर्म। जुद्ध=युद्ध। लरि=किया हो। नखि=फेंककर। खग्गह=खड्ग को। कढ्यौ=निकाला। करिय=हाथी। सिर=ऊपर। लोह=लोहा। झरि=झाड़ा।

अर्थः—उसी समय सुलतान शहाबुद्दीन घोड़े से उतर हाथी पर चढ़कर सामने आया। शाह को सामने देख धीर के वीर समूह में रोष बढ़ गया। घोड़ों सहित सवारों को पुण्डीर आक्रमण कर दबाने लगे। उस समय निर्भीक चंदपुत्र यमराज के समान सामने दिखाई दिया। उसने शाह की सवारी के गज की शक्ति अपनाने के लिये इस प्रकार कटार निकाली, मानो अधर्म का युद्ध करने वाले राहू पर सूर्य ने (श्याम हाथी-राहू पर-श्वेत कटार-सूर्य ने) आक्रमण किया हो। तत् पश्चात कटार फेंककर उस वीर ने खड्ग निकाला और हाथी के सिर पर प्रहार किया।

उड़िग रेन गयनग, साहि समुह गज पिल्ल्यौ ।
धनिव धीर पुंडीर, साहि सनमुख असि मिल्ल्यौ ॥
दसन तुंड किय दोन, मुंड छंडिय सुंडाहल ।
गिरत भूमि सुरतान, खॉन कीनो कोलाहल ॥
झकझोरि तोरि अवझरि उझरि, गहि हमेल हम्मीर लिग ।
हय कध डारि अड्डौ असुर, पैंज पुंडीर प्रमान किय ॥ ८१ ॥

शब्दार्थः—उडिग=उड़ने लगी । रेन=धूलि । गयनग=आकाश । साहि=बादशाह । समुह=सामने । गज=हाथी । पिल्ल्यौ=बढाया । धनिव=धन्य है । असि=तलवार । मिल्ल्यो=मिलाई, उठाई । दसन=दांत । तुंड=भ्रसुंड (सूंड का मूल स्थूल भाग) । दोन=दो भाग । मुण्ड=सिर । छंडिय=छोड़ दिया, कटकर दूर होगया । सुंडाहल=सूंड । कोलाहल=शोरगुल हायतोबा । झकझोरि=जमेड़ता हुआ । तोरि=तोड़ता हुआ, काटता हुआ । अवझरि=आघात करता हुआ । उझरि=झाड़ता हुआ, नष्ट करता हुआ । हमेल=हमला करने वाला (धीर पुण्डरी) । हमीर=अमीर (शहाबुद्दीन गोरी) । हय=घोड़े के । कध=कन्धे पर । डारि=डालकर । अड्डौ=आड़ा । असुर=बादशाह । पैंज=प्रतिज्ञा । प्रमान=सिद्ध, सही । किय=की ।

अर्थः—जिस समय धूलि ने आकाश को आच्छादित किया उसी समय शाह ने अपना हाथी धीर पर बढ़ाया किन्तु धन्य है उस धीर पुण्डीर को, जिसने शाह के सामने तलवार उठाई, जिसके एक ही वार से हाथी के दंतूसल और भ्रसुंड के दो भाग हो गये और मुंड से सुंड अलग हो गई । ऐसे आघात के कारण शाह हाथी से लुढक पड़ा । उस समय मुसलमानों ने हाय तोबा मचानी शुरू की उन्हें झकझोर कर काटता और मारता हुआ धीर आगे बढा और हमला करने वाले उस अमीर बादशाह को पकड़ कर उसे अपने सीने के सामने घोडे के कन्धे पर डाल दिया और अपनी प्रतिज्ञा पूरी की ।

सिंधु महाव उप्परह, जैत संग्राम धाम रन ।
छत्र दंड वर चमर, दुट्ट छुडिग सुगंध घन ॥
तुरम तोरि मवरिय मरोरि, रवरिग दल बद्दल ।
जनु निदन दच्छिनिय, पाइ ठिल्लिग सुभट्ट खल ॥
भुनि नयन गयन लग्गिय अगनि, पल पलाय गोरिय सयन ।
सो सह वद दस दिसट हुअ, अग्गौ अग्गौ बुल्लिय बयन ॥ ८२ ॥

शब्दार्थः—सिंधु सहाब=सिंध की ओर से आया हुआ शहाबुद्दीन। उप्पारह=पकड़ कर उठाया गया। जैत=जैत्र प्रमार। सग्राम=युद्ध। धाम-रन=कलह का भवन। छत्रदंड=दंड सहित छत्र। छडिग=छुड़वा दिये, कोप लिये। सुगध घन=विशेष (यश) सौरभ फैलादी। तुरस=ढालें, ढलेती वीर। मत्तरिय=मतवाले। मरोरि=मरोड़ दिये। रत्तरिय= रगड़ने लगी, जत्र तत्र होगई। जनु= जैसे, मानो। निदत=निंदित किया जाता है। दच्छिनिय=दक्षिन नायक (स्त्रि लम्पट, विशेष स्त्रियों से प्रेम करने वाला) पाइ ठिल्लिग=पैरों से ठुकराना। खल=शत्रु। नयन=नसगये, खिसक गये। गयन=आकाश। पल=पल मात्र में। पलाय=पलायन कर गई। सयन=सेना। सो=वह। सद्द-वद्द=शोरगुल।

अर्थः—इस प्रकार सिन्धु नदी की ओर से आया हुआ शहाबुद्दीन धीर द्वारा पकड़ कर उठाया गया। उस समय जैत्र प्रमार युद्ध में कलह का घर बन गया। उसने दंड रूप में शाह के सदंड-छत्र और चामर को छीनकर अपनी विशेष यश-सौरभ फैलादी। शाह के ढलेती वीरों की शक्ति को तोड़ दी, मतवाले वीरों को मरोड़ दिये और घन घटा तुल्य सेना को यत्र तत्र कर (बिखेर) दी। उस वीर ने शत्रुओं पर इस प्रकार पदाघात किया जैसे दक्षिण नायक ठुकराया जाकर निंदित किया जाता है। उसके आतंक से मुनि गण अपने आसन से खिसक गये, पृथ्वी से आकाश तक ज्वाला फैल गई और पल मात्र में गोरी सेना, शाह पकड़ा गया २ ऐसा शोरगुल करती हुई पलायन हो गई।

कर कक्कस करिवार, सूर वद्दल ते छुट्टिय।
परत भु मि रोचनिय सस्त्र पुट्ठीअल फुट्टिय॥
रवरि दवरि हयदुअ नरयंद, धरत धरय सुलतानह।
पर पारस पु डीर, हथ्थ दिख्खिय सुविहानह॥
हहकारि हक्कि वुल्यौ सुवर, सुसव मु'कि मुरदार भव।
उन देव धीर चद्दह तनँ, मनों स्यघु दिख्यौ कि चव॥ ८३॥

शब्दार्थः—कक्कस=ककश। करिवार=वार करते हुए। सूर=बहादुर। वद्दल=बादलों के समान। ते=वह। छुट्टिय=छूट पड़े, टूट पड़े। परत=पड़जाने पर। भु मि=भूमि। रोचनिय=श्रेष्ठ। पुट्ठीअल=पीछे की तरफ, आरपार। फुट्टिय=फूट गये। रवरि=आवाज करते हुए, या रव को मानने वालों को। दवरि=दबाता हुआ। हयदु=हिन्दू। नरयंद=राजा। धरत=धीर। धरय=धर पकड़ा।

सुलतानह=बादशाह को । [illegible]=[illegible] आगे और [illegible] । [illegible] [illegible] देखा (पकड़ा हुआ [illegible]) । सुलितानह=सुल्तान [illegible] को मानने वाला [illegible] । [illegible] करके । हक्कि=ललकार, आक्रमण करके । [illegible]=बोल । [illegible] [illegible] [illegible] खवास । [illegible]=छोड़ दो [illegible]=[illegible] [illegible] । [illegible]=[illegible] । [illegible]=[illegible] तुल्य । चदह तनै=चंद के पुत्र । स्यघ=सिंह, सिंह । [illegible] [illegible] ।

अर्थः—कर्कश हाथों से वार करते हुए सामन्त, शाही दल पर बाजों के समान टूट पड़े । उनके द्वारा छोड़े गये तीर धाराप्रवाह होकर [illegible] को सुशोभित करने लगे । रब (खुदा) के उपासकों (मुसलमानों) को ढाता हुआ [illegible] राजा धीर-पुण्डीर ने सुलतान को पकड़ लिया, तथा उसे धीर द्वारा पकड़ा हुआ देख कर सब पुण्डीर योद्धा आकर पास होगये । यह देख कर उस (शाह) की सुश्रूषा (सेवा) करने वाला (खवास) आगे बढ़ हुंकार (गर्जना) कर बोला— हे सुरत्ताण के खाने वाले ! तुम इसे (बादशाह) को छोड़ दो, उस समय चन्द पुण्डीर का पुत्र धीर उसको ऐसा दिखाई दिया मानो उसकी ओर शेर देख रहा हो ।

चष दिख्खिय तक स्यघ सेर अ मह सुलितानह ।
कर कढ्ढिय जमडड्ढ, बद्दु वहुन तुरकाणह ॥
मयन उच तिहि नेज, सेज उछ्छग उछ्छारिय ।
जनु कि स्यघ सावग, डड्ढ डमरि उप्पारिय ॥
उर करकि मुट्ठि दिट्ठौ दवन, सम छुट्टत सुलितान कह ।
विज्जल खवास छ्प्पार गज म, गहूढ लग्गि भुमी सुवह ॥ ८४ ॥

शब्दार्थः—दिख्खिय=दिखाई पड़ा । [illegible]=[illegible] [illegible] ([illegible]) । स्यघ=सिंह । सेर=शेरन नाम [illegible] । अमह=धर्म मानने वाला । सुलितानह=बादशाह का । कर=हाथ से । कढ्ढिय=निकाली । जमडड्ढ=कटारी । बद्दु वहुन=[illegible]=काटने को । तुरकाणह=तुरक के (बादशाह के) । मयन=मतवाला । उच=ऊँचा । तिहि=उस[illegible] । नेज=नेजा । सेज=सहज में । उछ्छग=श्रेष्ठ वीर । उछ्छारिय=उछालने वाला । जनु=मानो । स्यघ=सिंह । सावग=साक्षात् । डड्ढ=दाढ़ें । डमरि=आडम्बर युक्त । उप्पारिय=निकालता हो । उर=वक्षस्थल पर । करकि=दृढ़ता पूर्वक । मुट्ठि=मुट्ठिका । दिट्ठौ=दिखाई पड़ा । दवन=शत्रु । सम=सामने । छुट्टत=छूटता हुआ । सुलितान कह=ग्रहण किये हुए सुलतान की ओर । विज्जल खवास=धीर के पास रहने वाला विज्जल नामी सेवक । छप्पार=शीघ्रता पूर्वक । गज म=गाजने से । गहूढ लग्गि=गाढा लगकर । भुमी=पृथ्वी पर । सुवह=सो गए ।

अर्थः—शाह के उस अंग रक्षक सके (खवास) को वह धीर पुण्डीर शेर के समान दिखाई दिया। तब वह शेरन (खवास) जो शाह के धर्म का पालन करता था, उसने शाह के बंधन काटने के लिये हाथ से कटार निकाली। उस मतवाले वीर का नेजा सदा ऊँचा रहने वाला था, और वह सहज में ही शत्रु वीरों को काट कर फेंक देता था उस समय वह वीर साक्षात् सिंह के तुल्य आडंबर युक्त दाढ़ें निकालता हुआ दिखाई दिया। वह बादशाह को छुडाने के लिये शत्रु धीर के वक्षस्थल पर वार करने को बढ़ना चाहता ही था कि इतने में धीर के पास रहने वाला विज्जल खवास शीघ्रता से झपट कर दृढता पूर्वक उसके गले जा लगा, और दोनों भूमि पर गिर पड़े।

किन्ह कक चहुआन, वंक महमद सवानी।
ठिल्ले ठट्ट उठाइ, कोट अज्जे वर वानी॥
परे मत मैंमत, तंति अती आलुझिझय।
मनहु केलि विनु पानु, वेलि वकी विलुझिझय॥
संग्राम धाम धुंधर धरणि, धरणिप हर वज्जिय लहरि।
ता पच्छ जाम जद्दों सु रण, अवसिसेव उत्तरि थि वरि॥८५॥

शब्दार्थः-किन्ह=किया। कंक=युद्ध। चहुआन=चहुआनी सेना ने (इस युद्ध में पृथ्वीराज शरीक नहीं था अतः चहुआन शब्द का अर्थ चहुआनी सेना ही लगाना चाहिए)। वंक=बांके। महमद=मुहम्मद धर्म को मानने वाले। सवानी=सब। ठट्ट=समूह। उठाइ=उठा दिया। कोट - दिवाल (शत्रुओं रूपी दिवाल)। अज्जे वर वानी=वज्र घोषणा करके। परे=पड़ गए धराशाई हो गये। मत=मतवाले। मैंमत=हाथी। तंति=तंतु। अति=अंतड़ियें। आलुझिझय=उलझ गए। केलि=कदलि। विनु=विना। पानु=पत्ते। वेलि=लतिकाएँ। वकि=बांकी। विलुझिझय=उलझी हो। संग्राम धाम=रण क्षेत्र। धुंधर=धूंधल। धरणि=पृथ्वी। धरणिप=भू स्वामि। हर=प्रत्येक। वज्जिय=वज्र पातसा। लहरि=समा। ता पच्छ=उसके बाद। जाम=जामराय। जद्दों=यादव। अवसिसेव=अवश्यमेव। उत्तरि उतर पड़ा। थि=उसने। वरि=सेना को वरण किया, काबू में किया।

अर्थः—चाहुआनी सेना ने मुहम्मद धर्म को मानने वाले सभी बांके वीरों के साथ युद्ध किया। उन्होंने वज्र घोषणा कर समूह को ठेल कर शत्रुओं रूपी दीवार को उठा दिया। कई मतवाले हाथी धराशायी हुए। रण स्थल में अंतड़ियों के तंतु

से शत्र इस प्रकार उलझ गये जैसे बिना पत्तों वाली कदली नाँकी लतिकाओं से उलझ रहे हों। रणक्षेत्र में धुंधल छा गई। प्रत्येक भू स्वामी ने वज्रघात के समान दृश्य उपस्थित कर दिया। उसके बाद जामराय यादव भी रण क्षेत्र में उतर आया और उसने शत्रु सेना को काबू में कर लिया।

उत्तर वै सुलितान बंधि धीरह धर गल्लिय।
सुर णर गन गधर्व, चंद बंदिय सद भख्खिय॥
भग्गा भर सुलितान, आन दत्ती चहुआन।
कासमीर टिल्ला पहार, ठट्टा मुलितान॥
जित्ता जुआन सोमेस सुअ, दुमसि वज्जि वज्जेइया।
जै जया सद आयास भौ, सु कवि चंद छंदे जिया॥८६॥

शब्दार्थ:—उत्तर वै=उत्तरी भाग पर (या उत्तरी भूभाग का स्वामी)। सुलितान=बादशाह को। बंधि=बांध कर। धीरह=धीरने। धर=पृथ्वी पर। गल्लिय=डाल दिया। णर=नर। बंदिय=बंदीजन। सद=सत्य। भख्खिय=कहा। भग्गा=भग गये। भर=योद्धा। आन=दुहाई। दत्ती=दी गई। जित्ता=विजय हुई। जुवान=युवक। सोमेस सुअ=सोमेश्वर का पुत्र। दुमसि=दुम २ आवाज, धड़ाके के साथ। वज्जि=बाजे। वज्जेइया=बजवाए। जै जया सद्=जय जयकार। आयास=आकाश। भौ=हुआ। छंदे=पद्यों द्वारा। जिया=अमर हो गए।

अर्थ:—सेना के उत्तर भाग पर हमला कर वीर ने बादशाह को बांध कर जमीन पर पटक दिया। इसकी साक्षी सुर नर और गन्धर्वगण देते हैं। उसी के अनुसार चंद बंदीजन भी यह सत्य कहता है। युद्ध के अन्त में शाही योद्धा भाग गए और चाहुआन की दुहाई दी गई। काश्मीर, टीला पहाड़, ठट्टा और मुलतान निवासियों में सोमेश्वर के युवक पुत्र पृथ्वीराज की विजय हुई। धड़ाके के साथ विजय के बाजे बजाये गए। आकाश में जय २ कार हुई और मृत योद्धा मेरे (कविचंद के) पद्यों द्वारा अमर हो गए।

परिय पंच पामार जैत जग हथ्थ उभाना।
हंसौ है गैसौ गयंद, नरौ नर हथ्थ निहाना॥
निर्हसि निर्हसि भन भजिय, खग्ग खग्गा खग भग्गा।
कट्टारी कट्टार, मार हुलि का हुलि जग्गा॥

हाकंप हाक जुट्टा सु घट, कुघट कटार कटंत घट ।
तत्तारखांन जुरि जैत सों, निहसि निहाड निहद्द हट ॥ ८७ ॥

शब्दार्थः—पामार=प्रमार । जग=जागृत होकर, क्रोध में आकर । उमा=उठाए, चलाए । है= घोड़े । सौं=से । गै=हाथी । नरौं=नरों से । निहाना=नशा गए । निहसि २=निकल २ कर । झनझनिय=झनझनाने लगी । खग्ग खग्गा=तलवार से तलवार । खग=टकरा कर । भग्गा=टूट गई । छुलिका=छुरी । छुलि=छुरी । जग्गा=होपाया । हाकप हाक=हुँक्कार करके । जुट्टा=जुट पडे । सुघट=श्रेष्ट काय । कुघट=बेढगे । कटार=कटारी से । कटत=कटने पर । घट= शरीर । जुरि=जुटा । निहसि=निकल गया, दूर होगया । निहाड=नष्ट होगया । निहद्द=बेहद, अपार । हट=हठ ।

अर्थः—जैत्र प्रमार ने क्रुद्ध होकर पाच घडी तक शत्रुओं पर हाथ चलाया । हाथी से हाथी, घोडे से घोडे और यौद्धा से यौद्धा भिड़कर नष्ट हो गये । झनझनाती हुई खड्ग म्यान से निकल कर अन्य खड्गों से टकरा कर चूर २ होगई । कटारी से कटारी और छुरिका का जवाब छुरीका से दिया गया । हुँक्कार पर हुँक्कार कर श्रेष्ट-काय वीर जूझ पडे । कटारियों से कटने पर उनके शरीर बेढगे हो गए । इस प्रकार जैत्र प्रमार का युद्ध तत्तार से हुआ, उस तत्तारी का अपार हट दूर हो-कर नाश को प्राप्त हुआ ।

पर्‌यौ खेत तत्तार, खेत जैतह गल लग्गिय ।
उभय सहस पट्टान, महस पामार स भग्गिय ॥
चपि राउ चामड, अग्गिअ गिवान ऊचाये ।
जद्दव पानि उभारि, वाउ वद्दल उट्ठाये ॥
खगी सु पाग दाहर तनौ, वरणि विरद छज्जे मद्दह ।
दाहंन दाह दुल्लह मरण, जिहि सु हिंद रख्खी हद्दह ॥ ८८ ॥

शब्दार्थः—पर्‌यौ=धराशाई हुआ । खेत=रणक्षेत्र । गललग्गिय=गले लग गया, प्यार करने लग । उभय=दो । सहस=सहस्र । पामार=प्रमार क्षत्री । भग्गिय=मारे गये, नष्ट होगये । चपि=दबाता हुआ । अग्गि=अग्रभाग । अग्गिवान=अग्रगन्य वीरों को । ऊँचाये=उठाए । जद्दव=यादव (जामराय) । पानि=हाथ । उभारि=उठा कर, चला कर । वाइ=पवन । वद्दल=बादल । उट्ठाये=हटादिया । खंगी=

टेढी। पाग=पगडी। दाहर तनौ=दाहरराय का पुत्र। रुज्जे=सुशोभित। मद्दह=मतवाले। दाहन=जलाने को। दाह=दावाग्नि। दुल्लह=दुलहा। मरण=मृत्यु। जिहि=जिसने। हिंद=हिंदुओं की। रक्खी=रखली। हद्दह=सीमा, मर्यादा।

अर्थः—घायल होकर तत्तार रण क्षेत्र मे पड गया और उस रण क्षेत्र पर जैत्र का अधिकार हो गया। उस समय दो सहस्त्र पठान और एक सहस्त्र प्रमार यौद्धा मारे गए। अग्रभाग को दबाते हुए चामंडराय ने अग्रगन्य यौद्धाओ को उठवाया यादव वीर ने अपने हाथों को उठा कर जिस प्रकार पवन बादलो को हटा देता है उसी प्रकार शत्रु दल को हटा दिया। टेढी पगडी बाधने वाला दाहरराय का पुत्र (चामडराय) जो मतवाले विरुदों से सुशोभित है, एव जो शत्रुओ को जलाने के लिये दावाग्नि तुल्य है तथा मृत्यु का दुलहा है उसने हिन्दुओ की मर्यादा रखली।

गहिव साहि करि पैज, जुद्ध जित्तिव घर पत्तौ।
खेटति पव पाखड, भेव सामतणि घत्तौ॥
रण-रवद जित्तिग नर्यद, वज्जे वज्जाने।
नचि हिंदू कढ़ि तेग, सद्द वज्जे सद्दाने॥
दिक्खहि न राज सुरतान कहॅ, सक सहाव खुरसान पति।
पुछ्छत वत्त भग्गे भिरा, रह्यौ न जुव रोह्यौ हसति॥ ८६॥

शब्दार्थः—गहिव=पकडा। साहि=बादशाह। पैंज=प्रतिज्ञा। जित्तिव=जीत कर। पत्तौ=पहुँचा। खेटति=खेटा करने वाला। पव=पवित्र। भेव-भेद। सामतणि=सामतो में। घत्तौ=डाल दिया, पड गया। रवद=बादशाह। नर्यद=राजा (धीर)। वज्जे=बाजे। वज्जाने=बजवाये। नचि=नाचे, उछल कूद की, खुशी मनाई। सद्द=शब्द, शान्ता से। सद्दाने=सैंदाने, नक्कारे। दिक्खहि न=नहीं देखा। राज=राजा ने। कहे=को। सक=मुसलमान। सहाव=शहाबुद्दीन। पुछ्छत=पूछने लगा। वत्त=बात, चर्चा। भग्गे=भग हुए, घायल हुए। भिरा=भरा, भटों, सुभटों। जुद्ध=युद्ध क्षेत्र में। रोह्यौ=घेरा हुआ। हसति=हस्ती, हाथी।

अर्थः—वीरने प्रतिज्ञा की और बादशाह को पकड कर विजय प्राप्त की तथा अपने घर चला गया। उस पवित्र युद्ध कर्त्ता के द्वारा बादशाह को इस प्रकार पकड कर ले जाने से सामतो में पाखड और भेदभाव पैदा हुआ किन्तु हिन्दू राजा वीर ने

मुसलमानों पर विजय कर घर जाकर बाजे बजवाये और उसके साथी हिन्दू वीरों ने भी तलवारें निकाल उछल कूद कर (खुशी मनाते हुए) नगारे बजवाए। सेना के लौट आने पर पृथ्वीराज ने खुरासान पति मुसलिम शहाबुद्दीन सुलतान को सेना के साथ नहीं देखा, तब युद्ध में घायल होकर आने वाले साथी सामंतों से पूछा कि सुलतान हाथी पर घेर लिया गया, किंतु उसके बाद वह रण क्षेत्र में नहीं दिखाई दिया है, वह कहाँ है ?

मलिक खान खुरसान, हणिग खल खित्त खग्ग बल।
गज मयमत्त सँघारि, दवटि दलमल्यउ सबल दल॥
लियौ साहि गहि हत्थ, सत्थ दिक्खत सुलितानी।
खाँ ततार रुस्तमा, सीस धुन्नहि बिलखानी॥
पुण्डीर सहस तिय खित्त रहि, सहिय संगि सनमुक्ख सर।
पुण्डीर चंद नंदन रणह, गहिय मिच्छ चालंत घर॥९०॥

शब्दार्थ:—हणिग=धरा शाई किए। खल=शत्रु। खित=क्षेत्र। खग्ग=तलवार। बल=बल। मयमत्त=मतवाले। सँघारि=नष्ट कर। दवटि=दपटि, झपट कर। दलमल्यउ=कुचल कर। सबल दल=सबल सेना। गहि हत्थ=हाथ पकड़ कर बंधन में लिया। सत्थ=साथी। दिक्खत=देखते हुए। सुलितानी=शाही। धुन्नहि=धुनने (हिलाने) लगे। बिलखानी=बिलखते हुए। तिय=तीन या वे। रहि=रहे। सहिय=सही। संगी=साँग, लोहे की बर्छी। सनमुक्ख=सामने। सर=सिर या बाण। रणह=युद्ध में। गहिय=पकड़ा। मिच्छ=म्लेच्छ। चलंत=चलते समय, जाते हुए।

अर्थ:—तब सामंतों ने कहा-मलिक और खुरासान खाँ जैसे शत्रुओं को तलवार के बल से धराशाई कर मतवाले हाथी को विदीर्ण किया और झपटता हुआ शत्रुओं के सबल दल का दलन करता हुआ शाही वीरों के देखते २ वीर ने शाह को अपने हाथों से पकड़ लिया। यह देख ततार खाँ और रुस्तम खाँ बिलखते हुए सिर धुनने लगे। उस समय रण स्थल में एक सहस्त्र (या तीन सहस्त्र) पुण्डीर काम आये। यद्यपि इस युद्ध में चंद पुण्डीर के पुत्र के सिर में साग का वार लगा, फिर भी वह घर जाते समय बादशाह को पकड़ कर ले ही गया।

दोहा

गही साहि ल्यौ धीर घर, पानीढरि मुलतान।
जैत पत्त रावत्त हुव, घर बज्जे नीसान॥९१॥

शब्दार्थः—गही=पकड़ कर। साहि=बादशाह को। ग्यो=गया। पानी-टरि=पानी उतर गया। जैत पत्त=विजय पत्र। रावत्त हुव=रावत्त धीर के हाथ में होगया (प्राप्त हुआ)। दर=शेष। वज्जे=वाजे। नीसान=नक्कारे।

अर्थः—बादशाह को पकड़ कर धीर पहले घर गया जिससे मुलतान का पानी उतर गया। विजय का जय पत्र धीर रावत्त को प्राप्त हुआ और द्वार पर नगारे बजे।

चामर छत्र रखत्र हुव, ए लुट्टहि सह कोइ।
वर खवास वैंजल कह्यौ, धीर निहोरौ तोइ ॥ ६२ ॥

शब्दार्थः—रखत्र=रक्त रंजित। हुव=हुए। लुट्टहि=लूटते हैं। सह कोइ=सब कोई। निहोरौं=निहोरा, आजुर्दा। तोइ=तुझे, तेरे हाथ।

अर्थः—धीर के पास रहने वाला वैंजल, धीर से कहने लगा कि शाही राज चिन्ह चँवर छात्र रक्त रंजित हो गए, उन्हें लूटने वाले तो सब कोई हैं किन्तु निहोरा तो तेरे ही हाथ लगा। (अर्थात् बादशाह को छुडाने के लिए आजुर्दा तेरे से ही आकर करेंगे)।

गुरि ण गयौ, गोरी घरह, पर्‌यौ न खेत प्रमान।
उकति चित्त प्रथिराज किय, धीर गह्यौ सुलितान ॥ ६३ ॥

शब्दार्थः—गुरि=गुड़क कर। ण=नहीं। घरह=घरको। पर्‌यौ=पड़ा, धराशाई हुआ। खेत=रण क्षेत्र। प्रमान=निश्चय। उक्ति=उक्ति में। चित्त=चित्त में। किय=सोचा।

अर्थः—हाथी से लुढकने पर गोरीशाह न तो घर ही गया न रण क्षेत्र में ही रहा। पृथ्वीराज ने मन में सोच कर निश्चय किया कि शाह को अवश्य ही धीर पकड़ कर ले गया है।

कवित्त

मुंडा उड प्रचंड, मुण्ड खंडणौ खरक्यौ।
गिल्लारां असि तेज, बीज उज्जलौ झलक्यौ ॥
गहिव गोरि गजयौ, गहिव भुव बल उप्पार्‌यउ।
साहि सरिस सामंत, पूरि धर रुहिर पखार्‌यउ ॥
झग्गरौ झरपि भान्यौ जु तैं, हैवर टट्टर अभय भुव।
मोह असिवरु सज्जहि वैंजलहि, धीर लज्ज दीजे न तुव ॥ ६४ ॥

शब्दार्थः—सुण्डाडड=हाथी की सुण्ड । खडग्गौ=खण्ड-खण्ड करने वाला । खरक्यौ=खड़ खड़ाया । सिल्लार=सिपहसालार । असि=तलवार । बीज=बिजली । उज्जलौ=उज्वल । झलक्यौ=झलझलाई, चमकी । गहिव=पकड़ कर । भुव=भुजाएँ । वल=बल । उप्पार्यउ=उठाया । सरिस=समान । पूरि=पूरकर, सींचकर । रुहिर=रुधिर । पखार्यउ=प्रक्षालन किया, धो दिया । झगरो=झगड़ा । झरपि=झड़प कर, झपट कर । मान्यौ=मेट दिया, खत्म कर दिया । तैं=तूने । हैवर=घोड़ा । टट्टर=शरीर । अमय=निडर । भुव=पृथ्वी । सोइ=वही, उसी । वरु=श्रेष्ठ । सज्जह=सजकर, उठा कर । बैजलहि=बैजल खवास । लज्ज दिज्जे न=लज्जित नहीं किया जायगा, दोष नहीं दिया जायगा ।

अर्थः—उधर धीर का साथी बैजल धी से कहने लगा- प्रचण्ड सुण्ड धारी हाथी के मुण्ड के खण्ड-खण्ड करने वाला तेरा खड्ग उस हाथी के भ्रुसुण्ड पर खड़-खड़ाया उस समय सिपहसालारों की उज्ज्वल तेज तलवारें बिजली सी चमक रही थी। उसी समय तूने गौरीशाह को दबा कर पकड़ लिया और अपनी भुजाओं के बल पर उसे उठा लिया। तेरे सामन्तों ने भी क्रोध मे आकर शाह से सामना कर पृथ्वी को अपने खून से परिपूर्ण कर धो दिया। इस प्रकार तूने झपट कर झगडे का निपटारा कर दिया। तेरा घोडा, तेरा शरीर और पृथ्वी सदैव अभय है। शाह पर अब मैं तलवार खींचता हूँ (अर्थात् सडका काम तमाम करता हूँ) मेरे ऐसा करने से तुझे दोष नहीं लगेगा।

खग्ग झारि परियार, चद बन्धा हँसि सद्दे ।
मैं बरजिय दिन पच, पीउ पामरु कह बद्दे ॥
पाइ लग्गि प्रथिराज, बाह द्यनी सुलितान ।
दस हजार हैवरणि, छड छड्डिय मुलतान ॥
दिट्ठाह दिट्ठ ऊची करी, गौ गोरी अप्पा गरी ।
आसन सु छड्डि उब्भे हुवे, करि दुवास चदह धरी ॥ ६५ ॥

शब्दार्थः—खग्ग=तलवार । झारि=फटकार कर । परियार=प्रतिहार (बैजल खवास)। चद बन्धा=चद पुण्डीर का पुत्र (धीर)। हँसि सद्दे=हँस कर कहने लगा। बरजिय=वर्जा, निषेध किया। पीउ=पति, स्वामी। पामरु=पामर। कह बद्दे=कह कर बोलेगा, कहेगा। पाइ लग्गि=पाँव छूकर। बाह घनी=हाथ पकड़ा दिया। सुलितान=बादशाह का। हैवरणि=घोड़े। छड्डिय=छोड़ दिया।

मुलतान=मुलतान के बादशाह को, या मुलतान की ओर। दिट्ठाह=देखने वालों ने। दिट्ठ=दृष्टि। ऊँची करी=उठाई। गौ=गया। मव्वा=गर्व। गरी=गल गया, नष्ट हो गया। उभ्भे हुते=खड़े हुए। दुनास=दो मुकाम। चदह=कवि चन्द। घगी=घर आया, पहुचा आया।

अर्थः—यह कह प्रतिहार (वैजल खवास) ने जोश मे आकर जब तलवार जमीन पर मारी तब चन्द पुण्डीर का पुत्र धीर हँस कर कहने लगा—मैं पाच दिन से इस कार्य के लिए (गौरीशाह को मारने के विषय मे) तुझे बराबर निषेध कर रहा हू, क्योंकि ऐसा करने से मेरे स्वामी (पृथ्वीराज) मुझे पामर कह कर सम्बोधित करेंगे। प्रतिहार से ऐसा कह धीर पुण्डीर ने पृथ्वीराज के पास आकर उमके चरण छुए और शाह का हाथ पृथ्वीराज के हाथ में पकडा दिया। तब पृथ्वीराज ने दस हजार घोडे दंड मे लेकर गौरी शाह को मुलतान जाने के लिए छोड दिया। इस पर सब देखने वालों की दृष्टि शाह की ओर उठी, जिससे बादशाह का सारा गर्व चूर हो गया। उस गौरी को विदा करने के लिये सब आसन छोड कर खडे हो गए। राजाज्ञा से कवि चंद दो पडाव तक उसे पहुँचाने चला।

पाउ घालि प्रथिराज, बाह चन्नी सुलितान।
किय सलाम तिय वार, धरिय अगुलि तुरकान॥
तुम उगाह दुग्गाह, वार वारह चढि आवहु।
वज्र हीन दुव दीन, किया अपना मुइ पावहु॥
नक्करहु सद्द जुग्गिनि पुरा, वधि कि वारह मुक्किया।
रस वार वैर आवत यह, जाय सुवासन सुक्खिया॥ ६६॥

शब्दार्थः—पाउ घालि=मिलते समय एक दूसरे के पैर सटना, मिलना। वाह चन्नी=भुजा से भुजा मिलाई। सुलितान=बादशाह को। तियवार=तीन वार। धरिय अगुलि=अगुलि मुँह में ली। उगाह दुग्गाह=बार २ बुरी तरह कुचले जाकर। वज्रहीन=महान हीन स्वभाव के, वज्र मूर्ख। दुव दीन=दोनों दीन में। मुइ=वही। पावहु=उपभोगकरो। नक्करहु=मत करना, मत उठाना। सद्द=आवाज। जुग्गिनि पुरा=दिल्ली की ओर। कि वारह=कई बार। मुक्किया=छोड़ा। रस वार=छ वार, या नौ बार। वैर=शत्रुता करके। आवत=आने पर। जाय=जाइगे। सुवासन=सुखपान (सियाना पालकी)। सुक्खिया=सुख पूर्वक।

अर्थः—पृथ्वीराज गौरीशाह से जाते समय कदम आगे बढा कर पैर से पैर सटा कर मिला। शाह ने तीन बार सलाम की और मुँह में अंगुलियाँ लीं। पृथ्वीराज ने शाह से कहा-बुरी तरह कुचले जाने पर भी बारबार चढकर आते हो, दोनों दीन मे तुम बज्र मूर्ख हो। इसीलिए जैसा तुम करते हो वैसा फल पाते हो। तुमको सामतों ने कितनी ही बार पकड़ कर छोड़ दिया है। अब दिल्ली की ओर कभी आवाज मत उठाना। इस समय से पूर्व छ (या नौ) बार स्वयं मुझ से समाना कर चुके हो, फिर भी तुम छोडे जा रहे हो। अत तुम सुखासन पर सवार अपने स्थान पर सुखपूर्वक जा सकते हो।

पकरि छंडि सुलितान, दड पुण्डीर समप्पिय।
ता पच्छैं प्रथिराज, केउ दिन तप्पन तप्पिय॥
आणी पंग कुआरि, रूप धरणी धर धारह।
जिहि लीले सामत-नाथ, वारुणि वर वारह॥
मत्ता न घत्त सत्ता रहौ, पत्र लिहदे देव दिन।
उव्वाह वाह कविचंद कहि, छत्रि सु छुट्टे स्वामि रिण॥६७॥

शब्दार्थः—पकरि=पकड कर। छडि=छोड कर। दड=दड में लिया सामान। समप्पिय=दिया। ता पच्छै=तत्पश्चात्। केउ=कितने ही। तप्पन तप्पिय=सूर्य के समान तपा। आणि=लेआया। पंग-कुआरि=सयोगिता को। रूप-धरणी=रुपवती, परम सुन्दरी। धर धारह=खड्ग धारण करने वाला। जिहि=जिसने। लीले=ग्रस गई। सामत-नाथ=सामतों के नाथ, पृथ्वीराज। वारुणि=हाथी। वर वारह=श्रेष्ठ वार करने वाला। मत्ता न=न तो मत्रणा। घत्त=न घातें शस्त्र प्रहार। सत्ता=सच। पत्र=ललाट पत्र, जन्म पत्रिका। लिहदे=लिख दिया। देव=देवता, ब्रह्मा। उव्वाह वाह=उनको धन्य है २। छत्रि=क्षत्रिय। छुट्टे=छूट गये मुक्त हुए। स्वामि रिण=मालिक के ऋण से।

अर्थः—शाह को पकड़ कर छोड दिया और जो उससे दंड में लिया गया वह धीर पुण्डीर को दे दिया. उसके बाद पृथ्वीराज कितने ही दिन तक सूर्य के समान सप्रताप शासन करता रहा। जिस पंगु-कुमारी को अपहरण कर लाया था, वह परम सुन्दरी थी। खड्ग धारण कर श्रेष्ठ हाथी के समान वार करने वाले सामंतों के स्वामी पृथ्वीराज को उस सुन्दरी ने ग्रस लिया (वश मे कर लिया)। जिससे उसमे राज्य रक्षा की वह श्रेष्ठ मंत्रणा और वैसा शस्त्राघात न रहा एव सत का

भी ह्रास हो गया। कविचंद पश्चात्ताप के साथ कहने लगा–देव (ब्रह्मा) ऐसे ने कुदिन भी ललाट पर लिख दिए हैं। धन्य हे (आज हम राजा और राज्य की बुरी दशा देख रहे हैं) वे क्षत्रिय जो स्वामी के ऋण से छुटकारा पागए (अर्थात उन्होंने ऐसे दिन नहीं देखे)।

साहि डड डंडियौ, डड पुण्डीर समप्पिय।
साहि समद न मंगिय, मुक्ख राजन त अप्पिय॥
गज्जनेस गो, धीर-गयौ चामड जैत लख।
हास अग्र किय राज, वक्र मुह भौंह नचि चख॥
असपत्ति सेन भजिय नृपति, गहन गव्व धीरह वहै।
चलि सकट छाह नीचे भुखन, वहन भार गरुअत वहै॥९८॥

शब्दार्थ:—साहि=शाह को। डड डंडियौं=जुर्माना कर दंडित किया। साहि=पकड़ कर। समद=गर्व से युक्त। न मंगिय=नहीं माँगा। मुक्ख-राजन=राजा ने स्वमुख से। त=उसको। अप्पिय=दिया। गो=गया। लख=देखता हुआ। हास=परिहास। अग्र=आगे, समक्ष। किय=किया। राज=राजा के। वक्र मुह=बांका मुह, मुह बनाकर। नचि चख=नेत्र नचाकर। असपत्ति=असुरपति, बादशाह। सेन भजिय=सेना नष्ट करदी। नृपति=राजा ने (राजा की सेना ने)। गहन=पकड़ने का। गव्व=गर्व। धीरह=धीर। वहै=करता है। सकट=गाडी। भुखन=भुसने वाला, भौंकने वाला कुत्ता। वहन भार=भार वहन। गरुअत=गुरुभार। वहै=वहन करता है।

अर्थ:—बादशाह को दंडित किया गया, वह दंड पुण्डीर को दिया गया। वीर पुण्डीर ने शाह को पकड लिया किंतु गर्व के कारण उसने कुछ नहीं मांगा। स्वयं राजा ने ही वह सब उसे दे देने की आज्ञा दी। कैद से मुक्त होकर गजनी पति भी गया और धीर ने भी अपने स्थान पर जाते समय जैत्र और चामड की ओर गर्व भरी दृष्टि से देखा पीछे से जैत्र और सामन्तों ने मुँह बनाते हुए और भौंहे एव आंखों को नचाते हुए हँस कर ताना मारा कि हे राजन! शाही दल को नष्ट करने का श्रेय आपको है क्योंकि आपकी सेना ने उसे नष्ट किया है और शाह को पकड़ने का गर्व धीर इस प्रकार करता है जैसे गाडी की छाया मे चलने वाला श्वान भौंक कर बताता है कि गाडी का गुरु-भार (भारी वजन) मैं ही वहन करता हूँ (उठाये चलता हूँ)। वास्तव मे तो उस भार को वृषभ वहन करते है।

करिय रीस प्रथिराज, धीर सुअ नियर निकारिय।
बाल व्रद्ध पुण्डीर, कढि नयरह नर गारिय॥

सहस पच पुण्डीर, जाइ लाहौर सपत्तै।
सह निवास तह सजिय, मंडि सवहिनि मिलि मत्तै॥
मुक्कलिय दूत धीरह दिसह, लिक्खि पत्र अप्पुन करह।
सुणि वत्त चित्त धीरह धरिग, गयौ सिंध साहव दरह॥ ९९॥

शब्दार्थ:—करिय=की, करके। रीस=क्रोध। सुय=सुयन, पुत्र। नियर=नगर से। निकारिय=निकाल दिया। बाल वृद्ध=आबाल वृद्ध, । णारिय=नारियें। सपत्ते=गये, पहुचे। सह=सब। निवास=घर। तह=वहो। सजिय=बनाए, किए। मंडि=किया। सवहिनि=सबने। मिलि=मिल कर। मत्तै=मन्त्रणा। मुक्कलिय=पठाया, भेजा। दिसह=तरफ पास, ओर। लिक्खि=लिख कर। अप्पुन करह=अपने हाथों मे। सुणी=सुन कर। वत्त=बात। धीरह=धैर्य्य। धरिग=धारण की। सिंध-सहाव=सिंध की ओर रहने वाला शाह शहाबुद्दीन। दरह=दरवाजा (के यहाँ)।

अर्थ:—तब पृथ्वीराज ने क्रोध में आकर धीर के पुत्र पावस पुण्डीर को दिल्ली से निकाल दिया। उसके साथी आबाल वृद्ध पुण्डीर नर नारियों ने भी दिल्ली छोड़ दी। वे सब पुण्डीर ५ सहस्र थे। जो पावस के साथ जाकर लाहौर मे बस गये और वहां अपना निवास स्थान बना लिया। उन सब ने मिलकर मंत्रणा की और अपने हाथों से पत्र लिखकर धीर के पास भेजा। यह सूचना पाकर चित्त मे धैर्य धारण करके धीर पुण्डीर सिंध की ओर विदा होकर शहाबुद्दीन के पास पहुँचा।

सुणिय वत्त सुलितान, धीर पट्टौ लिखि हत्थह।
सहस अट्ठ ग्रामह सुदेश, धाम दै सह दह पत्थह॥
सहस पान सुलितान, धीर णिज हत्थ समप्पत।
कहै धीर सुणि साहि, राज प्रथिराज स तप्पत॥
जो पत्र सीस औरहि धरौं स्वामि कहावे जो अवर।
उगवै दिवाइर पच्छिमह, सेसह यह छंडै सु धर॥१००॥

शब्दार्थ:—सुणिय=सुनकर। पट्टौ=पट्टा, सनद। लिखि=लिखकर। हत्थह=हाथों मे। अट्ठ=आठ। ग्रामह=गाँव। सुदेस=अच्छे देश। धाम=घर। दह=दस। पत्थह=प्रात। पान=ताम्बूल। सुलतान=बादशाह। णिज हत्थ=निज हाथों मे। समप्पत=दिया। सुणि=सुनो। साहि=बादशाह। राज=राजा। तप्पत=तपना है। पत्र=पट्टा। औरहि=दूसरे का। धरौं=धरूं। स्वामि=

मालिक। कहावै=कहलावें। जो=जो, यदि। अवर=दूसरा। उग्गै=उदय हो। दिवाकर=सूर्य। पच्छिमह-पश्चिम में। सेसह=शेषनाग। छंडै=छोड़े। भर=पृथ्वी।

अर्थ—धीर के आने की खबर पाकर बादशाह ने अपने हाथ से पट्टा लिखा, जिसमें अच्छे देश के आठ सहस्त्र गाँव निवास और विस्तृत दस प्रान्त लिखे थे। बादशाह एक सहस्त्र ताम्बूल के साथ धीर को बुलाकर वह पट्टा देने लगा, तब धीर ने बादशाह से कहा—मेरे सिर पर केवल पृथ्वीराज ही शासक है। यदि मैं और का दिया हुआ पट्टा सिर पर चढ़ालूँ और दूसरे को अपना स्वामी बनाऊ तो सूर्य पश्चिम में उदय होना आरम्भ कर देगा और शेष नाग पृथ्वी को सिर से उतार कर छोड़ देगा।

धीर णिवेसन साहि, दियो टिल्ला पहार तव।
अरु दै ठट्टा ठाम, कियौ आदरु अनद राव॥
तव सु पत्र लिखि धीर, सोइ कर दूत समप्पिय।
तव हि दूत लाहौर, पत्र पावस कर अप्पिय॥
वचियसु पत्र पुण्डीर तव, लुट्टि सहर छड्डयौ सवर।
पट कूर कनक केसरि अगर, हय गय पुर नग मुत्ति नर॥ १०१॥

शब्दार्थः—णिवेसन=निवेसन, निवास के लिये। तव=तब। ठाम=स्थान। आदरु=सम्मान। सोइ=उसी। तवहि=तब। पावस=धीर पुण्डीर के पुत्र का नाम (पावस पुण्डीर)। अप्पिय=दिया। वचिय=पढ़ा। सवर=उस समय। पटकूर=जोरदार, जरीन वस्त्र। कनक=सोना। मुत्ति=मोती।

अर्थः—धीर के केवल निवास के लिए टिल्ला पहाड़ और ठट्टा स्थान की आज्ञा दी और प्रसन्न होकर सब प्रकार से सम्मान किया। धीर ने पत्र लेकर आये हुए दूत को देकर उसे लौटाया। दूत ने लाहौर जाकर पावस के हाथ में वह पत्र दिया, उस पत्र को सब पुण्डीरों ने मिल कर पढ़ा और चलते समय उन पुण्डीर वीरों ने लाहौर में लूट मचाई जिसमें उन्हें बढ़िया वस्त्र, सोना, केसर, कर्पूर, घोड़े, हाथी, नग मुक्तादि हाथ लगे।

हरिय रिद्धि वर नयर, जाय टिल्ला सम्पत्तौ।
तहँ निवास निन करिय, सव्व पुण्डीर स मत्तो॥
आगो अत्थह धीर, सुव्व लाहौर स लुट्यौ।
करि पावस मम कोप, अप्प हत्था हिय कुट्यौ॥

संभरिय वत्त साहावसो, दूत सपत्ते साहि दिसि।
पुणि पत्र धीर सौदागरह, आइ सपत्ते ठाम आगि ॥१०४॥

शब्दार्थः—सहस अट्ठ=आठ हजार। सत्थ=साथ। पंचह=पांच। सौदागरह=घोड़ों के व्यापारी। आइ सपत्ते=आ पहुंचे। तत्थ=यहां। दीनों=दिया, किया। हय तक्खि=घोड़ों को देख, जांच कर। दूनह=दो। द्रव्व=द्रव्य। समप्पिय=दिया। अमित=अपार। तिन=उनको। दिक्खे=देखे। संभरिय=सुनी। वत्त=बात। साहाव=शहाबुद्दीन। सौं=तरह। सपत्ते=पहुंचे। साहि दिसि=बादशाह की ओर (पास)। पुणि=पुन, फिर। पत्र-धीर=धीर का पत्र (मिलने पर)। अमि=उस (गजनी), इस प्रकार।

अर्थः—पांच सहस्र सौदागर जिनके साथ आठ सहस्र घोड़े थे। वे धीर के पास आये, धीर ने उनका अच्छा सम्मान किया और एक महिने तक घोड़ों की जांच कर दो सहस्र घोड़े धीर ने खरीदे। आदर की दृष्टि से देखते हुए घोड़ों की कीमत में अपार द्रव्य दिया। शाही दूतों ने यह खबर बादशाह को दी। इधर धीर का सिफारशी पत्र लेकर सौदागर बादशाह के पास पहुँचे।

सौदागर गज्जनै, सपत्त गोरी सहाव मिलि।
हय निरक्खि पति साहि, सोइ रक्खे सु अप्प किलि॥
मिलि ततार खुरसान, गज्जि ससरेज सु मत्तिय।
कह्यौ साहि सौं जाइ, सु वर हय धीर सु दत्तिय॥
कोपियौ साहि साहाव सुणि, सब सौदागर गहन किय।
सुणि वत्त भग्गि सौदागरह, जाय धीर सब सरण लिय॥१०५॥

शब्दार्थः—गज्जनै=गजनी। सपत्त=पहुंचे। मिलि=मिले। निरक्खि=देखकर। पतिसाहि=बादशाह। सोइ=वही। अप्प=स्वयं। किलि=किन, सुन्दर। गज्जि=गर्जता हुआ। मत्तिय=मतवाला। सौं=से। जाइ=जाकर। वर=श्रेष्ठ। हय-घोड़े। दत्ति=देदिए। कोपियो=क्रोध किया। सुणि=सुनकर। गहन किय=पकड़ने की आज्ञा दी। भग्गि=भाग कर। जाइ=जाकर। सरण लिय=शरण ली।

अर्थः—सौदागर गजनी पहुँचने पर शहाबुद्दीन से मिले। शाह ने घोड़े देखे और उनमें से जो सुन्दर मालूम होते थे उनको रक्खा। इतने में तत्तार खां, खुरासान खां, गर्जता हुआ मतवाला ससरेजखॉं आदि शाह से आकर मिले और कहा—

अच्छे अच्छे घोडे तो इन्होंने धीर को दे दिये हैं। यह सुन शहाबुद्दीन ने क्रुद्ध हो कर सौदागरों को पकडने की आज्ञा दी, यह सुन सौदागर भाग कर धीर की शरण में चले गए।

दोहा

धीर सु लिख्यौ साहि सौ, सरण मुमम्क सइ आइ।
दैउ द्रव्य इन हय सहस, सुणी रीति सह साइ ॥१०६॥

शब्दार्थ:—लिख्यौ=लिखा। सरण=शरण। मुमम्क=मेरे। सइ=सब। आइ=आये। दैउ=दीजिये। हय सहस=सहस्र घोड़ों का। सुणि=सुनिए। साइ=स्वामी, राजा, बादशाह।

अर्थ:— तब धीर ने बादशाह को लिखा कि ये सब सौदागर मेरी शरण में आये हैं। शाह और राजाओं की रीति के अनुसार आपने इनके एक हजार घोडे रक्खे हैं उनकी कीमत इनको अवश्य देनी चाहिए।

मीरा खोर मसद अलि, तिन हत्थह दिय द्रव्य।
पठए साहि सु धीर मम, कनक बाज हय सव्व ॥१०७॥

शब्दार्थ:—खोर= दूषण। तिन=उसके। हत्थह=हाथों। द्रव्व=द्रव्य। पठए=भेजे। साहि=बादशाह। सम =समीप। कनक=स्वर्ण। बाजि=घोड़े। हय=हे। सव्व=सब।

अर्थ:—तब मीरखानदान ने दूषण रूपी (चालाक) मसद अली के साथ द्रव्य देकर शाह ने धीर के पास भेजा और कहलाया कि घोडे स्वर्ण तुल्य कीमती हैं।

अली मसद समप्पि सह, द्रव्य धीर कहँ सोइ।
धीर समप्पि बुलाइ सव, सम सौदागर दोइ ॥ १०८ ॥

शब्दार्थ:—अली ममद = मसदअली। समप्पि = दिया। सइ = सब। कहँ = को। सोइ = वह। बुलाइ = बुलाकर। सम – समक्ष। दोइ = दो।

अर्थ:—मसंदअली ने धीर के पास आकर वह सब द्रव्य धीर को दिया। धीर ने सौदागरों को बुलाया और उनमे से दो मुखियों को पास बुला कर वह द्रव्य उनके सुपुर्द कर दिया।

आदर धीर सुभीर किय, सब सौदागर सत्थ।
कालन मीर सु धीर सम, कहिय साहि सब कत्थ ॥ १०९ ॥

शब्दार्थः—मीर=समूह, साथी। गत=गत। गत=गाजने। शाहि=शाह को। कथ=कथा, बात।

अर्थः—धीर ने सौदागर और उनके साथी-समूह का आदर किया, सौदागरों के मुखिया कालन मीर ने धीर के समक्ष शाह की सब बातें कहीं।

रखिख धीर सौदागरह, उभय मंस गय जाम।
खुरासान तत्तार मिलि, कियौ मतौ बिनठाम ॥ ११० ॥

शब्दार्थः—रखिख=रखकर। उभय=दोनों। मस=मास। गय=गये। जाम=जब। मतौ=मत्रणा। बिनठाम=विनष्ट करने को।

अर्थः—धीर ने सौदागरों को अपने पास दो महीने तक रक्खा, तब खुरासान खाँन और तत्तार खाँन शाह से मिले। और धीर के विनाश के लिए मत्रणा की गई।

सुणि सुमत कग्गद लिखिय, पठयौ कालन मीर।
सुणिय ह स तुम द्रव्य कज, हनैं सब्ब सौ धीर ॥१११॥

शब्दार्थः—सुणि=सुनकर। मत=मत्रणा। कग्गद=कागद, पत्र। लिखिय=लिखा। पठयौ=भेजा। ह=हमने। स=यह। तुम=तुम्हारे, तुमको। कज=लिये। हनैं=मारे। सब्ब=सब को। सौ=वह।

अर्थः—मत्रणा कर सौदागरों के मुखिया काल्हन मीर के पास यह पत्र लिखा कि हमने यह सुना है कि तुम्हारे पास जो द्रव्य है उसे लेने के लिए धीर तुम्हे मार देगा।

कालन मीर कमाल करि, दियौ स कग्गर दूत।
बचि सुभर भयभीत हुव, मत्त परट्ठिय नूत ॥११२॥

शब्दार्थः—कमाल=कमाल मीर। करि=हाथ। कग्गर=पत्र। बचि=पढकर। सुभर=सुभट। हुव=हुये। मत्त=मत्रणा। परट्ठिय=करने लगे। नूत=नूतन, नई।

अर्थः—वह पत्र लेकर दूत काल्हन मीर, कमाल मीर के पास पहुँचा और उनके हाथों मे दिया। उसे पढकर वे वीर सौदागर भयभीत हो गए और नई मत्रणा करने लगे (पहिले धीर के साथ प्रेम था, अब उसके वे दुश्मन हो गए)।

कवित्त

कालन मीर कमाल, मिया मनसूर सु मन्निय।
सेखन सखनि जाम, फतै मवल्यार सुपन्निय ॥

मवै मंत्र मिलि रचिय; धीर अप्पां सहि मारैं।
ता पहिले आपन्न, मवै धीरहि संघारै ॥
सुद्धरैं काम अप्पां सुनग, जो मिलि धीरहि मारिये।
सघार करैं सव्वां सुभर, जो अव धीरु हकारिये ॥११३॥

शब्दार्थ:-मन्निय=मानलिया। सेखन सूवनि=शेखों के पुत्र, या शेखन-पुत्र। जाम=जब, उसी स्थान, उसी समय। मपन्निय=सम्मिलित हुए। सवैं=सब। मत्र=मत्रणा। मिलि रचिय=मिल कर की। अप्पां=अपने को। सहि=सबको। ता=उस से। आपन्न=अपन। सवैं=सब। सुद्धरैं=सुधरे, बनें। सव्वां=सबका। अव=अब। धीरु=धीर पुण्डीर। हकारिये=हकारा जाय, सावधान किया जाय।

अर्थ:—कलहन मीर कमालमियां, मसूर, शेखन-पुत्र और फतह मुख्तियार इन सबने मिलकर एक दूसरे की बात मानी और यह मंत्रणा की-कि धीर हम सब को मार डालेगा उससे पहले ही हम धीर को मार डाले। धीर को मारने पर ही अपना सब काम बन सकता है। यदि धीर को अब सावधान किया तो वह वीर हम सब सौदागरों को मार डालेगा।

दोहा

मत प्रपच जु रच्चिये, बोलीजै धीरेक।
पुच्छी जे परि साहि की, तब सिर धरियै तेक ॥११४॥

शब्दार्थ:—मत=मत्रणा। बोलीजै=बुलाया जाय। धीरेक=अकेले धीर को। पुच्छि-जे-परि=पीठ पर जो। साहि की=शाह की मदत। तव=तब। धरियै=धर देना, मार देना। तेक=तलवार।

अर्थ:—मत्रणा कर यह प्रपंच किया कि अकेले धीर को बुलाना चाहिये। हमारी पीठ पर शाही मदद है तब अवश्य धीर के सिर पर तलवार मार देनी चाहिए।

कवित्त

सजिय सव्व पट्टाण, साहि वड वत्त उडाइय।
काल्हन मीर कमाल, जाइ धीरहि लै आइय ॥
लै विट्ठे एकंत, साहि वत्तां भय वुमझौ।
हम आये तो सरण, अव्व गुमझा कहैं गुमझौ ॥

उच्चरयौ धीर गरुवत्तनह, कौनु साहि मो सरण हय।
नह डरौ अज्ज रक्खौ तुमहि, जौ जम आवै उ न जय ॥११५॥

शब्दार्थ:—पठ्ठाण=पठान। साहि=बादशाह। वड=विशेष। वत्त उठाइय=अफवाह फैलाई। विट्ठे=बैठे। भय=डर। वुभझो=कहा, सुभ्भा कर। अन्त=पास। गुम्भा=पुकार। कहं=किसके सामने। गुभ्भौ=की जाय। गरुवत्तनह=गौरव धारी, गौरव युक्त। कौनु=कौन। मो=मेरे। हय=हने, मारें। अज्ज=आज। तुमहि=तुम्हारी। जम=यमराज। आवै=आने पर भी। उ न=उसकी नहीं। जय=विजय।

अर्थ:—शाह ने पठानों को वास्तव में सौदागरों के पक्ष में धीर के विरुद्ध सजाये थे; किन्तु सौदागरों ने यह अफवाह फैलाई कि पठानो को हम पर सजाया है। यह कह कर काल्हन मीर और कमाल ने जाकर अकेले धीर को अपने खेमे में बुलाया और एकान्त मे बैठ कर बादशाह के द्वारा भय होने की बात कही और कहा-हम तुम्हारी शरण आए हैं, अब हम किसे पुकारें। यह सुनकर गौरव धारी धीर ने कहा—बादशाह क्या चीज है जो मेरी शरण मे आये हुए को मारे, मैं किसी से डरने वाला नहीं हूँ ?; आज मैं तुम्हारी रक्षा के लिए तैयार हूँ यदि यमराज भी आ जाय तो उसकी भी विजय नही हो सकती।

तब्ब सुच्यतह करिय, धीर सुभ च्यत वयट्ठौ।
असि लै कालन उट्ठि आइ खिन पुट्ठि निहट्ठौ॥
कड्ढि तेग सिर झारि, सीस टुट्यौ धर उठ्यौ।
उच्चि तक्क अभिमान, सीस गय सूर ण खुट्यौ॥
निझ्झारि तेग धर ढारि धर, हय कमाल कालन दर।
सय दून सद्धि पट्ठान रण, इह अचिज्ज अक्खै अमर ॥११६॥

शब्दार्थ:—सुच्यतह=शुभ चिंतक। च्यत=सोचकर। वयट्ठो=बैठा। असि=तलवार। लै=लेकर। उट्ठि=उठकर। आइ=आकर। खिन=क्षणभर। पुट्ठि=पीठ पर, पीछे। निहट्ठो=नाशक, नाश करने वाला। कड्ढि तेग=तलवार निकाल। झारि=झाड़ी, मारदी। टुट्यौ=टूट पड़ा। धर=रुण्ड। उठ्यौ=खड़ा हुआ। उच्चि=ऊपर को। तक=देखता हुआ। अभिमान=आत्ममान। गय=चले जाने पर, कट जाने पर। सूर=शूर। ण=नहीं। खुट्यौ=नष्ट हुआ। निझ्झारि=झाड़कर। धर=पृथ्वी। ढारि=लुढ़क गये। दर=दलन कर, नष्ट कर। सयदून=दो सौ। सद्धि=जुटकर। इह=इस बात को। अचिज्ज=आश्चर्य। अक्खै=कहते हैं। अमर=देवता।

अर्थः—इसके बाद धीर सौदागरों को अपना शुभचिन्तक समझ उनको बचाने की चिंता मे निमग्न हो बैठ गया, तब नाश कर्त्ता कलहन मीर तलवार लेकर उठा और क्षण मात्र में उसके पीछे आगया। तलवार निकाल कर धीर पर वार किया जिससे उसका सिर कट कर गिर गया और रुण्ड आसमान की ओर देखता हुआ खड़ा होगया। सिर कट जाने पर भी वह खतम नहीं हुआ और कमाल तथा कलहन पर तलवार चला कर उन्हें धराशाई कर दिया। उस रुण्ड ने दोसौ पठानों से युद्ध किया। यह देख देवता गण आश्चर्य चकित होगए।

सहस चारि पट्ठान, मिले धर धीर ढारि धर।
तब पावस पुण्डीर, सुत्त वप्पह वाहरहर॥
सजि पावस पुण्डीर, चल्यौ हय कंध करक्खे।
वारभद्र रण स्यघ, तेज पुण्डीर तरक्खै॥
लक्खमा लोह लक्खाह मिलि, रघरराइ समत्थ रिन॥
सक्रमै सेल सज्जै सु तुरि, पक्खरी स्यघ सु सज्जि तिन॥११७॥

शब्दार्थः—मिले=मिलकर। ढारि=लुढका दिया। सुत्त=पुत्र। वप्पह=पिता की। वाहरहर=सहायता पर। कध करक्खै=(घोडे) के कधे को उठाया। तरक्खै=तेश में (आवेश में) आगये। लक्खमी=लखम सी (नाम विशेष)। लक्खाह=लाखों से। समत्थ=सामर्थ्यवान। सक्रमै=चल पड़े। सेल=भाला।' तुरि=आतुर। पक्खरि=पाखरैत, अश्वारोही। स्यघ=सिंह तुल्य। तिन=वे।

अर्थः—चार सहस्र पठानो ने मिलकर धीर के धड को धराशाई किया। तब धीर का पुत्र पावस पुण्डीर पिता की सहायता के लिये पहुँचा और घोडे पर चढ उसकी रास खींची। जिससे घोडे ने अपने कधे को उठाया और रण समर्थ वीरभद्र, रणसिंह, तेजसिंह, लक्ष्मण रंघर राय आदि पुण्डीर योद्धा भी जोश मे आकर लाखो से लोहा लेने के लिये तैयार हुए। हाथो में बर्छा लिये हुए वे सिंह तुल्य वीर घोडों को सजा कर बढ़े।

जाइ सपत्तै सोइ, सज्जि ठड्डे पट्ठानह।
हक्कि धक्कि हय नक्कि असॅलि असिवर रट्ठानह॥
तेग तार कक्कस करार, कहैं मुख मार मार सुर।
भगि पठान उसमान, विमुख जिम मारि हारि भर॥

उच्चरयौ धीर गरुवत्तनह, कौनु साहि मो गरण हय।
नह डरौ अज्ज रक्खौ तुमहि, जौ जम आवैं उन जय ॥११५॥

शब्दार्थः—पट्ठाण=पठान। साहि=बादशाह। वड=विशेष। वत्त उडाइय=अफवाह फैलाई। विट्ठे=बैठे। भय=डर। वुभ्भ्यो=कहा, सुभ्भा कर। अन्न=अब। गुभ्भां=पुकार। कहं=किसके सामने। गुभ्भ्यौ=की जाय। गरुवत्तनह=गौरव धारी, गौरव युक्त। कौनु=कौन। मो=मेरे। हय=हने, मारें। अज्ज=आज। तुमहि=तुम्हारी। जम=यमराज। आवैं=आने पर भी। उन=उसकी नहीं। जय=विजय।

अर्थः—शाह ने पठानों को वास्तव मे सौदागरों के पक्ष मे धीर के विरुद्ध सजाये थे, किन्तु सौदागरों ने यह अफवाह फैलाई कि पठानो को हम पर सजाया है। यह कह कर काल्हन मीर और कमाल ने जाकर अकेले धीर को अपने खेमे मे बुलाया और एकान्त मे बैठ कर बादशाह के द्वारा भय होने की बात कही और कहा-हम तुम्हारी शरण आए है, अब हम किसे पुकारें। यह सुनकर गौरव धारी धीर ने कहा—बादशाह क्या चीज है जो मेरी शरण मे आये हुए को मारे, मैं किसी से डरने वाला नहीं हूँ ? आज मै तुम्हारी रक्षा के लिए तैयार हूँ यदि यमराज भी आ जाय तो उसकी भी विजय नही हो सकती।

तब्ब सुच्चयतह करिय, धीर सुभ च्यत वयट्ठौ।
असि लै कालन उट्ठि आइ खिन पुट्ठि निहट्ठौ॥
कड्ढि तेग सिर भारि, सीस टुट्यौ धर उठ्यौ।
उच्चि तक्क अभिमान, सीस गय सूर ण खुट्यौ॥
निभ्भारि तेग धर ढारि धर, हय कमाल कालन दर।
सय दून सद्धि पट्ठान रण, इह अचिज्ज अक्खै अमर॥११६॥

शब्दार्थः—सुच्चयतह=शुभ चिंतक। च्यत=सोचकर। वयट्ठौ=बैठा। असि=तलवार। लै=लेकर। उट्ठि=उठकर। आइ=आकर। खिन=क्षणभर। पुट्ठि=पीठ पर, पीछे। निहट्ठौ=नाशक, नाश करने वाला। कड्ढि तेग=तलवार निकाल। भारि=भाड़ी, मारदी। टुट्यौ=टूट पड़ा। धर=धड़। उठ्यौ=खडा हुआ। उच्चि=ऊपर को। तक्क=देखता हुआ। अभिमान=आत्मसमान। गय=चले जाने पर, कट जाने पर। सूर=शूर। ण=नहीं। खुट्यौ=नष्ट हुआ। निभ्भारि=भाड़कर। धर=पृथ्वी। ढारि=लुटक गये। दर=दलन कर, नष्ट कर। सयदून=दो सौ। सद्धि=जुटकर। इह=इस बात का। अचिज्ज=आश्चर्य। अक्खैं=कहते लगे। अमर=देवता।

अर्थः—इसके वाद धीर सौदागरों को अपना शुभचिन्तक समझ उनको वचाने की चिंता में निमग्न हो वैठ गया, तव नाश कर्त्ता कलहन मीर तलवार लेकर उठा और क्षण मात्र में उसके पीछे आगया। तलवार निकाल कर धीर पर वार किया जिससे उसका सिर कट कर गिर गया और रुण्ड आसमान की ओर देखता हुआ खड़ा होगया। सिर कट जाने पर भी वह खतम नहीं हुआ और कमाल तथा कलहन पर तलवार चला कर उन्हें धराशाई कर दिया। उस रुण्ड ने दोसौ पठानों से युद्ध किया। यह देख देवता गण आश्चर्य चकित होगए।

सहस चारि पट्ठान, मिले धर धीर ढारि धर।
तव पावस पुण्डीर, सुत्त वप्पह वाहरहर॥
सजि पावस पुण्डीर, चढ्यौ हय कध करक्खे।
वीरभद्र रण स्यघ, तेज पुण्डीर तरक्खे॥
लक्खमा लोह लक्खाह मिलि, रंघरराइ समत्थ रिन॥
सक्रमै सेल सज्जै सु तुरि, पक्खरी स्यघ सु सज्जि तिन॥११७॥

शब्दार्थः—मिले=मिलकर। ढारि=लुढका दिया। सुत=पुत्र। वप्पह=पिता की। वाहरहर=सहायता पर। कध करक्खै=(घोड़े) के कधे को उठाया। तरक्खै=तैश में (आवेश-में) आगये। लक्खमी=लखम सी (नाम विशेष)। लक्खाह=लाखों से। समत्थ=सामर्थ्यवान। सक्रमै=चल पड़े। सेल=भाला। तुरि=आतुर। पक्खरि=पखरैत, अश्वारोही। स्यघ=सिंह तुल्य। तिन=वे।

अर्थः—चार सहस्र पठानों ने मिलकर धीर के धड को धराशाई किया। तव धीर का पुत्र पावस पुण्डीर पिता की सहायता के लिये पहुँचा और घोडे पर चढ उसकी रास खींची। जिससे घोडे ने अपने कधे को उठाया और रण समर्थ वीरभद्र, रण-सिंह, तेजसिंह, लक्ष्मण रघर राय आदि पुण्डीर योद्धा भी जोश मे आकर लाखों से लोहा लेने के लिये तैयार हुए। हाथों में वर्छी लिये हुए वे सिंह तुल्य वीर घोडों को सजा कर वढे।

जाइ सपत्तै सोइ, सज्जि ठड्डे पट्ठानह।
हक्कि धक्कि हय नंकि, असॅखि असिवर चट्ठानह॥
तेग तार कक्कस करार, कहै मुख मार मार सुर।
भगि पठान उसमान, विमुख जिम भारि हारि भर॥

सय अट्ठ पट्ठ भर पर ढरिग, जित्ते वर पुण्डीर रन।
जय २ सु सद्द आयास हुव, धन्य धीर धीरह सुतन ॥११८॥

शब्दार्थः—जाइ=जाकर। सपत्तो=पहुँचा। सोइ=वह। उडटे=डटे हुए। हविक धविक=हलचल। हय नकि=घोड़ों को बढा कर। असखि=असख्य अपार। असिवर=तलवार। उट्ठानह=उठाई। तेग-तार= तलवार की मार। ककस=कठोर। करार=करारी। सुर=आवाज। उसमान=नाम विशेष। विमुख= पीठ देने पर। जिम=ज्योंही जैसे ही। झारिहारि=झाड़ दिये, नष्ट कर दिये। भर=योद्धा। सय अट्ठ=आठ सौ। पट्ठ=पठान। जित्ते=विजय की। सद्द=आवाज। अयास = आकाश। हुव=हुई। सुतन=सुत, लड़का।

अर्थः—जहाँ पठान सज कर डटे हुए थे, वहाँ पुण्डीर योद्धा जा पहुँचे। हलचल मचाते हुए घोड़ों को बढा कर तलवारें उठा कर अपार झडी करदी और उन करारे वीरों ने कर्कश स्वर से मार २ उच्चारण किया जिससे पठान और उनका उस्मान मुखिया पीठ बताकर भाग गया। ज्योंही वे भागे त्योंही पुण्डीर वीरों ने उनका पीछा कर उन्हें मार दिया। उनके प्रहार से ८०० पठान धराशाई हुए, पुण्डीरों की विजय हुई, आकाश से जय २ कार के साथ धन्य है धीर और धीर के पुत्र को, यह आवाज होने लगी।

आइ पच्छ पुण्डीर सब, मिले भीर लखि वीर।
विना सीस सय दून वहि, वधि धर रक्खन नीर ॥११९॥

शब्दार्थः—आइ=आकर। पच्छ=पक्ष। भीर=समूह। सय दून=दो सौ। वहि=चलते, करके। वधि=माग गया। धर=पृथ्वी। रक्खन=रखने को। नीर=नूर।

अर्थः—इस प्रकार धीर के पक्ष पर सभी पुण्डीर आये किन्तु वीर के सिर कट जाने पर भी शत्रु समूह से भिडता रहा। दो सौ विपक्षियों को समाप्त कर वह पृथ्वी पर अपना नूर फैलाकर गिर गया।

जिन असिवर भर गज गुरिग, जिन रण सध्यौ साहि।
सौ सध्यौ सौदा गरह, करौ ग्रब्ब जिन काहि ॥१२०॥

शब्दार्थः—असिवर=तलवार। भर=झड़ी, वार। गज=हाथी। गुरिग=लुढ़काया। रण सध्यौ= युद्ध में पकड़ा। साहि=शाह को। सो सध्यौ=वही मारा गया। ग्रब्ब=गर्व। जिन=नहीं। काहि=कोई।

अर्थः—जिसकी श्रेष्ट तलवार के वार से शाह का हाथी धराशाई हो गया था और जिसने शाह को पकड़ कर रण का साधन किया था वही धीर सौदागरों द्वारा मारा गया। अत कभी किसी को गर्व नहीं करना चाहिये।

चूक तेक टुट्यौ सु सिर, उट्ठि कमंध विवंग।
मिलि चव सहसह मारियौ, गो प्रथिराजह रंग ॥१२१॥

शब्दार्थः—चूक=धोका। तेग=तलवार। टुट्यौ=टूटा। कमंध=धड़। विवंग=विखड। चव सहसह=चार सहस्र। गो=गया, मिट गया। रंग=विनोद, हर्ष।

अर्थः—धोखे से धीर का सिर काटा गया किन्तु उसके खडित रुण्ड ने खडे होकर शत्रुओं का नाश कर दिया। उस रुण्ड को चार सहस्र पठानों ने मिलकर मुश्किल से धराशाई किया। सूचना पाकर पृथ्वीराज के सारे विनोद (हर्ष) मिट गये (उदास हो गया)।



अन्तिम-युद्ध

(समय ६१)

दोहा

विलसत सुख दिन प्रति नवल, चित्रकोट चतुरग ।
सुपनतर लखि सुन्दरी, सेत वस्त्र मन भग ॥ १ ॥

शब्दार्थ:—चतुरंग=चतुर । सुपनतर=स्वप्न मे । सेत=श्वेत । मन भग = उदास ।

अर्थ—:चित्तौडेश्वर रावल समर-विक्रम जो अति चतुर थे वे नित नूतन विनोद-सुख का उपभोग करते रहते थे उन्हे स्वप्न मे श्वेत वस्त्र पहिने हुई एक सुन्दरी दिखाई दी जिससे उनका मन उदास होगया ।

कवित्त

प्रथा कत करि प्रेम, जाम इक रही रजन्निय ।
निद्रा रावर समर, पेखि चहुवान अवन्निय ॥
उज्जल वस्त्र पवित्र, खिनक रोवे खिन गावैं ।
खिनक लिए भर भीर, खिनक अप्पह संतावैं ॥
नर लोइ देव देवगना, तू रभा कहि कित रहै ।
पहु अच्छ वरू वीरह तनी, मो तन गोरी सग्रहै ॥ २ ॥

शब्दार्थ:—प्रथा कत प्रथा कुमारी के पति रावल समर-विक्रम । जाम=पहर । अवन्निय=अवनी, पृथ्वी । अप्पह=स्वयं । सतावै-सतप्त । नर-लोइ-देव नर लोक में देवलोक से । कित=कहां । पहु-अच्छ=यक्ष स्वरूपी राजा (पृथ्वीराज) । तनी=की । मो-तन -मेरा शरीर । सग्रहै= ग्रहण करे पकड़े, स्पर्श करे ।

अर्थ:——जब एक प्रहर रात्रि शेष रही पृथा कुमारी के पति (समर-विक्रम) ने उस सुन्दरी को प्रेम की दृष्टि से देखा । वह सुन्दरी चाहुवान राजा (पृथ्वीराज) की पृथ्वी थी जो उज्वल पवित्र वस्त्र पहिने हुए थी । वह क्षण मे-रुदन करती, गाती, सामन्त समूह युक्त दिखाई देती और स्वयम् सतप्त सी दीख पड़ती थी । तब रावल जी ने उसे पूछा । हे सुन्दरी तूं इस नरलोक मे देवलोक से आई हुई देवाङ्गना है या स्वयम रभा है और तेरा स्थान कहा है । रावल जी के

ऐसा प्रश्न करने पर उत्तर दिया-कि मैं यज्ञ स्वरूपी वीर (पृथ्वीराज) की वधू (पृथ्वी) हूँ अब मेरे शरीर को गोरी (शहाबुद्दीन) स्पर्श करने वाला है।

दोहा

सभा करी रावर समर, बैठे सूर सथान।
निगमबोध भेटन सु तिथ, चलिये दिल्ली थान ॥ ३ ॥

शब्दार्थ:—सथा=सथन। तिथ=तीर्थ।

अर्थ:—अपने सामन्तों सहित सुबह रावल समर विक्रम सभा करके बैठे और कहाकि निगमबोध तीर्थ को भेटने के लिए दिल्ली चलना चाहिये।

कवित्त

है खुर रज उच्छलिय, तिमिर विरखुरिय धुंध पर।
तरनि रंग रस मिलिय, घोर घुघ्घरिय रुहिर सर ॥
चक्क जुअल संजुरिय, कमल उल्लसिय विमल जल।
पथिक पर्यंचल टलिय, मथन घमनेह तुभक्क दल ॥
जोवंति सिंघ अरि दल दमन, नष्ट सुभक्कैं करिमाल कर।
टल टलिय परिय कंपिय सघन, समर पयाना रंमे भर ॥ ४ ॥

शब्दार्थ:—है=घोड़े। उच्छलिय=उड़ी। विरखुरिय=बिखर गया, दूर हो गया। तरनि=सूर्य। रंग-रस=प्रेम का रंग, अनुराग का रंग (अरुण रंग फैलाता हुआ)। मिलिय=दृष्टिगोचर हुआ। घोर=भयानक। घुघ्घरिय=गुघ्घुलिय, घुल गया। रुहिर सर=रक्त सर (सिन्धु)। जुअल=युगल। संजुरिय=जुड़े, मिले। उल्लसिय=उल्लसित, प्रफुल्लित। पर्यंचल=प्रजवल, पलंग, पर्यंक। मथन=मथानी। घमनेह=घर्षण, संघर्ष। तुभक्क=तरज, तरह। दल=सेना। करमाल=सूर्य। कर=किरणें। टल-टलिय=उथल पुथल। परिय=मचगई। सघन=घने समूह। पयाना=प्रयाण। रम=रमा। भर=सामन्त।

अर्थ:—पश्चात् अंधेरा दूर होते ही रावलजी ने दिल्ली की ओर प्रस्थान किया जिससे घोड़ों के पदाघात द्वारा धूलि उड़ने लगी। जिसकी धूंधल ने पुन अंधेरे का दृश्य दृष्टिगोचर करदिाया। सूर्य अरुणिमा फैलाता हुआ उदय हुआ जिससे ऐसा दिखाई दिया मानो रक्त सिन्धु घुल गया हो। सूर्य और कमलों के युगल नैत्र मिलने पर निर्मल जल स्थित कमल प्रफुल्लित हो गये। पथिक प्रर्यंक (बिछौने) से उठकर चलने लगे, मथानी का संघर्ष सेना के संघर्ष के समान होने लगा। शत्रु दल

का दमन करने वाले रावल-केशरी (समर-विक्रम) के प्रयाण में सूर्य किरणें छिप गईं, सब ओर उथल पुथल एव कंप मचगया। जिससे भयानक युद्ध की संभावना करती हुई रंभा-सामन्तों की ओर वरण करने की इच्छा से देखने लगी।

कन्ह लयो अप सथ्थ चले दरकूच महा भर।
कुसल हुई सब सथ्थ, गयो जोगिन प्रथ्था वर॥
संजोगिता प्रधान, आय सामुह दस कोसह।
कोस पच सामत, पुच्छि परिगह आलोचह॥
डेरा कराय तीरथ्थ तट, निगमबोध भेटयौ तबह।
मुत्तियन बधायौ थाल भरि, करि आनँद इच्छिनि जबह॥ ५॥

शब्दार्थः—दरकूँच=मुकाम पर मुकाम करते हुए। जोगिन = योगिनीपुर, दिल्ली। प्रथ्था वर= पृथा कुमारी के पति, समर – विक्रम। परिगह=कुटुम्ब की। आलोचह=आलोचना, अच्छी बुरी। मुत्तियन= मोतियों से। बधायो=स्वागत किया।

अर्थ—रावल समर-विक्रम ने अपने भाईयों में से जो भात्र-पुत्र लगता था उस वीर कन्ह को साथ में लिया। जब वे दिल्ली पहुँचे तब वहां के समस्त निवासियों को प्रसन्नता हुई। रावल जी की अगवानी के लिए दस कोस सामने सयोगिता का प्रधान आया और पांच कोस सामने पृथ्वीराज के सामत आये और कुटुम्ब की परस्पर कुशल पूछी। रावल जी का मुकाम निगमबोध तीर्थ के पास ही करा दिया यह सुनकर पृथ्वीराज की पटरानी इच्छनी ने मोतियों से थाल भराकर उनका स्वागत किया।

दोहा

निगम बोध रिध बास किय, रावर समर नरिन्द।
हुए द्योस इकईस तहँ, पच सहस भर वृन्द॥ ६॥

शब्दार्थः—रिध=रिद्धि। द्योस=दिन। इकईस=इक्कीस।

अर्थः—रावर समर-विक्रम के वहा रहने से ऐसा आभास हुआ मानो निगम बोध स्थान पर रिद्धिने निवास कर लिया हो। पाच सहस्र सामन्तों सहित रावलजी को वहा रहते हुए इक्कीस दिन बीत गये।

दिवस चवत्थै रावरह, आवै प्रथा इकंत।
वासुर दोइ वासै रहै, परी भ्रात मन चिंत ॥ ७ ॥

शब्दार्थः—चवत्थै = चौथे। रावरह = अन्तःपुर। प्रथा = पृथा कुमारी। इकंत=एकान्त। वासुर= दिन। दोइ = दो। वासे रहै = वास करती, ठहरती।

अर्थः—पृथा कुमारी प्रत्येक चौथे दिन निगम बोध स्थान से राजा के अन्तःपुर में एकान्त में (रानी इच्छनी के पास) आती और दो दिन वहां ठहर पुनः रावल के पास चली जाती। उसके मन में अपने भाई (पृथ्वीराज) की चिन्ता रहने लगी।

कवित्त

निसा एक माधव सु मास, ग्रीषम रिति आगम।
निसा जाम पच्छली, सुपन राजा लहि जागम॥
सेत चीर छौनी पवित्त, आभ्रंन अलंकिय।
मुंकत बंध त्राटक, बंध बेनी अध लंकिय॥
निज वारि धारि कज्जल नयन, हर हराइ सदह करिय।
मानिक्कराइ वंसह विषम, रक्खि रक्खि धरनी धरिय॥ ८ ॥

शब्दार्थः—माधव = चैत्र। जागम = अर्ध जागृत। सेत=श्वेत। छौनी=चोणी, पृथ्वी। पवित्त= पवित्र। अलंकिय = अलंकृत। मुंक्त = मुक्ता। बँध=गुंफित, जटित। बंध-बेनी=गूंथी हुई वेणी। अध-लंकिय = आई हुई कमर तक, कमर तक लटकती हुई। निज = अपने। सदह = शब्द। धरनी-धरिय = पृथ्वी को भूल गया है।

अर्थः चैत्र मास के अन्त में ग्रीष्म के आगमन का कुछ कुछ आभास होने लगा था। इन दिनों में एक रात्रि के पिछले प्रहर में कुछ निद्रित और कुछ जागृत अवस्था में राजा पृथ्वीराज ने स्वप्न में देखा कि उसकी पृथ्वी स्त्री रूप में सामने खड़ी है। जिसके श्वेत चीर ओढने को है और वह सभी प्रकार के आभूषणों से अलंकृत है मुक्ताओं से जटित ताटंक झूल रहे हैं, गूंथी हुई वेणी कमर तक लटक रही है। उसके नैत्रों में कज्जल की रेखा, लेकिन साथ ही उसमें अश्रु बूंदे भी झलकती हुई दिखाई देती थी। उस स्त्री रूपी पृथ्वी ने हर और हरा शब्द उच्चारण करते हुए कहा, "मानिकराय चहुवान के विषम वंश द्वारा रक्षा की हुई पृथ्वी को तू भूल गया है अनः रक्षा कर। नहीं तो अब मैं तुझ से विदा होती हूँ।"

साटक

का तू सुन्दरि हु धरा किम हिता, इच्छा परा वांछिता ।
की वांछा बर राज को वर रुची, दातव्य रूपा नवा ॥
न नं नं नृप जान दान रुचयं, रूपान विद्वत्तया ॥
खड्ग धार सु मार दुत्तर अरि, सो मैं वर सुन्दरं ॥ ९ ॥

शब्दार्थ:—का=कौन । हु=मै । किम-हिता=क्या हेतु क्या कारण । परा=दूसरे का । किं=क्या । दातव्य=दानी । रूपानिवा=रूपवान । न न नं=नहीं नहीं नहीं । विद्वत्तया=विद्वान । दुत्तर=दुस्तर, कठिन, विकट, भयानक । मैं=मेरा । वर-वर, स्वामी ।

अर्थ:—इस पर उससे पृथ्वीराज ने प्रश्न किया, सुन्दरी ! तू कौन है ? पृथ्वी हूं । तेरे आने का कारण ? मैं दूसरे की इच्छा करती हूँ । राजा ने कहा—यह तेरी क्या इच्छा है ? मुझ से श्रेष्ठ राजा कौन हो सकता है, जोकि श्रेष्ठ रुचि वान, दानी और रूपवान हो ।" पृथ्वी ने कहा—हे राजन नहीं ! नहीं !! नहीं !!! मैं—दानी, रुचिवान, रूपवान और विद्वान इन चारो की नहीं हो सकती । मेरा सुन्दर वर वही हैं जो खड्गधारा से भयानक शत्रुओं पर मार करता हो (अर्थात तू दानी, श्रेष्ठ रुचिवाला, रूपवान और विद्वान होते हुए भी विलासी हो जाने के कारण शक्तिहीन और आलसी हो गया है । अब शत्रुओं को परास्त करने की तुझ मे शक्ति नहीं रही, मैं विजयी वीर की ही संगिनी हूँ) ।

दोहा

इम वसुधा सुपनत दिय, रज गति रजन विसारि ॥
विलसत दिन ग्रीषम अरध, सुच पिय पग कुआरि ॥ १० ॥

शब्दार्थ:—सुपनत=स्वप्न मे । रजगति=राजसी गति, विलासी वृत्ति ।

अर्थ:—यद्यपि पृथ्वी ने उसके शासन के अन्त समय मे ऐसे स्वप्न द्वारा सचेत कर दिया, फिरभी राजा ने अपनी राजसी गति (विलासवृत्ति) को नहीं छोडा । वह ग्रीष्म के आधे दिवस बीत जाने पर भी विलास मे रत रहा और उस प्यारे नरेश को केवल पग कुमारी की ही सुधि रही । (अन्य सुध-बुध भूल गया) ।

कवित्त

तब सु साहि गज्जनै, दूत दिल्लीय पठाए ॥
जु कछू मनु कोमत, अन कहि कहि समझाए ॥

लै आवहु जंगल नरेस, विव्वरि सव सुद्धिय ॥
राज काज चहुआन, सकल सामंत सु वुद्धिय ॥
फुरमानु साहि सिर धरि लियौ, भेखु कियौ सोफी तिनह ॥
उभमैह पख्ख पथ्थह चलै, कग्गरु काइथ कर दिनह ॥११॥

शब्दार्थः—मनु=मत्रणा। कोमतु=कूमत्रणा, कूट मत्रणा। विव्वरि=व्यौरे वार। सुद्धिय=सुधि, खबर। मेखु=मेष। सोफी=सूफी। कग्गरु=कागज। काइथ=कायस्थ (धर्मायन)। दिनह=दिया।

अर्थः—ठीक उसी समय गजनी के बादशाह शहाबुद्दीन गौरी ने दिल्ली को दूत भेजे और श्रेष्ठ कूटमंत्रण उनको भली-भाँति समझा दी और कहा—जंगलेश्वर पृथ्वीराज की व्यौरेवार खबर खूब खोज कर ले आना। आजकल उस चाहुआन का राज-कार्य कैसे चल रहा है और उसके सामंतों की बुद्धि कैसी है? तब उन दूतों ने शाही फरमान को सिर पर चढ़ाया और सूफी (फकीर) वेष धारण कर दो पखवाड़ों (पक्ष) तक रास्ता तय कर दिल्ली जा उन्होंने शाही-पत्र कायस्थ (धर्मायन) के हाथ मे दे दिया।

गाथा

चर वर विवरित सुद्ध, लिद्धं चहुआन राजधानीय।
सह दूतः पथान, गोरीय जथ्थ जानामी ॥ १२ ॥

शब्दार्थः—विवरित सुद्ध=ठीक २ वृतान्त। लिद्ध=लिया, प्राप्त किया। सह=सब। पथान=रास्ता पकड़ा। जथ्थ=जिधर। जानामी=जाने को, या गये।

अर्थः—वे श्रेष्ठ दूत चाहुआन की राजधानी का ठीक ठीक वृत्तान्त पाकर सब गौरी शाह की ओर लौटे।

कवित्त

सु क्रम साहि वानैत, आइ गज्जन सपत्ते।
तिन कग्गर हथवार, आइ उत्त इत तत्ते ॥
सेत हुती रविवार, वार गुरु तेरसि तत्ते।
चढ्यौ साहि साहाव, जोव है गै सजि मत्ते ॥
जनि करैं ग्रब्ब गोरी सुपहु, जानि पुराणे सेन सह।
सूर सज्जयौ साहाव पुर, आयौ आतुर उप्परह ॥१३॥

शब्दार्थः—सुकम=वे (दूत) चल पड़े। साहि वानैत=धनुर्धारी बादशाह के पास। कग्गर=कागज। हथवार=हाथों हाथ। तत्ते=तेजी से, शीघ्रता पूर्वक। सेत=शुक्ल पक्षीय। दुती=द्वितिया। तेरसि=त्रयोदशी। तत्ते=उसी समय। पुराणे=पहले वाला। पहु=पद फटते, सुबह होते। उप्पारह=घोड़े भी साथ उठाता हुआ।

अर्थः—धनुर्धारी बादशाह के नाम (धर्मायन द्वारा) लिखा गया पत्र हाथ पड़ते ही वे दूत दिल्ली से गजनी की ओर बहुत तेजी से चल कर शुक्ल पक्ष की द्वितीया रविवार को आ पहुँचे और शाह को हाथों हाथ पत्र दिया। तब श्वेत पक्ष की त्रयोदशी गुरूवार को वीर सैनिक, घोड़े और मतवाले हाथी सजाकर शहाबुद्दीन ने चढ़ाई करदी। किन्तु गोरी ने यह जान कर गर्व प्रदर्शित (सैनिकों के सामने) नहीं किया कि यह पहले वाला शत्रु राजा और उसकी वही सेना है (जिससे मैं कई बार पराजित हुआ हूँ) जिससे कि मुझे लोहा लेना है। इस प्रकार उसने सेना की सजाई प्रात काल होते ही की और शीघ्रता के साथ घोड़ों को बढ़ाता हुआ दिल्ली की ओर चल पड़ा।

वढि अवाज ढिल्ली सहर, चढ्यौ साहि सुलितान।
घर अगन मगन रुरिग, सुनत सूर अकुलान ॥ १४ ॥

शब्दार्थः—वढि अवाज=कोलाहल मच गया। साहि=सपुहासर,सावधान होकर। अगन=आँगन। मगन=माँग करने के लिए (राज पुरोहित)। रुरिग=एकत्रित होगये।

अर्थः—सुलतान के सावधान होकर चढ़ाई करने पर दिल्ली मे कोलाहल मच गया। वहाँ के निवासियों ने सुना कि बहादुर सामतगण भी राजा के विलासी होने से और शत्रु के चढ आने से चिन्तित है, तब वे सब मिलकर राजा को सावधान करने के विषय की माँग करने के लिए राजपुरोहित गुरुराम के घर के आँगन मे एकत्रित होगये।

ग्रह बभन ग्रहवान नर, ग्रह छित्री छह व्रन्न।
सुणी वत्त नर नारि मुख, सह लग्गे सनसन्न ॥ १५ ॥

शब्दार्थः—ग्रह बभन=ब्राह्मण (गुरुराम) के घर। ग्रहवान=ग्रहस्थी। ग्रह=ग्रसित (या घर के) छहव्रन्न=छहों वर्णो के(चार वर्ण के अतिरिक्त म्लेच्छ और जैन भी अलग माने गये हों)। सह=चारों ओर, सब तरफ (सारे शहर में)। सनसन्न=सनसनी।

अर्थः—उस द्विज (गुरुराम) के घर पर दिल्ली का गृहस्थी-समुदाय, क्षत्रियों के घर के और छहो वर्णों के लोग एकत्रित हुए- यह बात सब स्त्री-पुरुषों के मुख से सुनी जाने लगी और सारे शहर मे सनसनी फैल गई।

कवित्त

सुनि अवाज सुलितान, खलक भज्जिय नद मंडल ॥
कर कुसाव भेहरा, दानअरु मान अखडल ॥
मिलि पवार पुंडीर, सहर लुट्यौ द्रव साइय ॥
हनि सोदागिरि वानि, वनिज उन्नति पट पाइय ॥
अग्यान लुपै अग्या न्रपति, सति संपति सभर धनी ॥
गुरराज काज अवसर अवसि, प्रज पुकार मडिय घनी ॥ १६ ॥

शब्दार्थः—अवाज=आवाज, चढाई का शोर गुल मज्जिय=भाग गये। नद मडल=नदी (सिंध) तट के। कुसाव=कुचाह, बुरी इच्छा या-कुशलता (प्रसन्नता) पूर्वक। दानअरु=दानव। द्रव=द्रव्य। साइय=ग्रहण किया, लिया। हनि=हननकर। वानि=आदत। पट-पाइय=पट गया, गिर गया। अवसि=आवश्यक। मडिय=की।

अर्थः—शाह के इस प्रकार चढाई करने की सुन कर सिंधु नदी के तट पर रहने वाले यत्र तत्र भाग गये और उस मार्ग मे रोक-थाम करने वाले भेहरा जाति के क्षत्रिय ने भी बुरी चाहना करके उस दानव स्वरूप शहाबुद्दीन को अखडरूप से मान लिया। इधर प्रधान मन्त्री प्रमार और पुडीरों ने भी घूँस खोरी आदि से द्रव्य लेकर नगर को लूटना शुरू कर दिया। उन्होंने सौदागरी की आदत ग्रहण कर यहाँ के व्यापारियों का हनन कर व्यापार को गिरा दिया है। राजाज्ञा ही संभरी नरेश की सत्य संपत्ति थी, वह अज्ञानता वश आज लुप्त होती जा रही है। हे गुरुराम! यह आवश्यक कार्य का अवसर है इसमे सहायता कीजिये। इस प्रकार प्रजा ने विशेष रूप से गुरुराम पुरोहित के पास पुकार की।

दोहा

तुम मम राजन राज हित, वित रक्खन चित ब्रम्म ॥
कान मंडि अरु रुदन सुनि, नृ धर रक्खन ध्रम्म ॥ १७ ॥

शब्दार्थः—राजन-राज=राज राजेश्वर । हित=हितु, हित चाहने वाला । कहन=कथन । सुनि=सुनो । श्रम्म=शर्म, लज्जा ।

अर्थः—हे गुरुराम ! आपके सदृश राजाओं के भी राजा (पृथ्वीराज) का अन्य कौन हित चाहने वाला हो सकता है। आपही चित्त रक्षक हो। आपका ही चित्त धर्म की ओर है, अत कान लगाकर हमारा कथन सुनिये, क्योंकि आप ही इस दिल्ली के भू भाग की लज्जा रखने वाले हैं।

कवित्त

मंद राज मालदे, दोष त्रिय तन असंखि भौ ॥
लौहानौ आजानबाह अजमेरि द्रुग्ग गौ ॥
पा वस रा–पट्टनी महीमहि सार निरत्तौ ॥
जर जोबन तन मद, तुंग तेजी रन रत्तौ ॥
दाहिम्म दोह बच्छै विषम, चरन बीर बेरी वहन ॥
घरु घालि भट्ट सूतौ घरह, सुबर विप्र तोही कहन ॥ १८ ॥

शब्दार्थः—मालदे=मल्लदेव (जयचन्द की उपाधि)। दोष–त्रिय=स्त्री दोष, उपपत्नि के वश में हुआ। असखि=शका रहित, निर्लज्ज। पा वस=मौका पाकर। रा–पट्टनी=पट्टन पति, भोला भीम। महीमहि=माहोमाही, आपस में। सार–निरत्तौ=लोहा लेने में लीन। जर–जोबन=यौवन रूपी (काम) ज्वर। तुंग=उत्तग काय। तेजी=तेजधारी। दोह=द्रोह, विद्रोह। बच्छै=चाहता। चरन=पैरों में। बेरी=बेड़ी। वहन=डालने से। घरु घालि=राजगृह में आपत्ति बसा। भट्ट=भट्ट, कवि चन्द। सूतौ=सो गया।

अर्थः—मन्द बुद्धि राजा मल्लदेव (मल्ल उपाधिधारी जयचद) स्त्री दोष (उपपत्नि) के कारण निर्लज्ज हो गया है तथा आजान बाहु लौहाना भी राज्य की बुरी दशा देख अजमेर रहने लग गया है। मौका पाकर पट्टन पति (भोला भीम) भी आपस मे लोहा लेने मे लीन है। इधर उत्तुंगकाय तेजधारी (पृथ्वीराज) जो युद्ध रत था उसका शरीर यौवन रूपी (काम) ज्वर से प्राय शिथिल है। दाहिमा वीर (चावडराय) भी उसके पैरों मे (पृथ्वीराज द्वारा) बेडी डाल देने से द्रोह की इच्छा करता है और राजगृह मे गृह नाशक आपत्ति बसा कर चद बरदाई भी अपने घर मे जाकर सो गया है। हे श्रेष्ठ विप्र ! इसीलिये आपको कहना है।

का कलहंतरि नारि, धारि अन्नी घर ममभे ।
रवि समान प्रथिराज, गिल्यौ गोरी जिमि सभै ।।
जिहि परिगह परिवारु, मारि मारत उप्पारिय ।
जिमि रावन मंडलिय, वलिय वन्दर हरि वारिय ।।
इच्छो जु विप्र पच्छै मरण, तौ अग्गै सांई कहौ ।
कर दरभ कमंडल छग्ग म्रग, वादरि द्रुग मारग गहौ ।। १६ ।।

शब्दार्थः—धारि=ग्रहण कर, अपहरण कर । अन्नी=आनी, लाया । गिल्यौ=ग्रस लिया । गोरी=सुन्दरी, संयोगिता । सभै=सांझ, अँधेरा हरि=भगवान, रामचन्द्र । वारिय=वार, समय । सांई=स्वामी, पृथ्वीराज । छग्ग=छाल, त्वचा । वादरि-द्रुग=दुर्गम बद्रिकाश्रम ।

अर्थः—कैसी कलह-प्रिया नारी (संयोगिता) को वरण कर घर में ले आया जिसके कारण सूर्य के समान पृथ्वीराज उस संध्या रूपी सुन्दरी द्वारा ग्रसित हो गया है । उसी के कारण सामंत और राजवशी वीर शत्रुओं को मारते हुए मारे जाकर इस तरह रण स्थल से उठाये गये जैसे रावण के योद्धाओं का समूह बलवान वानरों और स्वयं भगवान द्वारा नष्ट हुआ था । हे विप्र ! यदि आप बाद में भी मरना निश्चित मानते हैं तो स्वामी पृथ्वीराज के पास जाकर उसे युद्धार्थ सावधान होने के लिए कहिए । यदि ऐसा नहीं कर सकते हो तो हाथ में दर्भ, कमडल, और मृग त्वचा ग्रहण कर के बद्रिकाश्रम का मार्ग लीजिये । (अर्थात् आप के होते हुए ऐसा नहीं होना चाहिये) ।

राजहा क्रूरम्भ, हथ्थ लइ्ह्व बिय बधे ।।
चाहुआन सुरतान, क्रूर काबरि इन कधे ।।
देवराज अचलेस, गग टट्टह पट कुट्टिय ।।
जैतराउ हय गय भँडार साहन सह लुट्टिय ।।
गुज्जर गमार सस्त्रह वली, मत देव दुग्गन गनैं ।।
वर विप्र राज राजग गुर, कहै आज तो ही वनैं ।। २० ।।

शब्दार्थः—बिय-बध =दोनों हाथों में । क्रूर=क्रूर । काबरि=कायर । टट्टह=तट पर । पट=पट गये, धराशाई हो गये । कुट्टिय=कुटिएँ । साहन=ग्रहण करलिया, अधिकार में कर लिया । सस्त्रह-बली=शस्त्र बली । मत=मतवाला या — मंत्रणा । वनै=बनता ।

अर्थः—यादव और कूरम क्षत्रियों के तो दोनों हाथों में लड्डू हैं। इनके कूर कवों पर तो चाहे चाहुवान और चाहे सुलतान की ही क्यों न हो, कावडे (मिठाई की टोकरियाँ) रहेंगी। देवराज और अचलेस खींची की कुटियाँ तो गंगा तट पर बन ही गईं (वे कन्नौज युद्ध में काम आ गये) जैत्रराय प्रमार ने हाथी घोड़े और कोषादि में लूट मचा कर अपने अधिकार में कर लिया। हिन्दुओं में गुर्जरेश्वर शस्त्र-बली है किंतु वह गँवार है जो देव-दुर्गा को कुछ भी नहीं मानता (अर्थात् नास्तिक है)। इसीलिए हे श्रेष्ठ विप्र! राजाओं के राजा (पृथ्वीराज) के गुरु, आपको ही कहना पडता है।

धर बाहर पडवनि, बंध बंधे रुधि छुट्टिय।
धर बाहर बासनह, छलित बल दोष सु थट्टिय॥
धर बाहर जुरि जरासिंध, गुर गजा जुद्ध किय।
धर बाहर सुरपत्ति, अस्ति दद्धीच मंगि लिय॥
जिहि जियत धरणि धर अवर प्रभु, जननी जाइ जुव्वन हरिय।
बंभन सु कज्ज इह अज्ज तुम, प्रज पुक्कार मंडी करिय॥ २१॥

शब्दार्थः—धर-बाहर=धरा रक्षक। बंध-बंधे=भाई-भाई का। रुधि छुट्टिय=रुधिर छिडका, रुधिर बहाया। छलित बल=छले हुए बली को। थट्टिय=लगाया, ठहराया। गुर=भारी। गजा=गदा। सुरपत्ति=सुरपति, इन्द्र। धरणि धर=पृथ्वी के धारण कर्ता, राजा। अवर प्रभु=अन्य स्वामी हो। जाइ=जन्म देकर। जुव्वन हरिय=यौवन को नष्ट किया। बंभन=द्विज। अज्ज=आज। प्रज=प्रजा।

अर्थः—धरा रक्षक पांडवों ने भाई-भाई का रक्त बहाया। वामनावतार ने बली को दोषी ठहराकर पृथ्वी के तीन पैर (पावडे) किये। जरासंध ने जुटकर भारी गदा युद्ध किया और इन्द्र ने दधीचि से वज्रायुद्ध के लिये अस्थियों की याचना की। अत पृथ्वी को धारण करने वाले राजाओं के रहते हुए उस पृथ्वी का स्वामी दूसरा हो जाय तो ऐसे पुत्र को जन्म देकर उसकी माता ने व्यर्थ ही अपने यौवन को नष्ट किया। इसीलिये हे ब्रह्मदेव! आज तुम्हारा यह कार्य है कि राजा को सावधान करें। प्रजा आप से यही पुकार करती है।

दोहा

प्रज्ज सुकरि वर विप्र कज, सोस तिलक तन तुग।
[illegible]

शब्दार्थः—प्रज्ज=प्रजा। सुकरि=स्वीकरि, स्वीकृत किया। कज्ज=काज, कार्य।

अर्थः—प्रजा के इस कार्य को उस विप्र ने स्वीकार किया। उस विप्र के मस्तक पर तिलक था, उसकी उत्तंग काया पुष्प गंध से युक्त थी ऐसे उस विप्र के चारों ओर प्रजा इस प्रकार दिखाई देरही थी मानों कमलके चारों ओर रसमुग्ध भँवरे हों।

कवित्त

राजगुरू दरबार, जाय वर चंद सपत्तौ।
छत्र चौडोल रू जान, दिव्य आसन दीपत्तौ॥
हेम हीर मुद्रित उद्ग, किरनिय- जगमग्गिय।
तिमिर पाप कट्टन लिलाट, प्राची दिसि उग्गिय॥
प्रज मोर सोर पावस मना, सुगुर भट्ट चंदह सुनिय
भट्टनि जगाय जग्यौ पुरस, सु गुर पच्छ सद्दह दुनिय॥ २३॥

शब्दार्थः—चोडोल=पालकी। जान=यान (रथ)। हेम=हर्म्य, स्वर्ण। उदग=ऊर्ध्व अग, उत्तग शरीर। किरनिय=किरणें। सुगर=सुघड़। सद्दह-दुनिय = दुनिया (जनता) का शोरगुल।

अर्थः—राज गुरु राज सभा मे जाते हुए प्रथम कविचंद के घर पर गये। उस विप्र श्रेष्ट के छत्र, पालकी तथा यान साथ में थे और वह स्वयं दिव्य आसन पर देदिप्यमान था। उनका उत्तमाग शरीर स्वर्ण और हीरों के आभूषणों से अलकृत था, जिसके कारण किरणें जगमगा रही थी। पाप रूपी अंधेरे को नष्ट करने के लिये उसका विशाल भाल ऐसा था मानों प्राची दिशा प्रकाशमान हो रही हो और उस प्रावृट रूपी द्विज के साथ मयूर रूपी प्रजा थी, जिसका शोर-गुल सुघड कविचंद ने सुना तब वह जाग उठा और अपनी धर्मपत्नी को भी यह कह कर जगाया कि श्रेष्ट गुरु और उनके साथ मे जन समूह शोर-गुल करता हुआ चला आ रहा है।

चंद वदनि जगि चंद, चंद वदनी मुख चाह्यौ।
हे चन्द्राननि चंद, कत चंदहीं न सुहायौ॥
अमृत मित्त कल मित्त, नित्त वदि न इह वंदिय
छिन छिन घटि वढिवढै, राँह भय भवन सुज दिये॥
दुज पुज्जि अज्ज लज्ज न करि, राज गुरू आयौ वरा।
साखग नृप दीपह चरचि, सुवर विप्र मंडल थरा॥ २४॥

शब्दार्थः—जगि=जगाकर। चन्द=द्विज नामधारी चन्द्रमा। मित=परिमित, थोड़ा। कल=कला। वंदिन=नहीं वदा जाता। राह=राहु। सुज=गया, गजता। द्ज=द्विज। लज्जी=लाज। घरां=घर पर। सा खग=शाखा, पुष्प, पत्र।

अर्थः—चंद वरदाई ने अपनी धर्मपत्नी चन्द्रवदनी को जगाकर उस चन्द्रमुखी के मुख को साभिलाष देखा और बोला—हे चन्द्राननि! तेरे इस प्यारे चन्द को चंद्रमा (जिसे भी द्विज कहते हैं) की कीर्ति (गृह पर आये हुए इस द्विज की तुलना में) अच्छी नही लगती, क्योंकि उसमे अमृत और कला थोडी मात्रा मे है तथा वह हमेशा वन्दनीय नहीं है (अर्थात् शुक्ल पक्ष की द्वितिया को ही लोग उसे देखते है) और उसकी कला क्षण २ मे घटती बढती रहती है तथा मजता के द्वारा उसे राहु का भय भी है (अत द्विज नामधारी चन्द्रमा से इस द्विज मे यह विशेष गुण है कि इसकी अमृत वाणी और कला अपरिमित है। यह सदा ही वंदनीय है। इसकी मुख प्रभा प्रतिदिन बढ़ती ही रहती है। इसके घर मे शत्रु का भय भी नहीं है क्योंकि सभी इसके मित्र है)। उस द्विज (चन्द्रमा) से यह द्विज श्रेष्ठ है। इसलिए शंका रहित हो उसका पूजन करना चाहिये यह राज गुरु है और स्वत (बिना बुलाये) अपने घर पर आगया है। विप्र मडल मे यह श्रेष्ठ माना जाता है। अत इसे धूप, दीप, चन्दनादि से चर्चित करना चाहिये।

दोहा

आदरु चद अनद किय ग्रह आवत गुरुराज।
सम सुत त्रियनि सु चरन परि,सिर फेरिग सब साज।। २५ ।।

शब्दार्थ.—आदरु=आदर, सम्मान। अनद=हर्षित होकर। सम=सहित। सिर-फेरिग=सिर पर वारी, निछावर की। साज=सामग्री।

अथः—फिर चन्द ने हर्षित होकर अपने घर आये हुए गुरुराम पुरोहित का स्वागत किया तथा अपने परिवार (स्त्री, पुत्रादि) सहित चरणों मे वंदना कर सब प्रकार की श्रेष्ठ सामग्री उस पर न्यौछावर की।

हस्यौ चदु बरु विप्र सों, तुम जानहु वहु भंति।
जिहि कामिनि कलहौ कियो,सो जामिनि विलसंति ।। २६ ।।

शब्दार्थः—चद=कवि चन्द। बरु=वर, श्रेष्ठ। कलहौ=कलह, युद्ध। सो=वही, उसीके साथ।

अर्थः—गुरुराम के आने का कारण समझ और हँस कर चंद ने कहा— आप सब प्रकार से जानते हैं कि जिस सुन्दरी संयोगिता के कारण कलह (कन्नौज का युद्ध) हुआ उसी सुन्दरी के साथ राजा रात्रि भर विलास में लीन है।

समौ जानि गुरुराज रहि,कहि कहि कवि इह वत्त।
कहि वै किहि रूपनि रवनि, किमि राजन रस रत्त॥ २७॥

शब्दार्थः—समौ जानि=अवसर देख कर। रहि=ठहर कर, विचार कर। कवि=कवि। वै=वय,आयु। रवनि=रमणी।

अर्थः—समय जान (प्रसंग वश) गुरु राम ने कहा—हे कवि यह बात कहो कि वह कैसी रूपवान् है? और उसकी आयु कितनी है? जिसके कारण उसके रस में राजा इतना लीन होगया है।

जुव्वन ज्यौं तन मंडनौ, सिसु मंडन तन डोल।
वालप्पन सह विच्छुरण, तिहि चित चच्चल लोल॥ २८॥

शब्दार्थः—जुव्वन=यौवन, युवत्व। डोल=डोल गई, लोट गई; दूर हो गई। वालप्पन=बचपन, बाल चरित्र। बिच्छुरण=बिछुड़ गये। लोल=लोय, लोयन, नैत्र।

अर्थः—कवि कहने लगा—उसका शरीर युवत्व से मंडित है और शिशुत्व का मंडन करने वाली अँधेरे तुल्य अज्ञानता जिससे दूर हो गई है तथा बाल चरित्र उससे बिछुड़ गये हैं। उसके चित और नैत्रों में चपलता ने स्थान पा लिया है।

गाथा

ज जोई सजोई, जौइत सिद्ध जम्माई।
न जोई सजोई, गोइत सव्व जम्माई॥ २९॥

शब्दार्थः—जं=जिसने। जोई=देखा। जोइत=उस देखने वाले ने। सिद्ध=सफल। जम्माई=जन्म को। न जोई=नहीं देखा। गोइत=गया, खो दिया। सव्व=सब।

अर्थः—जिसने संयोगिता को देख लिया उसने अपने जन्म को सफल कर लिया। जिसने उसको नहीं देखा उसने अपने सारे जन्म को योंहीं गँवा दिया।

जीह उदधि मथ्थए, रतन चौदह उद्धारे।
सोइ रतन संजोग अग, अगह प्रति पारे॥

रूप रंभ गुन लच्छि, बचन अम्रत विख लज्जिय ।
परिमल सुरतरु अंग, संख ग्रीवा सुभ सज्जिय ॥
वदन चंद चचल तुरंग, गय सु गत्ति जुब्बन सुरा ।
धेनह सु धनतरि सील मनि, भोंह धनुष सज्यो नरा ॥ ३० ॥

शब्दार्थः—जीह=जिह्वा । उदधि=समुद्र । रतन = रत्न । पारे=सुशोभित हैं, पोषित होते हैं, शोभा पाते हैं । रंभ = रंभा । गुन = गुण । लच्छि = लक्ष्मी । विख = विष । लज्जि=लाज । परिमल = सौरभ । सुरतरु=कल्पवृक्ष । संख = शंख । वदन = वदन, मुख । चंचल = चपलता । तुरग = उच्चश्रवा । गय=हाथी (ऐरावत) । गत्ति = गति, चाल । जुब्बन = यौवन । धेनह = कामधेनु । सील = शील । मनि=मन और कौस्तुभ मणि । भौंह = भौंहे ।

अर्थः—कवि की जिह्वा रूपा समुद्र से मथन कर चौदह रत्न प्रकट किये, वे सब संयोगिता के शरीर पर इस प्रकार सुशोभित हैं— मानो उसका रूप हो रंभा, गुणों के कारण वह लक्ष्मी, उसके वचन अमृत, लज्जा विष, सौरभ कल्पतरु, ग्रीवा शंख, मुख चन्द्रमा, चपलता तुरग (उच्चश्रवा), गति हाथी (ऐरावत), यौवन सुरा, पवित्रता ही कामधेनु, शील ही धन्वन्तरि, मन ही कौस्तुभ मणि और भौंहें ही धनुष कहे गये हैं ।

मन्नि राजगुर राज रस, कवि वर वरणिय सत्ति ।
जस भावी नरु भुग्गवै, तस विधि अप्पै मत्ति ॥ ३२ ॥

शब्दार्थः—मन्नि=माना । राजगुर=गुरूराज । राज-रस=राजा के प्रेम का । सत्ति=सत्य । जस=जैसा । नरु=नर । भुग्गवै=भोगना पड़ता । तस=तैसी । अप्पै=देता । मत्ति=मति, बुद्धि ।

अर्थः— कवि ने राजा के प्रेम का सत्यता युक्त वर्णन किया, उसे गुरूराम ने भी सत्य माना । कवि ने कहा—जैसा भविष्य होता है वैसा मनुष्य को भोगना पड़ता है और विधाता भी उसे वैसी ही बुद्धि देता है ।

उभै उभै रसु उप्पयौ, मिले चंद गुरराज ।
कव वयनन अयननि मिलहि, नयन निरक्खहि राज ॥ ३३ ॥

शब्दार्थः—उभै-उभै=दोनों में । रसु=रस, प्रेम । उप्पयौ = उत्पन्न हुआ । वयनन = वार्तालाप । अयननि=अयन में, राज प्रासाद में ।

अर्थः—इस प्रकार चंद और गुरुराम के मिलने पर दोनों में प्रेम उमड़ पड़ा। कवि ने कहा—राज प्रासाद में राजा से मिलकर कब वार्तालाप कर सकेंगे और कब उसके दर्शन होंगे ?

कवित्त

एक रथ्थ आरुहिय, सरद दिनइंद मनोहर।
समह राज, दरबार, खलक उम्महिय सगोहर॥
कलस वंधि वधियन, सगुन सचारि विचारिय।
वढ़े किति वल्लिय विनोद, घटिय घट आउ निहारिय॥
उच्छह उछंग छंदह वयन गयन गज्जि गज्जिय जलह।
दरवार राज धुं धरि धरणि, सरण रक्खि दुग्गा वलह॥३४॥

शब्दार्थः—आरुहिय=आरूढ हुए। सरद=शरद। दिनइन्द=सूर्य। समह=सामने। दरबार=सभा भवन। खलक=जन समूह। उम्महिय=उमड़ पड़ा। सगोरह=गहरे (विशेष) रूप में। वधि=वंदना की। वधियन=वदीजन (कवि चद) ने। सगुन=शकुन। सचारि=होने पर। किति-वल्लिय=कीर्तिलता। विनोद=युद्ध क्रीड़ा। घट आउ=आयु अधिक नहीं। उच्छह=उच्च स्वर से। उछंग=उछृ खलता युक्त, निर्भय, निशक। गज्जि=प्रतिध्वनित हुआ। धुं=धू-धू-ध्वनि। धरि=हुई। दुग्गा-वलह=बलवती, दुर्गा।

अर्थः—तत्पश्चात कविचद और गुरुराम एक ही रथ पर आरूढ हुए। उस समय ऐसा दीख पड़ा मानों सुन्दर शरद और सूर्य (शरद और सूर्य में विरोध होता है क्योंकि शरद मे सूर्य प्रभा हीन होता है और प्रखर रूप मे सूर्य होने पर शरद की अमृत वर्षा बंद हो जाती है किन्तु शरदवत् कवि चंद की वाणी से अमृत वर्षा और सूर्यवत् गुरुराम का प्रखर तेज) साथ २ सुशोभित हों उसी समय राजा के सभा भवन के सामने जनसमूह उमड़ पड़ा। चलते समय कवि को किसी स्त्री के सिर पर जल का घड़ा दिखाई दिया, उसकी कवि ने वंदना को और शकुन पर विचार किया—जिससे जान पड़ा कि राजा और उसके साथियों की युद्ध क्रीड़ा के कारण कीर्ति-लता विस्तार पायेगी, किन्तु इस शकुन की घड़ी से यह भी निश्चय है कि आयु अब अधिक नहीं है। यह सोचकर कवि ने उछृङ्खलता युक्त (शका रहित) उच्च स्वर के साथ दुर्गा की स्तुति की और कहने लगा—हे बलवती दुर्गा। एक मात्र तू

ही शरण दात्री है। उसकी गभीर ध्वनि से आकाश, समुद्र, सभा भवन और पृथ्वी प्रतिध्वनित होगये।

दिखिव दइय दरबार, पग कुअरि वर-वारह।
नारि भेख नर वस्त्र, सस्त्र लकरी कर भारह॥
मार मार उच्चार, तार तरुना सुगन्ध रस।
तुरिय नथ्थि गज नथ्थि, नथ्थि रथ विरद वदि जस॥
वज्जहि विसाल रण तूरख, भवर भीर भामिनि भवन।
दिठि परत लरखर पय परत, नकरि जीव अग्गह गवन॥ ३५॥

शब्दार्थः—दइय = दई, ब्रह्म स्वरूपी (कवि चन्द और गुरुराम)। वर-वारइ=श्रेष्ठ बालायें, प्रतिहारिनियाँ। भेख=वेश। तार=तार देने वाली, ताड़ना देने वाली। नथ्थि=नहीं। भवर=भ्रमर, मधु मक्खी। भामिनि=संयोगिता। लरखर=लड़खड़ा जाते। पय=पग, पैर। गवन=गमन।

अर्थ—उन ब्रह्म स्वरूपी कवि और राजगुरु को सभा भवन के पास ही संयोगिता की श्रेष्ठ बालाएँ (प्रतिहारिनियाँ) दीख पड़ीं। वे स्त्रियां होते हुए भी वस्त्र तथा शस्त्रों से सजी हुई नर-वेष मे थीं और आई हुई भीड पर छडियों का प्रहार कर रही थी। अपनी रस सौरभ से ही तार देने वाली (ताडना देने वाली, पार करने वाली) स्त्रिया "मार-मार" शब्दोच्चारण करने लगी। उनके पास चढने को हाथी घोडे और रथ नहीं थे। न बन्दीजन ही उनके विरुद उच्चारण कर उत्साह दिला रहे थे। वे स्वयं ही उत्साही थीं। संयोगिता के राज महल के आस पास वे मधु-मक्खियों की भीड के समान थीं। वे विशाल रण तुरही बजा रही थीं जिन्हे देख कर भय के कारण पैर लडखडा जाते थे और आगे बढने को किसी का मन नहीं चाहता था।

खलक भग्गिगय सथ्थ, छडि चौडोल लोग गय।
लाल लहरि लक्करिय, छाह सिर विप्र भट्ट भय॥
विन आइस राइस प्रवेस, रजिय दर-द्रुग्गह।
किन अलच्छि लच्छिनह, विहनि इच्छा भइ म्रुग्गह॥
उम्माह ग्राह मिल्लिग पर्वार, खरि राह ठिल्लित ठिलिग।
दासी दिवग सम अच्छरिय, मिलित दरह दोउनि बुलिग॥ ३६॥

शब्दार्थः—चौंडोल=पालकी या रथ। लहरि=लहरा गई, छा गई। लक्करिय=लकड़ी, छड़ी। आइस-राइस=राजाज्ञा। रजिय=प्रसन्न होना, कृपा करना। दर-द्रुग्गह=द्वार स्थित दुर्गा। किन=किसीने। अलच्छि=नहीं देखा। लच्छिनह=देखा। विहनि=दोनों ने। सुग्गह=स्वर्ग तुल्य रानी इच्छनी के महल को। उम्माह=उमाहा, उत्साह। माह=ग्रहण कर। मिल्लिग-पत्ररि=प्रमारिनी के मिलने की, प्रमारिनी से पुकारने की। रवरि-राह=इच्छनी के रावले के रास्ते पर, इच्छनी के महल के रास्ते पर। ठिल्लत=ठिली हुई भीड़। ठिलिग=धकेलते हुए। दिवग=देवाङ्गना। मिलित-दरह=दर्शन मिलते ही, दर्शन पाते ही। दोउनि=दोनों को। बुलिग=बुलालिया।

अर्थः—साथ में आये हुए लोग जिस रथ में कवि चन्द और गुरुराम आरूढ थे, उसको छोड़ कर प्रतिहारनियों की मार से भाग गये और प्रतिहारनियों की वह लाल लाल छड़ियों की छाया गुरुराम और कविचन्द के सिर पर छा जाने से वे अदृष्य से हो गये। इस प्रकार विना राजाज्ञा के राजप्रासाद में प्रवेश होना कविचन्द ने द्वार स्थित देवी की कृपा का फल ही माना। उन्हें किसीने देखा और किसी ने नहीं देखा। ऐसी परिस्थिति में उन दोनों की इच्छा स्वर्ग तुल्य रानी प्रमारिनी (इच्छनी) के महल की ओर हुई। वे राज महल के रास्ते मे भीड को धकेलते हुए उत्साह पूर्वक प्रमारिनी के महल के पास जा पहुँचे। वहाँ पर देवाङ्गनाओं और अप्सराओं के तुल्य जो इच्छनी की दासियें थीं वे ड्योढी पर ही उपस्थित मिली, जिन्होंने दोनों के दर्शनों का लाभ लिया और उन्हें- अपने पास बुला लिया।

दोहा

इम जंपै कविराज गुर, कपिग पट्टन वार।
को गुदरेवि नरेस सों, दिसि गज्जनें पुकार॥ ३७॥

शब्दार्थः—जंपै=कहा। कपिग=कंपित होगये। पट्टन=प्रतना। वार=वाले। गुदरेवि=गुदरायें, निवेदन करें।

अर्थः—कवि चन्द ने गुरुराम से कहा कि गजनी की ओर से शोर-गुल (गोरी की चढाई का) सुनकर बड़ी-बड़ी प्रतनाओं के स्वामी भी कंपित होगये हैं। यह बात राजा पृथ्वीराज तक कौन निवेदन करे।

आदरु दर यन्नो कविहि, आइसु मंग्यो दासि।
यहा पयंपहु नृपति सों, कहौ चंद गुर भासि॥ ३८॥

शब्दार्थ:—आदरु=आदर, सम्मान। दर=द्वार, ड्योढ़ी। धन्नो=दिया, किया। आइसु=आदेश, आज्ञा। मग्गो=मांगी, चाही। पयपहु=निवेदन करना चाहते। सामि=प्रकट रूप में।

अर्थ:—तब दासी ने उन्हें ड्योढ़ी पर बिठाकर उनका स्वागत किया और आज्ञा चाही कि हे कवीश्वर और गुरुदेव! आप राजा से क्या निवेदन करना चाहते हैं। वह बात प्रकट रूप से हमें कहिये।

कग्गरु अप्पहि राज कर, मुख जपहि इह वत्त।
गौरी रत्तौ तुअ धरणि, तू गौरी रस रत्त॥ ३६॥

शब्दार्थ:—कग्गरु=कागज। अप्पहि=समर्पित करना, देना। गौरी=गौरी शाह, शहाबुद्दीन। रत्तौ=अनुरक्त। गोरी=सुन्दरी, संयोगिता। रत्त=लीन।

अर्थ:—यह सुनकर कविचंद और गुरुराम ने दासी से कहा—यह पत्र राजा को हाथों हाथ देना और मौखिक निवेदन करना कि आपकी पृथ्वी की इच्छा में गौरी (शहाबुद्दीन) अनुरक्त हो रहा है, इधर आप गौरी (संयोगिता) से अनुरक्त हो रहे हैं।

कवित्त

नथ्थिय कन्ह चहुआन, धीर पुण्डीर ण निड्डर।
नहिं सुमत कयमास, राय गोयद अखंडर॥
नहिं सुलोह लगरिय, अत्तताई सु भग-भर।
नहिं पज्जून पँवार, सलख लक्खन बघेल नर॥
भोहा न भूप बधव वरुण, सरन जाहि ढिल्ली नयर।
घर घयर राइ रावर समर, सक सहाव गोरी वयर॥ ४०॥

शब्दार्थ:—ण=नहीं। अखंडर=अखंड। सुलोह=श्रेष्ठ लोहा धारी। भग-भर=योद्धाओं का नाश कर्ता। बधव वरु=भाइयों में से श्रेष्ठ (नृसिंह)। घर-घयर=घर (दिल्ली) घेरने पर। सक-सहाव=सिक्काधारी शहाबुद्दीन। वयर=वैर, बदला।

अर्थ:—आप जिनके बल पर निर्भय थे वे वीर कन्ह चाहुवान, धीर पुण्डीर, निड्डुरराय, श्रेष्ठ मन्त्री कयमास, अखड योद्धा गोविन्दराय (गुहिलोत), श्रेष्ठ लोहा-धारी लगरीराय, शत्रु योद्धाओं का नाशकर्ता अत्ताताई, पज्जूनराय, सलखानो (सलख या नारेन) प्रमार, नर श्रेष्ठ लक्खन बघेला, भौहा भूप (चन्देला) और राजवशी नृसिंहादि

चाहुवानआन नहीं है। उनकी रक्षा में ही दिल्ली साम्राज्य स्थिर था। अब तो केवल रावल समर-विक्रम हैं। केवल वे ही शहाबुद्दीन द्वारा आपके घर (दिल्ली) को घेरने पर उससे बदला लेने योग्य है (वे यहां आए हुए हैं)।

दोहा

दासि सँपत्तिय तिहि महलु, जहं संजोगि नरयंद ।
सम्मुख सखी निरख्खयौ, मनो प्रथीपुर इंद ॥ ४१ ॥

शब्दार्थः—महलु=महल। निरख्खयौ=देखा। पृथीपुर=पृथ्वीवर। इन्द=इन्द्र।

अर्थः—तब दासी पत्र लेकर जहाँ सयोगिता और राजा थे, उस महल में जा पहुँची वहाँ इन्द्र तुल्य पृथ्वीराज को सामने बैठा हुआ देखा।

क्रम क्रम दासिय सचरिय, दरसि दिसा दरबार ।
पग चुक्कत उक्कत लिखिय, न्रप निय नयन निहार ॥ ४२ ॥

शब्दार्थः—क्रम-क्रम=चलकर । सचरिय=प्रवेश किया, पहुँची । दिसा=दशा । चुक्कत=चुकाकर । उक्कत=युक्ति । लिखिय=सोची । निय=निज, अपनी ओर ।

अर्थः—चलकर दासी वहाँ जा पहुँची और वहाँ राज सभा की आन्तरिक हालत देखी। उसने राजा का ध्यान अपनी ओर खींचने के लिए युक्ति सोचकर पैर को चुका कर गिरने जैसा स्वांग किया, जिससे राजा का ध्यान उसकी तरफ गया और समीप आई हुई दासी को उसने नैत्रों से देखा।

अन्य महल दासिय निरखि, परखि पयपन जोग ॥
उन्नित मुख रुख राज किय, न्रपति सपत्तौ लोग ॥ ४३ ॥

शब्दार्थः—अन्य महल=अन्य रानी (इच्छनी) की। निरखि=देखकर। परखि=सोच कर। पयपन-जोग=निवेदन करने जैसी इच्छा। उन्नित मुख=मुख उठाकर देखा। सपत्तौ-लोग=जनता एकत्रित हुई है।

अर्थः- अन्य रानी (इच्छनी) की दासी को देखकर कुछ निवेदन करने जैसी उसकी इच्छा देख राजा ने दासी की ओर रुख करके अपने मुख को उसकी ओर किया। तब दासी ने निवेदन किया कि हे नरेश्वर ! राजद्वार पर जनता एकत्रित हुई है।

इय कहि दासिय अप्पि कर, लिखि जु दियौ गुर चद ॥
पहिली ओली वचियौ, भुम्मी जाय नरयद ॥४४॥

शब्दार्थः—इय=यह । अप्पि=अर्पित किया, दिया । गुर=गुरुराम । ओली=अवली, पक्ति ।

अर्थः—फिर दासी ने यह कहते हुए पत्र राजा के हाथ मे दिया और कहा कि यह पत्र गुरुराम और कविचद ने लिख कर दिया है। तब राजा ने उसे हाथ मे लेकर पहली ही पक्ति पढी, जिसमे लिखा था-हे राजन ! अब आपकी पृथ्वी आपसे विदा होती हे ।

कवित्त

गज्जनैसु आयौ असभ, सह सेनु सकिल्लिय ।
दे चादरि आदर अनद, दिल्लिय दिसि मिल्लिय ॥
दस हजार वारुणि विसाल, दस लक्खि तुरगम ।
तह अनेक भर सुभर, मीर गभीर अभगम ॥
आवृत्त बत्त चहुआन सुनि, प्रान रक्खि प्रारम्भु करि ।
सामन्त नहीं सा मन्त करि, जनि बोरहि ढिल्ली सु धरि ॥ ४५ ॥

शब्दार्थः—असभ=असभव, अनुमान से परे । सकिल्लिय=सकेलि, एकत्रित कर । दे चादरि=बेगमों को चादर देकर (हिन्दुओं में सती होने के लिये स्त्री को नारियल दिया जाता है उसी प्रकार मुस्लिम स्त्री पति के साथ सहगमन करती हुई अपनी चादर "बुर्का" उतार देती है अत शाह ने अपनी बेगमों को सहगमन करने को चादर देकर विदा हुआ) । मिल्लिय = बढता हुआ आता दिखाई देता है । वारुणि=वारण, हाथी । लक्खि=लक्ष, लाख । आवृत्त-बत्त=समय के पलटा खाने जैसी बात । रक्खि= रक्षा । सा=वैसी । मत-करि = मन्त्रणा की जाय । जनि=मत । बोरहि = डुबोदे । धरि = धरा, भू भाग ।

अर्थः—पत्र को आगे पढा तो लिखा था - गजनेश्वर अपनी सारी सेना अनुमान से भी परे इकट्ठी करके चढ आया है। वह अपार हर्ष के साथ अपनी बेगम को आदर पूर्वक चादर देकर (मरने मारने को तैयार होकर) दिल्ली की ओर बढता आ रहा है। उसकी सेना मे दस सहस्र विशाल हाथी, दस लाख घोडे, अनेकों श्रेष्ठ योद्धा और गहरे अभग मीर हैं। हे चाहुवान ? यह पलटा खाने वाला विवरण सुनिये और प्राण रक्षा का उपाय प्रारभ कर दीजिये। अब वे सामन्त नहीं

हैं जिनसे सलाह की जाय (अब तुम्हारे पर ही भार है)। कहीं ऐसा न हो कि दिल्ली के भू भाग को आप डुबो दे।

दोहा

सुनि कग्गर फऱ्यो सु कर, वर रक्खै गुर भट्ट।
तरकि तोनु सज्यौ न्रपति, जनु वदल्यौ रस नट्ट ॥ ४६ ॥

शब्दार्थः—कग्गर=कागज। फऱ्यो=फाड़ दिया। गुर=गुरुराम, ब्राह्मण। भट्ट=वंदीजन, राव। तरकि=तड़क कर, जोश में आकर, क्रोध करके। तोनु=त्रोण, भाथा। वदल्यौ=पलटा हो, परिवर्तन किया हो।

अर्थः—कागज को पढ कर राजा ने यह कह कर फाड दिया कि ब्राह्मण और वंदीजन पृथ्वी की रक्षा क्या करेंगे? फिर क्रोध के आवेश मे आकर उस ने अपना तरकस कस लिया उस समय उसने एक नट की भाँति सहसा रस परिवर्तन कर लिया (शृङ्गार से वीर रस मे प्रवृत्त हो गया)।

प्रिय अप्रिय दिख्यौ वदन, किय जिय निर्भय साथ।
हूँ पुच्छौं वर वरह तुहि, कहिस मदौ रति नाथ ॥ ४७ ॥

शब्दार्थः—प्रिय=प्रिय, संयोगिता। अप्रिय=असुहावना, भयकर। हू=मैं। पुच्छौं=पूछती हू। वर-वरह=श्रेष्ठ स्वामी। कहिस=कहेंगे। मदौ-रति=मद से रति, मतवाले पन से प्रेम।

अर्थः—सयोगिता ने उस समय अपने प्यारे पृथ्वीराज के भयानक मुख को देखकर अपने जिय को निर्भय करके राजा से पूछा—हे श्रेष्ठ स्वामी मैं आपसे पूछती हू कि सहसा आप मे मतवालापन क्यों आगया। क्या आप इसका कारण मुझे कहेंगे?

अद्भुत इकु दिक्ख्यौ न्रपति, रयणि गलित विनु-प्रात।
सुरति एक सम्मुह-रही, सा सुपनंतर वात ॥ ४८ ॥

शब्दार्थः—इकु=एक। रयणि-गलित=रात्रि के ढल जाने पर। विनु-प्रात=प्रात काल होने से पूर्व। सुरति=स्मृति। सम्मुह-रही=सामने आगई। सा=उस।

अर्थः—मैंने रात्रि के ढल जाने और प्रात काल होने के पूर्व एक अद्भुत स्वप्न देखा, उस वात की स्मृति सामने आ गई है (अर्थात् गुरु राम और चंद का पत्र पढने से वह स्वप्न सत्य होता दीखाई पडता है)।

कवित्त

कहै पीय पोमिनिय, कंत धनु धर्यौ तोन बन ।
स कसु मार आरोह, सार संसार मरन गन ॥
दिन दिनियर निसि चंदु, रेणि दिन दिनयरु आनद ।
जंतु मंतु इह करनि, श्रवन लग्गिय समुझानहि ॥
अरधग धार अरधग हुअ अरि अरधंग अरग करि ।
जस हंस हंतु तस हंसनिय, सर सुक्कैं जिम पंक परि ॥४९॥

शब्दार्थः—पोमिनिय=कमलिनी सा। कसु=उसे कसा। मार=मार करते हुए। आरोह=चढ़ाई कर। सार=तत्व। मन=माना। दिनयर=सूर्य। चंदु=चंद्र। रेणि=रात्रि। दिनयरु=सूर्य स्वरूपी पृथ्वी-राज। जंतु=जाने वाले (स्वर्गारोहण करने वाले)। मंतु=मंत्रणा। करनि=वर्णन कर गये। अरधग धार=अर्धाङ्ग पर रहने वाली (तलवार भी बाईं ओर कसी जाती है वह भी वामाङ्ग में बसती है)। अरधंग-हुअ=आधे अंग (वामाङ्ग) पर स्थान पाया (कसी गई)। अरि-अरधग=शत्रुओं की अर्धा-ङ्गिनियों। अरंग=विलास रहित। हंतु=मारे जाने पर, नहीं रहने पर। पंक=पङ्कज। परि=मुरझा जाते।

अर्थः—वह कमलिनी तुल्य संयोगिता अपने प्यारे से कहने लगी—हे प्यारे आपने कंधे पर धनुष धारण किया और भाथे को कसा, यह सब करना आपका धन्य है। चढ़ाई करके शत्रुओं पर मार करते हुए मारा जाना ही संसार में वीरों ने (जीवन का) तत्व माना है। हे पृथ्वी के सूर्य (पृथ्वीराज)! रात्रि और दिन का होना निश्चित है उसी प्रकार चन्द्र और सूर्य का रात्रि और दिवस में आवागमन होता रहता है। यह अंतिम मंत्रणा स्वर्ग को जाने वाले प्राणी कानों में डाल कर समझा (बता) गये हैं। स्त्री के समान ही खड्ग आपके आधे अंग में (वामांग में) बसने वाली आज आपके अर्धाङ्ग में आ बसी है। अतः शत्रुओं की अर्धाङ्गिनियों को आप अवश्य विलास रहित कर देंगे। हम वीर बालाओं का भी यह कर्तव्य है कि जैसे हंस नहीं रहा तो हंसनी भी नहीं रहती और तालाब के सूखने पर कमल भी साथ ही मुरझा जाते हैं (वही हम भी कर बतायेंगी)।

दोहा

कहै राज सजोगि सौं, अद्भुत चरित सुणंत ।
निय पाइनि लग्गिय सु प्रिय, कहि कहि कत सुमंत ॥ ५० ॥

शब्दार्थः—संजोगि=सयोगिता। सुणंस=सुनेगी, सुनाता हूं। निय=नय, नमकर। सु-मंत=श्रेष्ट गति वाले।

अर्थः—तब राजा ने संयोगिता से कहा-मैं तुम्हें एक अद्भुत चरित्र सुनाता। यह सुन कर संयोगिता नमकर चरण छूती हुई कहने लगी-हे श्रेष्ठ मति वाले वह चरित्र कहिये।

कहै राज संजोगि सुनि, सुकथह कथ्थ अकथ्थ।
जुवन मंडि कनवज्जिणी, सा सुपनंतर अथ्थ॥ ५१॥

अर्थः—तब राजा कहने वगा-वह स्वप्न की अकथनीय श्रेष्ठ कथा कहता हूँ। जिसे हे कन्नोज़ेश्वर की कुमारी तू कान लगा कर सुन।

शब्दार्थः—सुणि=सुन। अकथ्थ=अकथनीय। मंडि=लगाकर। कनवज्जिणी=कन्नोजेश्वर की कुमारी। अथ्थ=अब, यहाँ पर।

कवित्त

सपनंतर सुंदरिय, रंभ लग्गिय परिरंभह।
तहँ तुअ त्रीय सुत्रीय, तेज अच्छरि रवि गिम्मह॥
तह तुम मिलि झगरौ गहकि करियर करि जंपहि।
तहं अदिष्ट आरिष्ठ, दुष्ट दानव तन चंपहि॥
रहं तू न हू न नन अच्छरिय, हर हर हर सुर उप्पज्यौ।
जानौ न देव दैवान मतु, कहन्निम्मानु कह निप्पज्यौ॥ ५२॥

शब्दार्थः—सपनतर=स्वप्न में। रंभ=रंभा। परिरंभह=परिरमन, आलिंगवन। तुअ=तूं। त्रीय-सुत्रीय=अन्य व्याहिता रानियें। गिम्मह=गमा दिया (हत तेज कर दिया)। गहकि=गर्जना। करि=की। जं=जैसे ही। पहि=पास। अदिष्ट=अदृश्य। आरिष्ट=अरीष्ट। हू नन=न में। सुर-उप्पज्यौ=देव प्रकट हुआ। मतु=मति, बुद्धि। कह निमानु=क्या होने वाला है। कह-निप्पज्यो=क्या हुआ।

अर्थः—स्वप्न में रंभा तुल्य सुन्दरी मुझ से आलिंगन करने लगी। उस समय तूं और अन्य रानियें भी साथ थी। उस अप्सरा ने सूर्य को निरु तेज कर दिया। वहीं पर तुम सब मिलकर झगड़ने लगी, पास ही एक हाथी गर्जना कर रहा था। अरिष्य प्रद एक अदृश्य दुष्ट दानव ने मेरे शरीर को दबा दिया। इसके उपरान्त

वहाँ न तो तू, न मैं और न अप्सरा ही दिखाई दी। उस समय शिव ! शिव !! शिव !!! सहसा एक देव प्रकट हो गया। इस स्वप्न के परिणाम को देवताओं के देव की बुद्धि भी नहीं जान सकती। इसका कारण और कार्य फल क्या होगा कुछ ज्ञात नही होता (स्वप्न के परिणाम स्वरूप-रभा रूपी सयोगिता द्वारा राजा का निस्तेज होना, रानियों मे परस्पर विरोध छाना, काल स्वरूपी हाथी का गर्जना, दानव स्वरूपी शहाबुद्दीन द्वारा राजा का दबाया जाना और अन्त मे पृथ्वीराज का देव स्वरूप प्राप्त कर स्वर्गारोहण करना—यही इस पद्य मे कवि द्वारा सकेत है)।

सुपनतर पुच्छनह, राजगुर कविगुर बुल्लिय ।
सो सुपनंतर सुनवि, ते न मुख तिन प्रति खुल्लिय ॥
सुबर हथ्थ दै मथ्थ, अभय पजरु पढ़ि धन्नौ ।
सहस कलस भरि खीरु,अरघु रवि ससि का क्यन्नौ ॥
दस बलि दिसानि दस महिप हनि, मत अनत ति दन्नु दिय ।
तिहि दिवस देव प्रथिराज दर, सझ सुभर भर महलु किय ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ.—सुपनतर=स्वप्न के आन्तरिक भेद । पुच्छनह=पूछन, जानने । राजगुर=पुरोहित गुरुराम । कविगुर=गुरु तुल्य कविचन्द । सो=उस । सुपनतर=स्वप्न की बात को । सुनवि=सुनकर । ते=उन्होंने । न=नहीं तिन प्रति=राजा रानी मे । खुल्लिय=खुलकर । सुबर=उस समय । हथ्थ दे मथ्थ=मस्तक पर हाथ रख (बढा) कर । अभय पजरु=शरीर रक्षा का मत्र । पढि धन्नौ=पढ दिया । खीरु=क्षीर । अरघु=अर्घ्य । क्यनौ=किया दिया । मत-अनत=अपार मति । ति=उसने । दन्नु=दान । दर=राज द्वार के समीप । सझ=शाम को । महलु=सभा ।

अर्थ:—स्वप्न-भेद को जानने के लिए राजगुरु और कविचद को राजा ने वहीं बुला लिया। उन्होंने भी इस स्वप्न को सुना तो उसका साधारण समाधान किया (यह स्वप्न भारी अरिष्टकारी था अत कवि और गुरू ने जानते हुए भी स्पष्ट नहीं कहा) और राजगुरू ने इस अरिष्ट से रक्षा करने के लिए राजा के सिर की ओर हाथ बढाकर अभय पजर (शरीर-रक्षा का) मत्र पढा। इसके उपरान्त एक सहस्त्र घडे क्षीर से भरवा सूर्य और चन्द्रमा को अर्घ्य दिया, और दसों दिशाओं को एक-एक महिप की बलि दी तथा उस अपार मति वाले राजा पृथ्वीराज ने बहुत सा दान किया। फिर उसी दिन साझ होने पर देव स्वरूपी पृथ्वीराज ने श्रेष्ठ बहादुर योद्धाओं को एकत्रित कर राज द्वार के पास ही सभा की।

दोहा

आवस्यक भावी विगति, कहा महिख वध होइ।
जौ जतननि टारी टरे, नल पडव सम कोइ॥ ५४॥

शब्दार्थः—भावी विगति=भविष्य की गति। महिख=महिष। वध=वध करना, वलि देना। जतननि=यत्न करने से। टारी टरे=टल जाती।

अर्थः—सभा मे उपस्थित व्यक्ति कहने लगे- महिप की वलि देने से क्या हो सकता है? जोभी होना है वह तो भविष्य की गति के अनुसार ही होकर रहेगा। यदि प्रयत्न करने से टल जाती तो नल और पाडव भी टाल सकते थे।

उठत राज मुह मुह द्रगनि, भर मंडी सन सन्न।
त्रिया रसन तृपतो नहीं, राज काज नहँ मन्न॥ ५५॥

शब्दार्थः—मुह मुह=एक दूसरे के सामने। द्रगनि=नेत्रों को। भर=भट, सामत। सन सन्न=चुपके २। त्रिया=स्त्री के। रसन=प्रेम मे। तृपतो=तृप्त। राज काज=राज्य कार्य में। नहँ=नहीं। मन्न=मन।

अर्थः—फिर सब परस्पर राजा की ओर आंखें उठाते हुए सामन्त चुपके चुपके कहने लगे—यह राजा स्त्री प्रेम से तृप्त नहीं हुआ है और इसका राज्य कार्य में मन नहीं लगता।

सम रस मण्डन समर ग्रह, समर सुरप्पुर भोग।
समर सु जित्तिय पग न्रप, तिहिं वल्लह संजोग॥ ५६॥

शब्दार्थः—सम=समान। रस=वीर रस। समर=रावल समर-विक्रम। समर=युद्ध। सुरप्पुर=स्वर्ग। जित्तिय=जीत लिया। वल्लह=वल्लभ। सजोग=सयोगिता।

अर्थः—देखो इस राजा (पृथ्वीराज) के समान ही रस (वीर रस) का मंडन करने वाला रावल समर-विक्रम सहायतार्थ यहां आया हुआ है जो युद्ध द्वारा स्वर्ग का उपभोग करना चाहता है। इधर जिस पृथ्वीराज ने युद्ध मे पगुराज को जीत लिया है, उसे एक मात्र संयोगिता ही प्रिय है।

अंग रक्खि सजोगि, नाम सुभना सुभ लच्छन।
रूव तेज अति तास, सकल कल ग्यान सुदच्छन॥

आई सु सभा महल्ल, दिष्पिय राजन द्रिग उच्चिनग।
गहर लज्ज कर जोरि, नम्मि निज नाथ सदुच्चिनग॥
जंप्यौ सुमगम संजोगि तुम आवन राज गिनानमिष।
सुनि सबर सब्ब वितुन चलिग गयो संजोगि गृह॥५७॥

शब्दार्थ:—अग रष्षि-अंग रक्षिका। रूप-रूप। तेज=कांति। नाम-जिसकी। कला कला। सुलच्छन=सुलक्षण। आई-आई। सभा महल्ल-सभा में। दिष्पि=देखकर। द्रिग उच्चिनग-आँखें (दृष्टि) उठाई। लज्ज=लज्जा। नम्मि=नमस्कार कर। सदुच्चिनग-वह दुखित होती हुई। जंप्यौ सुमगम=भला चाहते हो तो। आवन-आइये। गिनानमिष=क्षणभर के लिए। सुनि=सुनकर। वितुन=बैठने को। गयो=गया।

अर्थ:—इतने में संयोगिता की अंग रक्षक सखी, जिसका नाम सुमना था वह शुभ लक्षणों से युक्त थी जो उस अतिरूपवती एवं कान्ति वाली सुन्दरी को सब कलाओं का ज्ञान था, राज सभा में आई तब राजा ने उसकी ओर दृष्टि उठाई (देखा), वह दुखित होती हुई गहरी लज्जा के साथ राजा को नमस्कार कर श्रेष्ठ वाणी में कहने लगी- यदि आप रानी संयोगिता के शरीर (की रक्षा) को चाहते हैं तो कुछ क्षण के लिए सभा को स्थगित कर भीतर पधारिए। यह सुनते ही राजा सब सामंतों को वहीं बैठे रहने के लिए कह स्वयं संयोगिता के महल में चला गया।

दोहा

दिष्षिय राज संजोगि द्रिग, मन मलिन्न चल चित्त।
कहै राज पगानि किम, तू तन मनै अहित्त॥५८॥

शब्दार्थ:—पगानि=पंगुराज जयचन्द की पुत्री। तन मनै=तन मन में। अहित्त=प्रेम रहित, अप्रसन्न।

अर्थ:—संयोगिता को महल में जाकर राजा ने देखा तो उसका मन उदास और चित्त चंचल था। तब राजा ने कहा— हे पंगु-पुत्री! तन मन से अप्रसन्न क्यों है?

कहि संजोगिनि स्वामि तुम, सभा सु जंपिय वत्त।
सोइ कारण प्रभु भयौ, सु हौं पगि कहौं सत्त॥५९॥

शब्दार्थ:—पीइ=उसका। प्रभु=स्वामी, प्यारे। संभगे=सुनो। सु=वह। हौं=मैं। पगि=पंगु-पुत्री, संयोगिता। सत्त=सत्य।

अर्थ:—सयोगिता ने कहा—हे स्वामी! आप और सभा में उपस्थित लोगों ने जो बात कही वह मैंने सुनी (रावल समर-विक्रम के आने की बात को सूचित करते हुए सामन्तादि ने संभव है राजा को उलहाना दिया कि आपने रानी सयोगिता के वश मे होकर चित्तौड़पति, जो आपकी सहायता पर आये है उनका स्वागत भी नहीं किया। इसी से सयोगिता ने अपनी निन्दा समझी और उदास हुई) किन्तु हे प्यारे! अब उसका कारण सुनिये। मैं पंगुकुमारी आपको सत्य-सत्य कहती हूँ।

कवित्त

प्रथों कंत आगमह, कंत मोंकलि प्रधान दिय।
सु भर अन्न वस्तर सुगध, आदर अदब्ब किय॥
ननद दीउँ सिंगार, हार उत्तम दुति मुत्तिय।
विजै करत विजपाल, तात कै तात लिए निय॥
विसलेस प्रीति अतर णिमख, शवन राज आनन न दिय।
गुर मत्र तंत्र जिमि तरणि तिय, पिय पिऊष ज्यों रैंणि पिय॥ ६० ॥

शब्दार्थ:—प्रथों कंत=पृथाकुमारी के पति (रावल समर-विक्रम)। आगमह=आने पर। मोंकलि=भेज। सु-भर=पूर्ण रूप से। आदर=सम्मान। अदब्ब=शिष्टाचार। ननद=ननँद। दीऊ=दिया, पठाया। विजपाल=विजयपाल। तात कै तात=पिता के पिता। निय=निज, स्वयम् ने। विसलेस=विसलेश, विछोह। णिमख=निमेष मात्र। शवन=श्रवन, कानों तक। राज=आपके। आनन न दिय=पहुँचने नहीं दी। गुर=गुरू। तरणि=नौका। पिय पिऊष=पियूष पति, चन्द्रमा। रैंणि=रात्रि को। पिय=प्रिय।

अर्थ:—पृथा-कत (रावल समर विक्रम) के आने पर हे प्यारे! मैंने अगवानी के लिए प्रधान को भेज दिया और भोजन, वसन, सुगन्धित वस्तुएँ आदि पूर्ण रूप से भिजवादी तथा शिष्टाचार पूर्वक उनका सत्कार किया। मेरे पितामह विजयपाल (विजयचंद) ने जो विजय करके प्राप्त किए थे, उनमे द्युतिवान मुक्ताओं के उत्तम हार मेरी ननदिन (पृथा कुंवारी) के शृंगार के लिए भेज दिए। उनके आने की सूचना आपके कानों तक केवल इसलिए नहीं पहुँचने दी कि मैं निमेष

मात्र को भी आपके प्रेम मे जुदाई नहीं आने देना चाहती, क्योंकि स्त्री के लिए पति ही गुरु, तन्त्र-मन्त्र और ससार सागर से तारने को नौका के समान है। रात्रि को जैसे चन्द्रमा प्यारा है उसी प्रकार स्त्री को स्वाभाविक ही पति प्रिय है।

त्रिय जु पीउ उच्चरिय, त्रिग जु प्रिय विनु जिउ रक्खै।
अग्गि लोपि रव रवन, रवन विनु घट न परक्खै॥
पवन पथ हाहत, रहि न ग्राहत ग्रह तन्नै।
असु रक्खि तजि असु, हार सिंगार तिजन्नै॥
चरि चक्क चक्क वालह अगिनि, चरित मत सुज लोक चित।
अरधग अग सदेह नहिं, सुहौं मोहि पिय पग पित॥ ६१॥

शब्दार्थः—त्रिय=स्त्री (सयोगिता)। पीउ=पति, प्यारा। प्रिय=पति। जिउ-रक्खै=जीव की रक्षा करती, जीवित रहती। अग्गि=पूर्ववर्ती। रव-रवन=स्त्री पुरुष। रवन=पति। घट न परक्खै=शरीर की ओर नहीं देखती, शरीर की परवाह नहीं करती। पवन=श्वास। हाहत=साहता, पकड़ता। ग्राहत=रोकते हुए भी। तन्नै=शरीर। असु=अश। असु=असु, शरीर। तिजन्नै=तज देती, छोड़ देती। चरि=चल पड़ता। चक्क=पहि। अगिनि=अग्नि। चरित मत=चरित्रवान। सुज लोक=सुख लोक, सुर लोक। चित=समझता। सु हौं=वैसी ही हों। मोहि=मेरा। पग-पित=पगुराज (जयचन्द) पिता।

अर्थः—सयोगिता अपने प्यारे पृथ्वीराज से फिर कहने लगी हे प्यारे ? क्या वह स्त्री, स्त्री कहलाने योग्य है जो पति के न रहने पर अपने को जीवित रखती है और पूर्ववर्ती स्त्री पुरुषों की मर्यादा का लोप करती है। साध्वी स्त्री तो वही है जो अपने प्यारे के न रहने पर शरीर की परवाह नही करती, उसका श्वास रास्ता पकड लेता है (निकल जाता है)। वह शरीर द्वारा रोकने पर भी नहीं रुकता, अपने सतित्व के अश को रखती हुई वह शरीर का त्याग कर देती है। उसे हार-शृङ्गार आदि अच्छे नहीं लगते, उस समय उसके अग्नि (रथ) के पहिये चल पडते है। स्वर्ग-लोक मे वह चरित्रवान समझी जाती है। स्त्री के ऐसा करने मे कोई सन्देह नहीं क्योंकि वह पति का आधा अङ्ग है। वैसी ही मैं भी क्यों न होऊँ, हे प्यारे। जब कि मेरा पिता पगुराज जैसा है।

दोहा

हँसि आलिंगन अग दिय, जुरि लोयन पिय पीय ।
लय लावन्य समुंद रस, अमृत सुधा रस पीय ॥ ६२॥

शब्दार्थः—पिय-पीय=प्रिय प्रेयसी । समुंद=समुद्र । रस=जल । अमृत=अमर कर देने वाला । पीय=पिया, पान किया ।

अर्थः—सयोगिता के ऐसा कहने पर दोनों के नैत्र एक दूसरे से मिल गये और राजा ने प्रसन्न होकर शरीर से आलिंगन करते हुए सयोगिता के सौन्दर्य रूपी समुद्र का जलपान किया, मानों उसने अमर कर देने वाले सुधा रस का पान किया हो ?

त्रपति नयन वयनह त्रपति. त्रपति अलिंगन देह ।
रवन रवन्न विलास करि, फिरि दिय गठि अछेह ॥ ६३॥

शब्दार्थः—त्रपति=तृप्त । अलिगन=आलिङ्गन । रवन-रवन्न=दम्पति । अछेह=अपार, दृढ ।

अर्थः—नैत्रों से, वचनों से तथा विलास करते हुए आलिङ्गन द्वारा उन दम्पति की काया तृप्त होगई और उन्होंने प्रेम की दृढ गाठ देदी ।

अच्छे अन्छणि वच्छनी, सन्छनि सथ्थ सुहाग ।
दस रवनी दस घटक मिलि. जानि भवरि कुसुमॉग ॥ ६४॥

शब्दार्थः—अच्छणि=रानी इच्छनी । अच्छणि-वच्छनी=भला चाहने वाली । सच्छनि-सचित करने वाली, सह चरनि, भगिनी । रवनी=रमणियें, रानियें । घटिक=घड़ी । जानि=मानो । भवरि=भ्रमरियें । कुसुमॉग=पुष्प ।

अर्थः—भला चाहने वाली रानी इन्छनी और सयोगिता के सुहाग की सगिनी अन्य रानीयें भी चलकर जहॉ राजा था वहॉ आ गई और वे राजा की दसों रानियॉ (सयोगिता सहित) दस घडी तक राजा के पास इस प्रकार रही जैसे भ्रमरियें पुष्प के आस-पास रहती हैं ।

कवित्त

कुसुम पट्ट सिर पग्ग, कुसुम रस गध भवर सम ।
अव नसख्ख दोउ लख्ख, द्रव्य बहु मोह जोरि जम ॥
सुरत रत्त अतरह, रत्त तन विरत मोह मन ।
फुरत हथ्थ आतुरत, घुरत नीसान घुक धुन ॥

मन मुरत मोह सन्या रु रत, रूरत रोस सागत सथ।
त्रिप समर सीह राजन मिलन, निगम बोध भ्यटन सु तिथ॥६५॥

शब्दार्थः—कुसुम=कुसुमल, लाल। पट=वस्त्र, पोशाक। पग=पगड़ी। अत=आगे, उछाले। दोउ=दो। जोरि जम=उन्होंने एकत्रित किये। सुरत=सुरति सुख। अंतरह=अन्तर। रत तन=अरुण वर्ण शरीर। बिरत=विरक्त। फुरत हथ्थ=भुजाएँ फड़कने लगी। आतुरत=आतुर। धुक धुन=ध्वनि विस्तार करते हुए। सन्या-सु-रत--सेना में उसका प्रेम हो गया। रूरत=घुल गया, छा गया। समर-सीह=समर केशरी। राजन=राजा, पृथ्वीराज। भ्यटन=भेंट। तिथ=तीर्थ।

अर्थः— उसी समय राजा ने कुसुमल पोषाक और पगडी धारण की तब वह ऐसा मतवाला दीख पडा मानों मकरन्द की सुगन्ध से छका हुआ भ्रमर हो। उसी समय बिना किसी विचार किये दो लाख रुपये उछाले गये। द्रव्य से जिन्हे विशेष मोह था उन्होंने उन्हे लेकर एकत्रित किये। उस समय राजा के सु-रति सुख मे अन्तर दीख पडा। उसका अरुण वर्ण शरीर और मन मोह से विरक्त हो गया। उसकी भुजाएँ आतुरता पूर्वक युद्धार्थ फडकने लगी और ध्वनि विस्तार करते हुए नक्कारे बजने लगे। विलास की तरफ से राजा का मन मुडते ही सेना से प्रेम हो गया और वह उसी मे लीन हो गया तथा सामन्तों सहित उसमे क्रोध छा गया। राज प्रासाद से रवाना हो निगम बोध तीर्थ स्थान पर राजा पृथ्वीराज समर केशरी रावल से जाकर मिला।

दोहा

करिय मतौ मंडल महल, छंडि चावंड वर-बंद।
बगरि देव दरस्यो नृपति, सु मन मानि आनंद॥ ६६॥

शब्दार्थः—मतौ=मन्त्रणा। मंडल महल=सभा में उपस्थित समुदाय। छंडि=छोडो, मुक्त करो। वर बंद=श्रेष्ठ बंदी जन (कवि चंद)। बगरि देव=व्याघ्र देव, केशरी नरिंद, रावल समर-केशरी।

अर्थः—इसके बाद दोनों राजा सभा करके बैठे और सबने मन्त्रणा करके श्रेष्ठ बंदीजन चंद को कहा कि चावण्ड को कैद से मुक्त करो। पृथ्वीराज ने उस समय उस श्रेष्ठ व्याघ्र देव (केशरी-नरिंद, रावल समर-केशरी) को देखकर मन मे हर्ष मनाया।

आनन्दे भ्रत भर सुभर, दिनदु लभ्भ न्रप काज।
सु वर वंध वंध्यौ न्रपति, साहि गह्यौ जिहि साज ॥ ६७ ॥

शब्दार्थः—आनन्दे=प्रसन्न हुए। भ्रत=भृत्य, सेवक। दिनदु=दिनेन्दु, सूर्य। लभ्भ=प्राप्त कर, देखकर। सु=वही। वर=बल। वंध=बंधा, वृद्धि हुई। वध्यौ=बंधा, वृद्धि हुई।

अर्थ—राजा की सहायता के लिए आए हुए उस सूर्य स्वरूप रावल को देखकर पृथ्वीराज के सेवक और सामन्तगण प्रसन्न हो कहने लगे—हे चित्तोडेश्वर। आपके आने से पहले जैसे सजकर शाह को पकड़ा था। उसी प्रकार की बल वृद्धि हममे और हमारे राजा (पृथ्वीराज) मे हो गई है।

कुशलत्तन पुन्छिय न्रपति, हय गय भूमि भराण।
ता पन्छै सुति सुति सुपरि,सुख दु ख पुच्छि पराण ॥ ६८ ॥

शब्दार्थः-कुशलत्तन=कुशल। सुति-सुति-सुपरि=एक दूसरे के कानों में पटकी। पराण=पुराण, पुरातन, बीती हुई।

अर्थः—हाथी-घोडे पृथ्वी और सामान्तादि के विषय में भी कुशलता पूछी गई। उसके बाद एक दूसरे ने अपनी बीती हुई सुख दु ख की चर्चा की।

सा संखेपक उच्चरिय, विहुन विरदह तोल।
जग्य राज जयचंद ग्रह, पुन्छि करै तिहि मोल ॥ ६९ ॥

शब्दार्थः—सखेपक=सक्षेप में। विहुन=दोनों। विरदह=विरदाया। तोल=तुल्य, समान रूप में। जग्य राज=यज्ञकर्ता राजा। तिहि=उसका। मोल=मूल्य।

अर्थः—दोनों राजाओं को समान रूप से विरदाता हुआ कवि चंद बीती हुई बात को संक्षेप में इस प्रकार कहने लगा—कन्नोज युद्ध मे सामन्तादि ने वीरता प्रदर्शित की यदि उसका मूल्य कोई आँकना चाहे तो यज्ञकर्ता राजा जयचंद के घर जाकर पूछे।

कवित्त

मिले राज रावल नरयद, पूरण प्रेम भर।
अति अनंद मन चढ, गोह उन्छग देह वर॥
मिलिय सुभर उभ्भय नरिंद, पित नाम जाति तव।
कुसल वत्त पढि तत्त, हित्त आभित्त चित्त सव॥

बिट्ठै जु पंच सत्ताह घटिय, लै रावर समुह चढिग।
आए सु ग्रेह नद्दत नद, अति उच्छव सुच्छव वढिग ॥ ७० ॥

शब्दार्थ:—अनद=आनद, प्रसन्नता। गेह=नेह, स्नेह। उच्चग=उच्च। देहवार=श्रेष्ठ काय। उभय=दोनों। पढि=कही। अभित्त=अभीत, निर्भय। बिट्ठै=बैठे। नद्दत-नद=नगारों की ध्वनि के साथ। उच्छव=उत्सव। सुच्छव=श्रेष्ट शोभा। वढिग=बढ़ गया, छा गया।

अर्थ:—पूर्ण प्रेम के साथ पृथ्वीराज एव रावलजी के मिलने से चद को बडी प्रसन्नता हुई और ऊँचे प्रेम के साथ श्रेष्ठ काय दोनो राजाओं के सामत भी एक दूसरे से मिले जिनके पिता, नाम और जाति का परिचय कवि चन्द ने दिया। सभी ने परस्पर कुशल पूछी—और सभी के चित में हित और निर्भयता ने स्थान पाया। इस प्रकार वहाँ पाँच सात घडी तक सभा हुई, फिर रावलजी को साथ मे लेकर अपने अपने वाहनों पर सवार हो सब राजप्रासाद की ओर चले और नक्कारो की ध्वनि के साथ महल मे प्रवेश किया, जिससे नगर मे विशेष हर्ष छा गया।

दुविध अन्न पल त्रिविध साक पचम मधु सार।
जुग विधि गोरस गुनित, ईखु गति इक्क विचार॥
लवन तेल सा हिंग, अट्ठ दस भोजन भत्ता।
ता अनंत गति रचे, गनिक को गनै कवित्ता॥
सजोगि एक अन्नेक रचि, खट रस पटु विधि लहिग सुचि।
सारदा मत्ति समुझै भलै सुपहु अहारै अन्न रुचि ॥ ७१ ॥

शब्दार्थ:—दुविध=दो प्रकार। पल=मांस। सार=सार वस्तु (घृतादि)। गुनित=गिने गये। ईखु=ईख (गुड़-शर्करादि) कवित्त=पद्य मे। पटु=पृट। मत्ति=बुद्धि मे। समुझै=समझपाती, जानपाती। भलै=भलेही। सुपहु=राजा। अहारै=आहार किया। अन्न=भोजन।

अर्थ:—दो प्रकार के अन्न, तीन प्रकार का मांस, पाँच प्रकार की शाक, एक प्रकार का मधु, एक प्रकार का सार (घृतादि), दो प्रकार का गोरस, एक प्रकार का ईख (गुड-शक्कर आदि), एक प्रकार का लवण, एक प्रकार का तेल और एक प्रकार का हीग आदि द्वारा बना, इन कुल अठारह प्रकार के मुख्य खाद्य पदार्थों से अपार भोज्य वस्तुएँ बनाई गई उनको कौन गणितज्ञ गिनकर एक ही पद्य मे कह सकता है? चतुर सयोगिता की भोजनशाला मे एक एक वस्तु की अनेक-प्रकार से भोज्य रचना

की गई और उन पर पट रस का पुट उत्तम ढग से दिया गया। उन व्यजनों की जानकारी स्वय शारदा अपनी बुद्धि से भले ही कर सकती है और कोई नहीं कर सकता। राजाओं ने वहाँ रुचि के साथ ऐसे भोजन का आहार किया।

तास दिन सामंत, राज—सजोगि सँपन्नौ।
हय हथ्थी स्यगारि, हेम नग मुत्ति सु द्यन्नौ॥
प्रिथा कंत घर जाहु हमहि गोरी धर लग्गिय।
दीह सत्त अट्ठ मे, काइ सज्जिय का भग्गिय॥
सभरौ जाइ सभरि धरा, अरु सभरि ग्रब धारियौ।
सब्र जत रीति जम्मन मरण, समर राय विन्चारियौ॥७२॥

शब्दार्थः—तास = उसी। दिन = दिन। राज-सजोगि = सयोगिता का पति, पृथ्वीराज। सँपन्नौ = गया। स्यगारि = सिंगारे। हेम = स्वर्ण। मुत्ति = मोती। द्यन्नौ = दिये, भेट किये। प्रिथाकंत = पृथा कुमारी के पति, रावल समर-विक्रम। दीह = दिन। काइ सज्जिय = क्या बनेगा। का भग्गिय = क्या बिगडेगा। सभरौ-जाइ सभरि धरा = मैं (समरेश्वर) और मेरी भूमि नष्ट हो जाय। अरु = अड़ पड़ना। सभरि = पृथ्वीराज। सब्र-जत = सबके जनता (जन्मदाता)। जम्मन = जन्म।

अर्थः—फिर दिन मे रावलजी के समस्त सामन्तों सहित सयोगिता का पति (पृथ्वीराज) गया और उनकी विदाई के लिए हाथी-घोडे सिंगारे गये तथा स्वर्ण, नग, मुक्तादि भेंट किये गये। पश्चात रावलजी से पृथ्वीराज ने कहा—हे पृथा कंत (रावल-समर-विक्रम) आप अपने गृह को लौट जाइये। हमारे भू-भाग को दबाने के लिए शत्रु शहाबुद्दीन गोरी चढाई करके आ रहा है और इन सात आठ दिन में ही क्या बनने और बिगडने वाला है। चाहे मेरा नाश हो जाये मेरा भू-भाग चला जाय, किन्तु मुझ सभरी ने (पृथ्वीराज ने) तो अड़ पडना (युद्ध करना) ही निश्चय किया है। ईश्वर ने जन्म-मरण की रीति बनादी है। अत इसका अफसोस नहीं, किन्तु हे समर-विक्रम नरेश! मेरे कथन पर विचार करके आप लौट जाइये।

समुद विद्धि सभरिय, राज रजिय अट्ठ पति।
अत दान कालिंद थान, राजग पान गति॥
देस काल पातर पवित्र, सभरि सभारिय।
कीन दान संकलपि, सोम कन्या अवधारिय॥

मूरिख सुपग तौश्र गसौ, प्रान देह-दावन सु तन।
पिथिराज सव्व सामन्त सुनि, धुनि निसान मच्चौ सु दिन ॥ ७३ ॥

शब्दार्थः—सद्द-विद्दि=समुद्र की तरह। रजिग=प्राप्त न हुआ। आहुड़ पति=आहड़ों का स्वामी। पान=प्राप्त करने को। देस काल=समयानुसार। पातर=पात्र, योग्य। सभरि=सभलकर सावधान होकर। सभारिय=खोज लिया। सक्कलपि=संकल्प। सोम-स या वामधारिय=सोमेश्वर की कुमारी पृथा को वामांग में धारण करने वाला। मुरिख=मूर्ख। सुपग=मूपक। तौश्र=तोभी। गसौ=ग्रसा जाता। देह-दावन=शरीर जलाया जाता। धनि=ध्वनि। निसान=नक्कारों। मच्चो=हो जारही है। सुदिन=अच्छा दिन।

अर्थः— सभरी नरेश को समुद्र के समान ऊफान पर आया हुआ देखकर आहड़ों के स्वामी (रावल-समर-विक्रम) प्रसन्न हुए और यमुना तट पर उस नरेश्वर ने मुक्ति प्राप्ति के लिए अन्तिम दान देना निश्चित किया और सावधान होकर गति प्राप्ति के लिए समय के अनुसार योग्य पात्र का दान देने के लिए खोज लिया। इसके बाद सोमेश्वर की पुत्री को अर्द्धाङ्ग मे धारण करने वाले (रावल) ने दान का संकल्प किया और कहने लगे वे मूर्ख है जो शत्रु के समक्ष मूपा वनकर रहते हैं, फिर भी तो उनके प्राण यमराज द्वारा ग्रसे जाते है और शरीर जलाया जाता है। हे राजन पृथ्वीराज और सामन्त समुदाय ! सुनो, हम बहादुरों के लिए आज का दिन उत्तम है क्योंकि शत्रु द्वारा नक्कारा की ध्वनि की जारही है।

दोहा

धन गौरी मुक्यौ सु भन, सही न पुट्ठि अवाज।
मोहि चलतह चिंतवन, धर चित्रकौट सु लाज ॥ ७४ ॥

शब्दार्थः—धन=धन्य। मुक्यौ=छोड़ दिया। पुट्ठि=पीठ पर। मोहि-चलतह=मेरे लौट जाने पर। चिंतवन=विचार करो। लाज=लज्जित होती।

अर्थः—हे पृथ्वीराज ! तुझे धन्य है जो तूने गौरीशाह को पकड कर छोड दिया और तूने पीठ पर कभी शत्रु की आवाज नहीं सही। तू बहादुर होता हुआ भी कैसे भूल रहा है जो मुझे ऐसे समय मे लौट जाने को कह रहा है। यदि मैं ऐसे समय में लौट जाता हूँ तो मेरी चित्तौड-भूमि लज्जित होती है।

कवित्त

विभौ जाइ जौ ध्रम्म, क्रम्म जौ जाइ भजत हरि।
प्रान जाइ सम मान ग्यान जौ जाइ तत्त जुरि॥
भ्रत्य जाइ विन लज्ज, हेत सों जाइ कपट्टह।
चित्त जाइ पर नारि, नारि जौ जाइ लपट्टह॥
रसु जाहु जाहि अपजसु लगै, ब्रस जाय जौ जुद्ध मुख।
इमि समर-स्यघ रावलु चवै, इनहि जत लगै न दुख॥७५॥

शब्दार्थः—विभौ=वैभव। जौ-ध्रम्म=यदि धर्म रहे। क्रम्म-जो-जाइ=कार्य विनष्ट हो, कार्य में बाधा हो। सम-मान=समान के सहित। तत्त जुरि=तत्व में लग कर (तत्व की खोज में)। हेत=हितू, मित्र। कपट्टह=कपटी। चित्त-जाइ=चित्त नष्ट हो जाय। रसु=रस, विनोद। ब्रस जाय=वंश समाप्त हो जाय। समर-स्यघ=समर-केशरी। चवै=कहता। जत=जाने पर, नष्ट होने पर।

अर्थः—फिर समर-केशरी रावल कहने लगे—धर्म रहते हुए वैभव चला जाय, ईश्वर भजन करते हुए कार्य में बाधा हो, सम्मान के साथ प्राण चले जाय, तत्व की खोज में ज्ञान शक्ति खर्च हो जाय, निर्लज्ज सेवक चला जाय, कपटी मित्र का नाश हो जाय, पर स्त्री की ओर जाने वाला चित्त नष्ट हो जाय, लंपट स्त्री का नाश हो जाय, जिससे अपयश मिले ऐसा रस (विनोद) समाप्त हो जाय और युद्ध में भिड़ते हुए वंश की समाप्ति हो जाय तो दुःख नहीं मानना चाहिये।

चंदानौ आयास, भा स त्रिकुटी रुद्रानौ।
द्वै नैना द्विय सूर, क्वार अस्त्रणि नासानौ॥
जीह वरुण जल स्वाद, कर्न मडल वाया लय।
वाहु इन्द्र आसरै, ब्रह्म इद्री दासालय॥
सब देव विसन अग्या रमै, प्रान आन देतौ फिरै।
चित्रग राउ रावलु चवै, पाहुना भगौं भिरै॥७६॥

शब्दार्थः—चदानौ=चांदनी, चन्द्रिका। आयास=आकाश। भा=प्रभा, कांति। स=उसकी। द्विय=द्विज, चन्द्रमा। सूर=सूर्य। क्वार=कुमार। जल स्वाद=रसा स्वादन लेने वाली। वायालय=वायु मंडल। वाहु=बाहु। आसरै=सहारा। दासालय=दासियां। विसन=विष्णु। चवै=कहता है।

अर्थः—चन्द्र प्रभा ही जिसकी तन कांति है, रुद्र जिसकी भ्रकुटी है, चन्द्रमाँ और सूर्य जिनके नैत्र हैं, अश्विनी कुमार जिसके नासारन्ध्र हैं वरुण जिसकी रसास्वादन करने वाली जिह्वा है, वायु मंडल ही जिसके कर्ण हैं, इन्द्र ही सहारा देने वाली जिसकी भुजाएँ हैं, इन्द्रियां जिसकी दासियाँ हैं, प्राण जिसकी दुहाई का ढिंढोरा पीटने वाले हैं, ऐसे ब्रह्मस्वरूप विष्णु के अधीन ही संसार चक्र चलता रहता है अतः चिन्ता की कोई परवाह नहीं। इसलिए चित्तौडेश्वर रावल समर विक्रम कहने लगे कि हम मेहमानों का सौभाग्य है कि युद्ध का अवसर प्राप्त हुआ है।

(तुम) पाहूँना पर दीप, राज पर कैं का जुम्भौ।
चहुआना कुल पूज, राज दुज की वर पुज्जौ॥
तुम पुट्ठैं गिरि दुन्न, द्रुग्ग दारुण गभीरा।
गुज्जरवै मालवै हाम भजौ हम्मीरा॥
फल फूल पान अमर सुवर, मुकट वंध चामर सरस।
सामंत सूर जौ राज घर, इक्कस दिन मानहि वरस॥७७॥

शब्दार्थः—पाहूँना = मेहमान। पर दीप=दूसरे देश के। पर कैं का जुम्भौ दूसरे के लिये क्यों जूझते हो, प्राणों की बली देते हो। पूज=पूज्य। दुज=द्विज, बडे। की=कौन। पुज्जौ=पूजे जाय, पूजनीय। दुन्न=दुर्गम। द्रुग्ग=दुर्ग। गुज्जरवै=गुजरात के। मालवै=मालवे के। हाम=स्वामी। भजौ=नाश करने वाले। हम्मीरा=अमीर या हमगीर, साथ देने वाले। अमर=अमर, देवता। मुकट वंध चामर=मुकुट और चामर धारी। इक्क=एक। वरस=वर्ष।

अर्थः—पृथ्वीराज ने कहा—आप हमारे अतिथि (मेहमान) हैं। आप दूसरों के लिये अपने प्राणों की बलि देते हैं। आप हमारे जामाता हैं अतः चाहुवान वंश के लिये आप पूज्य हैं। आप से बडा दूसरा कौन राजा है जिसको हम पूज्य मानें। आपके अधिकार में दुर्गम सघन पहाडी भू भाग और विकट दुर्ग हैं। आप ही गुर्जर और मालवा धरा के स्वामियों के नाश करने वाले वीर नरेश्वर हैं। आपका देश विविध फल फूल और पानों से सम्पन्न है वहाँ श्रेष्ठ देवता निवास करते हैं एवं मुकुट तथा चामर धारी अच्छे वीर सामन्तगण आपकी सेवा में रहते हैं। इस समय आपका यहाँ एक दिन के लिये भी ठहरना हम वर्ष तुल्य मानते हैं।

मो मुंजानी ढाल, माल कमला रुद्रानी।
नागमुख्ख सिल्लार, ब्रह्म मोगहरसि भानी॥
सिंगि राइ अवधूत, जोग बंछौ जुद्धानी।
हौं आहुट्ठ मानेस, स्वामि कहि जौ सुग्तानी॥
सामत मत केते कहौ, के ते वर गोरी वहन।
हौ कलक राइ कप्पन विरद, महन रंभ चाहौं करण॥ ७८॥

शब्दार्थः—मो=हम। मुंजानी=मुंज वशज। ढाल=मढ़काने वाले, लुढकाने वाले, धराशायी करने वाले। माल—कमला=कमल माल, मुण्ड माला। नाग मुख=नाग मुखी, एक प्रकार का शस्त्र। सिल्लार=शैली, ऊन की बनी हुई माला। मोग रस=मोघ रस। सिंगि राइ=शृंगी रखने वाले राजा। अवधूत=महायोगी। जोग=योग। बंछो=चाहना। जुद्धानो=युद्ध द्वारा। के ते=कितनी ही। वहन=विचरण करे आवे। कलक राइ कप्पन=कलक नाशक। महन रंभ=महान आरंभ, महान युद्धारंभ करण=करना।

अर्थः—हम मुंज वशजों (मालव प्रदेश के राजाओं को) को धराशाई करने वाले हैं। महारे मस्तकों से रुद्र की मुंड माला सुशोभित है। नागमुखी और शैली ही हमारे चिन्ह है। ब्रह्म ध्यान और मोघ रस का ही हम पान करने वाले हैं। शृंगी रखने वाले हम अवधूत नरेश हैं। मैं युद्ध मार्ग से ही योग सिद्धि को पाना चाहता हूं। आहड़ों द्वारा मैं सम्मानित हूँ। मिल जुलकर सामन्तगण चाहे जितनी मत्रणा करते रहें और गोरी सेना चाहे जितनी सख्या मे सामने आ जाय, मेरा कलंक नाशक विरुद है। मैं युद्ध करके ही रहूंगा।

सुनि सु वत्त चहुआन, नयन सम सिंघ निरख्खिय।
भ्रिकुटि वक्र द्रिग रत्त, अरुन मुख बरन सु दख्खिय॥
अग तेज असहेज, ग्रीप्म मध्यान भान सम।
गहिय पाइ प्रथिराज, कहहु मोइ मत मन्न हम॥
जंपै सु स्यंघ चहुआन सम, हम अयान मत न लहै।
पुच्छौ सु मत सामंत सब, जिन वोला वर उग्गहै॥ ७९॥

शब्दार्थः—नयन-सम=नेत्रों के सामने, या-नेत्रों से। सिंघ=सिंह, केशरी (रावल-समर-केशरी)। निरख्खिय=देखा। दख्खिय=देखा। असहेज=असह्य। भान=भानु, सूर्य। पाइ=पाँय, पैर। मत=

मन्त्रणा। मन्न = माने। जपै = कहा। रुघ=सिंह (समर-केशरी)। राम=मे। अयान-मत = युद्ध के अतिरिक्त अन्य अयाने पन की मन्त्रणा। लहै=लेते, मानते। जिन-बोलां=जिनके कहने पर, जिनकी मन्त्रणा मे। धर = भू भाग। उग्गहै=उबरे, अपने से बच पाय, रह सके।

अर्थ:—रावल के इन श्रेष्ठ वचनो को पृथ्वीराज ने सुने उस समय रावल समर-केशरी को देखा तो उसकी भृकुटि वक्र थी, दृग और मुख का वर्ण अरुण था, शारीरिक तेज ग्रीष्म के मध्यान्ह के सूर्य के समान असह्य था। इस प्रकार उनकी आकृति देख कर पृथ्वीराज ने उनके पैर पकड लिये और कहा आप जो भी बात कहे उसे मैं मानने के लिए तैयार हू। तब रावल केशरी (समर-विक्रम) ने कहा—हे चाहुआन! हमारे पास सधि विषयक मन्त्रणा का अभाव है। जिनके कथन पर पृथ्वी रह सकने की सभावना है उन्हीं सब सामन्तों से सुमन्त्रणा लेनी चाहिये।

कहै राज प्रथिराज, सुनौ पति-चित्रकोट तुम।
तुम बड्डे बड्डाइ, सब्ब राजन्न देव सम॥
तुम जुगिंद जग जित्त, तुमह हम पुच्छि प्रीत गुन।
मति अथाह जुधि राह, दक्ख सब नीति मनि मन॥
तुम छत्त मत कुन उच्चरै, तुम उप्पर हम को हितुअ।
उच्चरौ एक बत्तीजु तुम, सो हम मन्नै मन्नि धुअ॥ ८०॥

शब्दार्थ:—बड्डे=बडे। बड्डाइ=प्रशसा। सब्ब राजन्न=सब राजाओं मे। जुगिंद=राजर्षि। जग-जित्त=ससार को जीत लिया। प्रीत-गुन=प्रेम समझ कर। जुधि राह=युद्ध के रास्ते में। दक्ख=दक्ष। मनि=मानता। तुम छत्त=तुम्हारे होते हुए। मत=मन्त्रणा। कुन=कौन। तुम उप्पर=तुम्हारे से बढ कर, आपके अतिरिक्त। हम=हमारा। को=कौन। हितुअ=मित्र, हित चाहने वाला। बत्ति=बात। मन्नै = माने। मन्नि = मन मे। धुअ = ध्रुव, निश्चय।

अर्थ:—तब पृथ्वीराज कहने लगा— हे चित्रकोट पति! सुनिए, आप मुझ से आयु मे भी बडे हैं और आपकी प्रशसा भी बडी है। सब राजाओं मे आप देव तुल्य हैं। हे राजर्षि! आपने ससार को जीत लिया है। इसीलिए प्रेम के कारण मैंने आपसे मन्त्रणा पूछी। युद्ध के रास्ते मे आपकी अथाह मति है और सब प्रकार से नीति मे मेरा मन आपको चतुर मानता है। आपके होते हुए और कौन मन्त्रणा दे सकता है? आपके अतिरिक्त हमारा हित चाहने वाला और कौन

हो सकता है ? आप जो भी एक बात निश्चय करके कहेंगे उसे हम ध्रुव के समान मानने को तैयार है ।

दोहा

स्यघ कहै प्रथिराज सुनि, एक मत्त वर सत्त ।
दाहिम्मौ छडौ नृपति, एह मत्त भुभरत्त ॥ ८१ ॥

शब्दार्थ.—स्यघ=समर केशरी । मत्त=मंत्रणा । सत=सच्ची । छडौ=छोड़दो । एह=यह भुभ-रत=युद्ध-रत ।

अर्थः—तब समर केशरी रावल कहने लगे—सुनो पृथ्वीराज ! मैं तुमको एक श्रेष्ठ और सच्ची मत्रणा देता हू। मुझ युद्धरत की यही मत्रणा है कि सबसे पहले तुम दाहिमा (चावडराय) को कैद से मुक्त कर दो ।

कवित्त

महन रभ आरभ, राज रावल रा–हिंदू ।
सत्त मत्त वर वैठि, जवन जोगिन ग्रह जिंदू ॥
चाहुआन कूरभ, गौर गाजी वड़गुज्जर ।
जद्दौ रा रघुवस, पार पुंडीरति पल्लवर ॥
रट्ठोर पवार मुरस्थलिय, ब्रह्म चालुक जगल भरा ।
चामड राउ कढ्ढौ नृपति, जो किवारु सभरि धरा ॥ ८२ ॥

शब्दार्थः—महन रभ-आरम=महान युद्धारम । रा-हिन्दू=हिन्दू-राज, पृथ्वीराज । सत्त-मत्त=सच्ची-मन्त्रणा देने वाले । जवन=जीवन । जोगिन ग्रह=दिल्ली के । जिंदू=जिन्दा दिल । कूरभ=कछवाहे । जद्दौ=यादव । रट्ठोर=राष्ट्रवर । पवार=प्रमर । मुरस्थलिय=मरुदेशीय । ब्रह्म-चालुक=ब्रह्म क्षत्रिय चलुक्य । जगल भरा=जगल देशीय सामत । कढ्ढौ=बधन मुक्त करिये । किवारु=कपाट । सभरि-धरा=सभरेश्वर के भूभाग का ।

अर्थः—महान युद्ध मत्रणा की गई उस सभा मे रावल जी और हिन्दूराज (पृथ्वी-राज) सुशोभित थे । उनके सामने सच्ची मत्रणा देने वाले योगिनीपुर के जीवन स्वरूप जिंदा दिल क्षत्रिय–चाहुआन कूरभ (कछवाहे), गौड़, बडगुज्जर, यादव, रघुवशी, पुंडीर, राष्ट्रवर, मरुदेशीय प्रमार, ब्रह्म क्षत्रिय चालुक्य और जगल देशीय सामंत आदि श्रेष्ठ वीर जो अश्वारोहियों को गिराने वाले हैं सब वैठे हुए थे । उस

समय रावलजी ने पृथ्वीराज को उपरोक्त मत्रणा दी कि चामडराय को बधन मुक्त कर दीजिये, क्योंकि वह आपके भू-भाग की रक्षा के लिए दृढ कपाट स्वरूप है।

दोहा

छडन कहि चामडरा, जुग जोगिंद सुदेस।
धर रक्खन जो तोहि नृप, करि सामत नरेस ॥ ८३ ॥

शब्दार्थः—छडन=छोड़ने को। जुग=जग, ससार। जोगिंद=राजर्षि। सुदेस=अच्छे देश वाला। करि=कहा जैसा कर। सामत-नरेस=सामत-राजा, पृथ्वीराज।

अर्थः—ससार मे श्रेष्ठ देश के राजर्षि रावल ने सामन्त राजा पृथ्वीराज से चामंड राय को मुक्त करने की कहते हुए कहा, तुम्हे अपनी पृथ्वी की रक्षा करनी है तो मेरे कहने के अनुसार करो (अर्थात् चामंडराय को मुक्त करदो)।

खगी पाघ सुरग जग, सामता सति भाउ।
जुद्ध निबंध्यौ साहि सौ, (तौ)छडौ चामॅड राउ ॥ ८४ ॥

शब्दार्थः—खगी-पाघ=टेढी पगडी। सुरग=सुरगा, रगीला। सति-भाउ=सच्ची भावना रखने वाला। निबध्यौ=निश्चय किया। साहि=शाह।

अर्थः—जो टेढी पगडी बाधने वाला है और ससार मे जो रगिला वीर है, सामतों मे जो सच्ची भावना रखने वाला है। यदि तुम बादशाह से युद्ध करना निश्चय हो चाहते हो तो ऐसे वीर चामण्डराय को शीघ्र ही बधन मुक्त करदो।

जिहि जित्ते तुव खल सबल, छत्र तेज दुति अग।
तिहि छडौ चहुआन न्रिप, जौ मन जित्तन जग ॥ ८५ ॥

शब्दार्थः—जित्ते=विजय। खल=शत्रु। सबल=सबल। जित्तन=जीतना हो।

अर्थः—जिसने तुम्हारे सबल शत्रुओं पर विजय की है और जिसके शरीर की काति ही तुम्हारे छत्र का प्रताप है। ऐसे वीर को हे चाहुवान राजा! जो युद्ध मे विजय प्राप्त करने की इच्छा रखते हो तो मुक्त कर दो।

जिहि हत्थनि खग दान तुव, तुव वर लज्जा जाहि।
जिहि वदै तुव दीन मुख, राजन छडो ताहि ॥ ८६ ॥

शब्दार्थः—हथ्थनि=हाथों में। खग=खड्ग। दुव=दोनों। दुव दीन=दोनों दीन, हिन्दू-मुसलमान। भुव=पृथ्वी के।

अर्थः—जिसके हाथ में तलवार और दान करने की ये दोनों शक्तियाँ हैं, जो तुम्हारी पृथ्वी का लज्जा स्वरूप है और जिसे दोनों दीन (हिन्दु-मुसलमान) वन्दना करते हैं। ऐसे वीर को हे राजन! छोड़ दीजिये।

जिहि विरत्त माया मनह, जुद्ध बुद्ध बलवीर।
अपु अगज अनि गजवनु, समर अमर सम श्रीर॥ ८७॥

शब्दार्थः—विरत्त=विरक्त। मनह=मन। जुद्ध बुद्ध=युद्ध में मति, या—रण दक्ष। बलवीर=बलराम। अपु=आप, स्वयम। अगज=नहीं दबने वाला। अनि=अन्यको। गजवनु=दबाने वाला। अमर=देवता। श्रीर=शरीर।

अर्थः—माया से जिसका मन विरक्त है जिसकी मति युद्ध मे बलराम के समान है, जो स्वय किसी से दबने वाला नहीं होकर अन्य को दबा देने वाला है और जिसका शरीर युद्ध मे देवता के समान दीख पडता है (ऐसा वीर चावडराय है)।

कवित्त

वभन वाहौ वह्यौ, ठेलि ठट्टा परजारिय।
जिहि मुगल मैवात, मारि मोहिल उज्जारिय॥
जिहि केहरि कट्ठेरि, तारि कढ्यो तत्तारिय।
जिह रार्यो रघुवंस, आइ समरि संभारिय॥
इन्द्र पथ्थ सुपथह कारणें, वाहर वीर विचारियें।
इहिवेर वेरि कड्ढन न्रपति, राजन पौरि पधारियें॥८८॥

शब्दार्थः—वभन=ब्रह्म क्षत्रिय चालुक्य। वाहो=वास, निवास स्थान। वह्यौ=चला दिया, विचलित कर दिया। ठेलि=धकेलकर। परजारिय=प्रजाल दिया, जला दिया। उज्जारिय=उजाड़ दिया। कट्ठेरि=कठ्ठी। तारि=ताड़ना देकर। समरि=समरेश्वर। संभारिय=समालता रहा, सावधान करता रहा। इन्द्रपथ्थ=इन्द्रप्रस्थ, (दिल्ली)। सुपथह=सन्मार्ग। कारणें=के लिए। वाहर=वाहरू, सहायक, रक्षक। इहिवेर=इसी समय। वेरि-कड्ढन=पैर से बेड़ी निकालने को। पौरि=द्वार। पधारियें=जाइये।

अर्थः—जिसने ब्रह्म-क्षत्रिय चालुक्यों के वास स्थानों (निवासियों) को विचलित कर दिया, ठट्टा प्रदेश को धकेल कर जिसने जला दिया, मुगल की मेवात भूमि को और मोहिलो को मारकर जिसने उजाड दिया, केहरि कट्टी और तत्तार को ताडना देकर जिसने निकाल दिया और रघुवशराय सहित आकर तुम सभरी को जो सावधान करता रहा, ऐसा वीर चामडराय जो इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) के एव सद्मार्ग के लिए रक्षक स्वरूप है। उसकी बेडी पैर से निकालने के लिए हे नरेश्वर ! स्वय आप उसके द्वार पर जाइये।

दोहा

इक सुरतान अवाज सुनि, बिय राजन ग्रह आइ।
द्वै आनद बधाइयाँ, ह्वै घर चामडराइ ॥ ८६ ॥

शब्दार्थः—अवाज=आवाज, सूचना। बिय=दूसरी। द्वै=दो। आनद=हर्ष। बधाइयाँ=बधाई। ह्वै=होने लगे, मनाये जाने लगे।

अर्थः—एक तो बादशाह के चढकर आने की और दूसरी स्वय राजा के अपने घर पर आने की सूचना मिलने से चामण्डराय के घर पर दो-दो हर्ष मनाये जाने लगे।

सीला सेगरि मात तिहिं, तैहनौ खीरू पियाइ।
स्यघिनि स्यघह जाइयौ, दगे दाहरराइ ॥ ६० ॥

शब्दार्थः—सीला=शीला नाम विशेष। सेंगरि=सेंगर जाति की। तैहनो=उसने। खीरु=क्षीर। पियाइ=पीकर। स्यघिनि=सिंहनी। स्यघह-जाइयौ=सिंह को जन्म दिया। दगे=युद्धार्थ।

अर्थः—जिस चामण्डराय की माता का नाम शीला है जो सेगर जाति की क्षत्राणी है, उस सिंहनी ने क्षीर पीकर दाहरराय के सयोग से चावण्डराय जैसे सिंह को युद्धार्थ जन्म दिया (धन्य है उस वीर माता को)।

तब विचारु न्रप सकुचिय, पठए मत्र तिहि ठाइ।
आपु राज फुरमान दिय, कढ्ढौ लोह सु पाइ ॥ ६१ ॥

शब्दार्थः—पठए=भेजे। ठाइ=स्थान। फुरमान=आदेश। कढ्ढौ लोह=लोह बेडी निकाल दो। सु पाइ=उसके पैर से।

अर्थः—चामण्ड राव के द्वार पर जाकर पृथ्वीराज ने उसके समक्ष जाने में विचार करते हुए सकोच किया और जहाँ चामण्डराय था वहाँ अपने साथ के सभी साथियों (सामन्तादि) को भेजा।

गये चद सामत तह, जह चामॅड वर वीर।
दिख्यौ देव समान तह, सूर सत्त रण धीर ॥ ६२ ॥

शब्दार्थः— दिख्यौ=देखा। देव समान=देव तुल्य। सूर=शूरवीर। सत्त=सच्चै। धीर=धैर्य रखने वाले।

अर्थः—तब जहाँ श्रेष्ठ वीर चामडराय था वहाँ कविचद और सामन्त गण पहुँचे। वहाँ उन्होंने युद्ध मे धैर्य रखने वाले सच्चे वीर को देव तुल्य देखा।

ग सम रा-जस राज के, राज काज तुम जानि।
लाज उरै धरि रक्खना, कहि सजोगि पॅगानि ॥ ६३ ॥

शब्दार्थः—ग-जस=राजा का यश स्वरूपी। राज कै=राज्य के। उरै=हृदय। धरि=पृथ्वी। सजोगि पँगानि=पगु पुत्री सयोगिता।

अर्थः—इतने मे संयोगिता ने कहलाया, हे वीर! राजा और राज्य के यश रूपी तुम्ही हो और राज काज को भी तुम्ही जानने वाले हो। इस पृथ्वी की (दिल्लीश्वर के भू भाग की) लज्जा तुम्ही को है।

जाहु सवै सामत हौ, कहौ राज प्रथिराज।
ता दिन मुक्यौ लोह पग, अब मो सौं कुन काज ॥ ६४ ॥

शब्दार्थः—सामत हौ=बहादुर हो। ता=उस। मुक्यौ=डाला। लोह पग-पैर में बेड़ी। मो सौं=मुझ से। कुन=कौनसा, क्या। काज=कार्य।

अर्थः—चावण्ड राय ने सामतों से कहा- आप सब बहादुर हो। यहां से आप जाइये और राजा पृथ्वीराज से कहिये कि जिस दिन मेरे पैरों मे लोहा पहनाया उसी दिन से आपको मुझसे क्या काम रहा? (यदि मेरे से काम होता तो मेरे साथ आप ऐसा व्यवहार नहीं करते)।

लज राजन निज्जीक घन, अप्पा नैन दुराइ।
सामता वर हुकम करि, कड्डौ लोहनि पाइ ॥ ६५ ॥

शब्दार्थः—लज=लजाता । निड्डीक-घन=नजदीक आकर भी, द्वार पर आकर भी । अप्पा=अपने । दुराइ=दुराता है । लोहनि=लोहे से बनी हुई, बेडी ।

अर्थः—और कहने लगा- अब राजा मेरे बहुत समीप (घर के द्वार पर) होते हुए भी मुझसे अपने नैत्रों को दुराता है और सामतों को मेरे पैरों से बेडी निकालने को कहता है। इतना विचार तो पहले करना चाहिए था (अर्थात सारे राज्य को नष्ट करके अब उसे सूझी ही)।

सै बेरी पग समुहो, से राजन पग लग्गि ।
सें ठट्टै ठट्ठाइया, जानि उन्हाई अग्गि ॥ ६८ ॥

शब्दार्थः—सैं=सहित । बेरी=बेडी । सें=सहित । पग लग्गि=चरण स्पर्श किये । सें ठट्टै=वहाँ पर जितने खडे हुए थे । ठट्ठाइया-हँसे । उन्हाई=पूर दी, वृद्धि करदी ।

अर्थः—ऐसा कह कर पैर में बेडी पहिने हुए ही उठकर नजदीक खडे हुए राजा के समक्ष जाकर स्वयं चामण्डराय ने चरण स्पर्श किये, जिससे वहाँ खडे हुए सभी ठहाका मार कर क्या हँसे मानों प्रज्ज्वलित अग्नि मे उन्होंने और वृद्धि कर दी हो (यद्यपि द्वार पर आये हुए राजा का स्वागत करने के लिये चामडराय आया फिर भी उसका क्रोध बना हुआ था तदुपरात अन्य के हँसने पर उसमे और वृद्धि हो गई)।

पामारा पुण्डीरिया, कूरभा जद्दूनि ।
गुज्जरिया दाहिम्मिया, घर हस लग्गी दूनि ॥ ६७ ॥

शब्दार्थः—पामारा=प्रमारिनी । पुण्डीरिया=पुण्डीरनी । कूरभा=कछवाही । जद्दूनि=यादवनी । गुज्जरिया=बड गुज्जरनी । दाहिम्मिया=दाहिमी । दूनि=द्विगुणित ।

अर्थः—चामड के घर आई हुई प्रमारनी, पुण्डीरनी, कुरभी, जादवनी, बड-गुज्जरनी और दाहिमी आदि रानियों ने चामड को राजा से मिलता हुआ देखकर प्रसन्न हुई और भवन के अन्दर द्विगुणित हास्य प्रभा फैलने लगीं।

औलौ रक्खि न अड्ड करि, वड्डे बोल न बोल ।
तौ सिर वज्जे दाहिमा, ढिल्ली हद्दे ढोल ॥ ६८ ॥

शब्दार्थः—औलौ=दुराव करना । अड्ड=अडी, हठ । वड्डे=बडे । ढिल्ली=दिल्ली । हद्दे=मे । ढोल=वाद्य विशेष ।

अर्थ:—राजा और चामण्डराय के आमने सामने होने पर कविचंद चामंडराय को कहने लगा– (अब बीती बातों को बिसार देना चाहिये) अब मन मे किसी प्रकार का तुम दुराव मत रक्खो, न हठ ही पकडो और न बडे बोल ही जबान पर लाओ, क्योंकि दिल्ली के ढोल अब तुम्हारे सिर के बल पर ही (युद्धार्थ) बजते हैं।

कवित्त

जिहि जद्दौं जावानि, राजु लग्गौ कूरम्मा।
खीची राउ प्रसग, देव बग्गरी दुरम्मा॥
गुज्जर रामह देव, जैत साहिब अब्बूरा।
होइ अबारी हौंस, देसु भग्गौ बबूरा॥
मुख जीह लोल बोलहु बयन, राजन काज बरद्दिया।
पावै न पीर पजर तनी, मन पक्खै भट्टह बिया॥ ६६॥

शब्दार्थ:—जद्दौं=यादव जामानि=जामराय। राजु-लग्गौ=जिनके पीछे राज्य लगा हुआ था, जो राज्य का भला चाहने वाले थे। कूरम्मा=कछवाहे। दुरम्मा=दूर होगये, सदा के लिए बिछुड गये। साहिब-अब्बूरा=आबू का स्वामी (आबू राजवशज)। अबारी=आवारा, स्वच्छन्द। हौंस=मैं। देसु भग्गौ=देश को नष्ट (बरबाद) कर दिया। जीह=जिव्हा। लोल=चपल। बरद्दिया=बिरदाई (कवि चन्द)। पावै न=नहीं पाते, नहीं सोचते। पजर तनी=इस शरीर पर बीतने वाली। मन पक्खै=मन के पक्ष में, मन माने। भट्टह=सामत। बिया=अन्य।

अर्थ: जिनके पीछे राजा का राज्य लगा हुआ था वह जामराय यादव, वीर कछवाहे, प्रसंगराय खींची और देवराय बग्गरी इन प्रपंचों से दूर हो गये (कन्नौज युद्ध में मारे गये)। शेष रामराय बडगुज्जर और गर्जना करने वाले आबू राज वशी जैत्र प्रमार एव मैंने स्वय आवारा (स्वच्छन्द) होकर देश को बरबाद (उजाड) कर दिया। हे बिरदाई कविचद! तुम भी अपनी चपल जिह्वा से (राज्य के हित विषय मे नहीं) राजा के सोचे हुए कार्यों मे मन भाते (ठकुरसुहाते) वचन उच्चारण करते रहते हो। अन्य सामत आगे आने वाली आपत्ति की ओर नहीं सोचते, वे भी मन माने चलते हैं।

तन तरवारणि बटनो, इह बटनो न देस।
मोसा बोलि न दाहिमा होइ अपानै भेस॥ १००॥

शब्दार्थः—तरवारनि=तलवारों द्वारा। बग्गो=विभाजन करना, कटपड़ना। इह=यह। मोसा= उलहना दोषारोपण, ताना। होइ=होजा, बनजा। अपानै=अपने। भेस=भेष, वेश, स्वरूप।

अर्थः—कविचन्द कहने लगा-इस समय तलवारों द्वारा युद्ध मे शरीर का विभाजन करना है (कट पडना है) न कि देश का विभाजन करना है। इसलिए हे दाहिमे वीर चावण्ड! इस समय एक दूसरे पर दोषारोपण मत करो और अपने वेष (वीर स्वरूप) को संभाल लो।

बर बानै बंधै सकल, अप्प अप्पनैं भाग।
ते बाधी सुरतान पर, खडै खडी पाग ॥१०१॥

शब्दार्थः—बर बाने=श्रेष्ठ बाने, श्रेष्ठ शोभा। अप्प अप्पनैं=अपने २। भाग=ललाट, मस्तक। सुरतान=सुलतान। खडैं=खडेराव, चावंडराय। खडी=टेढी। पाग=पगडी।

अर्थः—अपनी श्रेष्ठ शोभा के लिए अपने अपने मस्तक पर सब कोई पगडी बांधते हैं, किन्तु हे खण्डेराव (चामण्ड)! तूने ही यह विषम (टेढी) पगडी शाह के ऊपर (युद्धार्थ) बॉधी है।

को बंधैं ग्रहनी ग्रहन, को बंधै बिन मान।
तैं बधी सुरतान पर, मालिम सो चहुआन ॥१०२॥

शब्दार्थः—को=कोई। ग्रहनी-ग्रहन=स्त्री का पाणिग्रहण करने को। बिन मान=मान रहित, अपवाद रूप में, वृथा। मालिम - मालूम, ज्ञात।

अर्थः—कोई स्त्री से प्राणिग्रहण करने को बांधते हैं और कोई अपवाद रूप मे बांधता है, किन्तु हे वीर चावड! तू ही युद्धार्थ सुलतान पर पगडी बॉधने वाला है, यह चाहुवान नरेश को अच्छी तरह विदित है।

जौ मड्यौ निप्र पग्ग हम, सो किम माहो हत्थ।
न्रिप अयान पास न तजौं, कहौ चंद कवि कथ्थ ॥१०३॥

शब्दार्थः—मड्यौ=सुशोभित किया। माहौं=पकड़ौं। पास=पाश बेडी।

अर्थः—तब चावण्डराय कहने लगा—हे कविचंद! तुम्हीं बताओ, जिस लोहे को इस अयाने राजा ने मेरे पैर मे डाल दिया है, उसको अब मैं अपने हाथमे कैसे ग्रहण

कर सकता हूँ। राजा द्वारा डाली गई इस पाश (बेड़ी) को अब मैं अपने पैर से नहीं निकालना चाहता (इसका अपमान नहीं करना चाहता)।

कवित्त

तैं जित्यौ गज्जनौ, तू जु अड्डौ हम्मीरा।
तैं जित्यौ चालुक्कु, पहिरि सन्नाहु सरीरा॥
तैं दल पगु नरयन्दु, इन्दु ग्रहियौ जिमि राहा।
तैं गोरी दल दह्यौ, बार खट्टू बन दाहा॥
तव तेग तेज तव उच्चमन, ततो पासुन मिल्लियै।
चामड राइ दाहर तनो, तो भुज उप्पर खिल्लियै॥१०४॥

शब्दार्थः—जित्यो=विजय प्राप्त की। गज्जनौ=गजनेश्वर, गौरीशाह। हम्मीरा=अमीर, हिन्दू राजाओं के, हिन्दू वीरों के। पहिरि=पहनकर। सन्नाहु=कवच। सरीरा=शरीर। ग्रहियौ=ग्रसा। राहा=राहु। दह्यौ=जलाया। ततो पासुन=ततु पाश, लोह बेड़ी। मिल्लियै=दूर रख दे। तो=तेरे ही। भुज उप्पर=भुजाग्र, पर। खिल्लियै=खेल।

अर्थः—कविचंद ने कहा—हे दाहर पुत्र चामण्डराय! तूने गजनी सेना पर विजय प्राप्त की है और विरोधी पक्ष के अमीरों को रोकने के लिए तू ही आड़ है तथा शरीर पर कवच धारण करके तू ने ही चालुक्य को पराजित किया। (शशिवृता की घटना के समय) चन्द्र स्वरूप जयचंद को दलित कर उसे ग्रसने के लिए तूही राहू रूप हुआ। स्वयं गौरीशाह और उसकी सेना को तू ने खट्टू-युद्ध समय दावाग्नि स्वरूप होकर विचलित कर दिया। तेरी तेज तलवार है और मन भी तेरा ऊँचा (उदार) है। अत अब तू पाश-तंतु (बेड़ी) को दूर रखदे (निकाल दे), क्योंकि हे वीर! यह सब खेल अब तेरी ही भुजाओं पर निर्भर है।

दोहा

राजा नाम पुण्डीर कुल, तैंनौ पूत्र प्रताप।
मैं राजन पग लग्गिया, आजु हनदे पाप॥१०५॥

शब्दार्थः—राजा=राजकुमारी। तैंनौ=उसका। पूत्र=पुत्र। मैं=स्वयम्। पग लग्गिया=चरण स्पर्श किये। हनदे=नष्ट हुए, दूर हुए।

अर्थः—कयमास की सती पत्नी जो पुण्डीर वंश की थी और जिसका नाम राजा (राजकुमारी) था उससे उत्पन्न (कयमास का) पुत्र का नाम प्रतापसिंह था। उसने आकर राजा के चरण स्पर्श किये और कहा— हे स्वामिन! आज हमारे पूर्व पाप आपके दर्शनों से दूर होगये।

कवित्त

आज हनदे पाप, दरसि रावर वर भग्गा।
कप्पन बिरद कलंक, जीह किल कित्तिय लग्गा॥
आहुट्ठा मभ्भामि, छत्त छत्री परमान।
हिंदवान तुरकान, सरसि उग्गै जिम भान॥
औधूत राइ माया अडरु, गोरखरा गोरख्खजिम।
बर तिथ्थ तिथ्थ रावर समर, मार रूप भंजन बिक्रम॥१०६॥

शब्दार्थः—हनदे=नष्ट होगये। वर भग्गा=सौभाग्य। कप्पन=काटने वाले, नाशक। जीह-किल=निश्चय जबान, सत्य वक्ता। कित्तिय-लग्गा=कीर्ति रत। आहुट्ठा-मभ्भामि=आहड़ों का मुखिया। छत्त-छत्री=क्षत्रियों का छत्र। परमान=माने जाते। सरसि=समान रूप से। उग्गै=उदय होता, तपता। भानं=भानु, सूर्य। औधूत=अवधूत। अडरु=निडर। गोरखरा=गोरक्ष राज। गोरख्ख=गोरख या गोपाल। बर तिथ्थ तिथ्थ=तीर्थों से भी श्रेष्ठ तीर्थ। मार-रूप-भजन=कामदेव के स्वरूप (अंग) का नाशकर्ता, शिव। बिक्रम=विक्रम नामधारी।

अर्थः—और भी विशेष सौभाग्य की बात है कि रावल समर-जिनके विरुद और पद-कलंक नाशक, सत्य वक्ता, कीर्ति रत, आहड़ों के मुखिया, क्षत्रियों के छत्र, हिंदू और मुसलमानों के सूर्य, अवधूत योगी, माया से निडर, गोरक्ष राज, गोरख (गोरख या गोपाल)-श्रेष्ठ तीर्थ एवं शिव स्वरूप तथा जो विक्रम नाम धारी हैं जिनके दर्शनों से भी आज हमारे रहे सहे पाप नष्ट हो गये।

दोहा

छोरि तेग नृप अप्पु कर, अप्पी हथ्थति सूर।
लै चामंड सु बंधि द्रिढ़, नृ बर रष्षन नूर॥१०७॥

शब्दार्थः—[illegible] ते[illegible]-[illegible] मे तलवार [illegible] खोल कर। अप्पु कर=अपने हाथों से। [illegible]=अर्पित [illegible]। [illegible]-[illegible] के हाथ [illegible]। सूर-बहादुर।

अर्थः—राजा पृथ्वीराज अपनी कमर मे कसी हुई तलवार लेकर अपने हाथों से समर्पित करता हुआ बोला— हे वीर चामड ! तुम इसे दृढ कस कर बांध लो; क्योंकि तुम्हीं इस पृथ्वी के नूर की रक्षा करने वाले हो।

तब सामत सु सिर धरिय, मुख जंपिय इह बैन।
जौ सिर पर प्रथिराजु है, (तौ)कित्तक गोरिय सैन ॥१०८॥

शब्दार्थः—सामत=चामडराय । जंपिय=कहे । इह=यह । सिर पर प्रथिराजु है=पृथ्वीराज के हाथ हमारे सिरपर हैं, राजा की हम पर कृपा है । कित्तक=कितनी, क्या ।

अर्थः—तब चामडराय ने उस तलवार को सिर पर चढ़ाया और अपने मुँह से यह वचन कहे— जब कि पृथ्वीराज की हम पर कृपा है तो बेचारे गोरी की सेना हमारे सामने क्या चीज है ?

वेरी कढ्ढन चरण त्रप, निमित कियौ तिहि सीस।
राजन मनह प्रमोद करि, दैन कही बगसीस ॥१०६॥

शब्दार्थः—निमित=नमित, नत । प्रमोद–करि=प्रसन्न होकर । बगसीस=बख्शीश, उपहार ।

अर्थः—जब वेडी निकालने के लिए राजा ने उसके पैर छूए तब यह देख कर चामण्ड नत मस्तक हो गया। इससे राजा को बडी प्रसन्नता हुई और उसे उपहार मे बहुत कुछ देने को कहा।

जा त्रप रुठ्ठे भय नहीं, तुट्ठे नहँ धन आस।
ग्रह निग्रह नाहीं स थ, ता त्रप वृथा प्रयास ॥११०॥

शब्दार्थः—जा=जिसके । रुठ्ठे=रुष्ट होने पर । तुट्ठे=तुष्ट । धन=द्रव्य । आस=आशा । निग्रह=छोड देने की । नाहीं=नहीं । समथ=सामर्थ्य, शक्ति । प्रयास=प्रयत्न ।

अर्थः—जिस राजा के रुष्ट होने पर भय और तुष्ट होने पर द्रव्य प्राप्ति की आशा न हो और जो शत्रु को पकड दण्डित कर छोड देने की शक्ति नहीं रखता हो ऐसा राजा प्रयत्नशील नहीं माना जा सकता।

डेढ हजार तुरग वर, हस्ती तेरह तीन।
मुत्तिय माल सुरग दस, राजन अप्पि नवीन ॥ १११ ॥

शब्दार्थः—हसती=हाथी । तेरह-तीन=तेरह और तीन (सोलह)। मुत्तिय-माल=मुक्ता माल । सुरग=सुन्दर । अप्पि=दी ।

अर्थः—राजा ने डेढ हजार श्रेष्ठ घोडे, सोलह हाथी और सुन्दर मोतियों की दस नवीन मालाएँ उस (चावडराय) को उपहार मे दी ।

चीर पटंबर फेरि सिर, वज्जा वज्जिय वग्ग ।
बर बरदाइ बरद्दिया, बोल समंगल लग्ग ॥ ११२ ॥

शब्दार्थः—फेरिसिर=थालों में भरकर सिर पर उठाये गये । वज्जा=बाजे । वग्ग=शहर के प्रत्येक मुहल्ले में । लग्ग = लगे ।

अर्थः—राजा द्वारा उपहार मे दिये गये पाटम्बर, भूषण थालों मे भर कर साथ मे लिए गये और हाथी-घोडे आदि बाजे बजते हुए नगर मे घुमाये गये और बिरदाई गण मगल वचनो के साथ बिरदाने लगे ।

लोहानी पग कड्ढिके, लज्जानी पग बंधि ।
लजि लजिग्गु नलज्जि कै, तेग धरी भर कंध ॥११३॥

शब्दार्थः—लोहानी=लोह की बेड़ी । पग कड्ढिके=पैर से निकालते ही । लज्जानी=लज्जा रूपी बेड़ी । पग बंधि=पहन लिया । लज्जि=लज्जित होता हुआ । लज्जिग्गु=लजा दिये, लज्जित होगये । नलज्जि = निर्लज्ज, बेशरम । कै = कितने ही । तेग = तलवार । धरी = धारण की । भर = भट, सामत, चामडराय । कंध = कंधे पर ।

अर्थः—इस प्रकार लोह की बेडी को पैर से निकाल कर उसने लज्जा रूपी बेडी को पावों मे बांध लिया । उस समय उस वीर चामडराय ने राजा के समस्त लज्जित होते हुए तलवार को कंधे पर धारण कर कितने ही निर्लज्जों को लज्जित कर दिया ।

घर घर मंगल बोलिये, घर घर दाजै दान ।
सं मुख धनि धनि उच्चरे, भल छोर्यौ चहुआन ॥११४॥

शब्दार्थः—मगल=मगल गान । दाजै=दिया जाने लगा । भल=भला, अच्छा ।

अर्थः—घर घर में मंगल गान होने और दान दिये जाने लगे, सभी के मुखों से धन्य धन्य शब्द निकला कि चाहुवान राजा ने अच्छा किया जो चामडराय जैसे वीर को मुक्त कर दिया ।

हथ्थ हतकरी प्रेमकी, पाइन वेरी लौन ।
गले तोख नृप आन की, छुट्यौ कहत है कौन ॥११५॥

शब्दार्थः—हथ्थ=हाथों में। हतकरी=हथकड़ी। पाइन=पैरों में। वेरी=वेड़ी। लौन=नमक की। तोख=जजीर। आन की=दुहाई की। छुट्यौ=बन्धन मुक्त।

अर्थः—कवि कहता है कि—इस समय चामंड के हाथों मे प्रेम की हथकडो, पैरों में नमक की वेड़ी, और गले मे राजा की दुहाई की जजीर पडी हुई है। इसे बन्धन मुक्त कौन कह सकता है ?

लोक लज्ज ग्रह लज्ज उर, हठि न ग्रही रिस एक ।
लोह लँगर कडढ़त चरण, लरण हथ्थ लइ तेक ॥११६॥

शब्दार्थः—लज्ज=लज्जा। रिस=रोस, क्रोध। एक=एक भी, किसी प्रकार का। लोह लँगर=वेड़ी। लरण=लड़ने को, युद्धार्थ। लइ=ली, ग्रहण की। तेक=तलवार।

अर्थः—लोक लज्जा और ग्रह लज्जाके कारण उस हठी चामण्डराय ने क्रोध को नहीं ग्रहण किया और पैर से लोह लंगर निकालते ही उसने हाथ में युद्धार्थ तलवार ग्रहण की ।

नट्टिय नट जिम चपल, वदन जिमि सरस सद्द कवि ।
वग्गह मुनि मन गहिय, तिम सु उड्डिय सुरग दवि ॥
इम चव्विय करियार, तिम सु मुह रस मुह मिट्ठिय ।
तिख्खन तरुन कटाच्छ, तिम सु मन मोहन दिट्ठिय ॥
अभिसार रसन उच्छाह जिम, तुंग प्रमत्त सु सील मय ।
हिंसत हसंत हरमंत त्रप, वाजराज दिन्नो तुरिय ॥११७॥

शब्दार्थ.—नट्टिय=नटी, नर्तकी। नट=नृत्यक। वदन=वदन। सरस=श्रेष्ठ, कोमल। वग्गह=रास। सुरग=सुरग देना (जमीन में सोर भर कर आग लगाना, उसे सुरंग कहते हैं)। दवि=दागना, जलाना। करिआर=लगाम। चव्विय=चबाई। मुहरस=स्वाद। तिख्खन=तीक्ष्ण। तरुन=तरुण।

कटाच्छ=कटाक्ष । मोहन=मोहक । अभिसार=विचरण । रसन=पृथ्वी या रसो मे । उत्साह=उत्साह (स्थायीभाव) । तुंग=उन्नत । समत=उनमत्त । सील=शील । मय=हाथी । हिंसत=हिन हिनाना । हसत=हँसता हुआ । हसन=प्रसन्न होता हुआ । बाजराज=घोड़ा या घोड़े का नाम विशेष ।

अर्थः—जिसकी चपलता नर्तकी और नृत्यक के समान थी, वदन की कोमलता कवि की सरस कोमल वाणी के तुल्य थी,मुनि गण के वश मे जैसे मन रहता है उसी प्रकार वह रास के काबू मे रहता था, सुरग दाग दिया गया हो उस प्रकार वह उडने वाला था,वह लोह कडी (लगाम)को इस प्रकार चबा रहा था जैसे किसी स्वादु-व्यक्ति के मुँह मे मधुर वस्तु दे दी गई हो, तरुणियों के तीक्ष्ण कटाक्ष के समान वह मन मोहक था, उत्साह (स्थाई भाव) के समान वह पृथ्वी पर अभिसार(विचरण) करता था, शीलवान के समान उन्नत और मतवाले हाथी के समान वह उन्मत्त था । ऐसा हिनहिनाता हुआ घोडा, प्रसन्नत होते और हँसते हुए राजा पृथ्वीराज ने चामुंडराय को दिया ।

पवन पाय पुभभयौ, वेग पुज्जिय कवि चित्तह ।
पिट्ठि चाप पजयो, पसम पुज्जिय नवनीतह ॥
पुन्छ चमर पुज्जयौ, कच केसनि पुजि केहर ।
श्रवन अग्र पुज्जयौ, अग्ग तिक्खह सु डम्भ सर ॥
पुज्जयौ जगत जिहि पुज्जयौ, सालिग्राम सुन्दर सु द्रिग ।
समरिय तुरिय पुज्जिय जगत, खजन नट भट मीन म्रग ॥११८॥

शब्दार्थः—पाय=पैर । पुभभयौ=पूजा, अचित किया । वेग=वेग । पिट्ठि=पीठ । पसम=पशम, रोमावलि । नवनीतह=मक्खन । पुच्छ=पूछ । कच केसनि=कचे के बाल अयाल । पुजि=पूजे । केहर=केशरी, सिंह । श्रवन अग्र=कानों का अग्रभाग टोंकियों अग्ग=अग्रभाग । तिक्खह=तीक्ष्ण । डम्भ=दर्भ, कुशा । सर=शर, बाण । सालिग्राम=शालिग्राम । द्रिग=नेत्र । खजन=एक पक्षी [illegible] । नट=नर्तक । भट भट्टकवि, बंदिजन ।

अर्थः—पवन द्वारा जिसके पैर, कवि के चित्त द्वारा जिसका वेग, चाप द्वारा जिसकी (लचकाला) पीठ मक्खन द्वारा जिसकी कोमल रोमावलि, चामर द्वारा जिसकी पूछ, सिंह (की सटा) द्वारा जिसकी अयाल, दर्भ और शर के अग्र भाग द्वारा जिसके कानों की टोंकियें और संसार पूजित शालिग्राम द्वारा जिसकी

इग पुत्तलिकायें पूजी जाती थी। ऐसा पृथ्वीराज का घोड़ा जो (चावंडराय को दिया गया वह) संसार मे वन्दनीय था और खजनों, नर्तकों, भट्ट कवियों, मीनों एवं मृगों द्वारा वह पूजित था।

बाज राजु चन्नौ बगसि, मिलि मगल गल लग्गि ।
निसि निसान भेरिय सबद, वीर जगावन लग्गि ॥११६॥

शब्दार्थ:—बाज= घोड़ा। बगसि=बख्शीश दी, पुरस्कार दिया। गल लग्गि=गले लगाया।

अर्थ:—फिर राजा ने कुशलता पूर्वक चामुण्डराय को गले लगाया और अपनी सवारी का घोड़ा उसे चढने के लिये दिया। उसी रात्रि को नक्कारे, भेरी आदि रण वाद्यों को बजवाकर सामंत गण एक वीर को जागृत करने लगे।

धर धर धरनिय धरहरिय, कुडलि किय फनि पुच्छ।
तेग पकरि सामत सब, मिलि बर घल्यौ मुच्छ ॥१२०॥

शब्दार्थ:—धर धर=धड़धड़ाहट। धरहरिय=कंपायमान होगई। कुडलि=कुण्डलाकृति। फनि=शेषनाग। तेग=तलवार। घल्यो=देकर।

अर्थ:—जिस समय सामंतों ने मूछ पर हाथ दे तलवार को पकड़ कर वीर को जागृत करने लगे उस समय पृथ्वी भड़धड़ाहट करती हुई कंपायमान होने लगी तथा शेष नाग अपनी पूंछ को कुण्डलाकृति कर ऊपर को उठा।

कवित्त

सिला एक पाखान, हथ्थ तीसह बिय लखिय ।
द्वादस हथ्थ चवट्टि, सट्टि अंगुल उदरभिय ॥
ता नीचे कदरा, तहाँ कोड सूर णिदानै ।
ता उपर तिहि थोस, राज वज्जै सादानै ॥
आघात सुनत करचट्ट लिय, वज्जे वज्जावन गुरिग ।
अचरिज्ज करिग सामंत प्रभु, भट्ट सहित पारस फिरिग ॥१२१॥

शब्दार्थ:—तीसह बिय=बत्तीस। चवट्टि=चौड़ी। उदरभिय=उठी हुई। कदरा=गुफा। णिदानै=निद्रा में, निद्रामस्त। सदानै=सादाने, नगाड़े। आघात=डंके की चोट, आवाज। गुरिग=गुड़क गये।

अर्थः——वहाँ (निगमबोध स्थान पर) एक पाषाण शिला जो बत्तीस हाथ लम्बी, १२ हाथ चौडी और ६४ अंगुल दल में था। उसके नीचे एक गुफा थी जहाँ पर कोई देवता सोया हुआ था उसी स्थान पर उस रात्रि को राजाने नक्कारे बजवाये जिसकी आवाज सुन कर उसने करवट बदली जिससे पृथ्वी हिलने लगी और वाद्य बजाने वाले गुडक गये। यह देखकर कविचंद और सामंतादि आश्चर्य करते हुए उस शिला के चारों ओर हो गये।

इक्क कहै भुअकंपु इक्क कह सेसह हल्लिय।
इक्क कहै उट्ठवै, याहि उठवत भ्रम खुल्लिय॥
छह लगर गर घल्लि, प्राव त्यन्नौ उन्छगह।
मुख अनंद चाव न्यंद, अंग दिस्यौ बहु रंगह॥
प्रारथिय चंदु पुन्छै तिनहि, कह सु जम्मु कह उप्पनिय।
को मात पित्त कह नाम तुम किमि सुथान इहि निंद किय॥१००॥

शब्दार्थः—भुअकंपु=भूकंप। उट्ठवै=उठावैं। याहि=इसे। उठवत=उठाने पर। भ्रम खुल्लिय=भ्रम दूर हो सकेगा। गर घल्लि=गले में डालकर। प्राव=पत्थर, शिला। त्यन्नो उन्छगह=उठा लिया। बहु रंगह=विशेष विनोदयुक्त प्रारथि=प्रार्थना की स्तुति की। चंदु=कवि चंद पुन्छै=पूछने लगा। तिनहि=उसे। कहसु=कहाँ, कैसे। जम्मु=जन्म। उप्पनिय=उत्पन्न हुए। पित=पिता। सुथान इहि=इस स्थान पर। निद किय=नींद ली, सोये।

अर्थः——किसी ने कहा—भूकम्प होगया है, किसी ने कहा शेष नाग हिल पडा है, कोई बोला—शिला को उठाओ, उसके हटाने पर भ्रम दूर हो सकता है। तब छ लोह-लंगर को गले में डालकर शिला को उठाई गई तो उस गुफा में नेत्र जिसके निद्रा के वश में थे, मुख जिसका प्रसन्न था और अंग जिसका विशेष विनोद युक्त था। ऐसे वीर को देख कवि चंद ने उसकी स्तुति की और उससे पूछा-आपका जन्म कैसे और किस स्थान पर हुआ तथा आपके माता पिता का नाम क्या है आपके यहा सोने का क्या कारण है।

दक्खि प्रजापति जग्य, रुद्र निंदा सति सभरि।
तनु तिनु चिमि मुक्कयौ, जलन लग्गिय मन म जरि॥
हय हय हय त्रिभुवनह, नाग नर सुर गध्रब गण।
भिरि भिरि नच्चिय सुभग भद्दय पुक्कार उट्टि रण॥

भै भीत भूत वेताल गन, कपिल कंपि कैलास डरि।
तिहि त्रिसल तेज लग्गिय नयन, जट जुगिंद पिट्टिय सु फिरि ॥१२३॥

शब्दार्थः—दक्खि प्रजापति=दक्ष प्रजापति। जग्य=यज्ञ। तनु=तन। तिनु=तृण। सुक्कयो=त्याग दिया। मं=में। जरि=जलन पैदा हुई। भइय=हुई पुक्कार=पुकार, सूचना। भैभीत=भयभीत। तिहि=उन (शिव) की। त्रिसल=त्यौरी चढ़ गई। तेज=प्रकाश। जट=जटा। जुगिन्द=योगीन्द्र, शिव। पिट्टिय=फटकारी। फिरि=फिर।

अर्थः— वीरभद्र ने उत्तर दिया—प्रजापति दक्ष के यज्ञ मे अपने पति शम्भू की निन्दा सुनकर सती के मन में दाह उत्पन्न हुआ और उसने अपने शरीर को उस यज्ञाग्नि में तिनके के समान जलाकर प्राण त्याग कर दिये। जिससे त्रिभुवन निवासी देवता, नाग, नर, गंधर्व, गण आदि मे हा हा कार मच गया। यह देखकर शिव का नन्दी नामक गण यज्ञ मे जो उपस्थित थे उनसे भिड़ने लगा। इस बात की सूचना मिलने पर शिव के आने की शका करके यज्ञ मे आये हुए देवता आदि भागने लगे, भूत वैतालादि भयभीत हो गये, कपिल और कैलाश-पर्वत कम्पायमान हो गये। उस समय शिव की भ्रकुटी चढ गई और उनका तृतीय नैत्र प्रकाशमान होता हुआ दिखाई दिया तथा उस योगीन्द्र ने उस समय जटा को बिखेर कर झटका।

जटा जनम तिन दिनह, नाम मुहि वीरभद्र धरि।
तात नाम तिपुरारि, जग्य विध्वंसि सीस हरि॥
सतजुग सकर खनिय, तत्र त्रेता तु बालिय।
द्वापर दुम्भर सलित, धम्म धरणी प्रतिपालिय॥
आनन्द न्यद जुग्गिनिपुरह, काल नाम कलिजुग्ग लहि।
आवत्त सोर फुट्टहि श्रवन, किम सु सोरु कवि चंद कहि॥१२४॥

शब्दार्थः—तिन=उस। तिपुरारि=त्रिपुरारि। सीस-हरि=सिर का हरण कर, सिर काट कर। खनिय=क्षत्रिय, छोणी, पृथ्वी। तत्र=उसी प्रकार। तु बालिय=शिव। दुम्भर=कठिनाई मे। सलित=सरीति, उसी प्रकार। धम्म=धर्म। न्यंद=नरेन्द्र। आवत्त=आवर्त्त, लगातार। सोर=शोर। फुट्टहि=विदीर्ण। सोरु=शोर।

अथः—उसी दिन उनकी जटा से मेरा जन्म हुआ। शभु ने मेरा नाम वीरभद्र रखा अत मेरे पिता त्रिपुरारि को ही समझना चाहिये। उनकी आज्ञा से दक्ष का सिर

काट कर मैंने उसके यज्ञ को ध्वस कर दिया। उन्ही तुम्बाली रुद्र के प्रताप से यह छोणि (पृथ्वी) सतयुग और त्रेता मे रही और द्वापर मे भी उन्होंने बडी कठिनाई से उसी प्रकार धर्म और पृथ्वी का प्रतिपालन किया। इस युग का नाम कलियुग है। योगिनीपुर (दिल्ली) के नरेश को इस समय ऐसा कौनसा हर्ष है ? जिससे कानों को विदीर्ण करने जैसा यह लगातार शोर हो रहा है। हे कविचद ! मैं जानना चाहता हूँ कि इस शोर-गुल का क्या कारण है ?

इह सु सोरु सुनि स्वामि, इन्द्र वृत्ता सुर लग्गिय।
इह सु सोरु सुनि स्वामि, राम रावन घर भग्गिय॥
इह सु सोरु सुनि स्वामि, जरासिंधव जद्दव प्रभु।
इह सु सोरु सुनि स्वामि, पड कौरव फट्टे अभु॥
इह सोरु स्वामि सामत मिलि, सुमत साहि गोरिय बयर।
चावडराउ कढ्यौ लरण, इह सु सोरु ढिल्लिय नयर॥१७५॥

शब्दार्थः—इह=यह। सोरु=शोर। लग्गिय=पीछा किया, चढाई की। भग्गिय=नाश किया। पड=पांडव। फट्टे=विदीर्ण कर दिया। अभु=आभ, आकाश। जरासिंधव=जरासध। जद्दव-प्रभु=यादवों के स्वामी, कृष्ण। सुमत=सुमत्रणा। साहि=शाह। बयर=बैर, शत्रुता। कढ्यौ=मुक्त किया। लरण=लडने को, युद्धार्थ।

अर्थः—कविचन्द कहने लगा—हे देव ! यह शोर वही है जबकि इन्द्र ने वृत्रासुर पर चढाई की, राम ने रावण के गृह का नाश किया, यदुपति ने जरासध को समाप्त करवाया और पांडवों ने कौरवों का नाश करते समय ऐसे ही शोर से नभ को विदीर्ण कर दिया था। आज यहाँ के नरेश्वर और सामत मिल कर गौरीशाह से युद्ध करना चाहते है और इसी लिए श्रेष्ठ मत्रणा की जा रही है। चामण्ड राय को युद्धार्थ बन्धन से मुक्त कर दिया है उसी के हर्ष मे आज दिल्ली नगर मे भी वैसा ही शोरगुल हो रहा है।

इह मनुजत्व मत्ताट, देव देवासुर दिग्गिय।
समय इन्द्र तारका, जुद्ध राजस परग्गिय॥
रामाटन मडलिय सग्ग सागर साधाता।
मान तुग दुरजोध, पन्थ पटर इह भ्राता॥

वरदाइ द्रुग्ग द्रुग्गह सजिय भट्ट ग्याति जोह दुनौ।
सा अम्म जुद्ध हिन्दू तुरक, का सुमत तत्थे गनौं ॥१२६॥

शब्दार्थः—मनुस्स = मानव। मत्ताइ = मत्रणा। दिग्खिय = देखा। तारका=तारकासुर। जुद्ध = युद्ध। परखिय = परखा, देखा। रामाइन = रामायण में वर्णित। मडलिय = वीर मडली। मग्ग मागध = मगध देश के रास्ते पर, मगध देशान्तर्गत। मान-तुग = उत्तग अभिमानी। दुरजोध = दुर्योधन। पथ्थ = पार्थ। छह भ्राता = कर्ण सहित पांचों पाडव। द्रुग्गह = दुर्गा। भट्ट = वदाजन, कवि चद। ग्याति जोह दुनौ = जिह्वा पर द्विगुणित याद है, भली प्रकार स्मृति है। सा अम्म=समान। काह = क्या। मत = मत्रणा। तत्थें = तत्व युक्त। गनौं = गिना।

अर्थः—वीर भद्र कहने लगा—हे दुर्गा को विरदाने वाले भट्ट (चन्द)। यह तो मानव मन्त्रणा है। मुझ देव ने तो देवता और राक्षसों के, इन्द्र और तारकासुर के, राजसूय यज्ञ समय के, रामायण (बाल्मिकी रामायण) मे वर्णित वीरों के, मगध देशान्तर्गत मान्धाता के, उत्त ग अभिमानी दुर्योधन, कर्ण तथा पार्थ और उसके भ्राताओं के और स्वय दुर्गा के तत्कालीन युद्ध देखे हैं। उनकी स्मृति मुझे भली प्रकार है। उन युद्धों के समान यह हिन्दु-मुसलमानों का युद्ध क्या हो सकता है और इस मत्रणा मे मुझे तत्व नही दीख पडता है।

तुम देवह सम देव, जुद्ध दिक्खैति सयानै।
ए सामंतअ मत, भुभभ दिक्खत विरुभानै॥
इन आवध आवव्ध, हक्क वज्जै भक भाडय।
उत्तमग उत्तरैं, सीस हक्कै धर धाइय॥
जित रुहिर बुंद कदल परैं, ते कदल उट्ठहि भिरण।
इन वीर सग तुम वीर हुअ, निमित्त नेह नच्चौ किरण॥१२७॥

शब्दार्थः—ए=यह। मत=मतवाले। भुभभ=युद्ध में। दिक्खन=देखे गये। विरुभानै = उलभते हुए। उत्तमग=उत्तमांग, सिर। उत्तरैं = कट जाता। हक्कै=उछल कर चढता। धर=धड। धाइय=बढता। जित=जहा। रुहिर=रक्त। कदल=नाशकर्ता। भिरण=भिड़ने से। निमित्त=निमेष मात्र को। नच्चो = रण ताण्डव। कि = क्या।

अर्थः—कवि चन्द कहने लगा आप देवताओं के समान ही सयाने हैं और आपने देवताओं के युद्ध तो देखे ही हैं, किन्तु ये मतवाले सामत हैं। इनके युद्ध मे उल-

झते हुए ही देखे हैं (सुलझते हुए नहीं)। ये हुँकार करके अपने शस्त्र से शस्त्र भिड़ा कर झड़ी सी कर देते हैं इनका सिर कट जाता है तो वह भी ऊपर उछलता है और धड़ रणस्थल में आगे बढ़ता है। इन नाश कर्त्ताओं के शरीर से रक्त की बूंदे गिरती हैं वे भी सब नाशकारी रूप धारण करके लड़ने को उठती हैं। ऐसे इन वीरों के साथ में क्या आप प्रेम पूर्वक रह कर इनके द्वारा होने वाले युद्ध में भी भाग लेंगे ?

दोहा

जग्गि वीर मिंडिग नयन वयनह अलप प्रबोध।
मेहि दिखावन जुद्ध को, बिनु दुरजोधन जोध ॥१८८॥

शब्दार्थ:—मिंडिग=मसले। अलप=अल्प, थोड़े में। को—कौन। दुरजोधन=दुर्योधन। जोध=योद्धा।

अर्थ:—तब वह वीर भद्र गण अपने नेत्रों को मसलता हुआ उठ बैठा और वचनों द्वारा थोड़े में विशेष ज्ञान कराता हुआ कहने लगा—मुझे युद्ध दिखाने वाला वीर दुर्योधन के अतिरिक्त अन्य कौन हो सकता है ?

कवित्त

जिहि दुरजोधन जोध, संधि मानी न दैव बलि।
जिहि दुरजोधन जोध, भूमि दीनी न जीव झलि ॥
जिहि दुरजोधन जोध, दसा अब दसा न पिक्खिय।
जिहि दुरजोधन जोध, वीर कट्टत नन कक्खिय ॥
भिक्खिया भेव पर भूमि पर, धर समान धर खक्खियौ।
सकलप कलप रुचि मास सों, पट भोग सुख भक्खियौ ॥१८९॥

शब्दार्थ:—दैव=दान। बलि=बलिदान। नाव मंडि=पीठ पाछे को। दसा=हित। अव दसा=अहित। पिक्खिय=देखा, दृष्टा रहा। भिक्खि॥ भेव=भिनुर भेव। धर समान=पृथ्वी के समान अचल। धर खक्खियौ=पृथ्वी पर डाला गया, गिराया हुआ। [illegible] [illegible] कलप=[illegible]। रुचि=रुचिर। भोग=उपभोग। भक्खियौ=[illegible]।

अर्थ:—जिस वीर दुर्योधन ने अपनी खाल दे दी किन्तु संधि नहीं की, अपने प्राण दे दिये किन्तु पृथ्वी नहीं दी, [illegible] अहित की ओर भी नहीं देखा, अपने साथी वीरों के कट जाने पर भी वह युद्ध से नहीं हटा। उसके [illegible] पाटयो को भिनुर के

भेष में पराड धरती पर रहना पड़ा। जब वह पृथ्वी के समान अटल वीर दुर्योधन धराशायी हो पाया तो ऐसे पर्व में उसके द्वारा रुधिर मांस का सफल्य करने पर ही पांडव पृथ्वी का उपभोग कर सके।

प्रान रक्खि रा पंड, दंडआरन्नि वासु किय।
हेत रक्खि बलिराउ, सपत पाताल जाइ जिय॥
भगति रक्खि प्रहलाद, तात दिखि नख्ख प्रहारत।
क्रम्म रक्खि रघुराउ, दइय जुरि जग्य विदारत।
धन धवल गरुव गंधारि उर, गद कदव वपु अटल ध्रुअ।
उच्चरै वीर बलिभद्र रण, मानु रक्खि दुरजोध सुअ॥१३०॥

शब्दार्थ:—प्रान रक्खि=प्राण रक्षार्थ। हेत=उसी हेतु। क्रम्म=मर्यादा। रघुराइ=रामचन्द्र। दइत=दैत्य, राक्षस। धन=धन्य। गरुव=गौरव। उर=कोख। गद=गदा। कदव=सहारे।

अर्थ:—फिर वीरभद्र कहने लगा—पांडवों ने प्राण रक्षा के लिए दण्डकारण्य में वास किया, अपने उसी प्राण से प्रेम करते हुए बलि राजा पाताल में जाकर रहे, पिता को नाखुनों से विदीर्ण होता हुआ देख कर भी प्रहलाद ने प्राणों के लिए भक्ति को अपनाया, ऋषि-मुनियों के यज्ञों का राक्षसों द्वारा ध्वस होने पर भी रामचन्द्र ने मर्यादा की आड ली, किन्तु गांधारी की कोख से उज्जवल गौरव स्वरूप उस धवल वीर को धन्य है जिसका शरीर अपनी गदा के बल के आश्रय से ध्रुव तुल्य अटल रहा, केवल उसी एक वीर दुर्योधन ने ससार में अपने मान की रक्षा की।

दोहा

न को जियत दिख्यौ नयन, न को मरत दिक्खानि।
मात गर्भ जमनिक जनम, फिरि नच्चै धधानि॥१३१॥

शब्दार्थ:—दिखानि=देखा। जमनिक=यवनिका, पर्दा। नच्चै-धधानि=धंधो में नाचने लगना, धंधों में पड जाना।

अर्थ:—आँखों से वास्तविक रूप में किसी ने किसी को जीता और मरता हुआ नहीं देखा। इस ससार में माता का गर्भ ही एक पर्दा है। उसकी ओट लेकर प्राणी प्रगट होकर (रूप बदल कर) फिर सासारिक धधों में पड़ जाता है।

धधौ भट्ट सु नट्ट भ्रम, जस अपजस लभ हानि ।
जुरि जुरि धन जिहि रक्खियौ, सो दुरजोधन जानि ॥१३७॥

शब्दार्थः—धधा=धधा, कार्य, कर्म । भट्ट=भट्ट कवि । लभ=लाभ । जुरि जुरि=जुटकर । धन=मान रूपी धन । जानि=जानो ।

अर्थः—हे भट्ट कवि (चंद)! नृर्तक-यवनिका की ओट में रूप बदलता है तो उसी के अनुसार कर्म में भी परिवर्तन कर लेता है, उसी प्रकार प्राणी के कर्म में भी परिवर्तन होते हैं जिससे यश, अपयश लाभ और हानि की संभावना है, किन्तु जिसने जुट कर मान रूपी धन को सुरक्षित कर रक्खा है, ऐसा वह एक मात्र वीर दुर्योधन ही था ।

अभय-भीति भीखम सुभर, इखु दिय अरघ उदार ।
आउ आउ धरणी धरण, (कह्यौ) सतनु राजकुमार ॥१३८॥

शब्दार्थः—अभय भीति=निर्भय वीरों को भयप्रद । भीखम=भीष्म । इखु=ईषु । अरघ=अर्घ्य । आउ २=आइये २ । धरणी धरण=पृथ्वी को धारण करने वाले । सतनु=शान्तनु ।

अर्थः—उस दुर्योधन के युद्ध में निडर वीरों को भयदायक शान्तनु के पुत्र वीर भीष्म ने पृथ्वी को धारण करने वाले विष्णु स्वरूप कृष्ण को बाणों द्वारा अर्घ्य देते हुए कहा कि युद्ध में मेरे सम्मुख आइये ।

छिति श्रोनित छिट्टै सुवन, सुतन लागि चव दून ।
जनु अमर पुज्जहि अमर, वर वरन परसून ॥१३९॥

शब्दार्थः—छिट्टै=बिखरी, धारायें । लागि—लगने लगा, उसने लगी । अमर=आकाश । अमर=देवता । वरन=वरने को, पूजने को । परसून=पुष्प ।

अर्थः—उस वीर भीष्म के शरीर पर युद्ध स्थल में शोणित की धारायें बरसती हुई दोनों सेनाओं के वीरों को ऐसी दीख पड़ीं मानो आकाश मण्डल से देवता पुष्प मालायें बरसा कर उस वीर भीष्म की पूजा कर रहे हों ।

सु [illegible] ध्यान [illegible] अमर हिय [illegible] ध्यान गुव्यंद ।
[illegible] मन्दिर नयन [illegible] [illegible] रक्खिय [illegible] ॥१४०॥

शब्दार्थ:—गुव्यद गोविन्द। मडिग = छा गया, झलक पड़ा। नयन = नेत्रों द्वारा, चितवन द्वारा।

अर्थ:—ज्ञान को प्राप्त करके हृदय मे गोविन्द का ध्यान धर कर वह भीष्म अंत मे रण स्थल मे (शर शय्या पर) सोगया। उस समय उसकी चितवन मे मन्द हास्य झलक पड़ा। कविचन्द कहता है उस वीर का यशोगान पूर्ववर्ती कवीश्वरों ने किया उसी के अनुसार मैंने कहा।

तल वैतल धुक्किय धरनि, कर स चक्र लिय धाइ।
सुर नर नाग निवधि धन, भे भग्गैं अकुलाइ ॥१३६॥

शब्दार्थ:—तल वैतल=तल वितल। धुक्किय=हिलने लगी खिसकने लगी। कर=हाथ। धाय= दौड़कर। निवधि=निवधना, कहा। धन=धन्य।

अर्थ:—जब उस वीर (भीष्म) ने शौर्य प्रदर्शित किया तब तल वितल और पृथ्वी हिलने लगी। उस समय स्वय कृष्ण ने अपनी प्रतिज्ञा भंग कर रथ-चक्र को उठाया। यह देखकर सुर नर नागादि उसके लिये धन्य कहने लगे और उसके समक्ष मतवाले योद्धा अकुलाकर भागने लगे।

चरण न्यच उचिय अवनि, कमठ पिट्ठि रद नाग।
चकित अट्ठ दिगपाल हुव, मुख चिकारि मैं भाग ॥१३७॥

शब्दार्थ:—न्यच=नीचा किया। उचिय=उठी। कमठ=कच्छप। पिट्ठि=पीठ। रद=(वाराह की) दन्तुसल। नाग=शेष नाग। चिकारि=चिंघाडे। मै भाग=मद जाता रहा (उतर गया)

अर्थ: - रथ-चक्र उठाने को जिस समय भगवान कृष्ण ने रथ से उतरने को पैर नीचे किया तो उसे स्पर्श करने को पृथ्वी ऊपर को उठी, उस समय सृष्टि-रक्षा के विचार से कच्छप ने पीठ के, वाराह ने दन्तुसल के और शेष नाग ने अपने वल पर पृथ्वी को सम्भाला। यह देखकर दिगपाल चकित और भयभीत होकर चिंघाड़ने लगे तथा उनका मद जाता रहा।

मैं दिठि दिट्ठि निहट्ठि हरि, धरि मिट्टिय निज न्यद।
जिहि सुकज्ज सूरति हियैं, बिसरि जाइ ते गद ॥१३८॥

शब्दार्थः—दिठि दिट्ठि=आँखों से देखा। निहट्ठि=घोर हठ, दृढ प्रतिज्ञा। ग्रहि=ग्रहण की। मिट्टिय=छोड़ दी। न्यद=निंदित हो। सुकज्ज=सुकार्य। सुगति=स्मृति। ते=वे। गंद=गंदे, गंदे विचार के।

अर्थः—मैंने अपनी आँखों से देखा है कि-हरि (कृष्ण) ने जो शस्त्र ग्रहण करने की दृढ प्रतिज्ञा की थी उसे भक्त की प्रतिज्ञा के पालनार्थ स्वयम् निंदित होते हुए (रथ चक्र को उठा) छोड़ दी। प्रभु के ऐसे सुकार्य की स्मृति हृदय से जो भुला देता है वह प्राणी गन्दे विचार का है।

तुम भवस्य जानहु सकल, अकल अपुरब वत्त।
सुमत विट्ठि सामंत सब सुनहु तौ कहूँ कवित्त ॥१३६॥

शब्दार्थः—भवस्य=भविष्य। अकल=अज्ञात। सुमत=श्रेष्ठ मंत्रणा। विट्ठि=बैठाई, निश्चय की। कवित्त=पद्यमय, छन्द बद्ध।

अर्थः—कविचंद ने कहा—हे वीरभद्र! आप भली भाँति से अज्ञात और अपूर्व भविष्य को जानने वाले हैं। हमारे सब सामंतों ने जो युद्धार्थ मंत्रणा की है। यदि आप उसे सुनना चाहते हों तो मैं उसे छन्द बद्ध कहूँ।

कवित्त

सुणिय वत्त कवि चंद, वीर अद्भुत्त मनि मन।
एह वत्त आचिज्ज, सूर सामंत कहिय जन॥
उट्ठि वीर करि जभ, अङ्ग मोरिय उत्तानह।
आणि बयट्ठौ पास, सूर सामंत सभा मह॥
पुच्छी सु वत्त कविचंद सों, अहो चन्द बरदाय सुणि।
लैं नाम सूर सामंत सब, मोहि दिखावहि मंत गुणि॥१४०॥

शब्दार्थ—कवि=कवि। अद्भुत=अद्भुत। मनि=मान ली, स्वीकृत किया। आचिज्ज=आश्चर्य प्रद। जन=निज जन। जभ=जमाई लेकर। उत्तानह=ऊपर को। आणि=आकर। बयट्ठौ=बैठा। मह=में। सुणि=सुना। दिखावहि=दिखाओ, प्रगट करो। मंत=मंत्रणा। गुणि=गाओ, समझाओ।

अर्थः—कविचंद की बात सुन कर उस अद्भुत वीर ने मत्रणा सुनना स्वीकृत किया जो कि आश्चर्य प्रद मत्रणा वीर सामंतों ने की थी। उसे सुनने के लिए जमाई लेकर अपने अंग को ऊपर को मोडता हुआ वीरभद्र गण वहाँ से उठा और वहादु सामंतों की सभा मे आकर बैठ गया। वह कविचद से पूछने लगा—अहो विरदाई भट्ट! सामंतों के पृथक-पृथक नाम लेकर उनकी मंत्रणा को मेरे समक्ष प्रगट करो।

जैतराउ चामंडराउ इह देव वगरिय।
वलिय राउ वलिभद्र, राम कूरंभ सभरिय॥
खीची राउ प्रसग, जाम जद्दौं भर भक्खिय।
रवणि राज पहु प्रान, सांम दामह धर रक्खिय॥
सामंत मत कैमास विनु, वल वध्यौ सुरतान दल।
सामग स्यघ दुज्जन सया, दया न किज्जै काल खल॥१४१॥

शब्दार्थः—इह=यह। सभरिय=सुनो। भरक्खिय=शत्रु वीरों का नाशक। रवणि=रयणि, रय्यत, प्रजा। राज=राज्य। पहु=राजा। मत=मतवाले, या मत्री। वध्यौ=वृद्धि हो गई। सामग=स्वामी का अग स्वरूपी। स्यघ=सिंह। दुज्जन=दुर्जन, शत्रु। सया=हया, हनन कर्ता, नाशक। किज्जै=करता।

अर्थः—चद कहने लगा—हे वीर! यहाँ वैठे हुए सामन्त मुखियाओं के नाम सुनिये। ये जैत्र राय, चामण्ड राय, देवराय वग्गरी, वलवान वलिभद्र राय, कूरभ-रामराय, प्रसंग राय खींची और शत्रु वीरों का नाश करने वाला जामराय यादव है। ये वीर राज्य प्रजा और राजा के प्राण स्वरूप हैं। इन्हीं ने साम-दाम आदि करके पृथ्वी की रक्षा की है, किन्तु मतवाले सामंत कैमास के आज नहीं रहने से शाही-दल (शहावुद्दीन गौरी की सेना) मे वल वृद्धि हो गई है। वह वीर कैमास स्वामी के अग स्वरूप वडे भारी सिंह जैसा शत्रु-नाशक योद्धा था उसको भी इस दुष्ट काल ने नष्ट कर दिया, यह किसी पर दया नहीं करता।

कहै राउ चामंड, जाम जद्दों सुणि वत्तिय।
गत्त सोचु जनि करौ, सोच भग्गै वलु छत्तिय॥
सुख अतर दुखु होइ, दुखह अंतर सुख पाइय।
सुख दुख वंध्यौ जीउ, जीव वंध्यौ मनु गाइय॥

मनु स्वामि ध्रम्म बध्यौ रहै, स्वामि धरम बंधिय मुगति ।
सो मुगति बंधि मुरतान दल, मथिन सूर कड्डौ जुगति ।।१४०।।

शब्दार्थ:- सुणि=सुनो । बत्तिय=बात । गत्त=गई बात की । सोचु=चिन्ता । जनि=नहीं । भग्गे=नष्ट हो जाता । बलु=बल । अच्छिय=हृदय । अंतर=में, सुख के पीछे, बाद । बध्यौ=लगे हुए । मनु=मन । गाइय=कहागया । स्वामि ध्रम्म=स्वामी धर्म । धरम=धर्म । मुगति=मोक्ष । मथिन=मथने को । सूर=शूर, बहादुर । जुगति=युक्ति ।

अर्थ:–कवि चंद फिर कहने लगा–हे वीरभद्र सुनिये । जामराय यादव के प्रति चामण्डराय की मन्त्रणा यह है कि—गई बात की चिन्ता नहीं करनी चाहिये, क्योंकि चिंता करने से हृदय की उत्साह-शक्ति नष्ट हो जाती है । यह तो स्वाभाविक है कि सुख के बाद दु:ख और दु:ख के बाद सुख आता ही है । इस प्रकार सुख और दु:ख जीव के साथ लगे हुए हैं । जीव मन के साथ लगा हुआ है तथा मन स्वामी-धर्म के साथ लगा हुआ है और स्वामी धर्म मोक्ष का साथी है । वह मोक्ष शत्रु-दल (शाही-दल) को मथने की युक्ति निकाल लेने पर ही निर्भर है (अर्थात् शत्रु-दल का नाश करते हुए मारे जाने में है) ।

पुणि जपै जद्दो जुवान, चामंडराइ सुनि ।
हम पज लग्गौ लोह, लोह लग्गी सुमत्त हनि ।।
साम दाम अरु भेद, बंक तौ कंक करिज्जै ।
कंक बंक भर होहि, बंक भर भूपति छिज्जै ।।
सुरतान खान खुरसान पति, दल बद्दल पावस मनौं ।
प्रथिराज सथ्थ सामंत सौ, तिन महिं छह सत्तह गनौ ।।१४३।।

शब्दार्थ:–पुणि=पुन ,फिर । पज=पग, पग, पर । लग्गौ–लोह=लोहा लगा, लोह बेड़ी डाला गई । सुमत्त=सुमन्त्रणा । हनि=नष्ट हो गई, भार हो गया । बंक=बांके वीर । कंक=युद्ध । कंक-बंक=युद्ध करने पर ही बांके है । छिज्जै=दुख दायक, पीड़ा पहुंचाने वाले । तिन महिं=उन में से । सत्तह=सात । गनौ=गिना मानना ।

अर्थ:—फिर चामण्डराय जद्दा जुवान (जामराय यादव) से कहने लगा कि मेरे पैरों में लोहा पड़ा, उसी कारण से सुमन्त्रणा का अभाव हो गया है । साम, दाम और भेद नीति तो है ही, परन्तु बांके वीर कहलाने वाले को युद्ध करना चाहिये क्योंकि युद्ध से ही बांके की पहचान होती है, नाम के बांके तो स्वामी को दुखदायक

होते हैं उधर खुरासानी (मुसलमानों) के स्वामी सुलतान का दल वर्षा ऋतु के बादल के समान है और इधर पृथ्वीराज के साथी सौ सामन्तों में से केवल छः सात ही रह गये हैं।

दूहा

(ते) छल बल छुट्टे पग पहि, सत छह छत्रि निछत्त ।
समर सगप्पन देव तन, कहौ न मुछ भरि वत्त ॥१४४॥

शब्दार्थः—पगपहि = पगुराज (जयचन्द) से। सत=सात। छत्रि= क्षत्रिय। निछत्त = क्षत रहित। मुछ भरि=गाल फुलाकर, बढ़ाकर। वत्त=बात।

अर्थः—पगुराज से छल बल करके ही तुम मुख्य छः सात योद्धा क्षत रहित होकर बच पाये हो किन्तु देव शरीर धारी रावल समर-विक्रम जो हमारे प्रिय सम्बन्धी है उनके होते हुए विशेष बढ़ाकर अपने को बात नहीं करनी चाहिये ये जैसा कहे वैसा करना चाहिये।

कवित्त

सुनै सद्द चामंड, राइ जद्दों जम वत्तिय ।
गत्त सोचु जनि करौ, सोच भग्गै बलु छत्तिय ॥
जौ तोमू तू कहै, (तो) राज को काज विनासै ।
अद्ध रैणि उठि जाहि, करै दुज्जन पुर वासै ॥
हम पगणि बहुरि बैरी भरौ, लरि ण मरौ जद्दो कहै ।
जह जह सु दैव कुल ससवै, तह तहं पंजर पुर सहै ॥१४८॥

शब्दार्थः—सुनै=सुनकर। सद्द=शब्द। जद्दों-जम=जामराय यादव। गत्त=गई बात की। सोचु=चिन्ता। जनि=नहीं। भग्गै=नष्ट हो जाती। बलु=शक्ति। तोमू=तुम्हे। तू=तू तो, मना। कहै=कहा जाय, करैं। अद्ध रैणि=आधी रात को। उठि जाहि=उठकर शत्रुओं पर चढ़ाई करें, छापा मारे। दुज्जन पुर=शत्रुओं के स्थानों पर। वासै=वास, कब्जा, अधिकार। पगणि= पैरों में। बैरी-भरौ=बेड़ी डालदो। लरि ण मरौ=लड़ कर न मरो। ससवै=सदेह हो। पंजर=शरीर। पुर=पराई। सहै=सहता।

अर्थः—चामंडराय के ऐसे शब्द सुनकर जामराय यादव कहने लगा तुमने कहा कि गई बात की चिन्ता नहीं करनी चाहिये क्योंकि चिंता करने से हृदय से उत्साह एव

शक्ति नष्ट हो जाती है। अब तुमको यदि कुछ मना किया जाय तो राजा के काम मे हानि होने की सभावना है किन्तु मेरी सलाह तो यही है कि अर्ध रात्रि को छापा मारा जाय तो दुर्जनों के स्थान पर हम अधिकार कर सकते है। तब चामड कहने लगा-हे सामतों! यादव वीर के कहने के अनुसार यदि लडकर नहीं मरना है तो उचित है कि हमारे पैरों मे पुन बेडी डाल दी जाय क्योंकि देवगति से जिस वश की शुद्धता मे सन्देह होने लग जाता है वही अपने शरीर पर शत्रु जैसा भी व्यवहार करते है उसे सहन करते है।

कहै राउ वलिभद्र, काम क्रूरौ मतानी।
सवरा सों सग्राम, राज भज्जै राजानी॥
म्हे म्हॉकै ढोलरै, ढाल ढोरी दुढारी।
क्रूरभा ऊपरै, डाढ ढिल्ली उन्ढारी॥
और समुख्ख अन्तर उरी, मन साखी जानै जना।
असुमेध जग्य यौ है तनौ, जनमेजै वरज्यौ घना॥१५३॥

शब्दार्थ:—क्रूरौ=क्रूर। मतानी मत्रणा। सवरा=सामर्थ्यवानों। सों=से। भज्जै=नष्ट होगा। राजानी=राजा का। ढोलरै=टोली, समूह। ढोरी=ढोने वाले बढाने वाले। दुढारी=जयपुर प्रांत। क्रूरभा=कछवाहों ने। उपरै=उखाड दी, उखेड दी। डाढ=दाढ। ढिल्ली उन्ढारी=दिल्ली के ऊपर चलाई। समुख्ख=सामने। अन्तर=भेद। उरी=उर, हृदय। साखी=साक्षी। जना=जन, लोक। असुमेध=अश्वमेध। यौ है तनौ=ऐसा ही समय है। वरज्यौ घना=बहुत मना करने पर भी।

अर्थ:—तब बलभद्र कछवाहा कहने लगा—कार्य साधन के लिए (इस समय) यह क्रूर मत्रणा है, क्योंकि ऐसे समय मे सामर्थ्यवान से युद्ध करना राजा के राज्य को नष्ट करवाना है। हम और हमारे दुढारी ढलैत तो अपने समूह को आगे बढाने वाले हैं। जिस किसी ने दिल्ली के ऊपर दाढ चलाई तो हम कूरभो ने उसे उखाड फेंका। हमारे मुख मे और हृदय मे भिन्न बात नहीं है यह सब लोग जानते हैं और इनका मन साक्षी है। है किन्तु जन्मेजय के अश्वमेध यज्ञ जैसा ही इस समय एक विचारणीय कारण उपस्थित हो गया है। यद्यपि जन्मेजय को बहुत मना कर दिया था फिर भी भविष्य हो कर ही रहा।

कहै रय रामदे, राउ रावत अज्जूना।
है हथ्था नौ साज, राज लद्धो पज्जूना॥
सामतां उम्भार जुद्ध अध्धा सध्धाणी।
चौ अग्गानी सट्ठि, सट्टि आणी पगाणी॥
म्हे गामी गुज्जर गल्हिया, हंसाई हसाइया।
रतिवाहु देहु सुरतान दल, रखि राजन लगि पाइयां॥१४७॥

शब्दार्थः— अज्जूना=आज नहीं। नौ=को। राज-लद्धो=राज्य प्राप्त (विस्तृत) किया। उम्भार=उत्साहित करके। अध्धा=आधे। सध्धाणी=साधन में लिए। चौ-अग्गानी-सट्ठि=साठ ऊपर चार (६४)। सट्टि=सटाकर, जुटाकर। आणी=लाया, प्राप्त की। पगाणी पगु नरेश जयचंद की कुमारी (संयोगिता)। म्हे=हम। गामी=ग्रामीण। गल्हियां=बातें। हंसाई=हंसाने योग्य। हसाइयां=हास्य के पात्र। रतिवाहु=छापा। देहु=मारो। रखि=रक्षा करके।

अर्थः— रामराय बड गुज्जर कहने लगा हे बलिभद्र! आज वे वीर राजा और राज वंशज सामन्त नहीं रहे जिनके बल पर हाथी घोडे सजाकर पृथ्वीराज के नये राज्यों की स्थापना पज्जून द्वारा की गई थी (राज्य को विस्तृत किया गया था)। इस राजा ने सामन्तों को (कन्नौज के) युद्ध में उत्साहित करके आधे सामन्तों को उस युद्ध के साधन रूप में ले लिये और ६४ सामन्तों को (जुटाकर) मरवा कर सुन्दरी पगु राजकुमारी को प्राप्त किया। हम तो ग्रामीण गुज्जर हैं हमारी बातें भी आप वैसी ही मानोगे क्योंकि हम हास्य के पात्र हैं, जिस पर हंसोगे ही। फिर भी कहता हूँ कि सुल्तान के दल पर छापा मार कर इस समय रक्षा करके राजा के चरण छूने चाहिये।

तुम भोरैं भीम कैं, रत्ति सोमति ज्यों जित्तिय।
ज्यों भोरैं अन्न कैं, धाइ धत्तू रस पित्तिय॥
आसानी असपत्ति, लख सिक्कार चढाइय।
हस्ती नी चिक्कार, फटैं रासन उर झाइय॥
पुंडीर राउ भग्गौ भिरां, जे सुरतान बधाइया।
आभग जग अनभंग भर, ते कनवज्ज जुझाइया॥१४८॥

शब्दार्थः— रत्ति=रात्रि में छापा मार कर। सोमति=सोजत्री। अन्न=अन्न (रस)। धत्तू रस=धतूरे का रस। पित्तिय=पीना। आसानी=सहज में। असपत्ति=अश्वपति, बादशाह। लख्ख=लाखों।

सिक्कार=सिक्के, तुरुक । हस्तानी=हाथियों की । चिक्कार=चिंघाड़ । रामन=रमा, पृथ्वी । भीनइ=भीने रूप में, मिट्टी के रूप में, टुकड़े टुकड़े । वध द्या=मरवा दिया । अभग जंग नहीं गमाया (निरंतर) होने वाले युद्ध । अनमग-भर=अभग योद्धा ।

अर्थ:—तुमने छापा मार कर सोमत्ती में चालुक्य भीम और उसके साथियों पर विजय प्राप्त करली थी, भूल कर भी आम्र रस के भरोसे धतूरे के रस का पान नहीं करना चाहिये । क्योंकि इस असुर पति(यवन राज गोरी)ने सहज ही लाखों तुरुकों को अपनी पीठ पर (अपने साथी) कर लिए है । उसकी सेना के हाथियों की चिंघाड़ से पृथ्वी का हृदय टुकड़े २ हो कर फट जाता है । इधर अपनी हालत यह है कि पुंडीरराज (वीर) जो भिड़ने वाले का नाश करने जैसा था उसे सुलतान ने मरवा दिया और निरन्तर होते रहने वाले युद्धों में जो अभग योद्धा थे वे कन्नोज के युद्ध में मारे गये ।

दै गारी गुज्जरह, राय चामंड कहाणो ।
ए जद्दो कूरंभ, जियन वंछै सदाणो ॥
खींची राव प्रसंग, चोर चवें सु पुराणा ।
ते वीरंग विडार, डक वज्जै उभभाणा ॥
गोव्यंदराज बोला वरै, महिल केलि कलपंत किय ।
पंजाब पंच पंचह सुपथ जंत्त गत्त रक्खौ वजिय ॥१४८॥

शब्दार्थ:—कहाणो=कुद्ध क्रोध में एव कुछ संकुचित अवस्था में । सदाणो=सदा, हमेशा । चोर चवें=चमर चंवर, जिनके सिर पर चमर चलते रहते हैं । वीरंग=वीरों । विडार=विदीर्ण करने वाले, मिटाने वाले । डक=डंका । उभभाणा=ऊंचा, चोटीवाले, प्रगट रूप में । बोला=बोल, वचन । वरै=उत्तेजित, जाग्रत हो जाता । महिल=महि, पृथ्वी । केलि=क्रीड़ा, रणक्रीड़ा । जंत्त गत्त=गतिमान होते जा रहे हैं । वजिय=आना ।

अर्थ:—रामराय बड़गुज्जर व्यंग वचन (गाली, सगे सम्बन्धियों में अक्सर मजाक में व्यंग वचन कहे जाते हैं उस रूप में) कहता हुआ चामंड-राय कुद्ध रोष में आगया और कहने लगा—ये यादव और कूरंभ सदा से ही प्राणों की बचत चाहते हैं किन्तु प्रसंगराय खींची पुराने चामर धारी हैं जो शत्रु योद्धाओं को विडार(नाश)देने वाले हैं । इनके रहते हुए हमेशा प्रत्यक्ष में नक्कारे का

डंका बजता रहता है। गोविन्दराज (चाहुआन) केवल बोल देने पर ही उत्तेजित हो जाने वाला है। यह पृथ्वी पर कल्पान्त-समान युद्ध झाड़ा करते रहते हैं। ऐसे वीरों के होते हुए कोई शंका जैसी बात नहीं। पंजाब के पाचों रास्ते शत्रुओं के होते जा रहे हैं अतः बाजी रख लेनी चाहिये।

तब सु राव बलिभद्र हथ्थ जद्दों दइ तारी।
बड गुज्जर दाहिमा बोल-लग्गै अधिकारी॥
को सेवक को सांइ, कौन भर धरकि न खाइय।
केहूँना घर जरै, हास सेकै को आइय॥
सनमध राय सगपन सौ, पच्छै को केही कहै।
सह गवन राज सुरपुर करै ढीली कछु वास न लहै॥१५०॥

शब्दार्थः-दइ=दी। तारी=ताली। बोल लग्गै=बोलने के, मंत्रणा देने के। को-क्या। धरकि न खाइय=धड़के नहीं, भयभीत नहीं हुए। केहूना=किसी का, पराया। हास=हँसते हुए। सेकै=तपाने, तपे। सगपन=सगपन का, सम्बन्धी पनेका। पच्छै=पीछे। केही कहै=क्या रहे, क्या काम का। सह=सब। गवन=गमन। ढीली=दिल्ली। वास न लहै=निवास न रहे।

अर्थः—तब बलिभद्रराव ने हँसते हुए वीर यादव के हाथ पर हाथ मारा और कहा-वीर बड़ गुज्जर और दाहिमा मंत्रणा देने के अधिकारी हैं। हम वीरों में क्या सेवक, क्या स्वामी और क्या योद्धा कभी शत्रु से भयभीत नहीं हुए हैं। हममें ऐसा कोई नहीं, जो पराया घर जलता हो और हँसते हुए आप तापने लग जायँ। स्वामी सेवक सम्बन्ध के उपरान्त पृथ्वीराज से हमारा सगपन का सम्बन्ध भी है, वह पीछे क्या काम का? अतः हम सब स्वर्ग को गमन कर वहाँ का राज्य करेंगे। यदि दिल्ली में हमारा निवास न रहे तो कोई बात नहीं।

दोहा

त्रिसल तेज लग्गीवि भुअ, चख रत्ता हत्रि जान।
जैत राइ वर जौइने, कटिहैं देख वियान॥१५१॥

शब्दार्थः-त्रिसल=तीन सल। तेज=उसके। लग्गीवि=लगगए, पड़ गये। भुअ=भौंहों में। जौइने=जोया, देखा। कटिहैं=कठीर, कटाजर, सिंह। देखवियान=देखने लगा।

अर्थः—यह सुनकर जैत्र प्रमार की भौंहो के मध्य मे तीन सल पड गये और उसके अरुण नेत्र हवि कुण्ड के समान दीख पडे । उस समय वह श्रेष्ठ वीर इस प्रकार देखने लगा, मानों क्रोध मे आया हुआ सिंह देख रहा हो ।

इन कंठन दिल्लिय नगर, इन कठनि लगि राज ।
इन आवध कढ्ढौ बिरचि, साहि आजुही काज ॥१५२॥

शब्दार्थः—आवध=आयुध, सशस्त्र । आजुही काज=आज के कार्य के लिए ।

अर्थः—और कहने लगा—हमारे इन कठो से दिल्ली और दिल्लीश्वर लगे हुए हैं । अत आज के कार्य के लिए शत्रुओ को ललकारते हुए हमे अपने शस्त्रों को निकाल लेना चाहिये ।

कवित्त

राज काज पामार, स्यघ उच्चार वार तिहि ।
हौ जदौं जामानि, बलिय बलिभद्र बार इहि ॥
यह गामी गामारु, रामु रतिवाहु सु जपे ।
ससि खडौ खुरसान, अ वर गुज्जर ग्रह जपै ॥
त्रिन्घात पात भज्जैं सयन, गहन राज रवि उग्रहै ।
आजानबाह पुच्छौ प्रगट, स्वामि ध्रम सिर त्रिव्वहै ॥१५३॥

शब्दार्थः—पामार=प्रमार । स्यघ=सिंह (प्रमार) । वार तिहि=उसी समय । जामानि=जामराय यादव । गामी=ग्रामवासी, देहाती । रतिवाहु=धावा । ससि=चन्द, जयचन्द । खडौ=खड्ग । खुरसान=सुलतान बादशाह । अ वर=इस भू भाग के लिये । त्रिन्घात पात = कठिन वार करते हुए । भज्जैं=नष्ट करे । गहन=ग्रसित । रवि=पृथ्वीराज । उग्रहै=मुक्त होना ।

अर्थः—राजा की कार्य सिद्धि का ध्यान रखता हुआ सिंह प्रमार उस समय कहने लगा—हे जामराय यादव और बलिभद्र वीर ! आप इस समय बलवान है और बडगुज्जर रामराय यह अक्खड़ देहाती है इसीलिए देहातो मे होने वाले रतिवाहादि युद्धों की सम्मति देते है किंतु हमे सोचना यह है कि जयचद, गोरीशाह और गुर्जरेश्वर का खड्ग हमारे प्रदेश के लिए कुग्रह तुल्य हो रहा है । उसी की हमे शका है । इसलिए ऐसा सोचना चाहिए जो कि हम कठिन-वार करते हुए शत्रु सेना को नष्ट करदें और इस गगन मण्डल रूपी भूमण्डल पर सूर्य स्वरूप पृथ्वीराज को इन

शत्रुओं से ग्रसित है उससे उसको मुक्त कर पावें। इसलिए स्वामि-धर्म को सिर पर रखने वाले वीर आजानवाहु से इसके लिए ठीक मंत्रणा लेनी चाहिए।

तव चित्रंग-नरयंद, चित्त चिंता चितानी।
भव भविष्य त्रिम्मयौ, ब्रह्म जानैं न विनानी॥
तुम अज्जवननि अग, जग सुरतान विचारौ।
रत्तिवाहु दे बाहु, कलह केली सु सुधारौ॥
सुभथान प्रान पतिसाह कैं, राज पांन समुह लरैं।
बत्तीय विगति जपैं सुकवि, वहसि वहसि वुल्लैं वरैं॥१५४॥

शब्दार्थ.–चित्रग-नरयद=चित्तौड़ेश्वर। चिंता=सोचा। चिन्तानी=चिन्तन करने वाले। त्रिम्मयौ=निर्माण किया। ब्रह्म=स्वयम् ब्रह्म या ब्रह्मा। विनानी=विज्ञान, विज्ञानवेत्ता। अज्जवननि=आर्यवीर (पृथ्वीराज) के। रत्तिवाहु=धापा। दे वाहु=वाहु युद्ध कर। सुधारौ=सफल करो। सुभथान=शुभस्थान, दिल्ली। प्रान=आत्मा। राज=राजा। पान=हाथों द्वारा, वाहुद्वारा। लरैं=युद्ध होगा। वत्तीय=बात। विगति=बीती हुई। वहसि वहसि=वाह वाह या हंस हंस के। वुल्लै=कहे। वरैं=वर, श्रेष्ट।

अर्थः—तब चिन्तन करने वाले चित्तौड़ पति ने चित में सोच कर कहा–इस संसार मे भविष्य निर्माण को स्वयं विज्ञान वेत्ता ब्रह्मा भी नहीं जान पाते। तुम इस आर्य-वीर (पृथ्वीराज) के अंग बने हुए हो। अत बादशाह से युद्ध करना निश्चय करके चाहे रतिवाह और चाहे वाहुयुद्ध जैसा भी हो निश्चय करके इस कलह-क्रीड़ा मे सफलता प्राप्त करनी चाहिये। इस शुभ स्थान दिल्ली की ओर बादशाह की आत्मा इसे प्राप्त करने को संलग्न है अत में शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज के बीच सामना होकर वाहु-युद्ध होना ही है। इसलिए ऐसा होना चाहिये कि जो बीती हुई बात पर वाह वाह करते हुए (या हँसते हुए) सुकवि वर्णन कर पावे और श्रेष्ठ कहें।

लौहानौ आजानवाहु, वह वह वक्कारिय।
समरस्यघ रावल समुख्ख, अग्गै हक्कारिय॥
तुम सु धर्म राजन अनेय, लज्जा अधिकारिय।
जौ अमत सामंत, ताहि मत्तां उत्तारिय।
दस लख्ख भख्ख सुरतान दल, तन तुरंग उत्तङ्ग वर।
रस मंस अस्त वस प्रान तुम, तौ किसा न दुख्खहि सु कर॥१५५॥

शब्दार्थः—वह वह=वाह वाह । ब्बकारिय=बोला, कहा । अग्गै=आगे आकर, समीप आकर । हक्कारिय=बोला । अमत=अमन्त्रणा । मत्ता-उत्तारिय=सुमन्त्रणा पर ले आये । मख्ख=नष्ट कर देंगे । रस=रक्त रस । मस=मास । अस्त=अस्थि । किमा न=कैसे नहीं । दुम्खहि=दुखायेंगे, पीड़ा पहुंचायेंगे, व्याकुल करेंगे ।

अर्थः—बल-केशरी रावलजी की बात सुनकर लोहाना आजान बाहु वाह वाह कहने लगा और उनके समीप आकर बोला—आप सेना की लज्जा के अधिकारी हैं। हे राजन ! आपका यह धर्म सदा से चला आ रहा है। इस समय सामंत जो अमंत्रणा पर तुले हुए थे उन्हें आप सुमंत्रणा पर ले आये हैं। यद्यपि शाही सेना की संख्या १० लक्ष है फिरभी हम उसके उतंग काय वीरों और घोड़ों को नष्ट कर देंगे। हमारा रुधिर और मांस तो हड्डियों से लिपटा हुआ है, किंतु हमारा प्राण यदि आपके कथन पर अटल है तो हमारे हाथ शत्रुओं को कैसे व्याकुल कर नहीं छोड़ेंगे।

विहँसि राउ परसग, खिझ्यौ खीची चमरालिय ।
राज नैन दिय सैन, बयन बुल्ल्यौ बाढालिय ॥
रे गुज्जर रे जैत, अरे चामडराइ सुणि ।
रा जद्दौं कूरम्भ, बलिय बलिभद्र सीस धुणि ॥
सुरतान छत्र अनछत्र करि, राज सीस छत्रह धरौं ।
इह समरसीह रावलु सुनै, जौ न जुद्ध इत्तौ करौं ॥१५६॥

शब्दार्थः—चमरालिय=चामरधारी । दिय सेन=संकेत किया । गुज्जर=रामराय बड़गुज्जर । जैत=जैत प्रमार । रा जद्दौं=यादवराज, जामराय । कूरम्भ=कछवाहा । धुणि=धुनते । अनछत्र=छत्र रहित । राज=राजा के । समरसीह=समर केशरी । इत्तौ=इतना, ऐसा ।

अर्थः—उत्साह धारण करता हुआ और शत्रुओं पर कोप प्रगट करता हुआ वह खड्ग एवं चामरधारी योद्धा प्रसंगराय खीची राजा के नैनों का इशारा पाकर बोला—अहो रामराय बड़गुज्जर, जैत्रराय, चामण्डराय, बलवान यादवराज और कूरम्भ-बलिभद्र आप शीश धुनते हैं किन्तु मैं निस्संकोच कहता हूँ कि मैं शाह को छत्र रहित और राजा को सच्छत्र करके ही रहूँगा। मैं रावल समर केशरी को साक्षी बनाता हुआ कहता हूँ जो ऐसा युद्ध मैं नहीं करूँ तो मुझे वीर मत समझना।

विरह्-मड चामड-खड, उच्चरिग मत-मह।
खग्ग मग्ग अन दग्ग, ध्रम्म स्वामित्त रत्त-रह॥
उमरि साहि विधि-वद्ध, छिनुन इत उत वर वज्जै।
टरै न द्रिग टारत, वीर गज्जै धर गज्जै॥
नर मत देव मडल मुखह, सुखह सद्ध अध अद्ध हुअ।
वर वरौ वीर दाहर तनौ, यह णिह्च मन्नौस धुअ॥१५७॥

शब्दार्थ:—विरह-मड=विद्रोह का मडन करता हुआ ससार से विरक्त होता हुआ। चामड-खड= वीर खडेराय चामड। मत मह=मतवाले पन में। अन दग्ग=अदग्धित निष्कलंक। ध्रम्म-धर्म। रत्त-रह=रत रहने वाला। उमरि=उमड पड़ा। साहि=शाह। विधि-वद्ध=वधिक की तरह। छिनुन—क्षणिक भी नहीं। इत उत=इधर उधर चल विचल। वज्जै=कहाते। टरै न=नहीं हटता। द्रिग टारंत=आँखें बदलने पर। मत=मतवाले। मुखह=मुहाने का, द्वार का सुखह-सद्ध=सुख पूर्वक साधन कर। वरौं=शत्रु में पकडू गा णिहच=निश्चय।

अर्थ:—ससार से विरक्त होता हुआ वीर खडेराय-चामड जो खड्ग के रास्ते पर निष्कलक और स्वामी धर्म में लीन था, वह मतवाला होकर कहने लगा, वधिक स्वरूप होकर शाह उमड आया है, किन्तु वीर वही है जो चल विचल नहीं होता। विपक्ष के आखे वदलने पर जो पीछे नहीं हटता और जिसकी गर्जना से पृथ्वी प्रतिध्वनित हो जाती है। ऐसे मतवाले वीरो मे से आधे तो स्वर्ग मडल के द्वार का (कन्नौज युद्ध में) सुख पूर्वक साधन कर चुके (मारे गये), फिर भी मेरा ध्रुव निश्चय है कि मैं दाहरराय का पुत्र हूँ। अत मैं श्रेष्ठ वीरों को कावू मे करके ही रहूँगा।

समुह वीर सम वीर, मत माल्हन इह सारिय।
राज समुह रालह, सत्त सूरत सचारिय॥
सुपन जम जमनह, क्रम्म गोरिय गुर ठिल्लन।
इअ अजव्व मन मत्त,टरइ जीव न कलि खिल्लन॥
अनुसरहु धम्म चहुआन रण, मन सु साहि साहाब सम।
दुरजय दुराय छुट्टन मुगति, इय-नियान खुट्टै सु दम॥१५८॥

शब्दार्थ:—सन=समान। सारिय=सँवारा, मडन किया। मत्त=पच्ची। सूरत=शूरता, वीरता। जम=जिमि, जैसे। जमनह=जन्म। क्रम्म=कर्म। गुर=भारी। ठिल्लन=ढकेलना। इअ=यह।

अजब्ब=अजब। कलि=कल, सुन्दर। खिल्लन=खेल, रणक्रीडा। क्रम्म=कर्म। साहाब=शहाबुद्दीन। दुज्जय=विकट विजय, भयानक विपत्ती। छुट्टन=छूटना, बिछुड़ना। सुगति=मोक्ष। इय=यह। नियान=ज्ञान। खुट्टै=नहीं रहेगा। दम=श्वास।

अर्थ:—सामन्तो के समस्त वीर माल्हन ने भी युद्ध मत्रणा का मडन किया, जिससे पृथ्वीराज और रावलजी के सामने सच्ची वीरता का सचार हो पाया। वह कहने लगा—इस ससार मे जन्म लेना स्वप्न तुल्य है। हमारा कर्म महान गौरी-दल को ढकेल देना है। हमारा यह मन अजब मतवाला है। यह जीव इन सुन्दर युद्ध-क्रीडाओं से नहीं टलता। अत हे राजन पृथ्वीराज! जिस प्रकार सुल्तान शहाबुद्दीन का मन रण का अनुसरण करता है उसी प्रकार अपने को भी रण का अनुसरण करना चाहिये। इस विकट विजय से बचना मोक्ष से बिछुडना है। सच्चा ज्ञान तो यही है कि अत में एक दिन श्वास नहीं रहेगा।

पहुमि ईस पलटीस, रोस तजि रहसु विचारिय।
प्रिथा कत सोमेस तन, हँसि हँसि दिय तारिय॥
निसा अद्ध बत्तारी, देव कदल नहि पिक्खे।
हम मनुक्ख तन रूप, किति कहि कहि कह भक्खे॥
धवली सु रैणि धवली दिसा, धवल कध सम्मुह लरहि।
सोमेस आन सुरतान सों, जौ न जुद्ध इत्तौ करहि॥१५६॥

शब्दार्थ:—पहुमि ईस=पृथ्वीपति पृथ्वीराज। पलटीस=विरुद्ध होता हुआ। रहसु=रहस्य। प्रिथा कत=पृथा कुमारी के पति, रावल समर विक्रम। सोमेस तन=सोमेश्वर का तनय (पुत्र)। बत्तरी=बीत गई। देव=देवता, वीर भद्र गण। कदल=कदरा। नहि पिक्खे=नहीं देखा गया। मनुक्ख=मनुष्य। कह=क्या। भक्खे=कहे। धवला=उज्ज्वल शुक्ल पक्षीय। धवल-कध=वृषभ कधर। आन=दुहाई।

अर्थ:—पृथ्वीपति (पृथ्वीराज) ने शत्रुओं के विरुद्ध होते हुए शान्ति पूर्वक रहस्य मय विचार किया और रावलजी तथा सोमेश्वर के पुत्र पृथ्वीराज ने हस हस कर तालियाँ दीं। फिर पृथ्वीराज कहने लगा—अब अर्ध रात्रि बीत गई है, देवता (वीर भद्रगण) कदरा मे चला गया, वह फिर देखा नहीं गया। अब तो हम सब शरीर रूप मे मनुष्य है, हम अपनी ही कीर्ति बार बार क्या कहे। मेरा तो यही निश्चित कथन है कि इस उज्ज्वल निशा (शुक्ल पक्ष की रात्रि) की समाप्ति पर दिशाएँ उज्ज्वल

ही जायेंगी, तब यह वृषभ कवर वीर (युद्ध रूपी रथ को खींचने वाला पृथ्वीराज) शत्रु से सामना करके लड़ेगा। मैं अपने पिता सोमेश्वर की दुहाई देकर कहता हूँ कि कथन के अनुसार ही सुलतान से युद्ध करूंगा।

कहै जैत पामार, वार वग्गरी तुम्हारी।
कही सुनी चामंड, जाम जहाँ अधिकारी॥
अप्पु पान तोलियै, सेन सुरतान निहारौ।
मवन मत्तु चुक्कियै, धरम छत्री जनि हारौ॥
सरवर सु वीर मभरि धनिय, मुहि प्रतीति राजन तनी।
जै अजै भाग भूपति चढै, हौ चढै धार धारह धनी॥१६०॥

शब्दार्थ:—पामार=प्रमार। वार=समय। वग्गरी=देवराज वग्गरी। अधिकारी=मन्त्री। अप्पु = अपना। पान=वल, शक्ति। तोलियै=तुलना करिये। निहारौ=देखो। मवन=मृत्यु से। मत्तु-चुक्कियै= हटिये। हारौ=छोड़ो सरवर=समान। तनी=की। जै=जय, विजय। अजै=पराजय। धार= ...गा। धारह-धनी=धार राज वंशज, देवराज वग्गरी।

. . कहने लगा— हे देवराज वग्गरी! आपके बोलने का समय ., जामराय आदि मन्त्रियों ने इस विषय में बहुत कुछ कहा सुना है। न को सैन्य शक्ति से अपनी शक्ति की तुलना करनी चाहिये। छोड़ना और मृत्यु से नहीं हटना चाहिये। मुझे इस राजा कि यह शत्रु के समान ही वीर है। विजय और पराजय तो राजा यदि शत्रु पर चढ़ाई करेगा तो यह "धारराज वंशज" तलवार की धारा पर अपने शरीर को चढ़ा देगा।

नी, वीर वीरह वरु बंध्यौ।
...कैं, साम दामह मिलि संध्यौ॥
., काज केवल कलहंतिय।
सारि भग्गै रहि तंतिय॥
... लाज दुव सुअ धरा।
..., पुणि पन्छै मरौ॥१६१॥

शब्दार्थः—बल=बल गज्यौ=गाज्यो कलहतिय—कलह (युद्ध) क्रीडा करने वाला। जत्र=यन्त्र। जोर=बल, शक्ति। सर=स्वर। सारि=लोहा। सारि=सार युक्त। ततिय=तत्व। हथ्थ=हाथ में अधिकार में। सर=स्वर-मंत्र-वाक्य। दुव-भुव=दोनों भुजाओं पर। मो बुझिझ=मुझे पूछते हो तो। जुझिझ=युद्ध। पुणि=पुनि, फिर। पच्छे=पीछे, एक दिन।

अर्थः—उस वीर देवराज बग्घरी ने अपनी मंत्रणा से वीरो की शक्ति मे वृद्धि करदी। वह कहने लगा—जो कोई इससे भिन्न आचरण करना चाहें तो वे मिल कर अलग ही साम, दाम का साधन करे। मैं तो केवल पृथ्वीराज के कार्य के लिए युद्ध क्रीडा करने वाला हूँ, हमारी शक्ति ही एक यंत्र है और लोहा ही स्वर है। इन सार युक्त वस्तुओं के नष्ट होने पर पीछे केवल तत्व (यश) रह जायगा। हमारा जीव तो हमारे अधिकार मे और मंत्र वाक्य तुम्हारे साथ है। इसलिए आप अपनी भुजाओं पर थोडी सी क्षत्रियत्व की लज्जा को धारण करो। यदि मुझ से मंत्रणा पूछते हो तो युद्ध मे शत्रु से सामना करके लडो, क्योंकि नहीं लडोगे तो भी एक दिन तो मरोगे ही।

दोहा

देवराज जपि जैत सों, तुम जानौ सह तत।
उहि दिन वहु जित्तो खवद, इहि दिन इह गत मत ॥१६२॥

शब्दार्थः—जपि=कहा। तत=तत्व। खवद=सम समान। गत=गति, हालत, दशा। मत=मंत्रणा।

अर्थः—पुन देवराज जैत्र प्रमार से कहने लगा—कि तुम सब तत्व को जानने वाले हो। एक दिन तो वह था कि हमने गोरी और उसके साथियो पर विजय प्राप्त की थी। आज यह दिन है कि हमारी मंत्रणा की ऐसी हालत है (अर्थात हम एक मत होकर नहीं चल रहे है)।

कवित्त

एकु सु दिनु सामंत गहि गोरी गहि बंध्यौ।
एकु सु दिनु सामंत, पग जग्गह घर रुध्यौ॥
एकु सु दिनु सामंत, चाय चालुक्क बिडार्यौ।
एकु सु दिनु सामंत राजु रणथंभ उधार्यौ॥
दिनु एकु स्वामि सामंत कौं मतु छुट्टि कलहंत रह।
सुर लोकि लोकि नीहत नरिय परिय वत्ति नरियार दह ॥१६३॥

शब्दार्थ:—एकु=एक ।घरु=घर, स्थान । रुघ्यौ=रौंध लिया, घेरलिया । चाय=इच्छा । बिडार्‌यौ=विदार दिया, दमन कर दिया । राजु-रणथम=राजा का रणथम्भोर दुर्ग । मतु छडि=मत्रणा को छोड़ दी है, एक मन्त्रणा नहीं है । क्लहंतरह=सकट समय । लोकि लोनि=प्रत्येक (लोगों) के मुख से । जीहत=जीह, जिह्वा । जरिय=जड़ती, कहती । वज्जि=बजी ।

अर्थ:—एक दिन वह था कि सामंतों ने गोरी शाह को पकड कर बांध लिया, पगु के यज्ञ स्थान को घेर लिया, चालुक्य की इच्छा का दमन कर दिया और राजा के रणथम्भोर दुर्ग का उद्धार किया था, किन्तु आज स्वामी और सामतों मे ऐसे आने वाले सकट के अन्तर्गत भी एक मन्त्रणा नहीं है। आज प्रत्येक व्यक्ति के मुख से भिन्न २ बात निकल रही है। देवराज ने यह बात कही, इतने में छः घड़ी रात्रि जाने की सूचना रुप में घडियाल बजी।

दोहा

सुणिय मत्त दिवराज कौ, ठयौ जुद्ध मतिमाणि।
उठि महल्ल प्रथिराज तव, दिय अग्या वर वाणि ॥१६४॥

शब्दार्थ:—सुणिय=सुनी । मत्त=मत्रणा । ठयौ=निश्चय किया । मतिमाणि=मतिमान । उठि-महल्ल=सभा बिसर्जन करने की । अग्या=आज्ञा । वर वाणि=श्रेष्ठ वाणी ।

अर्थ:—देवराज की यह मत्रणा सुन कर सब मतिमान योद्धाओं मे युद्ध करना निश्चित हुआ, तव पृथ्वीराज ने श्रेष्ट वाणी में सभा विसर्जन की आज्ञा दी।

कवित्त

जुद्ध मत सा सत्त, थपिय चहुआन जान घन।
सबै सूर सामंत, च्यत लग्गै सु जोर मन ॥
मुख्ख तेज असहेज, नयन नंचै सु सूर रस।
उद्धलोक आखेपि, ध्रम्म अम्मैव स्वामि तस ॥
सा लख्खि अग्गि गिरिचित्र पात, दुसह काल कारण धरौ।
सनमंध सगप्पन जाणि जिय, सुअन सोम प्रति उच्चरौ ॥१६५॥

शब्दार्थ:—सा=वह । सत्त-थपिय=सत्य (स्थाई) रूप में स्थापित की । जान-घन=विशेष जानकारी रखने वाले ने । च्यंत=चिंतन । जोर-मन=मन को जोड़ (एक) कर । असहेज=असह्य । नचै=नृत्य कर रहा था । सूर-रस=वीर रस । आखेपि=आक्षेप करने वाले । भ्रम्म=धर्म । अम्मैव=

सुमिग, स्मृति में रखा। तस=ते, वे। सा=उन। अग्गि=आगे। गिरि चित्र=चित्तौड़। दुमह काल=बुरे समय। वरौ=सोचो। जाणि=जानकर।

अर्थः—विशेष जानकारी रखने वाले पृथ्वीराज ने युद्ध करने की मन्त्रणा को स्थाई-रूप से स्थापित कर दिया। तब सब बहादुर सामंत अपने मन को एक करके आगे के चिंतन मे लग गये। उनके मुख पर असह्य तेज था और नेत्रों मे वीर रस नृत्य कर रहा था तथा वे सदा स्वामी-धर्म की स्मृति रखते हुए ऊर्ध्वलोक (स्वर्ग) पर आक्षेप करने वाले थे (अर्थात वे अपने समस्त देवताओं को तुच्छ समझते थे)। उन वीरों ने अपने आगे चित्तौडपति को देखकर उन्हे निवेदन किया कि आप सम्बन्ध और सगपन को मन मे सोचते हुए आगे आने वाले बुरे समय के कारण की चिंतना करते हुए सोमेश्वर के पुत्र पृथ्वीराज को इस विषय मे अब कुछ कहिये।

सुनिय वत्त चहुआन, हत्त आभित्त मन्नि मन।
पच्छ चिंति पामार, छोणि कम्मार लज्ज तन॥
मत्त गुठि मन सुठि, जैत रख्ख हित राज रह।
घरिय हीय सावीय, आप गभीर वीर तह॥
सनमुख्ख आइ सिर णाइ करि, कहिय राज परसस करि।
रख्खहु सु राज ढिल्लिय सुथल, राह न्यत जानहु सु परि॥१६२॥

शब्दार्थः—हित्त=हित। आभित्त=अभीत, निर्भय। मन्नि=मानकर। पच्छ=पीछे। चिंति=चिंतन। पामार=प्रमार। छोणि=क्षोणि, पृथ्वी। लज्ज=लज्जा। तन=तिन, जिसे। मत्त गुठि=मत्रणा गाठ (हाथ) की। सुठि=पाठ, ध्यान दे। रख्खहित=रखने मे। रह=रह पायेगा। घरिय=घड़ी। हीय=इस। सावीय=सावन। गाढ़=गाढ़, तथा। परसस=प्रशंसा। परि=आगे के भविष्य मे।

अर्थः—सामंतों की यह बात सुन कर रावलजी ने निर्भयता पूर्वक चाहुआन के हित चिन्तन को मन मे स्थान दिया और विचार कर कहा—जिसे पृथ्वी और राजकुमार की लज्जा का ध्यान रहे उसी प्रमार (जैत) को पीछे दिल्ली पर रखना चाहिये। इस गूढ मन्त्रणा को ठीक तरह से मनमे स्थान देकर कहा कि जैत प्रमार को पीछे रखने मे ही राज्य रह पायेगा। यह घड़ी ऐसी है और इसका यही सार है। यह कहकर रावलजी ने उस समय धैर्य धारण

कर लिया और गभीर हो गये। तव पृथ्वीराज ने रावलजी के सामने आकर उनको सिर नवाया और उनकी प्रशसा की, तथा कहा—हे राजन! आप भविष्य पथ को जानने वाले हैं (अत आपने जिसे नियुक्त करना निश्चय किया हो उसे दिल्ली के भू-भाग की रक्षा के हेतु रख दीजिये)।

तव जपै जगजोति, व्यास हरि जोति अपार।
सुनौ राइ दिल्लीस, तजो मन खेद सु भार॥
काल व्याल ससार, ग्रमै सव रिद्धि लोक रह।
करु ण रोस सद्दोस, हंम जपैं सु विद्धि इह॥
उच्चरै राज प्रथिराज तव, कहौ चित्त छडै द्रमय।
आरिष्ट इष्ट सोचहि अनत, हिय हम मंनहि अत खय॥१६७॥

शब्दार्थः—मार=मारी। रिद्धि=वैभव, सम्पति। लोक-रह=लोक मे (यहीं पर) रह जाता। करु=करिये। ण=नहीं। सद्दोष=दोष युक्त, दोष दीजिये। विद्धि=शास्त्र विधि से। छडै=छोडकर। द्रमय=दुविधा। आरिष्ट=अरिष्ट। अनत=अन्य, विपक्षी। मनहि=मानते हैं। खय=क्षय योग।

अर्थः—तव व्यास जग ज्योति, जिसकी ज्योति हरि–ज्योति के समान अपार थी, उस ने कहा—हे दिल्लीश्वर! सुनिये, आप अपने मन से इस भारी दुःख को त्याग दीजिये, क्योंकि सर्प रूपी काल संसार मे सब को ग्रस जाता है और सब वैभव यहीं रह जाता है। होने वाली वात को शास्त्र विधि से मैं कहता हूँ। उस पर आप हमें दोष मत देना और न क्रोध ही करना। तव राजा पृथ्वीराज ने कहा—आप चित्त से दुविधा को छोड कर जो बात होने वाली है उसे कहिये। तव ज्योतिषी ने कहा-इष्ट द्वारा सोचा गया तो विपक्षियों के लिये यह युद्ध अरिष्टकारी है ही, किंतु मैं हृदय से मानता हूँ कि इधर भी इस युद्ध मे क्षय कारक योग है।

सुनिय वत्त दिल्लीस, रोस उम्भार आप तन।
मन उदास च्यतास, काल मन्निय सु क्रत्त मन॥
निरखि स्वामी सामत, ताम खुम्मान स जपिय।
अब्ब काल संम्रहै, छोनि इह फेरि ण कंपिय॥
रक्खहु सु रेण कुम्मार रज, धरा वध ववौ सुभर।
मम करौ मोह चितौ सु हरि, सजौ स्वर्ग मारग सु झर॥१६८॥

शब्दार्थः—रोस-उब्भार=क्रोध उमड़ पड़ा। च्यताम=चिन्ता। कत=कृत्य। ताम=तब। खुम्मान=खुमान उपाधिधारी रावल समर-विक्रम। स=उसने। अब्ब=सबको। सग्रहै=पकड़ लेता, खींच लेता। छोनि=क्षोणी, पृथ्वी। इह=यह। फेरि=फिर भी। ण=नहीं। रज=राज्य पर। बव=प्रबंध। बंधौ=बाँधिये, करिये। मम=मत चिंतौ=चिन्तन करो। झर=झड़ी।

अथः—व्यास की बातें सुन कर दिल्लीश्वर को क्रोध हो आया, साथ ही चिन्ता से मन में उदासी भी छा गई। काल कृत्य को उसने मन मे निश्चय मान लिया। यह हालत राजा और सामन्तों की देख कर खुमाण उपाधिधारी रावल (समर-विक्रम) ने कहा—यह काल सभी को खीचता रहता है फिर भी यह निष्ठुर पृथ्वी दुःख पाकर कंपित नहीं होती। अतः राज्य पर रैणसी कुमार को स्थापित कर दीजिये और पृथ्वी की रक्षा का प्रबन्ध सामन्तों को नियुक्त करके कर लीजिये। अब पृथ्वी का मोह नहीं करके हरि का चिन्तन करते हुए स्वर्ग मार्ग के लिए सजकर शस्त्रों की झड़ी लगा देनी चाहिये।

अति तरप्प बरतिख्ख, खंभ तिख्खन तरक्किय।
बंभ अंड विहरिय, मनहु दारिम दर रक्किय॥
फनिन परिय फुफ्फरिय, फेन फुंकरिय फनिन्दह।
परम उग्र वपु दुग्ग, दिग्ग मुद्दिग दिग अंतह॥
नरहर अपुव्व नह पुव्व पर, दुरद दनुज दारुन दिसनि।
जन हेत विध्धुन्निय अधम उर, रुहिर "चन्द" घुटिय रिसनि॥१६६॥

शब्दार्थः—तरप्प=ताप, आतंक। बरतिख्ख=बरताई, आई। खंभ=स्तंभ। तिख्खन=तीक्ष्ण। तरक्किय=तड़क गया, फट गया। बंभअंड=ब्रह्माण्ड। विहरिय=विदीर्ण होगया। दर रक्किय=दरक गी हो, फटी हो। परिय फुफ्फरिय=दम घटने से फू फू करने लगे। फुंकरिय=फुत्कार। फनिन्दह=शेष नाग। वपु=शरीर, स्वरूप। दुग्ग=दुर्गम। दिग्ग मुद्दिग=दिशाओं में मुंद गये, दिशाओं में लुप्त (ओट) होगये। नरहर=नृसिंह। अपुव्व=अपूर्व। पुव्व=पहले। पर=भविष्य में। दनुज=दानव। दारुन=भयानक। दिसनि=मार, के लिए। जन=दास, भक्त। हेत=हेतु, लिए। विध्धुन्निय=वध दिया, मार दिया। रुहिर=रुधिर। घुटिय=पीगये। रिसनि=क्रोध करके।

अर्थः—यह सुनकर राजा ने ध्यान करते हुए कहा—जब नृसिंह ने अपना विशेष आतंक छाया तब तीक्ष्ण स्तंभ फट पड़ा, दाडिम के समान ब्रह्माण्ड विदीर्ण हो गया

श्रुत कुंडल मंडलिय, मौर पक्खरिय सिरोयणि।
मुरलि मधुर मुक्खरिय, चक्र वक्करिय करोयणि॥
इय ध्यान मण राजन धरिग, मत्त वत्त पच्छै सरिय।
कैलासवास सामंत सह, कलह केलि रच्चिय ररिय॥१७१॥

शब्दार्थः—पुंडरिय=पुंडरीक, कमल। त्रिसल=पलदार, सवाँरे हुए। पीत-अमरिय=पीताम्बर। गुंज-मंजरि=मंजु गुंज माला। आरोहित=धारण किये हुए। मुक्खरिय=मुख (अधर) पर। वक्करिय=वक्र, चन्द्राकृति। करोयणि=हाथ में। इय=ऐसे। मण=मन में। धरिग=धरा, किया। मत्त वत्त=मन्त्रणा की बात। पच्छै=बाद में। सरिय=निश्चय की। कैलासवास—स्वर्गारोहण। ररिय=उत्साह, प्रसन्नता।

अर्थः—वे ही प्रभू भक्तों के लिए बरसाती बादलों के समान घनश्याम, कमल लोचन, सँवारे हुए पीताम्बर युक्त, मंजु गुंज माला धर, कानों मे कुंडल पहिने हुए, मोर मुकुट धारी, मुरलीधर, जो चक्र पाणि है ऐसे हरि का राजा ने ध्यान किया। तद्पश्चात् उत्साह पूर्वक यही मन्त्रणा निश्चय हुई कि वीरों का युद्ध क्रीडा करके स्वर्गारोहण करना ही अच्छा है।

सु मन मयन मंजरिय, रमन खंजरिय विरमिय।
तिलक अलक जंजरिय, असित अंजरिय द्रिगमिग॥
सुश्रित असित अमरिय, चिहुर डमरिय सिरनिय।
रसन हंस झंझरिय, डवरु डडरिय करनिय॥
वर विख्म सुक्खमह हंकरिय, भरिय मत्त दिठि मंजरिय।
अँ-श्रैय द्रुग्ग प-प परिय, राज ध्यान मनम सरिय॥१७२॥

शब्दार्थः—सु=वह, जो। मयन=मतवाली। मंजरिय=मंजुलिय, श्रेष्ठ। रमन=रमणी। विरमिय=विरमने वाला, रीझने वाला। जंजरिय=जंजीरें। असित—अंजरिय=काला अंजन। द्रिगमिग=नेत्रों में। सुश्रित=मश्रित, मभार। असित=सांवला। अमरिय=देखो। डमरिय=घने फैले हुए। सिरनिय=सिर। रसन=ध्वनि, बजना। हंस=बिछिया। झंझरिय=झांझर, नेउर। डवरु-डडरिय=डम डम शब्द बजाती। करनिय=हाथ में। विख्म=विषम। सुक्खमह=शुद्ध, साधारण। हंकरिय=हुँकार। भरिय-मत्त=मद भरी। दिठि मंजरिय=मंजु दृष्टि। अँ-श्रैय=अहो। द्रुग्ग=दुर्गो। प-प=पैरों में। मनम=मन में, मानसिक। सरिय-स्थिर।

अर्थः—मन से जो मतवाली और श्रेष्ट है, खंजरी के नाद पर रीझने वाले (शिव) की जो रमणी है, भाल पर जो तिलक किये हुए है, अलकें जिसकी जजीरें तुल्य हैं, नेत्रों में जिसके अंजन आँजा हुआ है, जिसे कोपित देखकर ससार काँपता है, घने केशों से जिसका सिर सुशोभित है, रुनझुन विछिया और नेउर वजाती हुई जो चलती है, हाथ से जो डम डम डमरू बजाती है, जिसकी साधारण हुँकार भी विषम है और जिसकी मद भरी मजु दृष्टि है। ऐसी देवी का राजाने मन में ध्यान किया और कहा-हे दुर्गे! हम तुम्हारे पैरों मे पडे हैं (चरण शरण हैं)।

सो सभरि ढिल्लीस, जैत अप्पह आभासिय।
करिय किन्ति विधि नीति, रीति राजग रहासिय॥
रयन पान ग्रहौ, देस सिर भार सु धारौ।
रखहु रज चहुआन, प्रीति अप्पां प्रतिपारौ॥
उच्चर्यौ गरुअ पामार गजि खग्ग सीस आयास सजि।
आरत्त नैन श्रुति वेन तन, उहसि रोम मुंछां उसजि॥१७३॥

शब्दार्थः—सो=उस। अप्पह=स्वयम् ने। आभासिय=प्रकाश डाला, कहा। करिय=करना चाहिये। रीति राजग=राजरीति। रहासिय=रहपावे। रयन=कुमार रैणसिंह। पान=पाणि, हाथ। समहौ=ग्रहण करो। अप्पां=अपना। गरुअ=गहरी। पामार=प्रमार। गजि=गर्जना करके। आयास-सजि=आकाश से लगा (आकाश की ओर उठाकर)। आरत्त=रक्त, अरुण। श्रुति-वेन=शास्त्र समत वचन। तन-उहसि रोम=शरीर को रोमांचित करता। मुछा उसजि=मूछे सँवारता (मरोड़ता) हुआ।

अर्थः—फिर उस दिल्लीश्वर संभरी ने जैत्र प्रमार को कहा-अब वही करना चाहिये जिससे कीर्ति की वृद्धि हो और नीति युक्त राज रीति रह पावे। अब तुम्हें चाहिये कि कुमार रयन सी का हाथ अपने हाथ मे ग्रहण करलो (कुमार के रक्षक हो जाइये) और देश का भार सिर पर धर लीजिये। ऐसा करने से तुम प्रेम का पालन और मुझ चाहुआन के राज की रक्षा कर सकोगे। यह सुनकर वीर प्रमार अपनी तलवार और सिर को आकाश की ओर उठा शरीर को रोमांचित करता हुआ, अरुण नैत्र करके मूछे मरोड़ने लगा और गहरी गर्जना के साथ शास्त्र समत वचन कहने लगा।

कहैं जैत पामार, अहो ढिल्ली नरेस सुणि।
अज्ज कज्ज मो कंव, रैण कारुण्ण आनि गुणि॥

आदि छत्र तुम सीस, अज्ज सिर मुभ्भ कित्ति खल।
भर गोरी गरुअत्त, करो उभ्भार भार दल ॥
सचरों मभ्भ बिचे बहार, विधि कारण मो कव दिय।
को करहु बध सद्धह सकल, मे जित्ते हरिलोक लिय ॥१७४॥

शब्दार्थः—सुणि=सुनिये। अज्ज--आज। कज्ज=कार्य। रैण=कुमार रैणसी। कारण= के लिए। आनि=अन्य। गुणि=सोचिये, नियुक्त करिये। मुभ्भ=मेरे। कित्ति=कीर्ति रूपी छत्र। खल=शत्रु। गरुअत्त=गौरव। उभ्भार=बुरी तरह, आघात करके। भार=भाड़ूंगा, काट दूंगा, नष्ट कर दूंगा। सचरों मभ्भ=शत्रु सेना के मध्य में प्रवेश करूंगा। बिचे=कराल, भयानक। बहरि=विधरि, नाश कर, ध्वंश कर। को करहु बध=कुछ और ही प्रबंध करो। सद्धहु सकल=सब युद्धार्थ तय्यार हो जाओ।

अर्थः—जैत्र प्रमार बोला, अहो दिल्लीश्वर! सुनिये, आज के कार्य के लिए (युद्ध के लिए) मेरा स्कंध है। अत कुमार रयनसी की रक्षा के लिए अन्य को नियुक्त कीजियेगा। आदि से आपके सिर पर छत्र है, किन्तु शत्रु का कीर्ति-रूपी छत्र आज मेरे सिर पर होगा। वीर गोरी की सेना के नाश के साथ २ आज उसके गौरव का भी नाश करके रहूंगा। भयानक शत्रुओं का ध्वंस करता हुआ मैं शत्रु सेना के मध्य में जा पहुँचूंगा। ब्रह्मा ने इसीलिए मुझे कवा दिया है। मैंने हरिलोक को जीतना निश्चय कर लिया है इसलिए आप यहां पीछे का कुछ प्रबन्ध कर लीजिये।

करिय सुचित भर सब्ब, राज दिन्नेव द्रव्य भर।
मगि मदन-स्यगार, गज्ज वह पट्ट मद झर ॥
रयन कुमर आभासि, नग न माला मुत्ताहल।
अमी वरिष निन पानि वदि कयनउ कोलाहल ॥
आरोहि गज्ज कुम्मार, णिज-पञ्च चव सामंव किय।
जोगिनिय वदि चहुआन पहु अन्य राज मन्नेव इय ॥१७५॥

शब्दार्थः—सुचित=सूचित। गज्ज=हाथी। वह पट्ट=पट्टा चलाने वाला। आभासि=सुशोभित किया। [illegible]=दी पहनाई। मुत्ताहल-मोतियों का। अमी=अमि। वदि=बंदीजन। कयनउ= किया। कोलाहल=[illegible]। [illegible]। आरोहि=चढाया। णिज पञ्च चव=अपने भाई (हमिराज) को पीछे का। [illegible]=([illegible]) [illegible] किया। पहु=राजा। अन्य राज=[illegible]। [illegible]

अर्थः—तब राजा ने सब सामंतों को (कुमार को राज्य पर स्थापित करने के विषय में) सूचित करते हुए ब्राह्मणादि को बहुत सा द्रव्य दान दिया, फिर मदनशृंगार नामक हाथी जिसके कपोलों से मद झर रहा था और जो पटा चलाने मे कुशल था उसे मँगवाया। तत्पश्चात कुमार रयनसी को बुला उसे मोतियों की माला पहनाई और अपने हाथ से इसके कमर मे तलवार बाँधी। यह देखकर वंदीजनों ने उच्च स्वर से विरुदोच्चारण किये। फिर राजकुमार को हाथी पर चढाया। उसकी रक्षा का भार अपने भाई (हरिराज) को देकर उसे (प्रबंधक रूप में) शासक बनाया। इस प्रकार पृथ्वीराज ने अपने पुत्र को राजा बना कर योगिनी को वन्दना की और इस कार्य से अपने को सफल माना।

उट्ठि महल प्रथिराज, मगि आरोहन वाजिय।
रावल प्रथम चढाय, चढ्यौ चहुआन सु ताजिय॥
करि अस्तुति सम स्यघ, तुमहि वड्डे वड्डाइय।
तुम जुग्गंद जग जित्त, कित्ति तुम कहिय न जाइय॥
परसंस करत अन्नेक परि, करि डेरा रावर समर।
चढ्ढनह वार णिसि सेप कहि, आयो वज्जत वज्ज घर॥१७६॥

शब्दार्थः—उट्ठि महल=सभा विसर्जन करके। मगि=मागा, लाने को कहा। आरोहन=सवारी के लिए। वाजिय=घोड़ा। ताजिय=ताजी जाति के घोड़े पर। अस्तुति=प्रशसा। सम=सामने। स्यघ=रावल समर केशरी। अन्नेक परि=अनेक प्रकार मे या बहुतों के समक्ष। करि-डेरा=डेरे में प्रवेश कर कर। चढ्ढनह वार=चढाई करने की वेला (समय)। णिसि=निसि, रात्रि। वज्जत=बजवाता हुआ। वज्ज=बाजे।

अर्थः—इसके बाद पृथ्वीराज ने सभा विसर्जन करके सवारी के लिए घोड़ा लाने को कहा और रावलजी को घोडे पर पहले सवार कराकर आप अपने ताजी जाति के अश्व पर सवार हुआ। रास्ते मे रावल समर-केशरी की प्रशसा करते हुए कहने लगा—आप और आपकी महिमा सदा बडी है। हे योगीन्द्र (उपाधिधारी)! आप ससार पर विजयी हैं। आपकी कीर्ति अकथनीय है। इस तरह अनेक भाति से प्रशंसा करता हुआ, रावलजी को डेरे पर पहुँचा, कुछ ही रात्रि शेप रहने पर युद्धार्थ सजने के लिए कह कर बाजे बजवाते हुए राजा ने अपने महल में प्रवेश किया।

वाजि घरिय घरियार, साहि उतर्यउ सिंधु नद ।
विपम बाहु उठि भ्यग, स्यघु छुट्यौ कि सद्द मद ॥
तमसि तमसि सामंत, राज राजस किय तामस ।
घुमरि घुमरि नीसान, थान जग्गिय मनु पावस ॥
निसि अद्धअ नेहिय पीय तिय, पिय पिय पिय पप्पीह लिय ।
फनिय फरकि अंखिय अनखि, उदय अनद सु वीर किय ॥१७७॥

शब्दार्थः—भ्यंग=भृ ग (भौंहें) । स्यंघ=सिंह । छुट्यौं=छूटा, झपटा । सद्द मद=मतवाले हाथी की आवाज पर । राजरा=रजोगुण । तामरा=तमोगुण । नीसान=नक्कारे । थान=निवास स्थानों में । जग्गिय=जागृत हो, प्रकट हो । अद्धअ=अर्ध । पप्पीह-लिय=पपीहे के समान रट ली । फनिय=फनिय, फुकार करने वाले सर्प तुल्य भुजायें । अनखि=अनखना क्रोध पूर्ण होना । उदय=सूर्योदय होने पर । अनद=उत्साह, हर्ष ।

अर्थः—प्रात काल की घडी वजने पर सुलतान के सिंधु नदी को पार करने की स्मृति से राजा की विपम भुजा और भ्रंग-भृकुटि ऊपर को उठ गई, वह इस प्रकार दीख पडा जैसे मतवाले हाथियो की आवाज पर शेर झपटता हो। उस समय सामतों मे भी विशेप क्रोध झलक पड़ा और राजा रजोगुण से तमोगुण मे प्रवृत्त हो गया। घुमड घुमड़ कर नक्कारे इसप्रकार वजने लगे मानों दिल्ली के निवास स्थानों मे प्रावृट काल प्रगट हो गया हो। अर्ध रात्रि से दम्पति (राजा-रानी) प्रेम मे मुग्ध थे। पपोहे के समान रानियाँ पीय २ उच्चारण कर पाई थीं, किन्तु सूर्योदय होने पर राजा की सर्प तुल्य भुजायें फरकने और आँखें अनखने (क्रोध पूर्ण होने) लगी और वह वीर नरेश्वर युद्धार्थ उत्साहित हो गया।

दोहा

त्रिप पयान पोमिनी परखि घटि साहस घटि इक्क ।
सु कथ केलि पीऊख प्यउ, जतन करहि सखि किक्क ॥१७८॥

शब्दार्थः—पोमिनि=पद्मिनी, कमलिनी (रूपी रानियें) । घटि=घटगया, कम होगया । कथ-केलि=वाक्य क्रीड़ा । पीऊख=पीयूष, अमृत । प्यउ=पिलाती हुई, पान कराती हुई । किक्क=कितने ही, अनेक ।

अर्थः—राजा को युद्धार्थ प्रयाण करता हुआ देख कर कमलिनी रूपी रानियों मे एक घड़ी के लिए धैर्य की कमी हो गई, तब उनकी सखियें मन बहलाने के लिए

अमृत रूपी श्रेष्ठ वाक्य क्रीड़ा (धैर्य वाक्य) का पान कराती हुई अनेक प्रकार के यत्न करने लगीं ।

दोहा

घर घर्यार वज्जिग विपम, हलिग हिंदु दल हाल ।
दुतिय चद पूनिम जिमें, वर वियोग वढि वाल ॥१७६॥

शब्दार्थः—वज्जिग=वजने पर । हलिग=बढने लगी । हाल=चलकर । दुतिय=द्वितीया का । पूनिम=पूर्णिमा तक । जिमें=जैसे । वाल=बालाओं में, रानियों में ।

अर्थः—निवास स्थान में बीतने वाली विपम घड़ी की घड़ियाल वजने पर हिन्दू सेना चल कर आगे बढ़ने लगी। यह देख कर (शुक्ल पक्षीय) द्वितीया से पूर्णिमा तक जिस प्रकार चन्द्र कला विस्तार पाती है उसी प्रकार राज-रानियों में वियोग विस्तृत होने लगा ।

जल अधार रख्यौ जियन, व्रत रख्यौ तन प्रान ।
अव रवि मंडल वर मिलन, कै जोगिनपुर थान ॥१८०॥

शब्दार्थः—जियन=जीवन । व्रत=व्रत । वर=प्यारे से । थान=राजप्रासाद में ।

अर्थः—पति विछोह के कारण उन रानियों ने निश्चय कर लिया कि अपने जीवन को जल और शरीर तथा प्राणों को व्रत के आधार पर ही रखना है, क्योंकि अब हमें हमारे प्यारे से मिलना या तो सूर्य मंडल में या दिल्ली के राजप्रासाद में ही होगा ।

हरिहु आदि अमर सकल, अलि रखहु अलि झोर ।
जोग भोग पिय सग रहि, तियन ध्रम्म वर और ॥१८१॥

शब्दार्थः—आदि-अमर=आदि देव । अलि=अइकर । अलि=सगिनियाँ । झोर=झोड हठ ।

अर्थ—हे संगिनियों ! इस प्रकार हठ ग्रहण करलो कि हमारे लिए एक पति ही आदि देव हरि है, योग भोग सब उन्हीं के साथ हैं (अर्थात् हम पति की ही उपासक हैं) । संसार में स्त्रियों के लिए यही धर्म है अन्य धर्म उनके लिए कोई भी नहीं है ।

इह चरित्र पिख्खिय चरण, वह चरित्र वहिराय ।
सो चरित्र सुलितान सुणि, सिंध उलघिय धाय ॥१८२॥

शब्दार्थः—चरण=दूतों ने । वह=पावस पुण्डीर । वहिराय=विसरा दिये । सो=उसने । सुणि=सुना । उलघिय=पारकर । धाय=बढ रहा है ।

अर्थः—राजा के युद्धार्थ रवाना होने तक के चरित्र को शाही दूतों ने देखा, उधर पावस पुण्डीर ने शाह के हालात सुने कि वह सिंध को पार करता हुआ पृथ्वीराज की ओर आगे बढ रहा है तो उसने पृथ्वीराज द्वारा नगर से निर्वासित करने वाली बात को भुला दिया (वह पृथ्वीराज की मदद के लिये सेवा मे उपस्थित हुआ)।

कवित्त

पहर इक्क पु डीर, खिमा खिम अदबु परख्यौ ।
सबनि सुनत सामत, मतु अच्छौ भर भख्यौ ।।
हमहि दोहु लग्यौ दिवान-सुरतानु सु जानै ।
दीह सत्त अट्ठ मे, होइ मालिम चहुआनै ।।
दुद कोह लोह परियार ते, कढ्ढि अरिणि भजै सुरणि ।
प्रथिराज काज तरवारि भर, जौन उडिचि लग्गै तरणि ।।१८३।।

शब्दार्थ—खिमा खिम=शान्त । अदबु=मर्यादा पूर्वक । परख्यौ=देखा । सबनि=सब । मतु=मन्त्रणा । भर=वीर । भख्यौ=कहा । दोहु=दोष, कलक । दिवान-सुरतानु=शाही सभा मे (सेवा में) जानेका । सत्त=सात । मालिम-मालूम । दुद=द्वद्व (युद्ध) । परियार=प्रतिहार, हाहुली हमीर । अरिणि=शत्रु । भजै=नाश करे सुरणि=वीरों को । भर-भाडकर । उडिचि=उड़कर, मारे जाकर । लग्गे-तरणि=सूर्य से भेटे, सूर्य मण्डल म जा लग ।

अर्थः—उस आये हुए पुण्डीर (पावस पुण्डीर) को सब ने एक प्रहर तक शान्ति और मर्यादा पूर्वक देखा । पश्चात् वह वीर सब सामतो को सुनाते हुए अच्छी मत्रणा कह सुनाई । वह कहने लगा—हम को शाह की सभा मे (सेवामे) जाने का कलक लगा यह तो सब जानते ही है । इसकी सचाई सात आठ दिन मे ही नरेश्वर पृथ्वीराज को ही (हम स्वामिभक्त है या स्वामि द्रोही) मालूम हो जायेगा । जबकि हम प्रतिहार (हाहुली हमीर) पर क्रोध करके द्वद्व करने को शस्त्र निकाल कर शत्रु वीरों का सहार कर देंगे । पर हम स्वामी के कार्य के लिए तलवार झाडते हुए मरे (मण्डल) मे जाकर नहीं लगे तो वीर नहीं ।

चलत मग्गि इह मंगि, राज तव लगि कहि धीरह ।
लै आउहु जालंध राउ, हाहुलि हंमीरह ॥
नदि विखाह उत्तरिग, जाइ कंगूर सपन्नौ ।
पंच सत्त पँच पैंडि, आय अग्गै होइ लिन्नौ ॥
भोजंन भगति बहु भाँति करि, अरु पुच्छिय पच्छिलि विगति ।
जालंध राइ नंत्रू धनी, सुणि हँमीर चदह सु मति ॥१८४॥

शब्दार्थः—मग्गि=मार्ग । इह-मंगि=(पावस पुंडीर ने) इस प्रकार क्षमा की मांग की । राज=राजा पृथ्वीराज । तवलगि=तवतक,उसी समय । धीरह=धीरे से । विखाह=नदी का नाम या विषम, विकट । पंच–सत–पंच=सात पांच ३५ और ५ (४०) । पैंडि=पैंड, कदम । लिन्नौ=लिया गया । पच्छिलि=पीछे की । विगति=हालत, व्यौरेवार । सुणि=सुनिये । सुमति=श्रेष्ठ मत (मत्रणा) ।

अर्थः—युद्धार्थ रवाना हुए राजा (पृथ्वीराज) से जब पावस पुंडिर ने इस प्रकार क्षमा की मांग की तब राजा ने उसी समय कविचंद को धीरे से कहा—तुम जाकर जालंधर राज हाहुली हम्मीर को लेआओ । तब कविचंद विखाह नामक नदी को (या विकट नदी को) पार कर कांगुरे पहुँचा । कविचंद का आना सुनकर हाहुली-हम्मीर अगवानी को चालीस कदम सामने आया और उसे अपने यहाँ लेगया । फिर उसने भोजनादि विविध पदार्थों द्वारा उसका भक्ति-युक्त स्वागत किया । पश्चात उसने दिल्ली में पीछे से जो २ हुआ उसके विषय में व्योरेवार पूछताछ की तब कविचंद ने कहा-हे जालंधर राज जत्रूपति हम्मीर ! आप मेरी श्रेष्ठ मंत्रणा सुनिये ।

दोहा

ढिल्लीवै है वै दिसा, तिरि भर जल गभीर ।
हौंतो तेरण आतुरह, चढि हैंवर हमीर ॥१८५॥

शब्दार्थ'—ढिल्लीवै=दिल्लीश्वर । तिरि=तैरने को । भर-जल-गभीर=परिपूर्ण गहरे जल युक्त दल सिन्धु को । हौंतो=होता था । तेरण=तैरने को । हैंवर=घोड़े पर ।

अर्थः—दिल्लीश्वर और उसके अश्वारोही सामंत उमड कर आते हुए गहरे जलपूर्ण दल सिन्धु को तैरने के लिये तत्पर हुए हैं । हे हम्मीर ! ऐसे समय में तूं तैरने को (युद्ध करने को) आतुर होता था अत यह समय तेरा इच्छित है इसलिए तैरना हो (युद्ध करना हो) तो घोड़े की पीठ ग्रहण कर (घोडे पर सवार हो) ।

के कारण है वै दिसा, चढ़ि ढिल्लीवै भट्ट।
बक बिसाहन भरह भौ, लै लाहोरी हट्ट ॥१८६॥

शब्दार्थः—कै कारण=किस लिये। है वै=अश्वारोही। बिसाहन=नाश के लिए (विपतुल्य नाशक या स्वर्ग में बसाने के लिये)। लै=ले लेता, कर लेता। लाहोरी हट्ट=लाहोर या लाहोर तक अधिकार करके क्यों नहीं हट जाता (सधि कर लेता)।

अर्थः—तब हाहुली-हम्मीर कहने लगा—हे भट्ट कवि! वृथा ही दिल्लीश्वर अपने अश्वारोही वीरों सहित उस दिशा को (जिधर से शाह ने चढाई की है) चढाई करता है, उसका यह बांकापन केवल सामन्तों के नाश के लिए ही है। वह क्यों नहीं अपने राज्य की सीमा लाहोर तक कर लेता (अर्थात् लाहोर तक ही अपनी सीमा मान कर शाह से सधि क्यों नहीं कर लेता)।

बोला बकस कक केलि सभलि रा गोरी।
वे उन्हा उन्हां कहै, पचो नदि मेरी ॥
जुद्धानी गजागि, जागि वीरा उज्जाई।
हाँ हम्मीर हमीर, चद जायो न बुझाई ॥
खगधार ध्रम्म खत्री तनौ, चुक्कै ग्रक्क निवासियै।
जै काम सूर साधन चलै, ध्रू ध्रू मडल वासियै ॥१८७॥

शब्दार्थः—बोला बकस=वक्रता, बोलने मे टेढापन। कक-केलि=कलह कीड़ा। सभलिरा=समरीपति, चाहुवान पृथ्वीराज। वे=वे, दोनों। उन्हा उन्हा=उन्नाव २। पचोनदि=पचनदो पचनद, पजाब। मेरी=अपना। जुद्धानी=युद्ध कर्ता। गजागि=अग्नि समूह, अग्नि पुज। जागि=जागृत, प्रज्वलित। उज्जाई=उद्दीपन किया, वृद्धि की। हम्मीर हमीर=अमीरों में। जायो न बुझाई=बुझाया नहीं जा सकता। खगधार=खड्ग धारण। खत्री=क्षत्री। तनौ=का। चुक्कै=चूक जाने पर, विपरीत चलने पर। ग्रक्क=नर्क। निवासियै=निवास। जै काम=जो कार्य। सूर=शूर, शूरवीर। साधन=साधना करने से, प्रयत्न करने से। ध्रू=ध्रुव। ध्रू=निश्चय मडल=अपने भूभाग पर। वासियै=निवास करता।

अर्थः—फिर हम्मीर कहने लगा—हे कविचद! तन और वचन से बांकापन रखने के कारण ही सभरी नरेश और गौरी शाह मे इस कलह कीडा का प्रादुर्भाव हुआ। एक कहता है उन्नाव (नदी) हमारे अधिकार की है, दूसरा कहता है पचनद (सारा पजाब) मेरे अधिकार मे है इस प्रकार दोनो ओर के युद्धकर्ता वीरों ने

प्रज्वलित अग्नि-राशि में और भो वृद्धि कर दी। अतः अमीरों में फैली हुई आग नहीं बुझाई जा सकती। मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ कि खड्ग धारण करना ही क्षत्रियों का मुख्य धर्म है। इसके विपरीत चलने वाले का नर्क में निवास होता है, किन्तु जो कार्य प्रयत्न शील होकर किया जाता है ऐसा वीर ध्रुव के समान अपने मंडल पर निश्चय ही शासन कर पाता है।

के दीहां क केलि, करौ काहे लगि झुम्झौ।
हठ गल्हां सो लागि, जाइ कौरौं कुल बुम्झौ॥
हौ हंमीर हमीर, "चंद" वत्तां करि दिक्खौ।
पंचानद पॅच देस, अद्ध अद्धां करि रक्खौ॥
कहिये न सुख्ख नर लोक को, किं सुर लोक सुहाइया।
मिष्ठान पान भामिनि भवन, पुच्छौं तौहि कहाइया॥१८८॥

शब्दार्थः—के दीहा=कैसे दिन। क=क्यों। केलि=कलह क्रीड़ा। काहे लगि=किस लिए। झुम्झौ=युद्ध करते। हठगल्हां=हठ पूर्वक ख्याति। कौरों=कौरव। बुम्झौ=पूछो। हौ-हमीर-हमीर=दोनों अमीर एक हों। वत्तां करि दिक्खौ=समझ कर ऐसा करो। पँच देस=पांचाल (पंजाब) देश। अद्ध अद्धा=आधो आध। करि रक्खौ=अधिकार में रक्खो। मिष्ठान पान=मधुर खान पान। पुच्छौं=पूछता हू। तोहि कहाइया=तुम्हीं कहो।

अर्थः—सोचते नहीं हो कैसे दिन है, क्यों कलह क्रीडा करते हो और किस कारण युद्ध करना चाहते हो? हठ पूर्वक ख्याति चाहते हो तो कौरव वश से इसका परिणाम पूछना चाहिये। हे कवि! मेरा तो यही कहना है कि दोनों अमीर (पृथ्वीराज तथा बादशाह) एक होजॉय और पचनद (पांचाल देश, पंजाब) को आधा २ विभाजित करलें, क्योंकि इस संसार में कौनसा सुख नहीं है जो उन्हें स्वर्ग का लोभ अच्छा लगता है। तुम ही अपने हृदय से पूछ लो कि संसार में मधुर व्यंजन स्त्री और भवन किसको अच्छे नहीं लगते?

काली कल विपु धरै, डंकु चीछी उच्छारै।
नील कठ सिव वरै, मोरु महोरग नि हारै॥
काल अब ढरि जाहि, जीह पप्पीह पुकारै।
धक्के वहै गयद, चढै सिक्कार सिआरै॥

सुरतान काम सद्धे सलख, जैत राउ विरदां वहै।
हाहुल्लि राउ भट्टे कहै, को अनखु इत्तौ सहै॥१८६॥

शब्दार्थ:—काली=काली नाग। विपु=विष। डकु=डक। वीछी=विच्छु। उच्छारे=झाड़ना। नीलकठ=शिव। महोरग=माहुर, विष। नि=नहीं। हारै=धारै, पचा सकता। काल=समय। अब्र=बादल। ढरि जाहि=ढलकते हैं। पप्पीह=पपीहा। धक्कै=आगे पीछे, यत्र तत्र। गयद=हाथी। सिक्कार=शिकार। सिआरै=गीदड़। सलख=सलखानी, सलखवशज। वहै=प्रचलित। भट्टे=कविचद को। अनखु=अनखीली, असह्य।

अर्थ:—विपधारी श्रेष्ठ काली नाग की समानता क्या डक मानने वाला विच्छु कभी कर सकता है? नीलकंठ धारी शंकर कहलाते हैं, इसी प्रकार मयूर को भी नीलकठ कहते हैं, पर वह हलाहल विप को वैसे नहीं पचा सकता, समय आने पर मेघ स्वत बरसता है, इसका अभिमान पपीहे को नहीं करना चाहिये कि मेरी आज्ञा से ही मेघ वरसता है और पृथ्वी पर हाथी चलता है उसकी शिकार को क्या कभी गीदड चढा है। इसी तरह सुलतान के युद्ध कार्य मे विजई होने के विरुद सलखानी जैत्र प्रमार ने प्रचलित किये हैं क्या वे कभी मान्यहो सकते हैं? हे कविचन्द! सुनो, मैं हाहुलीराय तुम से कहता हू क्या ऐसी असह्य (अनखीली) बातें कभी कोई सहन कर सकता है?

दावानल पॉवार, अनल चहुआन सहाई।
घटजमन रिखिराज, समद सोखै वरताई॥
जैतराउ कठीर हथ्थ सामत-राज सिर।
पहुप हारु पावारु, घडै भजै गोरी धर॥
अच्चुआ राउ अग्गै पहरु, खिनु नजौर जबू रहै।
चुगलियबाज जुग्गिनि पुरिय, ज ज भावै त कहै॥१६०॥

शब्दार्थ:—पॉवार=प्रमार (जैत्र)। अनल=अग्नी स्वरूपी। घट जमन=कुभज। रिखिराज=ऋषीश्वर। समद=समुद्र। सोखै=शोषण। वरताई=धैर्य रखता, अभिमान रखता। कठीर=सिंह। पहुप हारु=पुष्पहार। घडै=सेना। भजै=नष्ट करे। अच्चुआ राउ=आबू राजवशी। अग्गै पहरु=प्रहारकर्ताओं में अग्रगण्य। खिनु=क्षण भर। नजोर=निर्बल। जबू=जबू पति, हम्मीर। चुगलिय बाज=चुगलखोर। जुग्गिनि पुरिय=दिल्लीपुरा। ज ज=जो जो। भावै=भाता। त=तैसा।

अर्थः—अग्नि स्वरूपी चाहुआन पृथ्वीराज का सहायक दावानल रूपी प्रमार (जैत्र) कहा जाता है, जो उमड़ते हुए समुद्र (शत्रुदल) को कुंभज ऋषि के समान शोषण करने का अभिमान रखता है और वह सिंह स्वरूप माना जाता है क्योंकि उसके सिर पर सामन्तराज पृथ्वीराज के हाथ हैं किन्तु वह प्रमार पुष्पहार तुल्य कोमल है। क्या वह गोरी शाह की सेना को नष्ट कर सकेगा ? वह आबू-राजवंशी प्रहार करने वालों में अग्रगण्य माना जाता है, क्या उसके सामने क्षण भर के लिए भी जंबूपति (मैं हम्मीर) निर्बल होकर रह सकता है ? वह दिल्लीश्वर के पास चुगलखोर है जो राजा के समक्ष मन मानी बातें करता है।

अब्बूरा पावार, जैत हाहुलि कहि वुल्लै।
सुनि कन्ना चहुआन, ताहि पृथिराज न खुल्लै॥
पच्छानी चामंड, डंड मगै लाहौरी।
जिम स्वाना गंधान, कोल लद्धौ कारोरी॥
उच्चार भार बोलै हरै, राज उलग्यौ साहनी।
उप्परै जाम जद्दौं लगर, सुभर उभारै पाहनी॥१६१॥

शब्दार्थः—अब्बूरा=आबू राजवंशी। पावार=प्रमार। कन्ना=कर्ण, कान। न खुल्ले=जवाब नहीं खोलता, कुछ नहीं कहता, उलहना नहीं देता। पच्छानी=पीछे बधा हुआ। स्वाना=श्वान। गधान=गध। कोल=कौल, कवल, शूकर। लद्धौ=प्राप्त करता। कारोरी=क्रूर। हरे=धीरे, चुपके, छुपकर। उलग्यो=उलझ गया। साहनी=शाह द्वारा। उप्परै=उठकर। लगर=लगर, लपट। उभारै=उकसाता। पाहनी=पाहुनी, व हर से आई हुई।

अर्थः—आबू राजवंशी जैत्र प्रमार मुझ हाहुली से मन माने वाक्य कह देता है और पृथ्वीराज कानों से सुनकर भी उसे कुछ नहीं कहता। उसके पीछे बधा हुआ चामुण्डराय लाहौर के अपराध का दण्ड मागता है लेकिन क्रूर कवल की इच्छा मे जाने वाले कुत्ते को तो केवल उसकी गध ही प्राप्त होती है (अर्थात् वीर से दड लेने की कोई आशा नहीं रखनी चाहिये)। अब तो इन मंत्रियों को बोलना भी भार स्वरूप ज्ञात होता है इसलिए वे छिपा हुआ उत्तर देते हैं। ऐसे लोगों के कारण ही आज सुलतान की आपत्ति मे राज्य उलझ गया है। लंपट जामराय यादव भी उठकर उनका साथदे रहा है अब तो पाहुनी(जो नये सामन्त बने हैं वह)भी सामन्तों को उकसाने लगी है (यादवों और प्रमारों का पृथ्वीराज से सम्पर्क संभवत. बाद मे हुआ इसलिए ऐसा कहा गया)।

की केहानो जग, सोम लग्गा अजमेरी।
कैमासाऊ छेरि, तुरी तूंवर विच्छेरी॥
जेती ता रुंझामि, धाम दु ढा दु ढारा।
कूरभा पज्जून, काम किन्नो कुढ्ढारा॥
सारूडै झुभझ उलझिझया, लोहानै लज्जी वही।
ऊछगा बधन सेवरा, ते भट्टा द्रग्गा लही॥१६२॥

शब्दार्थः— की=क्या। केहानो=किसी ने। सोम लग्गा=सोमेश्वर को लग गये। कैमासाऊ छेरि= कैमास ने भी छेड़छाड़ करके। तुरी=तोड़ दिया (नाता)। तूंवर=तँवर क्षत्रिय। विच्छेरी=विच्छेद किया, बिछुड़ा दिये। जेती=जैत्र। ता=उसने। रुंझामि=रुधादिया, रौंध दिया। धाम=स्थान। दु ढा=वे समझ। दु ढारा=दु ढार निवासी। कुढ्ढारा=कुढग से, ठीक प्रकार से नहीं। लज्जी वही= लाज को न रख सका। उछगा=उद्दंड। सेवरा=सेहरा। ते=तुझ। भट्टा=भट्ट कवि। द्रग्गो लही=दुर्गा से साक्षातकार किया।

अर्थः— सामतों की युद्ध मे क्या विशेषता है इन सबके होते हुए अजमेर पति सोमेश्वर को शत्रुओं ने मार दिया। कैमास ने छेड़ छाड़ करके तोमर (अनगपाल) और चाहुवान के प्रेम मे बाधा डालकर विच्छेद कराया। जैत्र प्रमार शत्रुओ द्वारा कुचला जाते हुए भी वह अपने स्थान की रक्षा न कर सका। दु ढारी वीर कछवाहे पज्जूनादि भी समझ रहित हैं जिन्होंने जो भी कार्य किया वह ठीक नहीं किया। शाह से सारूण्डे मे युद्ध हुआ उसमे लोहाना भी लज्जा न रख सका। हे वंदीजन कविचद! तेरा भगवती दुर्गा से साक्षातकार होने पर भी तू ऐसे उद्दंडा के सिर पर सेहरा बाधता रहता है (प्रशसा करता है)।

भौरे रा भारथ्थ, कथ्थ जाने तू भाई।
पामारा पज्जून, लिये पट्टन वै साई॥
मैं हत्यो कैमास, हथ्थ भीमा वद्धानी।
तू जानै चहुआन, वार वरते दस्स्धानी॥
सलखा सलष्भ अख्खा हुआ, अब लग्गा ईं वत्तरी।
सुरतान साहि आनौ धरा, आजु तुम्हारी रत्तरी॥१६३॥

शब्दार्थः—हथ्थ=हाथ। भीमा-बद्धानी=भीम को बधन में लेने में वार-बरतैं=शासन समय चल रहा है। इच्छानी=इच्छनी राणी के कारण या इच्छानुसार। सलखा=सलखानी। सलभ्म=टिट्टिम। भ्रब्बां हुआ=सगर्व हो गये। अबलग्गां=अब तक। ईं=ऐसी। बतरी=बातें। काल्हि=कल। रत्तरी=रात।

अर्थः—हे बधु कविचंद। भोले भीम के साथियों से होने वाली युद्ध जैसी बातें अब नहीं रही हैं (दिल्ली की सामन्त शक्ति अब वैसी नहीं रही) जो कि प्रमार और पज्जून ने मिलकर पट्टन पति पर विजय की थी। कैमास को निकालने (नागौर मे शत्रु के प्रभाव मे पड़ जाने पर बचाने) और भीम को बन्धन में लेने मे भी मेरा हाथ रहा है, किन्तु तू जानता है कि पृथ्वीराज के शासन में आज इच्छनी रानी के कारण प्रमारों की चलती है। इसलिए टिट्टिभ सलखानी भी सगर्व हो गये हैं और अब तक उनकी ऐसी बातें निभ गईं किंतु आगे नहीं निभेंगी, क्योंकि आज की रात्रि आप लोगों की है कल तो मैं बादशाह को लाकर दिल्ली के भू-भाग पर खडा कर दूंगा।

मुह कट्ठानी बत्त, चद जानी पहिलाही।
ते साईं रैं काज, भर कि उट्ठे उच्छाही॥
तूं आरज आजान, वार दिल्ली धर अड्डा।
तू रक्खन हिंदवान, पान राजन तो चड्डा॥
आगर बुलाह गो बभनां, गर बड्डा पड्डा मुहा।
जालपा जागि पुच्छाइयां, जो रक्खै धम्मा दुहा॥१६४॥

शब्दार्थः—मुह कट्ठानी=मुँह से कही। ते=वे (प्रमारादि)। भर=योद्धा। कि=क्या। आरज=आर्य वीर (पृथ्वीराज)। आजान=आज। वार=समय पड़ने पर। अड्डा=आड़। पान-राजन-तो=राजा तेरे हाथ में (वश में) है। चड्डा=चंडीपुत्र, देवी पुत्र। आगर=आगे होकर। बुलाह=बोलने वाला। गर बड्डा=उच्च स्वर मे। पड्डा=पढने वाला, विरुद उच्चारण करने वाला। जागि=जाग्रतकर, प्रकट कर। पुच्छाइयां=पूछ ले। रक्खै=रक्षक। धम्मा-दुहा=दोनों धर्म वालों की, दोनों दीन की।

अर्थः—हे कविचन्द। मैंने जो बातें मुँह से कही हैं वे मैं पहले ही जानता था कि जिन प्रमारादि के वश मे राजा हो रहा है वे योद्धा स्वामी के लिए क्या उत्साह पूर्वक खडे होंगे? यह आशा उनसे कभी नहीं की जा सकती। केवल आज एक

तू ही समय पडने पर आर्य वीर (पृथ्वीराज) और उसके भू-भाग की रक्षा के लिए आड स्वरूप है (मंत्रणा और समझायश द्वारा बीच मे पडकर बचाव करता है)। हिन्दुओं की आन (टेक) को तू ही रखवाता है और हे देवी पुत्र ! राजा भी आज तेरे ही वश मे है। गौ-ब्राह्मण के लिए भी आगे होकर आज तू ही बोलता है। उच्च स्वर से तू ही आज विरुद उच्चारण करता है। इसलिए देवी जालपा जो दोनों दीन की रक्षक है उसे विरुदाकर प्रकट करके पूछले—इस युद्ध मे किस की विजय होगी ?

चहुआना रजुधान, (सूर) सामन्त बडाई।
ते बोला वर लग्गि, जाइ कनवज्ज झुझ्झाई ॥
ए गोरी साहाव—दीन, जानो पहिलूना।
हसम हयग्गय देस, देह दिख्यौ दह गूना ॥
कै काम कलह कदल चढौ, कै कम्मा मत्ता गढौ।
वे काम भट्ट गल्हा पढौ, जिनि भजौ ढिल्लीस ढौ ॥१६५॥

शब्दार्थः—रजुधान=राजधानी। ते-तेरे। बोलां=बोल पर। झुझ्झाई=जूझे, मारे गये। पहिलूना=पहले जैसा। हसम=सेना। देह=राज्याग। दहगूना=दसगुना। कै-किस। कदल=नाश कराने। कम्मां=काम। मत्ता=मन्त्रणा। गढो=गढते। वे काम=निरर्थक। गल्हा=बडाई, विरुद। जिनि=मत। भजौ=नाश कराओ। ढिल्लीस=दिल्लीश्वर के। ढौ=स्थान।

अर्थः—चाहुआन नरेश के राजधानी की प्रशसा केवल वीर सामन्तों से ही थी। वे सामन्त तो तेरे बोलो पर उत्साहित होकर कन्नौज युद्ध मे मारे गये। इधर इस शहाबुद्दीन गौरी को तुम पहले जैसा मत जानना। उसकी सेना हाथी घोडे और देशादि राज्याग पहले से दस गुने होगये है। इसीलिए कहता हूँ कि किस कार्य-सिद्धि के लिए तुम कलह और नाश करना चाहते हो और क्यो व्यर्थ ही मन्त्रणा गढते हो ? हे कवि ! निरर्थक क्यों विरुद उच्चारण करते हो ऐसा करके तुम दिल्लीश्वर के स्थान का कहीं नाश मत करवा देना।

गल्हा काज हमीर, देव देवी मिरु दिन्ना।
गल्हा काज हमीर, अग्ग सयौ जुद्ध जिन्ना ॥

गल्हां काज हमीर, राज मुक्यौ रघुराई।
गल्हां काज हमीर, मंस कट्यौ सिवि सांई॥
हम गल्हवांन गल्हां करैं, तुम गल्हां लग्गे बुरी।
म्रत लोक जीव जम पजरैं, तुम जानो छुट्टैं दुरी॥१६६॥

शब्दार्थः—गल्हां काज=ख्याति के लिए। सिर=सिर। अग्ग सध्यौ=स्वर्ग गमन का साधन किया। छुउ=जे, वे। जिन्ना=जी गये, अमर होगये। मुक्यो=छोड़ा। मस=मांस। कट्यो=काट कर दिया। सिवि=शिवि ने। गल्हवांन=ख्याति करने वाले। गल्हां करैं=ख्याति की रचना करते। जम पजरे=यमराज के पिंजड़े में। छुट्टैं=बच जांय। दुरी=दुर कर, छिप कर।

अर्थः—कवि चन्द कहने लगा— हे हमीर! ख्याति के लिए ही देवी-देवताओं को कई वीरों ने अपने सिर दिये, कई स्वर्गगमन का साधन (युद्ध) कर अमर होगये, रामचन्द्र ने भी अपना राज्य छोड़ दिया, और शिवि ने अपना मांस काट दिया। हम कवि लोग ख्याति करने वाले हैं इसलिए ख्याति की रचना करते हैं। यदि तुमको ख्याति बुरी लगती हो तो सोचलो। तुम जानते होगे कि हम छिप कर बच जायेंगे, किन्तु ऐसा नहीं हो सकता। इस मृत्यु लोक के जीव तो यमराज के पिंजडे में ही पडे हुए हैं (वे बच नहीं सकते)।

सुनि हमीर इक उलुक, गरुर गाढी मित्राई।
ता उलूक ही देखि, गरुर जोरा मुसकाई॥
तब उलूक भै भयौ, गरुर अग्गें कर जोरै।
मोहि तहाँ लै जाहु, जहाँ कोइ जीउन तोरै॥
धरि पंख ढकि साइर गुहा, तहं विलाउ भख्खह भरण।
सनमध देह जथ्थह परण, मिटै न सो राजन मरण॥१६७॥

शब्दार्थः—उलुक=उलूक, उल्लू, घूघू। गरुर—गरुड़। गरुर जोरा= गरुड़ पक्षियों के जोड़े। भै भयौ= डरने लगा, भयभीत हुआ। तोरै=मार सके। साइर—गुहा=समुद्र तटस्थित गुफा। भख्खह—भरण= पेट भरने को खागया, आहार बना लिया। जथ्थह—परण=जहां पतन होना लिखा।

अर्थः—हे जदुपति हम्मीर! और सुनो—एक उल्लू की गरुड़ से गाढ मित्रता हो गई थी। उस उल्लू को देख देख कर गरुड़ पक्षियों के अन्य जोडे हँसने लगे। यह देख

उल्लू भयभीत हो गया (उनसे प्राणों की आशंका होने लगी)। तब उसने अपने मित्र गरुड़ के आगे हाथ जोडकर कहा—मुझे ऐसे सुरक्षित स्थान पर लेकर चलो, जहाँ मुझे कोई भी नहीं मार सके। तब गरुड उसे अपने पंखों मे छिपाकर समुद्र तट की एक सुरक्षित गुफा मे लेगया और वहाँ रख दिया। फिर भी बिलाव ने गरुड से आँख बचाकर उल्लू को मार अपना आहार बना ही लिया। इसलिए हे जबूराज। मृत्यु नहीं टल सकती और इस शरीर का जहाँ पतन होना लिखा है उसी स्थान पर पतन होकर रहेगा।

दोहा

तत्त बत्त जानौ सबै, हम माया पुज्जामि।
चलि जालधर देहरै, मिलि जालप पुच्छामि ॥१६८॥

शब्दार्थः—पुज्जामि=पूजने वाले, उपासक। देहरै=देहरे, देवालय। जालप=जालपादेवी। पुच्छामि=पूछलें।

अर्थः—तब हमीर ने कहा-तुम तत्वयुक्त बातों को जानने वाले हो और हम तो माया के उपासक है (माया मे फसे हुए है) अत जालधरी के देवालय मे चलकर उस जालपा देवी से शका का समाधान करले (अर्थात् शका दूर करले कि पृथ्वी-राज और शहाबुद्दीन मे से किसकी विजय होगी)।

नालिकेल फल दल सु फल, कष्ट कपूर तमोर।
उभै सु नर पूजन चलै, दै सब सथ्थ बहोर ॥१६९॥

शब्दार्थः—नालिकेल फल=नारियल, श्रीफल। दल=पत्र। कष्ट=चदनादि। तमोर=ताम्बूल। उभै=दोनों (हाहुली हम्मीर और कविचन्द)। दे=दिये। सथ्थ=साथियों को। बहोर=बहुरा दिया, लौटा दिये, साथ म न लिए।

अर्थः—श्रीफल, पत्र और फल, चदन, कपूर ताम्बूलादि लेकर हमीर और कविचद जालपा को पूजने के लिए चले और साथियों को साथ नहीं लिया।

कवित्त

च्यारि कोट चउरग, मद्धि जालप सुत्थानह।
हेम छत्र नरि मुत्ति, मत्र दुग्गा जपानह ॥

करिय सनान पवित्र, धोइ धोवति तन मंडिय ।
सम सुगंध पढि छंद, जाइ कुसमंजलि छंडिय ॥
करि धूप दीप नैवेद विधि, राज उदेश सँदेस कहि ।
बोली न वयन देवी तदिन, अजुत हमीर सु वत्त लहि ॥२००॥

शब्दार्थः–वज्र ग=वज्र तुल्य । हेम-छत्र=स्वर्णिम छत्र । जरि=जुटे हुए, लगे हुए । मुत्ति=मोती । दुग्गा=दुर्गा । जंपातह=जपे । सनान=स्नान । मडिय=पहनी । सम=युक्त । जाई=जाकर । उदेस=उद्देश । तदिन=उस दिन । अजुत=अयुक्ति । वत्त=बात । लहि=समझा ।

अर्थः—उस जालपा देवी के स्थान के वज्र तुल्य चार परकोटे थे और उनके बीच में मन्दिर था । देवी के स्वर्णजटित छत्र था जिसके मोती लगे हुए थे । कवि ने वहाँ जाकर स्नान करके पवित्र होकर धुली धोती शरीर पर धारण की । इसके उपरान्त दुर्गा के मन्त्रों का जाप किया और पद्य बद्ध स्तुति करता हुआ सुगन्धित पुष्पाञ्जलि छोडी और विधि पूर्वक धूप दीप नैवेद्य चढा कर राजा के उद्देश्य का सदेशा कहा । किन्तु देवी ने उसका कोई भी उत्तर नहीं दिया । तब हम्मीर ने इस बात को अयुक्ति समझा (देवी के कोई उत्तर नहीं देने से कवि का राजा की विजय के लिए जपादि करना व्यर्थ माना) ।

कहि हमीरु सुनि देवि, तत्तवादी कवि आयौ ।
को हि दू को तुरक, कौनु रक सु को रायौ ॥
को रविंदु को ज्यदु, कोन तापस को छाया ।
को साहब को राज, कवन सुकवी कह गाया ॥
इह परम हंस ससा रहित, तूं माया तूं मोह मत ।
जानों न वाम दच्छिन करह, हों सांई ससार रत ॥२०१॥

शब्दार्थः—तत्तवादी=तत्ववादी । हि दू=हिन्दू । रायौ=राव, राजा । रविन्दु=सूर्य । ज्यंदु=इन्दु, चन्द्रमा । साहब=शाह । ससा=शंका, दुख । मत=गति, बुद्धि । दच्छिन=दक्षिण । हों=मैं । साई=स्वामी, स्वामिनी ।

अर्थः—हम्मीर कहने लगा—हे देवी सुनो ! तुम्हारी सेवा में जो कवि आया है, वह तत्ववादी है । इसके सामने हिन्दु–मुसलमान, रंक-राव, सूर्य-चन्द्रमा, ताप-

छाया, और शाह एवं राजा मे भेद नहीं है। इसके सामने कौन कवि श्रेष्ट कहा जा सकता है। यह तो परम हँस और ससार के दुखों से निवृत्त है। हे देवी! मेरी मति तेरी माया के कारण ममत्व में पड गई है। जिससे मुझे वाम और दक्षिण (भले-बुरे) का कुछ भी ज्ञान नहीं है। हे स्वामिनी! मैं तो ससार मे लीन हूँ (अत क्षमा करना)।

दिय कपाट चऊ कोट, चदु देवल मह मुक्यौ।
हथ्थन सुभझै तथ्थ, सथ्थु सबु ठाठा रूक्यौ॥
मिल्यौ जाइ सुलितान, लई मुलतान लिखाई।
हौं प्रब्बत रजधान, कौन पजाब सुखाई॥
इक रज्ज लम्भ को अज्जमो, लाभ दु राय लगाइया।
वज्जीव डक जुग्गिनिपुरह, रह्यौ हमीरु फिरि साँइया॥ २०७॥

शब्दार्थ:—देवल=देवालय। मुक्यौ=छोडा। सथ्थु=साथी। ठाठा=जगह। हौं=मेरी। प्रब्बत=पहाडी भूभाग। रजधान=राजधानी। सुखाई=सुख। इक=एक। रज्ज=राज्य। लम्भ-स्वार्थ, लाभ। अज्जम=आज। मो=मैंने। लाभ=स्वार्थ। दु राय=दोनों राजाओं को। लगाइया=भिडा दिया। वज्जीव=डंक=नक्कारे बजे। जुग्गिनि पुरह=दिल्ली में। फिरि=फिर गया, पलट गया। साइया=स्वामी से, पृथ्वीराज से।

अर्थ:—यह कह कर कविचद को देवालय मे ही छोड कोट के चारों ओर के किवाड बन्द कर दिये। जिसके कारण वहाँ हाथ से हाथ नहीं दिखाई पडता था और उसके साथियों को भी उसने स्थान २ पर रोक दिया। इसके उपरान्त वह सुल्तान से जा मिला और मुलतान को अपने नाम पर लिखवा लिया। (वह मन ही मन कहने लगा) यह पर्वतीय राज्य श्रेष्ठ है इससे बढकर पजाब मे कौनसा सुख है, इस एक राज्य की प्राप्ति मे ही क्या आज मैंने अपने स्वार्थ के लिए दो राजाओं (पृथ्वीराज और शाहबुद्दीन) को भिडा दिये हैं। इस प्रकार जब दिल्ली मे युद्ध के लिए नक्कारों पर डका पडा उस समय वह हम्मीर अपने स्वामी पृथ्वीराज से पलट गया।

दोहा

रोकि कविंद्रहि आपु मिलि, सो सुरतान अनुभम।
सुनत राज प्रथिराज मैं हंसि लग्गी उर मभम॥२०८॥

शब्दार्थः—अबुभ्भ=मूर्ख। हवि=हवि-वन्हि, आग। मभ्भ=में।

अर्थः—इस प्रकार कवि को मंदिर में बद करके वह मूर्ख हम्मीर बादशाह से जा मिला। इसकी सूचना पृथ्वीराज को मिलने पर उसके हृदय मे आग सी लग गई।

चारि चारि तरवारि हर, भर वधी चर धाय।
इह चरित्त चहुआन दल, कह्यौ साहि सों जाय ॥२०४॥

शब्दार्थः—हर=हरेक, प्रत्येक। चर=दूत। धाय=जाकर। चरित्त=चरित्र। साहिसों=शाह से।

अर्थः—प्रत्येक सामन्त ने अपनी कमर में चार चार तलवारे कसी हैं। चाहुवानी सेना का यह चरित्र शाही गुप्तचरों ने देख शाह को जाकर सूचित किया।

हाइ हाइ वज्जी सु चर, धुनि पुच्छी सह साइ।
जुद्ध परठ्यौ साहि सो, जुद्ध रहै कै जाइ ॥२०५॥

शब्दार्थः—हाइ हाइ=हाय हाय। वज्जी=होने लगी। धुनि=धुन कर। साइ=साँई, मुल्ला, काजी, फकीर। परठ्यौ=ठाना। रहै=हाथ में रहेगा, विजय होगी। जाइ=हाथ से जाता रहेगा, पराजय होगी।

अर्थः—चरों के कथन से हाय! हाय! कोलाहल हो गया। तब सभी ने सिर धुन कर साई (फकीर) से पूछा- हमने पृथ्वीराज से युद्ध ठाना है। युद्ध हाथ मे रहेगा या चला जायगा (जय होगी या पराजय) ?

वाल वृद्ध जुव्वन कहिय, वे मत्ते मत्ताय।
तेग एक पक्की चवै, चौ कच्ची भग्गाय ॥२०६॥

शब्दार्थः—जुव्वन=युवा। वे मत्ते=मन्त्रणा नहीं करने वाले। मत्ताय=मतवाले। तेग=तलवार। पक्की=मजबूत। चवै=कही जाती। चौ=चार। भग्गाय=टूट जाती।

अर्थः—साई ने कहा—बच्चे, वृद्ध और युवा कहते आये हैं, जो मंत्रणा नहीं करते वे ही मतवाले होते हैं और एक तलवार ही पक्की होती है, चार तलवारे कच्ची होती हैं जो टूट जाती हैं (अर्थात् विशेष मंत्रणा करने और चार चार तलवारें बांधने से कुछ नहीं होता। विजय तो मतवालों की ही होती है)।

करि निवाज सुरतान कहि. कितिक वुद्धि ढिल्लीस।
गहि न साहि कवै हन्यौ, गहि मुक्यौ यह रीस ॥२०७॥

आया, और शाह एवं राजा मे भेद नहीं है। इसके सामने कौन कवि श्रेष्ट कहा जा सकता है। यह तो परम हँस और संसार के दुखों से निवृत्त है। हे देवी! मेरी मति तेरी माया के कारण ममत्व में पड गई है। जिससे मुझे वाम और दक्षिण (भले-बुरे) का कुछ भी ज्ञान नहीं है। हे स्वामिनी! मैं तो संसार मे लीन हूँ (अत क्षमा करना)।

दिय कपाट चऊ कोट, चदु देवल मह मुक्यौ।
हथ्थन सुभझै तथ्थ, सथ्थु सबु ठांठा रूक्यौ ॥
मिल्यौ जाइ सुलितान, लई मुलतान लिखाई।
हौं प्रब्बत रजधान, कौन पजाब सुखाई ॥
इक रज्ज लभ्भ को अज्जमो, लाभ दु राय लगाइया।
वज्जीव डक जुग्गिनिपुरह, रह्यौ हमीरु फिरि सांइया ॥ २०७ ॥

शब्दार्थः—देवल=देवालय। मुक्यौ=छोड़ा। सथ्थु=साथी। ठांठा=जगह। हौं=मेरी। प्रब्बत=पहाड़ी भूमाग। रजधान=राजधानी। सुखाई=सुख। इक=एक। रज्ज=राज्य। लभ्भ-स्वार्थ लाभ। अज्ज= आज। मो=मैंने। लाभ=स्वार्थ। दु राय=दोनों राजाओं को। लगाइया=मिड़ा दिया। वज्जीन= डक=नक्कारे बजे। जुग्गिनि पुरह=दिल्ली में। फिरि=फिर गया, पलट गया। साइया=स्वामी से, पृथ्वीराज से।

अर्थः—यह कह कर कविचद को देवालय मे ही छोड कोट के चारों ओर के किवाड बन्द कर दिये। जिसके कारण वहाँ हाथ से हाथ नहीं दिखाई पडता था और उसके साथियों को भी उसने स्थान २ पर रोक दिया। इसके उपरान्त वह सुल्तान से जा मिला और मुलतान को अपने नाम पर लिखवा लिया। (वह मन ही मन कहने लगा) यह पर्वतीय राज्य श्रेष्ट है इससे बढकर पजाब मे कौनसा सुख है, इस एक राज्य की प्राप्ति मे ही क्या आज मैंने अपने स्वार्थ के लिए दो राजाओं (पृथ्वीराज और शाहबुद्दीन) को भिडा दिये है। इस प्रकार जब दिल्ली मे युद्ध के लिए नक्कारों पर डका पडा उस समय वह हम्मीर अपने स्वामी पृथ्वीराज से पलट गया।

दोहा

रोकि कविंद्रहि आपु मिलि, सो सुरतान असुभझ।
सुनत राज प्रथिराज कौ, हनि लग्गी उर मझ ॥२०८॥

शब्दार्थः—अबुझभ्भ=मूर्ख। हवि=हवि-वन्हि, आग। मभ्भ=में।

अर्थः—इस प्रकार कवि को मंदिर में बंद करके वह मूर्ख हम्मीर बादशाह से जा मिला। इसकी सूचना पृथ्वीराज को मिलने पर उसके हृदय में आग सी लग गई।

चारि चारि तरवारि हर, भर बंधी चर धाय।
इह चरित्त चहुआन दल, कह्यौ साहि सों जाय ॥२०४॥

शब्दार्थः—हर=हरेक, प्रत्येक। चर=दूत। धाय=जाकर। चरित्त=चरित्र। साहिसों=शाह से।

अर्थः—प्रत्येक सामन्त ने अपनी कमर में चार चार तलवारें कसी हैं। चाहुवानी सेना का यह चरित्र शाही गुप्तचरों ने देख शाह को जाकर सूचित किया।

हाइ हाइ वज्जी सु चर, धुनि पुच्छी सह सांइ।
जुद्ध परठ्यौ साहि सों, जुद्ध रहे कै जाइ ॥२०५॥

शब्दार्थः—हाइ हाइ=हाय हाय। वज्जी=होने लगी। धुनि=धुन कर। सांइ=साईं, मुल्ला, काजी, फकीर। परठ्यौ=ठाना। रहे=हाथ में रहेगा, विजय होगी। जाइ=हाथ से जाता रहेगा, पराजय होगी।

अर्थः—चरों के कथन से हाय! हाय! कोलाहल हो गया। तब सभी ने सिर धुन कर सांई (फकीर) से पूछा— हमने पृथ्वीराज से युद्ध ठाना है। युद्ध हाथ में रहेगा या चला जायगा (जय होगी या पराजय)?

बाल वृद्ध जुव्वन कहिय, वे मन्त्रे मत्ताय।
तेग एक पक्की चवै, चौ कच्ची भग्गाय ॥२०६॥

शब्दार्थः—जुव्वन=युवा। वे मन्त्रे=मन्त्रणा नहीं करने वाले। मत्ताय=मतवाले। तेग=तलवार। पक्की=मजबूत। चवै=कही जाती। चौ=चार। भग्गाय=टूट जाती।

अर्थः—सांई ने कहा—बच्चे, बुड्ढे और युवा कहते आये हैं, जो मंत्रणा नहीं करते वे ही मतवाले होते हैं और एक तलवार ही पक्की होती है, चार तलवारें कच्ची होती हैं जो टूट जाती हैं (अर्थात् विशेष मंत्रणा करने और चार चार तलवारें बांधने से कुछ नहीं होता। विजय तो मतवालों की ही होती है)।

करि निवाज सुरतान कहि, कितिक बुद्धि दिल्लीस।
गहि न साहि कथै हन्यौ, गहि मुक्यौ यह रीस ॥२०७॥

शब्दार्थ:—करि निवाज=नमाज पढ कर। कितिक=कितनी, अनुमान से परे। साहि=शाह। वधै हन्यौ- मारा। मुक्यौ=छोड़ दिया।

अर्थ:—तब सुलतान नमाज पढकर कहने लगा—उस राजा (पृथ्वीराज) की बुद्धि के विषय में क्या कहूँ (अनुमान से परे है) मुझे उस पर क्रोध इसी बात पर आता है कि उसने मुझे पकड़ कर मार नहीं दिया बल्कि छोड दिया (उसने मुझे इस तरह बार २ लज्जित किया)।

सवे सेन सत्तरि सहस, घटि बढि ब्रन्नत बार।
जे भर भीरह समुहैं, ते बत्तीस हजार ॥२०८॥

शब्दार्थ:—ब्रन्नत=कहने में। बार=समय (लगता)। भीरह=आपत्ति। समुहैं=सामने।

अर्थ:—ठीक गिनती तो नहीं की जा सकती किन्तु अनुमानत वह सेना सत्तर हजार थी उनमे से जो योद्धा आपत्तियों को सामने सहने वाले थे,वे बत्तीस हजार थे।

सहैं भीर न्रिप पीर जिम, लज्जा धर भर भार।
भरणि धरणि तिन वरि गनैं, ते भर बीस हजार ॥२०९॥

शब्दार्थ:—भीर=आपत्ति। पीर=दु ख। भरणि-धरणि=भूभर्ता, राजा। तिन वरि=तृण तुल्य।

अर्थ:—उन बत्तीस ही हजार योद्धाओं मे से बीस हजार योद्धा आपत्तियों को झेलने वाले, राजा के दु ख के साथी और पृथ्वी की लज्जा का भार धारण करने वाले थे तथा अन्य भू-भर्ताओं (राजाओं) को वे तृण-तुल्य समझते थे।

बीस हजारणि मद्धि दस, जे आग्या बर साम।
कर वज्जी वज्जे सहैं, ते पहु पचह थाम ॥२१०॥

शब्दार्थ:—हजारणि=हजार। दस=दस हजार। साम=स्वामी। कर-वज्जी=वज्र समान हाथों वाले। वज्जे सहे=वज्राघात सहने वाले। पहु=राज पदधारी। पचह-पाचहजार। थाम=स्थम तुल्य।

अर्थ:—उन बीस हजार योद्धाओं मे से दस हजार योद्धा स्वामी (पृथ्वीराज) की आज्ञा पर चलने वाले थे। उनमे से स्तम्भ तुल्य पॉच हजार राज पदधारी योद्धा वज्र-समान कर-प्रहार करने वाले और वज्राघात सहने वाले थे।

तिन महि कवि गणि बीससैं, सावन भावन जत।
तिन मे दससैं अरि दलन, जे कट्टट गज दंत ॥२११॥

शब्दार्थ:—गणि=गिने गये। बीस मैं=दो हजार। साखन=क्षत्रियों की शाखाओं में। भाखन जंत=वर्णन करने योग्य, प्रख्यात वीर। दससै=एक सहस्र। कड्ढैं=उखाड़ देते।

अर्थ:—उन पाँच हजार में से दो हजार क्षत्रिय-शाखाओं में प्रख्यात कहे जाते थे। उनमें एक सहस्र तो शत्रुओं को दल देने और हाथियों के दांत उखाड़ देने जैसे योद्धा थे।

> तिन महि कवि गणि पच सै, साख भाख द्रिढ़ काज।
> देव गत्ति दैवान सो, तिन महि पहु प्रथिराज ॥२१२॥

शब्दार्थ:—गणि=गिने। पच सै=पांच सौ। साख भाख=साक्षि देते। द्रिढ़ काज=कार्य में दृढ। देवान=देव स्वरूप। महि=में।

अर्थ:—उनमे से पाँच सौ योद्धा कार्य में दृढ़ थे इसकी साक्षी सब कोई देते हैं। उनके मध्य मे जो देव स्वरूप है और जिसकी गति देव तुल्य है ऐसा राजा पृथ्वीराज था।

> जिहिन कंक चकी कवैं, जिहि न सत्र भय सक।
> जिहि दारुण दल वल दलिय, हलि मलि हकत हक ॥२१३॥

शब्दार्थ:—जिहिन=जिसकी। कक=युद्ध में। चकि=चढ़ी हुई। कवैं=कमान। सत्र=शत्रु। हलिमलि=हिलमिलकर। हकत=बढ़ने पर। हक=बढकर, आक्रमण करके।

अर्थ:—जिसकी कमान सदा युद्धार्थ चढ़ी रहता है, जिस वीर को शत्रु का भय और शंका नहीं है, जो हिल मिल कर शत्रु के दारुण दल को बढता देखकर आक्रमण करके उसको नष्ट कर देता है, ऐसा वीर पृथ्वीराज उन वीरों के बीच सुशोभित था।

> वाजविहग तुरगु सुह, क्यनिय हाजुर आणि।
> रीछ रोम पक्खर खुलिय, साकति सुवन सुवानि ॥२१४॥

शब्दार्थ:—सुह=उसे। क्यंनिय=किया। हाजुर=उपस्थित। आणि=लाकर। रीछ=रिच्छि, ऋषि। पक्खर=पाखर। खुलिय=सुशोभित हुई, दिख पड़ी। साकति=साज। सुवन=स्वर्ण। सु वानि=सुन्दर ढग की।

अर्थ:—उस वीर पृथ्वीराज की सवारी के लिए वाजविहंग नामक घोडे को उपस्थित किया। वह स्वर्ण के साज से सजा हुआ था, जिस पर पाखर ऐसी दीख पडती थी मानों महामुनि की स्वर्ण-काय पर रोमावली हो।

जिहि निखत्त खल दल फटत, ज्यौ जल उपल सिवार।
बाग लेत हल वल परति, फट्टति भरणि किवार ॥२१५॥

शब्दार्थः—निखत्त=नक्षत्र (तुल्य अश्व)। उपल=पत्थर। सिवार=काई। बाग लेत=रास हाथ में लेते ही। हल वल=हलचल। परति=मचजाती। फट्टति=फटजाते। भरणि=वीरों के। किवार=कपाट तुल्य वक्षस्थल।

अर्थः—उस नक्षत्र तुल्य अश्व के चलने पर शत्रुसेना इस प्रकार फट जाती थी जैसे जलान्तर मे पत्थर के पडने पर कोई फट जाती है और जब उसकी रास हाथ में ली जाती थी तब शत्रु सेना मे हल चल मच जाती तथा वीरों के वक्षस्थल फट जाते थे।

लगत सस्त्र अग न गनतु, सहतु न चाबुक चोट।
अगम गम्य गाहतु अगह, गनतु न खाई कोट ॥२१६॥

शब्दार्थः—न गनतु=नहीं गिनता, परवाह नहीं करता। चाबुक=चाबुक। अगम-गम्य=विकट मार्ग को पार कर जाता। गाहतु=कुचल देता। अगह=नहीं कुचले जाने जैसों को गनतुन=नहीं गिनता, सकोच नहीं करता। कोट=दिवाल।

अर्थः—वह घोडा शरीर पर शस्त्राघात की तो परवाह नहीं करता, किंतु चाबुक की चोट नहीं सह सकता था। विकट मार्ग को पार कर लेता और नहीं कुचले जाने जैसों को कुचल देता तथा खाई दीवार को पार करने मे वह संकोच नहीं करता था।

सुमिरि मत्र आरूढ हुव, अग्नि देव दुज वदि।
छत्र दड छवि मडि सिर, कलह केलि रस नदि॥२१७॥

शब्दार्थः—सुमिरि=स्मरणकर। दुज=द्विज, ब्राह्मण। छत्र-दड=सदड छत्र। मडि=तना हुआ। नदि=प्रसन्न।

अर्थः—(पृथ्वीराज) मत्र स्मरण कर अग्नि देव और ब्राह्मणों की वदना करता हुआ अश्व पर सवार हुआ। वह कलह-क्रीडा के रस मे उस समय प्रसन्न दीख पडा और उसके सिर पर दड पर तना हुआ छत्र शोभा पाने लगा।

पावस आगम वर अगम, दल मज्जे दोउ दीण।
अवर छायौ अब्भयणि, छिति छादय छत्रीणि ॥२१८॥

शब्दार्थः—अगम=दुर्गम। दीण=दीन। अवर=आकाश। अब्भयणि=बादलों मे। छत्रीणि=क्षत्रिय।

अर्थः—वर्षा ऋतु के आगमन के समय दुर्गम स्थान पर दोनों दीन वालों ने सेना को सजाया। उस समय आकाश में बादल और पृथ्वी पर छाये हुए क्षत्रिय शोभा पा रहे थे।

कवित्त

सिंधु उतरि सुलितान, कह्यउ कुरमान खह।
खा ततार रुस्तमा, छुओ तुम सचु मुसाफह॥
मैं आलम आलम, सकिलि हिंदू रा उप्पर।
ग्रहि छड्यौ खटु बार, बेर हौं अप्पु अप्पु कर॥
तिहिं ग्रहन हेत इछौ सुमन, सचु झूठु करतार कर।
भग्गहु अभग्ग मितु सग्रहैं, धरहु लज्ज जणि डुलहु भर॥२१६॥

शब्दार्थः—खह=कहैं, को। छुयो=ग्रहण करो। सचु=सत्य को। मुसाफह=मुसाहिब। आलम=साथी। आलम=मजहबी समूह। सकिलि=इकट्ठे हुए। खट्ट बार=छः बार। अप्पु=दूंगा, चुकाऊंगा। अप्पु=अपने। ग्रहन=पकड़ने। हेत=हेतु। सचु झूठु=सत्य या असत्य होना, पूर्ण होना या न होना। भग्गह=भाग्य। अभग्ग=दुर्भाग्य। मितु=बुद्धि। जणि=जनि, मत। डुलहु=विचलित होना।

अर्थः सिंधु नदी के उतरने पर बादशाह ने खुरासानखाँ, तत्तारखाँ और रुस्तमखाँ से यही बात कही कि तुम मुसाहिब हो इसलिए सत्य को ग्रहण करलो। मैं और मेरे साथी तथा मेरे मजहबी सब हिंदू राजा (पृथ्वीराज) के लिए ही इकट्ठे हुए हैं। जिस राजा ने मुझे छः बार अपने हाथों से बन्धन में लेकर छोड़ दिया है। उससे मैं अपने हाथों बदला लेने और उसे पकड़ने की इच्छा करता हूँ इसका पूर्ण होना अथवा नहीं होना सृष्टि कर्ता के हाथ है। बुद्धि तो सौभाग्य और दुर्भाग्य के साथ है (सौभाग्य से सुमति और दुर्भाग्य से कुमति का होना स्वाभाविक है), किंतु हे वीरों! आप लज्जा को धारण कीजिये और विचलित न होइये।

खुरासान तत्तार, खान रुस्तम कर जोरहि।
आन साहि सुरतान, आन चहुवान विछोरहि॥
ह हंमीर हिंदू न, दीन रोजा रजानहि।
पंच निवाजवि काज, जौन गोरी गुमानहि॥

सुरतान आन चहुआन सौं, जौ न चाल वधिव भिरहि ।
खुदाइ घर ण हम सचरहि, जौ न ह्य दु जीवत धरहि ॥२२०॥

शब्दार्थः—आन=दुहाई । विछोरहे=बिछुड़ा देंगे, भुला देंगे, मिटा देंगे । ह=हम । हमीर=अमीर । रजानहि=रंजित, प्रसन्न । काज—कर्म । जौन=जिसका । गु मानहि=गुमान । चाल वधिव=पक्तिवद्ध हो । खुदाइ=खुदाके । ण=नहीं । सचरहि=जावें, स्थान पावें । ह्य दु=हिन्दू (राजा पृथ्वीराज) । धरहि=पकड़लें ।

अर्थः—तब खुरासानखॉ, तत्तारखॉ और रुस्तमखॉ ने हाथ जोड़ कर कहा—हम इस मरदाने शाह की दुहाई फिरा चाहुवान (पृथ्वीराज) की दुहाई मिटा देंगे। हम हिन्दू अमीर नहीं हैं हम मुस्लिम वीर है जो अपने दीन और रोजे से ही प्रसन्न हैं, हमारा यही कर्म है कि दिन मे पॉच बार नमाज पढते हे जिसका गौरव हम गौरियों को है । हम शाह की दुहाई देकर कहते हैं कि चाहुवान से पक्ति बद्ध होकर नहीं लडें और हिन्दूराजा (पृथ्वीराज) को जीवित नहीं पकड ले तो हम खुदा की दरगाह (घर) मे स्थान नहीं पावेंगे ।

सजल पूर सतनज, चरन साहाब सु मुक्किय ।
खाँ कमाल गक्खरिय, निरति सेना रसु लक्खिय ॥
वर प्रतीत सेसन्न, देस नव नव वल तुल्लन ।
अय जु वार परवरदिगार, जुम्मी जुर बुल्लन ॥
दिव निसा देखि हित चित्त दल, कलन लोह कु जर हयन ।
वचन्न लेख लख्खन पिखन, करि कगगर अगगर बयन ॥२२१॥

शब्दार्थः—सतनज=सतलज । चरन=दूतों को । साहाब=शहाबुद्दीन । मुक्किय=छोड़े, रवाना किये । निरति=निरतर । रसु=रस, प्रेम । सेसन्न=सहर्षो । तुल्लन=तुलना कर जानते । अय=लोहा । वार=प्रहार । जुम्मी=जोम रखने वाले जोशीले । जुर=जुट कर । बु लय=बोल कर, उच्चारण करके । दिव=दिन । कलन=ग्रसन, करने वाले । लोह=लोहा, शस्त्र । हयन=नाश । वचन=वचन । लख-लख्खन=लेख लिखने तुल्य, प्रशस्ति तुल्य । पिखन=देखे गये । करि-कगगर-अगगर=कागज का नमने किया, पत्र दिया । बयन—उन्होंने ।

अर्थः—जल पूर्ण सतलज स्थान मे गौरीशाह ने दूतों को आगे रवाना किया । उन दूतों के नाम कमालखॉ और मीर गक्खरी थे । जो निरतर सेना को सजाने मे

प्रेम रखते थे, जिनका विश्वास सहस्रों वीरों को था, जो नये २ देशों के बल की तुलना कर जानते थे, जो अवसर आने पर परवर दिगार (ईश्वर) का उच्चारण करके जोश मे आकर जुटते हुए लोह प्रहार करने वाले थे, जो रातदिन अपनी सेना का हितचिंतन करने वाले और शस्त्र द्वारा हाथियों को नष्ट कर देने वाले थे एव जिनके वाक्य प्रशस्ति (लेख) के तुल्य अमिट थे, ऐसे उन दूतों ने शाही पत्र को राजा पृथ्वीराज के पास जाकर प्रस्तुत किया।

जित्तै जित वच्चलिय, राज राजन ग्रह गुदर।
हमस हौंम सामंत, मंत पूरण भर सुब्भर॥
राज मिलन सुलतान, लिखि सु कग्गर फुरमानं।
हवि वचन्न असमान, असॅख गज्जिय खुरसान॥
सम सिफति-सील उत्तर तरह, डिसि दुस्तर संग्राम रण।
सम विखम वत्त पारसि कुसल, स्वामि वचन ह्यंदू सधन॥२२२॥

शब्दार्थः—जित्ते=वहाँ पर (उसी समय)। जित=जैत्र प्रमार। वच्चलिय=बांचा, पढा। गुदर=गुदराई जाती, सूचित किया जाता। हमस=उमसना, उकसाना। हौंम=होमना, नाश कराना। मत पूरण=सम्मति देना, विचार भरना। कग्गर-फुरमान=फरमान रूप में पत्र। वचन्न=वचन। असमान=विषम। असँख=असंख्य। सम=समान। सिफति-सील=सम्पति शील, शीलवान। तरह=तर्ज। दिसि=देखते हुए। विखम=विषम। पारखि=परख कर, सोच कर। वचन-ह्यंदू=हिन्दुओं को बचाने का। सधन=साधन करें।

अर्थः—उस पत्र को वहाँ पर उसी समय जैत्र प्रमार ने पढ कर सुनाया। उसमे लिखा था,—हे राजाओं के राजा! आपके गृह पर यह बात गुदराई (सूचित की) जाती है कि वीरों मे युद्धार्थ बढने के विचार भरना और उन्हें उकसाना सामन्तों का नाश करना है। अत यह पत्र (फरमान, परवाना) इसी उद्देश्य से लिखा गया कि हे राजन्! आप मुझ से आकर मिल ले। इसके विपरीत यदि विषम वचन कहे जायेंगे तो हवि-तुल्य ही होंगे। क्योंकि असंख्य खुरासानी इस समय आप पर गर्जना कर रहे है। इसीलिए लिखना है कि आपके उत्तर का तर्ज सम्पत्ति-शील (शीलवान) की तर्ज पर ही होना चाहिए। आपको इस दुस्तर रण-संग्राम (घमासान युद्ध) की ओर देखते हुए सम-विषम बात को सोचना चाहिए इसी में कुशलता है। स्वामी को चाहिए कि वह अपने हिन्दुओं को बचाने का साधन करे।

सुने सद चामड राइ, सुलतान वसीठ ।
अप्रमान वुल्लहु बयन, राजन सों ढीठ ॥
तुम जानहु सामत, मत जेहा अभ्यासै ।
सारुंडै पट्टनैं पन पानीपथ गासैं ॥
बोलान बोल किती बढै, हेला हकि हमीर सुणि ।
जेलम्म जोर मे मिच्छ धर, सार दहदै धार धुणि ।८२३॥

शब्दार्थ:—सुने = सुनकर । सद = कहा । बसीठ = दूतों को । अप्रमान = प्रमाण-शून्य । ढठ = ढीट । मत = मत्रणा । अभ्यासै = अभ्यास—ज्ञान । सारुंडै = सारूडे । पन = हाथ । पानीपथ = पानीपत । गासै = गासलिया, ग्रसलिया, पकड़ लिया । बोलान बोल = बोल पर बोल देने से । हेला—हकि = गजारोही झुंड को बढा । हमीर = अमीर (गोरी) । सुणि = सुन । जेलम्म = झेलम । जोरमें = जोड़ना चाहता । सार = लोहा खड्ग । दहदै = दग्ध कर देगा । धुणि = धून कर, हिलाकर ।

अर्थ:—उस पत्र को सुनकर चामण्डराय सुलतान के दूतों को कहने लगा—तुम मुसलमान ढीट हो जो पृथ्वीराज को प्रमाणशून्य वचन कहलाते हो । सामन्तों को सुमत्रणा करने का जो ज्ञान है वह तुम स्वय जानते हो । उसी सुमत्रणा के कारण सारूण्डे, पट्टन प्रान्त और पानीपत मे होने वाले युद्धों मे हमने अपने हाथो से शाह को पकड लिया था । बोल पर बोल देने से कीर्त्ति का विस्तार नहीं होता । मेरी ओर से गोरी शाह को कहना—हे अमीर गोरी ! तू अपने गजारोहियों के झुंड को बढाना । तू झेलम को अपने भू-भाग से मिला देना चाहता है लेकिन याद रखना अपनी खड्ग-धारा को हिलाता हुआ प्रहार करके तुम विपक्षियो को दग्ध कर दूंगा ।

बर जपै जद्दू जुआन, बलिभद्र सु ध्रम्म ।
हम सुलतान सु क्रम्म, सेव कीनी बहु ध्रम्म ॥
तुम ओड्डानी तक्कि, बक्कि हाहुलि हम्मीरा ।
थट्टा बभन बास, पास उतरे गभीरा ॥
हम तुम्म तेकमे सीस धरि, बीच करीम कुरान की ।
बचौ जु मोह माद्रोह दर, लभ्भौ लभ्भ पुराण की ॥८२४॥

शब्दार्थ:—जद्दू—जुआन = जामराय यादव । ध्रम्म = धर्म । क्रम्म = क्रमण कर, चढाई करके । सेव = सेवा । ध्रम्म = धर्मयुक्त । ओड्डानी—तक्कि = ओड्डान पर उतर कर । बक्कि = बकने पर,

कहने पर। थट्टा-समूह=बद्ध हो। बमन बाम=ब्रह्म क्षत्रिय चालुक्यों के प्रान्त पर। पास=समीप ही। उतरे=उतरपड़े। गमीरां=गमीर रहे। तेक्में=तलवारें। ग्रचो जु सौंह=शपथ से वंचित। सांद्रोह दर=स्वामी द्रोही हम्मीर को द्वार पर बसाया। लभ्मौ=देखो। लभ्भ पुराण की=प्राण बचने के लाभ की ओर।

अर्थः—तब जामराय यादव और बलिभद्र (कछवाहा) ने धर्म युक्त श्रेष्ठ कथन करते हुए कहा—सुलतान और हमने एक दूसरे पर पहले चढ़ाई करके परस्पर मर्म-युक्त सेवाएँ की हैं (शस्त्र आजमाये हैं)। वे एक दूसरे से छिपी हुई नहीं हैं हाहुली राय हम्मीर के कहने पर अब तुम ओछेपन पर उतर पड़े हो, किंतु यह बात याद रखना चाहिये कि ब्राह्म-क्षत्रिय चालुक्य के प्रांत में होने वाले युद्ध मे जब तुम समूह-बद्ध होकर हमारे समीप ही उतर पड़े थे तब हम उस समय गंभीर बने रहे। जिसका कारण था कि हमने तलवारें सिर पर लेकर तुमने करीम और कुरान को बीच में रख एक दूसरे के विरुद्ध नहीं होने की शपथ ली थी। आज तुमने उस शपथ से वंचित होकर स्वामी-द्रोही (हाहुली-हम्मीर) को अपने दरवाजे पर बसा लिया है; किंतु गुजरातियों से युद्ध करने मे हमारी गंभीरता के कारण तुम्हारे प्राण बचने का जो तुम्हे लाभ प्राप्त हुआ है इस ओर तुम्हें देखना चाहिये।

मुसलमान दै हथ्थ. हाम हम्मीर मुहाई।
राज कुमारह रेण. सेव संचार दुहाई॥
तुम मंगौ पजाव अद्ध-पहु ग्राम न मुक्कै।
दुइ मित्तह उद्दोत-परी-जिम्मी जित सुक्कै॥
हम लभ्भनि तुम्म लराइयां, वर भरहीं सिंघह समर।
गुफ अभैं सु ण्णि संचरि रहे, सुभ सियार चख्खहि अमर॥२२५॥

शब्दार्थः—दै हथ्थ=वचन देकर। हाम=विश्वास। मुहाई=मुँह मे। सेव=सेवा में। संचार=उपस्थित हो, फेरी जाय। अद्ध=आधा। पहु=राजा। दुइ=दो। मित्तह=मित्र, सूर्य। उद्दोत=उदय के बीच, प्रकाश में। परी=परछाई। जिम्मी=जमीन, पृथ्वी। जित=जीत होने पर। सुक्कै=स्वकीय पन ग्रहण करेगी, उसी की होकर रहेगी। लभ्भनि=लाभ। तुम्म लराइयां=तुम से लड़ने में। वर भरहीं=शक्ति का संचार होगया। सिंघह-समर=समर केशरी। गुफ=गुफा। अभैं=निर्भयता पूर्वक। सु ण्णि=शून्य होने पर, शरीर प्राण रहित होने पर। सुभ=शुभ। सियार=गीदड़। चख्खहि-अमर=अमरत्व का मजा लेंगे।

अर्थः—तुरुष्क गौरी ने वचन दे बागी हाहुली-हम्मीर को विश्वास दिया है और वह (शहाबुद्दीन) चाहता है कि राजकुमार रैनसी उसकी सेवा मे उपस्थित होवे और उसकी दुहाई को माने तथा पजाब प्रात आवा उसको मिल जाय, किन्तु राजा पृथ्वीराज उसे एक ग्राम भी नहीं देना चाहता। अब तो यह पृथ्वी दो सूर्यो के प्रकाश मे पड गई है अत जिधर जीत होगी यह उसी की होकर रहेगी। हमे तो तुमसे लडने मे ही लाभ है, क्योंकि हमारे मे वीरोचित शक्ति का सचार करने वाले रावल समर-केशरी जैसे हमारे सहायक है। अत हमारे मरने पर ही हमारी किन्दरा (भू भाग) पर निर्भयता पूर्वक गीदड सचार कर पायेगे। ऐसा होने पर ही उनका (गीदडों का) शुभ है। हम तो अमरत्व का मजा लेकर ही रहेगे।

मभभह रावल समर-सिंह सिंहत्तन पुच्छिय।
जे मता मतेह, हवे लड्डू दुह हथ्थिय॥
जौ जीवदा जित्ति, मुत्ति तो सग्ग स मानी।
ना दिखवौ प्रथिराज, मुरै मगाल चहुआनी॥
आवृत्त घत्त मत्ता लहौ, पर कज्जा सज्जा समर।
ततवाह तत्त वपराइया, अखै देव दानव अमर॥२२६॥

शब्दार्थः—मभभह-रावल = रावलों का मुखिया। सिंहत्तन=सिंह-काय वीरों मे। मता-मतेह= मतवाले पने की मत्रणा। हवै=होते हैं। हथ्थिय=हाथों। जौ=यदि। जीवदा=जीवित रहे। जित्ति- जीत, विजय लक्ष्मी। मुत्ति=मोक्ष। सग्ग=स्वर्ग। स=यह। मानी=माना गया। मुरै=मुडने पर। आवृत्त घत्त=लगातार वार करते हुए। मत्ता-लहौ=मत्रणा निश्चय करली। कज्जा--कार्य। सज्जा- समर=युद्ध करेगे। ततवाह-तत्त=तत्व से परे तत्व। वपराइया=काम में लें, प्राप्त करलें। अखें= रहते, मानि देते। अमर देवता।

अर्थः—रावलों का मुखिया रावल समर-केशरी सिंहकाय वीरों से प्रश्न करता हुआ कहने लगा। जिस मतवालेपन की मत्रणा पर हम दृढ है तो दोनों हाथों मे लड्डू है। हम जीवित रहे तो विजय-लक्ष्मी को और स्वर्गागमन कर गये तो मोक्ष को प्राप्त कर पायेगे। हे राजा पृथ्वीराज सुनो। युद्ध से मुड जाने मे मुझे आप चाहुवानों का मगल नहीं दिखाई देता। हमने तो यही मत्रणा निश्चय करली है कि लगातार वार करते हुए पराये कार्य के लिए युद्ध ही करेगे। यदि मर गये तो तत्व से

ी परे जो तत्व से भी परे जो तत्व (मोक्ष) है उसे प्राप्त कर लेंगे। हे देव! उसकी साक्षी दानव और देवता देते हैं।

पा पट्टीय वसीठ, सथ्थ सुरतान कहंदे।
तुम सा राहैं भुज्ज, डड भरि जीव रहंदे॥
के भूले उपगार, कन्ह उपकार सु झुभ्झा।
होहि न वड्डा वोल, चढै चपौ अनवुझ्झा॥
दिय दूत हथ्थ कागर दुजर, अगर पच मन साहि दिसि।
सोनी सुजान नीसथ्थ कथ कहन वोल वरवीस विसी॥२२७॥

शब्दार्थः—पा = प्राप्त। पट्टीय = पत्तीय, पत्रीय, पत्र। सथ्थ = साथ, द्वारा। कहंदे = कहलाया, सूचित किया। सा = उस। राहैं = रास्ते। भुज्ज = भजिये, ग्रहण किये रहना, पकड़े रहना। डड भरि = दड देकर। जीव रहंदे = जीव (प्राण) रक्षा की। के = कितने ही। उपगार = उपकार। कन्ह = किन्ह, किये। झुभ्झा = युद्धों में। वड्डा = वड़ाई। वोल = वोल देने में, गाल फुलाकर वोलने में। अनवुझ्झा = अबूझ अयाना। कागज = कागद। दुजर = वेकाबू। अगर = अग्रणीय। मन साहि-दिसि = जिनका मन शाह के रास्ते की ओर (युद्धार्थ) था। सोनी = सुनी। सुजान = सयाने। नीसथ्थ = अन्य साथी (सामन्त)। कथ = जबानी कही हुई मन्त्रणा। वरवीस = वरवी, वाड़वाग्नी। विसि = विष।

अर्थः—शाही दूतों ने जो पत्र प्राप्त किया उसके द्वारा शाह को सूचित किया, हे गोरी! तुम तो उसी रास्ते को पकड़े रहना जिससे कि पहले दण्ड देकर तुमने अपनी प्राण रक्षा की थी। तुम कितने ही उपकार भूल चुके हो जो कि युद्धों में तुम्हारे साथ किये गये थे। गाल फुलाकर वोलने में वड़ाई नहीं है। हे अयाने! वड़ाई शत्रु पर आक्रमण कर उसे दवाने में है। दूतों को पत्र दिया गया, वह उन अग्रणीय वीरों ने दिया जो कि कावू में नहीं आने वाले और जिनका मन शाह से युद्ध करने का था। उन वीरों की ही वह लिखित मंत्रणा थी। उसके अतिरिक्त अन्य सामन्तों की मन्त्रणा जो उन सयाने दूतों ने जवानी सुनी थी वे कथन भी वाडवाग्नि और विष तुल्य थे।

आवट्टी कुथ्थली, पच तेरह करि मंडिय।
लख्खां छप्पिय च्यारि, खाम कागर करि छंडिय॥

खान खान तत्तार, खान रुस्तम खा हाजिग।
खा पीरोज कुसाब, हिन्दु तुरकी पढि काजिय ।।
दीहाइ पच पथे वह्या, दल सुरताननि संमुहा।
पजाब मद्धि टिल्ला पहर, मिलि मध्याननि विम्मुहा ।।२२८।।

शब्दार्थ:—ग्रावट्टी=पलट कर। कुथली=थैली।। लख्खां=लिखी गई, लगाई गई। छप्पिय=छापें, मुहरें। खाम=बद। कागर=पत्र। छडिय=भेजा, रवाना किया। हिंदु—तुरकी=हिन्दी मे तुरक भाषा में (अनुवाद करके)। दिहाइ पच=पांचदिन, कुछ दिन। पथे वह्यां=रास्ते चल कर। सपुहा=ग्रोर। पहर=पसर करते समय, या—फैल रहा था। मिलि=मिले। विम्मुहा=विमुख, विरुद्ध।

अर्थ:—वह पत्र कपडे के पाच या तेरह तह पलटकर चार मुहरे लगा थैलो में बन्द कर के दिया गया था। उस पत्र को लेकर दूत कुछ दिन चलकर आते हुए शाही दल मे जा पहुँचे और जब मध्यान समय मे पंजाब और टीला पहाड के भूभाग पर शाही दल फैल कर विरुद्ध रूप धारण किये हुए था उसी समय वे दूत जाकर शाह से मिले। उस पत्र को खान खान, तत्तारखां, रुस्तमखा, हाजीखां, पिरोजखा, कुसावखा और काजीखां ने खोल कर हिन्दी से तुरकी भाषा मे अनुवाद करके पढ़ा।

कहि सोनी पति साहि, इष्ट करि रा_ट भगिय।
या लज्जी सुरतान, स्यधु किहि कज्ज उलघिय ।।
पैगामर है वीच, मिटै बोला दर ग्रधिय।
एक वार दुव वार, वार रस एकस वचिय ।।
हा! हुसन होइ पहिलू न हिल, मुख दिखावन देखिया।
गित हित्त चित्त मन्नै नहीं, कहै वड्ड गुर सिख्खिया ।।२२६।।

शब्दार्थ:—सोनी=सुनी हुई या सुनाने को। इष्ट करि=इच्छा करके, इरादतन। राष्ट्र=राष्ट्र। भगिय=नाश करता है। या लज्जी=इतनी सी लज्जा (पति)। स्यधु=सिंध। किहि कज्ज=किस-लिए। उलघिय=पार किया पैगामर=पेगम्बर। बोला=वचन। वार-रस-एक=सात वार। वचिय=वचन में लेने पर। हा=खेद है। हुसन=हुमाई। पहिलू=पहिले का। हिल=हल। हित हित=हित कार्य। कहै वड्ड=बड़ी २ बाते हाकता है। गुर सिख्खिया=गुरूपदेश।

अर्थ:—दूतों ने पत्र देने के बाद अवसर देखकर मुसाहबों को यह भी कहा कि विपक्षियों ने जबानी कह सुनाने को यह बात कही है कि इरादतन देश का नाश करता

है। सुलतान की इतनी ही पति (लज्जा) है कि अपनी बात पर अटल नहीं रहता और यदि अटल है तो सिंधु को क्यों पार किया। पेगम्बर को बीच में देकर जो श्रेष्ठ वचनों द्वारा संधि की गई थी उसे उसने क्यों भग किया। ऐसी प्रतिज्ञा एक बार दो बार नहीं सात बार जब वह बंधन मे आया तब की है। इसकी बात पर हमें खेद है कि पहले की हँसाई तो हल नहीं होती और पुन. वह आकर मुख दिखलाता है। वह चित्त से अपने हित कार्य को नहीं मानता और गुरूपदेश देने को बडो २ बातें हाकता है।

त्रिपथ पथ पव्वा पहार, गह्री दिसि वामह।
जेलं लगर आव, विहथ बधी जथ नावह॥
साहि तक्कि ताजिय चढत, मुन्नाम मुनारह।
दै कागर दूतान, कियौ सोनार सलामह॥
औ वचि आप कुट्या हिया, न किहुँ कीय करतार कर।
वच अद्ध कट्टि खिज्जिय खला, बधियाहि चपौ सु धर॥२३०॥

शब्दार्थः-त्रिपथ=त्रिपथ गामिनी, गगा या जहां से तीन रास्ते फटते हैं। गह्री=ग्रहण करता हुआ, देता हुआ। जेलं=झेलम। विहथ=विस्तृत, बड़ी २। जथ=जहां। तक्कि=देखकर। ताजिम=ताजी जाति के घोड़े पड़े पर। मुन्नाम=उन्नाम, उनाव मुनारह=मिनारे, हद्द पर गाडे गये पत्थर, सीमा। सोनार=सोन। अप्प=अपना। कुट्या हिया=छाती पर हाथ पटका। किहुँ कीय=कोई किसी का। करतार कर=करतार ने पैदा किया। वच-अद्ध-कट्टि=अर्ध वचन कहकर। खिज्जिय=क्रोध किया। खला=शत्रुओं पर। बधियाहि=बधन में लेने व ले को। चपौ सु धर=धर दबाओ।

अर्थः-त्रिपथ गामिनी गङ्गा के रास्ते पर या जहाँ से तीन रास्ते जाते (फटते) हैं वहाँ पव्वा नामक पहाड है उसे बायें देते हुए झेलम नदी पर बड़ी २ नावें लगरों से बँधीं हुई थी, उनके द्वारा नदी को पार करके शाह ताजी घोडे पर सवार हुआ और उन्नाव के तटवर्ती स्थानों पर होता हुआ सोन नदी पर पहुँचा। उसी समय दूतों ने सलाम करके मुसाहवों द्वारा शाह को पत्र नजर किया। पत्र को पढकर शाह ने अपनी छातीपर हाथ पटका और कहा—करतार (ब्रह्मा) ने सबको पैदा किया, है, किन्तु कोई किसी का नहीं है (अर्थात् आत्मा से सम्बन्ध किसी का नहीं है, वह तो अमर है और शरीर नाशवान है)। इस प्रकार अर्ध वचन कहता हुआ वह

विपक्षी पर क्रोध करता हुआ कहने लगा—मुझे बन्धन में लेने वाले (पृथ्वीराज) को धर दबाओ।

बोलै साहि सहाव, प्रत्ति पठए चहुआनह।
सो आयौ सनामि, पान जोरे सब्बानह॥
बुझ्झै गोरी नरयँद, सयल जगलपति जानह।
तब बोल्यौ कम्माल, सुनौ बत्ता सम्भानह॥
सामंत सूर सब जोरबर, बिन बेरी चामंड किय।
भ्रित स्वामि ध्रम्म रत्ते रहसि, तिन बर सिज्जै तॉम जिय॥२३१॥

शब्दार्थः—बोलै=बुलाया। प्रत्ति-पठए-चहुआनह=चाहुवान के पास भेजे हुए दूत को। सनामि=वह नम कर, सलाम करके। पान=पाणि, हाथ। सब्बानह=सबको। सयल=सकल जगल-पति=जगलेश्वर। जानह=जानकारी। कम्माल=नाम विशेष। बत्ता=बातें। सम्भानह=सभी सभासद। जोरबर=शक्तिशाली। बिन बेरी=बेड़ी से रहित, मुक्त। भ्रित=भृत्य, सेवक। रत्ते=रत्त, लीन रहसि=रहने वाले। सिज्जै=सजा। ताम जिय=उनका जीवन।

अर्थः—इसके बाद जिस दूत को चाहुवान के पास भेजा उसको शहाबुद्दीन ने सामने बुलाया तो वह सलाम करता हुआ आकर उपस्थित हुआ और सबको सलाम किया। गोरीश्वर ने उससे जगलेश्वर की जानकारी के विषय में पूछा तब कमाल नामक दूत कहने लगा- आप सभी सभासद सुनिये। उसके सब बहादुर सामंत शक्तिशाली हैं और बन्धन में किये हुए चामंडराय को भी मुक्त कर दिया है। चौहान के सब वीर स्वामी-धर्म में लीन रहने वाले हैं। उनका श्रेष्ठ जीवन ईश्वर ने स्वामी के लिए ही सजा है।

दोहा

सुनिय बत्त गोरी गरूअ, तन मन कप्यो ताम।
चल्यौ मंद गति मन विकल, (ज्यों) ग्रेह नउढा काम॥२३२॥

शब्दार्थः—ताम=तब। ग्रेह=गृह, घर। नउढा=नवोढा। काम=काम विलास।

अर्थः—दूतों द्वारा शत्रुओं की गौरव भरी बात को सुनकर उस (गोरी शाह) का तन-मन कंपायमान हो गया और वह विकल मन होकर धीरे-धीरे इस प्रकार आगे बढ़ता हुआ दिखाई दिया मानो विलास-भवन में भयभीत नवोढा, पति के समीप विचरण करती हो।

कवित्त

च्यति साहि साहव-दीन सुरतान तामकवि।
वोलि सव्व उम्मरां, मंत सा च्यंत ताम तवि॥
चर चरित्र चहुआन, कहिय सो आदिरु अंतह।
सोइ च्यत चित्तेवि, सचौ सव्वैं मिलि मतह॥
जपेव ताम तत्तार तमि, कहौ चित साहाव चिति।
कै सजहि भिस्ति मारग सकल, कै तुम आनहि जुद्ध जिति॥२३३॥

शब्दार्थः—च्यति=चिंतन। तामकवि=टामक, डंका दिलाया। उम्मरां=उमराव। ताम=तब। तवि=उसी समय। चित्तेवि=सोचना। सचौ=सचार करना, आगे बढना। चिति=चित्त। सजहि=सुशोभित करेंगे, जाने को तय्यार होंगे। भिस्ति=वहिश्त। तुम=तुम्हारे समीप। आनहि=लेआयेंगे। जिति=जीत, जय लक्ष्मी।

अर्थः—दूतों की वात सुनकर सुलतान शहावुद्दीन ने नक्कारे पर डंका दिलाया। उसने सव उमरावों को वुलाकर उसी समय मंत्रणा का चिंतन किया और कहा—आये हुए दूतों ने चाहुवान नरेश्वर का आदि से अन्त तक जो वर्णन कर सुनाया है। उसी के विषय मे हम सवको चिंतन करना है। अतः कोई निश्चित मंत्रणा कर हमको मिलकर आगे वढना चाहिये। तव क्रोध मे आकर तत्तारखान कहने लगा—हे शहावुद्दीन मैं चित्त मे चिंतन करके कहता हूँ या तो हम सव वहिश्त के मार्ग को सुशोभित कर देंगे या जय-लक्ष्मी को तुम्हारे पास ले आयेंगे।

दोहा

सुनी वत्त साहाव सुइ, वध्यौ जोर जुरान।
चल्यौ आप नीसान नदि, च्यते चित्त इमान॥२३४॥

शब्दार्थः—सुइ=उसकी, या वह। जोर=शक्ति, वल। जुरान=जुटने की। नदि=वजवा कर।

अर्थः—उस तत्तारखाँ की वात सुन कर शहावुद्दीन की और उसके साथियों की युद्धार्थ अधिक शक्ति वढ गई और अपने इमान का चित्त मे चिंतन कर नक्कारे वजवाये।

कवित्त

आनि खान सुरतान, साजि साहाव सु हितं।
डेरा खान अना न, करी प्रस्थान मिलत्तं॥

धरे धीर उद्धंग, चग सुरतान चढदे ।
मन बढ्ढै हम्मीर, म्रत्य लै लीह कढदे ।।
दह सहस सग आलम्म के, ए जुदेह दह पंच दस ।
संसार सकल पुज्जै बली, करै जोर छोनीय गस ।।२३५।।

शब्दार्थः—आनि=अन्य । हित=हित । हेरा=देखा, विचार किया । अना=अन्य आगे पीछे । धरे=धारण की । उद्धग=ऊर्ध्वकाय । चंग=चगा । चढदे=चढाई की, बढा । म्रत्य लै = मृत्यु लिये । लीह कढदे=लीह से विपरीत हो गया, कार छोड़ दी । दह=दस । आलम्म=बादशाह । देह=अलग । दह पच दस=दस पांच पन्द्रह और दस (पच्चीस) । करै जोर=शक्ति प्रदर्शित करके, शक्ति द्वारा । छोनीय=छोणि, पृथ्वी । गस=ग्रस लें ।

अर्थः—उसी प्रकार सुल्तान के और खान भी शाह के हित के लिए सुसज्जित हुए और उन्होंने आगे पीछे का विचार नहीं करके मिलते ही प्रस्थान कर दिया । इस प्रकार ऊर्ध्वकाय चगा सुल्तान धैर्य धारण करके आगे बढा । जिससे हम्मीर का भी मन बढ गया और उसने कार छोड कर मृत्यु को स्वीकार करली । शाह के साथ में दस सहस्त्र निजी साथी रहे और अन्य-खान पच्चीस हजार अलग ही चल पडे । इस प्रकार सेना की दो टुकडियां की गई । तत्पश्चात वे वीर कहने लगे हम शक्ति द्वारा विपक्षी की पृथ्वी को ग्रस लेंगे क्योंकि ससार बलवानों की ही पूजा करता है ।

दोहा

मिच्छ मसूरति सत्ति किय, वचि कुराण कुराण ।
वीर विचाररति रत्ति हुअ, दिये मिलाण मिलाण ।।२३६।।

शब्दार्थः—मिच्छ=मुस्लिम । सत्ति किय-सत्य कर बताया, पुष्टि की । कुराण = कुरान शरीफ । कुराण = क्रूरता । रत्ति=रत । दिये=किये । मिलाण मिलाण=मुकाम पर मुकाम ।

अर्थः—मुस्लिम मसूरत खान ने कुरान को पढते हुए विपक्षियो के साथ क्रूरता का व्यवहार करने की पुष्टि की, तथा मुस्लिम योद्धा उस पर विचार करते हुए लीन हो गये एव मुकाम पर मुकाम करते हुए आगे बढे ।

कहहि सुहड़ रण अम्भरण, मरण सु [illegible] वन वन्नाह ।
[illegible] दल [illegible] मर्द मनाह मनाह ।।२३७।।

शब्दार्थः—सुहड़=सुभट, वीर। अभ्भरण=आभरण, भूषण। धन धन्नाह=धन्य है। वल=बल, पराक्रम (चित्तौडेश्वर रावल समर विक्रम)। नर्यंद=नरेन्द्र, राजा पृथ्वीराज। भई=भये, हुए, धारण किये। सनाह-सनाह=कवच।

अर्थः—रणस्थल के आभूषण स्वरूप वीर कहने लगे कि युद्ध स्थल में वीरों का मरना धन्य है। यह कहकर पराक्रम-रावल तथा राजा पृथ्वीराज के सैनिकों ने कवच धारण किये।

कवित्त

गरुड हकि दानव नर्यंद, दिसि वाम काम तत।
झलकि झलकि झं झुरिग, नैन गद वैन कहत वत॥
तुम दख्खिन गिरि गरुव संग रण रंग हरख्खइ।
मुहि पलु पलु खलु घटहि, चढहि क्रम अग परख्खइ॥
जब लगि जैत चामंड हुत, तब लगि भीरत्तु करउ।
आरज्ज सोम संकट स तिन, सजन सेन चपत परउ॥२३८॥

शब्दार्थः—गरुड=गरुडाश्व। दानव नर्यंद=दानव ढूंढा (तृतीय बीसल) का वंशज। तत=तत्व। झलकि=झलकते हुए। झ=जं, जैसे ही। झुरिग, मिले। वत=उत, उस समय। तुम दख्खिन=आपको देख कर। गिरि गरुव=गिरि प्रदेश के गौरव स्वरूपी। संग=साथी। रण रंग=युद्ध विनोद में लीन रहने वाले। मुहि पलु=मैं जा पहुँचता हूँ। पलु=पल (क्षण) में। खलु=शत्रु। घटहि=कमी करदूं। क्रम=बढकर। हुत=हैं। भीरत्तु करउ=सहायतार्थ न बढ़िये। आरज्ज सोम=आर्य सोम (सोमेश्वर का पुत्र)। स=इसके। तिन=को। चपत=दबाने को। परउ=उमड़ पड़ना।

अर्थः—इसके बाद दानव नरेश(ढूंढा का वंशज राजा पृथ्वीराज)अपने गरुडाश्व को तत्व युक्त काम के लिये वाम पार्श्व की ओर बढ़ाया। उस समय रावलजी के नैत्र से उसके नैत्र प्रेम के कारण झलक ते हुए मिले और वह गद्-गद हो कर कहने लगा-आप गिरि प्रदेश के गौरव स्वरूप हैं। आप को देखकर युद्ध-विनोद में लीन रहने वाले साथी हर्षित होते हैं। अतः आप युद्ध में इस समय स्थित रहिये। जब तक मैं क्षण भर मे शत्रुओं तक पहुँच कर उनकी कमी नहीं करदूँ और मैं आगे बढ़ कर अपने कर्म और अंग की परख न कर पाऊँ तथा मेरे सामन्त जैत्र और चामण्ड जब तक हैं तब तक आप सामन्तों की सहायनार्थ न बढ़िये। जब हम आर्यसोम (मुझ

सोमेश्वर के पुत्र पृथ्वीराज) में संकट आ पड़े तब आप अपने साथियों सहित शत्रु सेना को दबाने के लिए उमड पडना।

हँसि नरयद आनन्द, राज राजन प्रति पत्तिय।
तुह सनेह सम्भरिय, मोहि दोखन लगि बत्तिय॥
ना हू ना तू ना जगत्त, ना मिन्छ इन्छ नन।
नहिन सूर सामंत, सूर अंकूर गहन मन॥
संग्राम धाम धर छत्रियन, परइत पुर पर तर लहै।
चहुआन आन सोमेस सुअ, विमुख जीह जतनि कहै॥२३९॥

शब्दार्थ:—नरयद= चित्तौड़ नरेश। आनन्द=प्रमुदित हो। पत्तिय=पहुचकर, समीप आकर। तुह=तुम। सम्भरिय=स्मरण कर। दोखन लगि=कलंक लगता। हू=मैं। इन्छ=इच्छा, मनोरथ। सूर=बहादुर। सूर=सूरता, वीरता। परइत=पड़ने पर ही, धराशाई होने पर ही। पुर=स्थान। पर तर= औरों के तले, दूसरों के अधिकार मे। लहै=आसके। आन=दुहाई। जीह जतनि = जिह्वा-तंत्री से।

अर्थ:—तब प्रमुदित होकर हँसते हुए चित्तौड नरेश ने राजाओं के राजा पृथ्वीराज के समीप आकर कहा—आपने पारस्परिक स्नेह का स्मरण कर यह बात कही किन्तु युद्ध में आकर पीछे रहने से तो मुझे कलंक लगता है। हे नरेश! मैं, तुम, संसार म्लेच्छ, एक दूसरे के मनोरथ और जिनके मन मे वीरता के गहन अकुर उठ गए हैं वे बहादुर सामंत, अन्त मे रहने के नहीं हैं। क्षत्रिय वही है जो युद्धस्थल को ग्रहण करें और उनके धराशायी होने पर ही उनके स्थान दूसरे के अधिकार मे आ सकें। हे सोमेश्वर के पुत्र! तुमको तुम्हारे मूल-पुरुष चाहुवान की दुहाई है। आप अपनी इस जिह्वा रूपी तन्त्री से (युद्ध) विमुख होने का मेरे लिए कोई स्वर नहीं निकालना।

दोहा

दय दच्छिन दच्छिन अपन, प्रथम प्रिथा पति कंत।
गरुर कंध थप्परि प्रथुल, प्रभु प्रथिराज सुभंत॥२४०॥

शब्दार्थ:—दय=दिया। दच्छिन =दल, कुशल। दच्छिन = दक्षिण पार्श्व। अपन = अपने। प्रिथा पति=पृथा कुमारी के पति (रावल समर-विक्रम)। कंत=स्वामी (सेना-पति)। थप्परि=थपकी। प्रथुल=स्थूल। प्रभु=स्वामी, राजा। सुभंत =सुशोभित हुआ।

अर्थः—तब सर्व प्रथम उस रण-कुशल प्रथापति रावल जी को अपनी सेना के दक्षिण पार्श्व का सेनापति बना कर भार दिया। इसके बाद अपने गरूडाश्व के स्थूल कंधे को थपेडता हुआ राजा पृथ्वीराज युद्धस्थल में सुशोभित हुआ।

असुर सेन सम संचरिग, दल वद्दल विखमंत।
वहरि वियउ प्रब्बत सुभित, प्रिथा सँजोई कंत ॥२४१॥

शब्दार्थः—असुर सेन=मुस्लिम सेना। सम=सामने। विखमंत=विषम। वहरि=विहरि, विहरते हुए। वियउ=दोनों। प्रब्बत=पर्वत। सुभित=सुशोभित।

अर्थः—उस समय मुसलिम सेना के सामने हिंदू-सेना ने विषम बादल समूह की भाँति सचार किया। वहाँ प्रथापति रावल समर और संयोगिता के पति (पृथ्वीराज) विहरते हुए दो पर्वतों के समान शोभा पाने लगे।

कवित्त

विलुलि साह ढिल्लरिय, साह लल्लरिय निरखित्रय।
जुरन जैत जग हथ्थ, नाथ सिर छत्रह रक्खित्रय॥
आसमान पामांर, रनह झंडे झुकि गड्डे।
अब्बू राइ नरिंद, वाद वीरति कर छड्डे॥
करन इतवान वानैत जनु चाव सव्वयने हंकुरिय।
सित रत्त पीत कज्जल ललित, सलित कमल दल संकुरिय ॥२४२॥

शब्दार्थः—विलुलि=विलोना, मथन करना। साह ढिल्लिरिय=दिल्ली सम्राट, दिल्लीश्वर पृथ्वीराज। लल्लरिय=लालाइत। जुरन=जुटने को। जैत=जैत्र, प्रमार। जग हथ्थ=संसार की भुजा स्वरूप, या जागृत। नाथ=स्वामी पृथ्वीराज। रक्खित्रय=रखा, धारण कराया, सुशोभित किया। आसमान=असम, विषम। रनह=युद्ध में। झुकि=टेढा होकर। अब्बूराइ=आबू राजवंशज। वीरति=वीरता का। इतवान=इतमान, विश्वास देने वाला, समान। चाव=उत्साह। सव्वयने=सव्य, दाहिने हाथ से। हंकुरिय=हुकार की। सित=श्वेत। सलित=सरिता। सकुरिय=सिकुड़ना।

अर्थः—दिल्लीश्वर ने शत्रु समूह का मंथन करते समय गोरी शाह को युद्धार्थ लालायित देखकर उससे जुटने के लिए संसार की भुजा स्वरूप जैत्र प्रमार के सिर पर सेनापतित्व का छत्र सुशोभित किया। उस विषम प्रमार ने रणस्थल में वक्र होकर अपना झंडा गाड़ दिया और उस आबू राज वंशज ने वीरता का वाद-विवाद छेड़

दिया (शस्त्र का जवाब शस्त्र से देने लगा)। वह कर्ण के समान बानेत, उत्साह पूर्वक बान हाथ में ले हुँकार करता हुआ सव्य बाहु से चलाने लगा। उस समय युद्धस्थल में (चमचमाती शरावलि के कारण) श्वेत, (शोणित के कारण), रक्त (मज्जादि के कारण) पीत, और (मद प्रवाह के कारण) कज्जल वर्ण की सुन्दर सरिता प्रवाहित होगई जिसमें शत्रुओं के सिर कमल तुल्य तैरने लगे। यह देखकर शत्रु सेना सिकुडने लगी।

दोहा

बंधि फौज चहुवान न्रिप, पहुमी उतारण भार।
जित तित पब्बय से मॅडे, धमस हसम भर भार ॥७४३॥

शब्दार्थः—बंधि फौज=सेना को पंक्ति बद्ध किया। पब्बय=पर्वत। मॅडे=नियुक्त किया। धमस=धूमधाम, घमासान युद्ध। हसम=सेना। भर भार=भारी भारी योद्धा।

अर्थः—इस प्रकार चौहान राजा ने पृथ्वी का भार उतारने के लिए अपनी सेना को पंक्ति बद्ध किया और यत्र तत्र पर्वतों के समान भारी सैनिक योद्धाओं को घामासान युद्ध के लिए नियुक्त कर दिये।

कवित्त

सजि आयौ सुरतान, जूह सेना अति आतुर।
तुरिय लग्ख दह सुभर, दंति दस सहस मतवर ॥
पुर सतुल सा निकट, आय दल बल सपत्तौ।
सज्यौ देखि दिल्लीस, ताम गोरी अनुरत्तौ ॥
पुच्छ्यौ सु मत तत्तारखां, खुरासान साहाब सदि।
ठट्टौ सु सज्जि जगल सुपह, रचौ बंध अप्पा नरदि ॥७४४॥

शब्दार्थः—जूह=यूथ, यूथ, समूह। दह=दस। सा=वह। सपत्तौ=पहुंचा, आया। ताम=तब। अनुरत्तौ=अनुरक्त। साहाब=शहाबुद्दीन। सदि=बुलाकर। ठट्टौ=खड़ा। जगल सुपहु=जङ्गलेश्वर। बंध=पंक्तिबद्ध। अप्पा=अपनी सेना को। नरदि=नरद, चौपड़।

अर्थः—उधर से सुल्तान भी युद्धर्थ तैयार होकर सैन्य समूह सहित आगे बढ़ा। उसकी सेना मे योद्धा और घोड़े दस लाख तथा दस सहस्त्र मतवाले हाथी थे। वह दल बल सहित सतुलपुर के निकट आया और जब दिल्लीश्वर को सजा हुआ देखा-

तो वह भी युद्ध मे अनुरक्त हो गया। उस शहाबुद्दीन ने तत्तारखाँ और खुरासान को बुलाकर युद्ध मत्रणा पूछते हुए कहा—जंगलेश्वर युद्ध के लिए तैयार होकर खड़ा है अत अपनी सेना को भी चौपड़ की तर्ज पर पक्तिबद्ध करना चाहिये।

कवित्त

ताम ठांम जालप्प, जाय जटधार सपत्तौ।
आ हुत्ती बलिभद्र, वीर विराधि सहित्तौ॥
अति आदर दिय देवि, पूजी परपच सच विधि।
वर आसन उत्तान, मान रक्खिय सु प्रान अधि॥
आयौ सु जच्छि सुव्वेर तहँ, सँग जोगिनि वेताल सथि।
वीतौ सु जुद्ध हिंदू तुरक, कहिय ईस दिय भेट अथि॥२४५॥

शब्दार्थः—ठांम=स्थान। जालप्प=जालपादेवी। जटधार=जटाधारी, शिव। सपत्तौ=पहुचे, आये। हुत्ती=उत्ती, उनही, वहीं पर। सहित्तौ=सहित। परपच-सच=आडम्बर प्रदर्शित करने वाली पूजा की सामग्री। उत्तान=ऊँचा। प्रान अधि=प्राणों से भी विशेष। जच्छि=यक्ष। सुव्वेर=सुवेर नामक यक्ष। सथि=साथ। वीतौ=समाप्त हुआ। ईस=शिव। दिय भेट=भेट किये अथि=मथि, मस्तक।

अर्थः—जालपादेवी के स्थान पर शिव आये और वहीं पर बलवान वीरभद्र गण अन्य वीरों सहित आ उपस्थित हुआ। देवी ने शिव का सन्मान किया और पूजा की सामग्री एकत्रित कर विधि पूर्वक उनकी पूजा की तथा उनको ऊँचा आसन दिया। उनको अपने प्राणों से भी विशेष माना। वहाँ पर सुवेर नामक यक्ष योगिनियों और वैतालादि के साथ मे आ पहुँचा और शिव को वीरों के मस्तक भेंट करके कहा कि हिन्दुओं और मुसलमानों का युद्ध समाप्त हो चुका है (हम उसे देखकर वहीं से आरहे हैं)।

कहै ईस मन मडि, अहो सुव्वेर दच्छ सुनि।
किम हिंदू तुरकानि, पान जपौ सु जुद्ध गुनि॥
इहै जोग सारत्त, मत दिख्यौ जुध जग्गिय।
इहै वीर उनमद्द, साखि भक्खी सा अग्गिय॥

बलिभद्र कहिय अति उद्ध कथ, रुद्र सूर सामत रन।
भारथ्थ कथ्य लग्गै अतुल, कहौ पान उत्तान तन ॥२४६॥

शब्दार्थः—मन मडि = मनको उनकी ओर करके, मन लगाकर। दच्छ=यत्त। पान=शक्ति। गुनि = समझा कर। इहै जोग=ऐसा समय। सारत्त = सार धारी, लोहा धारी। मत = मतवाला जुध जग्गिय=युद्ध छिड़ा। उनमद्=उन्मत्त। साखि भरखी=साखी दी समर्थन किया। मा=उन, (शिव के)। अग्गिय=सामने, समक्ष। बलिभद्र = बीरभद्र। उद्ध कथ=उन्नत ख्याति। रुद्र = रौद्र। भारथ्थ कथ्थ = महाभारत युद्ध की कथा। अतुल=असमान, समानता पर नहीं। पान = शक्ति। उत्तान-तन=उन्नत काय।

अर्थः—तब शिव ने अपने मनको उनकी तरफ करके कहा—अहो चतुर सुवेर यक्ष! किस प्रकार हिन्दुओं और मुसलमानों मे युद्ध हुआ और उन्होने कसी शक्ति प्रदर्शित, की वह सब समाचार कहो—यक्ष कहने लगा—ऐसा समय आया जिस समय युद्ध छिडा उस समय लोहा धारी सामन्त मतवाले दीख पडे। दूसरे भी जो उन्मत्त (वैतालादि ५२ ही) वीर थे, उन्होंने भी शिव के समक्ष उस यक्ष के कथन का समर्थन किया। बलिभद्र (वीरभद्र) ने कहा—मैं उन्नतकाय वीरों की शक्ति का वर्णन करता हूँ। उन रौद्र-रसधारी वीर सामन्तों ने इस युद्ध मे ऐसी उन्नत ख्याति प्राप्त की। जिसके समक्ष महाभारत के युद्ध की कथा भी समानता मे नहीं ठहरती।

दोहा

कहिय चन्द्ध कैलासपति, सुनि रण सकुल सार।
चाहुआन सुरतान खिति, ने भर जुट्टे धार ॥२४७॥

शब्दार्थः—चन्द्ध—जच्छ, यक्ष। सकुल=मण्डलित, एकत्रित। सार = तत्व युक्त, श्रेष्ठ। खिति= क्षिति, पृथ्वी। धार = धारा, खड्ग।

अर्थः—तब यक्ष ने कहा कि हे कैलाशपति! युद्ध मे एकत्रित हुए वीरो की तत्व-युक्त चर्चा सुनिये। चाहुआन और सुल्तान के सामन्त इस भूमडल पर तलवार द्वारा जुट पडे।

दरसे बद्दल दल विषम, गज्जो लाग निसान।
मिले पुब्ब पच्छिम हुते, चाहुवान सुरतान ॥२४८॥

शब्दार्थः—विखम=विषम । बज्जी लाग=बजने लगे । हुते=से ।

अर्थः—दोनों ओर की विषम सेनाएँ बादलों के समान दीख पड़ी और नक्कारे बजने लगे। पूर्व और पश्चिम से क्रमशः चाहुवान और सुलतान की सेना आकर भिड़ गई।

सावन मावस सूर सुव, उभय घटी उदयत्त ।
प्रथम रोस हुव दीन दल, मिले सुभर रण रत्त ॥२४६॥

शब्दार्थः—मावस=अमावस्या । सूर-सुव=सूर्य पुत्र, शनी (शनीवार) । उभय=दो । घटी=घड़ी । उदयत्त=सूर्योदय । प्रथम-रोस=क्रुद्ध हो युद्ध की शुरूआत की ।

अर्थः—युद्धारंभ का दिवस श्रावण कृष्णा ३० शनिवार था, सूर्योदय हुए दो घड़ी हो गई थी। उसी समय दोनों दीन (धर्म) के योद्धा युद्ध में लीन होकर जुटने लगे।

कवित्त

सुनिय वत्त जटधार, चित्त उब्भार रहसि रजि ।
मन विलास तन भास, रोस उल्लास तास सजि ॥
कहै दुन्द्ध सम ईस, कहो वेताल विवरि कथ ।
अति लग्गै आनंद, प्रेम पूरण भारथ अथ ॥
प्राक्रम नासु भट्टह प्रथुक, कहौ ओर सा विवरि विधि ।
असुराण पान ह्यदू अतुल, ताहि सु जपौ जुद्ध उधि ॥२५०॥

शब्दार्थः—उब्भार=उमड़ पड़ा । रहसि रजि=रहस्य मय घटना को सुनने को । विलास=विनोद । भास=भासित । रोस=क्रोध । उल्लास=उल्लसित, या हुलास (प्रसन्नता) । तास=उनमें । कथ=कथा । लग्गै आनद=आनंद हुआ, प्रसन्नता हुई । भारथ-अथ=महाभारत के समान ही यह । प्राक्रम=पराक्रम रावल (समर-विक्रम) । नासु=मृत्यु । भट्टह=सामन्त । प्रथुक=पृथ्वीराज को । असुराण=असुर, मुसलमान । पान=शक्ति, बल । ह्यदू=हिन्दू । अतुल=अतुल्य । उधि=उच्च, बड़ा, भारी ।

अर्थः—यह सुनकर शिव का चित्त उस रहस्य मय घटना को सुनने के लिये उमड़ पड़ा। उनके मन में विनोद और तन में क्रोध उल्लसित होने लगा। वे उस यज्ञ से तथा वैताल से कहने लगे कि तुम इस कथा को ब्यौरेवार कहो। मुझे इससे विशेष प्रसन्नता हुई है और महाभारत की चर्चा के समान ही इस चर्चा पर भी मेरा पूर्ण

रूप से प्रेम है। अत रावल पराक्रम पृथ्वीराज और उनके सामंतों की मृत्यु का विचार पूर्वक वर्णन कह सुनाओ। साथ ही उन हिन्दू और मुस्लिम वीरों ने जिस प्रकार भारी युद्ध करते हुए अतुल्य बल प्रदर्शित किया। उस वृत्तान्त को भी मेरे समक्ष कहो।

दोहा

कहै दच्छ कैलासपति, सुनि धरि श्रवन सुठान।
सुभर जुद्ध लग्गौ अतुल, चाहुआन सुलतान ॥८५१॥

शब्दार्थः—दच्छ=यक्ष। धरि-श्रवन=कान लगाकर। सुठान=सुठि, सुंदर।

अर्थः—तब यक्ष कहने लगा हे शिव! चाहुआन और सुल्तान के अतुल्य योद्धा एक दूसरे से युद्ध में जुटपड़े वह सुन्दर चर्चा कान लगा कर सुनिये।

कवित्त

विपथ राव बलिभद्र, पथ जहाँ पति कथियय।
समर स्यघ रावलह, समर साहस गति पिथियय ॥
राज ध्रम्म भ्रत ध्रम्म, ध्रम्म छत्री सा लोकिय।
कह सुहम आनंद, बुद्धि कहि तत्त मलोकिय ॥
कहँ कहँ सु गोत मज्जाद कहँ, कहँ सु जीव जीवनहि लहे।
जोगिंद राउ जग हथ्थ तुअ, दिव सु देव तत्तह कहे ॥ ८५२ ॥

शब्दार्थः—विपथ=विवाद, मतभेद। पिथियय=पार्थ या अर्जुन सा। भ्रत=भृत्य, सेवक। लोकिय=लौकिक। कह=कहने। सुहम=उत्तम। तत्त=तत्व। मज्जाद=मर्यादा। जीवहि लहे=जीव (प्राण) को ले पकड़ना (शत्रु मार डालना)। जग हथ्थ तुअ=संसार आपके हाथ में (करामलक तुल्य) है। दिव=स्वर्ग। तत्तह=तत्व।

अर्थः—युद्धारम्भ समय धर्म विपय में राव बलिभद्र और जामराय यादव के मत भेद होने से जामराय यादव ने रावलजी से कहा—हे समर-केशरी रावल! आपका युद्ध में साहस और गति अर्जुन के समान है। आप राजा, सेवक, क्षत्रिय और लौकिक धर्म के ज्ञाता हैं। आपके कथन में आनन्द प्राप्त होता है। आपकी बुद्धि में लोकतत्त्व ने स्थान प्राप्त किया है। हे राजर्षि ? संसार आपके समक्ष

करामल तुल्य है । हे स्वर्ग के साक्षात देव । किस स्थान पर मोह और मर्यादा को स्थान देना चाहिये ? किस समय प्राणी को प्राणी का शत्रु हो जाना चाहिये ? उस तत्व को आप कह सुनाइये ।

विपथ सु वध्यौ मोह, सुपथ जिहि स्वामि निवृत्तो ।
राज सु अग्या रवन, सेव तिन वज्र प्रवृत्तो ॥
भ्रित्त जु स्वामि सु रत्त, नीय न्यंदा न प्रगासिय ।
अहिनिसि चछहि मरण, सुपहु सकुरै निवासिय ॥
हा हंस हंसमंडल रुरै मन अनंत अतहि रुरत ।
सा मंत स्मर रावलु चवै सुगति मुगति लम्भै तुरत ॥२५३॥

शब्दार्थः—विपथ=पथ रहित रास्ता भूला हुआ । सु=जो । स्वामि=ईश्वर । अग्या=आज्ञा । रवन=रयन, राज वशज, क्षत्रिय । सेव-तिन=उस (राज्य) की सेवा करें । प्रवर्त=प्रवर्ती । भ्रित=भृत्य, सेवक । सु=से । रत्त=लीन नीय=पास में रहने वाले न्यदा=निंदा । प्रगासिय=प्रकाश में लावे । अहिनिसि=अह निसि, रात दिन । सुपहु=राजा । सकुरै निवासिय=आपत्ति का निवास होने पर, आपत्ति आने पर । हा=अहा । हस=प्राणी । हसमडल=सूर्य मण्डल । रुरै=मिलते । रुरत=मिलते । सा=वह, यह । मत=मंत्रणा । स्मर-रावलु=समर-केशरी रावल । चवै=कहता । सुगति=श्रेष्ठ ढंग से । मुगति=मुक्ति, मोक्ष । लम्भै=प्राप्त करते ।

अर्थः—तब रावल समर-केशरी इस विषय पर यह मंत्रणा कहने लगा कि संसार मे जिसकी प्रवृत्ति मोह वश है वही विपथ (रास्ता भूला हुआ) है और ईश्वर ने जिसे ससार से निवृत्त कर दिया है वही सुपथ (रास्ते पर) है । राज-धर्म यही है कि श्रेष्ठ आज्ञा दें राज वशज क्षत्रियों का धर्म है कि राज्य सेवा के लिये अपनी प्रवृत्ति को वज्र तुल्य बनाये । सेवक का धर्म है कि स्वामी धर्म मे लीन रहे और पास वालों की भी निन्दा को प्रकाश मे नहीं लावे । जब अपने स्वामी पर आपत्ति आवे तो, वह रात दिन उसके लिए मर मिटने को तत्पर रहे । अहो ? ऐसे सेवक के प्राण अन्त मे सूर्य मडल मे जा मिलते है और उनका मन अन्त समय अनन्त मे जा मिलता है । ऐसे व्यक्ति ही श्रेष्ठ ढग से मोक्ष को शीघ्र प्राप्त करते है ।

कहै राव जामानि, अहो चित्रगराय सुणि ।
तुम सु जोग जोग्यंद, जोगधर मूल ब्रम्ह गुणि ॥

तुम सुधीर अवधूत, व्यास जिम लहौ सकल गति ।
तुम सुभझै त्रयलोक, सकल कल कलग तुम्भ मति ॥
हम कहौ धृम्म छत्रिय सु धर, राज ध्रम भ्रत्त ध्रम वर ।
सालोक साज सज्जै प्रथक, कहौ मुत्ति सारूप भर ॥७५४॥

शब्दार्थः—जामानि=जामराय यादव । चित्रगराव=चित्रकूटेश्वर । जाग=योग्य, समान । जोग्यद=योगेश्वर (शिव) । मूल ब्रह्म आदि ब्रह्म । गुणि=गुणना, जानना । धीर=धैर्यवान । कल कलग=सुंदर कला युक्त । भ्रत्त धम=भ्रत्य धर्म । सालोक=सालोक्य । साज-सायुज्य । मज्जौ=रचना, करके कहो । मुत्ति=मुक्ति । सारूप=सारूप्य ।

अर्थः—तब जामराय यादव बोला—हे चित्रकूटेश्वर ! आप योग धारण करके जो मूलब्रह्म को जानने वाले योगेश्वर (शिव) हैं उनके समान हैं । आप धैर्यवान और राजर्षि हैं. व्यास के समान ही आप संसार की गति के ज्ञाता हैं, आप त्रिकालदर्शी हैं और सब कलाओं के जानने वाले हैं, आपकी श्रेष्ठ मति है । आपने हमको क्षत्रिय धर्म, राजधर्म और सेवा धर्म का पालन करना तो कह सुनाया, किन्तु लोकधर्म से प्रथक जो वीरो का धर्म है उससे प्राप्त होने वाली सालोक, सारूप्य, सायुज्य मुक्ति के विषय में भी कह सुनाइये ।

तब कहि रावर सिंघ, सुनहि जामानि राज नर ।
गल पुन्छिय भर समथ, मार संसार कलाधर ॥
कहिय पुराननि वत्त, रिख्य आगम बहु विथ्थरि ।
कवित्त गाथ कहि भरथ, कहिय पारत्थ ग्यान हरि ॥
यह समय इस्ट न्यतन सु निज, मुख अग्गै आसुर सयन ।
संखेप कहौं तुम तत्त मत सभझै गहि रक्खौ सु मन ॥७५५॥

शब्दार्थः—रावर-सिंघ=रावल समर केशरी । जामानि=जामराय यादव । भर-समथ=सामर्थ्यवान वीर । कलाधर=कलायुक्त । रिख्य=ऋषि । आगम=पहले होने वाले । विथ्थरि=विस्तार किया । गाथ=गाथा, कहा । पारत्थ=पार्थ, अर्जुन । न्यतन=नित्य मुख अग्गै=सामने । आसुर सयन=तुरुष्क सेना । संखेप=संक्षेप, थोड़े में । तत्त मत=तत्वयुक्त मतणा । सभझै -में ।

अर्थः—तब समर-केशरी रावल कहने लगे—हे सामर्थ्यवान वीर जामराय सुनिये ! तुमने संसार में कलायुक्त बात है उसके लिए प्रश्न किया, यह बात

अच्छा है। इसका वर्णन पुराण ग्रन्थों मे भी हुआ है और पहले होने वाले ऋषियों ने भी उसका बहुत विस्तार किया है। यही उपदेश कपिल एवं जड़ भरत ने भी कहा, तथा कृष्ण ने अर्जुन को ज्ञान देते हुए उसी पर प्रकाश डाला। यह समय हमारे लिए इष्ट चिंतन करने का है क्योंकि सामने ही युद्धार्थ तुरुष्क सेना डटी हुई है, अतः तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर मैं अपनी बुद्धि के अनुसार तत्वयुक्त थोडे मे देता हूँ उसे तुम अपने मन मे स्थान देकर रखना।

कालु तिमिरु पर वर्यौ, चित्ति तिहि ध्रम्मु न सुझ्झै।
अंत काल मुख अद्ध, ग्यान त्रय कालह बुझ्झै॥
जनम भयैं भयौ मूढ़, रत्ति त्रय देह पलट्टे।
निंद मह धन काम धाम आवरदा घट्टे॥
बंधनह अप्प अप मुख्खु किय, गज्ज जेम उनमद फिरै।
रिधि जात जत दिख्खे नहीं, नहि अचिज्ज नर्कह परै॥२५६॥

शब्दार्थः—कालु=काल तिमिरु=तिमर। पर=पड़ा, गिरा। वर्यौ=प्रवेश किया। चित्ति=चित्त में। ध्रम्मु=धर्म। अद्ध=अर्ध। त्रय काल=भूत–भविष्य–वर्तमान, क्या करना था–क्या करू और क्या करना होगा। बुझ्झै=बूझना, पूछना, प्रश्न करता। रत्ति=रात्रि में ही, अज्ञानता में ही। त्रय देह=शरीर की तीनों (बालत्व, युवत्व, और वृद्धत्व) अवस्था। पलट्टे=बदल दी, बिता दी। निंद=निद्रा। मह=मत-वाला पन। आवरदा=आयु। घट्टे=व्यतीत की अप्प=अपने को। मुख्खु किय=सामने जाकर। जेम=जैसे। उनमद=उनमत्त, मतवाला। रिधि=सम्पति। जात जत=जाते समय जाती (साथ में जाती)। अचिज्ज=आश्चर्य।

अर्थः—काल रूपी अंधेरे मे प्रवेश करके जो गिर चुका है उसके चित में धर्म का ज्ञान नहीं हो पाता। वह अंतक के मुख मे अर्ध प्रवेश करने पर त्रिकाल का प्रश्न छेड़ता है (अर्थात मुझे क्या करना चाहिये था, क्या करूं और क्या करना होगा)। नर जन्म पाने पर भी जो मूढ बना रहा वह केवल रात्रि (निद्रा, ज्ञान शून्य अवस्था) मे ही व्यस्थ रह कर अपने शरीर का त्रयरूप (बालत्व, युवत्व और वृद्धत्व) बदलता रहा, उस निद्रा के मतवाले ने धन धाम और कामेच्छा मे ही आयु को व्यतीत किया। वह तो उस मतवाले हाथी के समान है जो स्वयं सामने जाकर अपने को बंधन मे डालता है। यह सम्पति मरने पर साथ जाती हुई कभी नहीं देखी गई। अतः ऐसे अविचारी और धन लोलुप यदि नर्क में पड़ जायें तो कौनसा आश्चर्य है।

दोहा

कहै राइ जामानि तब, किमि भव तरिग अपार ।
कहौ राइ जोग्गंद गुर, तो मति त्रिभुवन सार ॥८५७॥

शब्दार्थ:—जोग्यद=राजर्षि । गुर=राजगुरु । तो=तुम्हारी, आपकी ।

अर्थ: तब जामराय ने कहा— (प्राणी मात्र इस प्रकार स्वाभाविक ही लौकिक माया मे फसा हुआ है अत)इस अपार भव सागर को कैसे पार किया जाय। हे राजगुरु, राजर्षि ! आपकी बुद्धि त्रिभुवन के तत्व रूपी है अत आपही भव से पार जाने को ठीक सम्मति दे सकते है ।

कवित्त

जाग्रति सुखपति सुपन, तुरिय वस्था ये च्यारहि ।
ता मध्धै वय ग्रहै, लहै सद असद सु सारहि ॥
मात पित्त मानै सुदेव, देवकरि आवध मानै ।
स्वामि ध्रम्म आचरै दुष्ट क्रित धरै न कानै ॥
समपै सुक्रम मह हरि सहस, अगम गम पायन धरै ।
सुख दुख्ख स्वामि निज सुद्धरै, इम खत्री पारह तिरै ॥८५८॥

शब्दार्थ:—जाग्रति=जाग्रतावस्था । सुखपति=सुषुप्त । सुपन=स्वप्न । तुरिय=तुरीय । वस्था=अवस्था । ता=इनमें, इसमें । वय=आयु । ग्रहै-ग्रहण करे । सद=सत्य । असद=असत्य । सु सारहि=श्रेष्ठ सार । आवध=आयुध, शस्त्र । दुष्ट क्रित=दुष्ट कर्म । धरै=धारण करे । कानै=सुने । समपै=समर्पित करे । सुक्रम=श्रेष्ठ कर्म । सहस=सहर्ष । अगम गम=सुख दुःख । पारह तिरै-पार कर जाता है ।

अर्थ:—रावलजी कहने लगे कि जागृत, सुषुप्त, स्वप्न और तुरिय यह चार अवस्थाएँ होती है । इनमे आयुष्य पाकर मनुष्य सद्-असद् के ज्ञान को प्राप्त करता, माता पिता और शस्त्र को देवतुल्य मानता है, स्वामिधर्म का पालन करता है, दुष्ट कर्मो की ओर कान नहीं लगाता, फल की इच्छा नही करके जो भी कर्म करता है वह हरि को सहर्ष समर्पित कर देता, बुरे रास्ते पर पैर नहीं देता, स्वामी के सुख मे अपना सुख और दुःख मे अपना दुःख मानता है । ऐसा क्षत्रिय ही भव सागर को पार कर जाता है ।

वेद नीति धर चलै, स्वामि ध्रम्मह नन चुक्कै।
जोग विद्ध जोगवै, अप्प हरि ध्यान न मुक्कै ॥
सबद जोति रहै लीन, ध्रम्म क्रत वासर क्रम्मै।
जुद्ध काल सपत्त, आय अरि खुत्तह ध्रम्मै ॥
संकलपि सीस साईं सरिस, मनह निरंजन जोति द्रग।
मधि रचै सूर विंवह सुमन, एह सुगत्ति सामीप मग ॥२५६॥

शब्दार्थः—चुक्कै=चूकना, विमुख होना। विद्ध=विधि। जोगवै=काम में लेना, जान लेना। मुक्कै=छोड़ना। सबद जोति=शब्द-ब्रह्म, ॐ। ध्रम्म=धर्म। क्रत=कर्म। क्रम्मै=चलना। काल=समय। सपत्त=आनेपर। खुत्तह=घत युक्त करैं, खदेड़ दे। ध्रमम=श्रमित करैं, या निचा दिखावें। संकलपि=संकल्प करदें, समर्पित करदें। साईं=स्वामी। सरिस=से। द्रग=दृगोचर। मधि=में, अन्तर्गत। एह=यह, यही। सुगति=मुक्ति। सामीप=सामिप्य, परमेश्वर के निकट पहुंचना।

अर्थः—वेद की नीति पर चलना, स्वामि धर्म से विमुख नहीं होना, योग की विधि को जान लेना, हरि के ध्यान को नहीं छोड़ना, शब्द-ज्योति (ॐ) में लीन रहना, सदा धर्म-कर्म के पथ पर चलना, युद्ध समय आने पर रणक्षेत्र में आकर शत्रु को खदेड़ कर उसे नीचा दिखाना, प्रेम-पूर्वक स्वामी के कार्य के लिए अपने सिर को समर्पित कर देना, निरंजन ज्योति-स्वरूप को मन में स्थान देकर दृष्टि-गोचर कर लेना और सूर्यविंब के अन्तर्गत स्थान पाने में अपने मन को लगा देना। यही समामिप्य मुक्ति का मार्ग है।

पियै सकति वर श्रोन, प्यड पावक आहारैं।
साइ समप्पै प्रान, सीस उर सकर धारैं ॥
अत ट्रुट्टि पय चंपहि, प्यड लुट्टहि पल गिद्धिय।
जय वछै निज स्वामि, लगै ताली मन वच धिय ॥
मंडलह हस हसह जुरै, जीय जोग गति उद्धरै।
निरकार ध्यान रावै सु रिाज, इमि भव सारूपह तिरै ॥२६०॥

शब्दार्थः—सकति=शक्ति। श्रोन=शोणित। प्यड=पिंड, शरीर। आहारैं=आहार। साइ= ईश्वर। अत=आतें। पय=पैर चंपहि=दबाना। लुट्टहि=लूटती प्राप्त करती। पल=मांस। धिय=

बुद्धि। मडलह हस=सूर्य मडल। हराह=हस स्वरूपी आत्मा, प्राण पखेरू। जीय=जीव। जोग गति=योग गति। उद्धरै उद्धार होता। निरकार=निराकार। णिज=निज। सारूप्यह=सारूप्य इष्ट के रूप को पाजाना। तिरै= पार करते।

अर्थः—जिसके शोणित को शक्ति प्राप्त करके पीती है, जिसका शरीर अग्नि का आहार बन जाता है, जो ईश्वर को अपने प्राण समर्पित कर देता है, जिसके मस्तक को शंकर हृदय मे धारण कर लेते है, जिसकी आंते रणस्थल मे वीरो के पैरों में उलझ कर उनको दबाती हुई सेवा करती हैं, जिसके शरीर का मास गिद्धि-नियाँ प्राप्त करती है। ऐसा अद्भुत दान करता हुआ जो वीर स्वामी की विजय की इच्छा करता है और जिसकी मन-वचन और बुद्धि से इस तरह अन्तिम समाधि लग जाती है, जिसका प्राण पखेरू सूर्य मडल मे जाकर समा जाता है अद्भुत योग गति द्वारा जिसके जीव का उद्धार हो जाता है औ अतिम समय जिसका ध्यान निराकार मे लग जाता है, इस तरह भवसागर को पार करने की विधि को सारूप्य मुक्ति कहते है।

नवर भूत भव सकल, अकल आनन्द कल न मन।
काम क्रोध मद रहित, अहित हित चित्त ग्रेह तन॥
निंदा अस्तुति समति, रमति स्वामित समर रन।
लज्जा वर कर वज्र, अद्र वज्र ग अरि न गन॥
जंपौ सु एम जामानि जद, अनहद सद मत्ता मगन।
जानत विदुष मति सकल तुम बहुत बात जपत कवन॥२८१॥

शब्दार्थः—नवर=नर वर, नर श्रेष्ठ। भूत=प्राणी। अकल=अदृश्य। चित्त=चित्त में। समति=समान। रमति=रमण करता। समर=स्मरण। अरि न गन=शत्रुओं को कुछ नहीं गिनता। एम=इस प्रकार। जद=जदु, यादव। सद=नाद। मता=मतवाला। मवन=मृत्यु। जपत कवन=क्या कहूँ।

अर्थः—पुन रावलजी कहने लगे, हे जामराय यादव? तुम विदुष-मति के ज्ञाता हो अत तुम से विशेष बढाकर क्या कहूँ, सक्षेप मे सुनो। ससार के सब प्राणियों मे वही नर-श्रेष्ठ है जिसके मन को अदृश्य आनन्द की प्राप्ति किये बिना कल नहीं पड़ता, जो काम, क्रोध, मद से रहित है, जिसे ग्रह और शरीर के हिताहित की

परवाह नहीं (मोह रहित) है, जो निन्दा और स्तुति को समान मानता है, स्वामि-धर्म का स्मरण रखता हुआ जो युद्धस्थल मे रमण करता है, जिसने लज्जा को धारण कर रक्खा है और जिसके हाथ और शरीर वज्र तुल्य हैं, जो शत्रुओं को कुछ नहीं गिनता वह वीर अनहद नाद मे मतवाला होकर मृत्यु को प्राप्त करता है (ऐसी मुक्ति "सायुज्य-मुक्ति" कही जाती है)।

गुर सभरि दच्छिन गिरेस, निज भ्रत्त मत वर।
तुम जपहु सामंत, सूर अति तेज जुद्ध जुर ॥
आज देव तुम सेव, कौन साजै जुध सथ्थ।
खल असखि खुट्टहि खयार-वधौ वर हथ्थ ॥

पल उडहि अत तुट्टहि धरणि, जाम हड्ड कट्टै सु भर।
दह गुनौ वीर वीरत्त जगि, ताम तेज वढ्ढहि सु भर ॥२६२॥

शब्दार्थः—गुर=गुरु। दच्छिन=दक्ष। गिरेस=पर्वतीय भू-भाग का स्वामी। भ्रत=भ्रत्य, सामत। मंत=मतवाले। सूर=बहादुर। जुर=जुटने वाले, भिडने वाले। सेव=सेवा। खुट्टहि=समाप्त कर देंगे। खयार=क्षयकारी (तलवार)। उडहि=उछल पड़े। अत=आंते। तुट्टहि=टूटजाँय। हड्ड=हड्डियां। भर=भड़जाँय। दह गुनौ=दस गुना। ताम=तैसे ही, इसी प्रकार।

अर्थः—राज-गुरु संभरी नरेश (पृथ्वीराज) और पर्वतीय भू-भाग के पट्टु नरेश (रावलजी) ने अपने श्रेष्ठ मतवाले सामतो से कहा—हे देव तुल्य सामतों ! तुम सदा कहते थे कि हम युद्ध में भिडने वाले बहादुर और प्रतापवान योद्धा हैं। अत आज परीक्षा देने का अवसर आगया है, देखे कि आप लोग कैसी सेवा कर पाते हो तथा आज हमारे साथ युद्ध मे कौन २ तत्पर होते हैं। आज असख्य शत्रुओं को हमें समाप्त करना है। अत अपनी २ क्षयकारी तलवार को अपने हाथों में लेकर इस प्रकार आवात करो जिससे युद्ध स्थल मे मास के टुकड़े उछल पडे, आँतें जमीन पर उलझ २ कर टूट जाय तथा हड्डिया कट २ कर झड जाय। ऐसा करके ही हमे तो दस गुने वीरत्व के द्वारा आज वीर रस को जागृत करना है तथा उसी के द्वारा हम वीरों को अपने प्रताप मे वृद्धि प्राप्त करनी है।

धरिय हथ्थ सिर कन्ह, अप्प अति कित्ती प्रसंसे।
आभासिय वर भर अपान, जपे गुन असे ॥

उभै परख्ख सम सख्ख, बध बधे भर रख्खै।
त्रिमल तेज निज नेह, धम्म स्वामित्त सु लख्खै॥
उभ्भारि तेग एकेक अग, स्वामि अग्र बोलै विहसि।
इख्खैव अग्र आसुर सयन, गयन लग्गि गज्जै रहसि॥२६३॥

शब्दार्थः—कित्ति प्रससे = कीर्ति का बखान किया। आभासिय = सबोधित किया। अपान = अपने। असे=अश। उभै-परख्ख = दोनों (माता और पिता) पक्ष से। सख्ख बधे=शिक्षा के बधन में बाधे। धम्म=धर्म्म। लख्खै = देख पाया। उभ्भारि तेग = तलवारों को उठाकर। अग्र = आगे। इख्खैव=कहा। आसुर सयन = मुस्लिम (शत्रु) सेना। गयन लग्गि = आकाश मे छूते हुए। गज्जै रहसि=गर्जना की, या रहस्यमय गर्जना की।

अर्थः—फिर रावलजी ने अपने वीरो के मुखिया कन्ह (यह रावलजी के भाइयो मे से था और नाते मे भतीजा लगता था) के सिर पर हाथ रखा और स्वय ने उसकी कीर्ति का बखान किया। उसके बाद अपने श्रेष्ठ वीरो को सबोधित कर उनमे जो जो गुण जिस अश मे थे उनका कथन किया। जो वीर दोनों (माता और पिता) पक्ष से समान थे उनको अपनी शिक्षा के बधन मे बाध लिए। उन वीरो का प्रताप और स्नेह दोनों स्वच्छ थे और उन्होंने अपने स्वामी धर्म को देख पाया था। वे वीर तलवारों को उठा २ कर प्रसन्नता पूर्वक स्वामी के सन्मुख आकर आसमान को सरसे छूते और हँसते हुए गर्जना कर कहने लगे-हम आज शत्रु सेना को आगे कर पायेंगे (अर्थात शत्रुओ को भगा देगे)।

अप्प सुभर आहुट्ट, ईस देखे अति दुज्जर।
ताम हरखि सुअ तेज, गज्जि बीरत्त वीर वर॥
तव जदव क्रम उख्खि चिंते मन अप्प।
अनिय व्यूह सज्जन सुभार, उभ्भर दल दप्प॥
जुमझेव ताम चित्रग पहु, वर आसुर जुमझार वर।
भिदै न अकल अरिहर गहर, अति आवट्टहि दुट्ठ खल॥२६४॥

शब्दार्थः—अप्प=अपने। आहुट्ट=आहटे। ईस=स्वामी। दुज्जर=भयानक। सुअ तेज=तेजसिंह का पुत्र, राजकुमार। उख्खि=आगे, कहने। उभ्भर=उभर पड़ा है। दल दप्प=अभिमान पूर्वक दल पर। जुमझेव=जूझने पर। ताम=तब। जुमझार=युद्धकर्ता। भिदै न=भेद नहीं पायेगी। अरिहर=अथाह। आवट्टहि=घबराती थी। दुट्ठ=दुष्ट।

अर्थः—इस प्रकार आहड़ों के स्वामी ने अपने वीरों को भयानक वार करने जैसा (या नहीं दबने जैसा) देखकर, वह वीर श्रेष्ठ चण्ड-पुत्र (तेजसिंह का पुत्र) रावल प्रसन्न होकर वीरता पूर्वक गर्जना करने लगा। तब अपने मन में चिन्तन करके जद्दवराज और कूरंभ राज रावल जी से कहने लगे—शत्रुदल अभिमान पूर्वक उमड़ पड़ा है अत अपने को अपनी सेना को व्यूह बद्ध करने का भार लेना चाहिये। ऐसा पूछने पर चित्तौडेश्वर ने कहा—मुस्लिम योद्धा जैसे श्रेष्ठ वीर हैं वैसे ही हमारे युद्ध-कर्ता भी वीर हैं। इनके समक्ष उन गहरे अड़ाकुओं की वुद्धि उसे भेद नहीं पायेगी और वे दुष्ट क्रोध के आवेश में उबलते ही रह जायँगे।

तब जद्दव कूरंभ, राइ रावल पहि ठड्ढै।
चामर छत्र रखत्त, ग्रढ्ढ व्यूहं रचि गड्ढै॥
इक्क पख बलिभद्र, एक पंखह जामानिय।
चु च कध पुडीर, सेन संमुह सुरतानिय॥
पग पिंड सिंघ आहुट्ठ पति, पुंछ रच्चि-मारू महन।
बामंग अग प्रथिराज कै, सुभर जुद्ध मत्तौ गहन॥२६५॥

शब्दार्थः—पहि=पास। रखत्त=रखने वाले, धारण करने वाले। गड्ढै=दृढ। चु च=चचु। सिंघ=केशरी (रावल समर-केशरी)। आहुठ पति=आहड़ों का स्वामी। पुंछ=पृष्ठ। मत्तो-गहन=निश्चय विचार किया।

अर्थः—यह सुनकर यादव और कुरंभ राज, रावल जी के समीप आकर खड़े हो गये। तब रावल जी ने उन चामर और छत्रधारी वीरों द्वारा सेना की गृद्ध व्यूहाकार दृढ रचना की जिसमें एक पंख के स्थान पर बलिभद्र कछवाहे को, दूसरे पक्ष के स्थान पर जामराय यादव को और शाही दल के समक्ष चचु और गर्दन के स्थान पर पावस पुण्डोर को नियुक्त किये। पश्चात् पैर और पिंड (शरीर) के स्थान पर स्वयं आहडों का स्वामी समर-केशरी हुआ, पुच्छ के स्थान पर महनसी मारू और पृथ्वीराज को बाम अग के स्थान पर रख कर उन बहादुरों ने युद्ध करना निश्चय किया।

अर्ध चन्द्र तत्तार, खानि खणि खान खुरेसी।
खाँ रुस्तम मारूफ, गरुअ गक्खरति गुरेसी॥
हाहुलिरावु हमीर, चमर बंधै दल द्रोही।
जिहि संसारह आइ, सांइ द्रोही सिर जोही॥

त्रिहु धाइ दलकि बद्दल मिलिग करिग हमीरह दुअ वहसि।
पुडीर राइ पावस त्रिपति, लरण लोह कढ्ढे सु हँसि ॥२६६॥

शब्दार्थः—अर्ध चद्र=अर्ध चन्द्राकृति। खणि खान=खानिखान। गरुअ—भागी, बड़ा। गस्खरति= गख्खरी। गुरेसी=गुर्राने वाला, गुस्सावर या गरूरधारी। चमर बधै=चामर चलवाता हुआ। दोही= द्रोही। साँई-दोही = स्वामी द्रोही। जोही=जिसके। त्रिहु धाइ=दोनों सेनाएं बढी। दलकि=झूमकर। करिग=छेड़ा। दुअ=दोनों में। वहसि=बहस, रण विवाद। लरण=लड़ने को, भिड़ने को। लोह कढ्ढे= लोहा निकालना, खड्ग निकालना। हेसि=हँसते हुए।

अर्थः—मुस्लिम सेना अर्ध चन्द्राकृति सजाई गई जिसमें प्रमुख वीर तत्तार खान, खानि खान, खुरेस खांन, रुस्तम खान, मारूफ खान और बडागुस्सावर-वीर गख्खरी था। उन्हीं की आड में हाहुलीराय हम्मीर जो ससार में आकर दल द्रोही और स्वामी द्रोही का कलक सिर पर किये हुए अपने पर चमर चलवा रहा था। उसी समय दोनों ओर की बादल रूपी सेनाएँ बढकर मिल गई तब हम्मीर ने दोनों सेनाओं में रण विवाद छेड़ा, यह देखकर उससे भिडने को पुण्डीर नरेश – पावस ने हँसते हुए अपने खड्ग को म्यान से निकाला।

सहस तीनि गख्खर गुराय, हाहुलि हमीर गहि।
मुर्रि मुररि मारूफ, ओट तत्तारखान रहि॥
खल खुरेस खन खान, जानु छडिव खग झिल्लिय।
मनहु महिख मयमत्त, कहर काती दइ ठिल्लिय॥
पुडीर राइ पावस त्रपति, झर उझार लग्गिय गयन।
कूरभराय अरु जादवनि, अमर मोह भुल्लै सयन ॥२६७॥

शब्दार्थः—सहस=सहस्र। गुराय=गुर्राकर धराशाई करके। गहि=जा पकड़ा, जा पहुँचा। मुररि= मुड़कर। मुररि=मोड़ दिया। ओट=आड़ में। रहि=होगया। खन खान=खान खान। जानु छडिव=जान छुडाई, प्राण बचाये या प्राण छोड़े। खग झिल्लिय=तलवार का वार सहा। कहर=विघ्न। काती=कातर कर, कधा उठा (फुला) कर। दइ ठिल्लिय=ठेल दिया। झर उझार— शस्त्र झड़ी करके झाड़ दिया (वार किये)। अमर मोह=अमरत्व के मोह में, या देवताओं को मोहित करते हुए। भुल्लै सयन=अपनी सेना की सुध बुध तक भूल गये।

अर्थः—उसने तीन सहस्त्र गक्खरों को धराशाई कर दिया और हाहुलीराय हम्मीर तक जा पहुंचा, मारूफ की ओर मुड़कर उसने उसे पीछे कदम दिला दिये। तत्तारखां उसके डर से आड़ लेकर छिप गया। दुष्ट खुरेशखां और ग्वान खान ने उसकी तलवार का वार सहन करके मुश्किल से अपने प्राण बचाये। वह वीर पावस उस समय ऐसा दीख पड़ा मानों मतवाला महिष कंधा उठाकर विपत्ति ठेल रहा हो, आकाश को छूता हुआ वह शस्त्र झड़ी से शत्रुओं को झाड़ने (काटने) लगा। इधर अमरत्व के मोह में पड़कर पुंडोर वीर का साथ देते हुए कूरभराज और यादवराज भी मतवाले होकर अपनी सेना की सुध बुध तक भूल गये।

स्वामि वचन सभारि, हक्कि है गै पावस तह।
लाखति दल भिज्जि गयो, साम द्रोही हमीर जह॥
उहि सौंही करि संग, इहित कर खग्ग समाह्यौ।
धीर सुतन खिजि खेत, सीस दुरजन के वाह्यौ॥
वाहंत खग्ग कंप्यौ पिसुन, धमकि अग धर जिहि पर्‌यौ।
नारद वीर वैताल मिलि, जुगिनि सद जै जै कर्‌यौ॥२६८॥

शब्दार्थः—सभारि=सुनकर, या पालन कर। हक्कि=बढाये। है गै=घोड़े-हाथी। लाखनि=लाखों की सख्या में। भिज्जि गयो=प्रवेश कर गया। सामद्रोही=स्वामिद्रोही। उहि=उसने। सौंही=समाही, ग्रहण की। करि=कर, हाथ में। सग=सांग, लोह कृ त। इहित=इधर से। समाह्यौ=ग्रहण किया। धीर सुतन=धीर पुण्डीर का पुत्र। खिजि=क्रोध करता हुआ। खेत=रण क्षेत्र। वाह्यौ=प्रहार किया। वाहंत=प्रहार करने पर। कंप्यौ=कांपा। पिसुन=शत्रु। धमकि=धमाके के साथ, धड़ाके के साथ।

अर्थः स्वामी की आज्ञा पाकर पावस पुंडीर ने अपने हाथी घोड़ों को बढ़ाये और लाखों की सख्या में मुसलमान सैनिकों के बीच में जहां पर स्वामी द्रोही हम्मीर था वहां पर पहुँचा। उधर से हम्मीर ने हाथ में साग (लोहकृत) ग्रहण की और इधर से रण क्षेत्र मे क्रोध करता हुआ धीर पुण्डीर के पुत्र (पावस) ने खड्ग ग्रहण कर हम्मीर के सिर पर प्रहार किया जिससे उस दुष्ट का रुण्ड कटकर कापता हुआ धराशायी होगया। यह देखकर नारद, वीर, वैताल, योगनियों आदि ने मिलकर उस वीर पुण्डीर की जय २ कार की।

दोहा

शीस छेदि लिय सगि बर, मद्धि साह दल मीर ।
आय सूर सामत पे, धनि धनि जपत धीर ।।२६६।।

शब्दार्थः—सीस छेदि=सिर काटकर । सग=लोह कुंत । बर=बल, सहारे पर पिरोकर । साह=शाह । पें= समक्ष । जपत=कहने लगे । धीर=धैर्यवान ।

अर्थः—वीर पावस ने मुस्लिम सेना के बीच में हम्मीर का सिर काट उसे लोह कुंत की अनी में पिरोकर चाहुवान के बहादुर सामन्तों के समक्ष आ उपस्थित हुआ । यह देखकर सब धैर्यवान योद्धा उसे धन्य २ कहने लगे ।

जित्ति सेन हम्मीर, मान मरदे हम्मीरा ।
बज्जिय बाज निसान, धज्जिय गज सबद सु वीरां ।।
नृप अग्गी उर दभत, सुतन चदन भो चदन ।
अमृत सचि मन उलसि, भयौ अरि कद निकदन ।।
सा–दोह कहो चहुआन बर, तिन सुवमों स्रा–ध्रम्मकहि ।
पुंडीर धीर तसलीम करि तेग बेग चौ हथ्थ गहि ।।२७०।।

शब्दार्थः—जित्ति=जीतकर । मान मरदे=मान मर्दन किया । हम्मीरा=अमीरों का । बज्जिय=बजे । बाज=वाद्य । निसान=निशान, नक्कारे । धज्जिय=शोभा । गज=गर्जना । अग्गि=अग्नि । दभत=दग्ध होना, प्रज्ज्वलित होना । सुतन चदन=चदपुण्डीर का वशज । भो=हुआ । उलसि=उल्लसित । अरि कद=शत्रु नाशक । निकदन=नाश करने के लिये । सा–दोह=स्वामी द्रोही । सा–ध्रम्म=स्वामी धर्म का पालन करने वाला । धीर–तसलीम=धीर के समान ही उसे माना । तेग=तेग, शीघ्रता पूर्वक । चौ=चार ।

अर्थः—इस प्रकार हमीर को मारकर सेना पर विजय प्राप्त करके उस पुंडीर ने अमीरों का मान मर्दन कर दिया जिससे नगारादि वाद्य बजने लगे और गर्जना करते हुए वीर शोभा पाने लगे । विद्रोही हमीर के कारण राजा पृथ्वीराज के हृदय मे जो अग्नि प्रज्ज्वलित हो रही थी उसे शांत करने के लिये चद पुंडीर का वशज चदन तुल्य हो गया । उसने अपने पक्ष वालों के मन को उल्लसित करने के लिये अमृत का सिंचन कर दिया और शत्रु पक्ष के लिये वह नाश कर्ता

था। उसी ने उसे स्वामि धर्म का पालन कर्ता कह कर सम्मानित किया और वास्तव में उसे धीरपुण्डीर का पुत्र होना मान लिया और उसी समय पावस पुण्डीर ने अपने साथियों सहित (राजा द्वारा दी गई) चार २ तलवारें ग्रहण करके कसकर कमर से बाँधी।

दोहा

धनि पावस पुण्डीर पति, धनि धनि कहै सु देव।
लै सिर-अरि नृप पै गयो, कह्यौ आगिलो भेव ॥२७१॥

शब्दार्थः- धनि = धन्य। सिर-अरि = शत्रु का मस्तक। पै = पास, समीप। आगिलो - अगला पूर्वका। भेव = भेद।

अर्थः—धन्य है पुण्डीरों के स्वामी पावस को, जिसे कि देवताओं ने भी धन्य २ कहा। वह पुण्डीर वीर शत्रु (हमीर) का मस्तक लेकर राजा के समीप जाकर पहले जो उससे भूल हो गई थी, उस भेद भरी बात को उसने स्पष्ट कर दिया (अपने को निर्दोष प्रमाणित कर दिया)।

हम तुमसों बहु वचन कहि, तब लाहौरी बत्त।
अब दल गज्जन साहि के, खग बज्जन रह पत्त ॥२७२॥

शब्दार्थः—खग बज्जन = तलवार बजाना (चलाना)। रह = रहा। पत्त=घात, आघात।

अर्थः—राजा पृथ्वीराज ने कहा-हे वीर पावस! लाहौर (लूटने) की बात पर तुम्हें मैंने बहुत से वचन (कुवाक्य) कह दिये थे, किन्तु अब गज्जनेश्वर के दल पर खड्गाघात करने वाला तू ही एक मात्र वीर रह पाया है।

मिले सूर सामत सब, असुर तेग सम कढ्ढि।
समर सिंघ रावर समर समर भुअन वर चढ्ढि ॥२७३॥

शब्दार्थः—असुर = मुसलमान। सम = सामने। कढ्ढि = निकाली। समर समर=युद्ध का स्मरण कर। भुअन=भौंहें।

अर्थः—सब बहादुर सामन्त भी उससे आ मिले, उसी समय मुसलमान सैनिकों ने युद्धार्थ तलवारें निकालीं। यह देखकर रावल समर केशरी ने युद्ध का स्मरण किया और उनकी भौंहें चढ़ गईं।

समर स्यंघ रावलह, सहस तेरह हय छडिय।
उत ततार गोरिय विलख्ख, रोही रण मंडिय ॥
बिद्ल डाल ओडन अभग, खग खोलि विहथ्थह।
कहै चद बरदाय, सुणौ छत्रिय इह कथ्थह ॥
भॅजि भरंभ जमन मरण, तिरण तुग सद्धै समर।
मुरि गये छडि भारथ्थ में, कोइ अग्गै अख्खौ अमर ॥२७४॥

शब्दार्थ — विलख्ख=दो लत्त। रोही=रौंध दिया। विदल=बगल में, कधे पर। ओडन=प्रत्यचा, धनुष। विहथ्थह=दोनों हाथों से। सुणौ=सुनो। भॅजि=नष्टकर, दूरकर। भरम=भ्रम। जंमन=जन्म का। मरण=मृत्यु। तिरण=तैरने के लिए, भवसागर को पार करने के लिए। तु ग=उत्त ग, ऊँचा। सद्धै=साधन। मुरि गये=मुड गये। छडि=छोडकर। मारथ्थ=युद्ध। कोई अग्गै=पहले कभी कोई। अख्खौ=कहा गया।

अर्थः—इधर समर केशरी रावल ने अपने तेरह सहस्र अश्वारोहियों को बढाया। उधर से तत्तारखां और स्वयं शहाबुद्दीन गौरी ने दो लत्त सैनिकों से रणस्थल को रौंध दिया। तब प्रत्यचाओं (धनुष) को कधे पर डालकर उन अभग मेवाडी वीरों ने हाथों से तलवारों की कसें खोली। कवि चद कहता है—हे त्तत्रियों! उस समय का चरित्र सुनो। उन बहादुरों ने जन्म मरण के भ्रम का नाश कर दिया तथा भवसिन्धु को पार करने के लिए उन्होंने युद्ध को ही उच्च साधन माना, क्योंकि युद्ध को छोड़कर भागे हुए वीर कभी कोई अमर हुए हैं? (अत युद्ध से भागने वाला वीर जीवित ही मृत तुल्य है)।

मुरत खान तत्तार, ताम निसुरत्ति खान लखि।
अनुज धर्म साहाब, भ्रम्म स्वामित्त सूर तखि ॥
सहस दून सेना सुभार, गज्जे गरु अत्त।
वीर धीर वर वस जुद्ध जानै जुरि घत्त ॥
उच्चरै मत्र चर जासु चिर, अनिय वधि चल्लै विहसि।
चमरैत वीर विरदैत घन, कलपि प्रान उभ्भारि असि ॥२७५॥

शब्दार्थः—ताम=तब, उस समय। साहाब=साहिब, ईश्वर, खुदा। सूर=शूर, वीर। तखि=ताका, देखा गया। गरुअत्त=गहरी, भारी। घत्त=घात, दाव। चर=चिर, विशेष। विहसि=हँसता हुआ। उम्भारि=उठाकर।

अर्थः—इस प्रकार रावलजी और उनके साथियों के आक्रमण से ततार खान को मुड़ता हुआ देख कर निसुरत्ति खांन जो बधु, खुदा, स्वामी और वीर धर्म में लीन था। उसने दो हजार संख्या की सेना का भार धारण करके गहरी गर्जना की। वह धीर वीर श्रेष्ठ वंश का था और युद्ध के दांव पेच जानता था। उसके द्वारा कही हुई विशेष मन्त्रणा चिर काल तक स्थिर रहती थी। वह सेना को पंक्तिबद्ध कर हर्षित होता हुआ चल पड़ा। वह चमर धारी वीर जो विशेष विरुदों से सुशोभित था उसने तलवार उठा कर कितने ही के प्राणों को कंपा दिया।

चंपत आसुर सेन, हक्क उभ्भार भार असि।
हल हलंत दल हिंदु, भइय खुम्मान भीर वसि॥
ताम कन्ह गुरू मन्त्र, खग्ग सज्जो सु व्योम सिर।
सिंघ कज्ज चित्रंग, लाज गज्जेव भार सिर॥
सय सत्त सथ्थ भय वीर वर, हक्क धुक्क बोले विहसि।
वंधेव चाल मन मंडि हरि लोह रिम्म लग्गे रहसि॥२७६॥

शब्दार्थः—हल हलंत=हल चल मच गई। खुम्मान=खुमाण उपाधिधारी रावल समर विक्रम। भीरवसि=सहायता की आशा। गुरु मन्त्र=गुरु द्वारा मन्त्रित। सिंघ=रावल केशरी (समर विक्रम)। गज्जेव=गर्जना। सय सत्त=सात सौ। हक्क धुक्क=हुँकार कर बढ़ते हुए। वधेव चाल=पंक्ति बद्ध। मंडि=स्थान देकर। रिम्म=यवन। रहसि=रहस्य मय।

अर्थः—इस प्रकार शत्रुओं ने बढ़कर तलवार झाड़ी जिससे हिन्दु सेना दब कर कपायमान होती हुई केवल खुम्मान वंशज रावलजी की ही आशा करने लगी। तब रावजी का सेनापति कन्ह सिर से आकाश को छूता हुआ गुरू द्वारा मन्त्रित खड्ग को हाथ मे लेकर अपने स्वामी चित्तौडेश्वर रावल केशरी के कार्य (विजयार्थ) एवं चित्तौड़ की लज्जा के भार को सिर पर लेकर गर्जना करने लगा। उसके सात सौ साथी जो श्रेष्ठ वीर थे वे साथ मे होगये। वे सब हुंकार करते हुए प्रसन्नता पूर्वक बढ़ने लगे। उस वीर कन्ह ने मन में हरि को स्थान देकर सेना को पंक्ति बद्ध कर-लिया और तत्वयुक्त शस्त्रों द्वारा यवनों से रहस्यमय युद्ध क्रीड़ा करने लगा।

दल आसुर दह प्यड, लोह झर भर आहुट्टिय।
सहस एक निज सेन, दिल्लि निसुरत्ति सुघट्टिय॥

तव आवरि तन वीर, सेख सेना आभासिय
मम भज्जौ धरि लाज, करौ कदल असि रासिय ॥
परससि सहस सेना सकल, वल वंध्यौ साहाव गजि ।
तजि मोह प्यड सजि भिस्त मन, भाय दीन मुहमुंद भजि ॥२७७॥

शब्दार्थः—दह प्यड=दस पेंड, दस कदम । लोह भर=ज्वाला । घट्ठिय = घट गई कम होगई । आवरि = अड़ता हुआ । सेख=शेष । आभासिय – आभास कराया, ज्ञान कराया, सावधान किया, ललकारा । मम=मत । भज्जौ भागो । कदल= नाश । रासिय = ढेर, समूह, शत्रु समूह । परससि=प्रशसा की । वल वध्यौ=वल में वृद्धि की । भिस्त=वहिश्त । भजि=नष्ट कर ।

अर्थः—तुरुष्क सेना के अग आड़े वीरों की लोह ज्वाला मे दग्ध होगये, उनके द्वारा एक सहस्र सेना को कम होती हुई देखकर वीर निसुरत्तिखान अड़ता हुआ अपनी शेप सेना को ललकार कर उसमे परिवर्तन कर दिया और कहा—हे वीरों, भागो मत । लज्जा को धारण करके तलवार द्वारा शत्रु समूह का नाश कर दो । इस प्रकार प्रशसा करके अपनी सहस्र सेना मे वल वृद्धि करदी जिससे शाह गर्जना करने लगा, उस निसुरत्तिखा ने अपने शरीर का मोह छोड दिया और उसका मन वहिश्त की ओर लग गया तथा मुहम्मद का नाम रटता हुआ उसे अपना दीन प्रिय लगने लगा ।

पर्‌यौ खान निसुरत्ति, करें प्राक्रम्म उद्ध अति ।
सुभट सहस सारद्ध, सथ्थ निज रोह मुत्ति खिति ॥
सुइ सुणि आसुर सेण, भयौ हलहल्ल चल्ल मन ।
सायर लहरि उलट्टि, कंपि थट्ट थट्ट घन ॥
सभले ताम साहाब तमि कमि सु अत झलझाल चवि ।
झलमलिय कोप आरत्त तन, फिरै तपि साभ्रित्त छवि ॥२७८॥

शब्दार्थः—उद्ध=ऊँचा सारद्ध=शस्त्र धारी । रोह=रोंध कर । मुत्ति=मृत्यु, मुक्ति । खिति= क्षिति, पृथ्वी । सुइ=यह । सुणि=सुन कर । सेण=सेना । हल हल्लचल्ल=हल चल,भाग दौड़ मच गई। सायर=समुद्र । लहरि=लहरें, तरगें । उलट्टि=उलट कर । कपि=कपायमान । थट्ट थट्ट=समूह । सभले=सुन कर । तमि=तम तमाकर । कमि=कमण किया, चले । झल झाल=ज्वाला वरसाता

हुआ। चखि=चक्षु, नेत्र। कल मलिय=कल मलाना। आरत्त=रक्त, अरुण वर्ण। तप्पि=त्रपा, लज्जा।

अर्थः—अन्त में ऊँचा पराक्रम करता हुआ निसुरत्ति खांन धराशायी हो गया और लोहा धारण किये हुए उसके शेष सहस्त्र साथी भी रुंध कर पृथ्वी पर मौत को प्राप्त हो गये। यह सुन कर तुरुष्क सेना में हल चल मच गई और सेना के प्रथक प्रथक समूह कंपित होते हुए भी सागर की तरगों के समान उमड़ने लगे। उस समय निसुरत्ति की मृत्यु को सुनकर शहाबुद्दीन भी तमोगुण में आगया और वह नेत्रों से अग्नि-ज्वाला बरसाता हुआ काल के समान शत्रुओं की ओर चला। वह अपने सेवक की ऐसी हालत देखकर क्रोध से कलमलाने लगा। उसका शरीर अरुण वर्ण हो गया तथा वह लज्जा के कारण शत्रुओं पर मुड़ गया।

मियाँ मान मुस्तफा, उभै बधव असि उभ्भर।
धरा रोम उद्धरन, धरा स्वामित्त समुद्धर॥
सोय निरखि साहाव, दई अग्या तमि ताम।
तुम लख्यौ तत्तार, भार मडे सिर कामं॥
निसुरत्ति हयौ रावर भरन, हल हलंत तत्तार दल।
तुम जाय जुरौ उप्पर करौ, खरौ बध बंधेव भर॥२७६॥

शब्दार्थः—असि-उभ्भरे=तलवारें उठाई। रोम=रोमी, मुसलमानी। उद्धरन=उद्धार के लिये। समुद्धर=उद्धार। दई=दी। तमि=तमोगुण। तामं=तव। हयौ=हनन, मारा गया। भरन=सामन्तों में। हल हलत=हल चल, कंपित हो गई। जुरौ=जुट पड़ो। बध बंधेव=भाईभाई।

अर्थः—उस समय मियाँ मान और मुस्तफाखाँ जो दोनों भाई थे, उन्होंने तलवारें उठाई। वे स्वामी-धर्म धारण करने वाले अपनी रोम धरा के उद्धार के साथ अपना भी उद्धार चाहने लगे। उन्हें देखकर शहाबुद्दीन ने तमोगुण मे आकर आज्ञा दी कि तुम जानते हो तत्तारखाँ ने सिर पर युद्ध का भार लिया है। उसकी सहायतार्थ जो निसुरत्तिखाँ बढ़ा था, उसको रावलजी के सामन्तों ने खत्म कर दिया। जिससे तत्तार की सेना कंपित हो गई है। अब तुम भी विपत्तियों से जाकर जुट पड़ो और उसकी सहायता करो, जैसे भाई-भाई की सहायता करता है।

परयो मान मुस्तफा, इखिव धर रोम समुद्धर ।
हल हलि सेन ततार, पच्छ दह पिंड धरम्भर ॥
तब मसद दह एक, आय अड्डे वर वीरह ।
मिले सुभर चित्रग, जग उत्ते असि धीरह ॥
गजनेस साजि आयास सिर, लगे लोह तत्ते तरछि ।
रण परे विहडे खड झर, अभिय धार सन्ने धरछि ॥२८०॥

शब्दार्थः—दह पिंड=दस पैंड, दस कदम । धरम्भर=वीरों ने दिये । अड्डे=आडकी, डट गये । जग उत्ते=जग उठाया, युद्ध छेड़ा । आयास=आकाश । तत्ते=तेजी से । तरछी=तिरछी । विहडे=टुकड़े २ । धरछि=धड़ाके के साथ ।

अर्थः—शाह की आज्ञा से तत्तार खॉ की सहायता पर मियॉ मान और मुस्तफाखॉ बढे थे, वे अपनी रोमधरा का उद्धार करते हुए धराशायी हो गये । यह देखकर तत्तारी सेना में हलचल मच गई तथा मेवाडी वीरों के आक्रमण से वह दस कदम पीछे हट गई । उसी समय उसकी सहायता पर ग्यारह मसनद धारी (मसनद पर बैठने वाले) जो बडे श्रेष्ठ वीर थे आ डटे । इधर से चित्तौडेश्वर के सामतों ने उनसे भिडकर खड्ग युद्ध रचा । उस समय स्वय गजनेश्वर भी आकाश को अपने सिर से छूता हुआ युद्धार्थ तत्पर हुआ । जिससे दोनों ओर से तेज शस्त्रों के तिरछे-वार होने लगे । शस्त्रा की पैनी धाराओं से वीर कट कट कर (खड २ होकर) रण स्थल मे धमाके (धडाम) से गिरने लगे ।

गाथा —

सहस च्यार सधि मीर, निवडे विखम नद विय सत्तं ।
नंदे पलचर श्रोन, हालाहल विन्ति विखमाई ॥२८१॥

शब्दार्थः—सहस च्यार=चार सहस्र । निवडे=नाश करते हुए नद । विय=नव=दो, ग्यारह । नदे=आनन्दित । पलचर=मांस भक्षी । हालाहल=हलाहल । विन्ति=वीता । विखमाई=विषम ।

अर्थः—चार सहस्र मीरों सहित ग्यारह मसनदधारी वीरों का नाश करते हुए रावलजी के सात वीर काम आगये और उस युद्धस्थल मे क्रोध रूपी विषम हलाहल छागया । गिद्धादि उस रक्त से आनन्दित होगये ।

हालाहल व्रित्तयौ, गिद्ध जवुक कोलाहल।
रगत वुन्द निभ्भरहि, अंत ढंवर डोलाहल॥
वार वार गुन धुक्क, हक्क श्रवनंभक्क भाइय।
हो वलि भद्र सुभद्र, सिंघ रुक्यौ रन साइय॥
सग्राम वत्त रम्मिय कहै, लग्गै गत्त दुहाइयां।
मोडनह गरुअ गोरी घटा, जद्दव तेग उचाइया॥२८२॥

शब्दार्थः—हालाहल=भयानक जहर। कोलाहल=शोरगुल। रगत=रक्त। निभ्भरहि=भरने, वरसने लगी। ढवर=आडम्बर। डोलाहल=डोलना, सचार। वार=वाला। वारगुन=वाराङ्गना [स्वर्गीय अप्सरायें]। धुक्क=झुकीं, उतर पड़ी। भक्क भाइय=भकभोर दिया, भंभेड दिया। हो=अहो। सुभद्र=भद्र वीर। सिंघ=रावल समर केसरी (समर-विक्रम)। रम्मिय=रमणीक। गत्त=जाते हुए, स्वर्गारोहण करते हुए। मोनइ=मोड देने, हटा देने, भगा देने। घटा=सेना। उचाइय=उठाई।

अर्थः—दोनों ओर के वीरों मे क्रोधरूपी भयानक विष छा गया, जिससे रण स्थल मे गिद्ध और जवुकों का कोलाहल होने लगा। रक्त की बूँदें वरसने लगी, आडम्वर युक्त मृत्यु का सचार हो गया। स्वर्गस्थ वीराङ्गनायें आकाश से उतरने लगी, कानों मे हुंकार शब्द सुनाई देने लगा, एक वीर दूसरे वीर को भकभोरने लगा। उसी समय जामराय से वलिभद्र (कछवाहे) से कहने लगा-हे भद्र वीर ! स्वामी पृथ्वीराज के लिये रावल केसरी (समर विक्रम) युद्ध में डटे हुए हैं। रणाङ्गण मे सुन्दर युद्ध चर्चा छेड़ते हुए वीर अपने अपने स्वामी की दुहाई देते हुए स्वर्गारोहण कर रहे हैं (अब हमको भी बढ़ना चाहिये)। यह कहते हुए उस यादव वीर ने गोरी सेना को मोड़ देने के लिये तलवार उठाई।

रन रत्तौ वलि भद्र, राइ पावस पग लग्गौ।
तुं धीरंजा धीर, भीर रावत ते भग्गौ॥
हों ढढोरी ढाल, हाल कड्ढ सुरतानी।
वड गुज्जर दाहिमा, वोल वड्ढै तुरतानी॥
प्रारम्भ राव पज्जून सुअ, वद्धारू वंटै भरा।
असवार सनाहरू सस्त्र अध, वे वंधव वटै धरा॥२८३॥

शब्दार्थ—पग लग्गौ=चरण स्पर्श किये। धीरंजा=धीर पुण्डीर का पुत्र। धीर धैर्यवान। भीर=आपत्ति। भग्गौ=दूर करने वाला। हों=मनजा। ढंढोरी=टटोलकर। ढाल=ढाल स्वरूपी वीर।

हाल=नाटशल्य, चुभने वाली वस्तु। कढ्ढ=भगा देने जैसा, निकाल देने जैसा। बोल बढ्ढै= बोल पर बढे। तुरकानी= तुर्क। तुरत=शीघ्र। प्रारम्भ=युद्धारम। वढ्ढारु=वढ कर। बटे भरां= सामन्तों का साझीदार। अध=अर्ध। बधव बटे=भ्रातृ भाग करते। धरां=धर।

अर्थः—युद्धरत बलिभद्र कछवाहा और पावस पुण्डीर ने युद्धार्थ वढने के लिये राजा पृथ्वीराज के चरण स्पर्श किये। तब राजा कहने लगा-हे धैर्यवान धीर पुण्डीर के पुत्र (पावस), तू राज वंशजों की आपत्ति को दूर करने वाला है। शाह के ढाल स्वरूपी वीर जो नाट शल्य (चुभने) जैसे है। उनको तू युद्ध मे परखकर हटा देने जैसा है। बडगुज्जर और दाहिमा वीर (चामड) भी बोल पर आतुरता से युद्धार्थ वढे हैं। ऐसे वीर तो बहुत से हैं जो अश्वारोही वीरों,कवचों,और शस्त्रादिका अपने २ घर पर समान रूप से भ्रातृ भाग करते रहते हैं, किन्तु हे पज्जून पुत्र वलि-भद्र! तू ही ऐक ऐसा वीर है जो युद्ध में सामन्तों का साथ देकर उनकी आपत्तियों का साझीदार वनता है।

उए सेन आलम्म, आय आलम सपत्तौ।
ए हिन्दू आलम्म, आय जदु पर हहक्कतौ॥
इए उए अकुरिय, घरिय वज्जी झर झझर।
नरे नरा वित्तरिय, हरिय जम्मन आवन धर॥
रन राम दुजोधन भर भिरन, वालमीक व्यासह करिय।
हूए न होंहिं हिन्दू तुरक, सुगति मग्ग वित्तिय घरिय॥२५४॥

शब्दार्थः—उए=उधर। आलम्म=शाह। सपतौ=आ पहुँचा। आलम्म=समूह। हहक्तो= हुकार करता हुआ। इए उए=इधर उधर। अकुरिय=अकुरित। झर झझर=झन झनानेलगी। नरे-नरां=मानव मानव में। वित्तरिय=बीती, समाप्त होने लगे। हरिय=हर गया, मिट गया। जम्मन आवन=आवागमन।

अर्थः—उधर से शाही सेना और स्वय गौरीशाह चल पडा और इधर से जामराय यादव के पक्ष पर हिन्दू वीरों का समूह हुंकार करता हुआ आगे वढा। गौरी एव चाहुवान इन दोनों दलों के वीरों मे धीर रस अकुरित हो गया। जिससे शस्त्र घडी की तरह भनभनाने लगे। मानव द्वारा मानव समाप्त होने लगे तथा आवागमन का रास्ता (सिलसिला) मिट गया। राम और दुर्योधन के साथी वीरों की

युद्ध घटना का क्रमशः वर्णन वाल्मिकी और व्यास ने किया था, किन्तु यह हिन्दु और तुरुष्क वीर भी कम नहीं हैं, इनके समान न तो हुए हैं और न होंगे ही। इनके जीवन की घटिकायें मोक्ष मार्ग पर विचरण (युद्ध) करते हुए ही व्यतीत हुई हैं।

परयौ खेत परि जाम, लियौ धर साहस झोलिय।
तहँ आयो बलिभद्र, खग्ग खेलत रस होलिय॥
असिवर ओड़न झारि, तार वज्जत त्रिघाइय।
परि पथार अगवान, थान थर होव थराइय॥
मझि ढ़ाल धरिग गोरी गरुअ मुच्छि बहुरि जग्गिय घरिय।
बलिभद्र जुद्ध दिख्यौ करत, हनौ हनौ अप्पन करिय॥२८५॥

शब्दार्थ—जाम=जामराय। लियौधर=उठालिया। साहस=समर-साहस समर-विक्रम रावल। ओड़न=प्रत्यंचा। त्रिघाइय=तीनों साथ २। पथार=प्रस्तर, फैल गये। अगवान=अग्रगण्य वीर। थान थर=स्थान, रणस्थल। थराइय=थल गया, पट गया। मझि ढाल धरिग=ढलैती वीरों से सुरक्षित धर पकड़ा गया। मुच्छि=मूर्छना। जग्गिय=मिटी, जागृत हुआ। हनो हनौ - मारो २, मार २ शब्द।

अर्थः—जामराय यादव के धराशायी होने पर स्वयं रावल समर-साहस ने उसे झोली में उठाया, उसके स्थान पर बलिभद्र कछवाहा खड्ग द्वारा वीर रस की होली का खेल खेलता हुआ आ डटा। उसने शत्रुओं की प्रत्यचा को खड्ग द्वारा काट दिया। जिससे ऐसा दृश्य उपस्थित हुआ, मानों तन्त्री के तीनों तार साथ २ ही बज रहे हों। उस समय अग्रगण्य वीर प्रस्तर से (फैला) गये, जिससे युद्धस्थल पट गया। ढलैती वीरों से रक्षित भारी वीर गौरीशाह को उसने जाकर धर दबाया (घायल कर दिया) जिससे उस (गौरीशाह) की एक घड़ी से मूर्छा दूर हुई। मूर्छा दूर होने पर उसने देखा तो वहा पर वीर बलिभद्र (कछवाहा) युद्ध करता हुआ दिखाई दिया। यह देखकर उसने मार २ शब्दोच्चारण किया।

बलिभद्रह आगमन, पुट्ठि नव आय महा भर।
समरसीह सेवंज, लहैं लज्जिय अदब्ब हर॥
सिंघराव सांखुला राव पूरन परिहारह।
पति पहार सारंग, बैन बव्वेल सु भारह॥

देवरा राव सारँग समथ, खीची हरदेवह सुहर।
चालुक्क वीर डोडह रतन, तोंवर सागर तेग तर ॥२८६॥

शब्दार्थः—पुट्ठि=पीठ पर, पृष्ठ पर। नव=नौ। महाभर=महान योद्धा। सेवज=सेवक, सामंत। अदब्ब हर=अदब धर, सम्मान प्राप्त किये हुए। भारह=भारी। समथ=सामर्थ्यवान। तेग तर=तलवार तर है।

अर्थः—बलिभद्र के युद्ध में बढने पर रावल समर-केशरी से सम्मानित महान वीर सिंघराव सांखुला, पूरनराव प्रतिहार, पहाडी प्रदेश का स्वामी सारगदेव, भारी वीर बैनराय बघेल, सामर्थ्यवान सारंगराय देवडा, सुभट हरदेव खींची, वीरसिंह चालुक्य, रत्नसिंह डोड और जिसकी तलवार सदा रक्त से तर रहने वाली थी ऐसा सागरराय तोमर (रावल समर के) उपरोक्त नव ही वीर जो लज्जा को धारण करने वाले थे। उस (बलिभद्र) के पक्ष पर आ उपस्थित हुए।

नवै सुभट वै नुत्त, गात उत्तग तेग गुर।
कुलम्र रेह सुख देह, जुद्ध उद्धरिय केय धुर॥
स्वामि ध्रम्म समरथ्थ, अथ्थ वर हथ्थ प्रचारन।
अगम मग्ग नव चहै, धार खग तिथ्थ सुधारन॥
दिख्यौ सु राज प्रथिराज तिन, करन अप्प रिम हर कच्चर।
अनु नमि सीस असमान लगि, आय प्रचारिय तेग भर ॥२८७॥

शब्दार्थ—वै=नुत्त=नव वयस्क। गात=गात्र। उत्त ग=ऊँची। तेग गुर=भारी खड्ग। कुलम्र रेह=कुल मर्यादा। सुख देह=निरोगी। उद्धरिय=उद्धार किया, विजय प्राप्त की। केय=कितने ही। धुर=ध्रुव। अथ्थ वर=अर्थपूर्ति (दान)। प्रचारन=बढाने वाले। अगम=दुर्गम। सु धारन=वे धारने वाले। रिम=मुसलमान। कच्चर=कुचलना। अनु=उसे। नमि सीस=नमस्कार कर। भर=भड़ी, आघात।

अर्थः—वे नव ही वीर नव वयस्क, उत्त गकाय, भारी खड्ग रखने वाले, कुल मर्यादा का पालन करने वाले, रोगरहित काया वाले, निश्चय ही कितने ही युद्धों में विजय पाने वाले, स्वामी धर्म के पालन कर्ता, सामर्थ्यवान, अर्थपूर्ति (दान) और शत्रु नाश के लिये हाथ बढ़ाने वाले तथा योगादि दुर्गम मार्ग द्वारा मोक्ष प्राप्ति नहीं करके केवल धारातीर्थ (युद्ध) द्वारा मोक्ष चाहने वाले थे। उन्होंने देखा कि स्वय

पृथ्वीराज यवनों को कुचल रहा है अत वे उसे नमस्कार करके अपना मस्तक आकाश से जा लगाया और ललकार कर शत्रुओं पर खड्गाघात करने लगे।

परयो राव बलिभद्र, झुम्मि धर अग्गर सांइय।
गय रवि मण्डल भेदि, जोति हर जोति समाइय॥
परे मीर सें तीन, परे खट सुभ्भर राजह।
भ्रित्त सु रावर सिंघ, लगी उर अच्छरि साजह॥
सु भट च्यार सों राज रहि, गहकि भग्गि आलम्म भर।
गिद्धनिय कहै संजोगि सुनि, धनि सु जुद्ध तुअ कंत गर॥२८८॥

शब्दार्थः—अग्गर=आगे। सांइय=स्वामी। जोतिहर=ज्योतिधर, ज्योति स्वरूप। समाइय=मिल गई, समा गई। सेंतीन=तीन सौ। खट=छ। राजह=राजपदधारी। धनि सु=धन्य है। कंत=पति। गर=गले लगाया, प्रेम किया।

अर्थः—राजा के आगे युद्ध करता हुआ राव बलिभद्र कछवाहा धराशाई होकर उसने सूर्य मडल को भेद दिया और उसकी ज्योति ज्योति स्वरूप में मिल गई। उस समय उसके द्वारा तीन सो मीर धराशाई हुए और राज पदधारी छः सामंत काम आये एवं रावल केशरी के नव वीरों के हृदय से अप्सरायें आ लगी [युद्ध द्वारा मारे जाने पर अप्सराओं ने उन्हें वरण किया] पृथ्वीराज के चार सौ योद्धा मारे गये, ऐसा भयानक युद्ध होने पर शाह के योद्धा हाय तोबा मचाते हुए भाग गये। गिद्धनी सयोगिता से कहने लगी कि तेरे स्वामी पृथ्वीराज को धन्य है जिसने कि युद्ध से प्रेम कर रक्खा है।

दोहा

समरसिंघ भर जुद्ध परि, अनी वाम दिसि भंजि।
ता उप्पर पुंडीर गजि, हनन मीर धर सज्जि॥२८९॥

शब्दार्थः—भर=भट, योद्धा। जुद्ध परि=धराशायी होने पर। अनी=सेना। वाम दिसि=वाम पार्श्व। भंजि=टूट गया। गजि=गर्जना। हनन=नाश करने।

अर्थः—रावल समर केशरी के नव योद्धाओं के धराशायी होने पर पृथ्वीराज का सेना का वाम पार्श्व टूट गया। यह देखकर मीरों का नाश करने के लिए पावस पुंडीर गर्जना करता हुआ आगे बढ़ा।

परे विषम पथ्थार, वीर पावस गुर गज्यौ।
गाजीखान गहति, वधि सो साहिब सज्यौ ॥
उभै सहस भर मीर, सहस पुंडीर सहत्तौ।
विषम वीर उभ्भार, रुभै लग्गै उत तत्तौ ॥
झर झार धार लग्गिय विषम, सिर धरि खत पुन पूर धर।
तुट्टत असिय उड्डुंअ लग, मनु घन दामिनि दपि झर ॥२६०॥

शब्दार्थ:—पथ्थार=फैला। गुर गज्यौं=भारी गर्जना कर। गहति=ग्रसा गया, नष्ट हुआ। सहत्तौ=साथ में। उभ्भार=उमड़ पड़ने। रुभै=डटने पर। उत=वहां पर। तत्तौ=सतप्तकारी। झर झार धार=खड्ग झड़ी की ज्वाला। धरि खत=धड़ाके के साथ कट पड़े। पूर धर=पृथ्वी शवों से पूर्ण होगई। तुट्टत=काट करती हुई। उड्डुंअ=ज्वाला फैलाने लगी। मनु = मानों। घन= बादल। दामिनि= बिजली। दपि=चमचमाती।

अर्थ:—जिस समय पावस पुंडीर गर्जना करके बढा, उस समय विषम वीर धराशाई होने लगे, उसी समय गाजीखांन उसके द्वारा ग्रसा गया (नष्ट हुआ)। यह देखकर उधर से शहाबुद्दीन के भाइयों मे से एक वीर जिसके दो सहस्त्र साथी थे वह आगे बढा। इधर पावस पुंडीर के साथ मे केवल एक सहस्त्र योद्धा थे। विषम वीर पावस पुंडीर के उमड पडने और डटने पर विपक्षियों को वह सतप्त कारी लगने लगा। उसकी खड्ग झडी की ज्वाला भी विषम ज्ञात होने लगी। उसके द्वारा सिर कट कट २ कर गिरने पर पृथ्वी फिर से शवों से पूर्ण होगई। काट करती हुई उसकी खड्ग इस प्रकार ज्वाला फैलाने लगी मानों बादल से चमचमाती हुई बिजली गिर रही हो।

परत राइ पुंडीर, मीर वज्जै बहु बज्जै।
मनहु भाद्रपद गेन, गेन गेना घन गज्जै ॥
अचल चमू चतुरंग, कृत्तिव कुप्पार अपारह।
अमिनि भरनि तर अंतर, खग्ग कर दंड सपारह ॥
जै जै चवत चव रुक्ख चर, वरनि वरनि अच्छिर छरनि।
भव भाव भवन हिम हयह तजि, वसि पावस आवस धरनि ॥२६१॥

शब्दार्थ:—एन=आयन, आने पर, लगने पर। गेन गेना=नभ स्थान, नभ मंडल। घन = बादल। अचल=अचला, स्थल, क्षेत्र। कृत्तिव=कृत्ति [जैसा, बाजार के चमड़े]। कुप्पार=कपाल।

असिनि=अश्व, घोडे । तर-अतर=ऊपर तले, ढेर, राशि । सपारह=पाड़ना, पटकना, प्रहार करना । चवंत=करते । चवरुख्ख चर=चारों ओर फिरने वाले, कृषि रक्षक । वरनि-वरनि=विविध वर्ण से शृंगारित । छरनि=छड़ियें, शाखायें । भवमग्व=संसार ही जिसका मुल्याङ्कन कर्ता है । भवन=गृह या पृथ्वी । हिम=शीतकाल । इयह=नाश । आवस=आना ।

अर्थः—वीर पुंडीर के धराशायी होने पर मीरों ने इस प्रकार विशेष बाजे बजवाये मानों भाद्रपद मास के प्रारंभ होने पर नभ मंडल से बादल गर्जना करते हों । उस समय चतुरंगिनी सेना ही स्थल (क्षेत्र), नर कपाल ही कृषि फल (जवार–बाजरे के भूमके) घोडे और सामन्तों का ऊपर तले होना ही कृषि राशि, खड्गाघात ही दंड प्रहार, जय जय कार करने वाले ही कृषि रक्षक, विविध रंग के वस्त्रों से शृंगारित अप्सरायें ही कृषि शाखायें और संसार ही उस कृषि का मूल्याङ्कन कर्ता माना गया था । ऐसी कृषि का उत्पादक पावस स्वरूपी वीर पावस, नाशकारी समय रूपी शीतकाल आने पर संसार को छोड कर अदृश्य जा बसा । अतः हे पावस ! ऐसी कृपि का उत्पादन करने को एक बार तुम पृथ्वी पर और आना ।

दोहा

परिविसि निसिपत्ति न उदै, ठठुकि सेन दुव दीन ।
सहस एक आहुट्टि परि, मन न छीन तन छीन ॥२६२॥

शब्दार्थ—परिविसि=पड़वा, प्रतिपदा । निसिपत्ति=चन्द्रमा । ठठुकि=टकटकी लगाकर देखती ही रहगई । आहुट्टि परि=आहड़े वीर धराशाई हुए । छीन=क्षीण, हतोत्साह । छीन=नष्ट ।

अर्थः—प्रतिपदा को जब चन्द्रोदय नहीं हो पाया था, उस समय तक एक सहस्त्र आहड़े वीर धराशाई हो गये और उनके शरीर नष्ट हो गये, फिर भी उनके मन का उत्साह कम नहीं हुआ और उनके द्वारा भयानक युद्ध छिड़ने से दोनों ओर की सेनायें टकटकी लगा कर देखती ही रह गईं ।

तजि सुनेह संकित सयन, थान थान रहि भीर ।
प्रात तार से दिक्खियै, जोध जोध वर वीर ॥२६३॥

शब्दार्थः—तजि सुनेह=स्नेहरहित, नवोढा । थान २=स्थान २, यत्र तत्र । भीर=टोली । तार=तारे । जोध जोध=योद्धा ।

अर्थः—स्नेहरहित नवोढा की भांति सेना शकित हो यत्र तत्र हो गई। केवल युद्ध स्थल मे कहीं २ पर श्रेष्ठ योद्धा इस प्रकार दिखाई देते थे जैसे प्रात काल होने पर कहीं २ तारे दिखाई देते हैं।

कवित्त

भयत भीति निसि अद्ध, मेघडबर दिसि छाइय।
विषम बाय वर बज्जि, भूत बेताल त्रिघाइय॥
बज्जि घाय रन हक्कि, करै नारद किलकारिय।
गिद्ध सिद्ध जोगिनी, मझ्झि काली दै तारिय॥
वर बीरभद्र नच्चै तहाँ, धक्कि हक्कि दै कर फटै।
अच्छरिनि गान गावै उमा, चित्त रूर ढुढै भटै॥२६४॥

शब्दार्थः—भयत=हो गया, छा गया। मेघडबर=मेघाडम्बर (स्वर्ण दण्ड में लगा हुआ छोटा छत्र जो सर्वदा राजाओं के साथ में रहता है)। त्रिघाइय=त्रिताल। बज्जि घाय=वज्राघात। हक्कि=बढकर। मझ्झि=में, बीच में। तारिय=ताली। धक्कि=बढकर। हक्कि=हुकार करता हुआ। दै कर फटै=हाथ पर फटकार देता हुआ, ताली बजाता हुआ। उमा=कविचन्द की स्त्री का नाम उमा या गौरी था (अत उसने उसे सम्बोधित करके ही रासो की रचना की है)। चित्त=चित्त से। रूर=रूडे, सुन्दर। ढुंढै=ढूढने लगी, खोज करने लगी। भटै=भट वीर (वर)।

अर्थः—कवि चन्द अपनी स्त्री उमा (गौरी) को सम्बोधन कर कहता है अर्ध रात्रि होने पर चारों ओर भय छा गया, दिशायें मेघाडम्बरों से छा गई। तेज पवन चलने लगा। भूत वैतालादि त्रिताल पर नृत्य करने लगे। युद्ध भूमि मे वीर बढ बढ कर वज्राघात करने लगे। नारद किलकारी करने लगा। गिद्धनी, सिद्धनी और योगिनियों के बीच कालिका ताली बजाने लगी। बढ २ कर हुंकार के साथ २ ताली बजाते हुऐ वीरभद्र गण नृत्य करने लगे तथा अप्सराएं गीत गाती हुई सुन्दर वर की खोज मे लग गई।

दोहा

अति आतुर जित्तन असुर, अरु जित्तन सुरलोक।
प्रतिपद रवि निसि यों गई, ज्यों रम रमनी कोक॥२६५॥

शब्दार्थः—जित्तन=जीतने, विजय पाने। असुर=मुसलमान। गई=बीती, व्यतीत की। रम=प्रेम। रमनी कोक=चकवा र रमणी।

अर्थः—सामत गणों ने, मुसलमानों और स्वर्ग पर विजय प्राप्त करने के लिये उत्सुक हो प्रतिपदा की रात्रि इस प्रकार व्यतीत की, जिस प्रकार चकवाक रमनी पति-प्रेम प्राप्त करने के लिये प्रातःकाल का चिन्तन करती है।

भयत प्रात निसि मुदित हुअ, उदित सूर छिन मंझ।
वीर वीर संमुह चढै, चाहुआन सुरतंभ ॥२६६॥

शब्दार्थः—भयत=हुआ। मुदित हुअ=मुँद गई, संकुचित हो छिप गई, समाप्त हो गई। छिन मंझ=क्षण में। सुरतंभ=सुलतान।

अर्थः—रात्रि का अवसान होने पर प्रात काल हुआ और क्षण मात्र में सूर्य उदित हुआ। उसी समय चाहुआन और सुलतान के वीर युद्धार्थ एक दूसरे का सामना करने लगे।

चढ्यौ जैत है मंगि कै, थप्परि कंध सु पान।
दल सु मिच्छ तिल तिल करन,करि जुहार चहुआन ॥२६७॥

शब्दार्थः—है=हय, घोड़े। मगि कै=मँगवाकर। थप्परि=थपेड़ा। सु पान=अपने हाथों से। दल=समूह। मिच्छ=म्लेच्छ सेना को। जुहार=सिर नँवाकर।

अर्थः—जैत्र ने अपनी सवारी का घोड़ा मँगवाकर उसका कंधा थपथपाया और चाहुवान राजा पृथ्वीराज को सिर नँवा कर म्लेच्छ सेना को खण्ड २ करने के लिये सवार हुआ।

सेत छत्र नीताय, जैत उम्भौ दिसि वांई।
चाव चलन चित ध्रूअ, ध्रूअ रख्खन चित सांई॥
दिसि दच्छिन चावंड, पाय मुक्कै सिर नग्गा।
समर सिंघ रावर नरिंद, साहि रुक्कै रन अग्गा॥
सुरतान छत्र पावार परि, चतुरंगिय चंपिय सयन।
आवृत्त रत्त दुनिया विषम, देव रथ्थ वंधे गयन ॥२६८॥

शब्दार्थः—नीताय=नैरृत्य। जैत=जैत्रराय। दिसि वाई=वाम पार्श्व। चाव चलन=युद्ध में बढ़ने की इच्छा। ध्रूअ=ध्रुव, अटल। रख्खन=रक्षा करने। पाय मुक्कै=पैर जमाये। सिर नग्गा=शेषनागपर। अग्गा=आगे। पावार=प्रमार। परि=पटक दिया, गिरा दिया। चंपिय=दबादी। आवृत्त=अड़ने, युद्ध करने, युद्ध देखने। रथ्थ=यान, विमान। बंधे=पंक्ति बद्ध, आ गये। गयन=आकाश।

अर्थः—उस दिन युद्ध का नेतृत्व करने के लिये श्वेत छत्र धारण कर जैत्र प्रमार वाम पार्श्व में खड़ा हो गया। उसकी युद्धेच्छा और स्वामी की रक्षा का विचार अटल था। वीर चामडराय भी दक्षिण पार्श्व में शेष नाग के सिर पर दृढ पाव जमा कर डट गया। रावल समर-केशरी (समर-विक्रम) भी शाह को रोकने के लिये आगे बढ़ा। इसी समय जैत्र प्रमार ने बढ कर सुलतान का छत्र गिरा दिया और चतुरंगिनी सेना को दबा दिया। उस विकट वीर के युद्ध को देखने में सब लीन थे। देवताओं ने भी अपने विमानों से नभ मण्डल को छा दिया।

च्यारि सहस असवार, मद्धि चामडु दुहिल्लौ।
चौदह से मफरद, मियाँ मनसूर रुहिल्लौ॥
हूह हक्क किलक्कार, सीस टुट्टहि धर धावहि।
आनंदित अपछरा, आज इच्छावर पावहि॥
चावडराइ दाहर तनो, हर हारावलि सट्टयौ।
मकरद्दखान पीरोज सुअ, तेजवत भिस्तिहि गयौ॥२६६॥

शब्दार्थः—दुहिल्लौ=दुल्हा, दूलहा। हूह हक्क= हू हू हुंकार। अपछरा=अप्सरा। तनो= तनय, पुत्र। सट्टयौ=सांठ दी, वृद्धि करदी, जोड दी। भिस्तिहि=बहिश्त (स्वर्ग) को।

अर्थः—इधर चार हजार अश्वारोहियों के बीच चामुण्डराय दुल्हा बना हुआ था और २६२ मंसूर रुहिल्ला चौदह सहस्र मफरद सैनिकों को साथ लेकर आगे बढा। दोनों में युद्ध ठन गया। जिससे हुंकार और किलकारियाँ होने लगी। मुण्ड कट कट गिरने लगे पर रुण्ड पृथ्वी पर घूम रहे थे। अप्सराएँ प्रसन्न होकर आती और मन वान्छित वर प्राप्त करती थीं। यद्यपि दाहर पुत्र चामुण्डराय ने अपने साथियों सहित मारा जाकर शिव की माला में वृद्धि कर दी किन्तु उसने पीरोजखां के तेजस्वी पुत्र मियाँ मंसूर रुहिल्ला को भी उसके साथियों सहित बहिश्त में भेज दिया।

भिरि भारथ दाहिम्म, छुट्टि रन त्रीय प्रकार।
मात पिता अरु स्वामि, वाच मन क्रम्म सुधार॥
वेद मग्ग उथ्थपि, मग्ग थप्पे नर धार।
जोग मग्ग लभ्भैत, क्रम्म नवखैं भरतार॥
आवृत्त जुद्ध गिरि जुरिग भर, भिरिग सूर सामत नर।
खग खित्त खगिग दोउ दीस वर, चढ़ि मानव विप्पहर॥३००॥

शब्दार्थ:—मारथ = युद्ध। छुट्टिरन=रण से उऋण होगया। वाच=वचन। उथ्थापि=बढकर। धार = धारा, तलवार, खड्ग। क्म्म = कर्म। नक्खै=नष्ट नहीं होते। भरतार=भर्ता, सृष्टि का पोषक, विष्णु, ईश्वर। आवृत्त=लगातार युद्ध करते हुए। गिरि=गिर गया, धराशायी होगया। छुरिग=छेड़ा। भिरिग=भिड़ गया। खित्त=क्षत। खगिग=कटगये चढ्ढि=चढा, उठा। मतिवर= भास्कर, श्रेष्ठ प्रभावाला।

अर्थः—युद्ध में मृत्यु प्राप्त कर चामुण्डराय दाहिमा अपने माता पिता और स्वामी के ऋण से उऋण होगया। उसने मन, क्रम और वचन का पालन किया। वेद के मार्ग से भी वढ़कर मोक्ष के लिए खड्ग मार्ग को अति सुलभ सिद्ध कर दिया, क्यं कि वेद-कथित योग मार्ग द्वारा न तो ईश्वर से शीघ्र साक्षात्कार ही हो पाता है और न अपने किये हुए कर्मों का नाश ही कर सकता है (खड्ग द्वारा मारा गया वीर शीघ्र ही मोक्ष को प्राप्त कर लेता है और अपने कर्मों से छुटकारा पा जाता है)। वह वीर (चामुंड) युद्ध करते २ अंत में धराशायी होगया, फिर भी खड़ा होकर ऊसने युद्ध छेड़ दिया आर अच्छे २ बहादुर यौद्धाओं से भिड गया। उस समय दोनों दीन के कितने ही वीर खड्ग द्वारा क्षत विक्षत हो नष्ट होगये। चामुंड के मारे जाने तक श्रेष्ठ तेज धारी सूर्य ने ऊपर उठकर मध्यान्ह का समय कर दिया।

दोहा

उन जित्ते जित्ते तुरक उन भज्जे भज्जाइ।
उररि सेन पम्मार परि, सेत छत्र नेताइ ॥२०१॥

शब्दार्थ:—उन=उनके। जित्ते=जीवित रहने पर। जित्ते=विजय। भज्जे=भग्न होने पर, मारे जाने पर। भज्जाइ=नाश होने की संभावना। नेताइ=नेता, मुखिया।

अर्थ:—जिसके जीवित रहने पर ही मुसलमानों पर विजय संभव थी और जिसके नष्ट हो जाने पर हिन्दुओं के नाश हो जाने की संभावना थी। ऐसे उस श्वेत छत्र धारी वीर नेता जैत्र प्रमार की सेना बढ़ चली।

वर विग्गह समान, जैत रुध्धौ गज गोरिय।
दइ दुवाह पावार, वज्रपित वज्रह जोरिय॥
दंति अति आघात, तत करि मत भ्रमाइय।
कवल पीर ज्यौं कन्ह, दंति गावहि रुकि धाइय॥

प्रथिराज बीर उप्पर करन, सिंह समर सो रग भर ।
बर बिखम तेज घन छाह छल, हक्कार्‍यौ वर बीर वर ॥२०२॥

शब्दार्थः—विप्पह=दोनों सेनायें । रुध्धौ=रोंधा, घेरा । दुबाह=सूंड से हाथ मिलाया । जोग्गि=जोड़ा । वज्रपित=वज्रपात । वज्रह=बजरंग, हनुमान । दति अति=दांतों का अंत होगया । तत=तहां, उसी समय । मत=मतवाला । कवलपीर=कुवलिया पीड़ हाथी । दति=हाथी । गावहि=गावड़ी, ग्रीवा, गर्दन । उप्पर करन=सहायता करने को । सिंह समर=युद्ध में सिंह तुल्य । रग=विनोद, क्रीड़ । विखम=विषम । घन छाह-छल=छलकती हुई बादल का छाया, फैलती हुई बादल की छाया (के तुल्य हाथी) । हक्कार्‍यौ=हकाला, मारा, भगाया ।

अर्थः—जिसे दोनों सेनायें सम्मान की दृष्टि से देखती थी ऐसे उस वीर जैत्र प्रमार ने शाह के हाथी को जा घेरा और उसकी सूंड से अपना हाथ मिलाया। उस समय एक (हाथी) वज्रपात के समान और दूसरा (वीर जैत्र) वज्रङ्ग (हनुमान) के तुल्य दिखाई दिया। उस वीर जैत्र के आघात से हाथी के दांतो का अन्त होगया(टूट गये) । जिससे उस समय वह मस्तहाथी इस प्रकार चक्कर खाने लगा मानो कुवलिया पीड को रोक कर उसकी गर्दन पर कृष्ण के चढ बैठने पर वह चक्कर खाता हो। पृथ्वीराज की सहायता के लिए उस युद्ध मे वीर जैत्र, सिंह के समान क्रीडा करता हुआ, अपने तेज द्वारा बादलों की फैली हुई छाया के तुल्य उस हाथी को उस वीर ने मार भगाया।

परयौ जैत पावार, छत्र नीचै छिति पूरिय ।
दाहे मीर मसन्द, पति पखवलि परि तूरिय ॥
सहस बीस इक अन्न, सकल आसुर परि सत्थरि ।
हड्ड मस्स कद्दमसु, श्रोन सरह तरन करि ॥
किलकत जुग्गिन नचीं, रची रंभ अच्छरि गरी ।
टहकत डक्क सुर बीर हर, रजिय गगन जबुक री ॥२०३॥

शब्दार्थः—[illegible] नीचै=[illegible] के नीचे । छिति=पृथ्वी । दाहे=बादशाह गिरे । पति=पंक्ति । पखलि=पक्खरी, पाखरों वा, अश्वारोहियों की । तुरिय=जाति । अन्न=और । सत्थरि=फैल गये । षट्ठ वपु=अंगायें । [illegible]

अर्थः—पृथ्वी को पाटकर जैत्र प्रमार स छत्र (छत्र के तले) धराशायी हुआ। उसने मसनद धारी मीरों और काति धारी अश्वारोहियों की पक्ति का धराशायी किया। एक ही गौत्र के बीस सहस्र मुसलमानों से उसने पृथ्वी पाट दी। युद्ध-स्थल को हड्डियाँ, मांस, ग्रीवाओं, शोणित और गूदा आदि से भर दिया। उस समय किलकारी करता हुआ योगिनियों का समूह नृत्य करने लगा। अप्सरायें विमान सजाकर वीरों का वरण करने लगी। बावन ही वीर और रुद्र डह २ स्वर (अट्टहास) करते हुए कूदने लगे। आकाश धूलि से आच्छादित हो गया और गीदड़ युद्ध भूमि में प्रसन्न चित्त होकर विचरण करने लगे।

सजयि जूह साहाव, रौद्र वज्जी रिन संगिय।
परे पेखि पामार, पूरि असि छत्र उछगिय॥
यांता जन सा तप्पि, पेलि गज्ज जीत समौ अरि।
देखि दिष्ट प्रथिराज, कोपि तन ताप थरथ्थरि॥
हक्केव आप उप्पर करन, लरन आप जंपै अतुल।
चंप्यौ सु गज्ज रा-जित्त जुरि, ताहि सार खखुंदि खल॥३०४॥

शब्दार्थ—जूह=समूह। साहाव=शहाबुद्दीन। सगिय=स्रंगी (वाद्य विशेष)। पूरि असि=तलवार पूरदी, तलवार का आघात किया। उछगिय=उन्नत। यांता जन=याताजन, सामने आने वाले योद्धा। सा तप्पि=उन्हें सतप्तकर। पेलि=पेलना, धकेलना। थरथरि=कम्पायमान होने लगा। हक्केव अप्प=स्वय बढ़ा। उप्पर करन=सहायता करने को। लरन=लड़ना, युद्ध करना। जपै=कहा। अतुल=अतुल्य। चप्यौ=दबाया। रा-जित=जैत्रराय। जुरि=जुड़कर। ताहि=उसको। खखुंदि=क्षय कर (नाशकर) कुचलदिया। खल=दुष्ट, शत्रु गोरी।

अर्थः—जब शहाबुद्दीन ने समूह बाध कर रौद्र रस पूरित रण स्रगी बजाई तब सामने आने वाले शत्रुओं को संतप्त करते हुए जैत्र प्रमार ने शाह के आगे बढ़ते हुए हाथी से लड़ कर विजय प्राप्त की। उसने शाह के उन्नत छत्र पर खड्गाघात किया और वह धराशायी हुआ। यह देखकर पृथ्वीराज का शरीर क्रोध के मारे कांपने लगा। इस वीर (जैत्र) ने अतुल सग्राम किया है— यह कहते हुए उसे बचाने के लिये स्वयं आगे बढ़ा तथा जिस हाथी को जैत्र ने धर दबाया था, उसे नरेश्वर ने अपने शस्त्राघात द्वारा क्षय क (नष्ट कर) शत्रु गौरी को कुचल दिया।

दोहा

परयौ राव जैतह सु रन, पति अब्बू घन घाय।
सूर राय सोमेस सुअ, करिय आप सिर छाय ॥३०५॥

शब्दार्थः—घन घाय=बहुत से घावों से घायल होकर। छाय=छाया की, वस्त्र ढँका।

अर्थः—आबू राज वशज जैत्रराय बहुत से घावों से घायल होकर धराशायी हो गया। उसके मृत शरीर पर बहादुर सोमेश्वर के पुत्र ने अपने वस्त्र से छाया करदी (अर्थात् ढँक दिया)।

राजन अंचर छोरु करि, जैत प्रससन काज।
दिल्ली धर अग्गर इहै, जुमझ परयौ वर आज ॥३०६॥

शब्दार्थः—अचर=अचल, दुपट्टा। छोरु करि=छोड कर, ढक दिया। प्रससन=प्रशसा। अग्गर=अग्रगण्य।

अर्थः—राजा ने जैत्र के काय की प्रशसा करते हुए कहा-कि दिल्ली के भूभाग का अग्रगण्य योद्धा आज युद्ध करता हुआ धराशायी हो गया है। बाद में अपना दुपट्टा खोल कर उसे ढँक दिया।

गवरि हार उच्चिग अवनि, पुच्छिय दच्छ प्रबध।
समर सुपन सुपन कि समर आपु सुने "कविचद" ॥३०७॥

शब्दार्थः—गवरि = गौरी, पार्वती। उच्चिग=उठाया। पुच्छिय=पूछा। दच्छ=यत्त। सुपन=स्वप्न, चर्चा। सुपन=स्वप्नवत्। आपु=स्वय पदा होने वाले शिव।

अर्थः—जैत्र प्रमार के मस्तक को शिव की मुण्ड माला मे पिरोने के लिये पार्वती ने हाथ मे लिया। कविचन्द कहता है—उस समय स्वय शिव ने यत्त से पूछा, तुम प्रबध मय युद्ध की बात कहते हो वह स्वप्न की चर्चा है या वास्तव मे ऐसा युद्ध अब स्वप्नवत् है।

कवित्त

हस्ति पीत पक्खरयौ, पीत चावर गज गाहिय।
पीत टोप टट्टरिय, लोह हय चगव सनाहिय॥

सारि सिलह प्रज्जरिय, पीत बानावलि सोभित ।
राज राव परसंग, खित्ति झुम्मै परि यां भति ॥
तन सार धार घटि भार घट, अवर लक्ख वर पच सै ।
अनभंग वीर आइय नृपति, सीस नवाइय सत्त सै ॥३०८॥

शब्दार्थः—परक्खयो=सजाया। गजगाहिय=गजगाह, घोड़े हाथी आदि पर डाले जाने वाले चँवर। टट्टरिय=शरीर। लोह=लोहा। चक्ख=देखा गया। सनाहिय=कवच। प्रज्जरिय=प्रज्वलित यां भति=इस तरह। घटि=समाप्त हुआ। भार घट=बोझ हल्का हुआ। अवर=अन्य। लक्ख= देखे गये। सत्त सै=सात सौ।

अर्थः—जिसके हाथी के साज, चँवर, गजगाह, सिरस्त्राण घोड़ा, कवच, शस्त्र और बाणावलि आदि प्रज्वलित अग्नि के समान पीतवर्ण देखे गये। ऐसा वीर प्रसंगराय खीची रण-क्षेत्र में जूझ पड़ा। उस अभंग वीर ने अपने ७०० साथियों सहित सर्व प्रथम आकर राजा को सिर नँवाया। उसके द्वारा बाद में ५०० विपक्षी यौद्धा मरते हुए दिखाई दिये, जिससे पृथ्वी का बोझ भी हल्का होगया और उसका शरीर भी शस्त्र-धारा द्वारा समाप्त होगया।

दोहा

दुने मीर खीची प्रसंग, सानि अनीअन मंस ।
बाज खंड समुझि न परै, भयौ कीच पल अस ॥३०९॥

शब्दार्थः—दुने=दो मीर। सानि=मनगये, एक हो गये। अनीअन=अन्योन्य, परस्पर। मंस=मांस। बाज=घोड़े।

अर्थः—प्रसंगराय से युद्ध करने वाले दोनों मीर और वह स्वयं उनके घोड़ों सहित खंड-खंड हो एकाकार हो गये। जिससे उनके पृथक पृथक शरीरों का पता लगाना मुश्किल होगया और मांसादि के कारण वहाँ कीच मच गया।

पर्‌यौ राउ परसंग, खग्ग खींची पति खुत्तौ ।
घोर मौर गजगाह, भार पारथ ज्यौं जुत्तौ ॥
सैं हथ्थे सैं हथ्थि, गैंन गंध्रव किय गानह ।
वरण इच्छ धर मिच्छ, द्रोह श्रोनह किय पानह ॥
सभरिय राव संभरि धरा, सवन घाय संमुह लरिय ।
जिमि जिम सु जुझि धरणी परिय, तिमि तिमि इन्द्र मन टरिय ॥३१०॥

शब्दार्थ—खुत्तौ=क्षय हुआ। चोर=चेवर। मौर=सहरा। पात्थ=पार्थ, अर्जुन। जुत्तौ=जुत गया, ग्रहण किया। सैं हथ्थै=अपने हाथों से। सैं हथ्थि=सैंकड़ों को मार कर। गैन=गगन, आकाश। मिच्छ=म्लेच्छ, मुसलमान। द्रोह=द्रोही। श्रोनह=शोणित।

अर्थः—खीचियों का स्वामी प्रसगराय खड्ग द्वारा धराशायी हो सदा के लिए समाप्त हो गया। अप्सराओं के उस दुल्हे ने सेहरा बांध, चॅवर और गजगाह आदि सम्मानित चिन्हों के भार से लद कर महा भारत रूपी युद्ध का वहन करने के लिए अर्जुन के समान कंधा लगा दिया। उसने अपने हाथों से सैंकड़ों का संहार किया। जिसका गुणगान आकाश से गंधर्व करने लगे। अप्सराओं को वरण करने की इच्छा से उसने विद्रोही म्लेच्छों को धर पकड़ा और उनका रक्त पान कर लिया। जिसका आदि स्थान सांभर है, ऐसा वह संभरराज-वंशज गहरे घावों के लगने पर भी सामना करता हुआ धराशाई हुआ, त्योंही इन्द्रासन कांप उठा।

दुतिय दिवस संग्राम, धाम धवरिय दिसि उत्तर।
देवराज दौलत्ति-खान, जुट्टिय रण दुस्तर॥
दुवौ राइ स्वामित्त, मूह-मूहं भरि आवध।
सिर सिर सिर टुट्टंत, तंति वज्जिय सुरगा वध॥
कथ कमल केलि कमलापती, दुवॅग दक्खि दुस हथ्थ किय।
सुनि सुनि श्रवन जटधर जुगह, भुगति मगि नदिय रथिय॥३११॥

शब्दार्थः—धाम=स्थान, युद्ध भूमि। धवरिय=धवल हो गई, उज्ज्वल हो गई। स्वामित्त=स्वामी धर्म धारण करने वाले। मूह-मूह=एक दूसरे के सामने। आवध=आयुध, शस्त्र। सुरगा=स्वर्ग में। वध=मृत वीर। कथ=कथा, चर्चा। कमल केलि=मुण्ड क्रीड़ा। दुवॅग=दोनों की। दक्खि=कहा, पुकारा। दुस=दु:सह। जटधर=जटाधारी, शिव। जुगह=जागृत, सजग, सावधान। भुगति=भक्ति। मगि=मांगी। नदिय रथिय=शिव।

अर्थः—दूसरे दिन का युद्ध सूर्य के उदय होने के कारण जब रणस्थल धवल हो गया तब उत्तर की ओर से छिड़ा। उस दुस्तर युद्ध में देवराज बगरी और दौलतखान जूझने लगे वे दोनों स्वामी धर्म के धारक थे उन्होंने एक दूसरे के सामने शस्त्र-वर्षा की। जिससे असंख्य सिर टूट २ कर पड़ने लगे और स्वर्ग में उनकी मृत्यु के

यश गान का तत्री नाद होने लगा। उन वीरों के मुंड क्रीड़ा की चर्चा स्वयम् लक्ष्मी पति ने की। वे दोनों वीर भयकर प्रहार करते हुए नदीरथ शिव से एक मात्र भक्ति की याचना करने लगे। उन दोनों की पुकार सजगता पूर्वक जटाधर शिव ने सुनी।

परयौ झुभिज वग्गरिय, वरण झग्गरिय सुरंगिय।
सुरह लोक सिव लोक, लोक जारथ्थ कुरंगिय॥
वालप्पन जुव पनह, वुद्धि वड़पनह बढाइय।
समर राज प्रथिराज, वाज दस वेर चढाइय॥
दिव दिव सु देव जै जै करहि, पुह पजुरि अच्छत धरणी।
तजि लोक लोक लोकन सघन, बस्यौ देव मडलि तरणि॥३१२॥

शब्दार्थः—झुम्भिझ=जूझकर, युद्ध कर। झगरिय=लड़ने लगीं। सुरंगिय=अप्सरायें जारथ्थ=जिसके लिये। कुरंगिय=असुदर, अप्रसन्न। जुव पनह=युवावस्था। वड़ाइय=प्रशंसा। समर=युद्ध में। वाज=घोड़ा। दिव=दिव्य। दिव=स्वर्ग। पुह पजुरि=पुष्पाजलि। अच्छत=अक्षत। सघन=बहुत से। मंडल-तरणि=सूर्य मडलि।

अर्थः—देवराय वग्गरी को धराशायी होता देख अप्सरायें उसको वरण करने के लिये झगड़ने लगी। स्वर्ग और शिवलोक एवं अन्य लोक भी उसको नापसन्द थे। उस वीर की बचपन से लेकर युवावस्था तक बुद्धि और बड़पन की प्रशंसा बनी हुई थी। स्वयं राजा पृथ्वीराज ने युद्धों के समय १० बार उसको सम्मान पूर्वक घोड़े पर चढ़ाया था। देवलोक के निवासी दिव्य-देवता उसको धराशाई होता देखकर जय जय कार करके आकाश से अक्षतों सहित पुष्प वर्षा करने लगे। वह देव अन्य लोकों को त्याग सूर्य-मण्डल मे जा बसा।

परत स्यंघ आचिज्ज, विरद साईं भुज पजर।
सुनहि नकद्दौ जीह, ननरु रख्खयौ मुख खज्जर॥
तेक तार कुंडलिय, रास मडलौ उलल्लिय।
दल दल मुग्ग मुख चदु, इदु वर सरवर फुल्लिय॥
घन घाय अघाय निघाय अरि, सति सुभाय परतग्य करि।
दल होत जोति जोतिहि तिनहि, मिलत सूर उिख्यौ सु हरि॥३१३॥

शब्दार्थ:—यघ=सिंह प्रमार। आचिज्ज=आश्चर्य। तकदूदो=तगड़ा, बलवान जीह=जीव, आत्मा। नतरु=नहीं तरने जैसा, दुस्तर। मुख=प्रमुख। खंजर=तलवार या छुरा। तेक=तेग, तलवार। तार=तारने वाली। कुण्डलिय=कुण्डलाकृति, घेरा। रास-मंडली=युद्ध क्रीडा। उल्ललिय=उछलती। दल मुख= सेना के मुखिया। चंद=कलंकित चन्द्रमा। इन्दुबर=श्रेष्ठ चंद्रमा। फुल्लिय=फुला दिया, उठा दिया, उफान पर ले आया। सति=सत्य। परतग्य=प्रतिज्ञा। होत=होमता हुआ। सूर=वीर।

अर्थ:—जो स्वामी की भुजा के समान कहा जाता था, ऐसे सिंह प्रमार को धराशायी होता देख सबको आश्चर्य हुआ। जिस तरह उसकी आत्मा बलवान सुनी जाती थी, उसी तरह उसने अपने खास खड्ग को भी दुस्तर रक्खा। किन्तु वह खड्ग शत्रुओं के घेरे को ताड़ना देता हुआ भी तार (मोक्ष) देता और युद्ध-क्रीडा में उछलता हुआ दिखाई देता था। उस वीर ने विपक्षियों की सेना और सेनापतियों को चन्द्रवत कलंकित कर दिया। स्वयं चन्द्र के समान बनकर उसने स्वपक्षीय सैन्य-शक्ति को समुद्र की तरह उफान पर ला दिया। विशेष वार कर उसने शत्रुओं को छका दिया। और सच्चे भाव से प्रतिज्ञा का पालन किया। वह वीर विपक्षी दल की ज्योति को होमते हुए अपनी ज्योति को हरि की ज्योति में मिलाता हुआ दिखाई दिया। इस तरह ज्योति में समाता हुआ उसे केवल सूर्य ही देख सका।

उत मसंद दह सत्त, इत्त सामंत अट्ट परि।
घडिय बीह दिन वित्त, वहिय सलिता श्रोनह भरि॥
उभय ईस हुव विभर, विरस हालाहलु वित्तौ।
थक्के अग समेत, करत जुद्धह तनु रित्तौ।
दिख्यौ सु राज रण सीस पर, करत जुद्ध हकत सुभर।
गौर्नादय मीर नीरह समन, गहन राज दौरे दुअर॥२१४॥

शब्दार्थ:—मसद=मसनद धारी। दह-सत=दस और सात, सत्रह। घडिय बीह=दो घड़ी। वित्त= बीता। सलिता=सरिता। उभय ईस=दोनों ओर के स्वामी। विभर=उभर, उमड़ पड़े। विरस=नीरसता, क्रोध। हालाहलु=हलाहल। वित्तौ=बीती, छा गई। तनु तन, शरीर। रित्तौ=रत, लीन। हकत= भगाता हुआ, विचलित करता हुआ। दुअर=दुभर, भयानक।

अर्थ:—दो घड़ी दिन व्यतित होने पर उधर के सतरह मसनदधारी वीर और इधर के सात सामन्त धराशाई हुए। जिससे शोणित की सरिता पूर्ण रूप से बहने लगी।

उस समय दोनों दलों के स्वामी एक दूसरे पर उमड़ पड़े। जिससे रणक्षेत्र में क्रोध रूपी हलाहल पूर्ण रूप से छा गया। यद्यपि युद्ध करते करते उनके प्रत्येक अग थक गये थे, फिर भी युद्ध मे अनुरक्त थे। इस प्रकार युद्धस्थल में राजा को युद्ध करता हुआ और यौद्धाओं को विचलित करता हुआ देखकर मोनदीन और सम्मन मीर जो भयंकर वीर थे, वे पृथ्वीराज को पकड़ने के लिये दौडे।

उए सेन आलंम, आइ आलम सपन्नउ।
ए हिंदू आलंम, आइ जदु पर हहकनउ॥
ईये उए अकुरिय, घरिय वज्जिय झंझर झर।
नरिय नरिय विच्छुरिय, हरिय जंमन आवन धर॥
रण राम त्रिजोधन भर भिरण, वालमीक व्यासह कहिय।
अस हुव न हौं हिंदू तुरक, मुकति मग्ग वित्तिय घरिय॥३१५॥

शब्दार्थ:—उए=उमड पड़ी। आलम=बादशाह की। आलम=बादशाह। संपन्नउ=बढने पर। जदु पर=जिद्द पर, हठ पूर्वक। हहकनउ=हु कार करने लगी। इये उए=इधर और उधर अर्थात् दोनो पक्षों में। अकुरिय=अकुरित होगया। घरिय=घड़ियां। वज्जिय=वज्र। झझर=झनझनाहट। झर=झड़ी (शस्त्र झडी)। नरिय नरिय=मानव, मानव। विच्छुरिय=बिछुडने लगे। हरिय=नष्ट, समाप्त होकर। न=नहीं। जमन=जन्म। आस=आशा, इच्छा। त्रिजोधन=दुर्योधन। अस=ऐसे। हुव=हुए।

अर्थ:—साथ २ शाह भी बढा, जिससे विपक्षी सेना की भीड़ भी बढ चली। इधर से हिन्दुओं की भीड़ भी हठ पूर्वक हुंकार करने लगी। दोनों पक्ष मे वीर रस अकुरित होगया और शस्त्रों की झनझनाहट बीतने वाली वज्र घड़ियों का ज्ञान कराने लगी। मानव, मानव से बिछुडने लगे। पृथ्वी पर पुन जन्म लेकर आना उन्होंने सदा के लिए समाप्त कर दिया। रामचन्द्र, दुर्योधन और उनके वीरों की लड़ाई का वर्णन यद्यपि वाल्मिकी और व्यास ने किया है; किन्तु ये वीर भी वीरता में कम नहीं हैं। इन हिन्दू और तुरुष्कों के समान वीर न तो हुए हैं और न भविष्य मे होंगे ही। इनकी उत्तम घड़िया मुक्ति मार्ग पर वहन करती हुई ही बीती है।

दोहा

आवत मीर अभीर द्वै, विन हय गहन सु राज ।
दिक्खि लुहानौ दौरि परि, ग्रहिय समर गुर गाज ॥३१६॥

शब्दार्थः—अभीर=निर्भय । ग्रहिय=ग्रहण की । गुर=भारी, भयानक । गाज=गर्जना ।

अर्थः—उस समय इन दोनों निर्भय वीरों (मोनदीन और समन) को पैदल ही राजा को पकड़ने के लिये दौडते हुए देखकर वीर लोहना युद्ध भूमि में भारी गर्जना करता हुआ उनके सामने झपटा और उन्हें ग्रस (पकड) लिया ।

कवित्त

पर्यौ होइ आजान-वाहु, त्रय खंड धरणी ।
जय जय जय जपन्त, मुक्ख सव सेन परणी ॥
धणि धणि जंपि सुरेस, धनी नारद उच्चार ।
करिग कित्ति सव देव, वुट्ठि प्रथु पहुप अपार ॥
कोतिग्ग सूर थक्यौ सु रह, भइय टगट्टगि भुव भरणि ।
परसंस करै अच्छरि सयल, गयौ भेदि मडल तरणि ॥३१७॥

शब्दार्थः—परणी=पलायन हो गई । धणि धणि=धन्य-धन्य । कित्ति=कीर्ति । वुट्ठि=बरसाये । प्रथु=पृथ्वीराज । कोतिग्ग=कौतूहल, युद्धक्रीड़ा । सूर=सूर्य । रह=रथ । भरणि=सुभट । परसंस=प्रशंसा । सयल=सकल ।

अर्थः—किन्तु उस वीर आजान बाहु के शरीर के तीन टुकडे होगये और जमीन पर गिर पडे । उसके आतंक से प्रभावित होती हुई समस्त सेना जय २ कार करती हुई भाग गई । इन्द्र और नारद ने उस वीर के लिये धन्य २ उच्चारण किया और सब देवता उसका कीर्तिगान करने लगे तथा स्वयं पृथ्वीराज ने उस पर पुष्प वृष्टि की। उस बहादुर के युद्ध कौतुक को देखता हुआ रथारूढ सूर्य भी थक गया और युद्धस्थल मे यौद्धागण एक दृष्टि से (टक्टकी लगाये) उसकी ओर देखने लगे । समस्त अप्सरायें उसकी प्रशंसा करने लगी और वह वीर देखते २ उसी समय सूर्य मंडल को पार कर गया ।

स्वामि चह्इ निज अंत, जानि कोप्यौ कमवज्ज ।
खग अरेह वरदेह, जानि कुल अज्जन लज्ज ॥

परै सु घन सामंत, अग्ग देखे सुरतानं ।
सज्जि हयग्गय सूर, जूह वर वीर कनानं ॥
जुध करत राज दिख्यौ दुहर, आप मंत्र भैरव जाप्यौ ।
उम्भारि खग्ग ओडन उससि, करि किलक्क संमुह धप्यौ ॥३१८॥

शब्दार्थः—पङ्ग=प्रचंड । अरेह=अड़पड़ा । वरदेह=विरुद धारी । अज्जन=आरजराय, निड्डुरराय का पुत्र । घन=धन्य । हयग्गय=हाथी घोड़े । जूह=जूथ, समूह । दुहर=दुस्तर, भयानक । उम्भारि=उठाकर । ओडन=आड़ । उससि=उक्साकर, तोड़ कर । धप्यौ=झपटा ।

अर्थः—अपने प्रचण्ड स्वामी का और अपना अन्त देखकर कमधज वीर (निड्डुरराय का पुत्र) आरजराय को क्रोध आ गया । उस विरुद धारी ने अपने कुल की लज्जा का विचार कर खड्ग चलाना प्रारम्भ किया । उस सामन्त को धन्य है जो शाह को सामने देखते ही उस ओर दौड़ पड़ा, लेकिन शाह के आस पास हाथी घोड़े और बहादुरों का समूह डटा हुआ था । उसी स्थान पर पृथ्वीराज ने उस भयानक वीर को युद्ध करते हुए देखा । उस वीर ने अपने इष्ट भैरव का नाम जपकर तलवार उठाई और शाह के आसपास जो हाथी, घोड़े और बहादुरों की आड़ थी उसे तोड़कर किलकारी करता हुआ सामने आ झपटा ।

दोहा

मिले खान पट्ठान सब, ग्रहै खंचि लिय साहि ।
भयौ भ्रम्म विभ्रम्म जुध, धनि धनि जंपिय ताहि ॥३१९॥

शब्दार्थः—ग्रहै=पकड़ कर । खंचि लिया=खींच लिया । साहि=बादशाह को । भ्रम्म=श्रमित । विभ्रम्म=भ्रमित । जंपिय =कहने लगे । ताहि=उस वीर के लिये ।

अर्थः—इस प्रकार उस वीर को झपटता हुआ देखकर समस्त मुस्लिम वीरों ने मिलकर शाह को बचाने के लिए हाथ पकड़ कर वहाँ से हटा दिया और सब सैनिक युद्ध में श्रमित एवं भ्रमित होकर उस वीर के लिए धन्य २ उच्चारण करने लगे ।

कवित्त

महनसीह वल्लार, नाम रानौ रोहिल्लौ ।
दल मोमन सुरतानु, अग्ग अग्गै सु अकिल्लौ ॥

ताई धर झल्लरी, सार हिंदू सिर वुट्ठौ ।
पग पच्छान परत, पग्ग फेरे मुख उट्ठौ ॥
खग छंन भार तेतीस सौ, रुधि भुक्खौ झल्लोरियो ।
कट्ठी कुठार कलहंतरह, टकी ढाल ढंढोरियौ ॥३२०॥

शब्दार्थः—सोसन=शोषण के लिये। अग्ग=आगे। अग्गै=अग्रणीय। अक्किल्लौ=अकेला। ताई=तेज। झल्लरी=झालर। सार=लोहा। पच्छान=पीछे नहीं। परत=देता। मुख उट्ठै=जिधर वह सामना करता, जिधर उसका मुख हो जता। छन=क्षीण। रुधि=रुधिर। झल्लोरियो=झकझोर दिया। कट्ठी=काठी वीर। कलहतरह=कलहकर्ता। टकी ढाल=बाण ऐंचने वाले यौद्धाओं को। ढंढोरियौ=टटोल लिया।

अर्थः—जिस क्रोध धारी वीर का महन सिंह वल्लार नाम और राणा पद था वह शाही दल को शोषने (दलने) के लिये अकेला ही प्रमुख यौद्धाओं से आगे हुआ। उस हिन्दू वीर ने विपक्षियों के सिर पर लोहा इस तरह बरसाया मानों तेज झालरें बज रही हों। वह युद्ध मे पीछे पैर नहीं देता था। उसका मुख जिधर हो जाता था, उधर ही विपक्षी पीछे पैर देते हुए दिखाई देते थे। उसका खड्ग भार-स्वरूपी तैंतीस विपक्षियों को युद्ध मे कम करने वाला था। वह खड्ग रुधिर का भूखा था अत उसे खून में झकझोर दिया। उस कुठार तुल्य कलहकर्ता काठी-वीर ने बाण ऐंचने वाले यौद्धाओं की जांच करली।

मारंग मारंग रूप, मिले दस खान महामद ।
यौं गज्ज्यौ गुर रन्न, जत मुनि हक्क गरुअ सद ॥
खग बबरि उच्छारि, डारि हथ्थर पथ्थार ।
मार श्रोन भभरिय, नख्ख प्राक्रम सथ्थार ॥
ताजीय हक्क जगदीस दिय, सुव समृद्धि सभर वनिय ।
रविलोक लोक मंडल गयौ, वरकि हम्म रुक्कह मनिय ॥३२१॥

शब्दार्थः—मारंग=मारङ्गदेव, सारङ्गराव। सारंग=सुन्दर। गुर=भारी, गहरी। रन्न=युद्ध में। जत=जाते हुए, आश्रम को छोड़ते हुए। बबरि=बवाल, भयानक। उच्छारि=उछालकर, उठाकर, चलाकर। डारि=धराशायी कर दिये। हथ्थर=कर प्रहार द्वारा। पथ्थार=फैलादिये। भभरिय=

झनझनाने लगा। नख्ख=समीप। सथ्थारं=फैलादिया। ताजीय हक=ताजीजातिके घोडे को वढाया। जगदीस=जगतपति, भूपति। धरकि=कंपित होकर। हस=सूर्य। एकह मनिय=अपने समान ही स्थान दिया।

अर्थः—इधर से सुन्दर स्वरूप-धारी सारङ्गराय खींची वढ़ा और उधर से दस मतवाले मुस्लिम यौद्धा आगे वढे। उस समय वीर सारङ्ग ने युद्ध स्थल में इस प्रकार भारी गर्जना की जैसे आश्रम छोड़कर जाता हुआ सिद्ध ऊर्ध्व घोष करता है। उसने अपनी भयानक तलवार उठाकर प्रहार करके शत्रुओं को धराशायी करदिया। रक्त वर्षा के साथ ही उसका लोहा झनझनाने लगा और उसने अपना पराक्रम समीपवर्ती शत्रुओं पर फैलादिया। जिस भूपति संभरेश्वर ने उसे सब प्रकार की सुख-समृद्धि दी थी उसके लिये उसने अपने ताजि जाती के घोडे को वढाया। अन्त में वह सूर्य लोक में चलागया। उस भयानक वीर को देखकर सूर्य ने भी भयभीत हो, उसे अपने ही समान स्थान दिया।

परत भोमि सारंग, गुरज वज्जिय सिर गोरिय।
वज्ज्र वीर कर वज्ज्र, वज्ज्र अग्गै वर जोरिय॥
सस्त्र घात आघात, कट्टि कुट्टर ग्रहि तारं।
पब्बै पति तव विट्टि, मेछ लगि असिवर भार॥
परिहार परिग्गह सामि सम, फेरि राज पारस परिय।
चहुआन वीर समुह असुर, गह गह गोरी उच्चरिय॥३२०॥

शब्दार्थः—गुरज=गदायें। वज्जिय=वजने लगी, पड़ने लगी। अग्गे=अग्रणीय। जोरिय=जोडी, साथी। कट्टि=काटकर। कुट्ठर=कूटा कर दिया, चूर २ कर दिया। पब्बैपति=पर्वतीय भूमाग का स्वामी रावल समर केशरी। परिहार=प्रतिहार। परिग्गह=परिवार, कुटुम्ब। सामि=स्वामि, पृथ्वीराज। सम=समक्ष, आगे। पारस=घेरा। असुर=मुसलमान। गह २=पकडो २।

अर्थः—सारंगराय के धराशायी होने पर पुनः गौरी सेना की गदायें मस्तक पर पड़ने लगीं तब पर्वतीय प्रदेश का स्वामी रावल समर केशरी मुसलमानों को घेर कर खड्ग द्वारा काट २ कर फैंकने लगा उस वज्रकाय वीर के कर-प्रहार वज्र तुल्य ही थे। उसने शस्त्र के भयानक आघातों द्वारा काट कर शत्रुओं को चूर २ कर

दिया और उन्हें हमेशॉ के लिये स्वर्ग मे बसा दिया । उसी समय चाहुवान नरेश्वर पर मुसलमानों द्वारा फिर से घेरा डाला गया। गौरीशाह ने उसे पकडने के लिये आवाज दी। उस समय प्रतिहार वीर अपने कुटुम्बियों सहित स्वामी (पृथ्वीराज) के आगे होकर लड़ने लगा।

परत खान तत्तार, परत मारूश भग्गन ।
हय कधह दिय पाइ, उतरि बिय कंन सु मग्गन ॥
उच्च गात उर हाथ, तेग लंबिय उब्भारिय ।
धात खभ त्रिध्घात, जानि झल्लरि झल्लारिय ॥
वर करिय टुट्टि फुट्यौ सु सिर, रुधिर धार समुह ढरिय ।
सुब्भिहि सुभट्ट ह्यंदुव तुरिक, जस जुग्गिनि जय जय करिय ॥३३२॥

शब्दार्थः—मग्गन=मग्न होने की इच्छा से, मरने की इच्छा से । पाइ =पर । बिय कंन=दोनों कानों के । मग्गन=बीच में । त्रिध्घात=आघात । झल्लरि=झालर । झल्लारिय=बजी । सुब्भिहि= सुशोभित । तुरिक=तुरुष्क, मुस्लिम वीर ।

अर्थः—उधर से तत्तार खा और इधर से महनग मारू दोनों मरने और धराशायी होने की इच्छा से घोडे के कधे पर पैर देकर घोडे के कानो के बीच मे होते हुए आगे कूदे, जिनका शरीर, हृदय और हाथ सब ऊँचे थे, ऐसे उन वीरा ने लम्बी तलवारें उठाकर वार किया, जिससे वे खड्ग ऐसी ध्वनि करने लगे मानो धातु के खभे पर चोट दी हो या झालरें बज रही हों। उनके वल-करने पर एक दूसरे का सिर टूट फूट गया और रुधिर की धारा सामने ढुलक पडी। इस प्रकार वे हिन्दू और मुसलमान योद्धा युद्ध स्थल में सुशोभित हुए। योगिनियें जय जयकार करती हुई उनका यशगान करने लगीं।

इक नव सहस नरेस, इक्क ख्वार ततारह ।
इक गोरी कुल सबल, इक्क मेडुवर परिहारह ॥
दुवौ सेन पति सूर, पर हकार हबाइय ।
इक सभरिय सहाइ, इक्क खुरसान सहाइय ॥
मद मोव छुट्टि जुट्टिय विमिर, दुमर तेक लग्गिय सुभर ।
अइ उदर त्रुत्ति लज्जिय कहर, दुव नरधद फुट्टिय सु सिर ॥ ३३४ ॥

शब्दार्थः—पूर=फैलगई। हका=हुकार। हवाइय=हवा में। मदमोख=हाथी। त्रिसिर=दोनों के मस्तक। दुमर=दुस्तर। कहर=विघ्न। दुव=दोनों। नरयद=नरशिरोमणि।

अर्थः—इन दोनों वीरों मे से, एक नव सहस्र गावों का स्वामी था और उधर कंधार वाला तत्तार था। एक मण्डोवर के प्रतिहार-कुल का था और दूसरा सवल गौरी कुल का था। दोनों अपनी अपनी सेना के सेनापति थे। दोनों वीरों की हुँकार हवा मे फैल जाने वाली थी। एक संभरी नरेश का और दूसरा खुरासानियों का सहायक था। वे दोनों वीर इस प्रकार सिर से सिर टकरा कर जुटे जैसे कपोलों से मद बरसाते हुए मतवाले हाथी छूट कर भिडे हों। उनकी दुस्तर तलवार एक दूसरे पर पड़ी। इस प्रकार दोनों नर शिरोमणियों के मस्तक फूट गये और उस विघ्न को देखकर, जिनकी उदर वृत्ति है, वे लज्जित हो गये।

जिहि मुख कर कपूर, सुवर तंबोल प्रगासिय।
जिहि मुख म्रिगमद वद, सिद्ध किश्नागर वासिय॥
जिहि मुख रंम्य हरंम्य, अधर रस धरणि पाराइन।
जिहि मुख हरि हरि हलि भनंत, मुक्ति लभ्भइ ता राइन॥
सुमुख परखि परिहार परि, खग ततार समुह मिलिय।
सोइ स्वामि काज हुंदुव तुरक, सोइ मुख खड विहड किय॥ ३२५॥

शब्दार्थः—सुवर=श्रेष्ठ। तंबोल=ताम्बूल। प्रगासिय=शोभा पाते थे। म्रिगमद=कस्तूरी। वद=कहा जाता है। किश्नागर=अफीम। वासिय=सुगन्ध थी। रम्य=सुन्दर। हरम्य=बेगमें, हरमा। पाराइन=पारायण, वार वार। हलि=हे अलि, या अलि। भनत=जपते थे। मुत्ति=मुक्ति, मोक्ष। लम्भइ=इच्छा करते। सुमुख=एक दूसरे के। परखि=परखकर, देखकर। परिहार=प्रतिहार। मिलिय=भिड़े। विहड=विखण्ड।

अर्थः जिन मुखों मे कपूर मिश्रित श्रेष्ठ ताम्बूल शोभा पाते थे, जिनमे कहा जाता है कि मृगमद (कस्तूरी) और कसूम्बे (अफीम) की सुवास थी जो सुन्दर रमणियों और सुन्दर बेगमों के अधर-रस का वार वार रसास्वादन करते थे। जो हरिहरि और अली का भजन कर मोक्ष की इच्छा करते थे। ऐसे

एक दूसरे के मुखों को देखकर प्रतिहार और विपक्षी तत्तार ने तलवारों द्वारा सामना किया। उन हिन्दू और तुरुष्क वीरों ने अपने स्वामी के कार्य के लिये ऐसे सुन्दर मुखों को खण्ड विखण्ड कर दिये।

खूव खान आखूव, खूव मारू महनंसिय।
खूव खान तत्तार, जेन सध्यौ रण गंसिय॥
खूव धर्म स्वामित्त, खूव सिर तेक प्रहारिय।
नाहरराइ नरयंद परिय पक्खर परिहारिय॥
अदिहार ह्य दु साही सु दिन, वह झोरी वह खेत मुव।
ढालंक नेज नीसान ढुरि, सूर सेन मडी सु भुव॥३२६॥

शब्दार्थ:—खूव=विशेषता। गसिय=गुथ कर। अदिहार=बुरेदिन। साही=बादशाह के। सुदिन=श्रेष्ठ दिन। झोरी=झोली। खेत=रण क्षेत्र। मुव=मृत्यु को प्राप्त हुआ। ढालक=ढलकाती हुई। मंडी सु भुव=पृथ्वीपर पट गई, धराशायी हो गई।

अर्थ:—आकूब खा, तत्तार खां और मारू महन सिंह की विशेषता है कि वे युद्ध में भली प्रकार से लड़ते हुए एक दूसरे से बथ गुथ हो गये और उनके स्वामी धर्म के पालन में भी विशेषता है। उन्होंने एक दूसरे के सिर पर खूब खड्ग प्रहार किया। अंत मे नाहरराय का वंशज अश्वारोही वीर प्रतिहार धराशायी हुआ, क्योंकि हिन्दुओं के बुरे और बादशाह के श्रेष्ठ दिन थे इसी से ऐसा हुआ। मुस्लिमवीर (आकूब और तत्तार) झोली मे उठाये गये और वह हिन्दू वीर (महनसी) रण क्षेत्र मे मृत्यु को प्राप्त हुआ। उस वीर के साथ ही नेजे और निशान ढलकाती हुई विपक्षी सेना भी धराशायी हो गई।

दोहा

कटि मडल सह सेन वर, उभै परिग्गह राज।
गई आस गौरी गहन, गहन मोह गह आज॥३२७॥

शब्दार्थ:—मडल=समूह। उभै=दोनो ओर के। परिग्गह=कुटुम्बी, पास वाले। गहन=निन। गह=गृह।

अर्थः—मदनसिंह के मारे जाने तक शाही सैन्य समूह भी बहुत सा कट गया और दोनों ओर के अनेक कुटुम्बी एवं पास रहने वाले मारे गये। जिससे पृथ्वीराज को पकड़ने की आशा गौरीशाह को नहीं रही और उसे अपने ग्रह-विघ्न की चिन्ता लग गई।

कवित्त

उभै बंध परिहार, सेन दुहु मग्ग समाही।
दल घट्यौ प्रथिराज, बल न घट्यौ बल घाई॥
वार वेर चहुआन, साहि मुख चढि गज चड्ढी।
वज्र पट्ट तिन छीन, आय ब्रत्तर अँग वड्ढी॥
फिरि वाम मग्ग उभौ त्रपति, है हक्कै चल्लै नहीं।
मध्यान कत कौ नीर ज्यौं, कछु अग्गा भजै जही॥३२८॥

शब्दार्थः—दुहु मग्ग=दोनों ओर से। समाही=घेर ली। बल घाई=बल पूर्वक आघात करने लगा। वार-वेर=सात वार। मुख चढि=मुख पर चढा, सामना किया। गज-चड्ढी=हाथी पर चढे हुए के। वज्र पट्ट=वज्रमणि जटित तख्त। ब्रत्तर=व्रत, प्रतिज्ञा। है हक्कै=घोड़े को बढाता रहा। चल्लै नहीं=नहीं हटा। मध्यान कत=मध्यान्ह का तेज धारी सूर्य। अग्गा=आगिया, जुगनू। भजै=नष्ट कर सकता। जहीं=उसे।

अर्थः—मृत वीर मदनसिंह प्रतिहार के दो भ्राताओं ने भी विपक्षी सेना को दोनों ओर से घेर लिया। यद्यपि पृथ्वीराज की सेना कम हो गई थी, फिर भी उसका बल नष्ट नहीं हुआ था। वह बल पूर्वक वार करने लगा। सात वार चाहुआन नरेश ने हाथी पर चढे हुए शाह का सामना किया और उसने वज्रमणि जटित तख्त को छीन लिया। उस वीर पृथ्वीराज के अंग में प्रतिज्ञा पालन की लालसा बढ़ती ही गई। शाही सेना के वाम पार्श्व पर वह अड कर खडा होगया। अपना घोड़ा बढाता हुआ वह वहा से नहीं हटा। उस समय सेना द्वारा घिरे हुए पृथ्वीराज की यह हालत थी जैसे मध्याह्न समय का प्रखर तेजधारी सूर्य, जलान्तर (बादल मे) डूब जाय, फिर भी जुगनू उसका क्य कर सकता है?

दोहा

खट अंसिय निसि खट घरिय, भिरिय जु भुंमि भयान ।
पल चर चर वर विधु विनह, मुरत भूमि सुलतान ।।३२६।।

शब्दार्थः—खट असिय निसि=रात्रि होने में षष्ठ भाग दिन शेष था। भयान=भयानक। विधु-विनह=चन्द्रोदय नहीं होने पर। मुरत=मुड़ने लगा, किनारा काटने लगा। भूमि=युद्ध भूमि से।

अर्थः—जब रात्रि होने मे दिन का छठा भाग शेष रहा उस समय छ घड़ी तक युद्धस्थल में भयानक रूप से महनसिंह प्रतिहार भिडता रहा। यद्यपि श्रेष्ठ चन्द्रोदय उस समय नहीं हुआ था फिर भी आमिष भुक्ता गिद्धादि रणाङ्गण मे विचरण कर रहे थे उसी समय उस वीर के आघातों से घबरा कर स्वयम् शाह युद्ध भूमि से किनारा काटने लगा।

तुम वय उद्दिम मार मन, उन रस रस नन दिट्ठ ।
दस दस रंध विरंध कथ, सुनहु सुनावन इष्ट ।।३३०।।

शब्दार्थः—उद्दिम=उद्यम, प्रयत्न। मार मन=मन को मारने का। उन=उसने। रस=विनोद। रस=सरसता, प्रेम। नन=नहीं। दिट्ठ=देखा। दस=दसों दिशायें। दसरंध=दसों इन्द्रियाँ। विरंध=रोके रक्खा। कथ=कथा। इष्ट=इच्छा।

अर्थः—यक्ष शिव से, कहने लगा—हे शिव! आपका उद्यम सर्वदा मनको मारने का रहा है। इसी प्रकार आपके उस दीवान (रावल समर-केशरी) ने भी सरसता (विलास) की ओर कभी नहीं देखा। उसने दसों इन्द्रियों को रोक रक्खा उसी प्रकार दसों दिशाओं (के शत्रुओं) को भी रोक रक्खा था। उसकी युद्ध कथा सुनने की आप इच्छा करते हैं तो मैं सुनाता हूँ।

कवित्त

एव देव सन्यास, सनध तारुणि भ्रम चारिय ।
इन्द्रिय दल दल मलिय, पुरिख परचर निज नारिय ।।
एक सचल छत्रिय सु धर्म, धर्मत्त स्वामि सुभ ।
गुन गो ग्रह ग्रह धरणि, वीर वद्दिय सु वाद उभ ।।

मंडलिय मरद मेवार पहु, मिलि प्रधान पुच्छिय प्रसन।
रिखि कहिय सहिय सु म्रत सकल, सु विधि वेद विंदिय सु सुन ॥३३१॥

शब्दार्थः—एव=समान। देव=महिदेव, द्विज। सनध=सावधान। तारुणि=तरुणी, स्त्रियें। ब्रमचारिय=ब्रह्मचारी। इन्द्रिय दल=इन्द्रिय समूह। पुरिख-परचर=प्रचुर पुरूषार्थ, काम शक्ति। गो=इन्द्रियें। ग्रह=काबूमें, वश में। उभ=खड़ा होकर, डट कर। पहु=राजा। प्रसन=प्रश्न। रिखि=ऋषिकेश द्विज। सुम्रत=वह मरते समय। सुविधि=श्रेष्ठविधान। विंदिय=वन्दनीय।

अर्थः—मेवाड़ेश्वर की ओर से सर्व प्रथम एक महिदेव (द्विज) जो महान सन्यासी के रूप में था, वह स्त्रियों से सजग रह कर ब्रह्मचर्य का पालन करता था, इन्द्रिय-समूह का उसने दमन कर दिया था। उसका प्रचुर पुरूपार्थ (काम शक्ति) अपनी स्त्री के लिए ही था। उसमें ब्रह्मत्व की अधिकता होने से क्षात्रत्व उसके समक्ष चलायमान हो जाता था। स्वामी धर्म से वह अधिक सुशोभित था। उसमें विशेष गुण यह था कि वह इन्द्रियों और पृथ्वी को वश मे रखता था। उसने भी उस युद्ध में डटकर शस्त्रवाद शुरू किया। उसकी मृत्यु के समय मेवाड़-मण्डल के मरदाने नरेश (रावल समर-विक्रम) ने उससे प्रश्न किया; तब उस द्विज ऋषिकेश (आचार्य) ने कहा कि वेदविधान (वेद धर्म) ही सब धर्मों में वंदनीय है।

दिख्खन राउ दिलीय, देव मंडल पुर वासिय।
समर स्यंघ रावत्त सबद्द, अग्गी ग्रह वासिय॥
मित्र खत्र छत्रह छलंग, छिति छल वल जग्यउ।
तिमर तेक गोरिय ततार, गज्जिवि गल लग्यउ॥
महि महन सीह उप्पर करण, हरण हार सिर मुक्कयउ।
वामंग वीर हत्थह सु हथ, धरणि धार धर धुक्कयउ॥३३२॥

शब्दार्थः—दिख्खन=देखा। राउ दिलीय=दिल्लीश्वर। देव मण्डल=स्वर्ग। वासिय=वसने वाला (देवता)। सवद्द=कहा गया। अग्गी ग्रह=जिसका ग्रह (स्थान) सब से पूर्व। मित्र खत्र=क्षत्रियों का सूर्य। छलग=छलागें मारता, घोड़े को उड़ाता हुआ। छल=छलकाता, फैलाता। तिमर=अँधेरा। तेक=खड्ग। गज्जिवि=गर्जना करता हुआ। गल लग्यउ=कंठ पर सवार होगया। महि=पृथ्वी। उप्पर करण=सहायता करने को। हरण हार=हरण कर्ता। सिर मुक्कयउ=सिर काट

दिया। वामग=बायें। हत्थह=हाथ से हथ=हत दिया नष्ट करदिया। धुक्कयउ=झुकगया, पतित होगया, धराशाई होगया।

अर्थः—युद्ध भूमि मे दिल्लीश्वर ने रावल समर-केशरी जिसका ग्रह (स्थान) अन्य सब राजाओं से पूर्व कहा गया उस को सेना के अग्रभाग में देव मण्डल स्थान का निवासी (साक्षात देव) हो, ऐसा देखा। वह क्षत्रियों का सूर्य स्वरूपी वीर घोड़ा उडाता और पृथ्वीपर अपनी शक्ति फैलाता हुआ दिखाई दिया। वह क्षात्र-सूर्य, गर्जना करताहुआ खड्ग धारी गौरी वंशज तत्तार रूपी अँधेरे के कंठ पर सवार होगया। हिन्दुओं की भूमि और महनसिंह की सहायता के लिये उसने बढ़कर उसके नष्ट कर्ता का सिर बाये हाथ से वार कर धड से दूर कर दिया। जिससे श्रोणित की धारा के साथ ही विपक्षी का रुण्ड भी धरणी तल पर गिर गया।

दोहा

मचि आवृत्त सु जुद्ध बर, तुटि खुट्टै सब सस्त्र।
अनीअन्न सम मस सुनि, किरच २ बहु अस्त्र ॥३३३॥

शब्दार्थः—आवृत्त=लगातार। तुटि=कटकर। खुट्टै=समाप्त होगये, नष्ट होगये। सब सस्त्र= शस्त्रों द्वारा शव। अनीअन्न=अन्योन्य, एकमेक।

अर्थः—समर-केशरी के लगातार भिड़ने के कारण बहुत से विपक्षी नष्ट हो गये और एक दूसरे के शव का आमिष एक मेक हो गया। शस्त्रों के टुकडे २ हो गये।

कवित्त

समर सिंघ सिर सीस, छद छलनी कित आसह।
इह अमुष्य नन भाख, हय कूदनि आरासह ॥
नन आई आचरन, आन अन्छरि उन्छगह।
वर वरत तुटि तन्न, तान जोगिय भग्गामह ॥
असवार सनाहति अस्सु पर, धार पार होइ उत्तरिय।
चित्रग राइ रावर समर, विहुन अस्त सभझि न परिय ॥३३४॥

शब्दार्थः—छन्द=ढग रूप। कित=करने की। आसह=इच्छा से। अमुष्य=अमुख, मुख से प्रसन्न। भाख=कहा। आरासह=आरामह, आकाश की ओर ऊंचा। आचरन=वरण करने को। उन्छगह=

उछंग; गोदी, अङ्क। धर धन्त=कँपाता हुआ। तुटि=टूटगया, कटगया। तान=तंत्रितान। जोगिय=देवऋषि, नारद। मग्गामह=मग्न होगई। असवार=अश्वारोही। सनाहति=कवच। असु=अश्व। उत्तरिय=उतर पड़ा, पार कर गया, समाप्त होगया। विहुन अस्त=दोनों सूर्यों का अस्त होना।

अर्थ:—रावल समर-केशरी के विषय मे असत्य कल्पना नहीं की जाती, उसने अपने मस्तक को शस्त्राघात से छलनी बना देने की इच्छा से घोडे को ऊँचा कुदाता हुआ युद्ध भूमि में प्रवेश किया। उसकी मृत्यु पर उसे वरण करने की इच्छुक होते हुए भी अप्सराएँ समीप नहीं आईं और न उसे अंक में ही ले सकीं। शत्रुओं को कँपाता हुआ उसका शरीर कट गया, उस समय देवर्षि भी तंत्रि की तान को भूल गया। वह वीर अश्वारोही, उसका कवच एवं उसका घोड़ा खड्ग धारा को पार कर समाप्त हो गया। इस प्रकार सूर्य स्वरूप चित्तौड़ेश्वर और सूर्य के साथ २ अस्त होने पर दर्शक चकित होगये। उन्हें यह ज्ञान नहीं हो सका कि सूर्य अस्त हुआ है या सूर्य स्वरूपी वीर अस्त होगया है।

जब दल खान ततार, मार मथ्थे परिहारं।
समर सिंघ अवलोकि, हयौ ओड़न करिवारं॥
चपल हथ्थ वर मथ्थ, सीस तुट्यौ रड्वडह।
रुण्ड मुण्ड हुअ खण्ड, सुण्ड कट्टै दँति वंडह॥
परि टोप अंग बगतर-जिरह, खाँ अपुट्ठ भारे भरां।
गजराज साज झळपट भयौ, समर सिंघ पावक करां॥३३५॥

शब्दार्थ:—हयो ओड़न=आड़ (घेरे) को नष्ट कर दिया। तुट्यौ=टूटकर, कटकर। रडवडह=लुढ़कने लगा। दँति=हाथी। वडह=टुकड़े। खाँ=मुस्लिम। अपुट्ठ=अपूठे, पीठ बतादी। भारे भरा=बड़े बड़े योद्धा। झळपट भयो=दग्ध होगया। पावक=अग्नि (ज्वाला)।

अर्थ:—ततारखां द्वारा महनसिंह प्रतिहार के मस्तक पर प्रहार हुआ देखकर रावल समर-केशरी ने प्रहार करते हुए शाही घेरा तोड़ दिया। उसके चपल हाथ शत्रुओं के सिर पर चलने लगे। उसी समय उसका मस्तक कट कर पृथ्वीपर लुढकनेलगा। फिर भी उसके रुण्ड द्वारा शत्रुओं के मुण्ड खण्ड २ हो रहे थे और गज-सुंडों के कट २ कर टुकडे २ हो गये। उसके एक ही वार से शत्रुओं के शिरस्त्राण, शरीर

और जिरह वख्तर कट गये। बडे बड़े मुस्लिम योद्धा उसके समक्ष पीठ बता कर भागने लगे। उसके अग्निज्वाला तुल्य पवित्र हाथों द्वारा शाही हाथी और उनके साज दग्ध प्राय होगये।

वर दिढ मुट्ठि खँधार, खान नवरोज रिमानिय।
भिस्ति छडि दोजिग परत,तुच्छ अग्गैं हिंदवानिय॥
वे भगिगन मारूफ, गुलब गाजी सुयि संमन।
क्या काफर फ़जद, फते पीरुजखां कमन॥
रे चमरेज गुंजारखां, पढि कलमा मुख करि कहौं।
सुरतान आन चहुआन सम, सब हिंदू एकत ग्रहौं॥३३५॥

शब्दार्थः—दिढ=दृढ। रिमानिय=क्रोध में आगये। भिस्ति=बहिश्त। दोजिग=दोजख। भगिगन=भागिनेय, भगिनी पुत्र। गुलब=गुलाबखा। पीरुजखा=पीरोजखा। चमरेज=चामर धारी। आन=दुहाई। एकत=एक ही साथ।

अर्थः—उसी समय मजबूत मुट्ठो वाले खधारी और नवरोज खा क्रुद्ध हो कर कहने लगे-इन थोडे से हिन्दू वीरों के सामने क्या हम पीठ बता कर बहिश्त छोड दोजख मे जाना चाहते हैं? उसके ये शब्द चॅवरधारी मारुफखां के भगिनी पुत्र गुलाबखा, गाजी खां, समन मीर, फतह खां, फिरोज खा, कमनखा और गुंजारखा आदि ने सुने तो उन्होंने कहा कि-काफिर खानदान हमारे सामने क्या है? हम कलमा पढ शाह की दुहाई देकर कहते हैं कि चाहुआन नरेश्वर के साथ-साथ समस्त हिन्दुओं को पकड कर ही रहेंगे।

दोहा

समर सिंघ के तेक तें, जह तहं कहौं मार।
गनैं कोन हय गय भरे, परे खान दस च्यार॥३३६॥

शब्दार्थः—तेक=तलवार। तें=से। गनैं=गिन सकता। भरे=झपटे, मारे गये।

अर्थः—समर-केशरी की तलवार द्वारा बहुत से विपक्षी मार खाकर यत्र तत्र हो गये और चौदह मुस्लिम योद्धाओं के साथ २ अनेक हाथी-घोडे मारे गये। उनकी गिनती कौन कर सकता है?

कवित्त

परे खान नवरोज, टूक टूकंह तन तच्छिय।
जो भगिगन मारूफ, सार सुभ्भिय मुख अच्छिय॥
परै खान गुल्लाव, ममन रेचभ मम रेजहि।
खॉ-गुंजार वाजिद, समर सिंघह सैंहथ ढहि॥
पीरोज खान मीयां मरद, वे ओड़न पल्लै सु वथ।
चित्रंग राव चावहिसा, चवै ईस अच्छह सु कथ॥३३७॥

शब्दार्थः—तच्छिय=तराछा जाकर, कटकर। भगिगन=भागिनेय, भानजा। सैंहथ=उसके हाथों से। वे=दोनों। ओडन=घेरे जाकर। पल्लै सु वथ=करपाश में पकड़े गये। चावहिसा=चारों ओर। चवै=कहने लगा। ईस=ईश, शिव। अच्छह=यक्ष।

अर्थः—यक्ष शिव से कहने लगा — हे शिव! समर केशरी के कर प्रहारों से खान खां और नवरोज खां के शरीर कटकर टुकडे टुकड़े हो गये। मारूफखा के भानजे के मुह पर भी जिसने शस्त्र प्रहार किया। गुलाव खा, ममन मीर, रेचभ खां (रेशम या रुस्तम), ममरेज खां, गुंजार खां और वाजिन्द खां धराशायी हुए। पीरोज खां और मियाँ ये दोनों मरदाने उसके द्वारा घेर लिये गये और बाहु-पाश में बांध लिये गये। इस प्रकार चित्तौडेश्वर चारों ओर वार करने लगा।

कवित्त

दिक्खि पान खुरसान, गुरव्वर जॅमथ उपट्टिय।
समरसिंघ मुख चहर, हिंदु मेंछन मिलि जुट्टिय॥
गिद्धिन पल संग्रहन, जुथ्थ लंबे रन आइय।
स्रोन परत निभ्मरत, पत्र जुग्गिनि लै धाइय॥
पल चरिय मेछ हिंदू सुहर, अच्छरि मल अति झगरिय।
महदेव सीस वधैं गरां, काल झपि लीनो नु जिय॥३३८॥

शब्दार्थः—पान=हाथ, कर शक्ति। गुरव्वर=गव्हरखां या गबरू खा। जॅमथ=जमथ खां। उपट्टिय=निशान होगये। मुख चहर=मुख को चाहते हुए, शक्ति को देखते हुए। संग्रहण-ग्रहण करने को, आहार करने को। जुथ्थ=यूथ, समूह। लम्बे=फैलते हुए। निभ्मरत=स्रोत। पत्र=पात्र, खप्पर। सुहर=सुभट, योद्धा। महदेव=महादेव। झपि=झपट कर। नु=नहीं।

अर्थः—जिसकी कर-शक्ति को खुरासान खां जान सका, गहवर खॉ (या गवरू खॉ) एव जंमन खां के सिर पर उसके कर प्रहार के निशान होगये। उस समर-केशरी की शक्ति देखकर हिन्दू वीर, मुसलमानों से भिड गये। युद्ध भूमि मे उस समय मांसाहार करने के लिए गिद्धनियों का समूह फैलता हुआ दृष्टिगोचर हुआ। रक्त स्रोत प्रवाहित होता देख योगिनियॉ, खप्पर लेकर आ खड़ी हुई। हिन्दू और मुस्लिम वीरों का मांस खायाजाने लगा, अप्सराएँ वीरों को वरण करने के लिए आपस मे झगडने लगीं। महादेव ने उस वीर समर-केशरी के मुंड को गले मे धारण किया। उसके प्राणों की ओर यमराज नहीं झपट सका (वह सीधा ब्रह्म में मिल गया)।

प्रिथा कंथ परदीप, लज्ज सकर गर बधिय।
जिय बासुर दोइ च्यार, बहुरि कलिजुग्ग सु खद्धिय॥
सोइ लज्जा के कज्ज, रज्ज मुक्यौ रघुराइय।
रावन लंक विनास, लज्ज बध्यौ सरिताइय॥
लज्जा सु कज्ज नगदेव न्रप, सीस कट्टि हथ्था धरै।
इह कवित एक लख्खा सरिस, लरन हार लज्जा भिरै॥३३६॥

शब्दार्थः—प्रिथा कंथ= पृथाकुमारी के पति, रावल समर-केशरी। परदीप=पराये देश में। सकर=साकल, शृंखला। गर=गले में। जिय=जीवित रहते। खद्धिय=खा जाता, विनष्ट कर देता। रज्ज=राज्य। मुक्यौ=छोड़ा। सरिताइय=समुद्र। नगदेव=नगदेव नाम का कोई राजा या जगदेव प्रमार। भिरै=भिड़ पड़ते, भिड़ कर कट पड़ते।

अर्थः—प्राणी मात्र कुछ ही दिन जीवित रहते है अन्त में सबको यह कलियुग विनष्ट कर देता है। अत पृथाकुमारी के पति (रावल समर-केशरी) ने पराये देश में आकर लज्जा की शृंखला गले में बाध ली (युद्ध मे मारा गया)। कवि कहता है, हे वीरों! लज्जा के कारण ही रामचन्द्र ने राज्य छोड दिया, रावण ने लंका का विनाश किया, समुद्र बांधा गया और नगदेव (या जगदेव प्रमार) ने अपने हाथों से मस्तक काट कर दे दिया था। अस्तु, यह पद्य उपदेश की दृष्टि से एक लक्ष का है, क्योंकि युद्ध करने वाले अपनी कुल लज्जा के कारण ही भिडते हैं।

गाथा

दह रावर वर वीरं, सट्ठिहा खान ढान भर धीर ।
जुम्भै गए सुरेहं, रोहत रवि बिंब राय खुम्मानं ॥३३८॥

शब्दार्थ:—दह=दस । सट्ठिहा=साठ । ढान=ढाने वाले, धराशाई करने वाले । सुरेह=अच्छी रेहा, अच्छे रास्ते पर, स्वर्ग-मार्ग पर । रोहत=रोंधते समय, घेरते समय । रवि बिंब=सूर्य के समान तेज धारी ।

अर्थ: इस युद्ध में सूर्य के समान तेज और खुमान उपाधिधारी चित्तौडेश्वर रावल समर-विक्रम के अंत समय में घिरे जाने पर उसी के राज वंशज दस रावल भी साठ मुस्लिम योद्धाओं को धराशायी कर लड़ते हुए अपने स्वामी के साथ ही अच्छे रास्ते (स्वर्ग-मार्ग) पर चलते बने ।

दोहा

के साई भर उप्परे, के भर उप्पर सांइ ।
कटि मडल हयदू तुरक, हय गय घाइ अघाइ ॥३३९॥

शब्दार्थ:—उप्परे=पीछा देते हुए कटि=कट गया । मडल=समूह । घाइ अघाइ=अघातों से नष्ट हो गये ।

अर्थ:—उस समय वीरों ने ऐसा आक्रमण किया कि—कहीं स्वामी अपने सेवक को पीछे कर स्वयं आगे और कहीं सेवक, स्वामी को पीछे कर आगे बढ़ जाता था । इस प्रकार हिन्दू लडकर कट पड़े; किन्तु मुसलमानों का सैन्य-समूह एवं हाथी-घोडे आदि भी उनके आघातों से मारे गये ।

रावल स्यंघ रहत रहि, साठि खान दस राइ ।
परत महन परिहार रन, मेछति सहस सवाइ ॥३४०॥

शब्दार्थ:—रावल स्यघ=रावल समर केशरी । रहत=मारे जाने तक । रहि=रणक्षेत्र में रहे मारे गये । मेछति=मुसल्मान ।

अर्थ:—रावल समर केशरी के रण क्षेत्र मे धराशायी होने पर साठ मुस्लिम योद्धा और उपर्युक्त दस हिन्दू वीर (रावल खानदान के) मारे गये । महनसी

प्रतिहार के धराशायी होने तक एक हजार से ऊपर मुसलमान रणस्थल मे नष्ट हुए ।

कवित्त

नववति निमि नसीय, वज्जि णीसान सवद्धिय ।
ह्य दवान सुरतान, ह्य दु धर वर करि सद्धिय ॥
गा भग्गा अग्गुलह, सहू संभरि सभरयौ ।
खिन २ जन २ जुरण, किलकि गोरिय घरघरयौ ॥
तद्दिन तुरग मोहिल रद, अरुण अरुण मडल गहिय ।
चुचकारि चित्त चित्रग पहु, वर विखान रवह रहिय ॥३४१॥

शब्दार्थः—नववति=नमगई, ढलगई । नसिय=नष्ट होगई, समाप्त होगई । वज्जि=वज्र । सवद्धिय= स्वर में । ह्य दुधर=हि दुओं के भू भाग के लिए । वर=बल । सद्धिय=साधन किया । गा भग्गा= टूट गये । अग्गुलह=अर्गला स्वरूपी वीर । सहू=वह, यह । सभरयौ=सुना, ज्ञात हुआ । जुरण= जाडने लगा, एकत्रित करने लगा । किलकि=किलकार करके । घरघरयौ=घुर्राया । तुरग=टूट पडा, मारा गया । अरुण=ऋण रहित होकर । अरुण=मडल, सूर्य मण्डल । चुचकारि=चुचकारा, छेडा, उत्तेजित किया । वर विखान=भयानक विषधारी । रवह रहिय=रौंधा गया ।

अर्थः—रात्रि ढलती ? व्यतीत होगई । उस समय दोनों ओर वज्र स्वर मे नक्कारे बजने लगे । हिन्दुओं को भू भाग के लिए हिन्दु वीर और सुलतान ने बल का प्रयोग किया । उस समय अर्गला-स्वरूपी वीरों का मारा जाना चाहुवान नरेश को ज्ञात हुआ । उधर रण मे जन समूह एकत्रित करता हुआ गौरीशाह किलकारी कर घुर्राने लगा । उसी समय मरदाना वीर मोहिल युद्ध मे मारा गया और अपने स्वामी से उऋण होकर सूर्य मण्डल मे जा बसा । इस प्रकार अन्त समय में चितौड-पति द्वारा छेडा हुआ (उत्तेजित किया हुआ) वह भयानक विषधारी सर्प (मोहिल) भी अन्त मे शत्रुओं द्वारा रौंध दिया गया ।

या रख्खै गुरराज, राज विग्रह मुख चाह्यौ ।
प चट्टत कुडलिय, लहै द्रव्य कोरि मचायौ ॥
जा जोगिनिपुर देव, राज राखहु चहुआनिय ।
मों काया बल भग्ग, मग ढूँढै सुरतानिय ॥

दुज हस्त मंडि छडौ तुरय, मो हरु जुद्ध विरुद्ध दिन ।
छिन भग देह विज्जुल छटा दुख्ख न करहिं महत जन ॥२४२॥

शब्दार्थः—या रक्खै=इनको रक्खो, इन्हें स्वीकृत कीजिये । विग्रह–मुख–चाह्यो=विग्रह का सामना करना चाहता है । प=पर, परन्तु । चइत=चलित । कुंडलिय=कुंडल । देव=गुरुदेव । हूँहैं=होगा । हस्त मंडि=हाथ पसार कर । छडौ तुरय=घोड़े को बढ़ाओ । मो हरु=मेरा अनुरक्त होना । विज्जुल छटा=बिजली की चमक के समान ।

अर्थः—इसके बाद पृथ्वीराज राजगुरु, गुरुराम से कहने लगा–तुम्हारा राजा विग्रह का सामना करना चाहता है । इसलिए इन मेरे चंचल कुंडलों का जिनका मूल्य सवा करोड़ है, उन्हें स्वीकार कर आप दिल्ली जाकर चौहान के (मेरे) राज्य की रक्षा करिये । सुलतान द्वारा मेरी काया के नाश के साथ ही उसकी शक्ति का भी नाश हो जाने की सम्भावना है । इसलिये आप हाथ पसार कर इन्हें लीजिये और घोड़े को दिल्ली की ओर बढ़ाइये, क्योंकि मेरा युद्ध में अनुरक्त होना ही मेरे बुरे दिनों को स्पष्ट करता है । शरीर बिजली की चमक के समान क्षण भंगुर है, इसीलिये बड़े आदमी इसकी चिंता नहीं किया करते ।

पानि मंडि लिय दान, सुस्ति भनि वेद मन्त्र दिय ।
मंत्र जाप जालपा, राज अंगह अभंग किय ॥
सार धार निग्रघात, भेद छेद न राजन वप ।
सिलहदार सारंग, सथ्थ किय इन्द्र देव जप ॥
वज्रंग पाट गाजिय मकति, घररि घंट गोरिय सु घर ।
सुनि हक्क धक्क हैगय मुरिय, सहस पंच उत्तरिय भर ॥२४३॥

शब्दार्थः—पानि मंडि=हाथ पसार कर । सुस्ति भनि=स्वस्ति वाचन पढ़ा । वप - वपु, शरीर । सिलहदार=शस्त्रागार का अधिकारी । गोरिय=गौरी, पार्वती । घर=मन्दिर हक्क=हुंकार । धक्क=धड़ा । उत्तरिय=उतर पड़ा ।

अर्थः—गुरुराम ने उस दान को ग्रहण कर राजा को स्वस्ति वाचन के साथ वेद मन्त्र सुनाया तथा जालपादेवी के मन्त्र का जप कर राजा की काया को अक्षय कर दी । राजा के शरीर को शस्त्र की धार से भेदने और काटने जैसा नहीं रक्खा ।

पश्चात् शस्त्रागार के अधिकारी सारग के द्वारा इन्द्र का जप करवाया। उसी समय शक्ति के स्थान पर ऊर्ध्व स्वर से महावीर गर्जना करने लगे तथा देवी के मन्दिर मे घटाये बजने लगीं। उसे सुनकर हुंकार करते हुए पृथ्वीराज ने अपने हाथी घोड़ों को शत्रु सेना की ओर मोड दिया। साथ ही पाच हजार वीरों सहित वह शत्रुओं पर टूट पड़ा।

सहस पंच उत्तरिय, खान खुरसान सपत्तौ।
पहु पुच्छै पतिसाह, आय सुरतान मिलत्तौ॥
तीन वान अज्जून, मारि अंकुस गज फेरिय।
चक्रवान चतुरग, चपि चावद्दिसि घेरिय॥
परि सिलहदार सारगदे, गरुअ खान गोरी गसिय।
उर उरनि उरझि अच्छरि अछिनि, उर बसी हिरदै बसिय॥३४३॥

शब्दार्थः—उत्तरिय=उतर पड़ा, आक्रमण किया। सपत्तौ=आया। पहु=राजा। पुच्छै=पीछे। अज्जून=आर्य वीर पृथ्वीराज। चक्रवान=घेरा देने वाले, या चक्रधारी। उर उरनि=प्रत्येक के हृदय में। उरझि=उलझता हुआ, बमता हुआ। अछिणी=अच्छी। उरबंसी=उर्वशी।

अर्थः—पाँच सहस्र साथियों सहित जब पृथ्वीराज ने आक्रमण किया तब खुरासन-खाँ उसके सामने आया, किन्तु राजा पृथ्वीराज ने बादशाह का पीछा किया और उससे जा भिडा उस समय आर्य नरेश ने तीन बाण छोडे। जिससे भयभीत हो शाह के हाथी के महावत ने अकुश मार कर हाथी को सामने से हटा लिया, उसी समय घेरा देने वाली सेना ने राजा को चारों ओर से घेर कर दबा दिया। यह देखकर शस्त्रागार का अधिकारी सारगदेव मुसलमानों के गौरव स्वरूपी गौरी-शाह को दबाता हुआ अन्य अप्सराओं का तिरस्कार कर उर्वशी के हृदय मे जा बसा (अर्थात मारा गया)।

गुर ढिग कुंडलि देखि, पेखि वहवल्ल खान धपि।
द्रोनह सुत जिमि तेग, वेग झारी झनग झपि॥
राम सीस लिय ईस, कमल विन खजरू कढ्यौ।
हथ्थ छेदि उर खान, पीठि पच्छै दल वढ्यौ॥
वामग हथ्थ अचरिज सुनहु, अरि कटि ते असिवर लियौ।
भानेज साहि माहावली, हय समेत चव खंड कियौ॥३४४॥

शब्दार्थः—दिग = पास। कुडलि=कुडल। धपि=तेजी से बढा। द्रोपह=द्रुपद। भनग=भन-भनाती हुई, खनखनाती हुई। भपि=पलभपकते। राम = गुरुराम। कमल विन=बिनासिर के। वामग=बायें। चव खंड=चार खंड, टुकड़े टुकड़े।

अर्थः—गुरुराम के पास पृथ्वीराज के द्वारा दिये हुए कुंडलों को देखकर वहवलखां उसकी ओर बढा और उस पर द्रुपद पुत्र के समान खन खनाती हुई तलवार का सवेग प्रहार किया। जिससे गुरुराम का सिर कट गया और उसे शिव ने उठालिया। मस्तक के नहीं होने पर भी उसके रुण्ड ने खंजर निकाल लिया और उस मुस्लिम यौद्धा का उर वेध दिया। तत्पश्चात् उसका पीछा करने वाली सेना का उस रुण्ड ने नाश कर दिया। उसने वायें हाथ से ही आश्चर्य प्रद काम किया। वार कर्ता शत्रु को मारते ही उसने तलवार निकाली और शाह के भानजों पर प्रहार कर घोड़ों सहित उनके चार भाग कर दिये।

दोहा

द्वै बंधव भानेज द्वै, द्वै दुख क्यन्नौ साहि।
दुज को दुज प्रथिराज भय, गुरु विन वंदो काहि ॥३४५॥

शब्दार्थः—क्यंनौ=किया। दुज=द्विज, गुरुराम। दुज=द्विज, बड़ा, भारी। काहि=किसे।

अर्थः—शाह के दो भाई (सगोत्री) और दो भानजों को मारकर स्वयं गुरुराम समरांगण में सदा के लिए सोगया। इससे शाह को दो भाई और दो भानजों के मरने का दो प्रकार का दुःख हुआ, किन्तु पृथ्वीराज को उस द्विज के मरने का केवल कए ही भारी दु.ख हुआ। राजा कहने लगा—आज गुरुदेव नहीं हैं, अब मैं किसकी वन्दना करूँ ?

हम अब दुक्ख न सुक्ख मन, नह दिल्लिय धन धाय।
मोरें मेछ मसंद जुरि, इह लग्गी मन चाय ॥३४६॥

शब्दार्थः—धन=सम्पत्ति, वैभव। मोरे=मोड़ दूँ। जुरि=जुटकर। इह=यह। चाय=चाह, इच्छा, चटपटी।

अर्थः—गुरुराम के मरने पर पृथ्वीराज कहने लगा—अब मेरे मन मे किसी प्रकार का सुख दुख नहीं है और न यह मन दिल्ली के वैभव की ओर ही जाता है। मेरे

मन में तो इसी बात की चटपटी लग गई है कि लडकर मसनद धारी वीरों का मुह मोड दूँ।

प्रथु आबुध फुट्टहि न, गुरज वज्जिय गुज्जर पर।
जनु पखान प बुद, रुद लग्गिय दुज्जर धर॥
टुटि टट्टर सिर श्रोन, छिछि उट्ठिय भुमि वुट्टिय।
सुरग रत्त मन मत्त सहति आवध लिय उट्ठिय॥
असि नेत आउ इक्कति घरिय, लरियति जिय डरीयति परिय।
घन सेन साहि गारिय गरुअ, तिरण पुग तिव्वरि करिय॥३४७॥

शब्दार्थः—प्रथु=पृथ्वीराज। आबुध=आयुध, शस्त्र। फुट्टहिन=न फूटे, नहीं बेधा जाय, बच जाय। गुरज=गदा वज्जिय=बजने लगी, प्रहार होने लगा। गुज्जर=बड गुज्जर, रामराय। पखान=पत्थर। रु द=रोंधा। दुज्जर=अजर, अभग,नहीं दबने वाला। धर—धड, शरीर। टट्टर=पिंजर। छिछि=धारा। सहति=अपने हाथ से। असिनेत=खड्गधारी नेता। आउ=आकर, बढकर। इक्कति=एक। तिरण=तिरने को, पार करने को। तु ग=समूह। तिव्वरि=विशेष बल।

अर्थः—उसी समय पृथ्वीराज को शस्त्रों से बचाने के लिए बड गुज्जर वीर बढा, उसके शरीर पर गदाओं के प्रहार होने लगे। वे गदायें ऐसी लगती थीं मानों पत्थर पर पानी की बूंदे पड़ती हों। उसका नहीं दबने वाला शरीर कठिनाई से शत्रुओं द्वारा रोंधा गया और अन्त मे उन प्रहारों से उसका मस्तक और अस्थिपजर टूट फूट गया। उससे रक्त की धारा ऊँची उठकर पृथ्वी पर गिरने लगी। फिर भी स्वर्ग से अनुरक्त होकर वह मतवाले मनवाला, हाथ मे आयुधों को ग्रहण कर उठ खड़ा हुआ और उस खडगधारी नेता के प्राण एक घडी तक उसके शरीर मे रहे, तब तक वह लडता रहा। उसको इस प्रकार युद्ध करता देखकर शत्रु भयातुर हो धराशाई होने लगे। गौरीशाह के वहुत बडे सैन्य समूह को पार करने के लिए उस समय उसने विशेप बल प्रदर्शित किया।

बड़ गुज्जर रा-राम, ढान टुट्टहि सुलतानह।
हैं गै नर विध्थियन, जाणि मृगराज म्रिगानह॥
सब सेनापति साहि, कब कट्टिन भक भुक्कै।
कुटिल दिट्ठि जहँ फिरै,सकल मिलि मिलि तहँ रुक्कै॥

डम्मरिय डहकि जोगिन हँसै, जिम जिम धज वंवरि लसै ।
दनु देव दच्छ गंध्रव्व गन, सकति रूर कित्तिहि कसै ॥३४८॥

शब्दार्थ:—रा—राम=रामराय । दान=ढहाने को, पछाड़ने को । ढुंढ़ह=ढूंढने लगा, खोजने लगा । विध्यियन=व्यूह में, समूह में । जाणि=जनु, मानों । म्रिगानह=मृग समूह में । साहि=शाह के । झकझुक्कै=झुकगये । डम्मरिय=डमरु । डहकि=डह डहाने लगी, बजाने लगी । धज=ध्वजा । ववरि=झाल ववाल, अग्निज्वाला तुल्य । दनु=दनुज, दानव । दच्छ=दक्ष, यक्ष सकति=शक्ति । रूर=रूड़ी, सुन्दर । कसै=कसकर गानेलगी, ऊँचे स्वर से गाने लगी ।

अर्थ:—रामराय वड़गुज्जर ने सुलतान को पछाड़ने के लिए खोजना प्रारंभ किया। वह विपक्षियों के हाथी, घोड़े और सैनिक समूह में खोज करता हुआ ऐसा दिखाई दिया मानों मृग-समूह में मृगराज विचरण कर रहा हो। शाह के सब सेनापतियों के कठोर कंधे उसके सामने झुक गये। जिस ओर उसकी कुटिल दृष्टि हो जाती थी उसी ओर डर कर झुंड के झुंड वहीं रुक जाते थे। यह देख डमरू वजाती हुई योगिनियाँ हँसने लगीं और अग्नि ज्वालाओं के समान उस समय पताकाएँ सुशोभित होने लगीं इस प्रकार उसे युद्ध करता हुआ देखकर दानव, देवता, यक्ष, गन्धर्व, गण और शक्ति आदि उस वीर का सुन्दर कीर्ति-गान करने लगे ।

दोहा

मत मत के दंत पर, हनी सांगि वर राम ।
कड्ढै कर कड्ढै नहीं, वत्त कहत भए ताम ॥३४९॥

शब्दार्थ:—कड्ढै कर=काढने की करने पर, या हाथों द्वारा काढने पर । कड्ढै नहीं=कढकर नहीं निकलती । ताम=तव, उस समय ।

अर्थ:—रामराय वड़गुज्जर ने कई मतवाले हाथियों के दाँतों पर साग का प्रहार किया। उस समय सब कहने लगे-धन्य है, इसके वार को, जो वल करने पर भी साग हाथियों के शरीर से नहीं निकल सकी। -

लक्ख लक्खकहुँ गहिय, कठिन कर्कस करवानिय ।
मुरि ए मीर मारत, सोज संसारह जानिय ॥

सुर णर गन गध्रब्ब, सक्खि तिन सत्तु न छड्यौ।
अगद जिमि अकुर्यौ, भीम जिमि भारथ मड्यौ॥
डंडेव वरणि हिंदू तुरक, अवसु रही गड्यू खरिण।
करि उर हनत तुट्टीन टिकि, मुरिन सगि कारन कवण॥३५०॥

शब्दार्थः—लख्ख=लाखों। लख्ख कहुँ=लाखों पर। करवानिय=कृपाण, तलवार। मुरिण=नहीं मुड़ा। सोज=सोय, शौर्य। णर=नर। सक्खि=साक्षी। सत्तु=सत। अकुर्यौ=उठा वीर रस अकुरित हुआ। भारथ=युद्ध। डंडेव=दडित किया। वरणि=वर्ण। अवसु रही=वश की बात न रही। गड्यू=गाड दी। खरिण=खर, तीक्ष्ण। तुट्टीन=नहीं टूटी। टिकि=टिककर, प्रवेश करके। मुरिन=नही मुडी, न निकली। कवण=क्या।

अर्थः—लाखों विपक्षियों ने तलवारे पकडीं। उन पर उस एक ही वीर बडगुज्जर ने अपनी कर्कश तलवार हाथ मे ली और मीरों को मारता हुआ वह नहीं मुडा। उस वीर के शौय को ससार ने जाना, उसने सत्य नहीं छोडा। जिसकी साक्षी, सुर, नर, गण और गन्धर्व देते हैं। उसमे अगद के समान बीर रस अकुरित हुआ और उसने भीम के समान युद्ध किया। उस हिन्दू वीर ने तुरुष्कों को दण्डित किया और जो तीक्ष्ण सांग मतवाले हाथियों के हृदय मे गाड दी, क्या कारण है कि न तो वह निकली ही और न वह टूटी ही? (वह सांग नहीं थी, किन्तु शत्रुओं को दण्डित करने की स्मृति में लोह की पैनी सूरह (प्रशस्ति) गाड दी गई थी। यही कारण है कि वह निकली नहीं और न टूटी ही)।

मुख निहारि छत्रधारि, पर्यौ पचो पचायन।
गोरिय दल बल मह्यौ, चुगल चर्यौ मेछानन॥
एक सार उर धरिय, एक धारह उर धारिय।
एक मार सम्मार, एक भारह उर भारिय॥
वर वरनि विहसि दच्छि जु कथै, रहसि रहसि पुच्छै जुरह।
घरि एक तरगिणि कक्क जलु, कमल जानि नच्चै जु सर॥३५१॥

शब्दार्थः—छत्रधारि=छत्र धारण कर्ता, पृथ्वीराज। पर्यौ=पडा, बढा। पचो=पाचालराय। मेछानन=मुसलमानों को। सार=शस्त्र। धारह=धारा, तलवार। भारह=भटी, मार। [illegible]

श्रेष्ठ अप्सरा को वरण की। दच्छि=दक्ष, यक्ष। रहसि-रहसि=रस रहस्य में मुग्ध हो, या रह २कर, बार२। जुरह=जुटने का हाल या रहे। तरगिणि=श्रोणी सरिता। जलु=जल स्वरूपी रक्त। कमल=कमल मुख।

अर्थः—राजा पृथ्वीराज की ओर देखता हुआ पांचाल देशीय वीर पांचायन आगे बढ़ा। उस वीर ने युद्ध में गोरी की सैन्य शक्ति को ग्रस्त कर उसे अपने चगुल में (हाथ में) धर दबाया। किसी ने उसके शस्त्रों को हृदय में धारण किया, किस ने उसकी खड्ग धार वक्षस्थल पर सही, किसी ने उसकी मार सही और किसी ने उसके वार सहे। उस वीर ने श्रेष्ट अप्सरा का वरण किया। उस वीर का वर्णन ज्यों २ यक्ष करने लगा, त्यों २ उसके रस रहस्य मे मुग्ध होकर शिव बार २ उसकी वीरता के लिये पूछने लगे। तब यक्ष ने कहा— उस वीर ने ऐसा पराक्रम किया, जिससे शवों की ढ़ेरी लग गई और खून की नदी बहती हुई रुक गई जिसमे तैरते हुए वीरों के सिर ऐसे दीख रहे थे मानों तालाब मे कमल तैर रहे हों।

पन्न धारि दिय पत्र, कंन लग्गवि कर सायौ।
पंग पुत्रि किय पत्रि, वंचि संदेश सुनायौ॥
अमिय गयौ कल चंद, कमल मंडिय न मानसर।
गति गयंद गत मंद, रूव रति रभ सुरग हर॥
मति मान विनय लच्छी सहज, मोर पंछ केसी समन।
हा हंत तार हक्क्यौ हियौ, उडै न हॅम तुअ हस विन॥२५२॥

शब्दार्थः—पनधारि=तांबूल खाने का अधिकारी। कन लग्गि=कान के पास मुँह करके। करसायौ=हाथ में लेकर सामने किया। किय पत्रि=पत्र की रचना की। कल=सुन्दर। कमल=मुख। मंडियन=मंडन नहीं किया जाता, अर्थात् श्रृङ्गार रहित हैं। मद=शिथिल। रूव=रूप। सुरग हर=स्वर्ग में जा बसा। लच्छी=लक्ष्मी। मोर पछ=मयूर पक्ष। केसी=केशपाश। समन=समाप्त। हा हन=साहते हुए, रोकते हुए। हक्क्यौ=चल पड़ते। हँस=हंस, प्राण पखेरू। हम=सूर्य स्वरूपी (प्यारे)।

अर्थ—उसी समय ताम्बूल खाने के अधिकारी ने हाथ में ग्रहण किया हुआ पत्र आगे बढ़ाते हुए राजा पृथ्वीराज के समीप अपना मुँह करके कहा—इस पत्र की रचना पंगु पुत्रि ने की (सयोगिता ने लिखा) है। यह कहते हुए उसने राजा को पत्र पढ़कर सुनाया—उसमे लिखा था, उस सुन्दर चन्द्रमा में अब वह अमृत चला गया है (अर्थात् मेरे ओष्ठ सूख गये हैं) अब मुझ (मानसरोवर) का कमल (मुख)

शृङ्गार रहित है। मतवाले हाथी की सी मेरी चाल थी, उसमें अब शिथिलता आगई है (चलने की शक्ति नहीं रही है)। मेरा रति और रंभा के समान रूप था वह भी अब स्वर्ग मे जा बसा है। मुझ में जो स्वाभाविक बुद्धि, मान और लक्ष्मी तुल्य नम्रता थी उसका शमन होगया है और मयूर पक्ष तुल्य मेरा वह केश-पाश सजना भी अब नहीं होता तथा रोकते हुए भी हृदय तंत्रि के तार चल पडते हैं (श्वास रोके नहीं रुकता)। हे सूर्य स्वरूपी प्यारे ! तुम्हारे विना ये मेरे प्राण पखेरू जो शेष हैं वे भी नहीं उडते।

पन्नधार परिहार, गुह्य गांमार वार तिहि।
सु ग्रह नारि उर धारि, कहै सदेस वार इहि॥
निबर पिम सक्करिय, सबर सकर गल लज्जिय।
छल बल कल छुट्टै न, जानि जिम बाल सु लज्जिय॥
तुअ काम नाम केहरि कमल, सार धार चढ्ढै विमल।
पल चरिय जाइ जोगिणि पुरह, कहै कथ्थ गिद्धिनि सकल॥३५३॥

शब्दार्थ:—गुह्य=गुप्त। निबर=निर्बल। पिम-सक्करिय=प्रेम की शृंखला। सबर=सबल। सकर=शृंखला। कल=करने पर। कमल=मस्तक। पल चरिय=पलचारी। जोगिणि पुरह=दिल्ली।

अर्थ:—यह सुन राजा ने कहा— हे ताम्बूल-खाने के अधिकारी, प्रतिहार ! तुमने इस समय जो गुप्त बात कही, वह तुम्हारी मूर्खता है। इस समय ग्रह और स्त्री को हृदय मे स्मृति कराने का सदेश कहना असगत है। अब मुझे प्रेम की शृंखला निर्बल और गले में पडी हुई लाज की शृंखला सबल दीख पडती है। स्त्री के प्रेम-बन्धन को जैसे इस-समय छोडा जा सकता है, उस तरह यह लाज की सुन्दर शृंखला छल-बल करने पर भी नहीं छोडी जा सकती। हे वीर केहरी (प्रतिहार)! तुम तो अपने (केहरी) नाम को सार्थक करने के लिये शस्त्र की उज्ज्वल धार पर अपने शीश को चढाने का प्रयास करो। इस पत्र का उत्तर और युद्ध का समस्त वृत्तात तो दिल्ली को आमिप-भक्षी गिद्धनिया जाकर सुनाही देगी।

दोहा

इह कहत करन वयन, उठे अनदी वीर।
चाहुआन उप्पर परिग, दोर दीन अरु मीर॥३५४॥

शब्दार्थः—कूरन बयन=क्रूर वचन । उदै=अङ्कुरित हुआ । घनंदी=आनद, उत्साह । उप्पर परिग=उमड़ पड़े ।

अर्थः राजा द्वारा ऐसे क्रूर वचन कहने पर उस वीर केहरी के हृदय में उत्साह पैदा हो गया । उसी समय चाहुवान नरेश्वर को बचाने के लिये हिन्दू और नष्ट करने के लिये मुस्लिम सैनिक मीरों सहित सवेग बढ़े ।

कवित्त

जमर जंग नीसान, खान उर वान विछुट्टिय ।
भुमि विहार औराक, गोर जंबूर णिचट्टिय ॥
चौंर ढार चाचिग्ग, चौंर ढा.त कर भग्गिय ।
वर अंमर संचरिय, चंद करिमा वस रग्गिय ॥
गहि चुंगल घरिकजु भ्रमिय, जुग्गिणी पुर जुग्गिनि विमल ।
हिंडोल हेम संजोगि ग्रह, चमर डारि गिद्धिनि समल ॥३५४॥

शब्दार्थः—जमर=ज्वरे, भारी । औराक=ऐराकी घोड़े ।गोर=गोले । जबूर=जबूरें (छोटी तोपें) । णिचट्टिय=निपट गये, चल पड़े । चौंर ढार=चामर चलाने वाला । भग्गिय=कट गया । अंमर=आकाश मचरिय=उछला । करिमा=किरणें । चुंगल=पजे । जुग्गिनि =योगिनी स्वरूपी । हिंडोल=हिंगलाट या झूला । हेम=हर्म्य, स्वर्णिम । समल=श्यामल जाति की ।

अर्थः—इस प्रकार दोनों ओर के वीरों के आक्रमण करने पर युद्ध के भारी नक्कारे बजने लगे । उस समय मुस्लिम वीरों के वक्षस्थलों पर बाण वर्षा होने लगी । रण भूमि में ऐराकी घोडे घूमने लगे, जम्बूरों (छोटी तोपों) से गोले चलने शुरू हुए । उसी समय वीर चाचिग, जो राजा पृथ्वीराज पर चमर कर रहा था उसका हाथ कटकर आकाश की ओर उछला, । जिसे श्यामा जाति की गिद्धनी ने अपने पजों में पकड़ लिया । वह योगिनी स्वरूपा गिद्धनी जिस समय चन्द्रमाँ पृथ्वी पर अपनी किरणों द्वारा प्रकाश कर रहा था, उस समय दिल्ली पहुँची और चामर युक्त हाथ लेकर उसने एक घड़ी तक राज-महल के ऊपर भ्रमण किया । फिर सयोगिता के महल मे जहाँ स्वर्ण का हिंगलाट लगा हुआ था, उसके पास उसे डाल दिया ।

सारे आलम का गुमान, आरब उजवक्किय ।
पामवान सुरतान, सार भग्गैं नह छक्किय ॥

दह भारा कंमान, तोन साइक तेरहसै।
अट्ठारह लोहक, कध कड्ढ मुर हसै॥
वे हथ्थ कराई हथ्थ को, वथ्थ राज घत्तन कहै।
मुजनस मुजाइत छंडि हय, तक्कि तक्कि समुह रहै॥३५६॥

शब्दार्थः—आलम का गुमान=साथियों (मुस्लिम वीरों) का अभिमान स्वरूपी, जिसका मुस्लिम वीरों को गुमान था। आरब=अरब देशीय। पासवान=निकट रहने वाला, अंगरक्षक। मगे=टूटने पर। छक्किय=छकता। दहमारा=दस गट्ठर। लोहक=शस्त्र अंक में। कध कढ्ढ=कधा उठाते। मुर हँसे=प्राण पखेरू की गर्दन तोड़ देता। वे हथ्थ=दोनों हाथों से कराई=कलाई। हथ्थ को=हताने को, पकड़ने को। वथ्थ=बाहु-पाश। घत्तन=घालना, पकड़ना, लेना। मजनस-मुजाइत=माझियों का माझी, मुखियों का मुखिया। तक्कि तक्कि=ताकने पर ताका, आंखों मे आंखें मिलाई।

अर्थः—जिसका सब मुस्लिम वीरों को अभिमान था। वह वीर अरबदेशीय उजबकखान जो शाह के समीप रहने वाला था। जिसके शरीर पर शस्त्र पडते थे फिर भी वह नहीं छकता था। जिसके साथ दस गट्ठर कमान और तेरह सौ भाते तथा बाण रहते थे। अठारह प्रकार के शस्त्रों को वह धारण किये हुए रहता था। जो शत्रु उसके समक्ष कधा उठाता उसके प्राण पखेरू को वह उडा देता (मार देता) था। वह वीर अपने दोनों हाथों से पृथ्वीराज की कलाइयों को पकड़ने के लिए बाहुपाश में लेना चाहता था। वह मुखियों का मुखिया इसी आशा में घोडे से उतरा।

वह तक्कै प्रथिराज, राज तक्कै उहि तोरण।
दिठ्ठे दिठ्ठि करूर, मिले मरदा मुख जोरण॥
वाई उन्नै आइ चाप चुगल्ल उद्धट्टिय।
सारंगी सारग, भीम वन मद्धि उपट्टिय॥
चहुवान कमान करक्खि कर, अग्गिवान उठ्ठरि वहिय।
लगि थान पखान क्रसान उडि ओर एक्कि भल्ली रहिय॥३५७॥

शब्दार्थः—उहि=उसे। तोरण=नष्ट करने को। मुख=सामने सामने। जोरण=मिलाने को। वाई=बाये ओर के अग को। उनै=उमने। आइ=आकर, मगेड कर। चुगल्ल=हाथ। उद्धट्टिय=

चलाया। सारगी=वाण सारग=वाण, धनुष। भीम=भीमकाय राजा पृथ्वीराज। वन=उन, उस। उपट्टिय=उपट गया, चिन्ह हो गया। कत्रिख=ऐंचा। अग्गिवान=सामना करने वाले के। ठट्ठरि=अग। क्रसान=आग। ओर थक्कि=पूरकर, प्रवेश कर। मल्ली=मल्लिका नोक।

अर्थः—उसने पृथ्वीराज की ओर देखा तथा पृथ्वीराज ने उसे नष्ट करने के लिये अपनी दृष्टि उठाई। इस प्रकार दोनों की क्रूर दृष्टि एक दूसरे पर पड़ी। वे दोनों वीर रणस्थल मे सम्मुख खड़े हुए। उस विपक्षी ने अपने अग को बायी ओर मुडाया और हाथों से कमान ऐंच कर राजा की ओर बॉण छोड़ा, जिसका चिन्ह (निशान) उस भीम-काय राजा के धनुप के मध्य में होगया। यह देखकर उसवीर चाहुवान नरेश ने भी अपने हाथों से कमान खींच कर सामना करने वाले शत्रु के अग पर वाण छोडा। उसने यथा स्थान उस पाषाण-काय वीर के लगकर अग्नि पैदा करदी और उस वाण की मल्लिका (नोक) शत्रु के शरीर में प्रवेश कर रुक गई।

बीय वान सिंदूक, जानि सुरतान खान वहि।
वह वलखान ठिल्लिरिय,सीस सिप्पर समेत ढहि॥
तीजवान ताकत, ओहि करि आलम गोइय।
वैद्वान खुरसान- खान मुख मद्धि समोइय॥
पचमौ धरत धरणी धरकि, भरकि पुट्ठि गोरी सुभर।
अस उंच वाह अस्तुति करै, ख्रूब ख्रूब ह्यंदू सुहर॥३५६॥

शब्दार्थः—वीय=दूसरा। सिंदूक=साधा। जानि=जानकर। सुरतान खान=मुस्लिम बादशाह को। वहि=छोडा। ठिल्लरिय=ठिल गया, प्रवेश कर गया। सिप्पर=ढाल। तीज=तीसरा। आलम=सब, सारी सेना। गोइय=छिप गई। वेद=चौथा। समोइय=समा गया, प्रवेश कर गया। भरकि=भड़क कर, भयभीत होकर। अस=ऐसे, इस प्रकार। उंच वाह=हाथ उठाकर। ख्रूब ख्रूब=वाह, वाह, धन्य है। ह्यंदू सुहर=हिन्दू वीर (नरेश)।

अर्थः—इस प्रकार एक वाण द्वारा उजवक को छका पृथ्वीराज ने शाह को पहचान कर दूसरा वाण साधा, जिससे वह वलखान के जा लगा और उसका सिर उठा हुई ढाल सहित कट गया। जब पृथ्वीराज ने तीसरा वाण निशाने पर लिया तब सारी सेना यह देख ओह २ करती हुई छिप गई। चौथे वाण ने खुरासानखां

के मुँह मे जाकर प्रवेश किया। पाचवां वाण हाथ मे लेते ही पृथ्वी कपायमान होने लगी और गौरीशाह के योद्धा भयभीत होकर पीछे की ओर खिसकते हुए हाथ उठा-कर "धन्य है हिन्दू नरेश" कहते हुए प्रशंसा करने लगे।

दोहा

रण रुध्यो गिद्धिनि कहै, सिद्धि सँजोई कत।
समली स्याम सु लच्छिनी, जडजिय कहन्त्रिप अत ॥३५६॥

शब्दार्थ:—सिद्धि=सिद्धनि, योगीनी स्वरूपा। जडजिय=इस जड जीव को। कह=कहो।

अर्थ:—उधर दिल्ली के राज महलों मे स्थित सयोगिता आकाश मे उडती हुई गिद्धनी से कहने लगी—हे योगिनी स्वरूपा श्यामवर्ण वाली सुलक्षणी गिद्धनी! मेरा प्यारा (पृथ्वीराज) रण मे घिर गया था सो अन्त मे क्या हुआ? वह वात इस जड जीव से कहो।

हे जड तौ वड गिद्धनी, जिहि गिलि हड्डरु मम।
समली स्याम सुलच्छिनी, उडत न मुक्किय हस ॥३६०॥

शब्दार्थ:—जड=जड, मूर्ख। गिलि=गिल जाती, भक्षण कर जाती हड्डु=हड्डियें, अस्थियां। मुक्किय=छोड गया, बिछुड गया। हस=सूर्य स्वरूपी।

अर्थ:—हे श्यामा गिद्धनी तू! सुलक्षिणी होते हुए भी मेरे प्राणों के समान ही वडी जड (मूर्ख) है। वीरों की अस्थियाँ एव मास भक्षण कर तू उड जाती है, किन्तु सूर्य स्वरूपी मेरे प्यारे के बिछुडने पर भी मेरे प्राण पखेरु तो अब तक नहीं उडते (ऐसे निष्ठुर) हैं।

हे चिल्हिनि गल्हनि सुजग, धज सम धवलि नरयद।
और ण पल पपिनि परइ, अलप जलप इन गद ॥३६१॥

शब्दार्थ:—गल्हनि=गदर, ख्याति यश। धज=ध्वजा। धवलि=उज्ज्वल पवित्र। औरण=और कुछ नहीं। पपिनी=पापिनी। परइ=पड जाय, मिल जाय। अलप=अल्प। जलप इन=जल्पे, सभाषण करे।

अर्थ:—हे चिल्हनी! उस पवित्र नरेश्वर की यश पताका ससार मे लहराती रहती है। मुझे और कुछ भी इच्छा नहीं, पल मात्र के लिये मेरी यह पापिनी पलकें मिल जाये

और कभी २ निद्रा में ही आकर वे मुझ से अल्प संभाषण कर लिया करें तो मुझे सात्वना मिले।

उडि पंखिनि अंखिनि निरखि, अखिन अखंडल लग्गि।
घरी एक पच्छे प्रगट, वीर विभाइय जग्गि ॥३६२॥

शब्दार्थ:—अखिन=कहा। अखंडल=विश्व। लग्गि=तक। विभाइय=विभाव, भाव।

अर्थ:—यह सुनकर पङ्ख धारिणी गिद्धनी वहाँ से युद्ध स्थल की ओर उड़ी और सारे विश्व को दृष्टि गत करती हुई एक घड़ी के बाद (सयोगिता के समक्ष) आकर कहने लगी कि युद्ध मे वीर भाव जागृत हो उठा है।

त्रय जु समर गिद्धिनि समल, कह खह पत्ति सहाइ।
चवथि कंक वुद्धह सु वुध, आई कहन विभाइ ॥३६३॥

शब्दार्थ:—त्रय जु समर=तृतिया के दिन का युद्ध। खह=आकाश की ओर उड़ी। पत्ति सहाइ=पङ्खों के सहारे। चवथि=चतुर्थी का। कंक=युद्ध। वुद्धह=बुधवार। सु वुध=श्रेष्ठ बुद्धि वाली। विभाइ=विभाव, वीर भाव।

अर्थ: उस श्रेष्ठ बुद्धि वाली श्यामा गिद्धनी ने तृतिया के युद्ध का हाल कह सुनाया। इसी प्रकार चतुर्थी बुधवार के युद्ध मे वीर भाव जागृत हुआ, उसे भी कहने के लिए आई और पङ्खों के सहारे आकाश की ओर उड़ती हुई चलती बनी।

कवित्त

डमरु हथ्थ ढकिनिय, दसनु इक्कुइ अधराणनु।
स्याम तिलक सुर हीन, कांन लंबे कधा जनु॥
उधे केस सिर रुलिग, नैन प्यंगिय कुच नंगिय।
पल अलग्ग आलग्ग, चग्ग अमर कटि ढंगिय॥
पुस्तक प्रसग वंचइ विहत, राज-रवनि मडहि श्रवन।
त्रर वान विवर्नो पंचमो, सुणि सुन्दरि जुद्धह-रवन ॥३६४॥

शब्दार्थ:—दसनु=दांत। इक्कुइ=एक। अधराणनु=ओष्ठों के बाहर। सुर हीन=स्वरमग, कुस्वर। जनु=जिनके, जिसके। रुलिग=हिलते हुए, बिखरे हुए। प्यंगिय=पिंगल वर्ण। अलग्ग-आलग्ग=अलग अगल खुली हुई। चग्ग=चगी, स्थूल। ढगिय=ढकी हुई। विहत=हत, नाश,

युद्ध विषयक। मडहि=लगाये। वान=वाणी। बिन्नौं=वर्णन करती हूँ। पंचमी=पाचवें दिन का या पचमी का। सुणि=सुनो। जुद्धन-रवन=युद्ध कीड़ा।

अर्थः—पंचमी के युद्ध का हाल कहने के लिये एक डाकिनी आई। जिसके हाथ में डमरु था उस डाकिनी के औष्ठों के बाहर एक दात निकला हुआ था। भाल पर श्याम तिलक लगा रखा था। जिसका स्वर-कुस्वर था। कन्धों तक जिसके लम्बे कान थे। सिर पर जिसके हिलते हुए ऊर्ध्व केश थे। जिसकी आँखे पिगल वर्ण थीं, जिसके स्तन वस्त्र रहित थे. पलकें जिसका खुली हुई थीं (आँखे फाडे हुए थी) स्थूल कमर जिसकी वस्त्र से ढॅकी हुई थी ऐसी वह भयावनी हाथ मे पुस्तक लिये हुए युद्ध-प्रसग पढ़ रही थी। उस डाकनी की ओर पृथ्वीराज की रानी सयोगिता ने कान लगाये तव वह डाकिनी कहने लगी कि हे सुन्दरी! मैं श्रेष्ठ वाणी से पचमी की युद्ध-कीडा का वर्णन करती हूँ, उसे तुम सुनो।

गरुड कध त्रप ठुक्कि, हक्कि नखतु मिन्छनि पर।
भरहरि भगत मसद, घात त्रिघात धुकत धर॥
भमर समर विसमत, दत दतिनि गहि डारतु।
श्रोन छिंछि छवि अग, मनहु रितुराज समारतु॥
तक्कतु तिनंहि तेइ धर ढरत, झरत सुमन सिर अमरह।
जै जया सद्द सुर णर करहि, ईस अनदित समरह॥३६५॥

शब्दार्थः—गरुड=पृथ्वीराज के घोडे का नाम। ठुक्कि=थपेड कर। हक्कि=बढाकर। नखतु=डाला। भरहरि=मर्रा कर। घात त्रिघात=भयानक आग मे धुक्त धर=धराशाई होने लगे। ममर=भ्रामरि, भॅवरी, जल चक्र। विसमत=विस्मय। श्रोन छिंछि=शोणित धारा। समारतु=सँवारा, साजसजा। तक्कतु=ताकता, देखता। झरत=बरसते। जै जया सद्द=जय जयकार। णर=नर। अनदित=प्रसन्न। समरह=युद्ध में।

अर्थः—वह डाइन कहने लगी— राजाने युद्ध मे अपने गरुड नामक घोडे का कधा थपथपाकर मुसलमानो की ओर बढ़ाया। जिससे मसनद वारो विपक्षी वीर भर्राकर (थर्राकर) भागने लगे। तथा पृथ्वीराज के असह्य वार होने से शत्रु धराशाई होने लगे। उस समय युद्ध-वारिधि मे भ्रामरी (जल चक्र) पड रही

हो-ऐसा विस्मय होने लगा। वह वीर-नरेश्वर-हाथियों के-दांत पकड़ २- कर-उन्हें पछाड़ने लगा उस वीर राजा का शरीर खून की धाराओं मे भींगा हुआ ऐसी शोभा पाने लगा मानों ऋतुराज ने साज सजाया हो। वह राजा जिसकी ओर देखता वही शत्रु पृथ्वी पर लुढ़कता हुआ नजर आता था। उस राजा के सिर पर आकाश से पुष्प वृष्टि हो रही थी तथा देवता और मनुष्य उसकी जय २ कार कर रहे थे। उस को युद्ध करता हुआ देखकर स्वयं शिव भी प्रसन्न हो रहे थे।

दोहा

पुणि प्रथिराज नरयंद परि, घन जिम वुठ्ठत सार।
परति उपल णर-वुंद जनु, अनी न भिद्दत धार ॥३६६॥

शब्दार्थः—परि=पर। सार=लोहा, शस्त्र। उपल=पत्थर। णर-वुंद=जल की बुंदे। भिद्दति=भेदती, छेदती।

अर्थः—फिर राजा पृथ्वीराज के शरीर पर शत्रुओं द्वारा बादल वर्षा के समान लोहा बरसने लगा, किन्तु पत्थर पर जैसे बूंदे पड़ती हों, वैसे वह (लोहा) पड़कर रह जाता था। उसके शरीर को न तो अनी और न धार ही छेद सकती थी।

साटक

श्री सोमेसर नंदु वढ्ढिय वल, वन खंड दावानल।
ढालं ढाल उढाल उथ्थल पथं, आघात आरीठयं ॥
रूठेय जम जान अती कतं, हालाहलं वित्तयं।
विस्मे गज्जन साहि चढ्ढिय गज, ह्य दूय अद्भुत वल ॥३६६॥

शब्दार्थः—नंदु=नंद पुत्र। वन खड=खाण्डव वन। उढाल=ढलक पड़ी। आरीठयं=लगातार। रूठेयं=रुष्ट हुआ। अती कतं=अन्त करने को। हालाहल=हलाहल। वित्तय=वरता, छाया। विस्मे=विस्मय। ह्य दूय=हिन्दूराजा।

अर्थः—उस सोमेश्वर के सुपुत्र (पृथ्वीराज) ने इस प्रकार वल वृद्धि की मानों खाण्डव वन में दावानल प्रगट हुई हो। उस समय ढालों से ढालें टकराकर नमने लगी और उसके लगातार आघातों से शत्रु समूह उथल पुथल होने लगा। वह विपक्षियों का अन्त करने के लिये क्रोध करता हुआ यमराज के समान दिखाई दिया। उस समय युद्ध में विशेष हलाहल छागया। इस प्रकार पृथ्वीराज को

युद्ध करते हुए देखकर शहाबुद्दीन के हृदय में विस्मय हुआ और कहने लगा—अहो! इस हिन्दू राजा मे अद्भुत बल है।

कवित्त

वज्रपात त्रिघघात, धरणि कै अम्मर तुट्टिय।
दरिया दधि जनु मथत, मद्धि गिरि नेत अहुट्टिय ॥
हनवॅत द्रोन उपारि, आनि नखिय उलकिय टट।
गोवर्धन गोकुलिक नाथ, छड्यउ कि वीर घट ॥
दल धरकि धरणि सिप्पर धरै, दैव कि किहि उप्प परै।
डकिनिय कहइ तुव कत इमि, सुव्विहान अस्तुति करै ॥३६८॥

शब्दार्थः—त्रिघघात=आघात। दरिया=दलन करने वाले विरोधी। दधि=उदधि, समुद्र। नेत=नेत्र। अहुट्टिय=छूट कर। उलकिय-टट=उल्कापात। वीर घट=वीर की तरह। दल=दिल। सिप्पर=सर्प। सुव्विहान=सुभान।

अर्थः—उस वीर के आघात से वज्रपात की शङ्का होने लगी, या पृथ्वी पर आकाश टूट पडा हो, अथवा एक दूसरे के विरोधी देव दानव मिलकर पर्वत द्वारा सिन्धु मन्थन कर रहे हों, तथा हनुमान ने द्रोणाचल को उठाकर डाल दिया हो, उल्कापात हुआ हो, गोकुलेश्वर ने वीरता के तरीके को ग्रहण कर गोवर्धन पर्वत को उठाकर छोड़ दिया हो। यह देखकर धडकते हुए दिल से शेष नाग ने पृथ्वी को दृढता पूर्वक धारण किया। पृथ्वीराज के आक्रमण से देवताओं के आक्रमण करने जैसा आभास होने लगा। डाकनी कहने लगी—कि हे संयोगिता! तेरे पति पृथ्वीराज का इस प्रकार युद्ध करता हुआ देख कर मुसलमानों का देवता स्वय उसकी स्तुति करने लगा।

कवित्त

निरखि राज पृथिराज, दिट्ठ महमुद करारिय।
मुट्ठि बान मडयो, तक्कि ताजो उप्पारिय ॥
बथ्थ तथ्थ चित्तिय समथ्थ, चहुआन मनि मन
धरिय भलक्क सिंगिनिय मुनल त्रिपभाल काल फन ॥

नंखयौ तानि हिंदू विहद, आवतो सर मार मनि ।
खंचेवि—हयौ केवर कहर, तुट्टै मद्धि निरुद्ध उनि ॥३६९॥

शब्दार्थ:—पुट्ठि=पुष्टिका, हाथ। मड्यो=लेकर। तक्कि=ताकते हुए। ताजी=ताजी जाति के घोड़े को। उप्फारिय=तेज किया बढ़ाया। वथ्थ=वथ गुथ होना, बाहु युद्ध करना। तथ्थ=उस समय, या-उसने। चिंतिय=सोचा, निश्चय किया। मनि-मन=मन से मानकर, मन से सम्मान कर के। झलक=झलकता हुआ, उत्साह पूर्वक। सिंगनिय=सिंजनी, चाप, प्रत्यचा। सुलल=सल सलाता, चमचमाता। नंखयौ=छोड़ा, चलाया। तानि=ऐंचकर। हिंदू=हिन्दु नरेश, पृथ्वीराज। विहद=जोरसे। मार मनि=वार होता देख कर। हयो=मारा, छोड़ा। केवर=बल करके। कहर=विघ्नकारी। निरुद्ध=टकराकर। उनि=वह, या-उसे।

अर्थ:—उस समय पृथ्वीराज ने महमूद खां की ओर क्रूर दृष्टि डालते हुए हाथ में तीर लेकर उसे चढाया और उसे साध कर अपने ताजी घोडे को उसकी ओर बढ़ाया। उधर उस वीर विपक्षी ने चाहुआन राजा का मन से सम्मान कर बाहु युद्ध करने का निश्चय किया इसी समय हिन्दू नरेश पृथ्वीराज ने उत्साह पूर्वक अपनी प्रत्यचा पर चम चमाता हुआ काल स्वरूपी सर्प के फन के समान विपाक्त तीर चढ़ाया तथा जोर से खींच कर उसे छोडा। उसके वार को अपने ऊपर होता हुआ देख कर उस विपक्षी ने भी अपना तीर जोर से खींच, राजा के आते हुए तीर को रोकने के लिये छोडा, किन्तु राजा के द्वारा छोडा-गया तीव्र गामी तीर ने, उससे न रुक कर उस बाण को बीच में ही टकराकर तोड़ दिया।

पुख भाग परि अग्र, उड्डि आयास खोनि पर ।
लगि बान सपख, मनो बिन हंस धरा ढरि ॥
अग्र बान लगि उरनि, भयौ महमुद सुरेसं ।
बडौ अंग त्रिढंग, मनो बिल उरग प्रवेसं ॥
महमुंद विकल तन परि अवनि, जानि कि नट्टह लाग सजि ।
धन धंन्य सयल जपिय सकल, विकल चित्त विभ्रम्म रजि ॥३७०॥

शब्दार्थ:—पुख भाग=पख भाग तीर पर लगे हुए पंख। आयास=आकाश। खोनि पर=छोणि (पृथ्वी) पर टकरा कर। बिन हंस=प्राण पखेरू रहित। ढरि=ढलका, पड़ा। अग्र बान=

पहला बाण। सुरेस= इन्द्र। बडो अग=उत्तग शरीर। विद्धग=वेधकर। प्रवेस=प्रवेश करता हो। लाग=एक प्रकार का खेल। सयल=सकल, सब। विभ्रम्म=भ्रमित, विस्मित। रजि=होगये।

अर्थः—राजा (पृथ्वीराज) का वह शर विपक्षी के बाण को तोडता हुआ उसके अङ्ग को बेध कर जमीन पर जा टकराया। जिससे उसमे लगे हुए पक्ष (पाँखें) टूट कर वहीं जमीन पर पड़गए, किन्तु भल्लिका (लोह फल) आकाश की ओर उड़ गई जब वह सपक्ष बाण शत्रु के लगा तब वह गिरता हुआ ऐसा दिखाई दिया मानों उसके प्राण पखेरू पहले से ही नहीं थे। पृथ्वीराज का वह पहला (एक) ही शर महमूद के लगा जिससे वह सछिद्र-इन्द्र के समान दिखाई दिया। उस विपक्षी के ऊँचे शरीर को बेध कर बाण इस प्रकार घुस गया मानों किसी बडे बिल मे सर्प ने प्रवेश किया हो। वह शत्रु इस प्रकार विकल होकर जमीन पर गिर पडा मानों नट ने लाग का खेल (कृत्रिम काट मार) रचा हो। पृथ्वीराज द्वारा इस प्रकार का शर-प्रहार होता हुआ देखकर सब धन्य २ कहने लगे और जितने विपक्षी थे वे सब चिंतित और विस्मित होने लगे।

दोहा

देख्यौ देव रस मद्यत, रण ठठ्ठौ चहुआन।
फिरि घेर्‌यौ गोरी सयन, मनहु नछित्रनि भान ॥३७१॥

शब्दार्थः—मद्यत=मतवाला। ठठ्ठौ=खडा हुआ,डटा हुआ। नछित्रनि=नक्षत्र ग्रह। भान=सूर्य ग्रह।

अर्थः—युद्ध में मतवाले उस देव स्वरूपी चाहुवान को डटकर सामाना करते हुए देख गौरी सेना ने उसे इस प्रकार जा घेरा मानों नक्षत्र सूर्य-ग्रह को घेरे हुए हों।

कवित्त

निहुटि वान विछुट्टि दिट्ठि उन्निय मुठि भीनी।
कछु घट्टा रहि घत्त, स गुन जजरि विध्धूनी॥
कछु आवर्दा सत्त, मारि अट्ठा दिन उन्नी।
टोपा सहित सिद्दक, लुट्टि सु मी रहि भुन्नी॥
अलि अलिय वद लग्गे कहर, धर वमकि मुच्छिय वरह।
इक्कीस खान खुरसान सम, वरणि राज गहिकहि भरह ॥३७२॥

शब्दार्थः–चिहुटि=चिहुटे, जाकर लगे। घट्टारहि=घण्टारव करने लगी। घत्त=वार करती हुई। गुन=चाप, प्रत्यचा। जजरि=जंभेड़ी जाकर, हिलकर। विधूनी=धुनती हुई। आवर्दा=आयु। सत्त=सात। मारि=मार सहकर। उन्नी=उनकी। सिंदूक=सधान करने वाले निशाने बाजों की। वद्द=कहने लगे। कहर=विघ्न। मुच्छिय=मूर्छित होने लगे। धरणि राज=पृथ्वीपति, पृथ्वीराज। गहिकहि=गहकता हुआ, गर्जना करता हुआ। मरह=भिडने लगा।

अर्थः—यह देख पृथ्वीराज ने बाण चलाये, जो शत्रुओं के जाकर लगे। उस समय उसकी दृष्टि शत्रुओं की ओर ही संचार करती रही और बार २ कमान खींचने से हाथ पसीज गये। प्रत्यचा हिल २ कर धुनती हुई घण्टारव सा कुछ २ आभास कराने लगी। उस समय युद्ध में जो भी भिडे, वे यदि बच भी गये तो उनकी आयुष्य सात आठ दिन ही शेष रही (अर्थात् वे भी विशेष घायल हो जाने से मर गये)। शेष सधान करने वाले वीरों के शिरस्त्राण सहित शत्र झरते हुए भूमि पर लुढकने लगे। ऐसा विघ्न उपस्थित होने पर वे अली २ पुकारने लगे। उस समय भूमि धडधड़ाने लगी और शत्रु मूर्छित होकर धराशायी होने लगे। उसी समय इकत्तीस खुरासानी खानों से राजा पृथ्वीराज रणस्थल मे गर्जना करता हुआ जा भिडा।

ले दधे ह्यंदूव, देव वाराह करण भख।
पैगामर कै पास, वान हीसाण भरण लख॥
हथ्थ मडि आरज्ज, लई मंमा महि छीनी।
जैचदा जलुखाइ, तेग तिस उप्पर क्यनी॥
कै वार हथ्थ दीना हिया, अब लभ्भै पच्छा किया।
इकतीस मसद विसद भिरि, लेहु लेहु राजन जिया॥२७३॥

शब्दार्थः–पैगामर=पैगम्बर। कै पास=क्या पास में आया, क्या हाथ लगा (यह ठीक नहीं किया)। हीसाण=हिंसा करने वाला, मारने वाला। भरण=भिड़ने वाला। लख=लाखों से। हथ्थ मडि=हाथ पसार कर। आरज्ज=आर्य। लई=ली। ममा-महि=मातुल की भूमि, नाना की भूमि। जलुखाइ=झुलसा गया, झुलस गया। क्यंनी=की, छाई। हथ्थ दीना=हत दिया, वेध दिया। अब लभ्भै=अब पाते हैं (देखते हैं)। पच्छा किया=पीछा करते। विसद=विपद। लेहु लेहु=पकड़लो। जिया=जीवित।

अर्थः—कवि कहता है कि हिन्दू नरेश जो वाराह स्वरूपी था (वाराह राय जिसे, कौलाराय, कौलापिथोरा कहते हैं) उसे बधन में ले उसका नाश कर हे पेगम्बर ! तुमने ठीक नहीं किया। वह वीर अपने बाण के बलपर लाखों से भिडकर उनको मारने वाला था। जिस आर्य ने अपने मातुल की भूमि (दिल्ली को) को दान मे प्राप्त की थी, जिससे जयचंद झुलस गया था, उस जयचन्द पर उस वीर ने तलवारें छा दी थी और उसनें कई वार शत्रुओं के हृदय को वेध दिया था। अब उन्हीं शत्रुओं को हम उसका पीछा करते हुए देखते है। आज ३१ मसनद धारी वीर विपद सेना सहित उसी नरेश्वर को जीवित पकडने के लिए आवाज देते हुए बढ रहे है।

दोहा

कहैं मेछ मुह अग्गरै, वे काफर फरजद ।
वाह खांन खुरसान की, स्यगिणि अप्फि नर्यद ॥३७४॥

शब्दार्थः—मेछ=मुसलमान । मुह अग्गरे=बादशाह के समक्ष। फरजद=औलाद । स्यगिणि= सिंजिनि, चाप । अप्फि=डाली।

अर्थः—बादशाह को प्रसन्न करने के लिये मुस्लिम उसके सामने कहने लगे कि काफिर की औलाद के गले मे चाप डालने वाले खुरासानी वीरों को धन्य है।

सह्यौ न वोलु समुह हयौ, वान खान खुरसान ।
यह अपुव्व संजोगि सुनि, दिनु पलट्यौ चहुवान ॥३७५॥

शब्दार्थः—हयो=हिया, हृदय।

अर्थः—डाकिनी कहने लगी—हे सयोगिता ! जिस पृथ्वीराज ने कभी शत्रु का बोल तक नहीं सहन किया उसने खुरासानी वीरों के बाण हृदय पर सहन किये। यह अपूर्व घटना उस वीर के दिन पलट जा ने के कारण से ही हुई।

दिन पलटै पलट्यौ न मनु, भुज वाहे सब सस्त्र ।
अरि भिट्टै मिट्टै कवन, लिख्यौ विधाता पत्र ॥३७६॥

शब्दार्थः—सब=सब। अरि भिट्टै=शत्रुओं ने भेट (स्पर्श कर, पकड़) लिया।

अर्थः—यद्यपि राजा के दिन पलट गये किन्तु उसका मन युद्ध स्थल से नहीं डिगा, उसने सब शस्त्रों के प्रहार किये बाद मे शत्रुओं ने उसे पकड़ लिया। विधाता के लिखे हुए लेख कौन मिटा सकता है ?

श्लोक

विधाता लिखितं जस्य, न चे मुच्यति मानवा'।
म्लेच्छानि मूर्ध्नि हस्तं, साहियं दिल्ली स्वरं ॥३७७॥

शब्दार्थः—जस्य=जैसा। मुच्यति=मुक्त होना। मूर्ध्नि=प्रत्यंचा। साहिय=पकड़ा।

अर्थः—जो विधाता लिख देता है उसके विपरीत मनुष्य कुछ भी नहीं कर सकता। इसलिये दिल्लीश्वर म्लेच्छों द्वारा प्रत्यचा गले मे डालकर पकड़ लिया गया।

कवित्त

पूंजा पैज पहार, वलिय वकट वँघ तोरे।
जुग्गिनि पुरिय सनाह, देव देवर रण वोरे॥
दहिया जंगल राइ, चद्रसेना पति तारै।
भारी भारथ राइ, अर्क करिवर उच्छारैं॥
ठठरिय टांक चांटा चपल, चावद्दिसि रक्खै नृपै।
देव तीतुंग चहुवान नृप, त्रिभ्भाई भोयन जपै ॥३७८॥

शब्दार्थः—पूंजा=पुजराज यादव (शशिव्रता के पिता)। पज पहार=जिसकी प्रतिज्ञा पर्वत तुल्य अटल थी। वलिय=वलवान राजा पृथ्वीराज। वकट=विकट। वँध=वधन। जुग्गिनि पुरिय=दिल्लीश्वर का। सनाह=कवच। देव=देव तुल्य। देवर=देवालय, देवास (का निवासी)। दहिया=दहिया जाति का क्षत्रिय। जगल राइ=जगल धरा का रहने वाला। तारै=बचाया। भारी भारथ=महायुद्ध। राइ=राजा (पृथ्वीराज)। करिवर=करवाल, तलवार। उच्छारै=चलाई। देवतीतुंग=त्रिकूट पर्वत के देव तुल्य। त्रिभ्भाई=वीर भाव। भोयन=भयावनी, डाइन।

अर्थः—फिर डाकिनी सयोगिता से आगे कहने लगी-कि पर्वत के सदृश जिसकी अटल प्रतिज्ञा है। उस वीर पुंजराज (शशिव्रता के पिता) ने मुसलमानों द्वारा पृथ्वीराज पर डाले गये विकट बंधन (प्रत्यचा) को तोड दिया। वह दिल्लीश्वर का

कवच रूप वीर जो देवालय (देवास) का निवासी देव स्वरूप ही था उसने शत्रुओं को रण सिन्धु में डुवा दिया। जगल धरा के रहने वाले चन्द्रसेन नामक दाहिमे वीर ने भी अपने स्वामी पृथ्वीराज को वचा लिया। उस महायुद्ध मे बन्धन से मुक्त हो राजा पृथ्वीराज ने सूर्य के समान चमकती हुई तलवार उठाई। ठठरीराय और टांक भाटा भी राजा के आसपास रहकर उसकी रक्षा करते रहे। उस युद्ध स्थल मे वह चाहुवान नरेश त्रिकूट पर्वत के देवता के समान दिखाई दिया।

असम विखम वकौ न्रपति, गनतु न इक्क अनेक।
समर समुद अरि ग्रसन कहुँ, ज्यों वडवानल एक ॥३७९॥

शब्दार्थः—विखम=विपम। इक्क=अकेला।

अर्थः—जिसकी समानता कोई भी नहीं कर सकता ऐसा वह विपम वीर वांका पृथ्वीराज अकेला अनेकों को कुछ नहीं समझता था जैसे एक ही वाडवाग्नि सारे समुद्र का शोपण कर देती है।

अलि गज्जहि अज्जम सुवन, भिरि भिरि हिंदुव मिच्छ।
आलम विनु हवँदु आलमहि, साहन सह गहि इच्छ ॥३८०॥

शब्दार्थः—अज्जम सुवन=अजय पाल का वशज। आलम=साथी, सेना। आलमहि=शाह के साथी। साहन=पकड़ने को। गहि इच्छ=इच्छा की।

अर्थः—हे अलि! वह अजय पाल का वशज (पृथ्वीराज) उस समय गजना कर रहा था और हिन्दु एव मुस्लिम योद्धा भिड रहे थे, किन्तु हिन्दूराजा की सेना को नष्ट प्राय देखकर शाह और उसके सब साथियो के मन मे राजा को पकडने की बार २ इच्छा हो रही थी।

ना रगि भेरौ भूत तन, अलि गल आलमखान।
पति पिरोज पेरोज नौ, मुवर चॅप्यौ चहुवान ॥३८१॥

शब्दार्थः—ना रगि=नहीं हटा। भूत=दानव। पति-पिरोज=पिरोजा (केशरिया) वाना (पोशाक) धारण किये हुए नर पति। पेरोज नौ=फिरोजखां को। चँप्यौ=दाबा।

अर्थः—हे अलि! तेरा पति केशरिया वाना (पोशाक) धारण किया हुआ भैरव और दानव-काय वीर पृथ्वीराज है वह युद्ध स्थल से नहीं हटा और उसने आलमखाँ एवं पीरोजखाँ का गला अच्छी तरह से पकड़ कर दबाया।

कवित्त

वान एक वाराह, खान ढाहे धर उप्पर।
करण राइ कलहंत, खिनक भिर्यौ सिर जुप्पर॥
औ हट्ठी गभीरु, वीरु विरच्यौ वारुणि वर।
दस मसद मसलिग महत, आवलिकर उप्पर॥
सा वलिग स्यघु पट्टन पती, मति सुमेर सुरतान सम।
संजोगि सुनहि डकिनि कहै, सचु पयपों सु मति हम॥३८२॥

शब्दार्थः—वाराह=वाराहराय, कौला पिथोरा, पृथ्वीराज। करण=करने को। कलहत=अंतिम कलह। सिर जुप्पर=औरों के सिर। गभीरु=गहरा, महान। विरच्यौ=प्रचारा ललकारा। वारुणि=हाथी। मसंद=मसनदधारी। आवलिकर=बट खाता हुआ। सा=वह। वलिग=लग गया, भिड़ गया। स्यघु=सिंह। पट्टन पती=प्रतना (सेना) का स्वामी। सचु=सत्य। पयपों=कहती हूँ।

अर्थः—उस वाराह वीर (कौला पीथोरा, पृथ्वीराज) ने एक बाण से ही अनेकों मुसलमानों को धराशायी कर दिया और वह अंतिम कलह की इच्छा कर क्षण मात्र में विपक्षियों के सिर पर सवार हो गया। उस महान् हठधारी ने हाथियों को ललकार कर मसनदधारी दस वीरों को मसल दिया और शत्रुओं पर विशेष क्रुद्ध हो गया। सेनापतियों का वह शेर और मति का सुमेरु स्वयं सुलतान का सामना करता हुआ लड़ने लगा। डाकिनी कहने लगी कि हे संयोगिता! मैंने यथा मति तुझे सत्य २ कहा है।

कवित्त

आलम खां इक वान, इक्क वानह सुअ भैरू।
एक वान नारिंगनेस, जगिय कुल केरू॥
छत्र चोर सव्वान, नेज भड़े भक भोरिय।
कट्टै अरि अकुरिय, तिखव तोरन तन तोरिय॥

हिंडोल लोल छिन-छिन फिरिग, कर कमान कदल करह ।
बारधि बिलोरि सुरतान दल, जदो जाजु अतुलित बलह ।।३८३।।

शब्दार्थः—भुग्र=भ्रमादिया, नष्ट कर दिया । मैरूं=मेहरा । नारिंगनेस=नारगराय । केरू=कौरव । सब्बान=सब के । नेज भंडे=नेजे और भंडे । श्रकुरिय=उठे । तिरख तोरन=नाशकर्ता तीक्ष्ण शस्त्र । हिंडोल लोल=चपल गति से चल पड़ने वाला । फिरिग=मुडपडा । कदल करह=नाश करने लगी । बारधि=वारिधि, समुद्र । बिलोरि=बिलोया, मथन कर दिया ।

अर्थः—उसी समय जाजराय यादव आगे बढा । उसने एक बाण आलमखां के मारा, दूसरे बाण से शाह पक्ष किसी मेहरा वीर को नष्ट कर दिया, तीसरे बाण से शाह के पक्षी वाले कौरव वंशी भारी वीर नारगराय को छकाया और सब के छत्र चामर और भंडों को भकभोर (हिला) दिया जो भी शत्रु उसकी ओर उठा, उसे उसने अपने नाश कर्ता तीक्ष्ण शस्त्रों से नष्ट कर दिया । वह युद्ध भूमि में चपल गति से चलने वाला वीर क्षण में शत्रुओं की ओर मुड पडता और उसकी प्रत्यचा शत्रुओं का नाश करने लगती थी । उस अतुल्य बलवान वीर ने सुलतान के दल सिंधु का मथन कर दिया ।

अतुलित महमद महि मसद, असु असन नये तिग ।
सतुलित सारथि कर कमध, जबूर बहतिग ।।
मतुलित मीरा महिरवान, धुक्किय धर नक्खिय ।
धर परत सामत, मार मारह कर हक्किय ।।
जग्गयो जाज आवाज सुनि, सज्जि परिंत गैवर घटिय ।
हय हय जु गह त्रिभुवन त्रिपुर, बर बिमान कुलटह लुट्टय ।।३८४।।

शब्दार्थः—अतुलित=अतुल्य । महमद=महमदखां । असु असन=घोड़ों सहित मुसलमानों को, या-बहुत से घोडों को । नये=नमादिये, भुकादिये । तिग=उसने । सतुलित=सामने तुलने वाले, सामना करने वाले । कर कमध=कमध कर दिये, मस्तक रहित कर दिये । जबूर=छोटी तोपें । बहतिग=चलाने वाले । मतुलित=मत में अतुलित, मन्त्रणा देने में महत । धुक्किय=लड़खड़ाता हुआ । धर नक्खिय=धराशाई किया । हक्किय=डटा । जग्गयो=जाग्रत हुआ । सज्जि परिंत=सज पड़ने वाले, आगे डटते हुए वीर । गैवर=हाथी । घटिय=कम होगये, समाप्त होगये । हय हय जु गह=हाहा कार । त्रिपुर=तीनों लोकों में कुलटह=कुलटायें, सुर नाग नारियों, अप्सराओं के । लुट्टिय=चल पड़े ।

अर्थः—उसने अतुल्य बली महम्मद (मुहम्मद) खाँ को धराशाई करदिया। घोड़ों सहित कितने ही मुसलमानों को पृथ्वी पर झुका दिया। जंबूरे (छोटी तोपें) दागने वाले और सामना करने वाले शाह के सारथी (सहायक) तुल्य वीरों को मस्तक रहित कर दिया और मन्त्रणा देने में जो महत था ऐसे महरवान मीरां को उसने लड़खड़ाता हुआ कर धराशाई कर दिया। अन्त में जाजराय (जाम्राय) पृथ्वी पर पड़ गया, किन्तु पुन वह मार २ शब्दोच्चारण करता हुआ खड़ा हो शत्रुओं की ओर बढा। उसकी आवाज सुनकर बढते हुए वीर और हाथी समाप्त हो गये। त्रिभुवन में हाहाकार मच गया तथा तीनों लोक मे जहाँ कहीं अप्सराये थीं, उनके विमान उस वीर का वरण करने के लिए युद्ध भूमि की ओर आते हुए दिखाई दिये।

पारिहारि पीपा प्रसिद्ध, सुरतान ज़ु दिट्ठिय।
बिहर कुंत सामंत, अत अतरिय सु नट्ठिय॥
पति पसाव पडव जुरत हक्किय हक्कारिय॥
उलहल्ले हलकारि, कुन्द वदन उच्छारिय।
बल बिखम सुखम स्वामित मतह, हित सु राज रज्यौ रनह।
इय वाह वाह हिंदुअ तुरक, समर सस्त्र तुट्टिय तनह॥३८४॥

शब्दार्थः—पारिहारि=प्रतिहार क्षत्रिय। बिहर कुंत=कुंत प्रहार करने लगा। अतरिय=अंतर, बीच की आड़। नट्ठिय=नष्ट हो गई, टूट गई। पति पसाव=स्वामी की कृपा (प्रताप) से। पडव=स्वयम्। हक्किय=हांकता हुआ, भगाता हुआ (या बढता हुआ)। हक्कारिय=हुँकार की। उलहल्ले=उल्लहित, उल्लसित। हलकारि=ललकार कर। कुन्द=खण्डनकारी, नाशकारी। उच्छारिय=फेंकने लगा। बिखम=विषम। सुखम=सूक्ष्म। स्वामित=स्वामि धर्म का पालन कर्ता। मतह=मतवाला। इय=इसे। वाह वाह=धन्य है।

अर्थः—प्रसिद्ध सामन्त पीपा प्रतिहार बादशाह को देखते ही कुंत प्रहार करता हुआ उसकी ओर बढा जिससे बादशाह और उसके बीच मे जो सैनिकों की आड थी वह अन्त में टूट गई और वह अपने स्वामी की कृपा से स्वयम् हुँकार करता और शत्रुओं को भगाता हुआ गोरीशाह से जा भिडा। उल्लसित होता हुआ वह ललकार कर उस पर नाशकारी पाश फेंकने लगा। स्वामि धर्म धारण करने वाला वह

मतवाला वीर शाह की विषम सैन्य शक्ति को सूक्ष्म मान कर राजा पृथ्वीराज के हित के लिए युद्ध भूमि मे सुशोभित हुआ। उसके शरीर पर लग कर जब शस्त्र टूटने लगे तब हिन्दू और मुसलमान उसे देखकर कहने लगे कि इस वीर को धन्य है।

दूसासन दिट्ठिय खँधार, आडौ पुर पारिय।
केप साहि उर चपि, वीर ववरि उच्छारिय॥
खान आन चहुआन, वान वर धरनि पछारिय।
रे हिंदू रे मुसलमान, भिरि भिरि पुक्कारिय॥
छडौ जुगोइ छडन जुगति, बर निसान बुल्ले मनह।
सक सिंघ नाद सिघह गुरिग, गहर गिंभ सिंघौ घनह॥३८६॥

शब्दार्थ:—आडौ पुर=आड़ा पड़ते हुए को, आड देते हुए को। पारिय=पछाड़ दिया। ववरि=भाल ववाल होता हुआ, कोध करता हुआ। आन=दुहाई। वान वर=श्रेष्ठ टेकधारी, दृढ प्रतिज्ञ। जुगोइ=जगकर, जागृत होकर। निसान=नक्कारे। बुल्ले=कहते, उपदेश देते। सक=सिक्काधारी। गुरिग=धराशाई हुआ। गिंभ=गर्जना कर। सिंघौ=नाम विशेष।

अर्थ:—उसी समय सिंघा प्रतिहार ने भी क्रोध कर आड देने वाले दु शासन रूपी खधारी वीर के सिर के बाल पकड कर सीने से सीना भिडा उछाल कर पछाड दिया। फिर उस दृढ प्रतिज्ञ ने चाहुआन राजा की दुहाई दे कितने ही मुसलमानो को धराशाई किया और भिडता हुआ हिन्दू और मुस्लिम वीरों को पुकार कर कहने लगा-ये नक्कारे डंके की चोट से हमे ये उपदेश वाक्य कहते है कि शरीर छोडना है तो जागृत होकर (युद्ध करते हुए) छोडना चाहिये। यही एक उत्तम युक्ति है। इस प्रकार गम्भीर गर्जना कर सिक्का धारी (प्रसिद्ध वीर) सिंहा, सिंह घोषकर सिंह के समान ही धराशाई हो गया।

घन घुरत गोरिय सयन्न, पीरोज खान चपि।
तिहि टट्टर तकि तेग, वेग झारिय झनक झपि॥
खुब साहि साहाव, खुब सनमान मुहन्निय।
गहि गरुवर परिहार, अस्त सम सम दुय अन्निय॥
नीधक्क धाम डिगम्महर, हट्ट मम सिंडिग असन।
याजी वनिक करि कुत्थरिय, जनु स्वारिक खनहक्क मन॥३८७॥

शब्दार्थः—घपि=छका दिया । टठ्ठर=तन पिंजर । तकि=देखते हुए । झपि=झपकती हुई, शीघ्रता पूर्वक । मुहन्निय=मुँह से, या यवन मुखियाओं ने । निधक्क-धाम=निधडक पने का घर, निर्भीक वीर । डिगम्महर=दिगमधर, दिशाओं को धारण करने वाले, दिगपाल । मिडिग=मसल दिये, चूर २ कर दिया । असन=घोड़े सहित । वाजी=वजती हुई । करि=कर । कुथ्थरिय=कोथली, थैली । खारिक=खारी बनाने वाले, नमक बनाने वाले । खलहक्क=खलिहान, अस्थिराशि । सन=बनाई हो, इकट्ठी की हो ।

अर्थः—गौरीशाह की सेना में जोर से नक्कारे बजने लगे उसी समय उस वीर सिंघा प्रतिहार ने पीरोजखाँ को छकाया । उसके तन पिंजर की ओर देखते हुए शहाबुद्दीन ने झनझनाती हुई तलवार का प्रहार किया । यह देखकर सब यवन योद्धाओं ने उस(शहाबुद्दीन) की प्रशंसा की । फिर भी उस प्रतिहार वीर(सिंघा)ने एक गक्खरी वीर को घर दबाया । उस समय दोनों सेनाएँ अस्त प्राय' थी । उस दिगपाल स्वरूपी निर्भीक वीर ने उस गक्खर वीर को घोडे सहित चूर २ कर वणिक के हाथ की (कोडियों की) बजती हुई थैली या नमक बनाने वालों की खलिहान (अस्थिराशि) के तुल्य बना दिया ।

पैज वलिय पाहार, देव दहिया दल खित्तह ।
ओछम्भी ओछाय, घाय राजन इत उत्तह ॥
चाय गरुअ चहुआन, राइ देवत्ति दिवानौ ।
परत घाइ घिघराड, सह न तक्यो सुरतानौ ॥
वड़ भ्रत्ति गत्ति छत्रिन तनिय, कुल घटि वढ़ि न बखान किय ।
भडार विधाता मुकति दिय, लुट्टन हार सु लुट्टि लिय ॥३८८॥

शब्दार्थः—पैज=प्रतिज्ञा । खित्तह=क्षत करने लगे, नाश करने लगे । ओछम्भी=अचमे में, आश्चर्य, चकित । ओछाय=उछाह, उत्साह । घाय=आघात करने लगे । चाय=चाहते हुए, इच्छा करते हुए । गरुअ=भारी वीर गौरव धारी । राइ देवत्ति=देवराय । परत घाइ=घाव लगजाने पर भी । घिघराय=घर्घराकर, गर्जना करके । सह न=नहीं सहा । सुरतानौ=सुलतान की ओर, या-सुलतान के दल की ओर । भ्रत्ति गत्ति=मोक्ष में प्रवृत्ति । तनिय=की । लुट्टनहार=लूटने वाले । लुट्टि लिय=लूटली ।

अर्थः—पहाड के समान अटल दृढ़ प्रतिज्ञ देवराय दहिया शत्रु सेना का नाश करने लगा । उस उत्साह पूर्वक यत्र तत्र वार करके शत्रुओं को

चकित कर दिया। उस गौरव धारी वीर चाहुवान नरेश्वर को बचाने की इच्छा से देवराय दिवाना होगया। घाव लगजाने पर भी वह गर्जना करता हुआ शत्रुओं के अत्याचारों को सहन नहीं कर सका और अत समय में भी शाह की ओर क्रूर दृष्टि से ही उसने देखा। कवि कहता है— मैंने किसी के लिए घटा बढा कर वर्णन नहीं किया है। क्षत्रियों की तो मोक्ष की ओर सदा ही प्रवृत्ति रही है। ब्रह्मा ने मोक्ष का भडार (खजाना) खोल रक्खा है, उसे लूटने वालों ने ही लूटा है (शेष खाली हाथों ही गये हैं)।

इकतीसा आसद, मारि मस्सद महा भर।
दह सत्ता सामंत, सूर जजुरिग धरा धर ॥
द्वै वावा कल्हरिय, सोम जीवत उप्पारिय।
अग्गामी अगिवान, राज वथ्था पच्छारिय ॥
ए वथ्थ परंदा दिट्ठ मे, भग्गा भग्गाइन धर्‌यौ।
सावन वदि पचमी पच कर, साई मिच्छाइन हर्‌यौ ॥३८६॥

शब्दार्थः—इकतीसा=इकतीस। आसद=आकर सधे, जुटे। दह सत्ता=सतरह। जजुरिग=जुटे। कल्हरिय=बोलने में असमर्थ होने पर, मूर्च्छित होने पर। सोम=दूसरा ही सोमेश्वर, पृथ्वीराज। अग्गामी–अगिवान=मुखियों का अग्रगण्य, मुखियाओं का शिरोमणि। वथ्था=बाहुपाश में पकड कर। वथ्थ परदा=बाहु युद्ध करते हुए! भग्गा=भागने वालों ने। भग्गाइन=भग्न होने पर। धर्‌यौ=पकडा। पच–कर=प्रपच करके, छल पूर्वक। मिच्छाइन=मुसलमानों द्वारा। हर्‌यो=मारा गया।

अर्थः—डाइनी कहने लगी–इकत्तीस मसनद धारी महान् वीरों के जुट पडने पर पृथ्वीराज ने उन्हें मार दिया। उस समय पृथ्वीराज के भी सत्रह बहादुर सामन्त जूझ कर धराशायी हुए। दो गहरे घाव लगने से मूर्छित होने पर वह दूसरा ही सोमेश्वर (पृथ्वीराज) घायल अवस्था मे उठाया गया। उस अवस्था मे ही उस नरेश्वर ने मुसलमानों के मुखियाओं के शिरोमणि (शहाबुद्दीन गोरी) को बाहुपाश मे पकड कर पछाड दिया। इस प्रकार बाहु युद्ध करते हुए मैंने (डाइनी ने) उसे देखा। उससे डर कर भागने वाले उन यवनों ने उसका तन शिथिल होने पर ही उसे पकडा और वह तेरा स्वामी श्रावण कृष्णा पचमी को मुसलमानो द्वारा छल पूर्वक मारा गया।

दोहा

कै रामायन कप्पिवर, भारथ भीम न खुट्टि ।
पिथ्थ पराक्रम पथ्थ सम, भावी देव न छुट्टि ।।३६०।।

शब्दार्थः—कै=कितने ही । खुट्टि=खूट गये, समाप्त होगये, मृत्युने ग्रस लिया । पिथ्थ=पृथ्वीराज । पथ्थ=पार्थ, अर्जुन । भावी=भविष्य । छुट्टि=छूटकारा पा सके, बच सके ।

अर्थः—रामायण में वर्णित राम-रावण युद्ध मे कितने ही श्रेष्ट वानर वीर और महाभारत में वर्णित भीम जैसे वीर को क्या मृत्यु ने नहीं ग्रसा ? वास्तव में पृथ्वीराज का पराक्रम अर्जुन के समान ही था किन्तु भविष्य के सामने तो देवता भी नहीं बचे (तब और की बात ही क्या ?) ।

सकल सूर सामंत रण, भै छिन भिन सरीर ।
असम विखम सज्यौ नृपति, लग्गौ लोह कँठीर ।।३६१।।

शब्दार्थः—भै=होगये । असम=जिसकी समानता कोई भी नहीं कर पाता । लग्गौ लोह=लोहा लगा, घायल होगया । कँठीर=सिंह (स्वरूपी पृथ्वीराज) ।

अर्थः—उस युद्ध में सब सामंतों के शरीर छिन्न भिन्न (अस्त व्यस्त) हो गये और वह सिंह स्वरूपी राजा जिसकी समता कोई नहीं कर पाता था । उसने विषम चातुर्य से आक्रमण किया, किन्तु अन्त में वह घायल हो गया ।

जिहि करिवर अरि झरिय, झरिय करि वर अरि वहूत ।
जिहि सकत्ति मुख सकति, सकति विद्धिय सक कहूत ।।
जिहि बानावलि बान, प्रान कंपहि मद सिंधुर ।
तिन मद स्यंधुर सुहि, डंड सिर छत्र नृपति पर ।।
जिहि मुख सहाव समुह सहि न, तिहि मुह जंपड गह गहन ।
प्रथिराज देव दुअननि ग्रह्यौ, रे छत्री गुर ग्रब्ब रह ।।३६२।।

शब्दार्थः—करिवर=करवाल, तलवार । झरिय=झड़पडता था, कट पड़ता था । सकत्ति मुख=मुख शक्ति, प्रमुख तलवार । सकति=शक्ति तुल्य । सकति=शक्ति, तलवार । सक=यवन शत्रु ।

कढ़त = निकालने पर । बानावलि बान = बाणावलि का केवल एक बाण । गह गहन = पकड़लीर । दुरजननि = दुर्जनों ने, शत्रुओं ने । गह्यौ = पकड़ा । रे छत्री = हे क्षत्रियों । गुर = भारी, विशेष । म्रव नह = गर्व नहीं करो ।

अर्थः—जिसकी तलवार से शत्रु समूह झड़ पड़ता (नष्ट हो जाता) था वह आज शत्रु की तलवार से कट कर पड़ गया । जिसकी प्रमुख शक्ति (प्रमुख तलवार) साक्षात शक्ति के तुल्य थी वह शत्रु की शक्ति (तलवार) से नष्ट हो गई । जिसकी बाणावलि (बाण समूह) के केवल एक बाण ही से मतवाले हाथियों के प्राण काँपते थे । उन मतवाले हाथियों की सूँडे आज उसके (पृथ्वीराज के) स दंड छत्र पर छायी हुई हैं । जिस शहाबुद्दीन को वह सामने नहीं देखता था, वही आज उसे पकड़ने के लिये बार २ आवाज दे रहा है । ऐसा वह देवस्वरूपी पृथ्वीराज शत्रुओं द्वारा (घायल होने पर) पकड़ा गया— कवि कहता है-हे क्षत्रिय वीरों ! तब औरों की बात ही क्या है ? अत गर्व नहीं करना चाहिये ।

अनाचार पर वर्‌यो पर्‌यौ यातिक मह जुभिझय ।
हाहलिराउ हँमीर, साइ दोही मन बुभिझय ।।
सिव केसव करि भेद भेद करि देवह नदौ ।
पच तत्त प्रमयत्त सत्त करि साहस सधौ ।।
पहु पग राइ पुत्ती सुनहि, मुत्ति विलविन कत मिलि ।
खट मस वीस वासर विहत, लुहित सोम मडल सु हलि ।।३६३।।

शब्दार्थः—अनाचार=अत्याचार । पर वर्‌यो=हुआ । यातिक-यात्री । मह—जुभिझय=सब ने वार किये । साइ दोही=स्वामी द्रोही । मन बुभिझय=मन का आग बुझ गई । केसव=विष्णु । करि भेद=भेद कर । भेद करि=अन्तर बतला कर । देवह नदौ=देवताओं को लज्जित किये । पच तत्त= पचतत्व, पच भौतिक शरीर प्रमयत्त=प्रमत्त, मतवाला । सधौ=साधा, काम लिया । पुत्ती=पुत्री । मुत्ति=मुक्ति, मोन खट मस=छ महीने (उत्तरायण सूर्य के समाप्त हो गये) । विहत=बीते । लुहित=घायल राजा पृथ्वीराज । हली=चला गया मिल गया ।

अर्थः—उस स्वर्ग मार्ग के यात्री के धराशायी हो जाने पर भी विपक्षी गण उस पर वार करते रहे । इस तरह उसके साथ अन्याचार हुआ । जिससे स्वामी द्रोही

मृत हाहुलिराय हम्मीर के मन की आग बुझी। उसने (पृथ्वीराज ने) अपने शरीर का वध कराते हुए (नष्ट होकर) शिव तथा विष्णु लोक को भेद कर (शिव और विष्णु से भी ऊपर स्थान पाकर) देवताओं और अपने में अन्तर बतलाते हुए उन्हें लज्जित कर दिया। उसका मतवाला पंच भौतिक शरीर जब तक रहा, तब तक उसने सत्य और साहस से काम लिया। डाकिनी कहने लगी-हे पगु कुमारी! सुन, तेरे पति को मोक्ष मिलने में देर नहीं लगी, क्योंकि उत्तरायण सूर्य के छ मास समाप्त हो कर दक्षिणायन हुए बीस दिन हो चुके थे। उस दिन पृथ्वीराज की मृत्यु हो गई जिससे प्रतीत होता है कि वह सोम-मण्डल मे जा मिला।*

सूर गहनु टरि गयौ, सूरगह भयौ राज तन।
भारथ भर वित्तयौ, भार उत्तर्यौ भुअन थन॥
हर हरानि मडयौ, सार समरि तन तुट्यौ।
रे हिंदू रे मुसलमान, वग्गह खल खुट्यौ॥
सचरिग गल्ह समार सिर, खरह संझ अभ्भह भरिय।
घन घाय साहि चहुआन दिय, गज्जनेस दिसि संचरिय॥३६४॥

शब्दार्थः—सूर गहनु=उस बहादुर के पकड़े जाने का अपवाद। टरि गयो=मिट गया, समाप्त हो गया। सूरगह=स्वर्गवास। भयो=हो गया। राज-तन=राजा के शरीर का (राजा का)। भारथ=युद्ध में। भर=वीर योद्धा। वित्तयौ=समाप्त हो गया। भार उत्तर्यौ=उसके द्वारा भार हलका हुआ। भुअन थन=भूतल का, पृथ्वी का। हर हरानि=शिव के हार में, शिव की माला में (उसका मस्तक)। मडयौ=सुशोभित हुआ। सार=लोहे द्वारा। समरि=चाहुवान राजा का। तन-तुट्यौ=शरीर नष्ट हो गया। वग्गह-खल=शत्रुओं का व्याघ्र (सिंह)। खुट्यो=समाप्त हो गया। सचरिग=फैल गई। गल्ह=ख्याति। खरह-सझ=सायकाल होने पर स्वर्ग को रवाना हो गया। घन घाय साहि=बादशाह के भी विशेष घाव लगे। गज्जनेस दिसि=गज्जनेश्वर अपने स्थान की ओर। सचरिय=रवाना हुआ।

---

* गीता के ८ वें अध्याय के २५ वें श्लोक में लिखा है कि "धूमो रात्रिस्तथा-कृष्ण' षण्मासा दक्षिणायनम्। तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते॥

गीता अ० ८ श्लोक २५

अर्थः—पृथ्वीराज के घायल अवस्था मे पकडे जाने का अपवाद समाप्त हुआ, क्योंकि उसका कुछ ही समय मे स्वर्गवास हो गया, वह वीर मारा गया। फिर भी उसके द्वारा पृथ्वी का भार हलका ही हुआ, वह शिव की माला का शोभा स्वरूप हो गया और उस वीर सभरी नरेश का शरीर शस्त्रों द्वारा नष्ट हुआ। कवि कहता है—हे हिन्दू और मुस्लिम वीरों! वह दुष्टों का सहार कर्ता सिंह आज समाप्त हो गया। गर्व से भरा हुआ वह वीर सायंकाल होते २ इस ससार से विदा हो गया, किन्तु उस वीर की ख्याति ससार मे फैल गई। उस चाहुवान राजा ने शहाबुद्दीन को भी घावों से छका दिया था। अत वह भी गजनी की ओर लौट गया।

देवन सुर उद्ध म, भयउ उद्ध म न भारथ।
गदा प्रव्व उद्ध म, वान उद्ध म न पारथ॥
मेछ हिन्दु उद्ध म, कीयउ गोरी चहुवानह।
भिरत पच दिन, पच रित्ति, वित्ती सुविहानह॥
लख्खीव मिच्छ हिन्दू वयत, खित्त हय गय अयुत इछ।
सग्राम कथ्थ नथ्थह तनी, कही चद कवियन स इछ॥२६५॥

शब्दार्थः—देवन सुर=देवासुर। उद्ध म=उत्पात, युद्ध। गदाप्रव्व=गदापर्व। वान=धनुर्युद्ध। पारथ=पार्थ, अर्जुन। मेछ=मुसलमान। पचरित्ति=प्रपच की रीति। वित्ती=वरती, अपनाया। सुविहानह=सुभान को मानने वाले, मुसलमान। लख्खीव=लखी, वर्णन की। वयत=वात, ख्याति। खित्त=खेत रहे, मारे गये। अयुत=युक्ति से परे, रचना से परे, असख्य। इछ=इच्छना चाहिये, मानना चाहिये। कथ्थ=कथा, ख्याति। नथ्थह तनी=स्वामि की। चद कवियन=कवि चद ने। स इछ= इच्छा पूर्वक।

अर्थः—देवासुर सग्राम, महाभारत, भीम और दुर्योधन का गदा युद्ध और पार्थद्वारा धनुर्युद्ध आदि भी वैसे भीषण नहीं हुए जैसा कि शहाबुद्दीन और चाहुवान के मध्य युद्ध हुआ जिसमे हिन्दु और मुसलमानों ने परस्पर भयकर लोहा लिया। यह युद्ध निरन्तर पाच दिन तक दोनो ओर से होता रहा। उसमे सुभान को मानने वाले मुसलमानों ने प्रपच नीति ही अपनाई। इस युद्ध मे असख्य हिन्दु और मुसलमान तथा हाथी, घोडे मारे गये। जिनके वर्णन के साथ २ मैंने (कवि चन्द ने) अपने स्वामी पृथ्वीराज की युद्ध ख्याति का वर्णन भी बडी श्रद्धा से किया है।

गाथा

संचाह सभ्र रयनी, नंचन वीराह वीर विन्ताहं ।
दह कोह गिद्ध गोमं, रण थल थलिय पंच दहीाई ॥३६६॥

शब्दार्थः—सचाह=सचार हुआ । सभ्र=सायंकाल होने पर । रयनी=रात्रि । नचन वीराह=बावन ही वीरों के नृत्य के साथ । वीर-विन्ताह=वह वीर पृथ्वीराज समाप्त हो गया । दह कोह=दस कोस । गिद्ध गोम=गिद्ध आकाश पर मँडराते रहे । थलिय=थल गया, पट गया । दीहाई=दीह, दीन ।

अर्थः—सायंकाल होने पर रात्रि का सचार हुआ। उस समय वीर पृथ्वीराज बावन ही वीर वैतालों के नृत्य के साथ सदा के लिये समाप्त हो गया। इस युद्ध के कारण पाँच दिन आकाश मण्डल मे दस कोस तक गिद्ध मँडराते रहे और रण स्थल हाथी, घोडे, वीरादि के मृत शवों से पट गया।

कवित्त

सजोगिय आस नह, जीव जंजरिग जरिय गत ।
खंजरीट मृगराज, इदु गज हस भिंग पत ॥
अप्प अप्प अप्पियन, सपन जमन दि्ठि आपन ।
त्रिभय राज गत काज, काज क्यन्नौ क्रम तप्पन ॥
चितइ सु चित्त डकिणि उडिय, खुड्डि परंत परेव गहि ।
सचरिग युद्ध सामत दह, उकति वद्ध कवि चद कहि ॥३६७॥

शब्दार्थः—आस नह=निराश होगई । जजरिग=जर्जरित होगया । गत=गात, शरीर । खजरीट=खंजन । भिंग=भ्रग, भ्रमर । पत=चलते बने । अप्प अप्प=जिन २ से शोभा प्राप्त की उनको पुन: । अप्पियन=समर्पित कर दी । गत=जाने । काज क्यन्नौ=कार्यारम्भ किया । क्रम तप्पन=अग्नि में प्रवेश करना चाहा । चितइ=देखकर । डकिणि=डाइनो । खुड्डि=घोंसला । परत=प्रवेश करती हुई । परेव गहि=पक्षी का रूप धारण करलिया । दह=दस । उकति वद्ध=सूक्तिवद्ध ।

अर्थः—यह सुनकर संयोगिता निराश हो गई। उसका आत्मा जर्जरित हो गई तथा उसका शरीर झुलस गया। खजन मृगराज (सिंह), चन्द्रमा, हाथी और भ्रमर की शोभा उसके शरीर से चली गई। उसने वह शोभा अपने अंगों में जिन २ से प्राप्त की थी, उन २ को उसने पुन: समर्पित करदी। वह अपने जीवन को स्वप्नवत

देखने लगी। सयोगिता ने उस निर्भय राजा पृथ्वीराज के पास स्वर्ग मे पहुँचने और सती होने के लिये अग्नि मे प्रवेश करने का कार्य आरंभ किया। यह देखकर डाकिनी भी वहा से उड गई और घोंसले में प्रवेश कर पक्षी का रूप धारण कर लिया। युद्ध में पृथ्वीराज के पकड़े जाने अथवा मारे जाने के समय अन्त मे शेप दस सामत भी मारे गये और स्वामी पृथ्वीराज भी इस संसार से सदा के लिए स्वर्गगामी हुआ। उसी का यशगान मैंने (कविचन्द ने) सूक्ति बद्ध किया।

निरखि निधन सजोगि, प्रिथा साज्जय सु सामि सथ।
हक्कि हस तत्तारि, बीर अब्बरिय प्रेम पथ॥
साजि सकल शृगार, हार मडिय मुगता मनि।
रजि भूखन हय रोहि, जलज अच्छित उच्छारति॥
है हया सद्द जंपत जगत, हरिहर सुर उच्चार वर।
सहगमन सिंघ रावर चले, तजि महि फल श्रीफल सु कर॥३६८॥

शब्दार्थ:—निधन = मृत्यु। सजोगि = सयोगिता। प्रिया -- पृथाकुमारी। सामि=स्वामी। हक्कि-हस = प्राण पखेरू को उड़ा दिया। अब्बरिय=अहकर, भिडकर। भूखन = भूषण। हय रोहि = घोडे पर सवार हुई। जलज–अच्छित=दग कमलों से अक्षत तुल्य आँसू। उच्छारति = उछालती हुई, टपकाती हुई। है हया=हाय २। सद्द=शब्द। सिंघ रावर=रावल समर–केशरी (समर–विक्रम)। महि फल=फलरूपी सासारिक दुख।

अर्थ:—सयोगिता और पृथाकुमारी अपने २ स्वामियों की मृत्यु सुनकर सति होने के लिये तैयार हुई।

पृथाकुमारी ने जब सुना कि उसका वीर पति जो प्रेम पथ पर विचरण करने वाला था उसने तत्तारी से भिडते हुए अपने प्राण पखेरु को तन–पिंजडे से निकाल दिया। तब वह सर्व प्रथम सब शृगार रचकर मोती और मणियों के हार तथा अन्य आभूषण धारण कर दग कमलों से आँसू टपकाती हुई घोडे पर सवार हुई। दर्शक गण इस करुण दृश्य को देखकर हाय २ कर रहे थे, किन्तु वह वीराङ्गना उच्च स्वर से हरिहर शब्द उच्चारण करती हुई अग्नि को श्रीफल अर्पित कर रावल केशरी (समर-विक्रम) के साथ सति हो गई।

प्रथा सथ्थ सह गवनि, रवनि मज्जिय सु राज दह ।
सघन कुसम सुर वास, सिलियमुख गु ज मु ंज तह ॥
मुकता मनि उच्छार, झार आयास समुज्जल।
अंग-रक्खि-दुव सत्त, तिके आ वरिय आप हल ॥
व्यंवान वान सुर अच्छरिय, पुहपजुलि पुब्जें सघन।
सुर रक्खि जक्खि तत्रिय धरण, कलि कौतिक दिक्खैं सु तन ॥३६६॥

शब्दार्थः—रवनि=रमणियें रानियें। राज राजा पृथ्वीराज की। दह=दसों। सुरवास=बोलने पर मुख-वास (सुगन्ध)। सिलिय मुख=शिलीमुख, भँवरे। गु ज=गु ंजार। मुज—मञ्जु, श्रेष्ट। झार=ज्वाला। आयास=आकाश। समुज्जल=उज्ज्वल। अग-रक्खि-दुव=पति के शरीर के साथ अपने शरीरों को प्रवेश कर। सत्त=सटकर, अंक में लेकर। आ वरिय=आकर जल गई। हल=चल कर। व्यवान=विमान। वान=वाणी, वचन। पुह पजुलि=पुष्पाञ्जलि। रक्खि=ऋषि। जक्खि=यक्ष। तत्रिय धरण=तु बरु धर। कलि=सुन्दर। कौतिक=कौतुक।

अर्थः—प्रथा कुमारी के साथ २ पृथ्वीराज की दस रानिया भी अपने पति के साथ सती होने के लिये सुसज्जित हुई। उनके वचनों से पुष्पों की सी सरस सौरभ फैल रही थी। जिससे उन पर श्रेष्ट भँवरे गु ंजार करते हुए मँडरा रहे थे। वे मोती और मणि राशि उछालती हुई, प्रज्ज्वलित चिता की उज्ज्वल ज्वालाओं में जो आकाश को छू रही थी, अपने प्यारे के शरीर को अंक मे लेकर प्रवेश कर गई और भस्म होती हुई (प्रेमी पृथ्वीराज से) जा मिलीं। उन सतियों की पूजा विमानों में बैठी स्वर्गीय अप्सरायें मंगल वचन और पुष्पाञ्जलि द्वारा करने लगी तथा देवता ऋषि, यक्ष, तुम्बरु धर, आदि उन श्रेष्ठ सुकुमार शरीरों का यह सुन्दर कौतुक देखते ही रह गये।

सहस पंच सहगवनि, अवर सामत सूर भर ।
चलिय मिलिय मन सधि, सकल निज नाह वाह वर ॥
भूखन सवन विराज्ति, सज्जि स्यगार सकल तन ।
मन अनंत उद्धरिय, करिय हरि हरि जु दान दिन ॥
जह जह सु थान सुनि प्रिय गवन, न करि विरम मन धरिय ध्रुव।
धनि धन्य सद्द आयास हुव, लखि कौतिग अनभूत सुअ ॥४००॥

शब्दार्थः—सहस=सहस्र । मन सधि=मनको जोड़ (लीन)कर । नाह=पति । बाहवर=श्रेष्ठ बाहु धारी । दिन=दिया । थान=स्थान, लोक । बिरम=विलम्ब । ध्रुव=ध्रुव, निश्चय । धनि=धन्य । आयास=आकाश । कौतिग=कौतुक । अनभूत=अद्भुत ।

अर्थः—इसी प्रकार अन्य बहादुर सामन्त योद्धाओं की पाच सहस्र स्त्रियों ने भी अपने२ पतियों के साथ सहगमन किया। वे अपने बलिष्ट बाहुधारी पतियों मे अपने मन को लीन करतीहुई उनसे भेंट करने के लिये चलीं, वे सब भूषणों से सुशोभित थीं तथा शरीर पर सोलह प्रकार के शृंगार किये हुए थीं। मोक्ष प्राप्ति के हेतु उनका मन अनन्त भगवान से लगा हुआ था। हरि २ शब्द उच्चारण करती और दान देती हुई, अपने २ पतियो से मिलने का निश्चय क , क्षण मात्र के लिए भी उन्होंने विलम्ब नहीं किया और जिस लोक मे उनके पति थे, उस लोक मे चली गई। उनका यह अद्भुत कौतुक पृथ्वीपर होता हुआ देखकर आकाश से धन्य २ शब्द का उच्चारण होने लगा।

चन्दन मंदिर द्वार, रचिय वर दिव्व लघु दर ।
विवह कुसुम वर रोहि, सोहि पट वसन सुरह वर ॥
जिय जवू नदु दान, रथ्थ हय गय मुगता मनि ।
विप्प वेद उच्चरहि, धेन सुरवर आयासनि ॥
किय लोक लोक अंजुलि कुसुम, सजि विमान सुर सिर फिरहि ।
सक्रमिय अप्प साहा गवनि, मज्झि गवन हव्विहि हरहि ॥४०१॥

शब्दार्थः—मंदिर द्वार=मंदिराकृति । दिव्व लघु=छोटे बड़े । दर=दरवाजे । रोहि=लगाये गये । सोहि=सुशोभित । सुरह=स्वर । जिय=जे, उन । जवू नद=यमुना नदी । धेन=धेनु, गौएं । आयासनि= आवासों मे, भवनों म । सक्रमिय=चलती बना । साहागवनि=सहगामिनियें, सतियें । मज्झि गवन= चिता म प्रवश किया । हव्विहि हरहि=हवि कुण्ड को लज्जित करने जैसी चिताओं मे ।

अर्थः—सती होने के स्थान पर मंदिराकृति चन्दन की चिताये बनाकर उनमे प्रवेश करने के लिये छोटे बड़े दरवाजे बनाये गये और उन्हे विविध पुष्पों एव वस्त्रों से सुशोभित किया गया। उस यमुना तट जैसे पवित्र स्थान पर पहुँच कर, उन सतियो ने मृदु वचनों द्वारा रथ, हाथी, घोड़े, मोती और मणियाँ आदि दान मे दी। उस समय गौशालाओं मे गौएं सुस्वर से रभा रही थीं। उस (प्रभात) समय,

विप्र वेदोच्चारण करने लगे। सब लोकों से पुष्प वर्षा होने लगी और देवताओं के विमान ऊपर उड़ने लगे। उसी समय वे सब सतियाँ अपने २ पतियों के साथ सह-गमन करने के लिये हवि-कुण्ड को भी लज्जित करने जैसी चिताओं मे प्रवेश कर गई।

एका दह सय सत्त पच पचास अधिक तरक्ष॥
सावन सुकल सु पच्छि, तिथ्थि पंचइ गुर वासर॥
वज्र विद्धि रोहिन्न, करण बालव विक तैतल।
प्रहर सेख रस घटिय,आदि तिथि सकल पच पल॥
विथ्थरिय वत्त जुद्धह सयल, जुग्गिनि पुर वासर विखम।
सपत्त थान सुरसतिय जुरि, रह सु रवि क्यन्नौ विरम॥४०२॥

शब्दार्थः—एकादह सय=ग्यारह सौ। सत्त=सात। पच पचास=पचपन। पचइ=पाच, पचमी। वज्र विद्धि=वज्रयाग। रोहिन्न=रोहिणी नक्षत्र। करण बालव=बालव करण। विक=अधिक, उपरात। तैतल=तैतिल। सेख=शेष। रस घटिय=छ घड़ी।- विथ्थरिय=विस्तार पाई। वत्त=ख्याति।

✱ नोटः—यदि हम देवलिया प्रति के पाठ "ग्यारह से सेंसत्त, पंच पंचास अधि-कतर" के अनुसार आशय करें तो अ. सं ११०० पर "सेसत्त" स्त्री के शिशुत्व (बाल्यकाल) की तीनों अवस्थाओं (गौरी, रोहिणी और कन्या) की सख्या तीन और उपरांत ५५ का योग कर दें तो अ. स० ११५८ जिसमे कमी के ९१ वर्ष जोड़ने पर वि० सं० १२४९ हो जाता है जो पृथ्वी-राज के मृत्यु का सम्वत् है।

यह ग्रन्थ भी उसकी मृत्यु के पन्द्रह दिन बाद ही महाकवि चंद वरदाई ने समाप्त किया हो। हमने सपादन में इस पद्य के जो पाठ गृहण किये है, उससे अ० स० ११६२ और वि० सं० १२५३ होता है उसके अनुसार मानना पडेगा कि पृथ्वीराज की मृत्यु के बाद चार वर्ष तक कविचद और जीवित रहा तथा इस ग्रन्थ को समाप्त किया (या उसके पुत्रों द्वारा समाप्ति होने का उन्होंने संवत् लिखा हो)। अतिम पद्य से स्पष्ट हो जाता है कि ग्रंथ समाप्ति पर सरस्वती विदा हो गई। (अर्थात् लेखक की मृत्यु हो गई)।

सयल=सकल या सारी पृथ्वी पर। जुग्गिनि पुर=दिल्ली। वासर विखम=विषम दिनों के। सपत्त= चलती बनी, रवाना हुई। सुरगतिय=सरस्वती। जुरि=जुटाकर। रह=रथ। रव्वि=रवि, सूर्य। वयन्नौ विरम=विश्राम किया।

अर्थः—अ० सं० (ग्यारह सौ पर सात तथा पचपन, कुलयोग) ११६२ वि. स (कमी के ६१ वर्ष जोडने पर) १२५३ के श्रावण शुक्ल पचमी गुरुवार को जब वज्रयोग, रोहिणी नक्षत्र, बालव के उपरात तैतिल करण था और सूर्यास्त मे एक प्रहर छ. घड़ी, पाच पल दिन शेष था, उस समय दिल्ली के विपम दिनों की युद्ध-ख्याति का विस्तार हुआ। उस ख्याति को एकत्रित कर सरस्वती भी अपने स्थान पर चली गई (अर्थात् कवि की लेखनी ने विश्राम लिया) साथ ही सूर्य के रथ ने भी विश्राम प्राप्त किया (अर्थात् सूर्यास्त समय हो गया)।

— समाप्त —

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५०८	२३	कौर	और
६०६	११	कविन्त	कवित्त
६०६	२८	द्रग्ग	द्रुग्ग
६१६	२३	ओर	और
६१७	१३	नाया	माया
६१६	२२	पत्र पत्रस	पत्र पत्रन
६२१	११	बहत	बहुत
६२१	२७	क्राधित	क्रोधित
६२५	७	भारि	भारिय
६२६	१४	इलाज	दलन
६२६	१६	जपिरू	जपिरु
६३०	२२	भार	भाव
६१५	१४	घटिका, रप	घंटिका-रव
६३५	२३	गग	गॅग
६३६	७	(या गजपति)	(या गजगति)
६३७	६	तिरह	तिरए
६१६	१६	तय	तयं=
६४१	२२	वघेला	बघेला
६४४	२५	तुम्हारी ..	तुम्हारी तरफ
६४६	१७	वलय	वलय
६४७	१८	सिद्धि	सिद्धी
६४७	२७	मझ	मझ
६४६	८	रमि	विरमि
६५२	२८	प्रगम	द्रुगम
६५३	११	स २ था विचरण	साथ २ विचरण
६५५	१७	दरसत	दरसत

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६६५	२०	स्त्रे सस्त्रे	सस्त्रे मस्त्र
६६६	२५	यौ	जान्यौ
६६७	२६	काल्य	काव्य
६६८	२७	स मूह विर्कासत	समूह विकसित
६६६	१५	मवन	मयन
६७३	१८	वेला	वेल
६७५	६	लधो	लद्यौ
६७५	१०	कहो	कहौं
६७६	१२	शत्रुओं	अत्रुओं
६७६	२७	में गल	मेगल
६८२	२८	कुचकति	×
६८४	५	सेमान	समान
६८७	१५	सुभ्या	सुभ्यौ
६८७	१८	स्वामी	स्वामी
६६३	२	ताम्बूल	ताम्बूल
६६५	१८	सुरसर	सुस्वर
६६६	८	ईवा	बाईं
६६६	२८	पवन	पवनं
६६६	८	बरदिय	बरदीय
६६६	१४	बरदिया	बरदीया
७००	१५	मडै	मडै
७०२	२४	शिकार	शिकारी
७०३	१०	पगान	पगानै
७०४	२१	प्र रभ	प्रारभ
७०८	१८	अग वै	अगवैं
७०८	२४	अगवै	अगवैं
७०६	१४	पगुरौ	पगुरौं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७४७	१३	वद्	वह
७४७	२५	हाई	होइ
७४८	२	आर्धा	आधी
७४८	३	तासम	तास
७४८	७	मान	मानी
७४८	१०	कोध	क्रोध
७५०	१६	निव्वरिय	निव्वरिय
७५०	२१	बाघ-राय	बाघराय
७५०	२६	ग्राम	ग्राम
७५१	२८	उल्हासित	उल्लसित
७५२	२१	कातरान	कातरा न
७५५	१५	धुम्यौ	घु म्यो
७५५	२७	जुमर	जुमार
७५८	१४	अवघट्ट	अवघट्ट
७५८	२५	का	को
७५६	६	ध्रुन	ध्रुव
७६१	२८	किसी	किसी को
७६३	२६	जिती	जिति
७६४	४	विहिन	विहीन
७६५	८	दिल्लपी हुच जाय	दिल्ली पहुँच जाय
७६७	१०	ल्यनै	ल्यनै
७६८	२०	भयकर	भयकर
७६६	८	मरने	करने
७७०	१६	भया	भयो
७७१	३	हुन्दरी	सुन्दरी
७७१	११	छोड़	छेड़
७७२	४	सामन्त	सामत
७७२	१५	उँचा	ऊँचा
७७३	२७	जा-मनिय	जामनिय
७७४	८	नमस्का	नमस्कार
७७६	११	धरिय	धरीय
७७६	१४	फै र	फैलकर
७७७	१७	तोरयो	तोर्यो
७७८	८	काविलाडी	का विलाडी
७७८	१०	फिरयौ	फिर्यौ
७७८	१२	चहुआ	चहुआन
७७८	२३	अता	आता
७७६	७	वुल्लइ।	वुल्लइ
७७६	१२	पृथ्वीरा	पृथ्वीराज
७७६	१६	देखा।	देखा)।
७८०	४	परिसहा	परिहास
७८०	६	नैवद्य	नैवेद्य
७८२	३	सा	सार
७८५	२७	कविश्वर	कवीश्वर
७८७	१३	सँजोई	सँजोइ
७८८	५	मुखे	मुख
७८८	२५	भरनी	भरनि
७८६	५	वघेल	वघेल
७८६	२५	का	को
७६१	१३	साला	सावला
७६३	१७	सभिर	सभिर

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८५५	१८	हसभ	हसम
८५५	२५	तेरसित	तेरसि
८५६	१४	प्राहिट	प्रोहित
८५७	२	अभरह	अमरह
८५८	११	नर-यँदु	नर्यँदु
८५८	४	भहिलन	महिलत्त
८५८	१३	सुरैँ न	सुरै न
८५९	१२	अंबाह	अबाह
८६१	२	स्वीन	खीन
८६२	११	वारुनि	वारुनि
८६२	१३	संपूरिय	सँपूरिय
८६२	२०	जवनी	जीवन
८६४	२	।वलास	विलाश
८६४	५	क	शुक
८६४	२७	मुख	सुख
८६६	२	अगार	अँगार
८६९	२१	महिव	महिष
८७०	९	भुअ पत्तिय	भुआपतिय
८७०	१२	प्राठ	आठ
८७०	१५	भूअपत्तिय	भुआपत्तिय
८७१	३	अग	अँग
८७१	२७	कज	कध
८७२	१४	मर्यै	मर्त्यै
८७३	१६	अप्परि	उप्परि
८७७	४	तापि	तपि
८७९	११	भवन्न	मयन्न

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८८१	१४	दिह्व	दिठ
८८१	१९	दिह्व	दिठ
८८२	१३	भात्र	मात्र
८८३	६	सप्रह	सग्रह
८८३	७	अस्थि	(अस्थि)
८८३	२८	पुसर्द	सुपुर्द
८८५	७	करोडी	करोड
८८५	१३	प ख	परख
८८५	२१	सुलिताना	सुलितानी
८८६	१५	पारंउ	पारउं
८८६	१८	वासुणी	वासुणि
८८७	१६	हिदयानो	हिंदवानी
८८७	१६	हिंदवानी	हिंदवानी
८८८	२	गरुवत	गरुवत्त
८८८	२	कढ्ढइ	कढई
८८८	८	गरुवतनह	गरुवत्तनह
८९०	६	उच्चहि	उच्चरहि
८९२	१६	रारिंद	रारिंद
८९३	८	हक्को	हक्कों
८९३	१९	गरुत्तन	गरुअत्तन
८९४	६	मेर	मेरी
८९४	१८	जता	जाता
८९५	१५	दोर्नो	दोनों
८९५	१७	पुणीर	पुण्डीर
८९६	२५	छुडै	छुडै
८९९	४	हृयदू	हय्दू
९००	१८	टकार	टकार

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
००	२६	सजाओ	सजाओं
६०१	६	हयंदू	हुयंदू
६०२	२४	पु	पुरी
६०१	२८	दसौं	दसों
६०२	२१	संग्राम	सग्राम
६०२	२२	नहीं	नहीं
६०२	२५	कोलू को	को कोलू
६०४	६	जोवन	जोव न
६०४	६	लग्जा	लज्जा
६०४	१७	राजनदग	राजनंदगी
६०६	६	शत्रओं	शत्रुओं
६०६	१०	वडडा	वड्डा
६०६	१२	करयो	कर्यौ
६०६	१४	गम्भरू	गम्भरु
६०६	१६	साहि-वधै	साहि-वघे
६०८	२७	जग्त	जुरत
६०६	१०	पुट्टउं	पुट्ठउं
६१०	२२	गज्जन वे	गज्जनवे
६१०	२३	ने जे	नेजे
६११	१७	जय	जयै
६११	२८	उत्सा	उत्साह
६१२	४	रधर	रघर
६१३	४	सगर	सागर
६१४	१७	विडान	विडन
६१४	२१	शक्लि	शक्ति
६१४	२३	एका	एक
६१४	२७	वस्यु	वस्यु
६१५	४	द्रव्य	द्रव्य
६१८	३	भुम्मु खिय	भुम्मुखिय
६१८	५	लगे	लग्गे
६१८	६	झिगुरि	झिंगुरि
६२१	४	कोम	कोस
६२१	२१	हयदुत्र	हयंदुत्र
६२१	२८	त्तध्र	ध्रत्त
६२२	११	सुश्रु पा	सुश्र पा
६२२	१६	जम डढ्ढ	जमदढ्ढ
६२३	२१	मे मंत	मैमंत
६२३	२३	धू धल	धू धल
६२४	२८	छुलि का	छुलिका
६२५	२०	अग्गि अ गिवान	अग्गि अगिवान
६२५	२४	लग	लगा
६२६	३	नलाने	जलाने
६२६	२१	गजा	राजा
६२७	१३	पुण्डार	पुण्डीर
६२७	१५	सवारि	संघारि
६२७	२२	शाहा	शाही
६२८	२	वदशाह	वादशाह
६२८	७	गखत्र	रखत्र
६२८	१२	छात्र	छत्र
६२८	२३	सुंडा डंढ	सुंडाडंड
६२८	२५	उप्पार्यय	उप्पार्यय

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६२६	५	पखोर्यत्त	पखार्यत्त
६३०	२५	मुक्किया	मुक्किया
६३१	६	सवार ··	सवार हो
६३२	२	ऐसे	×
६३२	२	ने···	ने ऐसे
६३२	३	धन्य हैं	×
६३२	४	·· वे	धन्य हैं वे
६३३	१६	का	की
६३४	२	जा	जो
६३४	२६	कुटयौ	कुट्यौ
६३६	४	महस	सहस
६३७	१३	मारां	मीरां
६३७	२०	मसद्	मसद
६४०	१३	धर	धीर
६४०	२६	बत	बात
६४०	२६	अविज्ज	अच्चिज्ज
६४१	१४	पक्खरी	पक्खरि
६४२	२५	सौदा गरह	सौदागरह
६४३	११	'सूचना	यह सूचना
६४४	१३	गेवे	रोवे
६४५	१६	गुघ्घुलिय	गुघ्घुलिय
६४५	२६	करदाया	करदिया
६४५	२६	शात्र	शात्रु
६४६	१७	कोम	कोस
६४७	१७	वॅध	वध
६४६	६	कृट मत्रण	कूट मत्रणा
६४६	१६	जाना	जानामी
६४६	२८	सूर सज्जयौ	सज्जयौ सूर
६५१	१६	मडिय	मडिय
६५२	२	राजजेश्वर	राज राजेश्वर
६५३	७	द्रग	द्रुग
६५३	१६	स्वामा	स्वामी
६५३	२०	राजद्दां	राजद्दों
६५३	२५	तो ही	तोही
६५४	११	घर	धर
६५४	१४	जननी	जननि
६५४	१५	वभन	वंभन
६५४	१८	रजा	राजा
६५४	२६	मिमि	मिलि
६५५	८	रू	रु
६५५	११	सार	सोर
६५५	२३	चद	चद
६५६	४	सा खग	सासंग
६५७	२७	सजोग अग,	संजोग, अग
६५८	२	अम्रत.	अम्रत
६५६	१३	सगोरह	सगोहर
६५६	२७	उच्छृङ्खलता	उच्छृङ्खलता
६६२	२८	नृसिहादि	नृसिंह
६६३	२	चाहुवानआन	चाहुवाना
६६३	२२	सपत्तौ-ेग	सपत्तौ-लो
६६६	१४	पकज	पंकज
६६७	८	जुवन	श्रुवन
६६७	८	।मडि	मडि
६६७	६	वगा	लगा

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६६७	१६	जंपहि	जं पहि
६६७	१८	रह	तहं
६६७	१६	कहन्निमातु	कह निम्मातु
६६७	२०	पपनतर	सपनतर
६६७	२०	आलिंगवन	आलिंगन
६६७	२१	न्तीय	त्रीय
६६७	२३	मनु	मतु
६६७	२८	अरिष्य.	अरिष्ट
६७०	१२	जो	×
६७०	२१	पगानि	पंगानि
६७१	५	मोइ	सोइ
६७३	१७	घटक	घटिक
६७३	२३	(सयोगिता)	(संयोगिता)
६७४	२	रु रत	रुरत
६७४	४	कुसूभल	कुसुमज्ञ
६७५	४	भ्नत	भ्रम
६७५	४	सेयक	सेवक
६७६	५	वंध	वंध
६७६	५	वंघा	वधा
६७६	१२	स्यध	स्यघ
६८०	२१	प्रणों	प्राणों
६८१	५	आहुट्ठ	आहुठ
६८१	१०	माग रस	मोगह रस
६८१	१८	सम्मानित हूँ।	सम्मानित हूँ। मेरे समस्त शाही भू भाग का स्वामी कुछ नहीं।
६८२	६	केशरा	केशरी
६८२	२	जपै	जपै
६८३	२१	प्रमर	प्रमार
६८३	२२	चलुक्य	चालुक्य
६८४	१३	सौ	सौ
६८४	२१	जग	जंग
६८५	६	है	हैं
६८५	२०	इन्द्र पथ्थ	इन्द्रपथ्थ
६८६	२५	आप्पु	आपु
६८८	७	ही	है
६८६	१८	पामंत	सामंत
६६१	५	त	तैं
६६१	७	नरयंदु	नरयंदु,
६६१	११	ल्त्यिो	जित्यो
६६३	१६	सथ	समथ
६६३	२१	ममा	समय
६६४	२३	दाजै	दीजै
६६५	१३	कडडत	कढ्ढत
६६६	४	ह सत	हरसत
६६६	२७	अयाल	आयाल
६६८	३	था	थी
१०००	१४	चढई	चढाई
१०००	२५	मनुनुक्ख	मनुक्ख
१००१	६	काह	का
१००१	२६	मत्र	मात्र
१००१	२८	इनक	इनको
१००२	१२	वीर भद्र	वीरभद्र
१००२	२१	संकलप	सॅकलप

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१००२	१२	बीर भद्र	वीरभद्र
१००२	२४	सकल्प	सॅकलप
१००२	२४	सकलप	सॅकलप
१००२	२६	बाल	बलि
१००३	२	दुर्याधन	दुर्योधन
१००३	१२	बदब	कदंब
१००३	१६	ध्वसं	ध्वस
१००४	६	नृतर्क	नर्तक
१००४	१३	अर्घ्य	अर्घ्य
१००४	२६	कविचद	कविचद
१००५	१४	धन्य	धन्य २
१००६	५	ग्रहण	ग्रहण न
१००६	६	का	को
१००७	४	बहादु	वहादुर
१००७	५	विदाई	विरदाई
१००७	१३	सभरिय	सभरिय
१००७	१४	वध्यौ	वध्यौ
१००८	६	भोच	मोच
१००८	८	सुानये	सुनिये
१००८	२६	जहा	जहाँ
१०१०	१६	दु ढारी	दु ढारी
१०११	१०	पगाणी	पगाणी=
१०११	२८	अम्र	आम्र
१०१२	५	सोभत्तो	सोजत्री
१०१२	६	आम्र रस	आम्र रस के
१०१२	२४	वडगुज्नर	वडगुज्जर को
१०१३	३	धाडा	धोड़ा
१०१३	१३	केहूंना	केहूँना
१०१३	२५	देख वियान	देखवियान
१०१४	७	सशस्त्र	शस्त्र
१०१५	६	विगति	विगत्ति
१०१५	१४	विगति	विगत्ति
१०१६	२७	की	को
१०१७	२	बिरह-मड	विरह-मंड
१०१८	६	सुखतान	सुलतान
१०१८	१४	तन	तनै
१०१६	१०	हाँ	×
१०१६	२६	जोवन	जीवन
१०१६	२६	धरा	धरो
१०२१	४	लोकिर	मुख लोकिर
१०२१	२४	पात	पति
१०२२	२१	पाठ	साठ
१०२३	१३	सद्दोप	महोस
१०२३	१४	छोडवर	छोडकर
१०२३	२६	स्वामी	स्वामि
१०२३	२६	मरण	मारण
१०२४	१४	तिक्खन	तिक्खन
१०२४	१५	वभ अड	वभअड
१०२४	२०	तिख्खने	तिख्खन
१०२५	१५	स्तठहरा	स्तभ ठहरा
१०२५	२२	हुआ	×
१०२५	२५	विपय	विपम
१०२६	२३	विाम	विपम
१०२७	११	स ग्रहौ	सग्रहौ

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०२७	१२	रन	राजा
१०२७	१६	मुंछा	मुंछां
१०२८	२३	पच्च	पच्छ
१०३०	७	वी	वीर
१०३१	२	स्यंधु	स्यंघु
१०३०	२४	पीऊरव	पीऊख
१०३१	२३	एक···	एकमात्र
१०३५	१६	आघ	आध
१०३५		हा	ही
१०३६	६	मानने	मारने
१०३६	२७	खिनु	खिनु
१०३७	८	दिल्लाश्वर	दिल्लीश्वर
१०३८	७	द्रग्गा	द्रुग्गा
१०४१	६	दूरी	दुरी
१०४१	१४	हागे	होगे
१०४३	२४	ससा-सांसा	ससा-सासा,
१०४३	२४	ति	मति
१०४४	१५	दानों	दोनों
१०४४	२६	ममज	मभक्ष
१०४६	१७	साया	साथी
१०४६	२७	कट्ठ	कट्ठौ
१०४७	७	पच	पंच
१०४७	१८	रहता	रहती
१०४८	८	कोई	काई
१०४८	२५	दीरण	दीगि
१०४६	६	खुरसान···	खुरसान खान
१०५२	२८	क्रम्भ	क्रम्म
१०५३	२	थट्टा-समूह=वद्ध हो,	थट्टा=समूह-वद्ध हो
१०५३	१०	व्राह्य	ब्रह्म
१०५४	२८	तत्व से	×
१०५५	२	भी परे जो	×
१०५६	१६	रा ट	रासुट
१०५६	२७	मुसाहवों	मुसाहिवों
१०५७	१६	विसितृत	विस्तृत
१०५७	२०	वले	वाले
१०५८	२०	जीवन	जीवन
१०६०	२	·· रे	धरे
१०६०	१३	भा	भी
१०६०	२७	हिं	हिंदु
१०६२	१०	प्रमुदित	प्रमुदित
१०६३	१०	(पृथ्वीरा)	(पृथ्वीराज)
१०६३	१७	हंकुरिय	हकुरिय
१०६३	२०	भुाग	भुजा
१०६३	२३	सवयने	सवयने
१०६४	२०	पुछयौ	पुछयौ
१०६४	२३	शहाबुाद्दीन	शहाबुद्दीन
१०६५	१४	प्रन	प्रान
१०६६	८	असभान	असमान
१०६६	११	खसी	कैसी
१०६७	१०	घड़ा	घड़ी
१०६७	११	युद्ध	युद्ध
१०६९	१२	प्रवर्त्त=प्रवर्ती	प्रवृत्तो=प्रवृत्ति
१०७२	१७	वरथा	वस्था

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०७३	१०	श्रमम	श्रम्मै
१०७३	१६	स सामिप्य	सामिप्य
१०७३	२७	भास	मास
१०७४	२८	पड़ता	पड़ती
१०७५	१०	असखि	असखि
१०७५	२५	ता	तो
१०७६	१०	सभारि	सभारि
१०७६	१६	क्राध	क्रोध
१०८०	२५	प्रज्ज्वजित	प्रज्ज्वलित
१०८२	२३	गुरु अत्तं	गुरुअत्तं
१०८३	६	तक्र	तक
१०८३	२१	रावजी	रावल जी
१०८५	२	भलाना	मलाना
१०८५	१८	रोभ	रोम
१०८६	७	अभिय	अनिय
१०८६	६	जग उत्तो	जंग उत्तो
१०८६	६	तरछी	तरछि
१०८६	१०	बिहडे	बिहडे
१०८६	२३	बिय=नव=	बिय-नव=
१०८७	४	श्रवनभ्कक भाइय	श्रवनभ्कक-भ्काइय
१०८७	१२	भोनह	मोडनह
१०८७	१२	नचाइय=	उचाइया=
१०८७	१५	वीराङ्गनार्ये	वाराङ्गनार्ये
१०८७	१७	जामराय से	जामराय
१०८७	२७	सनाहरू	सनाहरु
१०८७	२६	प्रापत्ति	आपत्ति
१०८८	२	कट्ठ	कट्ठू
१०८८	३	बद्धारु	बद्धारू
१०८८	१४	सपत्तौ	सँपत्तो
१०८६	११	लियोधर	लियौधर
१०६०	१६	वै=नुत्त	वै-नुत्त
१०६१	२६	का	की
१०६२	६	धरि रवत्त	धरिखत्त
१०६२	१४	हाने	होने
१०६३	१४	ओर	और
१०६४	१३	राजाओं	राजाओं
१०६४	१३	त्रिघइय	त्रिघाइया
१०६४	१६	गौरीं	गौरी
१०६५	११	करगे	करने
१०६५	१५	लेच्छ	म्लेन्छ
१०६६	१०	चौदह	चौदह
१०६६	१५	हु	हू
१०६६	१६	ही	दी
१०६८	५	वजपित	वज्रपित
१०६६	१७	आधत	आघात
१०६६	२०	खखुदि	खखु दि
१०६६	२८	क	कर
११००	१६	पदा	पैदा
११०१	६	परूखयो	परख्खयो
११०१	१८	असु	असु
११०१	२४	नरसग	परसग
११०१	२६	इन्द्र सन	इन्द्रासन
११०२	२१	मृह मूह	मूह मूह

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्ध
११०३	१०	मंडलि	मंडल
११०३	११	आप्सरायें	अप्सराये
११०३	१४	सूर्य मंडलि	सूर्य मडल
११०३	२६	निधाय	निघाय
११०३	२७	परतग्य	परतग्य
११०४	२	स्यंघ=सिह प्रमार	स्यघ=सिंह प्रमार
११०५	१२	हौं··	होहिं
११०७	२०	लिया	लिय
११०७	२५	कन्ने	करने
११०८	२५	सारॅक	सारॅग
११०९	२५	घेर	घेर
११०९	२६	उ ने	उसने
११०९	२७	शत्रुअ	शत्रुओं
१११०	१२	पर	पैर
११११	२७	ये	थे
१११३	२	मदनसिंह	महनसिंह
१११३	२	सन्य	सैन्य
१११३	१८	यदनसिंह	महनसिंह
१११६	२८	आयासह=आरासह,	आरासह=आयासह,
१११७	२०	रडवडह	रड़वडह
११२७	२१	भारें भारा=	भारें भारां=
१११८	११	दोजिव	दोजिख
१११८	१७	फिरोज	पिरोज
१११९	२५	जमथ	जमन
१११९	२९	वात्र	पात्र
११२१	१३	साई	सांई
११२१	१४	हयंदू	हय दू
११२२	५	नसीय	नसोय
११२२	९	· रद	मरद
११२२	१८	हिन्दुओं को	हिन्दुओं के
११२३	२१	ग्रौर	और
११२३	६	इसलि···	इसलिए
११२३	२४	उत्तीय	उत्तरिय
११२४	२०	घेरा	घेरा
११२४	२१	क	के
११२५	२०	कए	एक
११२६	५	परवान प	परवान पर
११२६	६	गारिय	गोरिय
११२६	६	पु ग	तुंग
११२८	१४	शौय	शौर्य
११२८	२६	रु क्क	रुक्क
११२९	४	पृथ्वी ाज	पृथ्वीराज
११२९	१०	परक्रम	पराक्रम
११२९	११	नदा	नदी
११२९	१२	मानें	मानों
११२९	१८	हा हत	हाहत
११२९	२२	हा हत	हाहत
११३०	१५	पिम	पिंम
११३१	१८	आकसरण	आकमरण
११३२	३	कहु	कहुँ
११३२	७	भगो	भग्गै
११३३		का	को

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११३३	२७	उठा	उठी
११३४	६	गिद्धिं	गिद्धिणि
११३४	२२	नर-यद	नर्यद
११३४	२३	पन	पल
११३५	२३	मडह	मंडह
११३६	२	विग्नों	विवर्नों
११३६	८	जिसका	जिसकी
११३६	१०	डाकनी	डाकिनी
११३६	१५	गडि	गहि
११३६	२५	मुसलमानां	मुसलमानों

११३७	१०	भिद्दात	भिद्दति
११३७	१४	बरसन	बरसने
११३७	२५	ढालां	ढालों
११३८	२०	डाकनी	डाकिनी
११३९	३	ह्यौ	हयौ
११३९	१७	न	ने
११३९	२०	पुख	पु ख
११३९	२५	जपिय	जपिय
११३९	२७	बिनहँस	बिन हस
११४०	२	व्रबेस	प्रवेश
११४०	२५	सिंदूक	सिँदूक
११४३	१७	निृप	नृप
११४३	१८	पज	पैज
११४३	२४	डकिनी	डाकिनी
११४३	२६	बधन्न	बधन
११४४	६	भाटा	चाटा
११४४	२४	पति	पति
पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११४६	६	शाह	शाही
११४६	६	पक्ष	पक्ष के
११४६	१०	पक्षी	पक्ष
११४६	१९	सामतसामत	
११४६	२१	त्रुटय	त्रुटिय
११४६	२६	सजि पगित	सजिपरिताय
११४७	६	(जामर×)	
११४७	६	तनों	तीनों
११४७	२१	उलसित	उल्लसित
११४८	७	वंम	वेम

११४८	२०	डक	डके
११४९	४	घारण	धारण
११४९	२४	देवगय	देवराय
११४९	२८	उस	उसने
११५०	२४	शिरोमाणि	शिरोमणि
११५०	२६	यवना	यवनों
११५१	२३	रह	हन
११५१	२५	प्रम्ख	प्रमुख
११५२	४	नह	हन
११५२	२२	पच	पच
११५४	१८	ालखी	लिखी
११५५	४	दहीाह	दीहाई
११५५	२२	विंचइ	चिंतइ
११५५	२२	डकिणि	डकिणि
११५५	८	साज्जय	सज्जिय
११५६	११	उच्छारति	उच्छारनि
११५६	१६	उच्छारति	उच्छारनि
पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११५६	१८	हुख	सुख
११५७	६	मुज	मु ज
११५८	८	प्राप्त	प्राप्ति
११५८	१०	क	कर
११५८	२२	वलती	चलती
११५८	२८	रहा	रही
पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११५९	१२	रोहिणा	रोहिणी
११५९	१७	रोहि ी	रोहिणी
११५९	१८	तंन	तीन
११५९	२४	पृ'वीरान	पृ'वीराज
११५९	२८	सान	सवन्

सम्पादकीय का शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	२३	रही हैं।	रही हैं१।
३	१६	रखते हैं।	रखते हैं१।
५	३	पर्याय रूप	पर्यायरूप "कांति" और "मति" की संधि करके
५	३	"कातिमति"	"कांतिमति"
		जुन्हाई से	उत्पन्न होना
		सयोगिता के	लिए
५	४	कविवद	कविचंद
६	१२	सं० १२३३	स १२२३
१०	२१	११५३	१२५३
११	४	करती हैं।	करती है१।
११	१६	अक्षरशः एक धारी होतो है	अक्षरश एक धारी होती है १।
११	१७	कमल-कीटिक	कमल-कीटिक
११	१८	किया।	किया१।
१२	६	हुआ है।	हुआ है१।
१२	२३	साहिब दीनेन न	साहिबदीनेन
१२	२४	अतिम	अंतिम
१५	८	जाना जाना	जाना
१५	१७	अपना	अपनी
१६	१६	से—	है जैसे--
२०	२३	आनागत	अनागत
२६	६	ई. से	ई०
३०	२	जयपुर वश	जयपुर राजवश
३१	११	उत्त्नन	उपंन

विषय सूची का शुद्धि पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४	१४	हरराज	(हरराज)
५	३	आर	और
५	४	क	का
५	२०	शक्ति को	शक्ति को
७	१५	आवे	आवेश
६	५	तेर	तेरह
१०	२	को	को
१०	१२	अन्य ग्रन्थ	ग्रन्थ

काव्य सौष्ठव का शुद्धि पत्र भाग ४

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	२६	कुह कुहत	कुहकुहत
३	१४	कत	कत
५	१०	आर	और
५	१७	जिज्जये	जिज्जिये
५	२०	स्पष्ट :	स्पष्टत
५	२५	कामोदापन	कामोद्दीपन
५	२६	आर	और
६	शीर्षक	पृथ्वीराज-रासा	पृथ्वीराज-रासो
६	११	अकस्मात	अकस्मात्
७	६	कुभ	कुम्भ
७	२०	छडिय	छड्डिय
७	२१	काव	कवि
८	शिर्षक	पृथ्वीराज-रासा	पृथ्वीराज-रासो

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८	१०	कुमुद	कुमुद
८	२०	दोनों	दोनों
९	१६	क प्रीशस	की प्रशसा
९	२३	यह	वह
१०	०	गये	गये ।
१०	१७	जगलरात्र	जगलराव
१०	२४	स्वाकार	स्वीकार
११	२३	उधाड़ता	उघाड़ती
१३	१६	द्रग्गम	द्र ग्गम
१३	१६	खर हरहि	खरहरहि
१३	२	नियाजना	नियोजना
१३	२७	क लिए	के लिए
१४	७	लीं	ली
१४	११	कर	कीर
१५	१२	वर-वधू के	वर-वधू क हाथों के
१६	१	ो रहा	हा रहा
१६	१८	विकम	विकसत
१६	२६	सन्मान	सम्मान
१७	२२	मयाग	सयोग
१८	शीर्पक	पृथ्वीराज-रासा	पृथ्वा रासो
१८	१४	अलकारों	अलकारों,
१८	१५	जसे	जैसे
१८	१६	कट्ट	कट्टत
१९	१	जरजर्यौ	जरजर्यौ
१९	२४	गग	गग
२०	१२	गोहनो	गेहिनी
२०	१४	दिवा करों	दिवाकरौ
२०	२०	कवि	कवि का
२१	७	पृ·वाराज	पृथ्वीराज
२१	७	क	कर
२२	१६	ाचत्रकार	चित्रकार
२२	२५	ववन	ववन
२३	२०	निर्दश	निर्देश
२३	२६	अतर	अतर

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२४	३	सवाद	सवाद
२४	२१	नर्वाचन	निर्वाचन
२५	९	वांछता	वाछिता
२५	१०	रु–ी	रुचि
२६	२	विरोधाभस	विरोधाभास
२६	१०	उद्बाधन	उद्बोधन
२६	१६	कभा	कभी
२८	शीर्पक	पृथ्वीराज-रासा	पृथ्वीराज रासो
२८	१२	सुगात	सुगति
२९	३	सामता	सामतों
२९	४	सयाि ता	सयोगिता
२९	४	सदेश	सदेश
२९	६	पिम	पिंम
२९	१८	प्रभावात्पादक	प्रभावोत्पादक
२९	२६	कारवर	करिवर
३०	२२	स्त्रिया	स्त्रियों
३०	२४	दिना	दिनो
३२	७	हा	ही
३२	१२	औ	और
३२	१३	जीव को	जीव का
३२	१४	सारूप्यमुक्त	सारूप्य मुक्ति
३४	शीर्पक	पृथ्वीराज रासो	पृथ्वीराज–रासो
३४	१५	शौय-प्रदर्शन	शौर्य-प्रदर्शन
३४	१६	वीर-गाथाआं	वीर-गाथाओं
३४	२०	युद्धा	युद्धों
३४	२४	अकुरित	अकुरित
३६	५	तुम ही	' तुम ही
३४	१६	रात्र गता	रात्र गता
३६	२६	सॅपूरिय	सॅपूरिया
३७	१०	माना	मानों
३७	११	जजारत	जर्जरित
३८	१	रासोकार	रासोकार